मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक 22

महाकइ सिंह विरइउ

पज्जुण्णचरिउ

[प्रद्युम्नचरित]

समीक्षात्मक प्रस्तावना, हिन्दी अनुवाद तथा शब्दानुक्रमणिका सहित

सम्पादन-अनुवाद
डॉ. विद्यावती जैन
पी-एच.डी., डी. लिट्

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रथम संस्करण : 2000 ▯ मूल्य : 300 रु.

विनम्र निवेदन

सन् 1972 के ग्रीष्मावकाश में सौभाग्य से मुझे राजस्थान, गुजरात एवं महाराष्ट्र में भ्रमण करने का सुअवसर मिला। वहाँ के अनेक दर्शनीय-स्थलों में से कुछ प्राचीन ग्रन्थागारों को भी देखने का सुयोग प्राप्त हुआ। आदिकालीन हिन्दी-साहित्य के अध्ययन-प्रसंगों में हिन्दी की जननी — अपभ्रंश के विषय में मुझे सामान्य जानकारी थी ही, और गुरुजनों ने बताया था कि राजस्थान एवं गुजरात के विभिन्न शास्त्र-भण्डारों में हिन्दी, अपभ्रंश, प्राकृत एवं संस्कृत के सहस्रों हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थ भरे पड़े हैं, जिनके अध्ययन एवं प्रकाशन की महती आवश्यकता है। अत: दीर्घकाल से मैं उन ग्रन्थों को देखने के लिए अत्यन्त लालायित थी। उक्त प्रवास प्रसंग में मुझे विशेष रूप से आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर, ऐ०पं० सरस्वती-भवन, ब्यावर तथा अजमेर, अहमदाबाद, जामनगर, पूना, बड़ौदा एवं दिल्ली के प्राच्य शास्त्र-भण्डार देखने का अवसर मिला। ब्यावर के शास्त्र-भण्डार में पहुँचते ही वहाँ पोथियों के अवलोकन के समय **'पज्जुण्णचरिउ'** नामक प्रस्तुत अप्रकाशित ग्रन्थ ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया और वहीं पर मैंने यह संकल्प किया कि भले ही इसमें कुछ कठिनाइयाँ आयें, फिर भी इस ग्रन्थ का उद्धार मुझे करना ही है। यही विचार कर मैं उस ग्रन्थ को अपने साथ लेती आई और उसका एकरस होकर अध्ययन एवं मनन कर उसके प्रतिलिपि कार्य में संलग्न हो गयी। इसके प्रारम्भिक-कार्य में मुझे लगभग 3-4 वर्ष लग गये।

उस कार्यकाल में मैंने यह बार-बार अनुभव किया कि हस्तलिखित अप्रकाशित प्राचीन-लिपि का अध्ययन जितना कठिन है, उसका सम्पादन, हिन्दी-अनुवाद एवं समीक्षात्मक तथा तुलनात्मक अध्ययन उससे भी अधिक कठिन। यथार्थत: ये समस्त कार्य अत्यन्त धैर्य-साध्य, कष्ट-साध्य एवं व्यय-साध्य हैं। फिर भी, अपभ्रंश एवं हिन्दी के अनेक महारथी दिग्गज विद्वानों के महान् साहित्यिक-कार्यों का स्मरण तथा अवलोकन कर मैं गार्हस्थिक एवं अन्य शैक्षणिक-दायित्वबोधों की व्यस्तताओं के बीच भी धैर्यपूर्वक प्रस्तुत शोध-कार्य करती रही। अब मुझे इस बात की अत्यन्त प्रसन्नता है कि दीर्घावधि के परिश्रम के बाद मैं एक अद्यावधि अप्रकाशित एवं नष्ट-प्राय सरस-कृति का उद्धार कर सकी। मेरी दृष्टि से शोध की दिशा में अप्रकाशित-साहित्य का सम्पादन-अनुवाद एवं विविध दृष्टिकोणों से उसका समीक्षात्मक अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य है और इस माध्यम से शोध-कार्यों में अनावश्यक पुनरावृत्तियों से भी बचा जा सकेगा।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध तीन खण्डों में विभक्त किया गया है--- (1) मूलपाठ, (2) हिन्दी-अनुवाद एवं (3) समीक्षात्मक-अध्ययन। मूलपाठ एवं हिन्दी-अनुवाद यथास्थान प्रस्तुत हैं। हिन्दी-अनुवाद में कवि की मूलभावना को सुरक्षित रखने का यथासाध्य प्रयत्न तो किया ही गया है, यह भी ध्यान रखा गया है कि वह शब्दानुगामी अनुवाद के साथ-साथ प्रवाहपूर्ण भी बना रहे।

समीक्षात्मक-अध्ययन में उपलब्ध प्रतियों के परिचयों के अनन्तर काव्य-शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साहित्य-जगत् के लिए महाकवि सिंह अद्यावधि एक अपरिचित अथवा अज्ञातप्राय कवि ही रहे हैं। उनका अथवा उनकी रचना का उल्लेख साहित्यिक इतिहास में नहीं मिलता, किन्तु इससे कवि अथवा इसकी कृति प्रभावहीन नहीं मानी जा सकती। उसके अँधेरे में पड़े रहने के अनेक कारण हो सकते हैं। मेरी दृष्टि से 13वीं सदी के बाद ही अगली 1-2 सदियों की राजनैतिक उथल-पुथल में सम्भवत: सुरक्षा की दृष्टि से

ही प०च० के किसी तलगृह में पड़ जाने के कारण वह दीर्घकाल तक कवियों की दृष्टि से ओझल बना रहा और बाद में जब कुछ राजनैतिक स्थिरता आयी और जब क्रमश: जैन शास्त्र-भण्डारों की भी पुनर्व्यवस्थाएँ एवं उनमें संगृहीत पोथियों का सूचीकरण आदि कार्य किया गया, तब कहीं इस महत्त्वपूर्ण रचना के विषय में जानकारी मिल सकी। वर्तमान में प्राच्य-लिपि एवं भाषाज्ञान की दुरूहता एवं ग्रन्थ की विशालता के कारण भी यह ग्रन्थ शोध-स्नातकों से अछूता ही बना रहा। वस्तुत: इस कोटि के ग्रन्थों पर शोध-कार्य कर पाना कितना कठिन है, इसका अनुभव कोई भुक्तभोगी ही कर सकता है।

पज्जुण्णचरिउ के कवि-परिचय एवं काल-निर्णय के लिए कोई विशेष आधार-सामग्री उपलब्ध नहीं है। किन्तु प०च० की आद्य एवं अन्त्य-प्रशस्ति में जो छिट-पुट सन्दर्भ मिले हैं, उन्हीं का विश्लेषण कर उक्त प्रकरण तैयार किया गया है।

तत्पश्चात् पृष्ठभूमि के रूप में अपभ्रंश-भाषा एवं साहित्य तथा उसके प्रमुख साहित्यकारों का परिचय देते हुए अपभ्रंश-साहित्य की विविध प्रवृत्तियों एवं हिन्दी काव्यों को उनकी देन सम्बन्धी चर्चा कर, प०च० का स्रोत एवं परम्परा, उसकी विषय-वस्तु तथा उसका अन्य उपलब्ध प्रद्युम्नचरितों के साथ संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन (मानचित्र सहित) प्रस्तुत किया गया है।

प०च० के काव्यशास्त्रीय अध्ययन-प्रसंग में उसके महाकाव्यत्व को सिद्ध करते हुए उसमें प्रयुक्त रस, अलंकार, छन्द, भाषा, शैली, चरित्र-चित्रण; बिम्ब-योजना तथा कथानक-रूढ़ियों आदि पर प्रकाश डाला गया है।

प०च० के सामाजिक-चित्रण प्रकरण में वर्ण-व्यवस्था, प्रमुख जातियाँ एवं उनकी स्थिति, संस्कार, विवाह-प्रकार एवं उनके रीति-रिवाज तथा महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। राजनैतिक-सन्दर्भ-प्रकरण में राजा, माण्डलिक, सामंत, तलवर, दूत, युद्ध-विद्या, शस्त्रास्त्र-प्रकार आदि पर विचार गया है।

आर्थिक जीवन — आजीविका के साधन-प्रकरण में — कृषि एवं अन्य उत्पादन, वाणिज्य, लघु-उद्योग-धन्धे, जिनमें वस्त्र, बर्त्तन, आभूषण, वस्त्र-सिलाई, काष्ठ, लौह एवं आयुध-निर्माण, चर्मोद्योग, पशुपालन, भवन-निर्माण, प्रसाधन-सामग्री-निर्माण, खनिज आदि प्रमुख हैं, तथा क्रय-विक्रय के माध्यम एवं राज्यकर जैसे विषयों को भी उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है।

सांस्कृतिक सन्दर्भों में वाद्य, संगीत, नृत्य, उत्सव, क्रीड़ाएँ, गोष्ठियाँ, भोजन-पान, आचार, सिद्धान्त, योग, पुनर्जन्म, धर्म एवं दर्शन, अंधविश्वास और लोकाचार जैसे विषयों को प्रकाशित किया गया है।

प०च० में मध्यकालीन कुछ भौगोलिक-सन्दर्भ भी उपलब्ध होते हैं। अत: उनका भी तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है। अन्त में उपसंहार में प०च० की विशेषताओं का संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है।

कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रस्तुत ग्रन्थ पर शोध-कार्य हेतु मुझे जिन-जिन संस्थाओं एवं उदार सहृदय विद्वानों से सहायता मिली है, उनमें आमेर शास्त्र-भण्डार जयपुर के निदेशक डॉ० **कस्तूरचन्द जी कासलीवाल** (अब स्वर्गीय) एवं श्री ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर के अध्यक्ष **पं० हीरालाल जी शास्त्री** (अब स्वर्गीय) के प्रति मैं अपना सर्वप्रथम आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने पज्जुण्णचरिउ की उक्त हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध कराकर मुझे इस दिशा में शोध-कार्य करने की प्रेरणा दी। **श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान**, वाराणसी ने मुझे मेरे आर्थिक संकट के समय सन्

1977-78 में अपनी शोध-छात्रवृत्ति प्रदान की तथा शोध-कार्य को साकार रूप प्रदान करने में पूर्ण सहायता प्रदान की, इसके लिए मैं संस्थान के अधिकारियों, विशेषतः उसके तत्कालीन निदेशक श्रद्धेय पं० **फूलचन्द्र जी** सिद्धान्तशास्त्री तथा मन्त्री श्री **डॉ० दरबारीलाल जी कोठिया** के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

डी०के० जैन ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट (आरा) तथा ह०द० जैन कॉलेज, आरा के संस्कृत-प्राकृत विभाग के बहुमूल्य ग्रन्थागारों से भी मुझे प्रायः सभी प्रकार की सन्दर्भ-सामग्री की उपलब्धि हो सकी, इसके लिए उनके निदेशक तथा अध्यक्ष **प्रो० (डॉ०) राजाराम जैन** के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

गुरु तुल्य हितैषी विद्वानों में श्रद्धेय **प्रो० डॉ० उपेन्द्र ठाकुर** (मगध वि०वि०) श्रद्धेय **पं० कैलाशचन्द जी** सिद्धान्त शास्त्री, **प्रो० उदयचन्द्र जी सर्वदर्शनाचार्य** (वाराणसी), **डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री**, **प्रो० (डॉ०) राजाराम जैन**, **प्रो० (डॉ०) देवेन्द्र कुमार जी शास्त्री** आदि के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिनकी कृतियों के अध्ययन तथा बहुमूल्य सुझावों एवं प्रेरणाओं से मुझे अपने शोध-कार्य में विविध सहायताएँ मिली हैं।

मैं उन परमश्रेष्ठ पूज्य **आचार्य प्रवर विद्यानन्द जी**, **प्रो० (डॉ०) हीरालाल जी**, **प्रो० डॉ० ए०एन० उपाध्ये**, **प्रो० (डॉ०) गुलाबचन्द्र जी चौधरी** जैसे महारथी विद्वानों के प्रति भी अपनी भावपूर्ण श्रद्धा व्यक्त करती हूँ, जिनके महनीय ग्रन्थों का अध्ययन कर मैंने उनसे शोध-प्रेरणाएँ ग्रहण कीं तथा जिन्होंने मुझे इस शोध-प्रबन्ध के लिखने योग्य बनाया।

प्रो० (डॉ०) राजाराम जैन की मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, जिनके निर्देशन के बिना यह शोध कार्य सम्भव न हो पाता। उन्होंने हर परिस्थिति में मुझे प्रोत्साहित रखा और निरन्तर कार्य करते रहने की प्रेरणा दी।

मैं भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक परमादरणीय **डॉ० दिनेश मिश्र** जी के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन-प्रस्ताव पर अपनी प्रवर-परिषद् से विचार-विमर्श ही नहीं किया, बल्कि कृति को महत्त्वपूर्ण मानकर उसके प्रकाशन हेतु तत्काल ही अपनी कृपापूर्ण स्वीकृति भी प्रदान कर दी।

प्रकाशनाधिकारी डॉ० **गुलाबचन्द्र जी जैन** ने विषय की सैटिंग कर तथा प्रूफ संशोधनादि कर उसे प्रामाणिक एवं नयनाभिराम बनाया, इसके लिए उनके प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं चि० **महावीर शास्त्री**, प्रिय श्री **संजीव जैन** (कु०कु०भा०, नई दिल्ली) तथा श्री **सुरेश राजपूत** के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ की प्रारम्भिक मुद्रण-व्यवस्था में अपने मार्गदर्शन से मुझे काफी उत्साहित किया। अन्त में, मैं महाकवि सिंह के ही निम्न कथन के साथ अपनी त्रुटियों के लिए विद्वज्जनों से क्षमा-याचना करते हुए विनम्र निवेदन करती हूँ कि मेरी प्रस्तुत रचना में जो भी त्रुटियाँ हों, मुझे सूचित कर मेरा मार्ग-निर्देशन करें, जिससे आगे चलकर उसमें संशोधन करने का प्रयत्न कर सकूँ। महाकवि सिंह के ही शब्दों में—

"जं किंपि हीण-अहियं विउसा सोहंतु तं पि इय कव्वो।
धिट्ठत्तणेण रइयं खमंतु सव्वे वि मह गुरुणो।।"

विनयावनत

विद्यावती जैन

वीरशासन जयन्ती
29/7/99
महाजन टोली नं० 2
आरा (बिहार) 802301

संकेत-सूची

अनुशा० पर्व	अनुशासन पर्व (महाभारत)
अप०भा०सा०	अपभ्रंश भाषा और साहित्य
आदि पर्व	आदि पर्व (महाभारत)
आ०पु०	आदिपुराण (जिनसेन)
इका०	इकानामिक ज्योग्राफी — ब्राउन
इं०कं०फि०	इन्ट्रोडक्शन टू कम्पेरेटिव फिलालॉजी (गुणे)
उद्योग पर्व	उद्योग पर्व (महाभारत)
एन०एल० डे	नन्दूलाल डे
एपि० इण्डि०	एपिग्राफिका इंडिका
क०मं०	कर्पूरमंजरी
का०मी०	काव्यमीमांसा
कु०खं०	कुमारिका खण्ड
कू०वि०	कूर्म विभाग
चौलुक्य०	चौलुक्य कुमारपाल
ज्यो०ऑफ०ए०एम०आई०	ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐंशियेंट मिडिवल इंडिया
जै०सा०इ०	जैन साहित्य और इतिहास (नाथूराम प्रेमी)
डे ज्योग्राफी०	नन्दूलाल डे : ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐंशियेंट इंडिया
दे०	देखिए
द्रो० पर्व	द्रोण पर्व (महाभारत)
द्वयाश्रय०	द्वयाश्रयकाव्य (हेमचन्द्र)
धर्म०शा० इति०	धर्मशास्त्र का इतिहास (पी०वी० काणे)
प०च०	पज्जुण्णचरिउ (सिंह)
पोलिटिकल०	पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इंडिया फ्राम जैन सोर्सेज (डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी)
प्रा०भा०	प्राकृतभाषा (पी०वी० पण्डित)
प्रा०भा०	प्राचीन भारत (गंगाप्रसाद मेहता)
भा०आ०भा०हि०	भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी (सुनीतिकुमार चटर्जी)
भा०दि०जैन०ती०	भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ (पं० बलभद्र जैन)
भा०प्रा०जै०ती०	भारत के प्राचीन जैन तीर्थ (डॉ० जगदीशचन्द्र जैन)
भा०इति०	भारतीय इतिहास : एक दृष्टि (डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन)
भा०वा०शा०	भारतीय वास्तुशास्त्र
भी० पर्व	भीष्म पर्व (महाभारत)

म०पु०	महापुराण (पुष्पदन्त)
मा०	मानसार
मा०पु०	मार्कण्डेय पुराण
यशस्तिलक०	यशस्तिलकचम्पू (सोमदेव सूरि)
र०सा०आ०प०	रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन (डॉ० राजाराम जैन)
व०च०	वरांगचरित (जटासिंह नन्दी)
वन पर्व	वन पर्व (महाभारत)
वा०पु०	वामन पुराण
वी०सी० ला	विमलाचरण लाहा
शक्ति सं०त०	शक्तिसंगमतन्त्र
स०क०	सरस्वती कण्ठाभरण (भोजदेव)
सभा पर्व	सभा पर्व (महाभारत)
सरकार ज्योग्राफी	दिनेशचन्द्र सरकार : ज्योग्राफी ऑफ ऐंशियेंट एण्ड मिडिवल इंडिया
स०सि०	सर्वार्थसिद्धि
सम०क०	समराइच्चकहा
सि०हे० व्या०	सिद्धहेम व्याकरण
स्क०पु०	स्कन्दपुराण
हर्षच०	हर्षचरित
हि०गा०स०	हिन्दी गाथा सप्तशती (जगन्नाथ पाठक)
हि०ज्यो०आ०ऐ०इं०	हिस्टोरिकल ज्योग्राफी ऑफ ऐंशियेंट इंडिया : (बी०सी०एल०)
हि०सा०वृ०इति०	हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्र०भा०), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
हे०प्रा० व्या०	हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण (पूना संस्करण)

विषय-सूची (प्रस्तावना)

1. अप्रकाशित पज्जुण्णचरिउ की हस्तलिखित प्रतियों का परिचय 8
 अ. प्रति परिचय, अ. प्रति की विशेषताएँ 10
 ब. प्रति परिचय, ब. प्रति की विशेषताएँ 10
2. ग्रन्थ-परिचय 11
3. रचना-काल-निर्णय 12
4. मूल प्रणेता कौन? 13
5. मूल ग्रन्थकार परिचय 14
6. ग्रन्थ-रचना-स्थल 15
7. मूल ग्रन्थकार-निवासस्थल 15
8. गुरु-परम्परा एवं काल 15
9. समकालीन शासक 16
10. ग्रन्थोद्धारक महाकवि सिंह 18
11. अपभ्रंश-साहित्य की प्रवृत्तियाँ 19
 1. प्रबन्ध-काव्य, 2. आध्यात्मिक-काव्य, 3. रोमाण्टिक काव्य, 4. बौद्ध-दोहा गान एवं चर्यापद, शौर्य-वीर्य एवं प्रणय सम्बन्धी मुक्तक काव्य,
12. अपभ्रंश काव्यों की हिन्दी-काव्यों को देन 23
 (1) कडवक-शैली, (2) अपभ्रंश की दूहा-पद्धति का हिन्दी-साहित्य में दोहा-पद्धति के रूप में विकास, (3) सन्धि-पद्धति, (4) हिन्दी के रासा-साहित्य की प्रेरणा का प्रमुख स्रोत, (5) अपभ्रंश के समान हिन्दी में भी "काव्य" के स्थान पर "चरित" शब्द का प्रयोग, (6) अपभ्रंश की प्रेम-कथाओं का हिन्दी-साहित्य में प्रेमाख्यानक-काव्यों के रूप में विकास, (7) अपभ्रंश-गीतिकाव्यों का हिन्दी-गीतिकाव्यों पर प्रभाव, (8) अपभ्रंश के अन्त्यानुप्रास की धारा का हिन्दी-साहित्य में प्रवाह, (9) गीतों में नाम-संयोजन की पद्धति, (10) अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग बहुल, (11) अपभ्रंश की शब्दावलि का हिन्दी-कवियों में प्राय: यथावत् प्रयोग, (12) वर्णन-प्रसंगों का प्रभाव, (13) हिन्दी की रीतिकालीन साहित्य शैलियों पर प्रभाव, (14) अपभ्रंश-गद्य का हिन्दी-गद्य पर प्रभाव, (15) हिन्दी-महाकाव्यों के शिल्प और स्थापत्य के मूल-स्रोत अपभ्रंश महाकाव्यों में उपलब्ध, (16) कथानक रूढ़ियाँ
13. पज्जुण्णचरिउ :
 (1) स्रोत, परम्परा एवं विकास 29
 (2) विषयवस्तु 31
 (3) पज्जुण्णचरिउ एवं अन्य प्रद्युम्न-चरितों में विवेचित प्रद्युम्न-चरित के साम्य-वैषम्य का संक्षिप्त तुलनात्मक मानचित्र (दृष्टव्य-परिशिष्ट सं० 1) 39

(4) काव्यशास्त्रीय-अध्ययन 39

(1) महाकाव्यत्व, (2) वस्तु-व्यापार वर्णन, (3) रस, (4) अलंकार, (5) बिम्ब, (6) छन्द, (7) भाषा, (8) शैली, (9) चरित्र-चित्रण एवं (10) सूक्तियाँ, कहावतें एवं मुहावरे

(5) महाकवि सिंह तथा अन्य कवि : आदान-प्रदान

(1) अश्वघोष, (2) कालिदास, (3) भारवि, (4) माघ, (5) महासेन, (6) जायसी, (7) सधारु 70

(6) भौगोलिक-सन्दर्भ

अ. प्राकृतिक भूगोल 75

(1) द्वीप एवं क्षेत्र, (2) पर्वत, (3) नदी, (4) अरण्य एवं वृक्षों, पुष्पवृक्ष, फलवृक्ष, उभयवृक्ष, शोभावृक्ष, अन्य वृक्ष एवं पौधे, कल्पवृक्ष, (5) अनाज एवं तिलहन, (6) पशु, पक्षी एवं जीव-जन्तु

आ. राजनैतिक भूगोल 82

देश, नगर, ग्राम, मडंब, खेड, दरि, कव्वड, पत्तन

(7) सामाजिक चित्रण

(अ) वर्ण व्यवस्था, (आ) संस्कार, (इ) नारी 94

(8) राजनैतिक सन्दर्भ

(क) शासक भेद, (ख) राज्य के प्रमुख अंग, (ग) कवि का सैन्य-प्रकार एवं युद्ध-विद्या सम्बन्धी ज्ञान 104

(9) आजीविका के साधन

(1) कृषि एवं अन्य उत्पादन, (2) वाणिज्य, (3) लघु उद्योग-धन्धे, (4) खनिज-पदार्थ, (5) क्रय-विक्रय का माध्यम, (6) राज्य-कर 107

(10) सांस्कृतिक सामग्री

(क) मनोरंजन-संगीत, उत्सव, क्रीड़ाएँ एवं गोष्ठियाँ (ख) भोजन-पान, (ग) जैन-दर्शन, सिद्धान्त, आचार, योग, अध्यात्म एवं जैनेतर-दर्शन तथा आचार और अन्य पूर्व ग्रन्थों के उल्लेख (घ) भवान्तर अथवा पुनर्जन्म-वर्णन, (ङ) अन्ध-विश्वास और लोकाचार 110

उपसंहार 112

समीक्षात्मक प्रस्तावना

1. अप्रकाशित पज्जुण्णचरिउ की हस्तलिखित उपलब्ध प्रतियों का परिचय

पज्जुण्णचरिउ (प्रद्युम्नचरित) अद्यावधि अप्रकाशित ग्रन्थ है, जिसके सम्पादन एवं समीक्षात्मक अध्ययन में प्राच्य शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध निम्न हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए उन्हें अ एवं ब, जैसे सांकेतिक नाम प्रदान किए गए हैं। उन प्रतियों का परिचय इस प्रकार है—

अ. प्रति — यह प्रति आमेर शास्त्र-भंडार, जयपुर (राजस्थान) में सुरक्षित है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

ॐ ।। स्वस्ति।। श्री जिनाय नमः।। खमदमजमणिलयहो तिहुअण तिलयहो वियलिय कम्मकलंकहो। थुइ करमि सलुत्तिए अइणिरुभतिए हरिकुलगयणससंकहो।। छ।।

पणवेप्पिणु णेमिजिणेसरहो भव्वयणकमलसरणेसरहो। भवतरु उम्मूलणवारणहो कुसुमसर पसरवि णिवारणहो।।

........इत्यादि। तथा उसका अन्त निम्न प्रकार हुआ है:—

जं किं पि हीण अहियं विउसासोहंतु तंपि इय कव्वो। धिट्ठत्तणेण रइयं खमंतु सव्वे वि मह गुरुणो।। प्रद्युम्नचरित्रं समाप्तमिति।।

संवत् 1553 वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्णमास्यां तिथौ, बुधवासरे शतिभिषनक्षत्रे वरियाननाम्नियोगे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे। कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेव तत्पट्टे भट्टारक श्रीशुभचन्द्रदेवस्तत्पट्टे भट्टारक श्रीजिनचन्द्रदेव आचार्य श्रीकीर्तिदेव तत्शिष्य ब्रह्मचारि लाखा देव गुरु भक्तवत्। गोत्र चोरमंडण सवाई राजा तस्य भार्या फेदी तस्य पुत्र साहमइलू तस्यभार्या पूरी तस्य पुत्र साह नाथू हम्फराज। सुय ताल्हण श्रेष्ठिपुत्र तस्य भार्या अणभूशास्त्रपरदक्षन (प्रद्युम्न) 11 व्रतदशलाक्षणकौ, 11 ब्रह्मचारि लाखाहै कर्मक्षयनिमित्तघटायौ। रत्ननंदि[illegible] शुभं भवतु ।।श्री।। श्रीकृष्णदास लिखितं।। श्रियार्थे।।

उक्त प्रति में कुल पत्र संख्या 101 (+1) है। इस प्रति के पृष्ठों में पंक्ति संख्या का क्रम सुनिश्चित नहीं है। किसी में 12 पंक्तियाँ हैं (यथा पृ० 101), तो किसी में 16 पंक्तियाँ (यथा पृ०87) और किसी में 15 पंक्तियाँ (यथा पृ०1)। इसी प्रकार प्रति पंक्ति में वर्णों की संख्या भी अनिश्चित है। किसी पंक्ति में 28 वर्ण हैं तो किसी में 33। पत्र संख्या ग्रन्थारम्भ वाले पृष्ठ से प्रारम्भ होती है। प्रथम पत्र के पीछे वाला पृष्ठ अलिखित है किन्तु उस पर "प्रद्युम्नचरित" लिखा हुआ है। इसके हाँशियों का क्रम भी अनिश्चित है। प्रथम पृष्ठ का बायाँ हाँशिया 1" तथा दायाँ हाँशिया 1.2", ऊपरला हाँशिया 1.3" तथा निचला 1.3" है। यही क्रम बदल कर पृ०सं० 56 के हाँशिये 1.5" (बायां), 1" (दायां), 2" (ऊपरला) तथा 1.1" (निचला) है। दाएँ एवं बाएँ हाँशिये कलाविहीन 2-2 दुहेरी पंक्तियाँ खींचकर काली-स्याही से बनाये गये हैं।

इस प्रति का कागज मटमैला है। बरसाती नमी के प्रभाव से इसका कागज गलित हो रहा है। पृष्ठों के किनारे क्षीण हो रहे हैं। सब कुल मिला कर इस प्रति की दशा जीर्ण-शीर्ण कही जा सकती है।

इस प्रति में सर्वत्र काली स्याही का प्रयोग किया गया है। लेखन में मोटी कलम का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ की सन्धि-समाप्ति-सूचना, घत्ता, छन्द नाम एवं छन्द संख्या लाल रंग से रंगे हुए हैं। हाँ, पत्र संख्या 101 के दाएँ-बाएँ हाँशियों पर लाल स्याही के ऊपर-नीचे दो बाणावलियों से संयुक्त 1-1 शून्य अंकित किया है।

प्रतिलिपि के समय यदि गलती से मूल विषय में कोई वर्ण, शब्द, पद अथवा चरण या पंक्ति लिखने से छूट गयी है तो प्रतिलिपिकार ने उसी पृष्ठ के किसी हाँशिए में पंक्ति संख्या तथा एक सांकेतिक चिह्न देकर अंकित कर दिया है।

इस प्रति के लिपिक श्रीकृष्णदास हैं, जिन्होंने किसी ब्रह्मचारी लाखा की प्रतिलिपि के आधार पर इसकी प्रतिलिपि वि०सं० 1553 के भाद्रपद मास की पूर्णमासी, बुधवार को की थी। प्रतिलिपिकार ने अपना स्वयं का परिचय नहीं दिया है, किन्तु ब्रह्मचारी लाखा के संक्षिप्त-परिचय के क्रम में कुछ भट्टारकों एवं प्रतिलिपि के लेखन-कार्य में प्रेरक एक परिवार की चर्चा की है। उनके अनुसार ब्रह्मचारी लाखा, मूलसंघ, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ एवं कुन्दकुन्दाचार्य के आम्नाय के पालक भट्टारक श्रीकीर्तिदेव के शिष्य थे। भट्टारक श्रीकीर्तिदेव की परम्परा निम्नप्रकार है—

पद्मनन्दिदेव
शुभचन्द्रदेव (वि सं० 1450-1507)
जिनचन्द्रदेव (वि०सं० 1507-1571)
आचार्य श्रीकीर्तिदेव
ब्रह्मचारी लाखादेव

लिपिकार-प्रशस्ति में उक्त भट्टारक-परम्परा के विषय में विशेष परिचय नहीं मिलता। पट्टावलियों, मूर्त्तिलेखों एवं प्रशस्तियों[1] में उक्त पद्मनन्दि देव, शुभचन्द्रदेव एवं जिनचन्द्रदेव के नाम तो मिलते हैं, किन्तु आचार्य श्रीकीर्तिदेव तथा उनके शिष्य लाखादेव के नाम उस परम्परा में उल्लिखित नहीं हैं।

नीतिवाक्यामृत[2] की एक प्रशस्ति में भ० जिनचन्द्र के शिष्य रत्नकीर्ति का उल्लेख है। बहुत सम्भव है कि उक्त नाम में से रत्न शब्द किसी कारणवश त्रुटित हो जाने के कारण वह कीर्तिदेव के नाम से उल्लिखित हो गया हो। उक्त रत्नकीर्तिदेव अथवा कीर्तिदेव के शिष्य ब्रह्मचारी लाखा भट्टारक नहीं, एक सामान्य ब्रह्मचारी रहे होंगे। अत: पट्टावलि में उनके नाम का नहीं मिलना स्वाभाविक है।

ब्रह्मचारी लाखा को उक्त ग्रन्थ की प्रतिलिपि की प्रेरणा सम्भवत: अणभू नाम की महिला से प्राप्त हुई थी। शाह एवं राजा जैसे विशेषण देखकर ऐसा लगता है कि उनका परिवार सम्भवत: राजन्य वर्ग का था। अणभू ने अपने दशलक्षणव्रत के उद्यापन की स्मृति में इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराई थी। उसकी कुल परम्परा निम्न प्रकार है:—

राजा (पत्नी फोदी)
|
शाह महलू (पत्नी – पूरी)
|
शाह नाथू — हम्फराज
|
ताल्हण (पत्नी-अणभू)

1. दे० भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० 99-100, लेखांक 253. 2. वही०, पृ० 102, लेखांक 258

अ. प्रति की विशेषताएँ

(1) यह प्रति अद्यावधि प०च० की प्रतियों में प्राचीन एवं पूर्ण है।

(2) इसमें व एवं च, म एवं स, झ एवं त्र (त्र) य एवं प, छ एवं ठ, क्ख एवं रक वर्णों में समानता जैसी रहती है। अत: प्रति का अध्ययन सावधानीपूर्वक करने की आवश्यकता है।

(3) ह्रस्व औ को उं के रूप में दर्शाया गया है।

(4) कहीं-कहीं ख के लिए ष का प्रयोग किया गया है।

(5) 'ण' के स्थान पर प्राय: 'न' का प्रयोग किया गया है।

(6) कहीं-कहीं पर कठिन शब्दों के संस्कृत पर्यायवाची शब्द अथवा उनके अर्थ भी मूल पंक्ति संख्या देकर हाँशियों में अंकित कर दिये गये हैं।

ब. प्रति

ब प्रति श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन, नसियाँ जी, ब्यावर (राजस्थान) में सुरक्षित है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है— ।। ओं नम: सिद्धेभ्य: ।। खमदमजमणिलयहो तिहुअणलिलयहो वियलियकम्म कलंकहो...... आदि।

इस प्रति में कुल पत्र संख्या 124 है। पृष्ठ के बायें एवं दायें हाँशिये क्रमश: 1.3, 1.5 इंच तथा ऊपरी एवं नीचे के हाँशिये क्रमश 1.1, 1.1 इंच के हैं। दाएँ-बाएँ हाँशियों में लाल स्याही से मोटी 3-3 रेखायें अंकित हैं। इनके दोनों किनारों पर भी मोटी 1-1 पंक्ति अंकित है।

प्रत्येक पृष्ठ में 11-11 पंक्तियाँ एवं 41-41 वर्ण हैं। इस प्रति में गहरी काली एवं लाल स्याही का प्रयोग किया गया है। मूल विषय काली स्याही में तथा छन्द-नाम, छन्द-संख्या तथा विराम-चिह्न लाल स्याही में अंकित हैं। सर्वत्र मोटी कलम का प्रयोग किया गया है। हाँ, हाँशिये में लिखित टिप्पणियों में पतली कलम का प्रयोग किया गया है। इसमें मटमैले कागज का प्रयोग किया गया है। प्रति की स्थिति उत्तम है। लेखन-प्रक्रिया की स्पष्टता, सुन्दरता, एकरूपता, एवं शुद्ध पाठों तथा क्वचित् कदाचित् संस्कृत टिप्पणियों को देखकर प्रतिलिपिकार की अगाध विद्वत्ता एवं समर्पित सरस्वती-भक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रत्येक पृष्ठ के ठीक मध्य भाग में 1.5, 1.7 इंच का अण्डाकार-आकृति का स्थान छोड़ा गया है। सम्भवत: यह स्थान आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा की दृष्टि से पत्रों को छेद कर उन्हें एक सूत्र में पिरोकर रखने की दृष्टि से छोड़ा गया होगा।

इस प्रति की शुद्धता, पूर्णता और सन्तोषजनक दशा में होने के कारण, इसी प्रति का अनुवाद तथा सम्पादनादि कार्य में उपयोग किया गया है।

ब. प्रति की विशेषताएँ

(1) वर्ण-प्रयोग—प्रस्तुत प्रति के निम्न वर्ण पाठकों को कुछ भ्रामक प्रतीत हो सकते हैं। अत: उन्हें सावधानीपूर्वक पढ़ना चाहिए। यथा—

स-म, र-रा, दु-टु, ड-म, भि-ति, ठ-व, उ-नु, ग्न-ग्ग, तु-नु

(2) ण्ण एवं ज्झ को दर्शित करने के लिए उसी एकल वर्ण के मध्य में एक तिरछी रेखा अंकित की गयी है।

(3) प्रमाद या असावधानी से छूटे हुए पदों को हाशियों में अंकित किया गया है एवं उसके साथ मूल पृष्ठ की पंक्ति संख्या दे दी गयी है।

(4) कहीं-कहीं पर कठिन शब्दों के संस्कृत पर्यायवाची शब्द अथवा उनके अर्थ भी मूल पंक्ति संख्या देकर हाँशियों में अंकित कर दिये हैं।

(5) इस प्रति के किसी-किसी हाँशिये में किसी-किसी वर्ण के स्थान पर अन्य वर्ण के होने का भी संकेत दिया गया है, जिसे फुट नोटों में यथा स्थान दर्शाया गया है।

2. ग्रन्थ-परिचय

पज्जुण्णचरिउ प्रद्युम्नचरित सम्बन्धी अपभ्रंश-भाषा में लिखित सर्वप्रथम स्वतन्त्र महाकाव्य है। वह जैन-परम्परानुमोदित महाभारत का एक अत्यन्त मर्म-स्पर्शी आख्यान है। महाकवि जिनसेन (प्रथम) कृत हरिवंशपुराण एवं गुणभद्र कृत उत्तरपुराण जैसे पौराणिक महाकाव्यों से कथा-सूत्रों को ग्रहण कर महाकवि सिद्ध ने उसे नवीन भाषा एवं शैली से सजा कर एक आदर्श मौलिक स्वरूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। जैन-परम्परानुसार प्रद्युम्न 21वां कामदेव था।[1] वह पूर्व-जन्म के कर्मों के फलानुसार सं० श्रीकृष्ण का पुत्र होकर भी जन्म-काल से ही अपहृत होकर विविध कष्टों को झेलता रहता है। माता-पिता का विरह, अपरिचित-परिवार में भरण-पोषण, सौतेले भाइयों से संघर्ष, दुर्भाग्यवश धर्म-पिता से भी भीषण-युद्ध, विमाता के विविध षडयन्त्र और अनजाने ही पिता श्रीकृष्ण से युद्ध जैसे घोर-संघर्षों के बीच प्रद्युम्न के विवश-जीवन को पाठकों की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त होती है। विविध विपत्तियाँ प्रद्युम्न के स्वर्णिम भविष्य के लिए खरी-कसौटी सिद्ध होती हैं। काल-लब्धि के साथ ही उसके कष्ट समाप्त होते हैं। माता-पिता से उसका मिलाप होता है तथा वह एक विशाल साम्राज्य का सम्राट बन जाता है किन्तु भौतिक सुख उसे अपने रंग में नहीं रंग पाते। शीघ्र ही वह उनसे विरक्त होकर मोक्ष-लाभ करता है।

कवि ने उक्त कथानक को 15 सन्धियों एवं उनके कुल 308 कड़वकों में चित्रित किया है, जो निम्न प्रकार हैं:—

सन्धि-क्रम	कुल कड़वक संख्या	विषय
1	16	कवि सिद्ध द्वारा स्वप्न में सरस्वती-दर्शन एवं उनकी प्रेरणा से ग्रन्थ-प्रणयन तथा सौराष्ट्र-देश की सुरम्यता का वर्णन।
2	20	कृष्ण और बलभद्र का कुण्डिनपुर जाकर रुक्मिणी-हरण तथा शिशुपाल-वध।
3	14	रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न का जन्म एवं धूमकेतु-असुर द्वारा उसका हरण।
4	17	पुत्र-हरण एवं तत्सम्बन्धी शोक, नारद का प्रद्युम्न की खोज में सीमन्धर स्वामी के समवशरण में पहुँचना एवं उनके द्वारा प्रद्युम्न के पूर्व-बैर की कथा का आरम्भ।
5	17	प्रद्युम्न का पूर्व-भव निरूपण एवं मगध देश का वर्णन।
6	23	प्रद्युम्न का पूर्व-भव-निरूपण एवं उस माध्यम से अयोध्या एवं कौशल-नरेशों का

1. तिलोयपण्णत्ती० गाथा 1484।

		सौन्दर्य-वर्णन एवं बल-निरूपण।
7	18	नारद का रुक्मिणी को सन्देश देना कि प्रद्युम्न का मेघकूटपुर के राजा के यहाँ लालन-पालन हो रहा है तथा वह 16 वर्ष पूर्ण होने पर वापिस आयेगा।
8	19	कुमार प्रद्युम्न को सोलह-विद्याओं का लाभ।
9	24	कुमार प्रद्युम्न और राजा कालसंवर का परस्पर में भीषण युद्ध एवं नारद द्वारा युद्ध को रोकना।
10	21	नारद के साथ कुमार प्रद्युम्न का द्वारकापुरी के लिए प्रयाण एवं मार्ग में दुर्योधन की पुत्री उदधिकुमारी से भेंट तथा प्रद्युम्न का अनेक रूप धारण कर कौतुक करना एवं सत्यभामा के पुत्र—भानु का मान-भंग करना।
11	23	अनेक प्रकार के क्रिया-कलाप करते हुए प्रद्युम्न का अपने पितामह के साथ मेष युद्ध, तत्पश्चात् क्षुल्लक-वेश में अपनी माता रुक्मिणी के पास पहुँचना।
12	28	प्रद्युम्न का विविध रूप बनाकर द्वारकावासी नर-नारियों को परेशान करना एवं बलभद्र के साथ सिंह-वेश में युद्ध करना।
13	17	प्रद्युम्न का कृष्ण के साथ भीषण युद्ध, बाद में नारद द्वारा युद्ध बन्द कराकर पिता-पुत्र का मिलन करवाना।
14	24	प्रद्युम्न एवं भानु-विवाह, शम्बु-जन्म, सुभानु-जन्म एवं उसका विवाह और शम्बु के विवाह के लिए कुण्डिनपुर के राजा रूपकुमार से युद्ध।
15	28	राजा रूपकुमार पर विजय प्राप्त कर उनकी पुत्रियों से प्रद्युम्न एवं शम्बु का विवाह। तीर्थंकर नेमिनाथ द्वारा द्वारका-विनाश एवं जरदकुमार के द्वारा श्रीकृष्ण की मृत्यु की भविष्यवाणी तथा शम्बु, भानु, अनिरुद्ध, सत्यभामा, रुक्मिणी आदि का तपश्चरण एवं स्वर्ग-प्राप्ति तथा प्रद्युम्न का मोक्षगमन।

3. रचना-काल-निर्णय

पज्जुण्णचरिउ में कवि के जन्म-काल या लेखन-काल के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। जहाँ तक हमारा अध्ययन है, परवर्त्ती अन्य कवियों ने भी उसका स्मरण नहीं किया। अत: उसके जन्म या लेखन काल विषयक विचार करने के लिये निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सके हैं। किन्तु कवि ने अपनी प्रशस्ति में अपने भट्टारक-गुरु एवं कुछ राजाओं के उल्लेख अवश्य किये हैं जिनसे विदित होता है कि उसका समय **12वीं-13वीं** सदी रहा होगा। इसके समर्थन में निम्न तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

(1) पज्जुण्णचरिउ की प्राचीनतम प्रतिलिपि आमेर शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित है, जिसका प्रतिलिपि काल वि०सं० 1553 है। अत: प०च० की रचना इसके पूर्व हो चुकी थी।

(2) कवि ने गज्जणदेश अर्थात् गजनी का उल्लेख किया है। यह ध्यातव्य है कि महमूद गजनवी ने भारत में जिस प्रकार भयानक आक्रमण किए थे तथा सोमनाथ में जो विनाश-लीला मचाई थी, भारत और विशेष रूप से गुजरात उसे कभी भुला नहीं सकता। परवर्त्ती कालों में गजनी की उस विनाश-लीला की चर्चा इतनी अधिक रही कि कवि ने भावाभिभूत होकर अन्योक्तियों के माध्यम से अथवा प्रद्युम्न एवं भानुकर्ण, प्रद्युम्न एवं

कृष्ण आदि के माध्यम से उसकी झलक पज्जुण्णचरिउ में प्रदर्शित की है। युद्ध में प्रयुक्त कुछ शस्त्रोपकरणों के उल्लेखों में भी उसके साथ समानता है। उक्त महमूद गजनवी का समय वि०सं० 1142 के आसपास है।

(3) कवि ने अर्णोराज, बल्लाल एवं भुल्लण जैसे शासकों के नामोल्लेख किए हैं। बड़नगर की वि०सं० 1207 की एक प्रशस्ति के अनुसार कुमारपाल ने अपने राजमहल के द्वार पर उक्त मृत बल्लाल का कटा मस्तक लटका दिया था। कुमारपाल का समय वि०सं० 1143 से 1173 के मध्य है।

अत: उक्त तथ्यों के आधार पर पज्जुण्णचरिउ का रचनाकाल 12वीं सदी का अन्तिम चरण या 13वीं सदी (विक्रमी) का प्रारम्भिक चरण सिद्ध होता है।

4. मूल प्रणेता कौन?

पज्जुण्णचरिउ की आद्य-प्रशस्ति से स्पष्ट विदित होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ का मूलकर्त्ता महाकवि सिद्ध है किन्तु प०च० की अन्त्य-प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि किन्हीं प्राकृतिक उपद्रवों के कारण वह रचना विनष्ट अर्थात् गलित हो चुकी थी। अत: अपने गुरु मलधारी देव अमृतचन्द्र के आदेश से महाकवि सिंह ने उसका छायाश्रित उद्धार किया था।[1]

उद्धारक महाकविसिंह ने अन्त्य-प्रशस्ति में स्वयं लिखा है—"एक दिन गुरु (मलधारीदेव अमृतचन्द्र) ने कहा—"हे छप्पय-कविराज (अर्थात् षट्पदियों के प्रणयन में दक्ष हे कविराज), हे बाल-सरस्वती, हे गुणसागर, हे दक्ष, हे वत्स, कवि सिंह, साहित्यिक-विनोद के बिना ही अपने दिन क्यों बिता रहे हो? अब तुम मेरे आदेश से चतुर्विध-पुरुषार्थ-रूपी रस से भरे हुए, कवि सिद्ध द्वारा विरचित, किन्तु दुर्दैव से विनष्ट हुए उसके (सिद्ध कवि के) इस "पज्जुण्णचरिउ" का निर्वाह करो। क्योंकि तुम गुणज्ञ एवं सन्त हो। तुम ही उस विनष्ट ग्रन्थ का छायाश्रित निर्माण कर सकते हो।" उक्त कथन से यह स्पष्ट है कि पज्जुण्णचरिउ की कवि सिद्ध-कृत रचना पूर्णतया नष्ट तो नहीं, किन्तु कुछ विगलित अवश्य हो चुकी थी तथा उसी रूप में भट्टारक अमृतचन्द्र को उपलपब्ध हुई थी। अत: उसके उद्धार के लिए ही उक्त भट्टारक द्वारा कवि सिंह को आदेश दिया गया था। वर्तमान में उपलब्ध पज्जुण्णचरिउ सिंह कवि-कृत पूर्वोक्त छायाश्रित रूप है।

कवि सिंह ने पज्जुण्णचरिउ के उद्धार-प्रसंगों में यद्यपि 'करहि' (15/29/19), विरयहि (15, 29, 27), णिम्मविय (15, 29, 33), रइयं (15, 29, 35) जैसे शब्दों के प्रयोग किए हैं, किन्तु कवि के ऐसे शब्द-प्रयोग भी उद्धार के प्रासंगिक अर्थों में ही लेना चाहिए, क्योंकि सिंह कवि के गुरु ने स्वयं ही उसे विनष्ट प०च० के निर्वाह (णिव्वाहहि, 15, 29, 17) का आदेश दिया था तभी सिंह नेभी उसे उद्धरियं (15, 29, 29) कहकर उसके उद्धार की स्पष्ट सूचना दी है।

अब पुन: प्रश्न यह उठता है कि सिद्ध कृत प०च० क्या समूल नष्ट हो गया था या आंशिक रूप में? उपलब्ध प्रतियों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यद्यपि समग्र ग्रन्थ का प्रणयन तो सिद्ध कवि ने ही किया था, किन्तु किन्हीं अज्ञात प्राकृतिक उपद्रवों के कारण वह विनष्ट अथवा विगलित हो चुका था। सन्धियों के अन्त में उपलब्ध पुष्पिकाओं से विदित होता है कि प्रथम 8 सन्धियाँ तो विगलित होने पर भी पठनीय रही होंगी, क्योंकि उनमें कवि सिद्ध का नाम उपलब्ध होता है। अत: उन्हें सिद्धकृत बताया गया है।[2] किन्तु उसके बाद के अंश या तो सर्वथा नष्ट हो चुके थे अथवा गल कर अपठनीय हो चुके थे। बहुत सम्भव है कि उन अंशों में क्वचित् कदाचित्

---

1. दे० पज्जुण्णचरिउ 15/29/37। 2. दे० इसी शोध-प्रबन्ध के मूल भाग की सन्धि 1 से सन्धि 8 तक की अन्त्य पुष्पिकाएँ।

कोई-कोई चरण, पद, शब्द अथवा केवल वर्ण ही दृश्यमान रह गये हों और सिंह कवि ने गुरु के आदेश से कहीं तो उनकी धूमिल छाया या आनुमानित छाया के आधार पर अवशिष्टांशों का पल्लवन और कहीं-कहीं त्रुटित अंशों की प्रसंगवश मौलिक रचना कर उस कृति को सम्पूर्ण किया था। यदि ऐसा न होता तो सिंह कवि यह न लिखते कि— **जं किं पि हीण-अहियं विउसा सोहंतु तं पि इय कव्वो।**

f/kVBUk.ksk jb;a [keaq 1Oba fi egq x&.kkA —*15/29/34-35*

अर्थात् पज्जुण्णचरिउ काव्य में मैंने यदि धृष्टतापूर्वक हीन अथवा अधिक (अंशों की) रचना कर दी हो तो मेरी उन समस्त त्रुटियों का विद्वज्जन (आवश्यक) संशोधन कर लें तथा मेरे गुरुजन मेरी समस्त त्रुटियों को क्षमा करें।

9वीं सन्धि से 15वीं सन्धि तक की अन्त्य पुष्पिकाओं में सिंह कवि का ही उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सिंह कवि ने उक्त अन्तिम 7 सन्धियों का पूर्ण रूप में उद्धार अथवा प्रणयन किया था।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि प०च० का मूलकर्त्ता कवि सिद्ध था और उसका उद्धारक था महाकवि सिंह।

5. मूल ग्रन्थकार-परिचय

जैसा कि पिछले प्रकरण में लिखा जा चुका है, प०च० का मूल ग्रन्थकार महाकवि सिद्ध है। उसका विस्तृत परिचय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त एवं क्रमबद्ध सामग्री का अभाव है। प०च० की आद्य-प्रशस्ति से यही विदित होता है कि उसकी माता का नाम पम्पाइय तथा पिता का नाम देवण[1] था। उक्त प्रशस्ति से ही विदित होता है कि महाकवि सिद्ध सरस्वती का परम भक्त था। बहुत सम्भव है कि उसे वह सरस्वती सिद्ध हो, क्योंकि उसने लिखा है कि—"एक दिन जब वह चोरों के भय से आतंकित हो कर रात्रि-जागरण कर रहा था, तभी उसे अन्तिम प्रहर में निद्रा आ गई। उसी समय स्वप्न में उसने श्वेत वस्त्र धारण किए हुए, हाथों में कमल पुष्प तथा अक्षसूत्र ग्रहण किए हुए एक मनोहारी महिला को देखा। उसने कहा—हे सिद्ध (कवि), अपने मन में क्या-क्या विचार किया करते हो? तब सिद्ध कवि ने अपने मन में कम्पित होते हुए कहा—'काव्य-बुद्धि को प्राप्त करने की इच्छा करता हूँ, किन्तु लज्जित बना रहता हूँ क्योंकि मैं तर्कशास्त्र, छन्दशास्त्र एवं लक्षणशास्त्र के ज्ञान से रहित हूँ। न तो मैं समास एवं कारक जानता हूँ और न सन्धि-सूत्र के ग्रन्थों के सारभूत-अर्थों को जानता हूँ। किसी भी काव्य को देखा तक नहीं। मुझे कभी किसी ने निघण्टु तक नहीं पढ़ाया। इसी कारण मैं चिन्तित बना रहता हूँ। किन्तु (साहित्य-शास्त्र में) बौना होने पर भी साहित्य-शास्त्र रूपी ताल-वृक्ष को पा लेने की अभिलाषा है। (साहित्य-शास्त्र में) अन्धा होने पर भी नित्य नवीन काव्य-रूपी वस्तु देखने की इच्छा किया करता हूँ। बधिर होने पर भी साहित्य-शास्त्र रूपी संगीत के सुनने की आकांक्षा किया करता हूँ। मेरी यह प्रार्थना सुन कर वह श्रुतधारिणी सरस्वती बोली—हे सिद्ध, अपने मन से आलस्य छोड़ो। मेरे आदेशों को दृढ़तापूर्वक पालो, मैं (शीघ्र ही) तुझे मुनिवर के वेश में आ कर कोई काव्य-विशेष करने को कहूँगी, तब तुम उसकी रचना करना।[2]

"तत्पश्चात् महान् तपस्वी मलधारी देव मुनि-पुंगव माधवचन्द्र के शिष्य अमयचन्द्र भट्टारक विहार करते-करते बम्हडवाइपट्टन[3] पधारे और वहीं पर उन्होंने मुझे (सिद्ध कवि को) 'पज्जुण्णचरिउ' के प्रणयन का आदेश दिया।[4] इससे यह सिद्ध है कि कवि सरस्वती का परमोपासक था। इसके अतिरिक्त प०च० में अष्टद्रव्यपूजा के प्रसंग में कवि ने जल, चन्दन के पश्चात् पुष्प एवं अक्षत का क्रम रखा है।[5] इससे यह निश्चित है कि कवि

---

1. प०च०, 1/6/1 2. वही०, 1/3/9-10 3. वही०, 1/4/6-8 4. वही० 3/5/4 5. वही० 15/7/1-7

भट्टारकीय-परम्परा का श्रद्धालु भक्त था।

6. ग्रन्थ-रचना-स्थल

कवि ने यह स्पष्ट ही लिखा है कि भट्टारक अमियचन्द (अमृतचन्द्र) ने उन्हें बम्हडवाडपट्टन में प०च० के प्रणयन का आदेश दिया था। इससे यह विदित होता है कि कवि सिद्ध ने उसकी रचना वहीं बैठ कर की होगी। प०च० के अनुसार बम्हडवाडपट्टन विविध जैन-मठों, विहारों एवं रमणीक जिन-भवनों से सुशोभित था। वह सौराष्ट्र देश में स्थित था। बम्हडवाड की अवस्थिति, जलवायु तथा वहाँ के निवासियों की सुरुचि-सम्पन्नता ने उस भूमि को सम्भवत: साधना-स्थली बना दिया था। इन्हीं कारणों से आचार्य, लेखक और कवि वहाँ प्राय: आते-जाते बने रहते होंगे। लगता है कि महाकवि सिद्ध भी उसी क्रम में भ्रमण करते-करते वहाँ आये होंगे और संयोगवश उसी समय जब उक्त अमृतचन्द्र भट्टारक भी विहार करते हुए वहाँ पधारे तब वहाँ भेंट होते ही भट्टारक के आदेश से उन्होंने प्रस्तुत प०च० की रचना की थी।

7. मूल ग्रन्थकार — निवास-स्थल

यह कहना कठिन है कि कवि सिद्ध कहाँ के निवासी थे। कवि ने स्वयं ही उसकी कोई चर्चा नहीं की और न उसने अपने कुल-गोत्र या अन्य विषयक ऐसी कोई चर्चा ही की है कि उससे भी कुछ जानकारी मिल सके। किन्तु उनके माता-पिता के नामों की शैली देख कर यह अवश्य प्रतीत होता है कि वे दाक्षिणात्य थे तथा उनका निवास स्थल कर्नाटक में कहीं होना चाहिए। क्योंकि सिद्ध, पम्पा, देवण्ण आदि नाम कर्नाटक में ही प्राय: देखे जाते हैं। कवि ने अपनी उपाधि के रूप में मुनि, साधु, विरत अथवा तत्सम ऐसे किसी विशेषण का उल्लेख नहीं किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि वह गृहस्थ रहा होगा और ज्ञान-पिपासा की तृप्ति अथवा वृत्ति हेतु भ्रमण करता-करता बम्हडवाडपट्टन पहुँचा होगा। कवि ने दक्षिण के अनेक देशों एवं नगरों आदि के प्राय: उल्लेख किये हैं। इनसे भी यही प्रतिभासित होता है कि कवि दाक्षिणात्य अथवा कर्नाटक-प्रदेश का निवासी रहा होगा।

8. गुरु-परम्परा एवं काल

महाकवि सिद्ध ने लिखा है कि अमृतचन्द्र भट्टारक ने उसे प०च० के प्रणयन का आदेश दिया। इससे यह सिद्ध है कि अमृतचन्द्र भट्टारक ही कवि के काव्य-प्रणयन में प्रेरक गुरु थे। कवि ने उन्हें मलधारीदेव, मुनिपुंगव माधवचन्द्र का शिष्य कहा है किन्तु वे किस गण एवं गच्छ के थे, इसके विषय में कवि ने कोई सूचना नहीं दी।

माधवचन्द्र की 'मलधारी' उपाधि से यह प्रतीत होता है कि वे मूलसंघ कुन्दकुन्दान्वय की परम्परा के आचार्य रहे होंगे[1], जिनका समय 12वीं सदी के लगभग रहा है। किन्तु इनकी निश्चित परम्परा एवं काल की जानकारी के लिए निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

मलधारी माधवचन्द्र के विषय में कवि ने लिखा है कि वे मलधारीदेव माधवचन्द्र मुनिपुंगव मानों धर्म, उपशमवृत्ति एवं इन्द्रियजय की प्रत्यक्षमूर्त्ति थे। वे क्षमागुण, इच्छा-निरोध तथा यम-नियम से समृद्ध थे।[2] इस वर्णन से विदित होता है कि माधवचन्द्र घोर तपस्वी एवं साधक थे। सम्भवत: उन्होंने किसी ग्रन्थ का प्रणयन नहीं किया, अन्यथा कवि उसके विषय में संकेत अवश्य करता। उनके शिष्य अमृतचन्द्र भट्टारक के विषय में कवि ने लिखा है कि—"मलधारी देव माधवचन्द्र के शिष्य अमृतचन्द्र भट्टारक थे, जो तपरूपी तेज के दिवाकर, व्रत-तप, नियम एवं शील के रत्नाकर,

1. जैन शिलालेख संग्रह, भाग 2, भूमिका पृ० 51-55। 2. प०च०. 1/4/2।

तर्कशास्त्र रूपी लहरों से झंकृत, परम-श्रेष्ठ तथा व्याकरण के पाण्डित्य से अपने पद का विस्तार करने वाले थे। जिनकी इन्द्रिय-दमन रूपी वक्र-भृकुटि देखकर मदन भी आशंकित होकर प्रच्छन्न ही रहा करता था।[1] विद्वानों में श्रेष्ठ वे अमृतचन्द्र भट्टारक अपने शिष्यों के साथ-साथ नन्दन-वन से आच्छादित मठों, विहारों एवं जिन-भवनों से रमणीक बम्हडवाडपट्टन पधारे।"[2] कवि के इस वर्णन से यह तो विदित हो जाता है कि अमृतचन्द्र भट्टारक तपस्वी, साधक एवं विद्वान् थे किन्तु उनका क्या समय था, इसका पता नहीं चलता। कवि ने बम्हडवाडपट्टन के तत्कालीन शासक भुल्लण का उल्लेख अवश्य किया है[3], जो राजा अर्णोराज, राजा बल्लाल एवं सम्राट कुमारपाल का समकालीन था। उनका समय चूँकि वि०सं० 1199 से 1229 के मध्य सुनिश्चित है, अत: उसी आधार पर भट्टारक अमृतचन्द्र का समय भी वि०सं० की 12वीं सदी का अन्तिम चरण या 13वीं सदी का प्रारम्भ रहा होगा।

9. समकालीन शासक

महाकवि सिद्ध ने बल्लाल को 'शत्रुओं के सैन्य-दल को रौंद डालने वाला[4] तथा 'अर्णोराज के क्षय के लिए काल के समान[5] जैसे विशेषण प्रयुक्त किए हैं, जो बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। कवि का संकेत है कि अर्णोराज बड़ा ही बलशाली था। उस के शौर्य-वीर्य का पता इसी से चलता है कि कुमारपाल जैसे साधन-सम्पन्न एवं बलशाली राजा को उस पर आक्रमण करने के लिए पर्याप्त गम्भीर योजना बनानी पड़ी थी। लक्षग्रामों के अधिपति अर्णोराज ने सिद्धराज जयसिंह के विश्वस्त-पात्र उदयनपुत्र बाहड़ (अथवा चाहड़) जैसे एक कुशल योद्धा एवं गजचालक, वीर-पुरुष को कुमारपाल के विरुद्ध अपने पक्ष में मिला लिया था।[6] इसके साथ-साथ उसने अन्य अनेक राजाओं को भी धमकी दे कर अथवा प्रभाव दिखा कर अपने पक्ष में मिला लिया था।[7] मालव नरेश बल्लाल के साथ भी उसने सन्धि कर ली थी और कुमारपाल के विरुद्ध धावा बोल दिया था।[8] कुमारपाल उसकी शक्ति एवं कौशल से स्वयं ही घबराया हुआ रहता था। कवि सिद्ध को अर्णोराज की ये सभी घटनाएँ सम्भवत: ज्ञात थीं। किन्तु ऐसे महान् कुशल, वीर, लड़ाकू एवं साधन-सम्पन्न (चाहमान) राजा अर्णोराज के लिए भी राजा बल्लाल को "क्षय-काल के समान" बताया गया है। इससे यही ध्वनित होता है कि बल्लाल अर्णोराज से भी अधिक प्रतापी नरेश रहा होगा। यद्यपि उसने समस्वार्थ-विशेष के कारण किसी अवसर पर अर्णोराज के साथ राजनैतिक सन्धि कर ली थी। अर्णोराज एवं बल्लाल के बीच युद्ध होने के प्रमाण नहीं मिलते। अत: प्रतीत यही होता है कि अर्णोराज बल्लाल से भयभीत रहता होगा। इसीलिए कवि ने बल्लाल को अर्णोराज के लिए 'क्षयकाल के समान' कहा है।

कवि द्वारा बल्लाल के लिए प्रयुक्त "शत्रु-दल-सैन्य का मन्थन कर डालने वाला" विशेषण का अर्थ भी स्पष्ट है। बल्लाल की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर आचार्य हेमचन्द्र को लिखना पड़ा कि—'अर्णोराज पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् कुमारपाल को यह सलाह दी गयी कि वह मालवाधिपति बल्लाल को पराजित कर यशार्जन करें।'[9] इससे यह प्रतीत होता है कि कुमारपाल ने भले ही अनेक राजाओं पर विजय प्राप्त कर ली हो, किन्तु बल्लाल पर विजय प्राप्त किये बिना उसका राज्य निष्कंटक न हो पाता तथा उसे यश: प्राप्ति सम्भव न होती। बल्लाल ने कुमारपाल के आक्रमण के पूर्व उसके दो विश्वस्त सेनापतियों—विजय एवं कृष्ण को फोड़कर अपने पक्ष में मिला लिया था।[10] इस प्रकार कुमारपाल बल्लाल से भी आतंकित हो गया था, कभी-कभी उसे उस पर

1. पज्ज० 1/4/3-5। 2. वही०, 1/4/6-8। 3. वही०, 1/4/9-10। 4. वही०, 1/4/8। 5. वही०, 1/4/8। 6. चौलुक्य कुमारपाल, पृ० 101। 7. वही०, पृ० 102। 8. वही० 8-9। 9-10. द्वयाश्रय काव्य 19/97-98 — रसोर्मिभिः शुभैर्दामाभिर्भरौलपिभिर्वृतः। श्रीमतैः श्रीमतैश्वर्यां बल्लालो दर्पतोऽभ्यगात्।। शर्मीवत्याभिजित्वाभ्यां शैलावलोन चैवते कृत्वौ विभेद सामन्तौ नाम्ना विजयकृष्णकौ।।

विजय प्राप्त करने में सन्देह भी उत्पन्न हो जाता होगा, फिर भी उसने अपनी पूरी तैयारी कर उस पर आक्रमण किया और अन्ततः उसे पराजित कर दिया।[1] बडनगर-प्रशस्ति का यह उल्लेख कि—"कुमारपाल ने मालवाधिपति बल्लाल का शिरच्छेद कर उसका मस्तक अपने राजप्रासाद के द्वार पर लटका दिया था,[2] यह कथन वस्तुतः बल्लाल की दुर्दम शक्ति एवं पराक्रम के विरुद्ध कुमारपाल के संचित क्रोध का ही ज्वलन्त उदाहरण है।

अर्णोराज के लिए क्षयकाल के समान तथा रिपु-सैन्य-दल का मन्थन कर देने वाला यह बल्लाल कौन था? इसके विषय में विद्वानों ने अपने-अपने अनुमान व्यक्त किये हैं, किन्तु वे सर्वसम्मत नहीं हैं।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार ल्यूडर्स के अनुसार अज्ञात कुलशील बल्लाल ने परमारवंशी यशोवर्मन् को पराजित कर मालवा के कुछ अंश को हड़प लिया था।[3] श्री सी०वी० वैद्य के अनुसार "बल्लाल" शब्द एक विरुद (अपरनाम) था, जो कि उक्त यशोवर्मन् (परमार) के प्रथम पुत्र राजकुमार जयवर्मन् के साथ संयुक्त था।[4] मालवा के अभिलेखों में बल्लाल नाम के किसी भी राजा का उल्लेख नहीं है[5], जब कि उक्त जयवर्मन् को होयसल-नरेश नरसिंह-प्रथम की सहायता से कल्याणी के चौलुक्य-नरेश जगदेकमल्ल (वि०सं० 1196-1207) ने पराजित कर मालवा का राज्य हड़प लिया था।[6] उक्त चौलुक्यवंशी जगदेकमल्ल का आक्रमण मैसूर के एक शिलालेख से प्रमाणित है।[7] उसके प्रकाश में अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि 'बल्लाल' यह नाम 'दाक्षिणात्य' है। अतः वह परमार-वंशी जयवर्मन् का अपरनाम नहीं हो सकता। इसमें कुछ भी तथ्य प्रतीत नहीं होता कि उत्तर-भारत का कोई राजा अपना नाम दाक्षिणात्यों के नाम-साम्य पर रखता।

हमारा अनुमान है कि महाकवि सिद्ध द्वारा उल्लिखित बल्लाल होयसल-वंशी बल्लाल राजाओं में से कोई एक बल्लाल ही रहा होगा। उक्त राजवंश में उस नामके तीन राजा हुए हैं[8], किन्तु आचार्य हेमचन्द्र ने कुमारपाल की जिस मालवपति बल्लाल के साथ युद्ध की चर्चा की है वह होयसल-वंशी नरेश रणरंग का ज्येष्ठ पुत्र होना चाहिए, जिसका समय वि०सं० 1158-1163 है।[9] इस सन्दर्भ में आचार्य हेमचन्द्र एवं बडनगर की वह प्रशस्ति ध्यातव्य है, जिसके अनुसार कुमारपाल ने स्वयं या उसके किसी सामन्त ने युद्ध-क्षेत्र में ही बल्लाल का वध कर दिया था। अतः प्रतीत होता है कि बल्लाल वि०सं० 1161-62 में दक्षिण से साम्राज्य-विस्तार करता हुआ उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ रहा होगा और किसी भिल्लम[10] शासक को पराजित करता हुआ वह मालवा की ओर बढ़ा होगा तथा अवसर पाकर उसने मालवा पर आक्रमण किया होगा और सफलता प्राप्त की होगी किन्तु मालवा पर वह बहुत समय तक टिक न सका। वह सम्भवतः सिद्धराज जयसिंह के अन्तिम काल में वहाँ का अधिपति हुआ होगा। जयसिंह की मृत्यु के बाद चाहड़ एवं कुमारपाल के उत्तराधिकार को लेकर किए गये संघर्ष-काल[11] के मध्य ही बल्लाल मालवपति बनकर वहाँ अपने स्थायी पैर जमाने के लिए सैन्य-संगठन एवं आसपास के पड़ौसी राजाओं के साथ सन्धियाँ करता रहा होगा। इसी बीच कुमारपाल अणहिलपाटन का अधिकारी बना होगा। आचार्य हेमचन्द्र ने उसके राज्य को निष्कंटक बनाने हेतु सर्वप्रथम मालवपति बल्लाल को पराजित करने की सलाह दी होगी। बल्लाल की पराजय एवं वध उसी का फल था। अल्पकालीन विदेशी नरेश होने के कारण ही उसका नाम

---

1. वसन्त-विलास, 3/29 बल्लालगुल्लाकयतिसा ... कन्दुकलीलयैव। 2. एपि० इं०, खण्ड 1, पृ० 302, पद्य 15; वही०, खण्ड 7, पृ० 202-8। 3. पोलिटिकल०, पृ० 114 4. चौलुक्य, पृ० 109। 5. पोलिटिकल०, पृ० 114। 6. मैसूर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० 58, 153। 7. प्राचीन भारत, पृ० 685-87। 8. भारतीय इतिहास पृ० 341। 9. प्राचीन भारत, पृ० 681, 100। 10. प्रबन्ध चिन्तामणि — कुमारपालादि प्रबन्ध प्रकरण 126-129। 11. एपि० इं०, खण्ड 1, पृ० 293

मालवा के अभिलेखों में नहीं मिलता।

बड़नगर की प्रशस्ति का समय वि०सं० 1208 है।[1] अतः उसके पूर्व ही उस का वध हो चुका होगा।

बल्लाल का पिता रणराग[2] ही प०च० का रणधोरी मानना चाहिए। बहुत सम्भव है कि बल्लाल के पिता रणराग का रण की धुरा को वहन करने के कारण रणधोरी यह विरुद रहा हो?

हम ऊपर चर्चा कर आये हैं कि बल्लाल ने मालवा पर आक्रमण के पूर्व, उत्तर में किसी भिल्लम को पराजित किया था। वह 'बम्हणवाड' का शासक रहा होगा, जिसे कवि ने गुहिल-गोत्रीय क्षत्रियवंशी भुल्लण कहा है। बल्लाल ने उसे पराजित कर अपना सामन्त बनाया होगा और उसे ही कवि ने भृत्य की उपाधि प्रदान की है, जो माण्डलिक की कोटि में आता है।

उक्त राजाओं में से बल्लाल का समय वि०सं० 1161-62 के आसपास निश्चित है। इसी आधार पर पज्जुण्णचरिउ का मूल रचनाकाल भी वि०सं० की 12वीं सदी का अन्तिम चरण माना जा सकता है।

10. ग्रन्थोद्धारक महाकवि सिंह

पज्जुण्णचरिउ के उद्धारक कवि सिंह ने अपनी विद्वत्ता के विषय में तो संकेत दिए हैं, किन्तु व्यक्तिगत परिचय में उन्होंने भी कोई विशेष सूचनाएँ नहीं दीं। उक्त ग्रन्थ की अन्त्य-प्रशस्ति में जो सूचनाएँ मिलती हैं, वे इस प्रकार हैं—

(1) उसके पिता का नाम बुध रल्हण एवं माता का नाम जिनमति था। बुध की उपाधि से यह स्पष्ट होता है कि उसके पिता भी कवि रहे होंगे, यद्यपि उनकी रचनाओं का पता नहीं चल सका है।

(2) महाकवि सिंह अपने परिवार में सबसे बड़े भाई थे। उनके अन्य तीन छोटे भाईयों के नाम थे— सुहंकर (शुभंकर), साहारण (साधारण) एवं महादेव।[3]

(3) कवि गुर्जर देश एवं गुर्ज्जर कुल में उत्पन्न हुआ था।[4]

(4) कवि अपभ्रंश के साथ-साथ संस्कृत का भी धुरन्धर विद्वान्-कवि था, क्योंकि उसने 10वीं सन्धि से अन्तिम सन्धि तक प्रत्येक सन्धि के अन्त में रचना-महिमा, कवि-महिमा, अथवा स्व-कवित्व-महिमा को ध्वनित करने वाले संस्कृत श्लोक दिए हैं। ये श्लोकशार्दूलविक्रीडित छन्द के हैं। महाकवि सिद्ध ने भी संस्कृत श्लोकों का प्रयोग किया है, किन्तु 8 सन्धियों में उनकी संख्या केवल 2 ही है। भले ही सिंह ने सिद्ध की उक्त परम्परा का निर्वाह किया हो,फिर भी संस्कृत-भाषा ज्ञान में वे सिद्ध की अपेक्षा अधिक अलंकृत प्रतीत होते हैं।

(5) महाकवि सिंह, सिद्ध की अपेक्षा एक अहंकारी कवि प्रतीत होते हैं। जहाँ सिद्ध कवि अपने को कवित्व के क्षेत्र में अज्ञानी, कुब्जा, बौना आदि कहते हैं,[5] वहीं पर सिंह कवि ने अपने को काव्य-क्षेत्र में "सिंह वृत्ति वाला" तथा "बाल-सरस्वती" तक भी कह दिया है।[6]

(6) सिंह कवि के गुरु का नाम अमृतचन्द्र था। जो मलधारी उपाधि से विभूषित थे। गुरु अमृतचन्द्र के गुरु एवं अन्य विषयक उल्लेख प्रशस्ति में अनुपलब्ध हैं।

सारांश यह है कि जिनमति एवं बुध रल्हण के पुत्र सिंह ने अपने गुरु मलधारी देव अमृतचन्द्र के आदेश से

---

1. 'भारतीय इतिहास : एक दृष्टि' में इसका नाम एयरग है, जो भ्रमात्मक है। 2. प० च० 15/29/9। 3. वही०, 15/29/10-13। 4 वही० 15/26/6, 12वीं सन्धि की पुष्पिका। 5. वही०, 1/3/2-7। 6. वही० 14वीं सन्धि का अन्तिम संस्कृत श्लोक एवं 15/29/16।

दुर्भाग्यवश विनाश को प्राप्त पज्जुण्णचरिउ का छायाश्रित निर्वाह (उद्धार) किया था।[1]

भले ही कवि सिंह ने मौलिक रूप से पज्जुण्णचरिउ की रचना न की हो, किन्तु उसका उद्धार कर वह जिस गर्व का अनुभव करता था, उसकी तुलना अभिमानमेरु एवं अभिमान-चिह्न उपाधिधारी महाकवि पुष्पदन्त की गर्व-भावना से की जा सकती है।

महाकवि सिंह की प्रशस्ति से यह ज्ञात नहीं होता कि उसने पज्जुण्णचरिउ का उद्धार कब एवं किस स्थल पर किया?

हमारा अनुमान है कि महाकवि सिद्ध एवं महाकवि सिंह के काल में अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए। क्योंकि दोनों कवियों की गुरु-परम्परा निश्चित रूप से मलधारी देवोपासक रही है। सिद्ध ने अपने गुरु का नाम अमयचन्द[2] बताया है जबकि सिंह ने अमियचन्द[3] अथवा अमियमयंद[4]। अपभ्रंश-व्याकरण के नियमानुसार 'ऋ' स्वर का परिवर्तन 'अ' एवं 'इ' दोनों स्वरों में होता है। कवि छन्द एवं मात्रा तथा श्रुतिमधुरता को ध्यान में रख कर उक्त स्वर का परिवर्तन कर उसका प्रयोग कर लेता है। अतः अमयचन्दु, अमियचन्द्र एवं अमियमयंकु (मयंक=चन्द्र) वस्तुतः एक ही हैं। अन्त्य-प्रशस्ति में 'मलधारिदेव' (15/29/5) विशेषण अमियचंदु के गुरु माहवचंदु का ही विशेषण समझना चाहिए। अतः यह प्रतीत होता है कि पज्जुण्णचरिउ की रचना-समाप्ति के बाद सिद्ध कवि का सम्भवतः स्वर्गवास हो गया होगा और किसी प्राकृतिक प्रकोप के कारण पज्जुण्णचरिउ का कुछ अंश नष्ट या विगलित हो गया होगा, जिसकी प्रथम 8 सन्धियाँ तो सुविधापूर्वक ठीक कर ली गयी होंगी किन्तु बाकी की 7 सन्धियों को पूर्णतया विगलित या नष्ट देख कर गुरु अमृतचन्द्र ने सिंह कवि को उसके उद्धार का आदेश दिया होगा।

यदि हमारा उक्त अनुमान सही है तो सिद्ध और सिंह दोनों सतीर्थ्य सिद्ध होते हैं। सिंह ने पज्जुण्णचरिउ का उद्धार बम्हडवाडपट्टन में ही किया होगा क्योंकि पूर्व में लिखा जा चुका है कि उस समय अमृतचन्द्र बम्हणवाडपट्टन में रह रहे थे।

आद्य-प्रशस्ति में सिद्ध कवि द्वारा उल्लिखित माहवचन्दु, बल्लाल, भुल्लण जैसे व्यक्तियों के उल्लेख सिंह कवि ने सम्भवतः पुनरुक्ति दोष से बचने की दृष्टि से ही नहीं किये हैं। वस्तुतः वे सभी प्रसंग-प्राप्त सिद्ध होते हैं।

अतः इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रद्युम्नचरित का रचनाकाल 12वीं सदी का तीसरा चरण था। उसका उद्धारकाल अनुमानतः 12वीं सदी का अन्तिम चरण अथवा तेरहवीं सदी का प्रारम्भिक चरण रहा होगा। उद्धार-स्थल भी अन्य सक्षम प्रमाणों के मिलने तक बम्हणवाडपट्टन ही समझना चाहिए।

11. अपभ्रंश-साहित्य की प्रवृत्तियाँ

महाकवि सिद्ध का अभ्युदय उस काल में हुआ, जब अपभ्रंश-साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त लेखन-कार्य हो चुका था। काव्य के विविध रूपों का भी विकास हो चुका था एवं परवर्ती अपभ्रंश-कवि उनसे अनुप्राणित हो रहे थे। महाकवि सिद्ध के समय में जिन काव्य-रूपों एवं शैलियों का विकास हो चुका था, उनका वर्गीकरण निम्नप्रकार किया जा सकता है।[5]

---

1. प०च० 15/29/37। 2. वही० 1/4/6 3. वही० 15/29/22। 4. वही० 15/29/48। 5. दे० रु०न०अ०प० (वैशाली 1974, पृ० 22)।

(1) प्रबन्ध काव्य

प्रबन्ध-काव्यों की श्रेणी में पुराण, चरित, काव्य एवं कथा-साहित्य आते हैं। विषय की दृष्टि से इन काव्यों को दो श्रेणी में विभक्त किया जा सकता है। पौराणिक काव्य एवं रोमाण्टिक काव्य। महाकवि स्वयम्भू, अभिमान-मेरु पुष्पदन्त एवं धर्कटवंशी महाकवि धनपाल को इस साहित्य की रत्नत्रयी माना जा सकता है। इन्होंने अपभ्रंश-साहित्य में जिन कथानक-रूढ़ियों एवं अभिप्रायों को गुम्फित किया, वे परवर्ती अपभ्रंश-साहित्य के लिए आधार बन गए। परवर्त्ती साहित्यकारों ने उसमें कोई विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया।

अपभ्रंश-साहित्य में भी संस्कृत-प्राकृत की परम्परा के अनुकूल किसी तीर्थंकर अथवा पौराणिक या धार्मिक महापुरुष के चरित्र का वर्णन पौराणिक शैली में परम्परानुमोदित ही किया गया है। कवि अपनी कवित्व एवं कल्पना-शक्ति के माध्यम से कथा में मात्र इतना ही परिवर्तन कर देता है कि समस्त चरित्र काव्यात्मक रूप ग्रहण कर रस से परिपूर्ण हो जाता है। इसी श्रेणी के अपभ्रंश-काव्यों में स्वयम्भूकृत पउमचरिउ एवं रिट्ठणेमिचरिउ, पुष्पदन्त कृत महापुराण, णायकुमार एवं जसहरचरिउ, वीर कवि कृत जम्बूसामिचरिउ, धवलकवि कृत हरिवंशपुराण, पद्मकीर्ति कृत पासणाहचरिउ आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। इन सभी पौराणिक काव्यों को देखने से निम्न सामान्य-प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं—

(1) तीर्थंकरों, शलाकापुरुषों या अन्य किसी महापुरुषों के जीवन-चरितों को अपनी कल्पना और भावुकता से उनमें थोड़ा बहुत परिवर्तन कर उन्हें काव्य का स्वरूप प्रदान किया गया है। संस्कृत-प्राकृत काव्यों से प्रेरणा ग्रहण कर के भी कवियों ने अपनी ही रचना-शैली को अपनाया है।

(2) चरित-नायकों के विभिन्न जन्मों की कथा के उन मर्मस्पर्शी अंशों को ही ग्रहण किया गया है, जिनका मानव-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(3) भवान्तर-वर्णन के माध्यम से कर्म-विपाक के सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वत्र किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य दर्शन के मूल—कर्म-सिद्धान्त का उपदेश देना ही है। क्योंकि ये सभी काव्य वैराग्य मूलक हैं और जिनकी अन्तिम परिणति शान्त-रस में होती है।

(4) लोक-विश्वासों एवं कथाओं का प्रतिपादन उक्त काव्यों की अपनी विशेषता है।

(5) काव्यों के आरम्भ करने की शैली प्रायः एक सी है। कृति के आरम्भ में मंगलाचरण, तीर्थंकर वन्दना, सज्जन-दुर्जन स्मरण, आत्मगर्हा, महावीर प्रभु के समवशरण का राजगृह में आगमन एवं राजा श्रेणिक द्वारा प्रश्न तथा गौतम गणधर का उत्तर देना, तथा आदि एवं अन्त में प्रशस्तियों के माध्यम से कवि द्वारा आत्म-परिचय, गुरु-परम्परा, नगर, देश एवं समकालीन राजाओं, नगर सेठों, पूर्ववर्त्ती-साहित्य एवं साहित्यकारों के वर्णन परम्परा-प्राप्त ही हैं।

(6) उक्त सभी काव्य-ग्रन्थ पौराणिक हैं, फिर भी धार्मिकता के साथ-साथ उनमें शृंगार एवं वीर-भावों की व्यंजना भी मुखरित है। अवसर पाते ही कवि चन्द्र, सूर्य, नदी, पर्वत आदि प्राकृतिक वर्णनों के साथ ही जल-क्रीड़ा, सुरतक्रीड़ा के मनोरंजन, वर्णनों के मधुमय चित्र, युद्ध की विभीषिका आदि के वर्णनों के लिए भी कवि अवसर खोज लेता है।

इस प्रकार महाकवि सिद्ध को पौराणिक प्रबन्ध-काव्य की एक विस्मृत एवं प्रांजल-परम्परा उपलब्ध हुई है।

(2) आध्यात्मिक-काव्य

अपभ्रंश भाषा में लिखित आध्यात्मिक-काव्य के सर्वप्रथम कवि जोइन्दु माने जाते हैं, जिन्होंने अपने 'परमप्पयासु सह जोयसारु' (परमात्मप्रकाश एवं योगसार) में अध्यात्म का सुन्दर निरूपण किया है। इसीप्रकार मुनि रामसिंह ने पाहुड़-दोहा में इसी कोटि के काव्य की रचना की है। दोनों कवियों ने आत्मा-परमात्मा, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व तथा समरसता आदि का मार्मिक विवेचन किया है। कुछ विद्वान् इस काव्य को रहस्यवाद की संज्ञा से अभिहित करते हैं। परवर्ती शोधों के अनुसार इन काव्यों के आध्यात्मिक पक्ष पर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रवचनसार एवं समयसार का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। महाकवि सिद्ध को यह परम्परा व्यवस्थित रूप में उपलब्ध हुई है।

(3) रोमाण्टिक काव्य

रोमाण्टिक काव्यों में धर्म एवं इतिहास का अद्भुत समन्वय है। इन काव्यों में धार्मिक पुरुषों या कामदेव के अवतारों के जीवन-चरित्रों के वर्णन हैं एवं कुछ व्रतों एवं मन्त्रों का माहात्म्य बतलाने के लिए अनेक आख्यान लिखे गये हैं। इस कोटि के काव्यों में णायकुमारचरिउ, भविष्यदत्त कहा, सुदंसणचरिउ एवं करकण्डुचरिउ (कनकामर, 11वीं सदी) प्रभृति हैं। इस प्रकार की विधा के काव्यों की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

(1) अपभ्रंश के रोमाण्टिक काव्य लोक-कथाओं पर आधारित हैं।

(2) उक्त काव्यों की एक प्रमुख विशेषता है, पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण की।

(3) कथावस्तु में रोमांच लाने के लिए समुद्र-यात्रा, जहाज का उलटना, उजाड़ वन, युद्ध आदि के अतिरंजित वर्णन इस प्रकार के काव्यों में प्रमुख हैं।

(4) प्रस्तुत काव्यों में कल्पना की उड़ान का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। कवि समुद्रतल से लेकर स्वर्ग लोक तक कल्पनाओं की कुलाचें मारता हुआ दौड लगाता रहता है।

(5) रोमाण्टिक-काव्य एक प्रकार से प्रेमाख्यानक काव्य हैं। इसमें युद्ध और प्रेम को विशेष महत्त्व दिया गया है। हिन्दी-साहित्य का प्रेमाख्यान-काव्य अपभ्रंश साहित्य की इस विधा का विशेष रूप से आभारी है।

(6) पौराणिक काव्यों के समान ही इनमें प्रासंगिक अवान्तर-कथाओं एवं भवान्तर वर्णनों का बाहुल्य है।

(7) उक्त काव्यों में कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में हुआ है, जिनमें से निम्न रूढ़ियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

(क) प्रथम दर्शन, गुण-श्रवण या चित्र-दर्शन द्वारा प्रेम का प्रादुर्भाव। यथा—भविसयत्तकहा, सुदंसणचरिउ आदि।

(ख) उजाड़ नगर का मिलना, वहाँ किसी कुमारी का दर्शन एवं विवाह तथा अटूट सम्पत्ति एवं वैभव की प्राप्ति। भविसयत्तकहा इसका अच्छा उदाहरण है।

(ग) मुनि श्राप। यथा — भविसयत्तकहा, करकण्डुचरिउ।

(घ) दोहद-कामना। यथा — करकंडुचरिउ।

(ङ) पूर्वजन्म की स्मृति के आधार पर शत्रुता। यथा — णायकुमारचरिउ, जसहरचरिउ, करकंडुचरिउ आदि।

(च) चरित्रहीना पत्नी। यथा — जसहरचरिउ, करकंडुचरिउ, सुदंसणचरिउ, भविसयत्तकहा आदि।

(छ) रूप-परिवर्तन। यथा — करकंडुचरिउ, भविसयत्तकहा आदि।

उक्त कथानक रूढ़ियाँ महाकवि सिद्ध को परम्परा से ही प्राप्त हुई, जिन का उपयोग उन्होंने अपने प्रबन्ध काव्य में प्रचुरता के साथ किया है।

(4) बौद्ध-दोहा, गान एवं चर्यापद

अपभ्रंश साहित्य की चौथी विधा बौद्ध-दोहा एवं चर्यापद है। सिद्ध कवियों ने प्रतीकात्मक भाषा में ब्रह्मानन्द, योग एवं साधना-तत्व का सरस निरूपण किया है। ब्राह्मण धर्म के क्रिया-काण्डों, यज्ञों एवं अन्य पाखण्डपूर्ण परम्पराओं के प्रति इन कवियों का बड़ा ही व्यंग्यात्मक उग्र रूप रहा है। सामाजिक कुरीतियों एवं बाह्याडम्बरों का पूर्ण विरोध इन कवियों का विशेष लक्ष्य रहा है। किन्तु इनकी यह प्रवृत्ति आध्यात्मिक कम और ध्वंसात्मक अधिक रही है। चर्यापदों और आध्यात्मिक-जैन-काव्यों में एक उल्लेखनीय अन्तर यह है कि जैन-काव्य समत्व-योगी एवं शुद्ध आध्यात्मिक हैं, जब कि चर्यापद प्रायः ध्वंसात्मक। महाकवि सिद्ध ने इस प्रवृत्ति का सूक्ष्मावलोकन कर परम्परानुमोदित तथ्यों के अनुसार उसे मोड़ दिया है।

(5) शौर्य-वीर्य एवं प्रणय सम्बन्धी मुक्तक काव्य

अपभ्रंश-साहित्य में यह काव्य-प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन मानी गयी है। शोधक विद्वानों ने इस विधा को 'मुक्तक-काव्य' से अभिहित किया है। इस विधा का प्राथमिक स्वरूप हमें कालिदास के विक्रमोर्वशीय-नाटक में दिखाई पड़ता है जिसमें विरही पुरुरवा के हृदय के मार्मिक उद्गार व्यक्त हुए हैं। विक्षिप्त पुरुरवा जब मेघ को बरसते हुए देखता है तो दयार्द्र होकर कह उठता है—

मइ जाणिअ मिअलोअणि णिसिअरु कोइ हरेइ।
जाव णु णव तडिसामलि धाराहरु बरिसेइ।।[1]

अर्थात्—राजा नव-तड़ित से युक्त श्यामल मेघ को बरसते हुए देखकर कहता है—मैंने समझा कि कोई राक्षस मृगनयनी उर्वशी को हरण कर लिये जा रहा है।

इसी प्रकार उन्मत्त राजा बादल से प्रार्थना करता है कि—

जलहर संहर एहु कोप मिआढत्तओ। अविरल धारा-सार दिसा-मुह-कंतओ।
ए मइँ पुहवि भमंते जइ पिअं पेक्खिहिमि। तच्छे जं जु करीहसि तं तु सहीहिमि।।

हे जलधर! अपना क्रोध रोक, यदि मुझे पृथ्वी पर घूमते-घूमते प्रियतमा मिल गयी तो जो-जो करोगे सब सहन करूँगा।

कवि ने मुक्तक-गान शैली में पुरुरवा की वेदना एवं मार्मिकता का सफल एवं हृदय-ग्राह्य चित्रण किया है। कालिदास की इस प्रणय-गान-पद्धति के पश्चात् मुक्तक गीतों की यह कड़ी हमें आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण-दोहों में देखने को मिलती है। यदि विक्रमोर्वशीय-नाटक में विरह की तीव्रता, मार्मिकता और वेदना की कसक है, तो हेमचन्द्र के दोहों में वीरता का तेज, विशुद्ध प्रेम एवं युवक-युवतियों के हास-उल्लास का सजीव चित्रण। इनमें शृंगार और वीर का अद्भुत समन्वय मिलता है। इसके साथ ही उनके पदों में अन्योक्ति, नीति, सुभाषित आदि के वर्णन भी मिलते हैं। इनमें सुन्दर साहित्यिक सरसता के साथ-साथ लौकिक जीवन एवं ग्राम्य जीवन के भी दर्शन होते हैं। यथा -

वीरता— **भल्ला हुआ ज मारिआ बहिणि म्हारा कंतु।**
लज्जेज्जं तु वयंसि अहु जइ भग्गा घर एंतु।।[2]

अर्थात् — बहिन अच्छा हुआ जो मेरा पति रणभूमि में ही मारा गया। यदि वह पराजित होकर लौटता तो

---

1. विक्रमोर्वशीय०, 4/8। 2. हेम० व्या०, 8/4/351।

मुझे अपनी सखियों के सामने लज्जित होना पड़ता।

शृंगार-रस का एक उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

जिव जिव बंकिम लोअणहं णिरुसामलि सिक्खेइ।
तिव तिव वम्महु निअय-सरु खर-पत्थरि तिक्खेइ।।[1]

12. अपभ्रंश काव्यों की हिन्दी काव्यों को देन

यद्यपि अपभ्रंश काव्य-परम्पराओं एवं काव्य-रूढ़ियों के मूल स्रोत संस्कृत एवं प्राकृत-काव्य माने गए हैं, फिर भी उसकी कुछ परम्पराएँ एवं काव्य-रूढ़ियाँ ऐसी भी हैं, जो अपभ्रंश-काव्यों में स्वतन्त्र एवं मौलिक रूप से विकसित हुई और वे हिन्दी-काव्यों को विरासत के रूप में उपलब्ध हुई। इनमें से कुछ प्रमुख परम्पराएँ एवं काव्य-रूढ़ियाँ निम्नप्रकार हैं:—

(1) कडवक शैली:— अपभ्रंश के प्राचीन-साहित्य को देखने से यह स्पष्ट हो चुका है कि अपभ्रंश का मूल छन्द 'दोहा' था। कड़वक-पद्धति का आविर्भाव उसमें कब और कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। महाकवि स्वयम्भू ने अपने रिट्ठणेमिचरिउ की आद्यप्रशस्ति में लिखा है कि—

छड्डणिय दुवइ धुवएहिं जडिय चउमुहेण समप्पिय पद्धडिया। *—रिट्ठ० 1/2/1*

अर्थात् चउमुह कवि ने दुवई (द्विपदी) और धुवकों से जड़ा हुआ पद्धडिया छन्द समर्पित किया। स्वयम्भू के इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चउमुह ने ध्रुवक एवं दुवई के मेल से पद्धडिया-छन्द को विकसित किया था। अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्यों में व्यवहृत कडवक-छन्द इसी पद्धडिया-छन्द का विकसित रूप कहा जा सकता है।[2]

साहित्यदर्पणकार ने "सर्गा: कडवकाभिधा:" (6/325) कह कर कडवक को सर्ग का सूचक माना है। किन्तु यह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि कडवक का आकार इतना छोटा होता है कि वह सर्ग, आश्वास अथवा अध्याय का कार्य नहीं कर सकता। विचार करने पर प्रतीत होता है कि उसका विकास लोकगीतों के धरातल पर हुआ होगा। जब अपभ्रंश में प्रबन्ध-पद्धति का आविर्भाव हुआ और दोहा-छन्द इसके लिए अल्पकाय सिद्ध होने लगा, तब अपभ्रंश-कवियों ने मात्रिक-छन्द-परम्परा पर प्रबन्ध काव्य के वहन कर सकने योग्य पद्धडिया-छन्द का विकास किया। 16, 20, 24, 28, 32 एवं 48 अर्द्धालियों के अनन्तर घत्ता-छन्द देकर कडवक लिखने की परम्परा आविर्भूत हुई। कडवक को अनिवार्यत: घत्ता के साथ रखे जाने का नियम है। उसमें पंक्तियों की संख्या निश्चित नहीं। पुष्पदन्त ने 9 से 13 अर्द्धालियों के बाद घत्ते का प्रयोग किया है तो स्वयम्भू ने 8 अर्द्धालियों के पश्चात् घत्ते का[3]। आगे चलकर यही कडवक पद्धति हिन्दी-काव्यों में चौपाई-दोहे के रूप में विकसित हुई। रामचरितमानस में 8 अर्द्धालियों अर्थात् चौपाई के बाद दोहे के प्रयोग मिलते हैं, जबकि जायसी ने अपने पद्मावत में 7 अर्द्धालियों अर्थात् चौपाई के बाद दोहा-छन्द रखा है।

(2) अपभ्रंश की दूहा-पद्धति का हिन्दी-साहित्य में दोहा पद्धति के रूप में विकास:— आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्राचीन अपभ्रंश साहित्य को "दूहा विधा" कहा है।[4] उनके अनुसार वस्तुत: जिस प्रकार प्राकृत का गाथा-छन्द एवं संस्कृत का आर्या-छन्द प्रसिद्ध था, उसी प्रकार अपभ्रंश का दूहा-छन्द भी प्रसिद्ध था। दोहा छन्द अपभ्रंश के प्रतीक के रूप में माना जाता था। अपभ्रंश के प्राचीन काव्य परमप्पयासु, जोयसारु, सावयधम्म दोहा,

---

1. हेमशब्दानु०, 8/4/344। 2. हे०श०अप०सा०, पृ० 590-591 3. वही: पृ० 591। 4. हि०सा० का आदि० (डॉ० द्विवेदी), पटना, 1952, पृ० 92।

एवं पाहुडदोहा आदि दूहा छन्द में ही लिखे गये। यह दूहा ही हिन्दी में दोहा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसमें 13 एवं 11 मात्राएँ अथवा 14 एवं 12 मात्राएँ होती हैं। सम्भवतः अपभ्रंश के उक्त काव्यों से ही दोहों की परम्परा कबीर, जायसी, तुलसी, रहीम एवं बिहारी को प्राप्त हुई।

हिन्दी के सोरठा, बरवै एवं कुण्डलिया के पूर्वार्द्ध का विकास भी अपभ्रंश के घत्ते एवं दूहा से ही हुआ। उसी प्रकार अष्टपदी, छप्पय, पादाकुलक, पज्झटिका, हरिगीता, ताटंक, मदनावतार आदि छन्द भी हिन्दी को अपभ्रंश की ही देन हैं।

(3) **सन्धि-पद्धति:** –अपभ्रंश-काव्यों में सर्ग एवं आश्वास के स्थान पर सन्धि का प्रयोग मिलता है। सन्धि का अर्थ है जोड़। अपभ्रंश-काव्यों में किसी कथानक के एक प्रकरण-विशेष की समाप्ति को सन्धि कहा गया है। इसमें प्रथमांश की समाप्ति एवं अग्रिमांश का प्रारम्भ इन दोनों के पूर्वापर-सम्बन्ध की अभिव्यक्ति रहती है। इसीलिए सम्भवतः इसका नाम सन्धि पड़ा। हिन्दी-काव्यों में सन्धि की परम्परा अपभ्रंश से ही आई। इस प्रकार के काव्यों में ब्रह्मगुलालचरित[1] (छत्रपति विरचित) आदि काव्य प्रमुख हैं आगे चल कर सन्धि का यह रूप पृथ्वीराजरासो में 'समय', पद्मावत में 'खण्ड' एवं रामचन्द्रिका में 'प्रकाश' के रूप में विकसित हुआ।

(4) **हिन्दी के रासा-साहित्य की प्रेरणा का प्रमुख स्रोत:**—हिन्दी-साहित्य के आधुनिक-काल को छोड़कर वीरगाथाकाल अथवा आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल अपभ्रंश-साहित्य से पूर्णतः प्रभावित हैं। वीरगाथाकालीन रासा-साहित्य के लिए अपभ्रंश के उपदेशरसायनरास (वि०सं०1132), भरतबाहुबलीरास (वि०सं०1241), जम्बूसामिरास (वि०सं०1266), रेवंतगिरिरास (वि०सं०1288) गयसुकुमालरास (वि०सं०1300) एवं समरारास (वि०सं०1371) आदि प्रेरणा-सूत्र माने गये हैं।

हिन्दी के रासा-साहित्य में भाषा का गठन भी तात्कालिक स्थानीय कुछ अनिवार्य प्रवृत्तियों को छोड़कर, अपभ्रंश-व्याकरण के आधार पर हुआ है। नरपतिनाल्ह कृत 'बीसलदेवरासो' के विषय में डॉ० रामकुमार वर्मा का यह कथन ध्यातव्य है—"बीसलदेवरासो का व्याकरण अपभ्रंश के नियमों का पालन कर रहा है, कारक, क्रियाओं और संज्ञाओं के रूप अपभ्रंश-भाषा के ही हैं। अतएव भाषा की दृष्टि से इस रासो को अपभ्रंश-भाषा से सद्यः विकसित हिन्दी का ग्रन्थ कहने में किसी प्रकार की भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"[2]

(5) **अपभ्रंश के समान हिन्दी में भी "काव्य" के स्थान पर चरित शब्द का प्रयोग:**— "काव्य" के लिए "चरित" शब्द का प्रयोग हिन्दी में प्रायः अपभ्रंश से आया है। यथा—अपभ्रंश के पासणाहचरिउ, पज्जुण्णचरिउ, णायकुमारचरिउ, जसहरचरिउ, महावीरचरिउ के बल पर हिन्दी के—रामचरितमानस, सुदामाचरित, सुजानचरित, वीरसिंहदेवचरित आदि।

(6) **अपभ्रंश की प्रेम-कथाओं का हिन्दी-साहित्य में प्रेमाख्यानक-काव्यों के रूप में विकास:**—अपभ्रंश में 'मयणरेहाकहा', 'रयणसेहरनिवकहा, सन्देशरासक तथा भविसयत्तकव्व, णायकुमारचरिउ, जसहरचरिउ जैसे अनेक ऐसे काव्य हैं, जिनमें आपततः प्रेमकथानक अथवा प्रसंगानुकूल प्रेम-कथाओं की चर्चाएँ आती हैं। इनका स्पष्ट विकास हिन्दी-काव्यों में हुआ और जिनका नामकरण हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने प्रेमाख्यानक काव्यों के रूप में किया। इस प्रकार के काव्यों में से चन्दायन (दाऊद), पद्मावत (जायसी), चित्ररेखा (जायसी), मधुमालती

---

1. जैन०सि०भ० संस्था दिल्ली (1961 ई०) से प्रकाशित। 2. हि०सा०आ०इ० का आ०इ०, डॉ० रामकुमार वर्मा, (प्रयाग, 1948 ई०), पृ० 208।

(चतुर्भुज) आदि इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

(7) **अपभ्रंश-गीतिकाव्यों का हिन्दी-गीतिकाव्यों पर प्रभाव**:—अपभ्रंश-साहित्य अपनी गीतियों के लिए प्रसिद्ध है। ये गीतियाँ कडवक के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। गेयता एवं भावों की तीव्रता ही गीतियों का प्रधान लक्षण है। इन अपभ्रंश गीतियों से प्रभावित होकर आचार्य गोवर्द्धन ने भी उनकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की है।[1] जयदेव की संस्कृत-गीतियों में यद्यपि उक्त दोनों तत्त्व वर्तमान हैं, किन्तु अनेक समीक्षकों ने उन्हें भी अपभ्रंश की छाया माना है।[2] अपभ्रंश की इन गीतियों की परम्परा सूर के पदों, विद्यापति के गीतों एवं तुलसी की गीतावली में मुखरित हुई है।

(8) **अपभ्रंश के अन्त्यानुप्रास की धारा का हिन्दी-साहित्य में प्रवाह**:—अन्त्यानुप्रास की यह प्रवृत्ति अपभ्रंश की अपनी निजी-पद्धति रही है, जो जायसी एवं तुलसी आदि के साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। संस्कृत एवं प्राकृत-साहित्य में उक्त प्रवृत्ति नहीं पायी जाती।

(9) **गीतों में नाम-संयोजन की पद्धति**:—हिन्दी-काव्यों के अन्त में अथवा प्रत्येक गीत एवं पदों के अन्त में प्रणेता-कवि के नाम के जोड़े जाने की पद्धति प्राय: अपभ्रंश कवियों से ही आयी है। अपभ्रंश काव्यों में 'भासइ सिरिहरु-सुकुमाल चरिउ' (वि०सं० 1208, अप्रकाशित) भणइसिद्ध पज्जुण्णचरिउ (वि०सं० 13वीं सदी अप्रकाशित); धणवाल पयंपइ बाहुबलिदेउचरिउ (वि०सं० 15वीं सदी, अप्रकाशित), जैसे कथन मिलते हैं।[3] 'भणइ विद्यापति सोरठ गावहि'[4] 'सूरदास प्रभु तुमरे मिलन को'[5], एक नैन कवि मुहम्मद गुनी'[6], 'तुलसी तिहारे विद्यमान जुवराज आजु'[7], जैसे नाम-वाक्यों का अपने-अपने गीतों एवं पदों में प्रयोग किया।

(10) **अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग-बहुल**:—

अपभ्रंश— **तोडइ तडत्ति तणु बंधणइं मोडइ कडत्ति हड्डइं घणइं।**
फाडइ चडत्ति चम्मइँ चलइँ घुट्टइ घडत्ति सोधिय जलइँ।। —*(जसहरचरिउ 2,37, 3-4)*
झिरिमिरि झिरिमिरि झिरिमिरि ए मेहा वरिसंति। —*(सिरिथूलिभद्दफागु)*

हिन्दी— **हहकंत कूदंत नचै कमंधं, कडक्कंत बज्जंत कुट्टंत संघं।**
लहक्कंत लूटंत तूटंत भूमं।
झुकंते धुकंते दोउ वथ्थ झूमं।।
दडक्कंत दीसंत पीसंत दंतं। —*(पृथ्वीराजरासो, पद्य सं० 2110)*

(11) **अपभ्रंश-शब्दावली का हिन्दी-काव्यों में प्राय: यथावत् प्रयोग**—

अपभ्रंश — यथा— **मुंडिय-मुंडिय मुंडिया सिर मुंडिउ चित्तु ण मुंडिया।**
चित्तहँ मुंडण जिं कियउ संसारहं खंडणु तिं कियउ।। —*(पाहुड़दोहा पद्य 135)*

हिन्दी —**केसों कहा बिगारिया जो मूंडौ सौ बार।**
मन को क्यों न मूँडिये जामें विषै विकार।। —*(कबीर ग्र० पद्य 12, पृ० 221)*

अपभ्रंश—**काइँ किलेसहिं काउ अयाणिए किं घिउ होइ विरोलिए (भविसयत्तकहा 2/7) पाणिए।**

---

1. दे० आर्यासप्तशती, पद्य 215। 2. दे० अप०सा० दिल्ली, वि०सं० 2013, पृ० 389 (डॉ० हरिवंश कोछड़)। 3. कबीर ग्रन्था०, ना०प्र०सं० पृ० 79 (वाराणसी)। 4. दे० विद्यापति पदावली। 5. सूर के सौ कूट; पद्य 25, पृ० 113 (वाराणसी; वि०सं० 2023)। 6. पद्मावत, स्तुतिखण्ड, पद्य 21, पृ० 20 (चिरगांव वि०सं० 2012)। 7. कवितावली, लंकाकाण्ड, पद्य 24, पृ० 85 (इलाहाबाद, वि०सं० 2013)।

हिन्दी —- **का मा जोग कथन के कथे।**

निक सै घिउ न बिना दधि मथे।। —*(पद्मावत, प्रेमखण्ड 6, पृ० 119)*

अपभ्रंश— **बाह विछोडवि जाहि तुहुँ हऊँ तेवइँ को दोसु।**

हिअय-ट्ठिअ जइ नीसरहि जाणउँ मुंज सरोसु।। —*(हेमप्राकृत व्याकरण)*

हिन्दी — **बाँह छोड़ाए जात हो निबल जानि के मोहि;**

हिरदै ते जब जाहुगे सबल जानूंगो तोहि।। —*(सूर, 10/307)*

(12) **वर्णन प्रसंगों का प्रभाव**:— वर्णन-प्रसंगों में भी हिन्दी कवि अपभ्रंश कवियों के आभारी हैं। महाकवि स्वयम्भू एवं कवि तुलसीदास की तुलना करते हुए महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है—"स्वयम्भू ने अपने को चाहे भले ही भारी कुकवि कहा हो, पर तुलसी की तरह उनका यह कहना केवल नम्रता प्रदर्शन मात्र है। जिस तरह तुलसी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं, वही बात अपभ्रंश के क्षेत्र में महाकवि स्वयम्भू की है। स्वयम्भू की कृति ने उन्हें प्रेरणा दी, इसे मानने में कोई हर्ज नहीं है, ऐसी कृतियों के अभ्यास का ही परिणाम है कहीं-कहीं दोनों की कृतियों में आपाततः समानता।[1] यथा —**आत्मनिवेदन प्रसंग में।**

स्वयम्भू— **बुहयण सयंभु पईं विण्णवइ, महु सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ।**
वायरणु कयाइ ण जाणियउ, णउ वित्ति-सत्त वक्खाणियउ।
णा णिसुणिउ पंच महाय कव्वु, णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सव्वु।
णउ बुज्झिउ पिंगल-पच्छारु, णउ भामह-दंडिय लंकारु।
हउँ किंवि ण जाणमि मुक्ख मणे, णिय बुद्धि पयासिय तो वि जणे।
जं सयलेंवि तिहुवणे वित्थरिउ आरंभिउ पुणु राहव-चरिउ।

तुलसी— **कवि न होऊं नहिं वचन प्रबीना, सकल कला सब बिंद्या हीना।**
आखर अरथ अलंकृति नाना, छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना।
भाव भेद रस भेद अपारा, कवित्त दोष-गुन विविध प्रकारा।
कबित्त बिबेक एक नहिं मोरे, सत्यकहउँ लिखि कागद कोरे।[2]

इसी प्रकार स्वयम्भू रामायण का प्रथम काण्ड तथा तुलसी-रामायण का बालकाण्ड, स्वयम्भू-रामायण का 78वां पर्व एवं तुलसी-रामायण का उत्तरकाण्ड, स्वयम्भू-रामायण के 46-47वें पर्व एवं तुलसी-रामायण का सुन्दर काण्ड, स्वयम्भू-रामायण का पर्व 69वां एवं तुलसी-रामायण का लंकाकाण्ड आदि में भी अनेक प्रकार की समानताएँ हैं।[3]

(13) **हिन्दी की रीतिकालीन साहित्य शैलियों पर प्रभाव**:— हिन्दी रीतिकालीन साहित्य-शैलियों पर अपभ्रंश के सुदंसणचरिउ, णायकुमारचरिउ, सन्देशरासक, थूलिभद्दकहा आदि की श्रृंगार-भावना, नखशिख-वर्णन, षड्ऋतु-वर्णन, विरह-पीड़ा एवं बारह-मासा जैसे वर्णनों का प्रभाव तो है ही, साथ ही उनमें अपभ्रंश-रासाकाव्य के छन्दों यथा— कवित्त, दोहा, सवैया, छन्दों के प्रचुर प्रयोग मिलते हैं। यद्यपि श्रृंगार-भावना, नख-शिख-वर्णन, ऋतु-वर्णन आदि संस्कृत-प्राकृत साहित्य में भी चरमकोटि के उपलब्ध हैं, फिर भी हिन्दी के उक्त वर्णनों पर अपभ्रंश-काव्यों का

1. राहुल निबन्धावली, पृ० 112-115 (पीपुल्स प० हाउस, नई दिल्ली, 1970)। 2. वही०, पृ० 112-115। 3. वही० पृ० 112-115।

अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

(14) **अपभ्रंश-गद्य का हिन्दी-गद्य पर प्रभाव:—** हिन्दी के 13वीं सदी तक के साहित्य में तुकमय पद्यात्मक गद्य की रचनाएँ मिलती हैं, जिन पर अपभ्रंश का पूर्ण प्रभाव है। क्योंकि अपभ्रंश-काव्यों में पद्यात्मक रचनाओं में यत्र-तत्र गद्य के प्रयोगों की प्रवृत्ति उपलब्ध होती है। विद्यापति की काहाणी कीर्त्तिलता से अवहट्ट-गद्य का एक अंश प्रस्तुत है[1]—

"तान्हि करो पुत्र युवराजन्हि मांझ पवित्र, अगणेय गुणग्राम प्रतिज्ञा पद, पूरणैक परशुराम, मर्यादा मंगलावास, कविता कालिदास।[2]"

तथा—

"विस्तरिउ वर्षाकाल जो पंथी तणउकाल, नाठउ दुकाल। जिणिईं वर्षाकालि मधुर गाजइ, दुर्भिक्ष तणा भय भाजइ, जाणे सुभिक्ष भूपति आवंता जय ढक्का बाजइ।"

—(दि० माणिक्यचन्द्रसूरि कृत पृथिवीचन्द्रचरित्र, वि०सं० 1478)

और—

रात्रिकैं विषैं। सुपिनै देषे। सुप्रभात राजा के पुन्य प्रतापतें। भद्रबाहु मुनि संघाष्टक सहित आए। आहार निमित्त। चन्द्रगुप्ति सुपने फल पूछैं हैं। —(रइधूकृत पुण्णासव कहा (17वीं सदी अप्रकाशित)

इसी प्रकार हिन्दी के संत कवियों में जात-पाँत के विरोध की भावना, रहस्यवादी, सुधारवादी एवं धार्मिक क्रान्ति की भाव-धारा भी अपभ्रंश से ही आयी। इस दिशा में अपभ्रंश की जोइसारु, परमप्पयासु, पाहुडदोहा, सावयधम्म दोहा आदि रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(15) **हिन्दी महाकाव्यों के शिल्प एवं स्थापत्य के निम्नलिखित मूल-स्रोत अपभ्रंश महाकाव्यों में उपलब्ध हैं:—**

(अ) आराध्यगुणस्तवन,
(आ) पूर्ववर्त्ती-साहित्यकार एवं उनकी कृतियों का स्मरण एवं आभार-प्रदर्शन,
(इ) सज्जन-प्रशंसा एवं दुर्जन-निन्दा,
(ई) प्रेरक गुरु परिचय,
(उ) आश्रयदाता-परिचय-प्रशंसा,
(ऊ) कवि-परिचय,
(ए) आत्म-लघुता-प्रदर्शन,
(ऐ) प्रश्नोत्तरी-शैली में कथा-माहात्म्य एवं कथारम्भ,
(ओ) देश, नगर, राजा, मन्त्री-वर्णन,
(औ) कथा में रोमाण्टिक-तत्वों का प्राधान्य,
(अं) अतिमानवीय एवं अतिप्राकृतिक घटनाओं का समावेश,
(अः) कथा-तत्वों पर धार्मिक आवरण,
(क) प्रायः अन्यापदेशिक-शैली का प्रयोग,

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ० जयकिशन खण्डेलवाल (आगरा 1969), पृ० 80। 2. रइसा० का आ०प०, पृ० 580।

(ख) सोद्देश्यता,
(ग) पात्र-चयन, संवाद एवं कौतूहल तत्व की योजना,
(घ) तुक के प्रति आग्रह, आदि।

अपभ्रंश के ऐसे महाकाव्यों में, पउमचरिउ (स्वयम्भू), महापुराण (पुष्पदन्त), भविसयत्तकहा (धनपाल), हरिवंशपुराण (धवल), पज्जुण्णचरिउ (सिंहकवि), जम्बूस्वामी चरिउ (वीर), बलहद्दपुराण (रइधू) आदि प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों ने हिन्दी के पृथ्वीराज रासो, आल्हाखण्ड, पद्मावत, रामचरितमानस प्रभृति पर उक्त विषय में अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है।

(16) **कथानक रूढ़ियाँ**:— हिन्दी साहित्य के महारथी विद्वान् पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आदिकालीन हिन्दी साहित्य की कथानक-रूढ़ियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनके अनुसार ऐतिहासिक चरित का लेखक सम्भावनाओं पर अधिक बल देता है। सम्भावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ है कि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति एवं घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय बहुत दीर्घकाल से व्यवहृत होते आये हैं, जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और फिर आगे चल कर कथानक-रूढ़ि में बदल गये हैं। इस विषय में ऐतिहासिक और निजन्धरी कथाओं में विशेष भेद नहीं किया गया।[1] इस प्रकार सम्भावना-पक्ष पर जोर देने के कारण ही कुछ कथानक-रूढ़ियाँ प्रचलित हुईं। इनमें से अधिकांश कथानक-रूढ़ियाँ अपभ्रंश-साहित्य से ज्यों की त्यों हिन्दी में आयीं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

1. रानी द्वारा स्वप्न दर्शन और पति-राजा द्वारा उनके फल का कथन तथा पुत्र रत्न की प्राप्ति।
2. पूर्व-भव के कर्म-फलानुसार पुत्र-अपहरण।
3. नायिका का अपहरण।
4. नायक का समुद्र-यात्रा-वर्णन एवं समुद्र-यात्रा के प्रसंग में उसके अनेक रोमांचकारी संघर्षों का वर्णन।
5. नारद-प्रसंग।
6. नायक की वीरताओं का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन।
7. मुनि का शाप अथवा वरदान-वर्णन।
8. विद्या-सिद्धि।
9. विजन-वन में सुन्दरियों से साक्षात्कार।
10. नायक की उदारता।
11. रूप-परिवर्तन अथवा बहुरूपियापन।
12. आकाशवाणी एवं भविष्यवाणी
13. षडऋतु एवं बारहमासा के वर्णन के माध्यम से विरह-वेदना-चित्रण।
14. शृंगार, प्रेम और रोमांच का विकास करने के लिए बहु-विवाह की योजना।
15. जलयान के डूबने पर प्राण-रक्षा के लिए लकड़ी के टुकड़े की प्राप्ति एवं समुद्र को पार करना। आदि

1. हि०सा० का आदि०, पृ० 33 (पटना, 1955)।

इस प्रकार की कथानक-रूढ़ियाँ अपभ्रंश के पउमचरिउ, महापुराण, णायकुमारचरिउ, करकण्डुचरिउ, जसहरचरिउ, जम्बूसामिचरिउ, भविसयत्तकहा एवं पज्जुण्णचरिउ में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि मध्यकालीन हिन्दी-जैन-साहित्य में कुछ ऐसी कथानक-रूढ़ियाँ भी हैं, जो उसकी अपनी निजी सम्पत्ति है और जो मध्यकालीन जैनेतर-हिन्दी-साहित्य में नहीं मिलती। यथा—

(1) श्रेणिक के प्रश्न पर गौतम के उत्तर के माध्यम से कथा का आरम्भ।
(2) किसी उपवन में ज्ञानी मुनि का आगमन और उनके प्रभाव से वनस्पति आदि का अकाल में ही विशिष्ट रूप से फलना-फूलना तथा ऋतु का परिवर्तित रूप में दिखाई देना।
(3) मुनिराज द्वारा भवान्तर कथन।
(4) उपदेश प्रसंगों में स्याद्वाद, अनेकान्त, षड्द्रव्य, श्रावकाचार, मुनि-आचार, सप्त-तत्व आदि का निरूपण।
(5) विद्याधर, असुर अथवा चारण-मुनियों का दर्शन

इस प्रकार अपभ्रंश-काव्य परम्पराओं एवं कथानक-रूढ़ियों का मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की परम्पराओं एवं कथा-रूढ़ियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करते हुए डॉ० प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होता है—"हिन्दी का कौन कवि है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अपभ्रंश के जैन प्रबन्ध-काव्यों से प्रभावित न हुआ हो? चन्द से लेकर हरिश्चन्द्र तक तो उसके ऋण-भार से दबे हैं ही, आजकल की नई-नई काव्य-पद्धतियों के उद्भावक भी विचार कर देखने पर उसकी परिधि के बाहर न मिलेंगे।[1]

13. पज्जुण्णचरिउ :

(1) स्रोत, परम्परा एवं विकास:—भारतीय पुराण-साहित्य को दो परम्पराओं में विभक्त किया जा सकता है—वैदिक-पुराण एवं श्रमण-पुराण। वैदिक परम्परानुसार पुराण वे कहलाते हैं, जिनमें सृष्टि की रचना, प्रलय एवं पुन:सृष्टि, मानव-वंश, मनुओं के विविध-युग तथा राजवंशों के चरितों की चर्चा की जाती है।

श्रमण-परम्परा में जैन एवं बौद्ध-परम्परायें आती हैं। बौद्ध-परम्परा का पुराण-साहित्य सीमित है और उसमें जातक-साहित्य को रखा जाता है, जिस में महाभारत सम्बन्धी कथा-साहित्य अनुपलब्ध है।

जैन-पुराणों के अनुसार सृष्टि जड़ एवं चेतनमय तथा अनादि-अनन्त है और उसका विकास अथवा परिवर्त्तन काल-चक्र के आरोह-अवरोह के अनुसार चलता है। अत: सर्ग एवं प्रतिसर्ग के स्थान पर उनमें विश्व का अनादि-अनन्त स्वरूप तथा उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी रूप परिवर्तन, विपरिवर्तन अथवा लोक-व्यवस्था की चर्चा रहती है। मानव-वंशों, कुलकरों अर्थात् मनुओं एवं राजवंशानुचरितों के वर्णन जैन-पुराणों में भी अपनी मान्यतानुसार उल्लिखित हैं।

पुराण-विषय से सम्बन्ध रखने वाले प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, हिन्दी आदि के अनेक जैन ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमें से अभी तक कुछ तो प्रकाश में आ चुके हैं और कुछ प्राच्य-शास्त्र-भाण्डारों में वेष्ठनों में ही सुरक्षित हैं। प्रस्तुत पज्जुण्णचरिउ भी अद्यावधि अप्रकाशित ही था, जिसका सर्वप्रथम सम्पादन, अनुवाद एवं समीक्षात्मक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

1. दे० अपभ्रंश दर्पण: (पटना, 1955), पृ० 53।

यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य है कि प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियों ने पौराणिक आख्यानों को चरित कहा है। इसका कारण सम्भवत: यही था कि वे जीवन-वृत्त को सामान्य-चरित ही मानते रहे। अत: संस्कृत एवं प्राकृत का अधिकांश पुराण-साहित्य चरितनामान्त ही मिलता है।

जैन मान्यतानुसार प्रद्युम्न 169 पुराण पुरुषों में से एक माने गए हैं। इनकी गणना 24 कामदेवों में की गयी है। ये 9वें नारायण—श्रीकृष्ण के पुत्र तथा चरमशरीरी (उसी जन्म से मोक्ष जाने वाले) माने गये हैं। इनका चरित्र विविध दिव्य-चमत्कारों एवं विशेषताओं से परिपूर्ण है। मानव का उत्थान एवं पतन किन-किन परिस्थितियों में तथा पूर्व-जन्म के संस्कारों के कारण किस-किस प्रकार होता है, उसका चित्रण प्रद्युम्नचरित में आकर्षक ढंग से किया गया है।

प्रस्तुत पज्जुण्णचरिउ की कथा का मूलस्रोत संघदासगणि (5वीं सदी के आसपास) कृत वसुदेवहिंडी, आचार्य जिनसेन प्रथम (वि०सं० 840) कृत हरिवंशपुराण, गुणभद्र (898 ई०) कृत उत्तरपुराण, महाकवि पुष्पदन्त (959 ई०) कृत अपभ्रंश महापुराण एवं कवि महासेन (974 ई०) कृत संस्कृत प्रद्युम्नचरित हैं। महाकवि सिद्ध ने वसुदेव-हिंडी के पाठेय-प्रकरण एवं जिनसेन (प्रथम) कृत हरिवंशपुराण (के 42-48 सर्ग) से कथासूत्र ग्रहण कर तथा उक्त उत्तरपुराण (के 72वें सर्ग), महापुराण (के 91-92 वीं सन्धि) एवं प्रद्युम्नचरित से कुछ घटनाक्रमों का संकलन पर प्रद्युम्न के जीवन-वृत्तान्त को एक नवीन मौलिक रूप प्रदान कर और अपभ्रंश में सर्वप्रथम स्वतन्त्र मौलिक रचना का प्रणयन कर परवर्ती विविध कवियों के लिए एक नया आलोक प्रदान किया है।

कालक्रमानुसार प्रद्युम्नचरित-कथा का विकास (ज्ञात एवं उपलब्ध कृतियाँ)

जैन कवियों ने आधारभूत ग्रन्थों से सन्दर्भ-सामग्री ग्रहण कर विविध कालों में विविध भाषाओं एवं शैलियों में अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की है। उनकी एक झांकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

कालक्रमानुसार प्रद्युम्नचरित-कथा-विकास (ज्ञात एवं उपलब्ध कृतियाँ)

	रचना	लेखक	भाषा	काल
1.	प्रद्युम्नचरित्र	महासेनाचार्य	संस्कृत	10वीं शती
2.	पज्जुण्णचरिउ	महाकवि सिंह	अपभ्रंश	13वीं शती
3.	प्रद्युम्नचरित	सधारु	हिन्दी	सं० 1411 वि०
4.	प्रद्युम्नचरित्र	सकलकीर्त्ति	संस्कृत	15वीं शती
5.	प्रद्युम्नचरित	रइधू	अपभ्रंश	15वीं शती
6.	प्रद्युम्नचरित्र	सोमकीर्त्ति	संस्कृत	सं० 1531 वि०
7.	प्रद्युम्नचरित्र	कमलकेशर	हिन्दी	सं० 1626 वि०
8.	प्रद्युम्नरासो	ब्रह्मराय मल्ल	हिन्दी	सं० 1628 वि०
9.	प्रद्युम्नचरित्र	रविसागर	संस्कृत	सं० 1645 वि०
10.	शाम्ब प्रद्युम्नरास	समयसुन्दर	राजस्थानी	सं० 1659 वि०
11.	प्रद्युम्नचरित्र	शुभचन्द्र	संस्कृत	17वीं शती
12.	प्रद्युम्नचरित्र	रतनचन्द्र	संस्कृत	सं० 1671 वि०

13.	प्रद्युम्नचरित्र	मल्लिभूषण	संस्कृत	17वीं शती
14.	प्रद्युम्नचरित्र	वादिचन्द्र	संस्कृत	17वीं शती
15.	शाम्बप्रद्युम्न रास	ज्ञानसागर	हिन्दी	17वीं शती
16.	शाम्बप्रद्युम्न चौपई	जिनचन्द्र सूरि	हिन्दी	17वीं शती
17.	प्रद्युम्नचरित्र	भोगकीर्ति	संस्कृत	17वीं शती
18.	प्रद्युम्नचरित्र	जिनेश्वर सूरि	संस्कृत	—
19.	प्रद्युम्नचरित्र	यशोधर	संस्कृत	—
20.	प्रद्युम्न लीला वर्णन	शिवचन्द गणि	संस्कृत	—
21.	प्रद्युम्नचरित्र	—	संस्कृत	—
22.	प्रद्युम्नचरित्र भाषा	खुशालचन्द्र	हिन्दी गद्य	—
23.	प्रद्युम्नचरित्र	देवेन्द्र कीर्ति	हिन्दी	सं० 1722 वि०
24.	प्रद्युम्नरास	मायाराम	हिन्दी	सं० 1818 वि०
25.	प्रद्युम्नचरित्र	रत्नचन्द्र गणि	संस्कृत	सं० 1834 वि०
26.	शाम्ब प्रद्युम्न रास	हर्षित विजय	हिन्दी	सं० 1842 वि०
27.	प्रद्युम्नप्रकाश	शिवचन्द	हिन्दी	सं० 1879 वि०
28.	प्रद्युम्नचरित्र	बख्तावर सिंह	हिन्दी गद्य	सं० 1914 वि०
29.	प्रद्युम्नचरित्र	मन्नालाल	हिन्दी गद्य	सं० 1916 वि०
30.	प्रद्युम्नचरित्र भाषा	—	"	सं० 1941 वि०
31.	प्रद्युम्नचरित्र	—	"	—
32.	प्रद्युम्नचरित्र	—	हिन्दी	—
33.	प्रद्युम्नचरित्र टीका	—	हिन्दी गद्य	—
34.	प्रद्युम्नचरित्र वृत्ति	देवसूरि	संस्कृत	—
35.	प्रद्युम्नचरित्र	—	हिन्दी	सं० 1941 वि०

(2) **विषयवस्तु (कथा-संक्षेप)**:— सिद्ध कवि कृत प्रस्तुत पज्जुण्णचरिउ की संक्षिप्त कथावस्तु उसकी सन्धियों एवं कड़वकों के क्रमानुसार यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

पम्पा एवं देवण का पुत्र महाकवि सिद्ध सर्वप्रथम अपने आराध्यदेव एवं वाग्देवी सरस्वती का स्मरण कर अपने गुरु मलधारीदेव अमृतचन्द्र की प्रेरणा से पज्जुण्णचरिउ (प्रद्युम्नचरित) के प्रणयन की प्रतिज्ञा करता है और पूर्वागत-परम्परा का ध्यान रखता हुआ वह अपनी रचना की मूल कथावस्तु इस प्रकार प्रस्तुत करता है —(कड़वक संख्या 1-5)

मगधदेशान्तर्गत राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर आये हुए वीर-प्रभु के समवशरण में आकर राजा सेणिय (श्रेणिक) ने गौतम गणधर से कुमार प्रद्युम्न के चरित को जानने की इच्छा प्रकट की, जिसके उत्तर में गौतम गणधर ने बतलाया कि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में स्थित सोरट्ठ (सौराष्ट्र) देश की दारामई नगरी (द्वारामती

— वर्तमान द्वारिका) में देवकी-पुत्र राजा मधुमथन (कृष्ण) राज्य करते थे। वह नगरी सुख-समृद्धि से परिपूर्ण थी (6-12)। राजा कृष्ण अपने अग्रज बलभद्र के साथ न्यायपूर्वक राज्य-संचालन करते हुए सुख-पूर्वक जीवन-यापन करते थे (13)।

एक बार आकाशमार्ग से जाते हुए नारद ने राजा कृष्ण का आस्थान (अत्थाणु) देखा, तो उसकी शोभा से प्रभावित होकर वे तत्काल वहाँ पहुँचे। उन्हें देखते ही श्रीकृष्ण ने सिंहासन छोड़कर उनके चरण-स्पर्श कर उन्हें प्रणाम किया (14)। आसन ग्रहण कर लेने के अनन्तर उन दोनों में परस्पर वार्त्तालाप हुआ। तत्पश्चात् नारद राजमहल में भ्रमण करते समय उस स्थल पर जा पहुँचे, जहाँ सत्यभामा दर्पण में अपना मुख-दर्शन कर रही थी। अपने दर्पण में नारद जी की छाया देखकर वह भयाक्रान्त हो गयी और विचार करने लगी कि "हमारे सौन्दर्य-शृंगार के समय यह कौपीन-धारी कहाँ से आ गया? इसी हड़बड़ी में वह उनका सम्मान भी नहीं कर सकी (15-16) पहली सन्धि।

नारद ने इसे अपनी अवज्ञा समझ कर सत्यभामा से बदला लेने की प्रतिज्ञा की और तत्काल ही वे उससे भी अधिक सुन्दरी किसी अन्य राजकुमारी की खोज में आकाश-मार्ग से चले। चलते-चलते वे नागर-वाणी (णायर-गिर) में बोलने वाले पुरुषों तथा अन्य जीव-जन्तुओं को देखते हुए (1-2) एक विद्याधर श्रेणी को पार कर विजयार्द्ध-पर्वत के सौन्दर्य का निरीक्षण करते हुए कुण्डिनपुर जा पहुँचे (3-5)। नारदागमन की सूचना मिलते ही कुण्डिनपुर-नरेश राजा भीष्म ने अपनी युवती पुत्री राजकुमारी रूपिणी के साथ उनका भव्य स्वागत किया। स्वागत के प्रत्युत्तर में प्रमुदित नारद जी ने रूपिणी को शीघ्र ही महाराज कृष्ण की पट्टरानी बनने का आशीर्वाद (6-7) दिया।

रूपिणी के लिए नारद का आशीर्वचन सुनते ही रूपिणी की फुआ (सुरसुन्दरी) ने नारद को बतलाया कि रूपिणी का विवाह तो चेदिनरेश राजा शिशुपाल के साथ सुनिश्चित हो चुका है और वह इसी पखवारे में सम्पन्न हो जायेगा। किन्तु नारद जी यह सुनकर भी अपने पूर्वोक्त आशीर्वाद को ही दुहराते रहे और वे रूपिणी का एक चित्र लेकर पुन: कृष्ण एवं बलभद्र के सम्मुख जा पहुँचे। उन्हें वह चित्र दिखाकर कृष्ण से रूपिणी की बड़ी प्रशंसा की (8-12)। रूपिणी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर बलभद्र के साथ श्रीकृष्ण नारदजी के परामर्शानुसार कुण्डिनपुर जा पहुँचे। किन्तु वहाँ की स्थिति ही दूसरी थी। चेदि-नरेश शिशुपाल अपने विवाह हेतु वहाँ पहले से ही आ चुका था। अत: श्रीकृष्ण ने अवसर पाकर रूपिणी का अपहरण कर लिया। फलस्वरूप भीषण युद्ध में शिशुपाल का वध करके रूपिणी के साथ वे सकुशल द्वारका लौट आये (13-20 दूसरी सन्धि)।

बारामई नगरी में नागरिकों ने उस युगल-जोड़ी का हार्दिक स्वागत कर जय-जयकार किया और दोनों सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। सत्यभामा के मन में नवागत रूपिणी के प्रति जहाँ एक ओर ईर्ष्या एवं विद्वेष था, वहीं दूसरी ओर उसे देखने की अभिलाषा थी। अत: उसने श्रीकृष्ण से अनुरोध किया कि वह रूपिणी के दर्शन उसे अवश्य करा दें। कृष्ण ने समीपवर्त्ती एक उपवन में उसके दर्शन कराने की व्यवस्था की (1-7)। उन्होंने रूपिणी को उसके शारीरिक सौन्दर्य के अनुकूल श्वेत-परिधान से अलंकृत कर उसे उपवन की एक श्वेत-शिला पर बैठा दिया। सत्यभामा जब उपवन में पहुँची, तब भ्रमवश वह उसे वनदेवी समझ बैठी और उसके सम्मुख प्रार्थना करने लगी कि हे देवी, तू श्रीकृष्ण का ध्यान रूपिणी से हटा कर मेरी ओर लगा। श्रीकृष्ण उस शिला के पार्श्व में ही छिपे हुए थे। सत्यभामा की इस प्रार्थना पर उन्हें हँसी आ गयी। सत्यभामा को जब

वास्तविकता का पता चला, तब उसने श्रीकृष्ण की बुरी तरह भर्त्सना की (8)।

कृष्ण एवं रूपिणी का जीवन जब अत्यन्त सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था, तभी एक दिन दुर्योधन ने अवसर पाकर अपने दूत द्वारा कृष्ण के पास यह सन्देश भेजा कि—"यदि तुम्हारे पुत्र और मेरी पुत्री होगी अथवा मेरा पुत्र और तुम्हारी पुत्री होगी, तो हम लोग परस्पर में उनका विवाह कर प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। कृष्ण ने सकारात्मक उत्तर देकर दूत को विदा किया (9)।

समय व्यतीत होता गया और कुछ वर्षों के बाद ही सत्यभामा और रूपिणी दोनों ने एक ही रात्रि में चार-चार स्वप्न देखे। महाराज कृष्ण ने उन स्वप्नों का सुफल जब उन लोगों के लिए कह सुनाया तो वे अत्यन्त प्रमुदित हो उठीं। उन स्वप्नों के फलानुसार ही दोनों रानियों ने उपयुक्त समय पर एक-एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। ज्योतिषियों ने रूपिणी के पुत्र का नाम पज्जुण्ण (प्रद्युम्न) एवं सत्यभामा के पुत्र का नाम भानु रखा। किन्तु छठे दिन ही घोर दुर्भाग्य का वातावरण छा गया। पूर्वजन्म का बैरी धूमकेतु नामक दानव प्रद्युम्न का अपहरण कर उसे तक्षकगिरि पर ले भागा (10-14, तीसरी सन्धि)।

उस दानव ने बड़ी ही क्रूरतापूर्वक शिशु प्रद्युम्न को तक्षकगिरि की एक शिला के नीचे दबा दिया। संयोग से उसी समय मेघकूट का विद्याधर राजा कालसंवर अपनी प्रियतमा कनकमाला के साथ विमान में मनोरंजन करता हुआ जब तक्षकगिरि के ऊपर से उड़ रहा था, तभी उस शिशु के प्रभाव से सहसा ही उसका विमान रुक गया। यह देखकर यमसंवर (कालसंवर) को बड़ा आश्चर्य हुआ और कारण का पता लगाने के लिए जब वह विमान से उतरा, तभी उसने शिला के नीचे दबे हुए उस सुन्दर शिशु को देखा। उसने बड़े ही स्नेह के साथ कामदेव के समान सुन्दर उस बालक को उठाया, उसका चुम्बन किया और "कामदेव" के नाम से अभिहित कर उसे अपनी रानी कनकमाला को प्रदान कर दिया (4/1-3)। कालसंवर उस शिशु प्रद्युम्न को अपने निवास-स्थल घणकूडपुर (मेघकूटपुर) ले आया और स्नेहपूर्वक उसका पालन-पोषण करने लगा।

इधर रानी रूपिणी जब प्रातःकाल सोकर उठी और शैया पर अपने शिशु को न देखा तब वह उदास हो गयी। उसने अपनी लज्जिका नामकी दासी से भी पूछताछ की (4/4)। बहुत खोज-बीन करने पर भी जब प्रद्युम्न का पता नहीं चला तब राजमहल में रुदन मच गया। बलभद्र, कृष्ण एवं उनके पिता वसुदेव भी प्रद्युम्न की खोज में निकल पड़े। रूपिणी का करुण-क्रन्दन सुनकर महाराज श्री कृष्ण भी शोक-सन्तप्त हो उठे। दोनों की विवेकहीन स्थिति देखकर बलभद्र ने उन्हें संसार की नश्वरता का स्मरण दिलाते हुए द्वादशानुप्रेक्षाओं का उपदेश दिया (4/5-6)।

जब वे उपदेश दे रहे थे, उसी समय संयोग से नारद जी वहाँ आ पहुँचे उन्हें देखकर रूपिणी और भी फूट-फूट कर रोने लगी (4/7)। इस प्रसंग में कवि ने सास-बहू तथा ननद-भौजाई की जग-प्रसिद्ध ईर्ष्या, विद्वेष एवं कलह का बड़ा ही सजीव एवं स्वाभाविक चित्रण किया है। सास और ननद अपने परिवार में नवागत महिला के प्रति कैसी तीखी व्यंग्योक्तियों का प्रयोग करती हैं, कवि ने उनका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है (4/8)।

रूपिणी को शोक-विह्वल देखकर नारद जी बड़े दुःखी हुए। वे स्वयं प्रद्युम्न की खोज के लिए निकले और घूमते-घूमते विदेह-क्षेत्र स्थित सीमंधर स्वामी के समवशरण में आ पहुँचे (4/9-11)।

विदेह क्षेत्र का राजा पद्म उस समय समवशरण में विराजमान था। उसने नारद के अतिसूक्ष्म रूप को देखकर सीमंधर स्वामी से उसके विषय में पूछा। उत्तर स्वरूप सीमंधर स्वामी ने प्रद्युम्न के जन्म-काल से लेकर

अपहरण तक तथा कालसंवर द्वारा शिला के नीचे से निकाल कर, मेघकूट स्थित अपने निवास-स्थल में पालन-पोषण किये जाने तक का वृत्तान्त कह सुनाया (4/12-13)। इतना ही नहीं सीमंधर स्वामी ने शिशु प्रद्युम्न के पूर्व-भव के निम्नलिखित भवांतर (4/14 से 7/1-9 तक) भी कह सुनाए — यथा (1) शृगाली रूप में जन्म, (2) सोमशर्मा ब्राह्मण के पुत्र अग्निभूति के रूप में, (3) सौधर्म-स्वर्ग में त्रिदश देव, (4) अयोध्या के नगर सेठ का पूर्णभद्र नामक पुत्र, (5) सहस्रार स्वर्ग में देव, (6) कौशलपुरी के सुवर्णनाम राजा का मधु नामक पुत्र, (7) अच्युत स्वर्ग में देव एवं (8) पज्जुण्ण (वर्तमान)।

कवि ने इन भवान्तरों के माध्यम से पुनर्जन्म एवं कर्म-सिद्धान्त का सुन्दर विवेचन किया है।

सीमंधर स्वामी के द्वारा कुमार प्रद्युम्न के भवान्तर सुनकर नारद प्रद्युम्न को देखने की इच्छा से मेघकूटपुर जा पहुँचे तथा उसे सकुशल देख कर उन्होंने द्वारका जाकर श्रीकृष्ण एवं रूपिणी को तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया (7/10-11)।

इधर, प्रद्युम्न जब पाँच वर्ष का हो गया, तब उसे विविध विद्याओं की शिक्षा दी गयी और तीन वर्षों के भीतर-भीतर वह समस्त विद्याओं में निष्णात हो गया। राजा कालसंवर ने उपयुक्त समय पाकर जब प्रद्युम्न को युवराज पद सौंपा, तब उसके 500 पुत्र अपने पिता तथा सौतेले युवराज पर अत्यन्त रुष्ट हो गये। वे सभी मिलकर मारने के उद्देश्य से प्रद्युम्न को विविध स्थलों पर ले गये। कवि ने उस प्रसंग के लिये एक कथानक प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार प्रद्युम्न के सभी भाई प्रद्युम्न को विजयार्द्ध पर्वत पर ले गये तथा वहाँ उसे एक भयानक सर्प से भिड़ा दिया। उसका उस भयंकर सर्प के साथ युद्ध हुआ (7/12-17) (चौथी से सातवीं सन्धि)।

किन्तु जब वह सर्प प्रद्युम्न के पौरुष से आतंकित हो गया, तब उसने यक्ष का रूप धारण कर उसको अलकापुरी के राजा कनकराज, उसकी रानी अनिला देवी तथा उसके हिरण्य एवं तार नामक दो पुत्रों का वर्णन करते हुए बतलाया—"राजा कनकराज अपने पुत्र हिरण्य को राज्य देकर तपस्वी बन गया। हिरण्य भी शीघ्र ही अपने भाई तार को राज्य देकर मन्त्र-साधना हेतु वन में चला गया। 36 वर्षों में जब उसे अनेक विद्याओं की सिद्धि प्राप्त हो गयी, तब वह पुनः अलकापुरी में राज्य करने लगा (8/1-3)। किन्तु राजा हिरण्य को पुनः जब वैराग्य हो गया तब उन विद्याओं ने स्वयं ही उससे पूछा कि अब वे कहाँ रहेंगी? उसके उत्तर में उसने कहा कि—"आगे से कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न उन विद्याओं का स्वामी होगा।" हे प्रद्युम्न, तभी से मैं इन विद्याओं की रक्षा कर रहा हूँ। अब आप इन्हें संभालिए (4)। इस प्रकार प्रद्युम्न को यक्षराज से विद्याओं की उपलब्धि हो गई। तदनन्तर कालसंवर के सभी पुत्र प्रद्युम्न को कालगुफा, नागगुफा, वनसरसी, वासुकुण्ड, मेषाकार पर्वत, विशाल नगरी, कपित्थक-कानन, वामी, शल्यकगिरि, वराहशैल, पयोवन, अर्जुन, भीममहावन एवं अन्त में जयन्तगिरि पर ले गये (5-16), वहाँ प्रद्युम्न रति नामकी एक अद्वितीय कन्या को देखकर उस पर मुग्ध हो गया। तत्पश्चात् वह राजा कालसंवर के पास पहुँचा (17-19, आठवीं सन्धि)।

विधि का विधान कैसा विचित्र है? कनकमाला ने जिस प्रद्युम्न का प्रारम्भ में वात्सल्यभाव से सुरक्षाकर पालन-पोषण किया, आगे चलकर उसी कनकमाला की चेष्टाओं एवं भावनाओं में उसके प्रति काम-वासना जाग उठी। इस कारण प्रद्युम्न के मन में बड़ी ही ग्लानि उत्पन्न हो गयी। वह राजमहल से तत्काल बाहर निकल कर जिन-मन्दिर गया और वहाँ बैठे हुए भट्टारक उदधिचन्द्र के दर्शन कर उनसे कंचनमाला (अपरनाम कनकमाला) के भवान्तर पूछे।

भवान्तर के इस प्रसंग में कवि ने पिछले भवान्तरों की ही पुनरावृत्ति की है (4/15 से 9/1-9 तक) (10)। इन भवान्तरों के साथ ही उन्होंने रूपिणी के भवान्तर भी बतलाए (11-13)। तत्पश्चात् प्रद्युम्न पुनः राजमहल में वापिस आया और उसने चाटुकारितापूर्ण वचनों के साथ कनकमाला से तीन विद्याएँ प्राप्त कीं और वहाँ से अपने महल में चला गया (14-15)। इधर कनकमाला ने प्रद्युम्न की ओर से कामाभिलाषा पूर्ण न किए जाने के कारण रुष्ट होकर अपने ही शरीर को क्षत-विक्षत कर डाला और प्रद्युम्न पर लांछन लगाकर राजा से उसकी शिकायत की। उसकी बातों पर विश्वास कर राजा ने भी अपने पुत्रों को उस प्रद्युम्न को मार डालने का आदेश दिया। इतना ही नहीं, राजा कालसंवर ने स्वयं भी युद्धस्थल में सामना करते हुए प्रद्युम्न को ललकारा (16-18)। फलस्वरूप, कालसंवर और प्रद्युम्न दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। उसी समय संयोगवश नारद जी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने उन्हें समझा-बुझाकर युद्ध समाप्त करवाया और कालसंवर को प्रद्युम्न का यथार्थ परिचय देकर उसे (प्रद्युम्न को) अपने साथ दारामई ले जाने हेतु तैयार करने लगे। (19-24 नवीं सन्धि)।

दारामई के लिए प्रस्थान करने के पूर्व नारद ने एक विमान की संरचना की, किन्तु वह विमान प्रद्युम्न को पसन्द नहीं आया। अतः उसने स्वयं एक वेगगामी विशेष विमान की रचना की और उसी पर दोनों सवार होकर आकाश-मार्ग से चले। मार्ग में वे नाना नदी, नद, वन, उपवन, सरोवर एवं प्राकृतिक सौन्दर्य-स्थलियों को देखते हुए एक स्थल पर पहुँचे। वहाँ कुरुराज की सुसज्जित चतुरंगिणी सेना को देखकर (1-7) नारद ने प्रद्युम्न को बतलाया कि 'दुर्योधन की जिस पुत्री (उदधि कुमारी) का विवाह तुम्हारे साथ होने वाला था, किन्तु तुम्हारा अपहरण हो जाने के कारण वह तुम्हारे साथ सम्पन्न नहीं हो पाया था, अब वही विवाह सत्यभामा के पुत्र राजकुमार भानु से सम्पन्न होने जा रहा है। इस प्रसंग से तुम्हारी माता रूपिणी को निश्चय ही बड़ी ठेस लगेगी।' यह सुनकर प्रद्युम्न ने अपनी माता को प्रसन्न करने की भावना से स्वयं एक भील का रूप धारण किया और वीभत्स रूप बना कर संग्राहक घोषित किया और अवसर पाकर वह उदधिकुमारी का अपहरण कर उसे अपने विमान में ले आया। नारद ने रोती हुई उदधिकुमारी को समझा बुझाकर तथा प्रद्युम्न के वास्तविक रूप को दिखला कर उसे उसका पति बतलाया। प्रद्युम्न अपना रूप परिवर्तित कर अकेले ही दारामई नगरी में आया और भानुकुमार को अपमानित करने की दृष्टि से उसे ऐसे घोड़े पर बैठा दिया, जिसने उसे ज़मीन पर पटक दिया। इस कारण भानु की जग हँसाई हुई (8-17)। इधर अपने को सर्वोच्च दिखाने की दृष्टि से प्रद्युम्न स्वयं उस घोड़े पर सवार होकर अदृश्य हो गया (18-21 दसवीं सन्धि)।

प्रद्युम्न बहुविद्याधारी तो हो ही चुका था, अतः उसने अपनी विद्याओं का चमत्कार दिखाना प्रारम्भ किया। कहीं उसने मायावी घोड़े तैयार कर उससे सत्यभामा का उपवन चरवा दिया, तो कहीं मायावी बन्दर बनाकर किसी का उपवन नष्ट-भ्रष्ट करा दिया और कहीं पनिहारिनों के बीच में पहुँच कर वृद्ध-ब्राह्मण के रूप में उन्हें अनेक कौतुक दिखाना प्रारम्भ कर दिया। एक बार उसने वापी में स्नान करना चाहा, किन्तु जब वहाँ उपस्थित युवतियों ने उसे वैसा करने से रोका, तभी उसने अपने विद्याबल से वापी का समस्त जल अपने कमण्डल में भर लिया। उसके इस कृत्य से क्रोधित होकर युवतियों ने जब उस पर मुष्टि-प्रहार किया तो उसने उन सबको विरूप बना दिया। वापी-जल से पूर्ण अपना कमण्डल लेकर जब वह राजमार्ग से जा रहा था, तभी वह उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ा। फलतः बाजार में जल की बाढ़ आ गयी और सर्वत्र हाहाकार मच गया। इसी प्रकार सुगन्धित पुष्पों को सुगन्धहीन बनाकर, स्वर्ण-दीनारों को लोहे में बदल कर, राजमहल में अपने द्वारा निर्मित

मायावी मेष से अपने ही पितामह को पराजित कराकर, राजभवन में उपस्थित द्विजों को परस्पर में लड़ाकर, सत्यभामा के यहाँ सैकड़ों पुरुषों के लिये तैयार कराए गए भोजन को अकेले ही खाकर और उसे वहीं वमन कर उसने सभी को और विशेष रूपेण सत्यभामा को आश्चर्यचकित कर दिया (1-22)। इस प्रकार सत्यभामा को अपने कौतुक दिखाकर वह प्रद्युम्न पुन: क्षुल्लक का वेष बनाकर अपनी माता रूपिणी के राजमहल में जा पहुँचा (23-24, ग्यारहवीं सन्धि)।

रूपिणी की शालीनता, सौम्यता, सुन्दरता एवं भद्रता से वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि मन ही मन उनके मातृ-स्वरूप को नमन कर उसने उनसे उत्तम पदार्थों की याचना की। रूपिणी ने महाराज कृष्ण के लिये रखे हुए विशेष मोदक उस क्षुल्लक को दिये। साधारण व्यक्तियों के लिए दुष्पाच्य उन मोदकों को उसने देखते ही देखते खा-पचा डाला। प्रद्युम्न को देखते ही रूपिणी को नारद द्वारा कथित सीमन्धर स्वामी के वृत्तान्त का स्मरण आ गया। रूपिणी सोचने लगी कि हो न हो यही मेरा पुत्र प्रद्युम्न है। किन्तु प्रद्युम्न के इस क्षुल्लक के कुरूप वेश को देखकर वह अपने मन में सोचने लगी कि ऐसे पुत्र को लेकर मैं कृष्ण एवं सत्यभामा को अपना मुख कैसे दिखाऊँगी? अत: रूपिणी ने क्षुल्लक-वेशधारी उस नवागन्तुक से उसका कुल और गोत्र पूछा, क्षुल्लक ने उत्तर में कहा कि—"साधु का कोई कुल-गोत्र नहीं होता।" यह सुनकर रूपिणी अत्यन्त दुखी हो गई। तब क्षुल्लक ने दयार्द्र होकर उसके दुख का कारण पूछा। तब उसने उसे पूर्व-वृत्तान्त बतलाते हुए कहा कि—"सत्यभामा और मेरे बीच यह शर्त लगी थी कि जिसका पुत्र पहिले परिणय करेगा, वह दूसरी के केशों का मुण्डन करा कर, उन केशों को अपने पैरों से रोदेगी। अब वही समय आ गया है। सत्यभामा के पुत्र भानु का विवाह हो रहा है। इसलिए अब वह मेरे साथ वही व्यवहार करेगी। इसी कारण मैं शोकाकुल हूँ (1-9)।

क्षुल्लक ने जब रूपिणी की व्यथा को सुना, तब उसने ढाढस बंधाते हुए उससे कहा कि —"माता, दु:खी मत बनो, मैं ही तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न हूँ।" उसे समझा-बुझा कर उसने अपनी विद्या से शीघ्र ही मायामयी रूपिणी का निर्माण कर उसे सिंहासन पर बैठा दिया। थोड़ी ही देर में अनेक स्त्रियों के साथ रूपिणी का मुण्डन कर उसके केश लेने हेतु नापित आया, किन्तु प्रद्युम्न ने उस समय भी अपनी विद्या का ऐसा जाल फैलाया कि नाई ने मायामयी रूपिणी के भी केश न काट कर स्वयं अपनी नाक आदि काट डाली और साथ में आई हुई सभी महिलाएँ भी उसके विद्याबल से विरूप होकर सत्यभामा के पास वापिस पहुँचीं। सत्यभामा यह सब देखकर रूपिणी पर अत्यधिक कुपित हुई, और उसने उन सभी को राज्य सभा में बलभद्र के सम्मुख भेजा। बलभद्र भी ये सब विरूपाकृतियाँ देखकर क्रोध से जल उठे (10-13)।

अपनी माँ रूपिणी को दु:खी देखकर प्रद्युम्न ने अपना यथार्थ रूप धारण किया, जिसे देखकर वह अत्यन्त हर्षित हो उठी। उसने अपनी विद्या के बल से तथा माँ के सुख-सन्तोष के लिये अपने जन्म से लेकर 1 वर्ष तक की आयु के सभी रूपों को धारण कर उसे दिखाया तथा उन्हीं के अनुरूप बाल-क्रीड़ाएँ भी दिखलायीं (14-16)। इधर, क्रोधित बलभद्र ने जब अपने सेवकों को रूपिणी के यहाँ भेजा, तभी प्रद्युम्न अपने विद्याबल से एक कृशकाय द्विज का रूप धारण कर सत्यभामा के यहाँ जा पहुँचा और फिर वहाँ से निकल कर रूपिणी के दरवाज़े में लेट गया। वहाँ पर भी उसके चित्र-विचित्र कौतुक देखकर बलभद्र बड़े खुश हुए। प्रद्युम्न ने रूपिणी से बलभद्र का परिचय प्राप्त किया एवं उन्हें सिंह से लड़ने वाला जानकर प्रद्युम्न ने स्वयं सिंह का रूप धारण किया और बलभद्र से भिड़ कर उन्हें बुरी तरह पराजित कर दिया (17-21)।

रूपिणी ने प्रद्युम्न की लालाओं से प्रसन्न होकर उससे नारद का समाचार पूछा तब प्रद्युम्न ने उसे बतलाया कि—"नारद तुम्हारी पुत्र-वधु (उदधिकुमारी) के साथ आकाश में स्थित है।" यह कहकर जब वह अपनी माता के साथ वहाँ जाने की तैयारी कर रहा था, तभी उसने कृष्ण की सभा में जाकर घोषणा की – कि मैं भीष्म-सुता रूपिणी का हरण कर ले जा रहा हूँ। यदि तुम लोगों में शक्ति हो तो छीन लो। "कृष्ण एवं बलभद्र आदि ने प्रद्युम्न की इस चुनौती को स्वीकार किया। फलस्वरूप दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ (22-28 बारहवीं सन्धि)।

दोनों पक्षों के योद्धाओं ने दिव्यास्त्रों, मोहनास्त्रों, आग्नेयास्त्रों, वरुणास्त्रों, पवनास्त्रों एवं सहस्राक्षास्त्रों आदि का खुलकर प्रयोग किया। प्रद्युम्न ने भी विद्या के बल से कृष्ण की समस्त सेना को नष्ट कर दिया। नारद इस घमासान संग्राम को देखकर आकाश से उतर कर आये और उन्होंने पिता-पुत्र दोनों को सम्बोधित कर दोनों का परस्पर में परिचय कराया। पिता-पुत्र गले से मिले और वे सभी बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर में वापिस लौटे। नगरवासियों ने प्रद्युम्न का हार्दिक स्वागत किया और महाराज कृष्ण ने उसे युवराज-पद प्रदान किया (1-17 तेरहवीं सन्धि)।

प्रद्युम्न के विवाहोत्सव पर राजा कृष्ण के दरबार में राजा-कालसंवर, कनकमाला एवं मनोजवेग विद्याधर आये। अवसर पाकर रानी रूपिणी ने कनकमाला की बड़ी प्रशंसा की। राजा कालसंवर ने भी प्रद्युम्न की विद्या के लाभ का वर्णन किया और उसका शीघ्र ही विवाह कर देने की इच्छा प्रकट की। शुभ-मुहूर्त में उसका विवाह रति नामकी एक श्रेष्ठ विद्याधर कन्या के साथ कर दिया गया।

प्रद्युम्न एवं रति के विवाह के पश्चात् रानी रूपिणी एवं सत्यभामा का सम्मिलन हुआ, दोनों में उग्र वार्त्तालाप एवं वसुदेव, बलभद्र द्वारा शान्ति स्थापित किए जाने के बाद प्रद्युम्न के विवाह के लिए अन्य अनेक राजाओं को निमन्त्रण-पत्र प्रेषित किये गये।

समयानुसार उसके विवाह के अवसर पर मण्डप की सुरुचि-सम्पन्न सजावट की गयी। युवतियाँ नाट्य-रसों के भावों से युक्त गीत गाने लगीं। मन्त्रित देशों के राजा उसमें सम्मिलित हुए और उसी समारोह के बीच 500 कन्याओं के साथ प्रद्युम्न का विवाह सम्पन्न हुआ। सप्तस्वरों का उच्चारण किया गया एवं विविध प्रकार के नेग हुए (1-7)।

प्रद्युम्न के विवाहों से सत्यभामा पूर्ववत् ईर्ष्यालु बनी ही रही और प्रतिक्रिया स्वरूप उसने भानुकुमार का विवाह अपने विद्याधर भाई रविकांत की पुत्री स्वयंप्रभा के साथ रचा दिया (8)।

विवाहोपरान्त प्रद्युम्न जब सुखपूर्वक कालयापन कर रहा था, तभी पूर्व जन्म का उसका भाई कैटभ एक दिन स्वर्गलोग से दर्शनार्थ सीमन्धर स्वामी के पास आया वहाँ आकर उसने उनकी अभ्यर्थना की और उनसे धर्मोपदेश सुना। सीमन्धर स्वामी ने कैटभ के पूर्व जन्म का उल्लेख करते हुए बताया कि "तुम्हारे पूर्व जन्म का भाई 'मधु' दारामई के राजा श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में जन्मा है। यह सुनते ही वह देव राजा श्रीकृष्ण के पास गया (9-10)। उस (कैटभ के जीव-देव) ने राजा कृष्ण को एक सुन्दर हार देकर कहा कि "यह हार जिस रानी को दिया जाएगा, उसी की कुक्षि से अलगे जन्म में, मैं अपना जन्म धारण करूँगा।" यह सुनकर श्रीकृष्ण ने वह हार सत्यभामा को देने के उद्देश्य से उसे उद्यान में बुलाया। प्रद्युम्न को जब यह विदित हुआ तब उसने एक चमत्कारी अँगूठी पहना कर जाम्बवती का सत्यभामा जैसा रूप बनाकर उसे कृष्ण के पास भेज दिया (11-12)। उसके पश्चात् ही वह देव स्वर्ग से चय कर जाम्बवती के गर्भ में आ गया। जाम्बवती ने अवसर पाकर वह अँगूठी

प्रद्युम्न को वापिस कर दी। उधर श्रीकृष्ण का आदेश पाते ही सत्यभामा उनके पास पहुँची और कुछ दिन उनके साथ रह कर वापिस लौट आयी (13-14)।

योग्य समय पर दोनों रानियों (जाम्बवती एवं सत्यभामा) को पुत्रों की प्राप्ति हुई। जाम्बवती के पुत्र का नाम शम्बुकुमार एवं सत्यभामा के पुत्र का सुभानु रखा गया। बड़े होने पर दोनों पुत्रों ने द्यूत-विधि आरम्भ की। शम्बुकुमार ने उसी प्रसंग में सुभानु से एक कोटि स्वर्ण-मुद्राएँ जीत लीं। अपने पुत्र की पराजय देखकर सत्यभामा ने द्यूत-विधि में एक मुर्गा भेजकर दो करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की बाजी लगायी। किन्तु शम्बुकुमार ने प्रद्युम्न की सहायता से उसे भी जीत लिया। तत्पश्चात् सत्यभामा ने सुगन्धित फल भेजा। उसे भी जीत लिया गया, साथ ही चार करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ भी। इस प्रकार शम्बुकुमार ने आठ, सोलह, बत्तीस, चौंसठ एवं 128 करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ जीत लीं। अन्त में सत्यभामा ने 256 करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की शर्त लगा कर एक मायामयी सेना भेज कर शम्बुकुमार को यह कहलवाया कि वह इसे भी जीत कर दिखाये। प्रद्युम्न के विद्याबल की सहायता से शम्बुकुमार ने उसे भी जीत लिया और जीता हुआ सार धन तत्काल ही उसने याचकों को बाँट दिया (15-18)।

सत्यभामा ने दुखी होकर तडितवेग नामक विद्याधर—सेवक को अपने भाई चन्द्रोदर के पास भेजा। चन्द्रोदर की पत्नी का नाम शशिलेखा तथा पुत्री का नाम अनुन्धरी था। सुभानु से प्रभावित होकर चन्द्रोदर ने अपनी पुत्री अनुन्धरी का विवाह उसके साथ कर दिया। इधर रूपिणी ने भी अपने पुत्र प्रद्युम्न एवं भतीजे शम्बुकुमार के विवाह के लिए अपने भाई रूपकुमार (कुण्डिनपुर का राजा) के पास सन्देश भेजा। किन्तु उसका भाई इस तरह क्रोधित हो उठा जैसे "मीन राशि का शनीचर" रौद्र हो उठता है (19-21)। तब प्रद्युम्न और शम्बुकुमार स्वयं ही कुण्डिनपुर गये और वहाँ चाण्डाल एवं डोम का वेश बनाकर उन्होंने रूपकुमार से कन्या की माँग की, जिससे वहाँ के सभी लोग उनसे चिढ गए और उन्हें मारने दौड़े। किन्तु प्रद्युम्न ने अपने विद्या-बल से वहाँ के समस्त नर-नारियों को चाण्डाल-चाण्डाली बना दिया और वहाँ की समस्त पुत्रियों का अपहरण कर उन्हें दारामई ले आया, किन्तु साथ में ही अपने मामा रूपकुमार को भी बन्दी बनाकर लाना नहीं भूला (चौदहवीं सन्धि)।

प्रद्युम्न रूपकुमार को वैसे ही बाँध लाया जैसे रावण-पुत्र इन्द्रजीत ने पवनपुत्र (हनुमान) को बाँधा था। किन्तु कृष्ण और बलराम ने रूपकुमार को आदर-सम्मान देकर छोड़ दिया (1)।

रूपकुमार अपनी बहन रूपिणी के चरण कमलों का स्पर्श कर अपनी नगरी को वापस लौट गया और प्रद्युम्न अपनी रानियों के साथ विभिन्न क्रीड़ाएँ एवं मनोविनोद करता हुआ अपना समय सुख-पूर्वक व्यतीत करने लगा। एक बार चैत्रमास के समान मुख वाला वह प्रद्युम्न फागुन मास के नन्दीश्वर पर्व पर कैलाशगिरि पर जिनवरों की वन्दना-पूजा करने हेतु गया। वहाँ उसने चौबीसों जिनेश्वरों की स्तुति कर 108 कलशों से प्रभु का अभिषेक किया एवं अक्षत, दीप लेकर पूजा की (2-8)।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण नेमि प्रभु के दर्शनों को गये। वे नेमिप्रभु, जिन्होंने महाभारत के युद्ध में अग्रणी रहने वाले जरासन्ध को मार कर अर्धचक्री पद प्राप्त करने वाले श्रीकृष्ण को अपने हाथ की छोटी अँगुली से भी तौल दिया था तथा पांचजन्य-शंख को उन्होंने सरलतापूर्वक तुरन्त ही बजा दिया था और जब उन्हीं नेमिप्रभु ने वैराग्य धारण किया, तब उनके साथ 1000 राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की और वरदत्त राजा के यहाँ जिन्होंने सर्वप्रथम पारणा की थी, सभी प्रकार के तपों को करते हुए जब उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई, तब देवताओं ने एक कलापूर्ण

विस्तृत समवशरण की रचना की। उन्हीं नेमिप्रभु के समवशरण में त्रिखण्डाधिपति कृष्ण समस्त परिवार तथा सैन्य एवं दस-दसार राजाओं के साथ दर्शनार्थ आये एवं उनका धर्मोपदेश सुनकर द्वारिका वापस लौट आये (10-12)।

नेमिप्रभु समवशरण सहित विहार करते हुए उपदेश करने लगे। जब पुनः नेमिप्रभु द्वारका आये तब श्रीकृष्ण पुनः उनके समवशरण में पहुँचे। उन केवलज्ञानी प्रभु ने धर्म, जीव, एवं संसार की नश्वरता आदि पर अमृतमय उपदेश दिये, साथ ही हलधर (बलभद्र), हरि (कृष्ण) के पूर्वभवों के वर्णन भी किये और भविष्यवाणी की कि मदिरापान से सारा देश विनाश को प्राप्त होगा द्वीपायन मुनि के कोप से समस्त दारामई जलकर नष्ट हो जाएगी एवं जरदकुमार के हाथों से कृष्ण की मृत्यु होगी। यह सुनकर प्रद्युम्न को वैराग्य हो गया और उसने दीक्षा धारण करने की श्रीकृष्ण एवं रूपिणी से आज्ञा माँगी, जिसके कारण रूपिणी विलाप करने लगी एवं मुरारी (श्री कृष्ण) तथा राम (बलभद्र) शोकाकुल हो गये (13-20)। किन्तु इन्द्र ने अपनी मधुर-वाणी में रूपिणी को सान्त्वना दी। तत्पश्चात् प्रद्युम्न ने दीक्षा धारण की। उसके साथ ही शम्भु, भानु, सुभानु, अनिरुद्ध आदि ने भी दीक्षा ग्रहण की। इनके दुख से विह्वल होकर रूपिणी, एवं सत्यभामा के साथ राजमहल की अनेक महारानियों ने भी आर्यिका के व्रत ग्रहण किये (21-22)। प्रद्युम्न ने घोर तपश्चरण किया। गुणस्थान का आरोहण कर, कर्म-प्रकृतियों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया, तत्पश्चात् अघातिया कर्मों को नष्ट कर निर्वाण लाभ किया (23-27, पन्द्रहवीं सन्धि)।

(3) पज्जुण्णचरिउ एवं अन्य प्रद्युम्नचरितों में विवेचित प्रद्युम्न-चरित के साम्य-वैषम्य का संक्षिप्त तुलनात्मक मानचित्र

यह पूर्व में चर्चा की जा चुकी है कि प्रद्युम्न महाभारत का एक प्रमुख पात्र है। वैदिक एवं जैन-परम्परा के कवियों ने उसके चरित को अपने-अपने दृष्टिकोणों से विकसित किया है। कुल-परम्परा एवं कुछ प्रमुख घटनाओं की दृष्टि से यद्यपि दोनों के कथानक प्रायः एक समान हैं, फिर भी घटना-क्रमों में कहीं-कहीं पर्याप्त अन्तर आ गया है। उनके घटनाक्रमों का तुलनात्मक चित्र इसी ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठों पर परिशिष्ट के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(4) पज्जुण्णचरिउ : काव्यशास्त्रीय-अध्ययन

(1) महाकाव्यत्व

महाकवि दण्डी ने महाकाव्य के तत्वों का निर्देश करते हुए उसमें निम्न लक्षणों को आवश्यक माना है.—-(1) सर्ग बन्धता, (2) आशीर्वचन, (3) मंगलाचरण, (4) सज्जन संकीर्त्तन एवं दुर्जन- निन्दा, (5) नायक के समग्र-जीवन का निरूपण (6) उदात्त-गुणों से युक्त ऐतिहासिक एवं पौराणिक नायक का चित्रण, (7) शृंगार, वीर तथा शान्त इन तीन रसों में से किसी एक का अंगीरस के रूप में तथा अन्य रसों का सहायक के रूप में निरूपण, (8) एक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का होना, किन्तु अन्त में छन्द-परिवर्तन तथा अन्तिम-छन्द में ही आगामी कथा-वस्तु की सूचना, (9) कथावस्तु की उत्कर्षता एवं घटना-वैविध्य-हेतु प्रासंगिक कथाओं का नियोजन, (10) सागर, सरिता, नगर-यात्रा, सन्ध्या, सूर्योदय, षड्ऋतु आदि के वर्णन, (11) महाकाव्य में विविधता और यथार्थता, इन दोनों के ही सन्तुलित रूप, (12) महाकाव्य में विविधता और यथार्थ। (13) महदुद्देश्यता, (14) चतुर्वर्ग प्राप्ति कामना तथा (15) संघर्ष, साधना, चरित्र-विकास आदि का रहना अनिवार्य होता है। महाकाव्य का निर्माण

युग-प्रवर्तनकारी परिस्थितियों के बीच में सम्पन्न किया जाता है।[1]

महाकाव्य के इन लक्षणों के आलोक में प्रस्तुत "पज्जुण्णचरिउ" महाकाव्य की कसौटी पर खरा उतरता है। इसमें महाकाव्य के उपर्युक्त प्रायः सभी लक्षण वर्तमान हैं। चूँकि अपभ्रंश में सर्ग के स्थान पर सन्धि का प्रयोग होता है, अतः वह सर्गबद्ध न होकर सन्धि-बद्ध है तथा उसकी कथावस्तु 15 सन्धियों में विस्तृत है। कथावस्तु पुराण-प्रसिद्ध है। इसमें शृंगार, वीर और करुण रस अंग रूप में और शान्तरस अंगी के रूप में प्रस्तुत है। वस्तु व्यापारों में नगर, समुद्र, पर्वत, नदी, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, उपवन, सैनिक-प्रयाण, युद्ध, विजय, स्वयंवर, दूत-प्रेषण आदि के सुन्दर चित्रण हैं। कथावस्तु की दीर्घता के साथ-साथ उसमें महा-काव्योचित भावों की बहुलता एवं गम्भीरता भी पाई जाती है। इसका नायक 169 पुराण पुरुषों में से एक है। वह अतिशय पुण्यवान् एवं अनेक कलाओं का स्वामी है। जैन परम्परा के अनुसार वह 21वें कामदेव के रूप में प्रसिद्ध है। इस महाकाव्य में प्रतिनायक का अभाव है। यद्यपि प्रद्युम्न का संघर्ष कालसंबर एवं कृष्ण के साथ होता है, किन्तु वे खलनायक नहीं हैं। क्योंकि खलनायक का कार्य सर्वत्र नायक को परेशान करना होता है और इस कारण पाठकों के हृदय में उसके प्रति कोई सहानुभूति नहीं रहती। प्रस्तुत काव्य में ऐसा कोई पात्र नहीं है, जिससे प्रद्युम्न का सदैव विरोध रहा हो। अतः इस काव्य-ग्रन्थ में प्रतिनायक का अभाव है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य में महाकाव्य के इतिवृत्त, वस्तुव्यापार-वर्णन, संवाद, भावाभिव्यंजना आदि सभी अवयव अपने सन्तुलित रूप में विद्यमान हैं।

(2) वस्तु-व्यापार-वर्णन

कवि ने प०च० में प्रसंग प्राप्त द्वीप, देश, नगर, नदी, पर्वत, समुद्र, उपवन, अटवी एवं षड्ऋतु आदि के वर्णन बड़ी ही आलंकारिक शैली में किये हैं। उदाहरणार्थ कुछ वर्णन यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

(क) **देश वर्णन**:—सौराष्ट्र देश प्राचीन-साहित्य एवं संस्कृति का प्राण रहा है। वैदिक, बौद्ध एवं जैन-साहित्य में उसके श्री-सौन्दर्य का वर्णन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। कवि सिंह ने भी उसके अन्तर्बाह्य-सौन्दर्य एवं श्री-समृद्धि का विशद वर्णन किया है। उसके अनुसार सौराष्ट्र-देश प्राकृतिक-शोभा और श्री-समृद्धि से परिपूर्ण है। पथिक-जन अपने साथ इस प्रदेश में भोजन-सामग्री लेकर नहीं चलते। राजमार्गों के दोनों पार्श्वों पर स्थित फलों की लम्बी पंक्तियाँ स्वयमेव उनके लिए यथेष्ट पाथेय प्रदान करती हैं। द्राक्षारस से युक्त मंडप-स्थान जगह-जगह पर पथिकों की तृषा को शान्त करते हैं (दि० 1/6/11-12)। वहाँ की नारियाँ दूध एवं शक्कर से युक्त भोजन पथिकों को कराती रहती हैं (दि० 1/7/11-12)।

(ख) **नगर वर्णन**:—कवि ने दारामई (द्वारावती अथवा वर्तमान द्वारिका 1/9, 1/10), कुण्डिनपुर (2/11/10), पुण्डरीकिणी (4/10/9, 14/9/10), कोशल (5/11/5), अयोध्या (5/11/5) आदि नगरों की समृद्धि का वर्णन किया है, जिसमें दारामइ नगर का वर्णन विस्तार से उपलब्ध होता है। कवि ने उसमें नगर की बाह्यान्तर-रचना के साथ-साथ वहाँ के नागरिकों के सुखद-जीवन का आकर्षक वर्णन किया है, साथ ही, वहाँ के लोगों के धार्मिक एवं वाणिज्य सम्बन्धी कार्यों का भी मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है (1/9/2, 1/10/4)। प०च० के अनुसार दारामइ नगर में अत्यन्त सुन्दर सौधतल थे, जिन पर लहराती ध्वजाएँ स्वर्ग को स्पर्श करती थीं। प्राकार के चारों ओर चार गोपुर थे। स्थान-स्थान पर कल्पवृक्षों के समान सुन्दर और सरस फल लगे थे। उसके प्रत्येक

1. काव्यादर्श 1/2।

पट्टन की दुकानों में विविध बहुमूल्य रत्न शोभायमान रहते थे (1/10/1-6)। समुद्र अहर्निश उस नगरी की सेवा कर अपने को धन्य मानता था, और परस्त्रियों अर्थात् नदियों को वह उसी प्रकार भूल गया था, जिस प्रकार दशमुख रावण अपनी प्रियतमाओं को भूल गया था (1/10/10)।

(ग) **उपवन** — कवि सिंह ने प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक उपवनों का सजीव चित्रण किया है। उसके अनुसार वे सभी उपवन प्राकृतिक-शोभा और समृद्धि से परिपूर्ण थे। नील वर्ण वाले उन उपवनों में स्थान-स्थान पर सरोवर बने हुए थे जिनमें कमलों के समूह सुशोभित होते रहते थे और जहाँ सुगन्धित शीतल-समीर बहती रहती थी। उन कमलों का अलिगण चुम्बन करते रहते थे और वे अपनी सुरम्यता से पथिक जनों का मन मोहते रहते थे (1/7/1-4)। वे उपवन लतागृहों से वेष्टित थे (3/1)। वसन्तागमन एवं राजाओं के उद्यान-क्रीडार्थ- गमन के प्रसंगों में कवि द्वारा किया गया उद्यान-वर्णन, वहाँ पर अवतीर्ण वसन्तश्री और उसका मनमोहक वातावरण पाठकों के हृदय में निश्चित ही मदनोल्लास को जागृत करता सा प्रतीत होता है। (3/4, 6/17, 15/4)

(घ) **समुद्र वर्णन** — कवि ने दारामइ-नगरी के श्रेष्ठ सौन्दर्य का वर्णन करते समय समुद्र-वर्णन को एक रूपक के रूप में प्रस्तुत किया है (1/11) तदनुसार पयोनिधि द्वारावती के सभी पापों को अपने में समाहित करने के कारण ही खारा हो गया है। यद्यपि वह पयोनिधि अपने सभी रत्न एवं मौक्तिक-प्रवाल उस नगरी को अर्पित कर देता है, तो भी वह (नगरी) उसका कोई आदर नहीं करती। इस कारण वह अपनी चंचल-लहरों रूपी बाँहों को ऊपर उठा-उठा कर रात-दिन बावला होकर पुकारता रहता है और उछल-उछल कर रोता रहता है, कि जो-जो मेरे सार-रत्न थे, उन सभी को लेकर भी यह द्वारावती चुप होकर बैठ गयी है। यह स्थिति देखकर जल के समस्त जीव-समूह आकुलित हो उठे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों मच्छ, मगर, कर्कट जैसे जन्तु समुद्र को छोड़कर आकाशमार्ग में चले गये हों और राशियों के बहाने वे तारागणों से मिल गये हों। यहाँ कवि ने मगर, मच्छ एवं कर्कट के रूप में मीन, मकर एवं कर्क राशियों की कल्पना की है। इस प्रकार प०च० का समुद्र वर्णन अत्यन्त आलंकारिक एवं कवि की कल्पना-शक्ति का उत्तम उदाहरण है।

(ङ) **षड्ऋतु-वर्णन** — कवि ने प्रसंगवश छह-ऋतुओं के वर्णन किए हैं किन्तु वसन्त के वर्णन में कवि का काव्य-कौशल अनुपम है। कवि ने रूपक के माध्यम से वसन्त का अद्भुत वर्णन प्रस्तुत किया है। उसके (कवि सिंह के) लिए सिंहाकृति में ही ऋतुराज वसन्त के दर्शन हो रहे हैं। उसके वर्णनानुसार वसन्त-ऋतु का आगमन हो गया है। चतुर्दिक प्रकृति प्रफुल्लित है, पुष्पों के गुच्छहार एवं लता-वितानों के वन्दनवार सर्वत्र अँगड़ाइयाँ भर रहे हैं। उधर वनों में वनराज सिंह भी शीत से छुटकारा पाकर, वसन्त का उन्मुक्त-भाव से स्वागत करने की तैयारी में है। कवि ने दोनों का समन्वय जिस शैली में किया है, वह सर्वथा मौलिक, नवीन एवं अनुपम है। कवि कहता है—कि उस वसन्त-ऋतुराज रूपी सिंह का मुख फाल्गुन के दिन के अन्त के समान भास्वर एवं दीप्त था। जवा-कुसुम ही जिसके लाल-लाल नेत्र थे, बेला, मल्लिका आदि पुष्प ही जिसके दर्शन थे, अतिमुक्त (तिल-पुष्प) कुसुम ही जिसकी नासिका और अतिवृत्त कुसुम ही जिसके जगत में श्रेष्ठ श्रुति-कर्ण थे। रुण-झुण करने वाले भ्रमरों की गुंजार ही उसका स्वर था, मनोहर कुन्द-पुष्प ही उसके तीक्ष्ण नख थे। इस प्रकार बहु मंजरी से चपल, अभिन्न कर वाला वह वसन्त रूपी हरि (सिंह) द्वारावती में प्रकट हुआ जिसके भय से शिशिर-ऋतु रूपी करि (हाथी) स्वत: ही नष्ट हो गया। (3/4/3-7)

प०च० में मधुमय वसन्त के आगमन पर महाकवि सिंह ने फाल्गुन-मास को ऋतुराज वसन्त का दूत माना

है तथा वह उसके द्वारा शीतकाल की इतनी तीव्र भर्त्सना कराता है कि उसे केदार की ओर बलात् पलायन करना पड़ता है। उसके पीठ फेरते ही जो प्रियतम परदेश गये हुए थे, उन्हें अपनी प्रियतमाओं का स्मरण हो उठता है और वे लौट-लौट कर घर वापिस आने लगते हैं। (6/16)

इस प्रसंग में कवि सिंह पर महाकवि कालिदास के मेघदूत का प्रभाव लक्षित होता है तथा कवि सिंह के इस वर्णन का प्रभाव सम्भवतः कवि जायसी के पद्मावत पर पड़ा है। जायसी ने भी शरद्काल का वर्णन करते समय बतलाया है कि पूस के महीने में इतना जाड़ा पड़ने लगा कि सूर्य भी लंका में जाकर आग तापने लगा।[1] सिंह एवं जायसी के वर्णन में अन्तर केवल इतना ही है कि कवि सिंह का शीत केदार पर्वत पर चला जाता है जब कि कवि जायसी का सूर्य सिंहल में प्रवासी होकर आग तापने लगता है किन्तु दोनों की कल्पना का मूल उत्स समान ही है।

एक प्रसंग में तो कवि की भावुकता देखते ही बनती है, जहाँ उसने एक विशिष्ट-पूजा के समय पुष्पार्पण करते समय कल्पना की है कि यह पुष्पार्पण नहीं, किन्तु उसके बहाने विशिष्ट पूजा के अवसर पर प्रकृति द्वारा समग्र वसन्त-ऋतु का ही समर्पण है। (15/8/4)

प०च० में वसन्त आगमन के अन्य उपादानों की सूचनाएँ भी यथास्थान उपस्थित की गयी हैं। यथा — आमों में बौर लगना (6/17/1), वनस्पति का फूलना (6/16/17), प्रोषितपतिकाओं, मानिनी नारियों एवं कामी जनों की मदोन्मत्तावस्था (6/17) आदि-आदि।

ग्रीष्म — ग्रीष्म ऋतु का उल्लेख कवि ने सीधे न करके प्रद्युम्न की क्रीड़ाओं एवं तपस्या के माध्यम से किया है। प्रद्युम्न को ग्रीष्म-ऋतु में चन्दन-समूह तथा अन्य शीतल पदार्थों के लेपन, नारियल, द्राक्षासव, शर्करा, केला, गाढ़े दही या कर्पूर निर्मित सुगन्धित पानकों के सेवन तथा लतागृह में निवास करते हुए चित्रित किया गया है (15/3/11-13)।

तपस्या-वर्णन-प्रसंग में भी कवि ने ग्रीष्म-ऋतु का जो वर्णन प्रस्तुत किया वह श्रमण-तप का एक बिम्ब उपस्थित करता है। मुनिगण ग्रीष्म-काल में दिगम्बर रूप से गिरि-शिखर पर समभाव से प्रखर-सूर्य की किरणों को सहते थे, जिसके कारण उनका शरीर कृश एवं जल-मल से लिप्त हो गया था (7/6/1-2, 15/23/18)।

वर्षाकाल — प०च० में अग्निभूति-वायुभूति की अन्तर्कथा के प्रसंग में वर्षा-ऋतु का यथार्थ चित्रण किया गया है। (4/16) इस प्रसंग में वर्षा ऋतु के आगमन पर बादलों का लटक जाना, मेघों की गर्जना, बिजली की कौंध, घनघोर-वर्षा तथा उसमें पृथिवी एवं आकाश का एकमेक हो जाना तथा बाढ़ का आ जाना और लगातार सात-दिनों की वृष्टि से पशु-पक्षियों की विकलता का हृदय-स्पर्शी वर्णन पाया जाता है (4/16/12-18)।

मुनियों के तप-वर्णन प्रसंगों में भी वर्षा-ऋतु का वर्णन हुआ है (15/23/19)।

इसी प्रकार कवि ने हिम, शिशिर (3/4, 9/9 15/4/9) एवं शरद (15/4/8) के भी सुन्दर वर्णन किए हैं।

उषःकाल-सूर्योदय — सूर्योदय का वर्णन हर्षोल्लास का प्रतीक माना गया है। कवि ने उसका वर्णन करते हुए कहा है कि — तम रूपी रज का प्रभंजक, जनरंजक, अरुणाभ-सूर्य जब निषधाचल के शिखर पर उदित हुआ, तब वह ऐसा प्रतीत होता था, मानों कंकेलि का लाल-पुत्र ही हो, अथवा दिग्गजों पर लाल-छत्र ही तना हो अथवा मानों पीन-पयोधर नारियों का मुख-मण्डन करने वाले कुंकुम का पिण्ड ही हो (6/22/6-8)। कवि का यह वर्णन उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

---

1. पद्मावत, 350/1।

सूर्यास्त — सूर्यास्त-वर्णन भी कवि ने उत्प्रेक्षाओं एवं कल्पनाओं के माध्यम से किया है। इस प्रसंग में उसने सूर्य को सन्ध्या के रक्त से लिपटा हुआ पिण्ड बताया है और कहा है कि अपने इसी दोष को मिटाने के लिए वह सूर्य अपने शरीर-प्रक्षालन हेतु समुद्र की ओर चला गया है और उसने अपने को समुद्र में डुबा दिया है (6/19/7-8)।

रात्रि-चन्द्रोदय — रात्रि एवं चन्द्रोदय का वर्णन कवि ने काम से विह्वल कामीजनों की उदीप्त चेष्टाओं को चित्रित करने के प्रसंग में प्रस्तुत किया है। कवि ने सूर्य के समान ही चन्द्रमा की अनेक उत्प्रेक्षाएँ की हैं। उसे सूर्य को गला देने वाला, दुर्जनों को पीडा देने वाला तथा शृंगारमय खजाने का कुम्भ-कलश (6/20/2-3) कहा है। कवि को वह ऐसा प्रतीत होता है, मानों शिवजी के सिर का रत्न ही हो, या कामदेव के पाँच वाणों को तेज धार देने वाला शान (पत्थर) ही हो (6/20)। यह वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण शैली तथा मानवीय-भावनाओं के उद्दीपन कारक के रूप में चित्रित हुआ है।

रात्रि के प्रारम्भ होते ही कवि ने दूतियों के गमनागमन (6/21/7) मानिनी नारियों के मानभंग (6/20/11) एवं प्रिय-वियोग में चकवी का दुःखी होकर कुरर-कुरर ध्वनि करने आदि के हृदय-स्पर्शी रूप चित्रित किए हैं। अन्यत्र एक स्थल पर कवि ने कल्पना की है कि चन्द्रमा की चाँदनी से ऐसा प्रतीत होता है, मानों सारे जगत ने क्षीरोदधि में स्नान ही कर लिया हो। वायस भी हंस की भांति दिखाई दे रहे हैं और सरोवरों में कुमुदनियाँ खिलकर हर्षोन्मत्त होकर झूम रही हैं (6/21)।

उक्त वर्णनों के अतिरिक्त प० च० में पुरुष की वीरता, सुन्दरता एवं उसके धार्मिक-आचरण पर भी कवि ने विशेष जोर दिया है, क्योंकि एक ओर जहाँ बल-वीर्य पुरुषार्थ एवं पराक्रम से देश की सुरक्षा एवं स्वस्थ-समाज का निर्माण होता है वहीं दूसरी ओर धार्मिक-आचरण से पारस्परिक विश्वास का प्राबल्य एवं अनुशासन की प्रवृत्ति भी बढ़ती है।

ऐसे वर्णनों में निम्न प्रसंग दृष्टव्य हैं। यथा—

श्रीकृष्ण की वीरता का वर्णन—

चाणउर विमद्दणु देवइ णंदणु संख-चक्क-सारंगधरु।
रणे कंस-खयंकरु असुर-भयंकरु वसुह तिखंडहिं गहियकरु।। *1/12/9-10*

सैन्य-प्रयाण-वर्णन—

वलियसेण्ण पयभरु पयभरु असहंतिए आकंपिउ भए तसिय धरत्तिए।
फणि सलिवलिय टलिय गिरि ठायहो णियवि पयाणहो महुमहरायहो।। *6/13/9-10*

धार्मिक आचरण—

राएण राउ मउ माणु चत्तु समभावए मण्णिउं सत्तुमित्तु।
तिणु कंचणु पुणु मणे तुल्ल दिट्ठि णवि रूसइ अहण कयावि हिट्ठ।। *7/3/4-5*

सौन्दर्य-वर्णन—

पडिपट्टणेत्त गट्ठिय विचित्तु ससि-सूर कंत कर-णियर-दित्तु।
कंचण-मण सिंहासण सुणेह णं मेरु-सिहरि णव-कण्ण मेह।। *1/14/5-6*
भुवणत्तय जणस्स सुमणोहर सविलासें ण सक्कउ।
दाणालीढ-करुव-रयणं सुज्जोइउ सहइ णंगउ।। *15/4/1-2*

वीरोचित गुणों के साथ-साथ कवि ने मानव के दोषों की भी चर्चा की है। कवि की दृष्टि में मद्य-पान (15/19/5), द्यूत-क्रीड़ा (14/15/10) एवं कामासक्ति (8/18/8) जीवन के महान् शत्रु हैं। उन्हें समाज एवं राष्ट्र का घुन माना गया है।

(3) रस

भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार कर उसके महत्व का विशद् विश्लेषण किया है। उनके अनुसार मात्र शब्दाडम्बर ही काव्य नहीं, बल्कि उसमें हृदय-स्पर्शी भावों का होना भी नितान्त आवश्यक है। अत: शब्द और अर्थ यदि काव्य रूपी शरीर की संरचना करते हैं, तो रस उसमें प्राणों की प्रतिष्ठा करते हैं। वीणा के तारों को छेड़ने से जैसे झंकृति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार हृदय-स्थित भावनाएँ भी काव्य का सम्बल पाकर उसमें रस का संचार करती हैं, इसलिए रस को 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' कहा गया है।

महाकाव्य युग-जीवन की समग्र चेतना को अपने में आत्मसात् किये होता है। अतएव महाकाव्य में विविध घटनाओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप रसों की संयोजना स्वत: होती ही चलती है।

प्रत्येक महाकाव्य में एक रस अंगी होता है तथा शेष रसों की स्थिति उसके सहयोगी के रूप में होती है। प्रस्तुत काव्य का प्रारम्भ शृंगार-रस से हुआ है और अमृत पयस्विनी सुरसरिता की प्रवाहमयी धारा के समान विभिन्न रसोद्रेकिनी घटनाओं एवं कथा-मोड़ों को पार करता हुआ वह शान्त-रस के निर्मल-रत्नाकर में पर्यवसान को प्राप्त होता है। सिंह कवि ने शृंगार के साथ-साथ वीर, रौद्र, भयानक अद्‌भुत, करुण, वात्सल्य एवं शान्त रसों की भी प्रसंगानुकूल उद्‌भावनाएँ की हैं, जिन पर यहाँ संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है:—

शृंगार-रस:— शृंगार-रस का स्थायी भाव रति है और यह संस्कार रूप से समस्त विश्व में व्याप्त है। कवि ने इस रति-भाव को रसावस्था तक पहुँचा कर उसमें बड़ी ही कुशलतापूर्वक आस्वादन-योग्यता उत्पन्न की है। प०च० में शृंगार रस के दोनों पक्षों का निर्वाह बड़ी ही कुशलता पूर्वक हुआ है। यथा—

संयोग-शृंगार— प्रस्तुत ग्रन्थ में संयोग-शृंगार का चित्रण कृष्ण-रुक्मिणी की केलि-क्रीड़ाओं के रूप में आया है। श्रीकृष्ण रुक्मिणी के भवन में शृंगारिक क्रीड़ाएँ करते हुए जब दीर्घकाल व्यतीत करने लगते हैं, तो सत्यभामा को बड़ी ईर्ष्या होने लगती है। एक दिन श्रीकृष्ण सुगन्धित पदार्थों से युक्त पान के चर्वित अंश को चादर के कोने में बाँध कर सत्या के भवन में आते हैं और नींद का बहाना बनाकर वहीं लेट जाते हैं। तब सत्या विचार करती है कि यह सुगन्धित द्रव्य श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के लिए अंचल में बाँध रखा होगा। अत: ईर्ष्यावश उसे खोलकर वह उससे अंगलेप तैयार कर तथा अपने शरीर में उसे पोत कर अपना तन सुवासित कर लेती है। सत्या के इस भोलेपन पर श्रीकृष्ण को हँसी आ जाती है जिसे देखकर वह रुष्ट हो जाती है (3/6/1-5)।

यहाँ पर रुक्मिणी आलम्बन और कृष्ण आश्रय हैं। रुक्मिणी के साथ भोगे हुए भोगों को श्रीकृष्ण सत्यभामा के यहाँ शृंगारोचित सापत्निक-ईर्ष्या के रूप में व्यक्त करते हैं। अत: रति स्थायी-भाव की अभिव्यक्ति होती है।

इसी प्रकार कवि ने दाम्पत्य-रति के अनेक ऐसे अनमोल-चित्र भी प्रस्तुत किए हैं कि उनमें केवल चित्रकार की तूलिका से रंग भर देना ही शेष रह जाता है। राजा मधु और कनकप्रभा की रति-विषयक क्रीड़ा के वर्णन में संयोग-शृंगार का माधुर्य स्वत: स्रवित होने लगता है (6/22)।

श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के साथ द्वारका-प्रवेश के समय कवि ने नारियों की विह्वलता का अपूर्व चित्र उपस्थित

किया है। उसके अनुसार युवतियाँ कृष्ण को आया हुआ देखकर आत्मविस्मृत हो गयीं। किसी ने ताम्बूल के स्थान पर आमलों को मुख में डाल लिया, किसीने घिसे हुए चन्दन को नेत्रों में आँज लिया और अंजन को मुख पर लेप लिया। किसी ने रोते हुए शिशु को पैर ऊपर एवं सिर नीचा कर गोद में ले लिया और उनके पैरों को स्तन-पान करने लगीं (3/2)। इसी प्रकार प्रद्युम्न के द्वारका-प्रवेश के समय नारियाँ काम से विह्वल हो उठती हैं। उनका काम ज्वर बढ़ जाता है (13/17/1-2)। यहाँ दर्शन-जन्य-पूर्वराग नामक शृंगार-रस है।

वसन्त ऋतु का आगमन होता है, नागरिकों के जोडे उद्यान-क्रीड़ा के निमित्त निकल पड़ते हैं, तत्पश्चात् जलक्रीडा (3/4/7-12, 15/4/8, 15/5/1), आदि करने लगते हैं। इन वर्णनों में संयोग-शृंगार की निदर्शना की गयी है।

विप्रलम्भ शृंगार:— संयोग-शृंगार के साथ ही कवि ने विप्रलम्भ-शृंगार की भी उद्भावना की है। जिस समय राजा मधु वटपुर के राजा कनकरथ (हेमरथ) की रानी को छलपूर्वक अपने राजमहल में रोक लेता है, तब उसके वियोग में कनकरथ पागल होकर गलियों में भटकने लगता है। प्रिया के वियोग में उसकी विपन्नावस्था का वर्णन कवि ने बड़ी मार्मिक-शैली में किया है। वह कहता है--

खणे रुवइ हसइ खणे गेउ करइ खणे पढइ खणे चिंतंतु मरइ।
खणे णच्चइ खणे उब्भाइ धाइ खणे अण्ण कवलु उब्भुब्भु खाइ।
खणे लुट्टइ खणे णिय वेसु मुवइ खणे पाय पसारिवि पुणु वि रुवइ। *(7/1/6-12)*

इसी प्रकार राजा मधु कनकप्रभा की प्रचुर आसक्ति एवं उसकी प्राप्ति न होने के कारण विरहाग्नि से संतप्त हो उठता है। शीतलता प्रदान करने वाली सभी वस्तुएँ सन्ताप को वृद्धिंगत ही करती हैं (6/17/9-10)।

इस सन्दर्भ में राजा हेमरथ (कनकरथ) की पत्नी आलम्बन है। उद्दीपन वसन्त ऋतु है। अनुभाव हैं मधु की शारीरिक चेष्टाएँ और संचारी हैं — हर्ष, चिन्ता, औत्सुक्य आदि।

वीर:— वीर-रस के चित्रण में कवि सिंह का मन अत्यधिक रमा है। क्योंकि उसका युग ही ऐसा था कि देश में चारों ओर युद्धों का वातावरण व्याप्त था। कभी तो हिन्दु राजा परस्पर में राज्य-विस्तार की लिप्सा से आपस में ही भिड़ जाते थे और कभी विदेशी आक्रमणों के कारण उन्हें रण-जौहर दिखलाना पड़ता था। अत: तत्कालीन साहित्य में युद्ध-प्रसंगों को प्रमुखता प्रदान की गयी। पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, खुमान रासो, परमाल रासो जैसे ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। पज्जुण्णचरिउ यद्यपि एक पौराणिक-महाकाव्य है, किन्तु कवि ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से भी तत्कालीन युद्ध की झाँकियाँ उसमें प्रस्तुत की हैं और इन प्रसंगों में वीर-रस की सुन्दर उद्भावना की है।

'पज्जुण्णचरिउ के कृष्ण एवं शिशुपाल युद्ध (2/16-20), राजा मधु एवं भीम का तुमुल युद्ध (6/14-15), कालसंवर और प्रद्युम्न-युद्ध (9/17-22) प्रद्युम्न तथा कृष्ण का प्रबल युद्ध (12-13 सन्धियाँ) तथा प्रद्युम्न एवं रूपकुमार-युद्ध (14-23) के वर्णन चित्रोपम रूप उपस्थित करते हैं। युद्ध-प्रसंगों के कुछ उदाहरण यहाँ उपस्थित किए जा रहे हैं:—

सेना की विशालता--

चडाविउ चाउपि सक्क सएहि पिहंतु णहंगणु वज्ज मएहि।
जलंपि-थलंपि णहंगणु तंपि सो मग्गु-अमग्गु ण पूरिउ जंपि।। —*(13/8/14-15)*

सैनिकों की गर्वोक्तियाँ–

युद्ध के साथ-साथ कृष्ण और शिशुपाल, मधु और भीम एवं कृष्ण तथा प्रद्युम्न की युद्ध के बीच परस्पर गर्वोक्तियाँ वीर-रस से ओत-प्रोत हैं—

वुच्चइ जाहि-जाहि मा पइसहि जममुह कुहर दुद्धरे।
तुहुँ सिसुपाल काल खद्धोसि किं जाहि अहिण्ण कंधरे।। *—(2/18/2)*
अह संकहि तो दडहि गडंतरे महु पडिखलइ को भरह अंतरे। *—(6/14/3)*

उपहास— **जा जाइव जीवहि भुंजिसुहु इय उवहसियउ असहंतु दुहु।।** *—(13/9/11)*

युद्ध वर्णन में वीर-रस के स्थायी-भाव उत्साह, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एवं संचारी भावों का सुन्दर निरूपण हुआ है। वस्त्रों की खनखनाहट एवं हाथी-घोड़ों के चिंघाड़ने तथा हिनहिनाने का भी कवि ने सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

रौद्र-रस:— स्वार्थ-विरुद्ध, अनिष्ट अथवा अपमान की स्थिति में उत्पन्न क्रोध के कारण रौद्र-रस की व्यंजना होती है। सत्यभामा के आदर एवं सम्मान न करने पर जब नारद कृष्ण के लिए दूसरी कन्या की खोज में निकलते हैं तब क्रोधित होकर वे इस प्रकार कहते हैं—

वयं णच्चिमो जो अवज्जंत तूरो। ण णच्चामि किं वज्जिए सोअ तूरो। *—(2/1/10)*

धूमकेतु दैत्य अपने पूर्वजन्म के बैरी मधुराजा को प्रद्युम्न के रूप में प्राप्त कर क्रोध में आग बबूला हो जाता है। यथा— **वियारिऊण किंतु णहमि सारमि विचिंतएणिसिंदु वइरु सारमि।**
किं घिवमि उवहिमज्झें वाडवे। पयंडमच्छ सुंसुमार फाडवे।। *—(4/1/12-13)*

यहाँ प्रद्युम्न आलम्बन और धुमकेतु आश्रय है। प्रद्युम्न का शैशव रूप में दिखलाई पड़ना उसका उद्दीपन विभाव है। पत्नी के अपहरण का स्मरण अनुभाव है। आमर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

इसी रस के अन्य प्रसंगों में सत्यभामा एवं रुक्मिणी (14/2/2-5), मधु राजा (6/16, 6/19) एवं कुण्डिनपुर नरेश रूपकुमार (14/21/11-12) आदि के रौद्र-रूप भी द्रष्टव्य हैं। एक अन्य प्रसंग में कवि ने रौद्र-रस की तुलना समुद्र से की है (6/13/12, 6/14/4)। इस कल्पना में कवि की मौलिक सूझ-बूझ का पता चलता है।

भयानक-रस:— भयकारी दृश्यों के दर्शन, श्रवण एवं स्मरण से अथवा प्रतीति से उत्पन्न भय भयानक-रस की व्यंजना कराता है अथवा वीर और रौद्र-रसों के पोषक-तत्वों से भयानक-रस की उत्पत्ति होती है। प०च० में रणस्थली के वर्णन-प्रसंगों में भयानक-रस के अनेक प्रसंग आये हैं। यथा 2/17, 2/18, 6/13/9 तथा 13/5-17। किन्तु उनमें भी वह प्रसंग प्रमुख है, जिसमें प्रद्युम्न अपनी विद्या के द्वारा सिंह का भयानक रूप धारण कर बलदेव के साथ युद्ध करता है, जिसे देखकर वहाँ उपस्थित समग्र जन-समुदाय भयभीत हो उठता है तथा बलदेव भी हताश होकर वहीं मूर्च्छित हो जाते हैं (12/20/8-10, 12/21/1-8)।

इन सन्दर्भों में विभावादि से पुष्ट भय स्थायी-भाव की भयानक-रस में व्यंजना हुई है।

वीभत्स-रस:— रुधिर, अस्थि, मांस, मज्जा, मल-मूत्र जैसी घृण्य-वस्तुओं के दर्शन, श्रवण अथवा स्मरण से उत्पन्न घृणा से वीभत्स-रस की व्यंजना होती है। यौवनोन्मत्ता महिलाओं के पीन-पयोधर, सुपुष्ट जंघाएं एवं गर्वोन्मत्त हाव-भाव, शृंगार-रस के उद्दीपक हो सकते हैं, किन्तु वैराग्यावस्था में वे ही अंग एवं हाव-भाव घृणित प्रतीत होकर वीभत्स-रस की प्रतीति कराने लगते हैं। इन दृश्यों से संसार की अनित्यता का भान होता है और

मानव-मन विरक्ति की ओर अग्रसर होता है। अत: इसे शान्त रस का सहायक-अंग ही माना गया है। प०च० में युद्ध प्रसंगों में वीभत्स-रस के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। यथा— 2/18/9-12, 6/14/9-10 तथा 13/3-14।

इन वर्णन-प्रसंगों में स्थायी भाव जुगुप्सा है। घृणित वस्तु आलम्बन। दुर्गन्ध, कुरूपता आदि उद्दीपन। आँखें बन्द करना, मुख मोड़ना आदि अनुभाव एवं आवेग, व्याधि, ग्लानि, अपस्मार आदि संचारी भाव हैं।

अद्भुत रस:— प०च० में अद्भुत रस के उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। उसकी 10वीं सन्धि से लेकर 12वीं सन्धि के 24 कड़वकों तक के कथा-प्रसंग में अद्भुत-रस के ही दर्शन होते हैं।

प्रद्युम्न एक कृशकाय विप्र के रूप में सत्यभामा के भवन में गया और समस्त खाद्यान्न का भक्षण कर गया, तो भी वह अतृप्त रहा (11/21-22)। इस कृशकाय विप्र को इतना अन्न खाते देखकर किस व्यक्ति को आश्चर्य नहीं होगा?

इसी प्रकार रुक्मिणी के समक्ष की गयी बाल-क्रीड़ाएँ और द्वारका में रौद्र, कुरूप विभिन्न रूपों को धारण कर अनेक अद्भुत कौतुकपूर्ण रूप उत्पन्न करना। ये सभी प्रसंग अद्भुत-रस की मोहक अभिव्यंजना करते हैं। इन विस्मयोत्पादक घटनाओं के द्वारा कवि ने काव्य की रोचकता को द्विगुणित बना दिया है।

वात्सल्य-रस:— वात्सल्य-रस के सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यों में पर्याप्त मतभेद है। उद्भट (8-9वीं ई०) तथा रुद्रट (9वीं सदी ई०) ने वात्सल्य को एक स्वतन्त्र रस के रूप में घोषित नहीं किया, किन्तु भोजराज (11ई० पूर्वार्द्ध) तथा साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ (14वीं सदी) ने वात्सल्य को एक स्वतन्त्र रस घोषित किया है।

प०च० के वात्सल्य वर्णनों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि सिंह ने इस रस की संयोजना स्वतन्त्र रस के रूप में की है।

कवि ने बालक की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं का चित्रण अनुपम कुशलता के साथ किया है। उसने पालने से लेकर किशोरावस्था तक की बालकपन की प्राय: सभी दशाओं के अत्यन्त स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक तथा सरस चित्र प्रस्तुत किये हैं। (3/13, 4/3/8-12, 7/10-12, 12/15)। इस प्रसंग का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

णियलीलईं रंगेविणु थक्कइ ईसीसु-विहसेवि मुहुँ वंकइ।
संवत्थरेण खलंतु पवोल्लइ उट्ठइ पडइ सुकंपइ चल्लइ।
जणणिहि करि अवलंबिवि धावइ।। —*(12/15/7-9)*

उक्त प्रसंगों में स्थायी भाव स्नेह है, आलम्बन हैं माता-पिता। उद्दीपन है इनके प्रति गुणानुराग, अनुभाव रोमांच है तथा संचारी भाव है हर्ष। उक्त प्रसंग में वात्सल्य-रस की बड़ी ही मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

करुण-रस:— अनिष्ट संयोग के कारण हृदयोत्पन्न विषाद का भाव करुण-रस की व्यंजना कराता है। विषादानुभूति वैसे तो वियोग-शृंगार में भी होती है, किन्तु वहाँ विषाद के साथ-साथ भविष्य में प्राप्त होने वाले सम्मिलन-सुख की आशा भी विद्यमान रहती है। अत: वहाँ विषाद-संचारी भाव के रूप में ही विद्यमान रहता है। किन्तु करुणा में अनिष्ट-संयोगजन्य ही विशाद की अनुभूति होती है और भविष्य में उस वस्तु या व्यक्ति के सम्मिलन की आशा नहीं रहती। अत: उस स्थिति में विषादजन्य शोक स्थायी भाव रहता है न कि संचारी। प०च० में करुण-रस की योजना अनेक स्थलों पर हुई है। किन्तु कारुण्य की तीव्र धारा रुक्मिणी के रुदन में उस समय प्रवाहित हुई है, जब उस के प्राण प्यारे सुपुत्र — प्रद्युम्न का अपहरण जन्म लेने के छठवें दिन ही हो जाता है। वह करुण-क्रन्दन करती हुई कहती है

हा पुत्त-पुत्त तुहु केण णियउ फुट्टइ सयसक्कर मज्झु हियउ।
हा वच्छ-वच्छ कुवलय दलच्छ पइँ पेच्छमि कहिँ हउँ सेय तुच्छ।
हा बाल-बाल अलिणीलवाल करयल जिय रत्तुप्पल सुणाल।
हा कंठु-कंठउज्जय सुणास हा-सवण विणिज्जिय मयण-पास।
मोक्कल कल कोंतल तोडणेण कोमल-करयल-उरे ताडणेण।
विहुणिय तणु सिर संचालणेण पाणियल धरणि अप्फालणेण।। **4/5/9-14**

करुण-रस का चित्रण कवि सिंह की अपनी विशेषता है। उनके काव्य के हृदय का तार मानों करुण की तन्त्री से ही निर्मित है। हृदयाकाश में जब वेदना के मेघ घनीभूत होकर आँसुओं के रूप में बरस पड़ते हैं, तब हृदयाकाश स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। प्रस्तुत काव्य में यही स्थिति रुक्मिणी की है। उसके हृदय की तीव्र-वेदना ने आँसुओं के द्वार का नियन्त्रण तोड़ दिया है। प्रद्युम्न के दीक्षा प्रसंग में भी माता रुक्मिणी एवं पिता कृष्ण के विलाप में करुण-रस की सरिता प्रवाहित हुई है (15/20/8-20)। इस कारुण्य रस की धारा प्रारम्भ में तो वेगवती वर्षाकालीन धारा के समान उद्दाम-गति से प्रवाहित हुई है, किन्तु फिर धीरे-धीरे मन्द पड़ जाती है और अन्त में उसमें निर्वेद और त्याग की शरत्कालीन शान्ति तथा पुण्य की प्रसन्नता छा जाती है। यथा— **सच्चहाम रूविणि सिय सेविहिं सुण्हईं समउ अट्ठ-महएविहिं।**
गहियउ वउ रायमइ पवेविणु भिण्णु सरीरु जीउ मण्णेविणु।। —*(15/21/15-16)*

इस सन्दर्भ में स्थायी भाव शोक है, आलम्बन माता-पिता, उद्दीपन वियोग तथा रोदन आदि संचारी भाव हैं।

शान्त-रस:— संसार की अनित्यता का अनुभव अथवा तत्व-जिज्ञासा एवं तत्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद शान्तरस की व्यंजना कराता है।

प०च० में अंगीरस के रूप में शान्तरस की उद्भावना हुई है। उक्त काव्य ग्रन्थ के एतद्विषयक निम्न प्रसंग महत्वपूर्ण हैं—

अग्निभूति-मरुभूति (5/11), सुलोचना (6/6), पूर्णभद्र-मणिभद्र (6/7), राजा मधु-कैटभ (7/4), राजा कनक (8/1), राजा हिरण्य (8/3), राजा वरदत्त (15/12) एवं प्रद्युम्न, शम्बु, भानु, अनिरुद्ध तथा आठ महारानियाँ (15/21)।

उपर्युक्त प्रसंगोपात्त पात्र संसार की अनश्वरता एवं भौतिक-सुखों की क्षणिकता देखकर वैराग्य से भर उठते हैं और उनका हृदय वैराग्य-मूलक शान्तरस से आप्लावित हो जाता है। यह निर्वेद तत्वज्ञान-मूलक होता है।

इन प्रसंगों में स्थायी भाव निर्वेद, संसार की असारता का बोध, आलम्बन, विभाव, उपदेश, अध्यात्म, प्रवचन आदि उद्दीपन। संसार के त्याग की तत्परता, पंचपरावर्तन आदि अनुभाव एवं मति, धृति तथा स्मृति संचारी भाव हैं। शान्त रस की स्थित में विषय-सुख का अभाव होने से आत्म-सुख की समृद्धि होती है।

(4) अलंकार-योजना

भावों की उत्कर्षता का चित्रण तथा वस्तु-निष्ठ रूप गुण एवं क्रिया की तीव्रानुभूति कराने में सहायक होने वाले उपादानों को अलंकार की संज्ञा प्रदान की गयी है। अलंकार-योजना से चूँकि काव्य में सौन्दर्य का समावेश

होता है, अतः भामह ने उन्हें काव्य-शोभा का आधायक-तत्व बताया है।[1] दण्डी ने इसे काव्य के शोभावर्द्धक-धर्म के रूप में माना है। यथा—काव्य शोभा करान् धर्मालंकारान् प्रचक्षते।[2]

अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं, अपितु भावों की अभिव्यक्ति के लिये भी विशेष द्वार माने गये हैं। भाषा की पुष्टि तथा राग की परिपूर्णता के लिए वे आवश्यक उपादान के रूप में मान्य हैं। इन अलंकारों को दो भागों में विभक्त किया गया है—शब्दालंकार एवं अर्थालंकार।

प०च० में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों के ही प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक एवं श्लेषालंकार प्रमुख हैं। अपभ्रंश-काव्य की यह प्रमुख विशेषता है कि उसमें बिना किसी आयास के स्वतः ही अनुप्रासों का आयोजन होता चलता है। उसमें वाक्यों में वर्णों की आवृत्ति एक से अधिक बार होती है। यथा—
जहिं सरवरे-सरवरे कंदोट्टइँ परिमल वलहइँ अइ सुविसट्टइँ। (1/7/1)

यहाँ सरवर-सरवर एवं अन्य पदों में अनुप्रासालंकार है। इसी प्रकार केयूर-हार कुंडल धरहँ कण-कण कणंत कंकण-कराहँ (1, 13, 4) एवं 8/12/1, 8/15/12 आदि में अनुप्रास की सुन्दर योजना की गयी है।

यमकः— जहाँ एक या एक से अधिक शब्द एक से अधिक बार प्रयुक्त हों एवं उनका अर्थ भी प्रत्येक बार भिन्न हो, वहाँ यमक-अलंकार होता है। यथा— **जाउ तहो चारु कणयप्पह कणयरहहो राणी कणयप्पह।**

यहाँ 'कणयप्पह' शब्द के दो अर्थ हैं, प्रथम का अर्थ है—'स्वर्ण की प्रभा के समान और दूसरे 'कणयप्पह' पद का अर्थ है 'राजा कनकरथ की रानी कनकप्रभा।'

इसी प्रकार बाल-बाल (4/5/11), पिरंगद पिरंगद (6/17/3), पडुल-पडुल (6/17/4) वसुन्धरा, वसुन्धरा (6/3/3) में भी यमक अलंकार दृष्टव्य है।

श्लेषः— वाक्य में किसी शब्द के एक बार प्रयुक्त होने पर भी उसके अर्थ एक से अधिक हों, तो वहाँ श्लेषालंकार होता है।

इस अलंकार के द्वारा काव्य में विशेष चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। यथा—

जहिं सुपिहुल-रमणिउँ मंथर-गमणिउँ कय-भुअंग सहसंगिणिउँ।
सच्छंवर-धारिउ जण-मण-हारिउ पण्णतिय व तरंगिणिउँ।। *—1/8/9-10*

यहाँ पर कवि ने श्लेष में नदी-वर्णन करते हुए कहा है कि स्वच्छ-वस्त्र धारण करने वाली, सुन्दर एवं सुपुष्ट रमण फलक वाली, मन्थर गति गामिनी तथा भुजंगी के समान वेणी वाली पण्य-स्त्रियों के समान ही वहाँ की नदियाँ भी स्वच्छ जलवाली अत्यन्त विस्तृत तटों वाली मन्थरगति से प्रवाहित होने वाली एवं भुजंगी के समान सहस्र धाराओं से युक्त थीं। यहाँ सच्छंवर, पिहुल एवं भुअंग में श्लेषालंकार है।

इसी प्रकार भोज्जुअ विचित्तु विंजणहिंफारु (3/9/6) पद में विंजणहिंफारु में श्लेष है। यह दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, एक तो व्यंजन वर्णों (क, ख, ग) के लिए और दूसरा विविध पकवानों के लिए। इसी प्रकार हरी (3/13/8), अद्धवरिसु (15/3/4) में भी श्लेषालंकार द्रष्टव्य है।

पुनरुक्तिः— जहाँ काव्य की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए एक शब्द एक ही अर्थ में पुनरुक्त किया जाता है, वहाँ पुनरुक्ति-अलंकार होता है। यथा—

---

1. रूपकादिरलंकारस्तस्यान्यैर्बहुधोदितः। न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्।। का०लं० 1/13। 2. काव्यादर्श, 2/1।

हले पेक्खु-पेक्खु खज्जंति सास। --(1/8/5)

जहिं सरवरे-सरवरे कंदोट्टइँ। —(1/7/1)

यहाँ एक ही अर्थ में पेक्खु-पेक्खु एवं सरवरे-सरवरे की आवृत्ति से भाव-सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई है। अतः यहाँ पुनरुक्ति अलंकार है।

वीप्सा:— क्रोध, शोक आदि मनोवेगों को प्रभावित करने के लिए जहाँ शब्दों की पुनरावृत्ति होती है, वहाँ यह अलंकार होता है। यथा—

हा वच्छ-वच्छ कुवलय दलच्छ पइँ पेच्छमि कहि हउँ सेय तुच्छ।

हा बाल-बाल अलि णीलबाल करयल जिय रत्तुप्पल मुणाल।। —4/5/10-11

उक्त पद्य में पुत्र शोक की अभिव्यंजना के लिए वच्छ, बाल और 'हा' वर्ण की आवृत्ति वीप्सा की योजना करती है। इसमें शोकोद्गार को मूर्तरूप प्रदान किया है।

उपमा:— अर्थालंकारों में उपमालंकार को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सादृश्यमूलक अलंकारों का तो इसे सर्वस्व माना गया है। इस अलंकार में किसी वर्ण्य-वस्तु की उसके किसी गुण, क्रिया या स्वभाव-विशेष आदि की समानता के कारण किसी अप्रस्तुत वस्तु से तुलना की जाती है। प०च० में इस अलंकार का अनेक स्थलों पर सुन्दर संयोजन हुआ है। यथा—

एक्कहि वयणुल्लउ णिरुवमउ अणेक्कहिँ छण ससहर समउ।

एक्कहिमुहँ सरल पुणु णयणु अणेक्कहो उक्कोइय मयणु।

एक्कहि वर कंठु कंबु हणइँ अणेक्कहे रूउ जि जगु जिणइँ। 3/11/2-5

सिहिगल अलि तमाल सम कुंतल। 12/1/3,

इसमें रुक्मिणी और सत्यभामा के रूप-सौंदर्य की तुलना कवि ने अनेक उपमानों से की है। इसी प्रकार रवि की रानी, चन्द्रमा की रोहिणी तथा इन्द्र की पौलोमी द्वारा राजा अरिंजय के साथ रानी प्रियवदना के शोभित होने का चित्रण किया गया है— **रेहइ पउलोमी इव सक्कहो रविहि रण्ण रोहिणिव ससंकहो।** —5/11/8

उपमेयोपमा:— जहाँ पद में उपमेय की प्रधानता एवं उपमान की हीनता प्रदर्शित की जाय, वहाँ उपमेयोपमा अलंकार होता है। कवि ने रुक्मिणी के श्रेष्ठ सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए इसी अलंकार का प्रयोग किया है। यथा— **ससि सकलंकु कमलु खणे वियसइ अणुवमु वयण पंकयं।** —2/10/1

अर्थात् शशि तो कलंक सहित है तथा कमल क्षण में विकसित होता है और नष्ट हो जाता है। किन्तु इसका मुख-कमल दोनों की उपमा रहित अनुपम है अर्थात् मुख कलंक रहित और सदा विकसित रहता है।

हीनोपमा:— कवि सिंह ने उपमा के चित्रण में हीनोपमा अलंकार का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। यथा—

पणमिय चलण-कमल रूवए कह। वण देवियइमि वणदेवय जह। —14/1/10

कनकमाला रूपिणी के चरण कमलों में किस प्रकार प्रणाम करती है? इसी प्रकार, जिस प्रकार कि वनदेवता, वनदेवी के चरणों में प्रणाम करता है। वनदेव के द्वारा वनदेवी को प्रणाम करने के कारण यहाँ हीनोपमा-अलंकार है।

रूपक:— जब उपमेय में उपमान का निषेध रहित आरोप किया जाय तो रूपकालंकार होता है। समुद्र में नायक का आरोप कर कवि कहता है कि वह अपनी चंचल-तरंग रूपी विशाल भुजाओं से द्वारका के नितम्ब—तट को दूर करता हुआ द्वारका रूपी परस्त्री के संग के भय से दूर हट जाता है। यथा—

पसरिय कल्लोलहिँ, भुयहिँ विसालहिँ णं णियंवु विप्फालइ।
खणे संकिवि फिट्टइ पुणुवि पयट्टइ मूढउ अप्पउ खालइ।। *—1/10/11-12*

सिंह में वसन्त ऋतु का आरोप करके भी कवि ने रूपकालंकार की सुन्दर संयोजना की है। यथा-

फग्गुदिणंतभासुरवयणु जासवण कुसुम-लोहिर-रयणु।
वेइल्लमल्लि-फुल्लिर-दसणु साहार लुलिय णव-दल रसणु।
अयवत्त कुसुम सुइज्ज अपवरु रुणु-रुणिर भमर गुंजारि सरु।
कंकेल्लि पसूण विरुल-णहरु वह मंजरि चवलुग्गिण्णकरु।। *—3/4/3-6*

इसी प्रकार एक अन्य प्रसंग में भी फागुन मास को दूत बना कर (6/16/12-13, 3/4/3-6) एवं पूजा के प्रसंग में पूजा की सामग्रियों में वसन्त का आरोप (15/8/1-6) कर भावों की तीव्र व्यंजना की गयी है।

उत्प्रेक्षा:— जहाँ उपमेय में उपमान की सम्भावना या कल्पना की जाए वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है। नारद को हरि एवं बलभद्र के बीच खड़ा देखकर कवि कल्पना करता है—

हरी-बलहद्दइँ मज्झे मुणिंदु णं कणयतुलं भरे संठिउ चंदु। *—1/15/2*

हरि और बलभद्र के बीच मुनि नारद ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों सुवर्ण-तुला के मध्य चन्द्र ही स्थित हो।

सूर्योदय-सूर्यास्त एवं चन्द्रोदय के वर्णन-प्रसंग में भी कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षाओं की उद्भावना की है। यथा—

कंकेल्लहँ पत्तुव अरुण दत्तुव दिसि गणिहे,
णं तहि मुह-मंडउ कुंकुम पिंडिउ घण-थणहे।
अवरण्हइँ णिवडंतइँ सूरें संझा-रत्त लित्त जहिँ सूरइँ,
तणु पक्खालणत्थ तहिँ चल्लिउ णं अप्पउ जलरासिहिं बोल्लिउ।। *—6/19-22*

इसी प्रकार रुक्मिणी और रति के सौन्दर्य वर्णन एवं प्रद्युम्न तथा कृष्ण की वीरता के प्रसंगों में भी कवि ने अनेक सुन्दर उत्प्रेक्षाओं की योजना की है।

भ्रान्तिमान्:— जहाँ रूप, रंग, कर्म आदि की समानता के कारण एक वस्तु से अन्य किसी वस्तु की चमत्कार-पूर्ण भ्रान्ति हो जाए तब वहाँ भ्रान्तिमान अलंकार होता है। यथा— रानी सत्यभामा उद्यान में श्वेत-वस्त्रधारिणी रूपिणी को वनदेवी समझ कर उसकी स्तुति एवं आराधना करती है। इस प्रसंग में कवि ने भ्रान्तिमान् अलंकार की सुन्दर योजना की है। देखिए— **किमे साविदेवी सुउज्जाणसेवी**
तहो पाय पोम्मा, णुया तीए रम्भा।
सिरेणाविऊणं पयपेय पूणं।। *—3/8/3-12*

सन्देह:— रूप, रंग आदि का सादृश्य होने के कारण उपमेय में उपमान का संशय होने से सन्देहालंकार होता है। नारायण—कृष्ण रुक्मिणी के अप्रतिम-सौन्दर्य को देखकर सन्देह में पड़ जाते हैं और सोचते हैं कि यह गायत्री है या लक्ष्मी अथवा सरस्वती? कहीं यह बुद्धि, सिद्धि, गौरी, शान्ति, कीर्त्ति या शक्ति तो नहीं है? यथा-

किं सुरकुमारि किं लच्छि किण्णु गंधारि गोरि।
किं बुद्धि-सिद्धि-कित्ति-सत्ति-गावित्ती-सरासइ-संति-सत्ति।। *—2/11*

अतिशयोक्ति:— जहाँ पर किसी वस्तु का वर्णन बढ़ा चढ़ा कर किया जाय, वहाँ अतिशयोक्ति-अलंकार होता है। कवि ने प्रद्युम्न के सोलह लाभ एवं युद्ध का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण किया है:—

जो संवरहो णाह कट्ठिवि ठिय भिडिवि रणगंणे तेण विणिज्जिय।

पज्जुण्णकुमारहो रणे दुव्वारहो संख-कुंदे हर-हासे कसु।

वियरंत मुणेविणु मणे विहसेविणु रायईं णियणंदणहो जसु।। —*7/14*

इसी प्रकार 8वीं सन्धि के प्रथम 16 कडवकों के वर्णन-प्रसंगों में भी कवि ने इस अलंकार का खुलकर प्रयोग किया है।

स्वभावोक्तिः— स्वाभाविक वर्णन-प्रसंगों में इसी अलंकार का प्रयोग होता है। कवि ने रुक्मिणी एवं सत्यभामा की गर्भ-दशा का चित्रण उक्त अलंकार के माध्यम से किया है। यथा—

गब्भेहिँ सुंदरीहिमि जायाइमि सालसंगाइँ।
णंदण जसेण वियसइ ईसीसिवि जाइ धवलाइँ।
अइतुंग-पीण-पीवर-थणाहं कसणइं मुहाइँ दुज्जण थणाहं। —*3/12-13*

इसी प्रकार प्रद्युम्न की बाल चेष्टाओं का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। यथा—

थिउ दिणमेक्क मेत्तुं विरम वि तणु णं उवयाचलत्थु मय लंछणु।
पुणु मासद्ध-मास कय संखइँ भीसम-सुय पहिट्ठमण पेक्खइँ।
संवच्छरहं सुअद्ध पमाणिउं णिम्मिउ वउ कलहोय समाणउं।
णिय लीलइँ रंगेविणु थक्कइ ईसीसु-विहसेवि मुहुँ वंकइ। —*12/15*

निदर्शनाः— जहाँ उपमेय का उदाहरण अनेक उपमानों से दिया जाय, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है। बालक प्रद्युम्न की अभिवृद्धि में इस अलंकार की योजना की गयी है। यथा—

सो बालु पज्जुण्ण घरे कालसंवरहो वड्ढइ व ससि कलह **कलु जेम अंबर हो।**

उत्तुंग-घण-कढिण-पीड थणालाण हत्थे-हत्थेवि संवरेइ बालाण।। —*7/12*

परिसंख्याः— जब किसी वस्तु का अन्य स्थलों से निषेध करके केवल एक स्थान पर ही कथन किया जाए तो परिसंख्या-अलंकार होता है। कवि ने द्वारावती का वर्णन करते समय इस अलंकार की योजना की है। यथा—

जहिं कव्व वंधु विग्गहु सरीरु धम्माणुरत्तु जण पावभीरु।
थट्टत्तणु मलणु वि मणहराहँ वर तरुणिहिं पीण पओहराहँ।
हय हिंसुण राय णिहेलणेसु खलु विगय णेहु तिल पीलणेसु।
मज्झण्णयाले गुणगणहु राह परयार-गमणु जहिं मुणिवराह।। —*1/9*

विभावनाः - बिना कारण के जहाँ कार्य की उत्पत्ति का निर्देश किया जाए वहाँ विभावना-अलंकार आता है। प०च० में मुनिराज के आगमन के अवसर पर योग्य ऋतुओं के न रहने पर भी उनके प्रभाव से समस्त वनस्पतियों में ऋतु योग्य फल फूल आ जाने के कारण उसमें उक्त अलंकार की योजना की गयी है। यथा—

ता वणवालइँ कुसुमफल उडुरिउहिं जे उपज्जहिं विमल।
संजायउ जिणवर आगमणु फल कुसुमाउलु संपण्णु वणु।। —*5/13, 15/14*

अर्थान्तरन्यासः— किसी साधर्म्य अथवा वैधर्म्य का प्रदर्शन करने के लिए जब सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाए तब वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। कवि ने समुद्र के वर्णन-प्रसंग में इसका सुन्दर निरूपण किया है— यथा—

सो भुल्लउ पर-परतियहिं केव राहव-घरिणिहिं दहवयणु जेम। —*1/10/10*

सागर दिन-रात द्वारिका नगरी की सेवा में लीन रहकर नदियों को उसी प्रकार भूल गया था, जिस प्रकार दशमुख (रावण) राघव-गृहिणी सीता के कारण अपनी गृहणियों को भूल गया था। यहाँ सामान्य का विशेष से समर्थन किया गया है।

असंगति:— कारण एक जगह हो और कार्य दूसरी जगह, तो वहाँ असंगति-अलंकार होता है। कवि ने कृष्ण का अवलोकन करते समय द्वारका की नारियों को अस्त-व्यस्त रूप में चित्रित कर असंगति अलंकार की सुन्दर योजना की है। यथा—

काइँ घुसिणें अंजिय णयणइँ अंजणेण पीयल पुणु वयणइँ।
काइँ वि डिंभु सढालिउ कडियले सिरु विवरीउ करिवि पयउर उरयले। —*3/2*

व्यतिरेक:— जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय के गुणाधिक्य-वर्णन द्वारा कथन में उत्कर्ष उत्पन्न किया जाए, वहाँ व्यतिरेकालंकर होता है। महाकवि सिंह ने प०च० में रुक्मिणी एवं सत्यभामा के गर्भावस्था वर्णन-प्रसंग में इस अलंकार का प्रयोग करते हुए कहा है कि एक का कण्ठ शंख को जीतने वाला था तो एक का रूप जगत को जीतने वाला था। यथा— **एक्कहे वरकंठु कंबु हणइँ अणेक्कहे रूउ जि जगु जिणइँ।** —*3/11/4*

सहोक्ति:— जब सह अर्थ बोधक (संग, साथ, सह तथा इनके अन्य पर्याय वाचक) शब्दों के बल पर एक ही क्रिया-पद दो अर्थों का बोध कराता है तब सहोक्ति अलंकार होता है। सत्यभामा रुक्मिणी से सौतियाडाह रखती है, किन्तु कृष्ण के उपहास करने पर वह रूपिणी के साथ अपनी छोटी बहिन का सम्बन्ध स्थापित करके कृष्ण को ही धिक्कारने लगती है। यथा—

रूविणि वि मज्झु सा ससु कणिट्ठ उग्गालु सु तहे तुह काइँ धिट्ठ।
जइ लाविउ तो महु णत्थि दोसु स सहोयराइँ सहुँ कवणु रोसु।। —*3/6/8-9*

(5) बिम्ब-योजना

बिम्ब-योजना में किसी वस्तु का सर्वांगीण वर्णन न कर मात्र उस वस्तु के भाव-चित्र को इस रूप में उपस्थित किया जाता है कि वह (चित्र) पाठकों के हृदय-पटल पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ता चलता है। यह परिभाषा देते हुए डॉ० नगेन्द्र के ये विचार स्मरणीय हैं---काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस-छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।[1]

इस प्रकार की बिम्ब-योजना प०च० में अनेक स्थलों पर उपलब्ध है। उनमें से कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

1. प०च० में राजा मधु का नख-शिख वर्णन न करके कवि ने उसकी तेजस्विता और वीरता के वर्णन द्वारा एक भावात्मक-बिम्ब उपस्थित किया है। —*(6/14-15)*
2. रुक्मिणी एवं रति का नख-शिख वर्णन, विषयगत होते हुए भी पाठक पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ता है —*(2/10, 8/16, 12/1 देखें)*।
3. गर्भवती-माता की दिन-प्रतिदिन परिवर्तित हुई दशा का यथार्थ-बिम्ब। —*(देखें 3/11-12)*

1. काव्य-बिम्ब, पृ० 5 (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967)।

4. कलाधर चन्द्र की कला के समान, एवं द्वितीया के चन्द्र के समान प्रद्युम्न का दिनों-दिन बढ़ने का बिम्बात्मक वर्णन। —*(दि० 7/12, 7/13)*
5. प्रद्युम्न के युवावस्था को प्राप्त कर लेने पर उसके रूप, गुण का यशोगान राजभवन, पुर, पट्टन सभी जगह जय-जय ध्वनि के साथ गाया भी जाने लगा। नगर की कोई भित्ति ऐसी नहीं थी, जहाँ उसका अनुपम चित्र न लगा हो। शंख के समान, कुन्द पुष्प के समान एवं हास के समान उसके धवल-यश से सारा भुवन धवलित हो उठा। यह बालक की यशोवृद्धि का बिम्बात्मक वर्णन है। —*(दि० 7/14/7-11)*
6. प्रद्युम्न को देखकर पुर-नारियों की कामविह्वल अवस्था सम्बन्धी बिम्ब। —*13/17*
7. प्रद्युम्न-कृष्ण युद्ध के समय हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, अस्त्रों की टकराहट, कोलाहल एवं रुदन आदि के बिम्ब। —*(12/24-28, 13/1-16)*

(6) छन्द-योजना

अपभ्रंश के प्रमुख छन्द 'दूहा' तथा उसकी कडवक-पद्धति पर पूर्व में प्रकाश डाला जा चुका है। इसमें सन्देह नहीं कि अपभ्रंश-साहित्य छन्द-विधान की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। यह समृद्धि आकस्मिक नहीं, इसके विकास के पीछे एक दीर्घकालीन काव्य-परम्परा रही है। प्रो० एच०डी० बेलंकर की गम्भीर गवेषणाओं के निष्कर्ष के अनुसार महाकवि स्वयम्भू के पूर्व 6 छन्द शास्त्री हो चुके थे, जिनमें से अर्जुन एवं गोशाल की सूचना तो रत्नशेखर (12वीं सदी) ने तथा चउमुह एवं गोइन्द की सूचना महाकवि स्वयम्भू ने दी है। अन्य दो की केवल सूचना मात्र ही है, उनके नाम अज्ञात हैं। महाकवि स्वयम्भू ने उनमें चउमुह एवं गोइन्द की रचनाओं के कुछ उद्धरण अपने 'स्वयम्भू-छन्दस्' नामक ग्रन्थ में उद्धृत किये हैं। त्रिभुवन-स्वयम्भू ने एक उद्धरण के द्वारा यह भी सूचना दी है कि चउमुह ने ध्रुवक एवं पद्धड़िया-मिश्रित छन्द प्रदान किया। कुछ भी हो, उक्त शोधों से यह निश्चित होता है कि स्वयम्भू के पूर्व अपभ्रंश छन्द पर्याप्त विकसित हो चुके थे। दुर्भाग्य से स्वयम्भू-पूर्व का तद्विषयक साहित्य अनुपलब्ध रहने से उनके विषय में अधिक लिखना सम्भव नहीं। यह अवश्य कहा जा सकता है कि स्वयम्भू ने सम्भवतः उस साहित्य को देखा था और वे उससे प्रेरित-प्रभावित अवश्य हुए होंगे तथा युगीन-परिस्थितियों तथा विषयागत प्रसंगों के अनुकूल परम्परा-प्राप्त छन्दों में उन्होंने कुछ संशोधन-परिवर्तन-परिवर्धन भी अवश्य किये होंगे।

स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धवल, वीर, धनपाल, नयनन्दि प्रभृति कवियों ने अपभ्रंश-छन्दों का लगभग एक निश्चित रूप स्थित कर दिया था और इस प्रकार पज्जुण्णचरिउकार को छन्दों की एक विशाल एवं समृद्ध-परम्परा प्राप्त हुई।

पज्जुण्णचरिउ एक पौराणिक महाकाव्य है। उसमें प्रद्युम्न के अपहरण, संघर्ष एवं राज्य-प्राप्ति के बाद उसके साधक-जीवन का चित्रण मिलता है। इन प्रसंगों में कवि को विविध छन्दों के प्रयोग का अवसर नहीं मिल पाया है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि उसे अनेक प्रकार के छन्द-प्रयोगों की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। पूर्वोक्त वर्णन-प्रसंगों मे कवि ने जिस प्रकार की छन्द योजना की है, वह पद्धडी, अलिल्लह पादाकुलक आदि छन्दों के आगे-पीछे घत्ता, वस्तु-छन्द, गाथा और द्विपदी, ध्रुवक आदि जोड़कर उनसे कडवक छन्द को संयोजित कर उनमें अपने वर्ण्य-विषय को नियोजित किया है।

प०च० में कवि ने जिन छन्दों के प्रयोग किए हैं, उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

छन्द-नाम	लक्षण	पज्जुण्णचरिउ के उदाहरण
पद्धडिया	मात्रिक — मात्रा 16, अन्त जगण	1/9
पादाकुलक	मात्रिक — 16 मात्रा, सर्व लघु, अथवा अन्त गुरु अथवा अन्त ल, ग	1/12
द्विपदी	मात्रिक — 28 मात्रा, अन्त ल, ग	2/1-20; 9/13-24, 15/2-28
चारुपद	मात्रिक — मात्रा 10 अन्त ल	5/15, 7/15
चन्द्रलेखा	मात्रिक — मात्रा 8, अन्त ग, ल अथवा ल, ग	8/8, 11/5
चतुष्पदी	मात्रिक — विभिन्न मात्राओं वाला छन्द	13 सन्धि
	12 मात्राएँ, अथवा	13/5
	23 मात्राएँ, अथवा	13/6
	16 मात्राएँ, अथवा	13/7
	22 मात्राएँ	13/17
आरणाल (षट्पदी)	मात्रिक — मात्रा 29 (12+8+9)	10/16
अलिल्ला	मात्रिक — मात्रा 16, अन्त, ल, ल	10/11
सुतार	मात्रिक — 38 मात्राएँ, अन्त में ल, ग प्रारम्भ में 'नगण'	10/6
षट्पदी	मात्रिक — मात्रा 28 (10+8+10) पदान्त 'सगण'।	10/19
मधुभार	मात्रिक — मात्रा 8 अन्तलघु	11/5
दुवई	मात्रिक — मात्रा 23, अन्त में लघु अपवाद रूप में	15/1
गाथा (परपथ्या)	मात्रिक — मात्रा 12, 18, 12, 15	अन्त्य-प्रशस्ति
त्रोटनक	मात्रिक — मात्रा 16, अन्त ल, ग	13/6/5, 13, 14
करमिकरभुजा	मात्रिक — मात्रा 8, अन्त ल, ग	1/2, 5/14
उष्णिका	वर्णिक — वर्ण 7, र, ज, ग	3/14
वंशस्थ	वर्णिक — वर्ण 12, ज, त, ज, र	8/17 अवहट्ट्य
भुजंगप्रयात	वर्णिक — वर्ण 12, य, य, य, य	2/1, 3/8
नि:श्रेणी	वर्णिक — वर्ण 11, र, ज, र, ल, ग	8/9/3-4
शार्दूलविक्रीडित	वर्णिक — वर्ण 19, म, स, ज, स, त, त, ग	1, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15 के अन्त में
स्कन्धक (खंडिया)	विषम मात्रिक छन्द — मात्रा 14, 16, 14, 13 14, 10, 14, 12 अन्त रगण	9/1–12
वस्तु-छन्द	विषम मात्रिक छन्द — मात्रा, 15+27+26 + दोहा	4/1 से 4/17

(7) भाषा

दृश्य जगत के प्रति संवेदनशीलता, अदृश्य के प्रति मानसिक उद्वेग, संस्कार जन्य स्वाभाविक वृत्ति, सहज अनुभूति, भावानुगामिनी भाषा एवं शैली ही किसी प्रबन्ध-काव्य के प्रमुख आधार होते हैं। इसीलिए काव्य-प्रणेताओं ने भाषा को काव्य एवं विचारों का शरीर एवं अनुभति को आत्मा माना है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि भाषा-शैली ही कवि एवं उसके काव्य की कसौटी है। इस दृष्टि से प०च० की भाषा एवं शैली का अध्ययन अत्यावश्यक है। संक्षेप में उसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:-—

प्रस्तुत मूलरचना में तीन प्रकार की भाषाओं के प्रयोग किए गए हैं— (1) अपभ्रंश, (2) प्राकृत, एवं (3) संस्कृत।

संस्कृतभाषा यद्यपि प०च० की प्रमुख भाषा नहीं है। वह केवल रचना-प्रशंसा, कवि-प्रशंसा, आश्रयदाता-प्रशंसा अथवा प्रशस्ति-पद्यों के रूप में ही प्रयुक्त है, फिर भी वे प्रशस्ति-पद्य दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं:-— (1) शब्द-प्रयोगों की दृष्टि से एवं (2) कवि के अपभ्रंशेतर-भाषा-ज्ञान की दृष्टि से।

प्रयुक्त संस्कृत-पद्य, प्राकृत एवं अपभ्रंश से पूर्णतया प्रभावित हैं। कवि के भाषा-ज्ञान को देखते हुए यह ज्ञात होता है कि यदि वह चाहता तो इन पद्यों में संस्कृत-भाषा के नियमित शब्द-प्रयोग कर सकता था, किन्तु कवि चूँकि प्राकृत एवं अपभ्रंश-भाषा का भी पण्डित था, अत: उसने इन पद्यों में प्राकृत एवं अपभ्रंश-भाषा के मिले-जुले प्रयोग तथा अपभ्रंश-पद्यों के बीच-बीच में भी संस्कृत-पद्यों की संरचना की। उसके कुर्व्वन् (कुर्वन् के लिए, दे० सन्धि-1 अन्त में), सर्व्व (सर्व के लिए — सन्धि 9 अन्त में) मटंब (मडम्ब के लिए, सन्धि 10 के अन्त में) एवं संकुर्व्वतीदं (संकुर्वतीदं के लिए, सन्धि 10 के अन्त में), धर्म्म-कर्म्म (धर्म-कर्म के लिए), पंडित (पण्डित के लिए) एवं गूर्ज्जर (गुर्जर के लिए, सन्धि 12 के अन्त में), तर्क्क (तर्क के लिए, सन्धि 13 के अन्त में), गर्व्व (गर्व के लिए — सन्धि 14 अन्त में), जैसे शब्द-प्रयोग दृष्टव्य हैं, जिनमें प्राकृत-व्याकरण के नियमानुसार विजातीय-व्यंजन के लोप के कारण सम्बद्ध व्यंजन के द्वित्व का रूप तो दिखाई पड़ता है, किन्तु जिस (दुर्बल—) व्यंजन के स्थान पर द्वित्व किया गया, वह स्वयं लुप्त न होकर यथावत् सुरक्षित रह गया है। उन्हीं मिले-जुले रूपों के प्रयोग कवि ने किए हैं। टवर्गीय 'ट' ध्वनि के स्थान में प्राय: 'ड' वर्ण हो जाता है, फिर भी यहाँ 'ट' ध्वनि यथावत् रूप में मिलती है।

समस्त संस्कृत-पद्य शार्दूल-विक्रीडित-छन्द में लिखे गए हैं। इनमें यद्यपि कहीं-कहीं मात्राओं का भंग दिखलाई पडता है, किन्तु वह दोष निश्चय ही प्रतिलिपिकार की अज्ञता अथवा प्रमादवश हुआ है।

इन संस्कृत श्लोकों की कुल संख्या 8 है जो सन्धि संख्या 1, 9, 10, 11, 12, 13 एवं 14, 15 के अन्त में अंकित किए गए हैं।

प्राकृत

प०च० में उपलब्ध पद्यों में प्राकृत-भाषा के प्रयोग भी द्रष्टव्य हैं। यद्यपि इन पद्यों की प्राकृत तथा अपभ्रंश के उकार-बहुल के भेद को छोड़कर अन्य भेद खोज पाना प्राय: कठिन ही है। कवि ने अपभ्रंश-पद्यों के बीच में कुछ तो अपने-ज्ञान-प्रदर्शन के लिए और कहीं-कहीं शैलियों एवं छन्दों के वैविध्य-प्रदर्शन हेतु ही प्राकृत के उक्त-सुप्रसिद्ध पद्य—'गाहा' का प्रयोग किया है। प०च० में सन्धि तीन का प्रत्येक कड़वक गाहा-छन्द से प्रारम्भ

हुआ है (इस सन्धि में कडवकों की कुल संख्या 14 है)। इसी प्रकार 11वीं सन्धि का प्रत्येक कड़वक गाहा-छन्द से प्रारम्भ हुआ है (कडवकों की कुल संख्या 23)। यद्यपि ये प्राकृत-पद्य आनुषंगिक हैं, फिर भी सोने की अँगूठी में जड़े हुए नग के समान वे काव्य-सौन्दर्य को बढ़ाने में सक्षम हैं।

प०च० की मूल भाषा अपभ्रंश है। उसका संक्षिप्त अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:—

पज्जुण्णचरिउ में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ, अनुस्वार एवं अनुनासिक स्वरों के प्रयोग मिलते हैं तथा व्यंजनों में क्, ख्, ग्, घ्, च्, छ्, ज्, झ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ्, ब्, भ्, म्, य्, र्, ल्, व्, स्, ह् के प्रयोग मिलते हैं।

स्वर-वर्ण विकार

(1) संस्कृत की **ऋ ध्वनि** के स्थान पर 'पज्जुण्णचरिउ' में अ, इ, उ, ए एवं रि के प्रयोग मिलते हैं। यथा— कय < कृत् (3/9/14), किण्ह<कृष्ण (10/10/3) णिट्टु<नृत्य (3/1/11), घिण<घृणा (5/1/20), पुहवि<पृथिवी (8/16/11), गेहु<गृह (5/9/6), रिद्धिंजण<ऋद्धिंजण 3/7/4।

(2) ऐ के स्थान पर ए, अइ, एवं इ के प्रयोग। यथा— वेयाल<वैताल (1/16/10), नेरिउ<नैऋत्य (15/7/1), वेयड्ढ<वैताढ्य (2/3/6), वेरि<वैरी (3/15/7), कइलासो<कैलाश (15/5/8), कइडिहु<कैटभ (6/1/1) वइरिय<बैरी (5/2/3), चित्त<चैत्र (15/5/1), वइवसपुरि<वैवसपुरि (13/14/8), तइलोउ<त्रैलोक्य (4/14/8)।

(3) **'औ'** ध्वनि के स्थान पर 'ओ' एवं 'अउ'। यथा— कोसल<कौशल (5/11/5), गोरी<गौरी (2/11/3), सोहयल<सौधतल (1/12/5), सउ<सौ (2/19/12), गउड<गौड (6/3/12)।

(4) **ङ्, ण, न् एवं म्** के स्थान पर अनुस्वार। जैसे— पंक<पङ्क (9/5/8), चंदायण<चान्द्रायण (9/11/5), अरिंजय<अरिञ्जय (5/11/6) ससंक<शशाङ्क (15/7/8), सयंपह<स्वयम्प्रभा (14/8/9), सयंभूरमण<स्वयम्भूरमण (14/8/9)।

(5) **स्वरों का आदि, मध्य एवं अन्त्यस्थान** में आगम। यथा— पियारी<प्यारी (9/5/13), दुवार<द्वार (7/3/5), विवसग्गु<व्युत्सर्ग (5/5/5), किवाण<कृपाण (13/12/11), सलि<शल्य (15/5/6), सरय<शरद् (15/4/8)।

(6) **आद्यस्वर लोप**। यथा— छह<अछह (15/28/8), णंग<अणंग (15/4/1)।

व्यंजन वर्ण-विकार

(7) **'रकार'** के स्थान में क्वचित् 'लकार'। यथा— चलण<चरण (12/1/13), कलुण< करुण (10/13/11), (यह अर्धमागधी प्राकृत की प्रवृत्ति है)।

(8) **श, ष् एवं स्** के स्थान में 'स' होता है। कहीं-कहीं ष् के स्थान में 'छ' भी होता है। यथा—सत्ति<शक्ति (2/11/4), साहा<शाखा (4/1/3), पलासु<पलाश (1/6/9), सालि<शालि (1/7/4), छट्ठि<षष्ठि (3/13/11), छट्ठोववास<षष्ठोपवस (15/10/15), छप्पय<षट्पद (3/4/8)।

(9) **'स' के स्थान** पर क्वचित् 'ह' तथा संयुक्त त्स एवं प्स के स्थान पर च्छ। जैसे— दहलक्खण<दसलक्षण (5/15/5), दहवयणु<दसवयणु (1/10/10), उच्छव<उत्सव (15/8/7), अच्छरा<अप्सरा (2/4/4)।

(10) **ध्वनि परिवर्तन** में वर्ण-परिवर्तन कर देने पर भी मात्राओं की संख्या प्रायः समान। यथा— धम्म< धर्म (15/13/12), कम्म<कर्म (9/11/7), णिम्महि<निर्मम (14/16/13), अप्पा<आत्मा (1/10/12), सोमसम्मु<सोमशर्मा

(4/14/13) तथा अपवाद के रूप में माणथंभ<मानस्तम्भ (8/3/7) दिक्ख<दीक्षा 5/15/3।

(11) कुछ ध्वनियों का आमूल-चूल परिवर्तन तथा उनसे **समीकरण** एवं **विषमीकरण** की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। यथा— मउड<मुकुल (1/14/2), पोग्गल<पुद्गल (15/17/9), पुहवि<पृथिवी (8/16/11), पोम<पद्म (4/10/13), चक्की<चक्री (4/12/11), सग्ग<स्वर्ग (6/1/13)।

(12) आद्य एवं मध्य **व्यंजन-लोप**। यथा— थण<स्तन (9/12/9), थेरु<स्थविर (10/2/6), थिउ<स्थिर (7/3/10), थाण<स्थान (15/23/15) सुकेसुया<सुकेतुसुता (14/19/4), वायरण<व्याकरण (1/4/4), वणासइ<वनस्पति (5/12/3)।

(13) **वर्णविपर्यय**— यथा— रहस<हर्ष (15/12/5), णियलु<णिलउ (15/14/7), परिवह<परिहव<पराभव (14/19/1), दीहर<दीर्घ (10/17/12), तिहराहिउ<त्रिपुराधिप (2/12/8)।

(14) **प्रथमा एवं द्वितीया** विभक्तियों के एकवचन में अकारान्त शब्दों के अन्तिम 'अकार' अथवा संस्कृत-विसर्ग के स्थान में प्राय: 'उकार'। कहीं-कहीं ए का प्रयोग भी मिलता है। यथा— चरिउ<चरित (1/5/4), सग्गु<स्वर्गः सलिलु<सलिलः (15/14/4), संपण्णु<सम्पन्नं (15/14/13), पंकयणाहँ<पंकजनाथम् (13/10/8)।

(15) **तृतीया-विभक्ति** के एक वचन के अन्त्य 'अकार' के स्थान में ए का प्रयोग एवं कहीं-कहीं एण का प्रयोग। यथा— मिच्छत्तें<मिथ्यादृष्ट्या (15/24/3), बहुत्तें<बहुतेन (15/24/3), परमेसरेण<परमेश्वरेण (5/15/7), संचालणेण<संचालनेन (4/5/13)।

(16) **तृतीया** के बहुवचन में अन्त्य 'अकार' के स्थान पर एहिं प्रत्यय। यथा— सव्वेहिं<सर्वैः (5/15/12), भव्वेहिं<भव्यैः (5/15/12), मुहेहिं<मुखैः (5/15/12), णंदणेहिं<नन्दनैः (2/16/3)।

(17) **अकारान्त** शब्दों में पंचमी विभक्ति के एकवचन में 'हो' प्रत्यय तथा बहुवचन में हं अथवा हिं प्रत्यय। यथा— तहो<तस्मात् (4/4/11), जंबुदीवहं<जम्बूद्वीपात् (4/2/1)।

(18) **अकारान्त** शब्दों से पर में आने वाले षष्ठी के एकवचन में आसु प्रत्यय एवं बहुवचन में हँ प्रत्यय का प्रयोग। यथा— सुंदरासु<सुन्दरस्य (1/13/9), पुरंदरासु<पुरन्दरस्य (1/13/9), मणहराहँ<मनोहराणम् (1/9/3), पउहराहँ<पयोधराणाम् (1/9/3)।

(19) **स्त्री लिंग** के शब्दों में पंचमी और षष्ठी के एकवचन में 'हे' का प्रयोग। यथा— जाहे<जस्याः (4/3/15), ताहे<तस्याः (2/10/4)।

(20) **क्रिया रूपों** के प्रयोग प्राय: प्राकृत के समान हैं। पर कुछ ऐसे क्रियारूप भी हैं, जो कि विकसित भारतीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं और जिनसे आधुनिक भाषाओं की कड़ी जोड़ी जा सकती है। यथा—

ढोइउ (बुन्देली)	ले जाने के अर्थ में (11/21/2)
हुवउ	होने के अर्थ में (11/13/8)
आयउ	आने के अर्थ में (14/4/10)
वट्टियउ (भोजपुरी-वड़ुए)	होने के अर्थ में (10/10/9)
पुच्छिउ	पूछने के अर्थ में (5/16/2)
अच्छइ (मैथिली छी, मगही त्थी)	है के अर्थ में (10/17/8)

थिय (भोजपुरी – एथी)	'इस' के अर्थ में (11/9/10)
करंतिय (भोजपुरी — करंतिया)	करने के अर्थ में (10/13/3)
चडिउ	चढ़ने के अर्थ में (2/13/3)
बोल्ल	बोलने के अर्थ में (9/1/18)
छाइउ	छाने के अर्थ में (13/15/13)

(21) **वर्तमान कृदन्त** के रूप बनाने के लिए 'माण' प्रत्यय। यथा— विज्जमाण (13/16/7), गिज्जमाण (13/16/7) आदि।

(22) **परसर्गों** में से प०च० में कवि ने निम्न परसर्गों के प्रयेग किए हैं। यथा— केरउ (11/4/7), तणउ (5/16/5), किर (11/22/8)।

(23) **पूर्वकालिक क्रिया** या सम्बन्ध-सूचक कृदन्त के लिए इवि, एवि, एप्पिणु और एविणु प्रत्ययों के प्रयोग। यथा—

√ मिल् + इवि = मिलिवि (3/7/11)।

√ अव + लोक – अवलो + एवि = अवलोएवि (15/21/1)

√ प्र + णव + पणव + एप्पिणु = पणवेप्पिणु (15/1/2)

√ कृ ञ् – कर् + एविण = करेविणु (2/4/12)

√ धृ = धर् + एविणु = धरेविणु (2/4/12)

√ नि-सुण् + एविणु = णिसुणेविणु (14/22/11)

√ प्र + विश् = पइस् + एविणु = पइसेविणु (14/21/4)

(24) इसीप्रकार कवि ने प०च० में निम्नलिखित **संख्यावाची शब्दों के प्रयोग** किए हैं— पढम—प्रथम (6/1/7), विण्णि—दो (10/2/4) तिण्णि—तीन (4/2/7), चउ—चार (15/10/3), चयारि—चार (10/20/8), पंच—पांच (14/5/11), अद्धवरिस—आधा वर्ष अर्थात् छह माह (15/3/4) सत्त—सप्त, अट्ठ—आठ (7/10/4), णव—नौ, दह—दस (5/15/7) एयारह— एकादश—ग्यारह (15/12/4), दोदह—द्वादश—बारह (5/15/7), मासद्ध—मासार्ध —पन्द्रह (दिन) (12/15/5), सोल—सोलह (10/20/9), दुअट्ठ 2 × 8 = सोलह (7/10/4), बावीस—बाईस (5/15/7), बत्तीस (10/20/9), अडसय—अडसठ (15/12/5), सयतिण्णिसट्ठ — 360 (4/2/7), चउसिउ—400 (15/12/3), पंचसय—500 (14/5/11), पण्णारहसय—1500 (15/12/5), एयारहसहस—11,000 (15/12/4), कोडि—कोटि—करोड़ (15/12/4)।

(25) **ध्वन्यात्मक** शब्दों में गडयड (13/11/4), तडयड (13/11/4), गुमगुमंत (8/11/9), घणघेणराउ (8/12/1), रुणरुणंत (11/6/10), चिक्कंत (11/8/14), घग्घरोलि (13/12/13), हिलिहिलि (10/16/12), टलटल (13/13/1), कलयलु (12/27/1), थरहरइ (10/4/6), लुलइ (10/4/10), कसमसंत (13/16/11), सटिसटि (14/6/3), विलिविलि (14/6/3), थुमुथुमिय (14/6/4) जैसे शब्द प्रमुख हैं। ये शब्द प्रसंगानुकूल हैं तथा अर्थ के स्पष्टीकरण में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुए हैं।

(26) अपभ्रंश व्याकरण सम्बन्धी उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त पज्जुण्णचरिउ में ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हुए

है जो भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा जिनके साथ आधुनिक भारतीय-भाषाओं का सम्बन्ध सरलता से जोड़ा जा सकता है। यथा— चोज्ज=आश्चर्य (10/8/1), धरा=पकड़ा (9/17/4), तुट्ट=टूटना (1312/6), चप्प=चाँपना (13/12/15), झंप=झाँपना (13/12/16), फुट्ट=फूटना (13/12/15), रेल्लिउ=ठेलमठेल (बुन्देली 13/11/7) खंचिउ=खींचा (13/10/2), कोवि-कोई (12/15/8), पल्लट्ट=पलटना (12/20/6), उछलिउ=उछला (13/1/2), थड्ढ=थक्का (जमा हुआ) (15/3/12), सावण=श्रावण मास (14/15/3), लिय=लिया (14/16/3), वलेइ=वलैया (14/18/15), पक्खर=पलान (14/24/5), अवसु=अवश्य (बुन्देली-अवस, 15/21/5) खुडंत-खुरचना (15/11/5), चुक्क=चूकना (15/19/6), झाड=झाड़ना (15/26/18), आयउ=आया (14/4/10), गारउ=गर्व (14/3/11), हरम्म=हरम (फारसी, 14/20/7) पलित्ते=पलीता (6/19/2), हक्कारा=हलकारा (बुन्देली, हलकारना) (14/3/17), दुवार=द्वार (बुन्देली, बघेली, 7/3/5) मइरी=माला (ब्रज, 8/19/4) अण्णमणु=अनमना (बुन्देली, 11/11/5) ढुंढुरना=घिसटना (9/8/8), विलख=व्याकुल (13/8/1), थाण—स्थान (बुन्देली, 15/23/15), माइ=माँ (भोजपुरी, 12/7/1), डिंभु=बालक (राजस्थानी, 3/2/11), डोर=डोर (बुन्देली, 11/14/10), तुप्प=घी (भोजपुरी-तूप, हरियाणवी तुप्प, 11/13/12), परसिउ=परोसा (11/21/4) दाल=दाल (11/21/5), तुहार=तुम्हारा (भोजपुरी, 11/12/21) छइल्ल=छैला (10/2/4), डोल्लिय=डोल गया (10/2/3/) भित्ति=दीवार (बुन्देली, भीत, 10/9/5), मुडिवि=मुड़कर (10/2/3), मोट्टु=मोटा (10/9/6), पोट्टु=पेट (10/9/6), धुल=कुशल (10/8/7), भद्दु=भद्दा (9/1/15), हउंमि=मैं हूं (10/10/2), छल्ला=मुंदरी (10/2/11), जेइउ=जितना (10/2/4), खेड्ड=क्रीड़ा (9/2/8), दिवहु=दिवस (14/9/1), वउ=आयु (10/20/5), झोपड=झोपड़ा (9/9/3), पियारी=प्यारी (9/5/13), कुहनी=कुहनी (8/7/10), थण्ण=स्तन (9/21/2), मुसुमूरिय=मसल देना (9/19/12), घिण=घृणा (5/1/20), कायर=कातर (5/6/9), खील=कांटी (बुन्देली, 5/7/6), उसीसो=तकिया (बुन्देली, 3/12/11), पग्गह=पगहा (बुन्देली, 11/6/3), रुक्ख=वृक्ष (बुन्देली, 13/9/18), रसोइ=रसोई (13/5/7), थट्ट=भीड (बुन्देली, 13/3/6), काइं=किसी (राजस्थानी, 3/2/10-11), कसवट्ट=कसकुट (बुन्देली, 3/9/5), पयज्ज=प्रतिज्ञा (अवधी, पैज, 3/9/14), चुलु=चुल्लु (13/6/10), पाहुण=दामाद (भोजपुरी, 14/1/5), भइणि=बहिन (14/21/7), पाव=पैर (11/12/13), लट्ठि=लाठी (11/12/13)।

(8) शैली

किसी भी कवि अथवा साहित्यकार के व्यक्तित्व की झाँकी उसकी कृतियों की रचना-शैली में देखी जा सकती है। प्रत्येक साहित्यकार की कृतियों में अन्य साहित्यकारों की कृतियों की अपेक्षा अपना एक वैशिष्ट्य अवश्य रहता है। इसी वैशिष्ट्य निर्धारण का ही दूसरा नाम शैली है। संस्कृत-साहित्य में जिस प्रकार रसमय अभिव्यंजना के लिए महाकवि कालिदास, अर्थ-गौरव के लिए भारवि, माधुर्य, प्रसाद, ओज, रूप त्रिगुण-समन्वय के लिए माघ, ललित-पद के लिए हर्ष एवं विकट श्लिष्ट-बन्धन के लिए बाण प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार अपभ्रंश में ही मृदु ललित-बन्धन के लिए चउमुह, विकट बन्धन के लिए स्वयम्भू एवं श्लिष्ट-बन्धन के लिए अभिमान मेरु पुष्पदन्त प्रसिद्ध हैं।

महाकवि सिंह के लिए पूर्वोक्त अपभ्रंश-साहित्य की एक विस्तृत पृष्ठभूमि एवं परम्परा उपलब्ध हुई है। अतः उसकी शैली में पूर्वोक्त समस्त परम्पराओं के सम्मिश्रण के साथ-साथ पौराणिक, ललित, प्रबन्धात्मक-शैली का

प्रयोग विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। उसके पज्जुण्णचरिउ को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, कि वह एक साथ प्रबन्ध-काव्य का प्रणेता, दार्शनिक, सैद्धान्तिक, आचारात्मक और आध्यात्मिक गीतियों का उद्गाता तथा भव-भव में भटकने वाले विषयासक्त मानव को विविध धर्मोपदेशों के माध्यम से उनका सम्बोधक भी है। प०च० में उपलब्ध काव्य-शैली को निम्न रूपों में विभक्त किया जा सकता है[1]—

1. प्रबन्धात्मक-कडवक-पद्धति
2. प्रबन्ध-निर्मुक्त-कडवक-पद्धति, एवं
3. गाथा-पद्धति।

(1) प्रबन्धात्मक-कडवक-पद्धति

महाकवि सिंह ने पौराणिक-इतिवृत को ग्रहण कर महाकाव्य की शैली में कडवकों द्वारा सन्दर्भांशों का विभाजन कर प्रस्तुत काव्य का निर्माण किया है। इसमें कवि ने कडवकों का गठन कई प्रकार से किया है। उसने कहीं-कहीं द्विपदी और घत्ता के मेल से, तो कहीं पद्धडिया और घत्ते के मेल से, कहीं गाथा अथवा वस्तु-छन्द के मेल से, कहीं वंशस्थ और घत्ता के मेल से, कहीं भुजंगप्रयात और घत्ता के मेल से कडवकों का रूप निर्मित किया है। कवि का यह कडवक-निर्माण विषयानुकूल ही सम्पन्न हुआ है। कवि जब हाव-भाव अथवा विविध विलास-क्रीड़ाओं का वर्णन करता है, तो वहाँ पद्धडिया और घत्ते से निर्मित कडवक का प्रयोग करता है (यथा— 3/6-9, 6/20, 6/23)।

महाकवि सिंह की कडवक शैली की दूसरी विशेषता है कि उसने ओज, माधुर्य और प्रसाद गुण का प्रयोग विषयानुसार किया है। वह विषयानुसार ही कोमल, मधुर और ओजपूर्ण शब्दों का चयन करता चलता है। जिस समय प०च० के पात्रों को वैराग्य होने लगता है, उस समय की शब्दावली कवि ने इस ढंग से प्रस्तुत की है कि जिससे वैराग्य का बिम्ब उभर कर सामने आ जाता है।

जब कवि किसी साधक मुनि के केश-लौंच का वर्णन करता है, तब उस प्रसंग में प्रयुक्त शब्दावली भी लुंचन करती जैसी प्रतीत होती है। ऐसे प्रसंगों में आई हुई शब्दावलियों को देखिए—

> जंपइ वच्छ-वच्छ कुडिलालय, किह उम्मूलय सहसा आलय।
> सुवहि हंस तूलेमु सकोमले, कहणिसि बासरुगमि सिलयाउले।। *—15/20/10-11*
> अण्हाणु अजिंभणु णिहय करणु सिरलोउ दंतमल पंक धरणु। *—9/5/8*
> उम्मूलिउ सकुडिलु केसपासु णं घाई चउक्कहिं बल पणासु।।
> भूसण स कोस महि पवर धुया छत्तोह-चमर-रह-भत्त-गया।
> परिहरिवि सणेहु सहोयरहं अवहेरि करेवि सेवायरहं।। *—15/10/11-13*

कोपानल-प्रसंग में—

> जो रण भउ-थउ कडणउ सहइ सो किं जीवहुँ जगेणउ लहइ।
> हरिमणे कोवाणलु पज्जलिउ दिक्करि करि अहिमुहु जि चवलिउ।। *—13/9/9-12*

---

1. विशेष के लिए दे० र०सा०आ० परि०।

गर्जन के प्रसंग में—

गज्जइ गडयड-रउरव णद्दइं तडयडंत तडिवि सरिस सद्दइं।
पंचवण्णु उत्तंगु सुसोहणु वलय वि सक्कचाउ मणमोहणु।। *—13/11/4-5*

जब कवि जन-सामान्य की दृष्टि से कोई विशेष समस्या को प्रस्तुत करना चाहता है, उस समय वह तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिए प्रश्नोत्तरी-शैली का प्रयोग करता है। इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उस पर प्रियदर्शी सम्राट अशोक के स्तम्भ लेखों (संख्या 3, 4) में प्रयुक्त प्रश्नोत्तरी-शैली का प्रभाव पड़ा है।

उदाहरणार्थ—

परमेसरु कवणु यह कहिं तणउ महु करिज्जु अछइ। *—4/12/1*
कहइ जिणेसरु रायसुणि जो तिहुवणे सुपसिद्ध। *—4/12/3*
ता मयणेण पयासियं जं जणणी विण्णासियं। *—9/4/2*
तं णिसुणेवि सूरणर खयरवंदु सुणि मयण पयंपइ मुणि वरिंदु। *—9/4/7*
इय वंदिवि जिणुवंदिउ गणहरु आसीणउं णियकोट्ठहिं सिरिहरु।
ता भासइ गणहरु गहिर-झुणि आयण्णहिं गोवद्धणधारण। *—15/1/5/10-16*

युद्ध-वर्णन के प्रसंग में कवि ने वातावरण में आंतक एवं भारीपन उपस्थित करने के लिए चतुष्पदी एवं त्रोटनक से निर्मित कडवक-छन्द के साथ ध्वन्यात्मक-पदों के प्रयोग किये हैं।

रौद्र एवं वीभत्स वर्णनों के प्रसंग में कवि ने 'ट' वर्गीय ध्वनियों के साथ-साथ ध्वन्यात्मक एवं कर्कश शब्दावली का विशेष प्रयोग किया है। यथा—

भग्गरहेहिं मग्गु संचारिवि वड्ढिउ रुहिर महण्णउ फारुवि।
किलिकिलंत वेयाल पणच्चिय जोइणि गण वस कद्दम चच्चिय।
पलया-लुद्धिवि सिव पुक्कारइ हुव रसोइ णं जमु हक्कारइ। *—13/5/7-9*

(2) प्रबन्ध—निर्मुक्त कडवक-पद्धति

प्रस्तुत शैली की कुछ निम्न विशेषताएँ प्रमुख हैं:—

1. मूल-प्रबन्ध के न रहने पर भी उदाहरणों में ही प्रबन्धात्मकता की परिकल्पना।
2. प्रसाद और ओजगुण पूर्ण पदावली का नियोजन।
3. कथा के न रहने पर भी पद्धडिया-छन्दों द्वारा तथ्यों की अभिव्यंजना।

महाकवि सिंह की इस शैली की यद्यपि कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है, किन्तु कवि ने प्रस्तुत रचना के अन्त में एक ऐसे कडवक को प्रस्तुत किया है, जो मूल कथा-भाग से किसी भी प्रकार से सम्बन्धित नहीं है, किन्तु उसका गठन, प्रबन्धात्मक शैली का है। यह कडवक कवि-परिचय, आश्रयदाता-परिचय एवं गुरु-परिचय को प्रस्तुत करता है। यथा—

कइ सीहु सहि गब्भंतरम्मि संभविउ कमलु जिह सुरसरम्मि।
जण-वच्छलु सज्जण जणिय हरिसु सुइमंतु तिविह वइराय सरिसु।।
उप्पण्णु सहोयरु तासु अवरु नामेण सुहंकरु गुणहं पवरु।
साहारणु लहुवउ तासु जाउ धम्माणु रत्तु अइ दिट्ठ काउ।। *—15/29/9-12*

आदि-आदि।

(3) गाथा-पद्धति

पज्जुण्णचरिउ में तीसरी काव्य-शैली गाथा-पद्धति की उपलब्ध होती है। प्रयुक्त गाथाओं की यह विशेषता है कि इन्होंने मुक्तक-काव्य की परम्परा को छोड़ कर प्रबन्ध-काव्य की परम्परा में प्रवेश किया है। ये गाथाएँ कडवक के प्रारम्भ में विषय की उत्थानिका के रूप में आयी हैं। इनकी एक विशेषता यह भी है कि ये ऐसे प्रकरणों में अंकित की गयी हैं, जहाँ शृंगार-विलास एवं कौतुक के प्रसंग आए हैं। उदाहरणार्थ कुछ गाथाएँ निम्न-प्रकार हैं—

एउ रूविणियहि कज्जे वद्धचेलं चलम्मि भणत्ती।
मुणिवि सुयंधं दव्वं सच्चाए विलेवियंअंगं।। छ।। —*3/6/1-2*
बहुलोय भुंजमाणो णवबहु सरिसो पुरम्मि।
महुमहणो अणु-दिणु अणुरत्तमणो अछइ रह लालसो जम्मि।। —*3/4/1-2*
हय-गय-करहा णत्थं खाणे पउरंपि णिम्मियं जंपि।
दिण्णंतं तहो दुरियं सच्चाएसेण सयल मिच्चेहिँ।। —*11/22/1-2*
जं किंपि भव्व वत्थू विवरीयं तं कुणेइ तं सयलं।
भमइव एव कीलाए विप्पो णयरस्स मज्झम्मि।। छ।। —*11/14/1-2*

पज्जुण्णचरिउ में कथानक-रूढ़ियाँ

पूर्ववर्ती अन्य प्रबन्ध-काव्यों की भाँति ही पज्जुण्णचरिउ में भी कथानक रूढ़ियों का निर्वाह हुआ है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि कथानक-रूढ़ियाँ प्रधानत: लोक-विश्वासों एवं सम्भावनाओं की उपज होती हैं। इनसे कथा-प्रवाह में तो गतिशीलता आती ही है, साथ ही कथा में सरसता एवं रोचकता भी उत्पन्न होती है। महाकवि सिंह मूलत: कवि हैं, कथाकार नहीं, अत: उसके पज्जुण्णचरिउ में कथानक-रूढ़ियों के प्रयोग प्रचुर मात्रा में तो नहीं मिलते, फिर भी जो कथानक-रूढ़ियाँ उसमें उपलब्ध हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

1. स्वप्न-दर्शन एवं उनका फल-कथन —*3/10*
2. भविष्यवाणी —*7/10/5*
3. नारद की सक्रियता —*1/15-16, 2/1-10*
4. योग्य वर-प्राप्ति हेतु स्वयंवर —*6/3/9, 6/4*
5. नख-शिख वर्णन —*8/16, 12/1*
6. प्रेमी अथवा प्रेमिका द्वारा चित्र-दर्शन एवं उनमें पारस्परिक आकर्षण —*2/11*
7. प्रिय-प्राप्ति हेतु युवती-कन्या का तपश्चरण —*8/16*
8. निर्जन-वन में प्रेमी-प्रेमिका-मिलन —*10/6*
9. शकुन-अपशकुन —*12/4/2-4, 12/27/8-9, 13/7/3-5*
10. नायक द्वारा विद्या-प्राप्ति —8वीं सन्धि।
11. नायक द्वारा प्रसंगानुकूल वेश-परिवर्तन —*10-11 सन्धियां*
12. भाग्यवाद —*4/8/1, 14/10*
13. पुनर्जन्म-निरूपण —*5-9/4-6, 9/8*
14. दिव्य-विमान द्वारा नभ-यात्रा —*10/3*

15. ऋतु वर्णन —*15/3/5-7, 15/4/3-9, 15/5/1-3*
16. धार्मिक-उपदेशों के प्रसंग, 6, 14, 15 सन्धियाँ
17. अवसर-विशेष पर देवागमन एवं पंचाश्चर्य —*15/11/1*
18. राज्यसभा में देवों का आगमन —*14/11/7*
19. समवशरण में तीर्थंकर-दर्शन कर राजा को वैराग्य —*15/12*
20. साधक-मुनि पर उपसर्ग —*5/5/7-8*
21. मेघ-घटा को देख कर वैराग्य —*6/8/10*

(9) चरित्र-चित्रण

पज्जुण्णचरिउ में अनेक पात्रों का चित्रण हुआ है, किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उनमें से कुछ ही पात्र प्रमुख हैं। यथा—पुरुष पात्रों में से प्रद्युम्न, नारद, कृष्ण, बलभद्र एवं कालसंवर तथा नारी-पात्रों में से रूपिणी, सत्यभामा एवं कनकप्रभा। बाकी के पात्र उस राहगीर के समान हैं, जो मार्ग में कुछ दूरी तक अन्य प्रमुख राहगीरों का किसी कारण-विशेष से कुछ साथ दे कर विरमित हो जाता है। ऐसे पात्र कथा-प्रवाह की दृष्टि से भले ही अपना महत्व रखते हैं, किन्तु उनका चरित्र सामान्य ही है। इस श्रेणी के पात्रों में वसुदेव, राजा भीष्म, रूपकुमार, भानु, सुभानु, शम्बु, जाम्बवती आदि के नाम लिए जा सकते हैं। प्रमुख पात्रों के चरित्र निम्न प्रकार हैं—

प्रद्युम्न

प्रद्युम्न पज्जुण्णचरिउ का धीरोदात्त नायक है। श्रमण-परम्परा के अनुसार चौबीस कामदेवों में उसे 21वां कामदेव माना गया है। उसमें परम्परानुमोदित नायक के सभी गुण विद्यमान हैं। वह अत्यन्त सुन्दर और साहसी गुणों से विभूषित है। अपनी वीरता के कारण वह अनेक विद्याओं और बहुमूल्य सामग्रियों को प्राप्त करता है। उसके जीवन में लगातार प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती रहती हैं, किन्तु वह उनसे रंचमात्र भी विचलित नहीं होता, प्रत्युत बड़े ही साहस के साथ वह उनका सामना कर उनमें सफलता प्राप्त करता है।

विजयार्द्ध-पर्वत के गोपुर में वह एक सर्प से भिड़ जाता है और उसकी पूँछ पकड़ कर उसे पृथिवी पर पटक देता है। कालगुफा एवं नाग-गुफा के राक्षस एवं नागदेव को भी पराजित कर देता है। कपित्थवन में वह करि रूप धारी भयंकर सुर से युद्ध कर उसे भी निर्मद कर डालता है। युद्ध के प्रसंगों में उसकी क्षमाशीलता एवं वीरता का दिग्दर्शन कवि ने बड़ी सुन्दर भाषा-शैली द्वारा किया है। प्रद्युम्न के हृदय में अपने माता-पिता के प्रति अपरिमित श्रद्धा-भक्ति है। वह (अपने माता-पिता से) कहता है कि— "जिसके लिए तुम जैसी माता और राजा कालसंवर जैसे पिता मिले हों, उनके आगे मुझ जैसे पुत्र के लिए इस राज्य में उससे अधिक अच्छा सुफल और क्या मिल सकता है? उसका हृदय गंगा की निर्मल धारा के समान अत्यन्त पवित्र है। उसके मन एवं मस्तिष्क में किसी भी प्रकार का छल-छद्म तथा स्वार्थान्धता नहीं। वह अत्यन्त सौन्दर्यशाली है। उसके अप्रतिम-सौन्दर्य पर मोहित हो कर युवतियाँ किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाती हैं।

प्रद्युम्न अत्यन्त संयमी है, जब उसकी धर्म-माता—कंचनमाला उसे व्यभिचार के लिए प्रेरित करती है, तब वह उसके इस प्रस्ताव को निर्ममतापूर्वक ठुकरा देता है। इतने पर भी धर्म-माता का कहीं अपमान न हो जाये, इस भय से वह स्वयं ही इसका उल्लेख कहीं भी, किसी भी रूप में नहीं करता। उस तथ्य को वह पूर्णतया छिपा

कर ही रखता है। धर्म-पिता—कालसंवर के साथ युद्ध करते समय भी वह इस विषय में मौन ही रहता है और मिथ्या आरोप को सहन करके भी वह राजा कालसंवर के साथ भयंकर युद्ध करता है।

प्रद्युम्न "कौतुकी-स्वभाव" वाला है। अपनी कौतुक लीलाओं के द्वारा वह सभी लोगों को आश्चर्य-चकित कर देता है। इसी स्वभाव के कारण वह अपने पिता कृष्ण से भी युद्ध करता है। माता—रुक्मिणी के प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा एवं भक्तिभाव है। उसके प्रति अटूट श्रद्धा होने के कारण ही वह सत्यभामा को विविध उलझनों में डालता रहता है। माता की व्यथा एवं आकांक्षा को जान कर वह उसके समक्ष अपने अनेक यथार्थ बाल रूपों को प्रस्तुत कर उसे आनन्दित करता है।

अन्त में भगवान् नेमिनाथ के समवशरण में उनके द्वारा 'द्वारका-दहन' की भविष्यवाणी सुनकर वह विरक्त हो जाता है और दीक्षित हो कर कठिन तपश्चरण करता है। अन्त में निर्वाण प्राप्त करता है।

पज्जुण्णचरिउ में प्रद्युम्न के अपरनाम भी मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं—मन्मथ (13/6/13), सर (13/7/2), माण (13/7/11), काम (13/10/16), अहिहाणु — कन्दर्प (13/13/10), मणोवभव (13/13/13), रइरमण (14/24/2), अंगुब्भव (15/8/2), कामपाल (15/22/7)।

श्रीकृष्ण

जैन-पौराणिक मान्यताओं के अनुसार श्रीकृष्ण 9वें नारायण तथा 63 शलाका महापुरुषों में एक युगपुरुष के रूप में प्रसिद्ध हैं। प०च० में उनका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल रूप में वर्णित है। उनकी यद्यपि अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी 16 हजार युवती रानियाँ थीं, फिर भी वे रूपिणी के छाया-चित्र को देख कर उस पर आकर्षित हो जाते हैं और कुण्डिनपुर से उसका अपहरण कर लेते हैं। वे रसिक होने के साथ ही साथ अत्यन्त वीर भी हैं। उन्होंने रूपिणी के अपहरण के समय बलराम के साथ अकेले ही अनेक वीरों को धराशायी कर शिशुपाल का वध कर डाला था और रूपिणी को लेकर द्वारिका वापिस आ गये थे।

वे प्रजा-वत्सल थे। उनके राज्य में चारों ओर सुख-शान्ति व्याप्त थी। परिवार के प्रति उनके मन में बड़ी ममता थी। उनका पुत्र-वात्सल्य आदर्श था। प्रद्युम्न का जब अपहरण हो जाता है, तब वे अत्यन्त विचलित हो उठते हैं और अत्यन्त करुण-विलाप करने लगते हैं। उनका यह विलाप ही प्रद्युम्न के प्रति उनके असीम स्नेह का परिचायक है। द्वारका-दहन की भविष्यवाणी, पुत्रों के वैराग्य एवं रानियों के दीक्षित हो जाने पर भी वे अपने राजकाज में लिप्त रहते हैं, यह उनका अपने दायित्वों के प्रति सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इस प्रकार का चित्रण कर कवि ने श्रीकृष्ण की जन-हितैषिता तथा सर्वोदयी-प्रवृत्ति को अधिक मुखरित किया है।

प०च० में कवि ने कृष्ण के अपरनामों के भी उल्लेख किये हैं जो इस प्रकार हैं-- अद्धचन्द (13/4/14), गोविन्द (12/28/11), हरि (13/5/12), किण्हु (13/5/15), महुमहण (13/6/1), केसव (13/7/5), सिरीहर (13/7/7), माहव (13/7/12), पंकयणाभ (13/13/15), सारंगधर (13/14/15), चक्कपाणि (15/21/4), लच्छीहर (15/9/10), माणस (13/8/3), कंसारि (13/12/9) एवं चक्कनाभ (15/22/8)।

बलभद्र

बलभद्र का चरित्र एक वीर-पराक्रमी महापुरुष तथा कृष्ण के एक परम विश्वस्त निस्वार्थ सहयोगी के रूप में चित्रित किया गया है। वे कृष्ण के बड़े भाई हैं और उसी रूप में वे उन्हें अनुज के रूप में अत्यन्त स्नेह भी

करते हैं। रूपिणी-अपहरण के समय वे ही कृष्ण के सच्चे सहयोगी सिद्ध होते हैं। प्रद्युम्न-अपहरण के समय कृष्ण जब शोकसागर में डूबे रहते हैं, तब बलराम ही उनका कन्धा झकझोर कर उन्हें समझाते-बुझाते एवं धैर्य बन्धाते हैं। कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध में बलराम ही कृष्ण की पूरी सहायता करते हैं।

बलभद्र को सिंह के साथ युद्ध करने में बड़ा आनन्द आता था। वे प्राय: ही उसका आयोजन किया करते थे। प्रद्युम्न को जब इस तथ्य की जानकारी मिलती है, तब वह विद्याबल से स्वयं सिंह का रूप धारण कर उन्हें युद्ध करने को ललकारता है। दोनों में भीषण-संघर्ष होता है और अन्त में बलराम को बुरी तरह पराजित होना पड़ता है।

कवि सिंह ने बलभद्र के अनेक पर्यायवाची नामों का उल्लेख किया है। यथा—सीरायुध (13/4/9), सीरि (13/5/12), हलधर (13/14/14), बलहद्द (13/15/15) एवं राम (15/1/8)।

नारद (अपर नाम बेताल, 1/16/10)

प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य में नारद एक मनोरंजक पात्र है। पौराणिक-कथाओं के विकास में जहाँ कथावरोध होने लगता है अथवा कथानक को जहाँ नया मोड़ देना होता है, वहीं इस पात्र का आविर्भाव होता है। कथा में रोचकता, सरसता एवं जिज्ञासा उत्पन्न करने वाले पात्रों में नारद का विशेष स्थान है। उसके हृदय में क्रोध और स्नेह दो विपरीत भावों का उदय एक साथ ही होता रहता है, जो सामान्य पात्रों के लिए सम्भव नहीं। सत्यभामा जहाँ उसे शत्रु समझती है, वहीं, रूपिणी उसे अपना भाई मान कर, उसके साथ भ्रातृत्व का स्नेह-भाव रखती है। प्रथम सन्धि के अन्तिम कडवक में नारद का आविर्भाव हो जाता है। और 13वीं सन्धि के अन्त तक वह किसी न किसी रूप में कथा को प्रवाह देते रहते हैं। अनेक घटनाओं में नारद ने सक्रियता दिखलाई है। रूपिणी का कृष्ण द्वारा अपहरण, प्रद्युम्न के अपहरण के पश्चात् उसकी खोज, कालसंवर एवं प्रद्युम्न के युद्ध में समझौता, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न-युद्ध के बीच कृष्ण को प्रद्युम्न का परिचय कराने वाले पात्र नारद ही हैं।

नारद अभिशाप के प्रतीक माने गये हैं, किन्तु प्रसन्न होने पर उनके वरदान भी भाग्य- निर्णायक सिद्ध होते हैं। प्रद्युम्न के भाग्य-निर्माण में नारद का प्रमुख हाथ रहा। फिर भी प्रद्युम्न कभी-कभी परिस्थिति-विशेष में अपनी हठधर्मी से नारद को आपत्ति में डाल देता है। नभोयान को आकाश में ही रोक कर तथा उसमें नारद को दीर्घावधि तक बन्द कर प्रद्युम्न द्वारिका में कौतुक करने चला जाता है। इस पर नारद को प्रद्युम्न पर क्रोधित होने का अच्छा अवसर मिला था, फिर भी वे प्रद्युम्न के प्रति क्षमाशील रहते हैं तथा उसे पुत्रवत् स्नेह देते रहते हैं।

कालसंवर

पज्जुण्णचरिउ में कालसंवरविद्याधर राजा के रूप में वर्णित हुआ है। इसका चरित्र उदात्त है। वह वीर एवं पराक्रमी होने के साथ-साथ दयालु भी है। खदिराटवी में नवजात-शिशु के रूप-लावण्य को देखकर वह द्रवित हो जाता है और उसके ऊपर पड़ी हुई विशाल शिला को हटा कर तथा उस शिशु को उठाकर अपने गले से लगा लेता है और उसे अपनी पत्नी कंचनमाला को सौंप देता है। कंचनमाला के अनुरोध पर ही वह (कालसंवर) शिशु के कुल, गोत्र, जाने बिना ही, तथा अपने 500 पुत्रों के होते हुए भी उसे ही युवराज पद प्रदान कर देता है। वह अपना कर्त्तव्य समझ कर उसका उचित लालन-पालन कर उसे सभी शिक्षाओं में निष्णात भी बना देता

है। अन्त में परिस्थिति प्रतिकूल होने एवं कंचनमाला द्वारा पुत्र पर व्यभिचार का सीधा अभियोग लगाए जाने पर पत्नी-भक्त कालसंवर बड़ी वीरता के साथ प्रद्युम्न से युद्ध भी ठान लेता है। घोर युद्ध के बाद नारद द्वारा दोनों में समझौता करा दिया जाता है। इस प्रकार कालसंवर वीर होने के साथ-साथ यद्यपि दयालु है, किन्तु उसके चरित्र में यह एक बड़ी भारी त्रुटि भी दृष्टिगोचर होती है कि वह गम्भीर विचार किये बिना तथा वास्तविक मनोवैज्ञानिक तथ्य को जाने बिना ही अपनी पत्नी का एक पक्षीय स्वार्थपूर्ण एवं आक्रोशपूर्ण कथन सुन कर अपने स्नेही धर्मपुत्र के प्रति भी युद्ध की घोषणा कर देता है।

कवि ने कालसंवर के कुछ अपरनामों के भी उल्लेख किए हैं, जो निम्नप्रकार हैं— जमसंवर (9/12/3) एवं अनसितसंवर (9/5/13, 9/6/11)।

रूपिणी

पज्जुण्णचरिउ के नारी-पात्रों में रूपिणी का चरित्र अत्यन्त धवल, सात्विक एवं प्रभावक है। निसर्ग-सौन्दर्य उसे पूर्वजन्म के सुकृतों के फल-स्वरूप वरदान में मिला था। ऋजुता, विवेक, सहिष्णुता एवं निश्छलता उसके स्वाभाविक गुण हैं। वह श्रीकृष्ण के चित्र को देख कर आकर्षित हो जाती है और उनके साथ द्वारिका जाने के लिए भी तत्पर हो जाती है। उसके मन में सपत्नियों के प्रति किसी भी प्रकार की ईर्ष्या एवं विद्वेष नहीं, यद्यपि उसका यह गुण नारी-स्वभाव के अत्यन्त विपरीत है। पुत्र प्रद्युम्न के अपहरण पर वह अत्यन्त दुःखी हो उठती है और उसका करुण-विलाप गगनभेदी हो उठता है। उस दुःख के कारण वह अपना विवेक खो बैठती है, यहाँ तक कि उसके मन में आत्म-हत्या करने का जघन्य-भाव भी जागृत हो जाता है, किन्तु बाद में नारद के समझाने पर वह धैर्य धारण कर लेती है और 16 वर्षों तक लगातार पुत्र की प्रतीक्षा करती रहती है। वह बड़े ही धैर्य के साथ अपनी सास-ननद की कटूक्तियों को भी सहन कर लेती है तथा अपनी सौत सत्यभामा के आक्षेपों का भी कोई उत्तर नहीं देती।

नारी के क्षमा, दया, ममता, धैर्य, सन्तोष आदि सभी नैसर्गिक गुण उसमें विद्यमान हैं। उसके चरम-सन्तोष का परिचय उस समय मिलता है, जब प्रद्युम्न के पूर्व जन्म का भाई कैटभ (15/11-12) उसी के सगे भाई के रूप में जन्म लेना चाहता है, तब प्रद्युम्न अपनी माता से इस बात का उल्लेख करता है। उस समय रूपिणी कहती है कि — तुम अकेले ही मेरे लिए अनेकों के समान हो, मुझे दूसरे पुत्र की आवश्यकता नहीं, हाँ, यदि कृष्ण की दूसरी उपेक्षिता एवं दुःखी रानी जाम्बवती से वह पुत्र के रूप में उत्पन्न हो, तो मुझे विशेष प्रसन्नता का अनुभव होगा।

वह अत्यन्त ममतामयी नारी है। पुत्र को प्राणों से भी अधिक प्यार करती है। जब प्रद्युम्न को विरक्ति हो जाती है और वह दीक्षा लेने के पूर्व माता से आशीर्वाद ग्रहण करने आता है, उस समय रूपिणी की मनोदशा का कवि ने अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। प्रद्युम्न के चरित्र के क्रमिक उत्थान के साथ-साथ माता के चरित्र में भी उत्तरोत्तर उत्कर्ष आता गया है और वह भी उसके साथ दीक्षा लेकर आर्यिका बन जाती है।

सत्यभामा

सत्यभामा सुकेतु विद्याधर की पुत्री एवं श्रीकृष्ण की पट्टरानी है। ईर्ष्या विद्वेष, कलह, अहंकारिता, स्वार्थभावना जैसे दुर्गुण उसके स्वभाव के प्रमुख अंग हैं। नारी के इन दुर्गुणों का चित्रण कवि ने सत्यभामा के

माध्यम से किया है। वह एक अत्यन्त सुन्दरी नवयुवती है। उसके अंग-अंग से नवयौवन एवं सौन्दर्य प्रस्फुटित होता रहता है। वह दर्पण के सम्मुख बैठकर स्वयं ही अपने सौन्दर्य पर आकर्षित है (1/16)। वह उसमें इतनी डूब जाती है कि उसके बगल में कौन खड़ा है और क्या धारणा बना रहा है, इसका भी उसे भान नहीं। छुई-मुई जैसे स्वभाव वाले महान् साधक—नारद रूप गर्विता इस नारी के अपने प्रति उपेक्षित भाव को देखकर रुष्ट ही नहीं हुए अपितु उसे इसका फल चखाने की प्रतिज्ञा कर तथा इसकी शिक्षा देने हेतु उसके लिये एक सौत की खोज में निकल पड़ते हैं (2/1-2)। सत्यभामा के मन में सपत्नी के प्रति ईर्ष्या सदैव पनपती रहती है, जिसके फलस्वरूप वह उनको नीचा दिखाने का प्रयास करती रहती है। रूपिणी को वह हमेशा परास्त करने के उपक्रम में संलग्न रहती है। इसी दूषित भावना के कारण वह रूपिणी के साथ प्रतिज्ञा करती है कि जिसके पुत्र का विवाह पहले होगा, वह दूसरी के केशों का कर्त्तन कराएगी और उसका पुत्र उन्हीं केश-कलापों को रौंद कर विवाह के लिये प्रस्थान करेगा (3/9/15)। किन्तु प्रद्युम्न के कारण उसकी इस अभिलाषा पर तुषारापात हो जाता है। वह अपने समक्ष कृष्ण को भी कुछ नहीं समझती और उन्हें धृष्ट, पिशुन, खल एवं ग्वाला (3/6/6-7) जैसे शब्दों से सम्बोधित करती है। किन्तु सत्यभामा की यह विवेकहीनता निरन्तर नहीं बनी रहती। प्रद्युम्न, भानु आदि की विरक्ति के तुरन्त बाद उसके चरित्र में सहसा परिवर्तन हो जाता है। वह अपने पिछले दुष्कृत्यों एवं दूषित भावनाओं को समझने लगती है और प्रायश्चित स्वरूप दीक्षित होकर घोर तपश्चरण करती है।

कनकमाला

पज्जुण्णचरिउ में कनकमाला का चरित्र प्रद्युम्न की धर्म-माता के रूप में चित्रित हुआ है। पूर्वार्द्ध में वह प्रद्युम्न को प्राप्त करने के पश्चात् अपने हृदय के समस्त स्नेह और ममता के साथ उसका लालन-पालन करती है, किन्तु उत्तरार्द्ध में जाकर वह पूर्व-जन्म के प्रभाव में आकर प्रद्युम्न के सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर उसे आकर्षित करने के लिये अनेक अश्लील चेष्टाएँ करने लगती हैं। किन्तु जब प्रद्युम्न वहाँ से भाग जाता है, तब वह अपने पति—राजा कालसंवर से उसकी झूठी शिकायतें करके उन्हें युद्ध के लिये प्रेरित करती है, और अन्त में प्रद्युम्न की ही विजय होती है।

इस प्रकार कवि ने कनकमाला के चरित्र में दो प्रकार के भावों का चित्रण किया है। एक ओर वह ममतामयी नारी है, तो दूसरी ओर कुटिल व्यभिचारिणी।

(10) सूक्तियाँ, कहावतें एवं मुहावरे

सूक्तियाँ, कहावतें एवं मुहावरे ऐसे ऐतिहासिक संक्षिप्त सुवाक्य होते हैं जिनके पीछे विवेकशील मानव के विचारों की युगों-युगों से सुचिन्तित दीर्घ-परम्पराएँ एवं अनुभूतियाँ अथवा इतिहास में घटित घटनाओं के संक्षिप्त संकेत रहते हैं। इनमें इतिहास, संस्कृति, समाज, धर्म, दर्शन एवं लोक-जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण तथ्य भी प्रच्छन्न रहते हैं। जो संकेतवाक्य के रूप में प्रयुक्त होते हैं और जिसके प्रयोग से अल्पकाल में भी कवि अथवा वक्ता अपनी विस्तृत भावनाओं को सहज ही में व्यक्त कर सकता है। काव्यों में ये सूक्तियाँ घटना-प्रसंगों में उसी प्रकार सुशोभित होती हैं, जिस प्रकार किसी उद्दाम-यौवना सुन्दरी नव-युवती के भव्य ललाट पर सिन्दूरी बिन्दु।

पज्जुण्णचरिउ में अपने विचारों के समर्थन, गूढ़ रहस्यों के उद्घाटन एवं वर्णन-सौन्दर्य में अभिवृद्धि की दृष्टि से कवि सिंह ने प्रसंगानुकूल निम्न सूक्तियों के प्रयोग किये हैं—

सोयइँ सुहडत्तणु णासिज्जइँ	— शोक से सुभटपने का नाश होता है। —4/6/7
को-को ण गयउ महे भवण भित्तरु	— इस महान् भवन के भीतर कौन-कौन नहीं गया? (अर्थात् मृत्यु ही अटल सत्य है) —4/9/1
सुर-करिस्स को दसण मोडए	— सुरकरी के दाँत को कौन मोड़ सकता है? —13/6/8
डज्झउ धम्म विहूणउँ जो णरु	— जो मनुष्य धर्म विहीन है, वह दग्ध है। —15/5/4
विणु णाणेँ णउ सिवगइ लहेइ	— बिना ज्ञान के शिव-गति प्राप्त नहीं हो सकती। —15/19/16
आउक्खइँ जयम्मि को रक्खइ	— आयु के क्षय होने पर जगत् में कौन किसे सुरक्षित रख सकता है? —14/10/11
जं समदिट्ठि देवि णिहालइ तहो दलिद्दु सयलु पक्खालइ	— जिस प्रकार सम्यग्दृष्टि देव सभी को समदृष्टि से देखता है, उसी प्रकार दरिद्रता भी सभी को समान रूप से प्रक्षालित करती है। —11/16/9
भुवणयलु तस्स किं दुल्लहु जस्स सपुण्ण सहयरो	— जिसका पुण्य सहायक है, उसके लिए भुवनतल में क्या दुर्लभ है। —15/3/2
तसु रवि किरण हउ तेम सयल गउ।	— जिस प्रकार तम रवि-किरणों से हत हो जाता है, उसी प्रकार सब कुछ नष्ट हो जाता है। —15/14/16
जाइ सरीरु-बंभ मुनि लक्खणु णउ वण्णु वि।	— ब्रह्मचर्य ही मुनि की जाति, शरीर एवं लक्षण है। वर्ण (जाति) मुनि का लक्षण नहीं। —11/9/7
जो संतहं दंतहं कुणइँ हासु घरु घरिणि ण संपय होइ तासु।	— जो सन्त एवं दान्त जनों की हँसी उड़ाता है, उसके पास घर, गृहिणी एवं सम्पदा नहीं रहती। —9/9/8
सुपुण्णु सहेज्जउ संचरइ तसु खलयणु कुद्धउ किं करइ	— जो सुकृत्यों को सहेज कर चलता है, उससे खल जन क्रुद्ध हो कर भी उसका क्या कर लेंगे? —9/14/11
पुण्णक्खइ होइ परम्मुहउ घरु घरिणि सयणु सयणिज्जउ	— पुण्य के क्षीण हो जाने पर गृह-परिवार, गृहिणी, स्वजन एवं सम्पत्ति आदि सभी पराङ्गमुख हो जाते हैं। —15/16/1
पर अहिय जे रोसारुण अयाण।	— जो दूसरों के अहित में रोष से लाल रहते हैं, वे अज्ञानी हैं। —15/17/15
खीरहो जलु जेम हवेइ जुत्तु देहु जि आहारु जि भो णिरुत्तु।	— दूध और जल जिस प्रकार मिश्रित रहता है,

उसी प्रकार देह और जीव भी मिला हुआ है। —15/17/13

कहि होएविणु आगमण — बिना अवसर आगमन कैसा? —2/10/11

सूरे वि मरइ जो रणे भिडइ। — शूर वही है, जो रण में भिड़ता है और मर जाता है। —10/19/9

जे मलिण हुंति ते हुववहे सुब्भ हुंति। — जो मलिन होते हैं, वे अग्नि में शुभ्र हो जाते हैं। —8/7/6

मणुअहो दइ वाहियहो गिरि वि दिंति चिंतियउ फलु। — भाग्यशाली पुरुष को पर्वत भी चिन्तित फल देते हैं। —8/7/12

किं वहु अइ असगावे — अति असंगत कहने से क्या? —11/9/4

सुबुद्धिए जेण जगत्तउ कलिउ। — बुद्धिमान वही है, जिसने तीनों लोकों को समझ लिया है। —11/12/11

तो किं सिहि विज्झइ णउ सलिलइं। — क्या अग्नि पानी से नहीं बुझाई जाती? —15/16/8

सलिलु वि केम सोसिज्ज पवणइं। — पवन से पानी का शोषण कैसे हो जाता है? —15/16/8

कवणु जलहि चुलुएण सोसए। — समुद्र को चुल्लु से कौन सुखा सकता है? —13/6/10

हुववहो व इंधणेण तोसए। — ईंधन से अग्नि को कौन सन्तुष्ट कर सकता है? —13/6/10

को पयंडु जमदंडु खंडए। — प्रचण्ड यमदण्ड को कोई खण्डित कर सकता है? —13/6/11

पयंगु दीवं दंसमि। — सूर्य को दीपक दिखाना। —14/14/2

(5) सिंह तथा अन्य कवि : आदान-प्रदान

पज्जुण्णचरिउ का पूर्ववर्त्ती-साहित्य के सन्दर्भों में अध्ययन करने से विदित होता है कि महाकवि सिंह एक अध्ययनशील साहित्यकार थे। स्वग्रन्थ-लेखन के पूर्व उनके सम्मुख सम्भवतः अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ, महासेन आदि की कुछ कृतियाँ थीं, जिनका अवलोकन कवि ने किया था। उनका प्रभाव प०च० में स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होता है। यहाँ पर उनका एक संक्षिप्त तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया जा रहा है—

(1) अश्वघोष एवं महाकवि सिंह

कवि अश्वघोष (प्रथम सदी) ने अपने सुप्रसिद्ध सौन्दरनन्द-महाकाव्य में राजा नन्द के दीक्षित हो जाने पर अपनी पत्नी-सुन्दरी की स्मृति आ जाने पर उनके विलाप का मार्मिक चित्रण किया है। वह क्षण-क्षण पर उसका स्मरण कर फूट-फूट कर रोने लगता है। यथा—

स तत्र भार्यारणिसंभवेन वितर्कधूमेन तमः शिखेन।
कामाग्निनान्तर्हृदि दह्यमानो विहाय धैर्यं विललाप तत्तत्।। —*सौन्दर० 7/12*

महाकवि सिंह इस प्रसंग से अत्यन्त प्रभावित हैं। उन्होंने उससे प्रेरणा ग्रहण कर राजा कनकरथ की पत्नी के अपहृत हो जाने पर उसके विलाप का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। उसमें भाषा, भाव एवं शैली में पूर्ण अनुकरण प्राप्त होता है। तुलना के लिए देखिए —पज्जुण्णचरिउ, 7/1।

इसी प्रकार सौन्दरनन्द में वर्णित शुद्धोदन-पुत्र बुद्ध के वैराग्य एवं प०च० के प्रद्युम्न तथा अन्य पात्रों के वैराग्य के वर्णन-प्रसंगों में भी बड़ी समानता दृष्टिगोचर होती है। बुद्ध के वैराग्य का चित्र अश्वघोष ने इस .. खींचा है— **तपसे ततः कपिलवस्तुं हयगजरथौघसंकुलम्।**
श्रीमदभयमनुरक्तजनं स विहाय निश्चितमना वनं ययौ।। —*सौन्दर० 3/1*

प्रद्युम्न के वैराग्य का वर्णन भी इसी प्रकार किया गया है। तुलना के लिए देखिए—पज्जु गचरिउ, 15/20-21।

(2) कालिदास एवं सिंह

पज्जुण्णचरिउ में महाकवि कालिदास कृत रघुवंश, कुमारसम्भव एवं मेघदूत के प्रभाव भी विभिन्न प्रसंगों में परिलक्षित होते हैं। काव्य-वर्णन में वर्ण्य-विषय की गरिमा एवं अपनी बुद्धि की अल्पज्ञता के विषय में दोनों कवियों ने समान रूप से चर्चा की है। यथा— **क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषयामतिः।।** —*रघुवंश, 1/2*

तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ, 1/3/6, अन्त्य प्रश० 14वाँ पद

इसीप्रकार अन्य वर्णन-प्रसंगों में जो समानता दृष्टिगोचर होती है, वह निम्नलिखित है—

कुमारसम्भव के हिमालय-वर्णन एवं पज्जुण्णचरिउ के कौशलदेश एवं कुण्डिनपुर-वर्णन में समानता द्रष्टव्य— **अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।**
पूर्वापरो तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।। —*कुमार० 1/1*

तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ 2/11/1, 5/10/5

कालिदास ने जहाँ मेघ को दूत बना कर यक्ष की प्रिया के पास सन्देश भेजा है, वहाँ महाकवि सिंह ने वसन्त के आगमन पर फाल्गुन-मास को दूत बना कर भेजा, जिसने शीतकाल को डाँट कर भगा दिया। फाल्गुन को देखकर प्रेमीजन भी रति से अवश होकर अपनी प्रियाओं के पास लौटने लगे।

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोदप्रियायाः
संदेशं मे हर धनपति क्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां,
बाह्योद्यानस्थित हर शिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।। —*(मेघदूत-पूर्वमेघ, 1/7)*

तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ 6/16/12-16।

(3) भारवि एवं सिंह

पज्जुण्णचरिउ पर भारवि के किरातार्जुनीयम के कुछ अंशों का प्रभाव पड़ा है। किरातार्जुनीयम में अर्जुन और शंकर का अनेक बार युद्ध होता है। अन्त में दोनों का मिलन हो जाता है। पज्जुण्णचरिउ में भी पज्जुण्ण और श्रीकृष्ण का युद्ध इसी प्रकार का होता है और नारद द्वारा परिचय कराने पर दोनों का मिलन हो जाता है।

तत् उदग्र इव हिरदे मुनै रणमुपेयुषि भीमभुजायुधे।
धनुरपास्य सबाणधि शंकरः प्रतिजघान घनैरिव मुष्टिभिः।। —*किरात० 18/1*

तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ 13/13/1-15।

राजा दुर्योधन के वर्णन का विदर्भ-कुण्डिनपुर के राजा भीष्म के वर्णन पर प्रभाव—

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवीयमगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।
विभज्य नक्तंदिवमस्ततन्द्रिणा वितन्यते तेन नयेन पौरुषम्।। —*किरात० 1/9*

तुलना के लिए देखिए —पज्जुण्णचरिउ 2/6।

सूर्यास्त वर्णन-प्रसंग

सूर्य को अस्ताचल की ओर जाते हुए देख कर चक्रवाक-मिथुन शोकसन्तप्त हो उठते हैं। सूर्यास्त वर्णन-योजना में दोनों कवियों की कल्पनाएँ प्राय: समान हैं।

यथा— **गम्यतामुपगते नयनानां लोहितायति सहस्रमारीचौ।**
आससाद विरहय्य धरित्रीं चक्रवाक हृदयान्यभितापः।। —*किरात० 9/4*

तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ 6/19/4-10, 6/12/3-6

(4) माघ एवं सिंह

महाकवि माघ के शिशुपाल वध का भी पज्जुण्णचरिउ पर अधिक प्रभाव है। इसका मूल कारण यह है कि दोनों ही रचनाओं में शिशुपाल एक सामान्य नायक के रूप में वर्णित है तथा उनकी कथावस्तुओं के अनुसार श्रीकृष्ण द्वारा उसका वध हुआ है। अत: यह स्वाभाविक भी लगता है कि कवि सिंह ने इस रचना से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की होगी। दोनों का एक साथ अध्ययन करने से उनमें निम्न समानताएँ परिलक्षित होती हैं—

1. श्रीकृष्ण-सभा में नारद का आगमन—शिशुपालवधम्, प्रथमसर्गारम्भ में एवं पज्जुण्णचरिउ 1/14/13-14।
2. शिशुपालवधम् के श्रीकृष्ण ने चेदिराज राजा शिशुपाल का वध किया और पज्जुण्णचरिउ (2/20/1-2) के श्रीकृष्ण ने भी राजा शिशुपाल का वध किया।
3. शिशुपालवधम् (20/65) के अनुसार शिशुपाल ने अग्निबाण छोड़ा तो पज्जुण्णचरिउ (13/10/8) के अनुसार श्रीकृष्ण ने अग्नेयास्त्र छोड़ा।
4. शिशुपालवधम् (20/65) के अनुसार श्रीकृष्ण ने मेघबाण छोड़ा तो पज्जुण्णचरिउ (13/11/1) के अनुसार प्रद्युम्न ने वारुणास्त्र छोड़ा।
5. अन्य वर्णन-प्रसंगों में भी समानता है। महाकवि माघ ने शिशुपाल वध में बताया है कि धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ के समय श्रीकृष्ण उसमें आदरपूर्वक उपस्थित हुए और उन्होंने यज्ञ के समय स्वयं पूजा की, इसे देखकर शिशुपाल अत्यन्त क्रोधित हो उठा। (दे० शिशु० 15वां सर्ग)। महाकवि सिंह ने माघ की इस कल्पना से प्रभावित होकर तथा माघ की कल्पना में कुछ मोड़ देते हुए बतलाया है कि सात्यकि नामक दिगम्बर महामुनि की साधना, कठोर तपश्चर्या एवं समवृत्ति की कीर्ति सर्वत्र व्याप्त हो गयी और जब लोग उनकी स्तुति करने लगे, तब अग्निहोत्री सोमशर्मा आग बबूला हो उठा और वह उन महामुनि के प्रति विष-वमन करने लगा (प०च० 4/15/6-7, 5/4/7-8)।

6. महाकवि माघ ने सूर्योदय के प्रसंग में बतलाया है कि सूर्योदय के कारण किसी को शोक और किसी को प्रमोद का अनुभव हो रहा है (दि० शिशु० 15वां सर्ग)। कवि सिंह ने अपने प०च० में उस कल्पना में कुछ परिवर्तन कर बतलाया है कि—"निशानाथ चन्द्रोदय के कारण किसी का विकास एवं किसी का विनाश हो रहा है (प०च०, 6/20-21)।

(5) महासेन एवं सिंह

कथावस्तु, कथानक-गठन एवं शैली की दृष्टि से कवि सिंह, कवि महासेन कृत प्रद्युम्नचरित से अत्यन्त प्रभावित हैं। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे महासेन के कुछ संस्कृत श्लोकों का कवि सिंह ने अपभ्रंशीकरण ही कर लिया हो। उनके कुछ अंशों का तुलनात्मक मानचित्र निम्न प्रकार है—

प्रद्युम्न-चरित (महासेन)		विषय-विस्तार		पज्जुण्णचरिउ
14 सर्ग	—	कुल कथावस्तु विस्तार	—	15 सन्धियाँ
1/23	—	समुद्र वर्णन	—	1/8/9-10, 1/10/11
1/10-13	—	सौराष्ट्र वर्णन	—	1/8-11
2/51-52	—	रुक्मिणी अथवा रूपिणी के चित्र	—	2/1
	—	को देख कर श्रीकृष्ण की प्रतिक्रिया		
3/41-48	—	रुक्मिणी अथवा रूपिणी के पान का उगाल श्रीकृष्ण अपने चादर के एक छोर में बाँध कर रखते हैं। सत्यभामा उसे रहस्यपूर्ण वस्तु समझ कर, चुपचाप चुराकर तथा उसका चूर्ण बना कर अपने शरीर में लेप कर लेती है। इसे देखकर श्रीकृष्ण उस पर हँस पड़ते हैं।	—	3/5-6
9/8	—	नारद द्वारा नभोयान संरचना	—	10/2/6-9

दोनों ग्रन्थों की भाषा-साम्य के कुछ उदाहरण—

भीष्मजा मम कनीयसी स्वसा, पूजितायदि मया सपर्यया।
किं त्वया परमतोष कारिणा, निर्विवेक हसितं निरर्थकम्। —*प्रद्युम्न० 3/73*

गोवालय तुह के तडिय बुद्धि उवहासु करंतहं कवण सुद्धि।
रुविणि वि मज्झु सा सस कणिट्ठ उग्गालुसु वहे तुह काइँ धिट्ठ।
....ससहोयराइँ सहुँ कवणु रोसु। —*प०च० 3/6/7-9*

वचनं तदतीव पेशलं, मदनोक्तं विनिशम्य नारदः।
अयि वत्स जराधिकस्य मे निपुणत्वं कुत इत्यवोचत्।।

कुशलस्तरुणोसि सत्वरं कुरुषे किं न विमानमुत्तमम्।
जननी तव दुःखिता परं किमु कालं गमय स्वनर्थकम्।। —*प्रद्युम्न०, 9/8-9*

हउँ सुव थेरु कज्ज असमत्थउ किं कारणे उवहसणि णिरुत्तउ।
तुहु जुवाणु सुवियड्ढु वियक्खणु रयहि विमाणु माणु णविलेक्खहिं।।
किं किं खेमु करंतु ण थक्कइ किं किज्जइ णा तुरिउ सक्कइ।
किं तुहु अवमाणु णउ लक्खहिँ किं णिय जणणिहिँ कज्जु उवेक्खहि।। —*प०च०, 10/2/6-9*

उक्त्वेति तां प्राह मुनिर्मनोजं, क्रीड़ा चिरं नो क्रियतेत्र वत्स।
निजेन रूपेण मनोहरेण, विलोचनेस्याः सफली कुरुष्व।। —*प्रद्युम्न० 9/80*

भणिउ मणोब्भउ मा भेसावहि सुदंरि णियय रूउ दरिसावहि।
ता अप्पउ पयडिउ सव्वंगु वि किं वण्णिज्जइ अवसु अणंगु।। —*प०च० 10/14/3-4*

जिस प्रकार पूर्ववर्त्ती साहित्य का प०च० पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार प०च० का प्रभाव परवर्त्ती-साहित्य पर भी पड़ा है। कथावस्तु, कथानक गठन, वर्णनशैली आदि के प्रभाव से जायसी कृत पद्मावत एवं कवि सधारु कृत प्रद्युम्नचरित का नाम इस प्रसंग में प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

(6) जायसी एवं सिंह

महाकवि जायसी हिन्दी के आद्य प्रेमाख्यानक-काव्य-प्रणेता कवियों में अग्रगण्य हैं। पूर्व में कहा ही जा चुका है कि अपभ्रंश-कवियों ने उनकी रचनाओं पर अपना पर्याप्त प्रभाव छोड़ा है। उदाहरणार्थ यहाँ पद्मावत के दो प्रसंगों की तुलना प्रस्तुत की जा रही है—

1. पज्जुण्णचरिउ में जहाँ फाल्गुन मास को रसिकों के लिए दूत के रूप में चित्रित किया गया है (6/16/12), वहीं पर पद्मावत में कुछ परिवर्तन कर उसे काग, भंवरा एवं विहंगम (पक्षी) को दूत बनाया गया है। (पद्य सं० 349 एवं 363)।
2. पज्जुण्णचरिउ में शीतऋतु की समाप्ति पर सूर्य के केदार (हिमालय पर्वत) पर भाग जाने की कल्पना की गयी है (6/16/12)।

पद्मावत में भी ग्रीष्मऋतु के आगमन पर सूर्य को हिमालय में भागते हुए तथा शीतऋतु में दक्षिण-दिशा (लंका) की ओर भागते हुए चित्रित किया गया है। (पद्य 350-54)।

(7) कवि सधारु एवं सिंह

जिस प्रकार महाकवि सिंह ने महासेन (10वीं सदी) कृत प्रद्युम्नचरित से भाषा, भाव एवं शैली से अधिकांश प्रेरणा एवं प्रभाव गृहीत किया उसी प्रकार कवि सधारु (15-16वीं सदी) ने भी पज्जुण्णचरिउ से अपनी रचना में, पूर्ण प्रभाव ग्रहण किया है। कथानक एवं वर्णन-प्रसंगों की दृष्टि से दोनों प्रायः एक ही हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि पज्जुण्णचरिउ में प्रत्येक वर्णन विस्तृत रूप में किया गया है और सधारु कृत प्रद्युम्नचरित में संक्षिप्त रूप में। कहीं-कहीं तो सधारु ने पज्जुण्णचरिउ के पद्यों का मानों अनुवाद ही कर लिया है। यथा—

तव सतभामा चवइ निरुत जाके पहिलइ जामइ पूत।
सो हारइ जाहि पाछइ होइ तिहि सिहु मूंडि विकाहइ सोइ।। —*प्रद्युम्न० 112*

तथा तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ, 3/9/15-16।

कनक धोवतो जनेऊ धरै द्वादस टीकौ चन्दन करै।
च्यारि वेद आचूक पढंत पटराणी घर जायोपूत।। —*प्रद्युम्न० 374*

तथा तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ 11/16/2।

सिर कंपंत बंमण जब कहइ बोल तिहारो साचउ अहउ। —*प्रद्युम्न० 378/1*

तथा तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ 11/16/7।

इसी प्रकार सधारु के 385 पद्य से 394 पद्य एवं 403 से 404 पद्य, पज्जुण्णचरिउ के 11/21-23 एवं 12/1-3 से पूरी तरह मिलते हैं।

(6) भौगोलिक सन्दर्भ

महाकवि सिंह धर्म, दर्शन, आचार, अध्यात्म के साथ-साथ प्रकृति के भी कवि हैं। उन्होंने जहाँ आध्यात्मिक जगत का साक्षात्कार किया, वहीं प्रकृति अर्थात् भौतिक-जगत का भी। प्रस्तुत-प्रसंग में भौतिक जगत का अर्थ है—भूगोल। किसी भी देश अथवा राष्ट्र की संस्कृति एवं सभ्यता का निर्माण उसके भौतिक अथवा भौगोलिक आधारों पर होता है।[1] सामाजिक रीति-रिवाज, आर्थिक-संगठन, रहन-सहन, खान-पान एवं विचारधारा आदि तत्तद्देशीय, भौगोलिक- स्थिति से अत्यन्त प्रभावित रहते हैं। अतः कविकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के प्रसंग में 'पज्जुण्णचरिउ' में वर्णित भौगोलिक-स्थिति का अध्ययन करना आवश्यक है। यद्यपि यह ग्रन्थ शुद्ध भूगोल से सम्बन्ध नहीं रखता, किन्तु कवि ने प्रसंगवश जहाँ-तहाँ उसके सन्दर्भ प्रस्तुत किये हैं, उनके आधार पर ही यहाँ उसका अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। उपलब्ध भौगोलिक-सामग्री को वर्तमान भौगोलिक सिद्धान्तों के आधार पर निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

1. प्राकृतिक भूगोल, एवं 2. राजनैतिक भूगोल

अ. प्राकृतिक भूगोल

प्राकृतिक भूगोल के अन्तर्गत वे वस्तुएँ आती हैं, जिनकी संरचना स्वतः सिद्ध अथवा प्रकृति से होती है। इनके निर्माण में मनुष्यगत-प्रतिभा एवं पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं होती। पज्जुण्णचरिउ में महाकवि सिंह द्वारा वर्णित प्राकृतिक भौगोलिक सामग्री निम्न प्रकार उपलब्ध है— (1) द्वीप एवं क्षेत्र, (2) पर्वत, (3) नदियाँ, (4) अरण्य एवं वृक्ष, (5) अनाज एवं तिलहन (6) पशु-पक्षी एवं जीव-जन्तु।

द्वीप—जम्बूद्वीप (1/6/6, 4/2/1)

पज्जुण्णचरिउ में प्राकृतिक भूगोल की अधिकांश सामग्री पौराणिक है। कवि ने तिलोय-पण्णत्ति[2] के आधार पर इसका वर्णन किया है। जैन पुराणों के अनुसार मध्यलोक में असंख्यात द्वीप, समुद्रों के बीच एक लाख योजन के व्यास वाला वलयाकार जम्बूद्वीप है।[3] इसके चतुर्दिक लवणसमुद्र तथा बीचों-बीच सुमेरु-पर्वत है।

---

1. जीवराज ग्रन्थमाला से दो भागों में प्रकाशित (सोलापुर, 1951, 1956)। 2. तिलोयपण्णत्ति। 3. दे० तत्त्वार्थराजवार्तिक; 3/7।

कवि सिंह ने बतलाया है कि जम्बू नामक वृक्षों की अधिकता के कारण ही उस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा।[1] इस जम्बूद्वीप के पूर्व एवं पश्चिम-दिशा में लम्बायमान् दोनों ओर पूर्व एवं पश्चिम समुद्र का स्पर्श करते हुए हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी नामक छह कुलाचल हैं। इन कुलाचलों के निमित्त से उसके सात क्षेत्र बन जाते हैं, जिनके नाम क्रमशः भरत, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत् और ऐरावत[2] हैं।

क्षेत्र

भरतक्षेत्र (1/6/8, 2/11,7, 4/2/1)

पज्जुण्णचरिउ में भरतक्षेत्र के भूगोल के विषय में कोई चर्चा नहीं की गयी, किन्तु प्राचीन-साहित्य में उसके विषय में विविध चर्चाएँ आयी हैं। जिनसेन कृत आदि पुराण के अनुसार हिमवन्त के दक्षिण और पूर्वी-पश्चिमी समुद्रों के बीच वाला भाग भरतक्षेत्र कहलाता है। इसमें कोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, अश्मक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, बंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उसीनर, आनर्त्त, पांचाल, वत्स, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्नाटक, चोल, केरल, दास, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, बाल्हीक, तुरुष्क, शक और केकय देशों की रचना मानी गयी है।[3]

आचार्य उमास्वामि के अनुसार इस भरतक्षेत्र का विस्तार 526 6/19 योजन है।[4]

पर्वत

सामाजिक-जीवन के विकास में पर्वतों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। जलवायु-संयमन, ऋतु परिवर्तन एवं विविध खनिज-तत्वों तथा जड़ी-बूटियों के उत्पादन से वे देश की आर्थिक-समृद्धि को भी सन्तुलित रखते हैं। 'पज्जुण्णचरिउ' में दो प्रकार के पर्वतों के उल्लेख मिलते हैं— (1) पौराणिक, एवं (2) वास्तविक अथवा समकालीन।

सुमेरु पर्वत (अपरनाम मंदिरगिरि, 1/6/7, 4/9/10)

पौराणिक-पर्वतों में सुमेरु पर्वत एवं वेयड्ढ पर्वत (वैताढ्य) प्रमुख हैं। वैदिक एवं जैन-साहित्य में इनका विस्तृत वर्णन आया है। जैन-पुराणों के अनुसार सुमेरु-पर्वत जम्बूद्वीप के मध्य भाग में स्थित है। जिसकी ऊँचाई एक लाख चालीस योजन है। इसमें से एक हजार योजन भाग पृथिवी के भीतर है, चालीस योजन के अन्त में एक-एक चोटी और शेष 99 हजार योजन का समतल से चूलिका तक प्रमाण माना गया है। आदि भाग में पृथिवी पर सुमेरु पर्वत का व्यास दस हजार योजन है, तथा ऊपर की ओर वह क्रमशः घटता गया है, किन्तु जिस हिसाब से वह ऊपर की ओर घटा है उसी क्रम में पृथिवी में उसका व्यास बढ़ता जाता है।[5] मार्कण्डेय पुराण से विदित होता है कि इस पर्वत के पश्चिम में निषाध, उत्तर में शृंगवान एवं दक्षिण में कैलाश स्थित है।[6] यह बद्रिकाश्रम के करीब है एवं सम्भवतः एरियन का मेरास-पर्वत है।[7]

वैताढ्य

जैन साहित्य में वेयड्ढ (2/3/6, 2/11/9, 7/8/8) अथवा वैताढ्य (अथवा विजयार्द्ध) का विस्तृत वर्णन मिलता

---

1. दे० प०च० जंबूतरु, 1/6/6। 2. तत्त्वार्थसूत्र, 3/10। 3. आ०पु० 16/152-156। 4 दे० ज०सि० 3/24, पृ० 22। 5. वही० 3/9, पृ० 213। 6. दे० मा०पु० बंगवासी सं०, पृ० 240। 7. बी०सी० लाहा · हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑफ ऐंशियेंट इंडिया, पृ० 131।

है। कवि सिंह ने स्वयं इसकी अवस्थिति के विषय में कोई चर्चा नहीं की। किन्तु आचार्य जिनसेन (8वीं सदी), आचार्य हेमचन्द्र (13वीं सदी) एवं अन्य कवियों ने इसकी अवस्थिति के सम्बन्ध में चर्चा की है। आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण में विजयार्द्ध की दो श्रेणियों की चर्चा आयी है। उत्तर श्रेणी एवं दक्षिण श्रेणी। उत्तर श्रेणी के राजा नमि तथा दक्षिण-श्रेणी के राजा विनमि की चर्चा की गयी है।[1] प०च० में उसे 50 योजन चौड़ा और 25 योजन ऊँचा बतलाया गया है।[2] आचार्य हेमचन्द्र कृत त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित के उल्लेखानुसार वैताढ्य पर्वत अपनी 400 मील की लम्बाई के दोनों छोरों से विशाल गंगा एवं यमुना का स्पर्श करता है।[3] यहाँ के राजा नमि एवं विनमि ने अपनी उत्तर एवं दक्षिण श्रेणियों में पचास-पचास विशाल नगर बसाये थे।[4] कवि सिंह ने इसका अपर नाम सिलोच्चय (शिलोच्च) भी कहा है।[5]

हिमगिरि (13/16/5)

हिमगिरि की पहचान हिमवत् अथवा हिमालय से की जा सकती है। कवि ने हिमगिरि की चोटी का वर्णन किया है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि हिमालय की सर्वोच्च चोटी गौरीशंकर है। जैन-परम्परा के अनुसार यह जम्बूद्वीप का प्रथम पर्वत है, जिस पर ग्यारह कूट हैं। इसका विस्तार 1052 12/19 योजन है। इसकी ऊंचाई 100 योजन और गहराई 25 योजन मानी गयी है।

अट्ठावय (अष्टापद) अर्थात् कइलास (कैलाश 2/4/4)

महाकवि सिंह के अट्ठावय पर्वत का उल्लेख किया है, साथ ही अन्य प्रसंग में कइलास की भी चर्चा की है। प्राच्य भारतीय-साहित्य में कैलाश-पर्वत का विशद वर्णन किया गया है। महाकवि जिनसेन ने कैलाश-पर्वत के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाण स्थल माना है।[6] आचार्य हेमचन्द्र एवं अन्य जैन-कवियों ने इसका दूसरा नाम अष्टापद भी माना है।[7] महाभारत के अनुसार कैलाश पर्वत की उँचाई 6 योजन है। वहाँ सभी प्रकार के देवता आया करते हैं। उसके समीप ही विशाला (बदरिकाश्रम) है। महाभारत के एक अन्य प्रसंग के अनुसार राजा सगर ने अपनी दो पत्नियों के साथ कैलाश-पर्वत पर तपस्या की थी।[8]

उज्जिलगिरि (1/1/13) एवं रेवयगिरि (14/13/3, 15/10/9)

उज्जिलगिरि, रेवयगिरि ऊर्जमन्त अथवा गिरनार पर्वत के ही अपरनाम हैं। जैन-मान्यता के अनुसार 22वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ की यह निर्वाण भूमि है। महाभारत में भी इसे एक सिद्धिदायक पर्वत के रूप में स्मृत किया गया है।[9] पार्जीटर ने इसकी पहचान काठियावाड़ के पश्चिम-भाग में बरदा की पहाड़ी से की है।[10]

केयार (केदार, 6/16/14)

कवि ने इसकी अवस्थिति के विषय में कोई संकेत नहीं किया है, किन्तु रूपकालंकार के माध्यम से वह कहता है कि "शीतकाल घबरा कर केदार पर चला गया" इससे प्रतीत होता है कि कवि का यह केदार हिमालय-पर्वत की एक चोटी से ही सम्बन्ध रखता है। महाभारत में कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत केदार नामक एक तीर्थ की चर्चा आई है, जहाँ पर स्नान करने से पुण्यानुबन्ध होता है[11], किन्तु महाभारत का यह केदार उक्त केदार से भिन्न है।

---

1. दे० आ०पु० 4/81, 18/149 2. दे० प०च० 10/5/10। 3. दे० अनेकान्त, 33/2/16। 4. वही। 5. प०च० 7/16/4। 6 दे० आ०पु० 33/12-20। 7. सि० हे० च० 3/2/75। 8. दे० सभा पर्व० 46/17। 9. दे० वनपर्व, 88/21। 10. ज्यो० डिक्श० ऑफ ए०इ०आई०, पृ० 7। 11. वनपर्व, 88/21।

गोवद्धणगिरि (गोवर्द्धनगिरि, 9/12/3)

कवि ने भगवान् श्रीकृष्ण की शक्ति एवं पराक्रम का वर्णन करते हुए उन्हें गोवर्द्धनधारी कहा है तथा उसके समीप बहने वाली यमुना का भी उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि मथुरा-वृन्दावन के समीपवर्ती वर्तमान गोवर्द्धन-पर्वत से ही कवि का तात्पर्य है। महाभारत के अनुसार जब इन्द्र अपनी पूजा न पाने के कारण व्रजवासियों को मिटा देने के लिए व्रज में घोर-वर्षा करने लगा, उन दिनों भगवान् कृष्ण ने बचपन में ही समस्त प्राणियों की रक्षा के लिए एक सप्ताह तक गोवर्द्धन पर्वत को एक हाथ पर उठा रखा था।[1]

तक्खयगिरि (3/14/9, 4/13/8)

प०च० को छोड़ कर अन्य प्राचीन जैन साहित्य में इस पर्वत का नामोल्लेख नहीं मिलता। तक्षशिला का उल्लेख अवश्य मिलता है। पज्जुण्णचरिउकार ने तक्षशिला के शिलापद को पर्वत सूचक मान कर इसे तक्खयगिरि अथवा तक्षकगिरि कहा है।

महाभारत के अनुसार तक्षशिला वह स्थल है, जहाँ जनमेजय ने सर्पसत्र का अनुष्ठान एवं महाभारत की कथा सुनी थी।[2] आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार तक्षशिला 'गान्धार' की राजधानी थी। वह उत्तरापथ-राजमार्ग का प्रमुख व्यापारिक नगर था। सिन्धु और विपाशा के मध्यवर्त्ती नगरों में सर्वश्रेष्ठ एवं समृद्ध नगर माना जाता था।[3] बौद्ध-साहित्य के अनुसार यह विद्या का प्रधान केन्द्र था।

मलय (4/13/2)

प०च० में इसकी अवस्थिति के विषय में चर्चा नहीं की गयी है, किन्तु महाभारत के अनुसार यह दक्षिण भारत का एक पर्वत है।[4] महाभारत के अन्य प्रसंग में इसे भारतवर्ष के सात कुल-पर्वतों में प्रधान बतलाया गया है।[5] काव्य-मीमांसा में इसे पाण्डय-देश का पर्वत कहा गया है, इसे अद्रिराज भी कहा गया है।[6] कवि राजशेखर ने इस पर्वत का वर्णन विशद रूप से किया है एवं उसकी चार विशेषताओं का उल्लेख किया है। वहाँ उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों का वर्णन कर इसे चन्दनगिरि भी कहा है।[7]

वराहसेलु (वाराह शैल 8/11/7)

महाकवि सिंह ने प०च० में प्रद्युम्न की वीरता का वर्णन करते हुए इस पर्वत की चर्चा की है, लेकिन इसकी अवस्थिति के विषय में वे मौन हैं। महाभारत में इस पर्वत की चर्चा की गयी है एवं उसे मगध की राजधानी गिरिव्रज के समीप एक पर्वत कहा गया है।[8] महाकवि जिनसेन ने भी वराह-पर्वत का वर्णन किया है। उसमें 'वराह' को 'वैभार' के नाम से वर्णित किया है एवं उसकी अवस्थिति मगध की राजधानी राजगृह की पहाड़ियों में बतलाई है।[9] हरिवंशपुराण में वैभार को राजगृह की दक्षिण-दिशा में माना है। यह पर्वत त्रिकोणाकार है।

विउलगिरि (विपुलाचल, 1/6/3)

प०च० में कवि ने विउलगिरि का उल्लेख भ० महावीर के प्रसंग में किया है और बतलाया है कि भ० महावीर का समवशरण विपुलाचल पर आया था और राजगृह नगरी का राजा श्रेणिक वहाँ जाकर उनकी वन्दना किया करता था। आदिपुराण में भी इसका उल्लेख इसी प्रसंग में हुआ है। राजगृह की पाँचों पहाड़ियों में यह प्रथम है।

---

1. उद्योग पर्व, 130/46 तथा सभापर्व 41/9। 2. आदिपर्व, 3/20। 3. दे० सि०हे० व्या० 6/2/69। 4. दे० सभा पर्व, 10/32। 5. दे० भीष्म पर्व, 9/11। 6. का०मी० 41/2, 41/5। 7. वही० 96/7। 8. सभा पर्व 21/2। 9. आ०पु०, 29/46।

इस पर भ० महावीर का प्रथम धर्मोपदेश श्रावण-कृष्णा-प्रतिपदा को प्रारम्भ हुआ था।[1] महाभारत के सभा-पर्व में भी विपुल शब्द का उल्लेख हुआ है। वहाँ उसे मगध की राजधानी के समीप का एक पर्वत कहा गया है।[2]

उक्त पर्वतों के अतिरिक्त कवि ने सल्लयगिरि (8/10/11) तथा सराव (8/11/7) नामक पर्वतों के उल्लेख भी किये हैं। इनकी अवस्थिति अज्ञात है। कवि ने विद्याधरों के भ्रमण-प्रसंग में इनका उल्लेख किया है।

नदियाँ

अमरसरि (गंगा, 3/13/8, 5/17, 8 गंगासरि, 15/5/12)

जैन-साहित्य में गंगा नदी अपरनाम अमरसरि, गंगासरि को उसी प्रकार महत्वपूर्ण एवं पवित्र माना गया है, जिस प्रकार वैदिक साहित्य में। इसका विशेष परिचय तिल्लोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, तत्वार्थराजवार्तिक आदि में प्रचुर मात्रा में मिलता है।

कालिन्दी (2/10/6), जमुड्डी (9/12/4)

कालिन्दी का वर्तमान नाम जमुना ही अधिक प्रसिद्ध रहा है। प्रद्युम्न के पिता कृष्ण ने अपना बचपन एवं युवावस्था इसी की तरंगों से खेलते हुए व्यतीत की थी। भारतीय साहित्य में इस नदी का विस्तृत वर्णन किया गया है। महाभारत के अनुसार कालिन्द-पर्वत से निकलने के कारण ही इसका नाम कालिन्दी पड़ा।[3]

महातीरि (2/11/9)

महाकवि सिंह ने इस नदी का उल्लेख वैताढ्य पर्वत के समीपवर्ती कुण्डिनपुर नगर के समीप किया है। महाभारत में कुण्डिन नामक एक प्रसिद्ध नगर का नाम आता है, जिसे कि विदर्भ देश की राजधानी कहा गया है।[4] बहुत सम्भव है कि कुण्डिनपुर महाभारत कालीन कुण्डिनपुर ही हो तथा उसके समीप बहनेवाली महातीरि नदी वर्तमानकालीन वेनगंगा अथवा पेनगंगा हो।

सीतानदी (4/10/7)

सीतानदी एक पौराणिक नदी के रूप में विख्यात है, किन्तु कवि ने इसे दक्षिणापथ की पुष्कलावती नगरी के समीप माना है। इससे प्रतीत होता है कि यह वर्तमान महानदी का तत्कालीन अपरनाम रहा होगा।

अरण्य एवं वृक्ष

महाकवि सिंह ने प्रसंगवश वनों की भी चर्चाएँ की हैं। इन वनों में से कुछ तो परम्परा प्राप्त एवं पौराणिक वन हैं, जैसे—नन्दनवन (1/8/7)। कुछ वन ऐसे हैं जो विद्याधर-भूमियों से सम्बन्ध रखने वाले हैं, जैसे—पंकजवन (7/6/10), पयोवन (8/12/9), अर्जुनवन (8/14/11), विपुलवन (8/14/16), भीम महावन (8/15/8), माकन्द वन (11/3/14)।

कुछ वन ऐसे हैं, जिनका वर्णन यद्यपि विद्याधर-भूमियों प्रसंग में किया गया है, किन्तु वे मनुष्य-भूमियों में भी उपलब्ध हैं, जैसे—खडरावड वन (4/2/12, 4/13/8) तथा कपिट्ठ कानन (8/9/9)। खडरावड वह वन है, जहाँ खदिर अर्थात् खैर (कत्थे) के वृक्ष होते हैं। कत्था भारतीय खाद्य-मसालों में अपना प्रमुख स्थान रखता है तथा

---

1. आ०पु०. 1/196। 2. सभा पर्व, 21/2। 3. आदि पर्व, 60/2। 4. दे० महाभारत की नामानुक्रमणिका, पृ० 70।

विविध प्रकार की औषधियों के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसीप्रकार कवि ने जिस 'कपित्थवन' का उल्लेख किया है, वह वर्तमान में कैंथा (कैंथ) के रूप में प्रसिद्ध है। यह भोजन को सुस्वादु बनाने में अवलेह्य का काम तो देता ही है, साथ ही नाना प्रकार की अन्तर्बाह्य बीमारियों में औषधि के रूप में प्रयुक्त होता है। कवि ने इन वनों के प्रसंग में विविध वनस्पतियों के भी उल्लेख किये हैं। इन वनस्पतियों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं:—

(1) वृक्ष, (2) अनाज एवं तिलहन।

1. वृक्ष

(क) पुष्प वृक्ष। (ख) फल वृक्ष। (ग) उभय वृक्ष। (घ) शोभा वृक्ष, तथा (ङ) अन्य वृक्ष एवं पौधे।

(क) पुष्प-वृक्ष

वनस्पति-शास्त्र में पुष्प वृक्षों की 160 जातियाँ मानी गयी हैं, जिसमें कमल और कुमुदनी को विशेष महत्व दिया गया है। महाकवि सिंह ने प०च० में अनेक पुष्प-वृक्षों की चर्चा की है। उन्होंने कमल का वर्णन प्रतीक रूप में भी प्रस्तुत किया है एवं कमल की विविध जातियों के उल्लेख भी किये हैं जैसे—कमल (भिसिण 6/21/5), कुवलय (1/13/3), णीलुप्पल (12/1/3), नीलकमल (कंदोट्ट, 1/7/1), पंक (3/4/8), रक्तोत्पल (13/11/1), सरोरुह (1/9/1), आदि। कमल के अतिरिक्त अनेक पुष्प-वृक्षों के नाम भी प०च० में उपलब्ध होते हैं, जो निम्नप्रकार हैं —आम्रमंजरी (3/4/6, 6/17/1), कचनार (10/6/8), कनैर (कणियारि, 10/6/8) केतकी (केयइ, 15/3/18), कुन्द (6/17/7, 11/13/9), खरदंसु (1/9/1), घुंमची (गुंजाहल, 10/9/7), चम्पा (चंपय 3/7/5, 10/6/12), जपा (जासवन 3/4/3), तामरस (1/13/6), धारा (15/3/18), दौनापुष्प (द्रौण पुष्पी, दवण 6/17/8), पट्टुल (गुलाब, 6/17/4), परिमल (1/7/1), पारिजात (10/12/9), पलाश (केसु, 6/16/13, 10/6/9), मचकुन्द (3/1/12, 10/6/12), मालती (मल्लिय, 2/11/9) मल्लिका (मालइ 2/11/9), मोंगरा (मोग्गरय, 10/6/12), वकुल (बउल 3/7/5, 11/1/4), बेला (बिइल्ल 11/13/9)।

(ख) फलवृक्ष

प०च० में विविध प्रकार के फलवृक्षों के उल्लेख आए हैं जिन्हें उपयोगिता की दृष्टि से तत्कालीन-समाज की सम्पत्ति कहा जा सकता है। नामोल्लिखित फलों की यह विशेषता है कि वे एक ओर जहाँ लोगों के भोजन में पौष्टिक तत्व प्रदान करते हैं, वहीं वे विविध औषधियों के निर्माण में भी उपयोग में लाये जाते थे। महाकवि सिंह ने निम्न फल-वृक्षों के उल्लेख किये हैं—आम (अंब, 3/8/5, 8/8/7, 8/8/12), अमड़ा (आमाडिया, 10/6/9), आंवला (आउलं 10/6/9), इमली (चिंचिणी, 10/6/5), इलायची (एल, 10/6/4), कटहल (फणिस, 3/7/4), कदम्ब (3/1/5, 3/7/5, 15/3/18), करौंदा (करवंद, 3/7/5), कलमी आम (साहार 6/7/1), किसमिस (दक्ख, 3/1/5), केला (कलिकेलि, 3/1/5), खजूर (खज्जूरिया 10/6/6), जम्भीरि नींबू (जंबीरि, 10/6/6), जामुन (जंबु, 3/7/5), जायफल (जाइ 10/6/11), नारियल (णालियर 10/6/6), नारंगी (णारंगि, 10/6/6), पीपल (पिप्पली 10/6/4), पुन्नाग (पुण्णाय, 11/13/9), बहेड़ा (बरी, 10/6/9), बादाम (मयादमि, 10/6/7), लवंग (3/1/15, 3/7/5), वायविरंग (पियंगु 3/1/5, 5/12/6, 6/17/3), विज्जउरिय (विजुरिया नीबू, 10/6/6) एवं सिरिखंडू (10/6/7)।

(ग) उभयवृक्ष

प०च० में कुछ ऐसे भी वृक्ष एवं लताओं के नाम उपलब्ध हैं, जिनमें फल एवं फूल दोनों ही उपलब्ध रहते

हैं। इनमें निम्नलिखित नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—कदली (कलिकेलि 9/2/9), करौंदा (करवंद 3/7/5), चिंचिणि (10/6/5)।

(घ) शोभावृक्ष

शोभा-वृक्ष उन वृक्षों को कहा जाता है, जिन्हें उपवनों, उद्यानों एवं राजप्रांगणों की सौन्दर्य-वृद्धि हेतु लगाया जाता है। कवि सिंह ने प०च० में ऐसे अनेक शोभा-वृक्षों का उल्लेख किया है, जो निम्नप्रकार हैं—अर्जुन (अज्जण, 10/6/4), अशोक (असोय 3/7/8, कंकेलि 3/7/4), ऋद्धिंजण (3/7/5), करवीरि (10/6/3), कंथारि (10/6/3), चंदण (3/1/5), न्यग्रोध (णग्गोह 9/9/10), नागवल्ली (णायवेलि 11/2/11), तमाल (5/12/5), ताम (10/6/9), ताल (5/12/5), ताली (5/12/5), तिलक (तिलय, 11/1/4), देवदारु (3/7/5), धम्मण (10/6/3), धव (10/6/3), धाई (10/6/3), फोंफली (10/6/11), माला (10/6/9), मालूर (5/12/5), यमल (9/12/4), सग्ग (10/6/4), सज्ज (10/6/4), शीशम (सीसमी, 10/6/11)।

(ङ) अन्य वृक्ष एवं पौधे

कवि ने उपर्युक्त वृक्षों के साथ-साथ अन्य वृक्षों एवं छोटे पौधों का भी उल्लेख किया है। जैसे—बाँस (बंस, 10/5/6), दुमदल (13/15/12), दोव (3/3/1)।

कल्पवृक्ष की चर्चा भी कवि ने बहुतायत की है—

कल्पवृक्ष (1/10/6, 11/1/4)

कवि सिंह ने अन्य वृक्षों के साथ ही कल्पवृक्षों का भी उल्लेख किया है। ये वृक्ष पौराणिक हैं और पुराणों के अनुसार वे सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे (1/10/6, सुरविड 11/1/4)।

2. अनाज एवं तिलहन

कवि ने ग्राम, नगर एवं देश-वर्णन प्रसंग में धन-धान्यादि समृद्धि की गणना के लिए उन स्थानों में उत्पन्न होने वाले अनाज एवं तिलहनों का भी वर्णन किया है। उससे तत्कालीन खाद्यान्नों की उत्पत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। प०च० में उत्पादित वस्तुएँ निम्न प्रकार हैं— अक्षत (अक्खउ 6/11/7), तिल (अयवत्तु 3/4/5, 14/16/14), इक्षु (उच्छ 1/7/7), कलमशालि (धान, 1/7/4), खांड (खंड, 11/2/9), दालि (11/21/5) आदि।

पशु, पक्षी एवं जीव-जन्तु

कवि वनस्पति-जगत के साथ-साथ पशु-पक्षी जगत से भी सुपरिचित था। जड़ एवं चेतन जगत का उसने कितनी गम्भीरता के साथ निरीक्षण कर अपनी मानसिक वृत्ति के साथ उनसे तादात्म्य स्थापित किया था, उसका परिचय प०च० के इन नामोल्लेखों से सहज ही उपलब्ध हो जाता है। उनके वर्गीकृत नाम निम्न प्रकार हैं—

पशु, (जंगली)

करिकुंभ (गजसिर, 2/2/5), किरडि (सुअर, 3/14/18), केसरी (सिंह 2/17/11), कुरंग (मृग 2/2/8, 2/2/9), गंडय (गैंडा, 2/2/2), तरछ (भालू, 4/1/2), पंचाणण (सिंह, 6/13/1), मयहि (हिरण, 2/2/10), मिइय (हिरणी 2/2/10), मृगारि (सिंह, 8/9/3), रीछ (रिंछ, 8/13/3), बाघ (वग्ध, 4/1/2), वाणर (साहामय, 4/1/3, 8/9/3), सिन्धुर (गज, 6/21/8), सिंह (सीहो, 2/2/5, 2/2/7), शरभ (सरय, 2/2/2), शार्दूल (सद्दूल, 4/1/1, 4/13/8), शृगाल (सियाल, 4/16/20), शृगाली (शिवा, 2/18/12)।

पशु (पालतू)

ऊँट (करह, 2/14/9), करहया (10/7/8), पगगहय (11/6/3), कुत्ती (कुक्कुरि, 6/5/3), सरमा (5/16/15), साणिहु (5/17/3, 9/10/12), खच्चर (बिसरा, 10/7/10), गज (गय 1/9/4), गधी (खरि 9/10/12), घोड़ा (हय, 1/9/4), तुरंग (2/14/10), बन्दर (मक्कडु, 11/4/3), लंगूल (6/2/10), बैल (वसहइ, 10/11/6), मेष (मेढा, 10/16/7), जण्हु (10/15/5), मृग (मय 1/8/8, 1/9/1)।

पक्षी

काग (वायसु, 6/21/3), कीर (तोता, 1/8/1), कुरर (एक पक्षी 4/1/8), कोयल (कलयंठि, 3/1/10, 1/8/7), परहुव (6/4/7), पिई (4/1/10), क्रौंच (कोंच, 11/3/10), गरुड़ (2/10/6), गिद्ध (2/18/11, 12/27/9), चक्रवाक (कारंड, 11/3/10), खंगड (2/20/1), चकवी (चक्कि, 6/21/4), सारस (इल्ल, 11/3/10), शुक (1/7/6, 3/1/11), (कण, 11/3/10), शिखण्डी (सिंहमि, 3/1/11), हंस (हंसु 7/11/11), मुर्गा (तंवचूल, 14/16/4)।

जीव-जन्तु

अहि (सर्प, 2/17/3), भुयंग (1/8/9, 7/17/9), पवण असणस्स (8/4/6), पण्णउ (9/13/8), अजगर (अहिण्ण, 2/18/2), कर्कट (कक्कउ, 1/11/7), कछवा (कुम्म, 8/16/4), कालिय (2/10/6), भ्रमर (छप्पय, 8/11/9), मगर (1/11/7, 8/16/4), संसुमार (4/1/13), मच्छ (तिमि, 3/4/10) पाढीणु (मीन 1/11/7), झस, (मीन, 7/12/2)।

राजनैतिक भूगोल

जिस प्रकार प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाली भौतिक सामग्री प्राकृतिक भूगोल का विषय है और उसमें नदी, पर्वत, वनस्पति एवं पशु-पक्षियों की चर्चा की जाती है, उसी प्रकार राजनैतिक-भूगोल में राष्ट्र, देश, नगर तथा उसकी प्रशासनिक एवं सीमा-सम्बन्धी सामग्रियों की चर्चा प्रमुख रूप से प्रस्तुत की जाती है। इस दृष्टि से प०च० में राजनैतिक-भौगोलिक सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यद्यपि कवि ने उल्लिखित देशों एवं नगरों की अवस्थिति के विषय में कोई चर्चा नहीं की है, फिर भी उनके उल्लेखों से कवि की मध्यकालीन भौगोलिक जानकारी का अच्छा परिचय मिलता है। अतः उनका संक्षिप्त परिचय वर्णानुक्रम से यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

अहंगयाल (14/5/6)

प०च० में इस देश की अवस्थिति के विषय में कोई संकेत नहीं। वर्तमान भारतीय भूगोल- शास्त्र के अनुसार भी इस देश का पता नहीं चलता। महाभारत में अभय नामक एक प्राचीन जनपद का उल्लेख मिलता है, जिस पर भीम ने विजय प्राप्त की थी,[1] हो सकता है कि कवि का संकेत इसी जनपद की ओर हो। अर्धमागधी आगम-साहित्य में भी इस देश के नामका उल्लेख नहीं मिलता।

आभीर (14/5/5)

आभीर की अवस्थिति के विषय में विविध प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। महाभारत के अनुसार सिन्धु एवं सरस्वती के तट पर स्थित एक आभीर गणतन्त्र था। उस पर नकुल ने विजय प्राप्त की थी।[1] विक्रम की तीसरी

---

1. सभा पर्व. 30/9।

शती में आभीरों का शासन महाराष्ट्र एवं कोंकड़ प्रदेश पर भी था।[2] गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त ने आभीरों को अपने वश में किया था। उसका अध्ययन करने से विदित होता है कि आभीर-जनपद झांसी एवं विदिशा के मध्य स्थित था।[3]

कच्छय (कच्छदेश, 14/5/6)

महाभारत काल में यह भारतीय जनपद के रूप में प्रसिद्ध था।[4] वायुपुराण[5] में इसे अन्तर्नर्मदा या उत्तरनर्मदा-खण्ड में स्थित बतलाया गया है। महर्षि पाणिनि ने वहाँ के निवासियों को काच्छक कहा है।[6] आदिपुराण के अनुसार भरत चक्रवर्ती अपनी दिग्विजय के प्रसंग में दक्षिण भारतीय अभियान में समुद्री किनारे पर चलते-चलते कच्छ देश में पहुँचे थे।[7]

कण्णाड (कर्नाटक, 6/3/12)

वर्तमान कर्नाटक प्रदेश ही प०च० में उल्लिखित 'कण्णाड' है। महाभारत में इसे एक दक्षिण-भारतीय जनपद कहा गया है।[8] आधुनिक भूगोल के अनुसार इसमें मैसूर एवं कुर्ग के भूमिभाग सम्मिलित हैं। इसकी राजधानी श्रीरंगपत्तन थी। राजशेखर ने भी इसी रूप में इसका उल्लेख कर्पूरमंजरी[9] में किया है।

करहाट (6/3/12)

प०च० में इसकी अवस्थिति की कोई चर्चा नहीं है, किन्तु महाभारत के अनुसार यह एक दक्षिण भारतीय देश था[10] जिस पर सहदेव ने अपने दूतों के द्वारा विजय प्राप्त की थी। आदिपुराण के अनुसार इसकी अवस्थिति महाराष्ट्र में विदित होती है।[11] वर्तमान सतारा जिले के करड या कराड नामक स्थान से इसकी पहचान की जा सकती है।

कलिंग (14/5/3)

महाभारत के अनुसार 'कलिंग' दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश था।[12] महर्षि पाणिनि ने भी इसका उल्लेख किया है।[13] बौद्धागमों में भी इसके विविध समृद्ध पक्षों की चर्चा आती है।[14] इससे यह स्पष्ट है कि कलिंग देश भारत के प्राचीनतम देशों में रहा है। कलिंग नरेश खारवेल के हाथीगुम्फा-शिलालेख[15] से विदित होता है कि प्राचीन राष्ट्रीय "आदि-जिन-प्रतिमा" की वापिसी के लिए उसने मगध से भयानक युद्ध किया था।

प्राचीन जैन-साहित्य में कलिंग का प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है। उसके अनुसार तोसलि इस देश का एक प्रसिद्ध नगर था, जो डॉक्टर डी०सी० सरकार के अनुसार वर्तमान धौली का ही वह अपर नाम है। आचार्य जिनसेन ने इस प्रदेश का विशेष वर्णन किया है। तदनुसार ऋषभदेव के एक पुत्र कलिंग के नाम पर ही उस देश का कलिंग नाम पड़ा।[16]

कसमीर (काश्मीर, 14/5/3)

महाभारत के अनुसार यह एक भारतीय जनपद था। उसके अनुसार दिग्विजय के समय इसे अर्जुन ने

---

1. सभापर्व, 32/9-10। 2. न्यू हिस्ट्री ऑफ इंडियन पीपल, खण्ड 5, पृ० 51। 3 वही०, पृ० 891। 4. भीष्म पर्व 9/56। 5. वा०पु० 45/131। 6. अष्टाध्यायी, 4/2/133-134। 7. आ०पु० 16/153; 29/79। 8. भीष्म पर्व, 9/59। 9. क०मं० 1/15। 10 सभा पर्व, 31/70। 11. आ०पु० 16/154 12. आदि पर्व, 214/9; भीष्म पर्व, 9/46; 9/69। 13. अष्टाध्यायी, 4/1/170। 14. दे० बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० 494-495। 15. दे० खारवेल शिलालेख, पंक्ति सं० 7-12। 16. दे० आ०पु० 16/152; 29/82। तथा दे० उड़ीसा में जैन संस्कृति एवं धर्म (ले०– प्रो० राजाराम जैन)

जीता था।[1] तन्त्र-शास्त्र में इसकी अवस्थिति के विषय में लिखा गया है[2]—

शारदामठमारभ्य कुंकुमाद्रि तटान्तकः।
तावत्कश्मीरदेशः स्यात् पंचाशद्योजनात्मकः।।

योगवाशिष्ठ में काश्मीर को हिमालय की कुक्षि में स्थित अत्यन्त प्रसिद्ध और प्राचीन देश कहा गया है, जिसका 'अधिष्ठान' नामक नगर प्रद्युम्न-शिखर पर स्थित था।[3] कवि विल्हण ने अपने 'कर्णसुन्दरी' नामक ग्रन्थ में उसे शारदा-देश कहा है।[4] मुगलकाल में भी उसे स्वर्ग के समान सुरम्य-प्रदेश माना जाता था। मुगल सम्राटों ने वहाँ विभिन्न प्रकार के क्रीड़ा-स्थल बनाकर उसे पर्याप्त महत्व दिया था।

कीरि (14/5/3)

महाकवि सिंह ने इसकी स्थिति के विषय में कोई चर्चा नहीं की है। बृहत्संहिता में इसकी अवस्थिति गान्धार, सौवीर, सिन्धु और शैलान (पर्वतीय) के साथ बतलाई गयी है।[5] उसके कूर्म-विभाग में ईशान-दिशा में स्थित काश्मीर, अभिसार दरद, तंगण एवं कुलूत प्रभृति देशों के साथ इसकी गणना की गई है।[6] इससे प्रतीत होता है कि यह कांगड़ा-घाटी के बैजनाथ और उसके आसपास कहीं स्थित होना चाहिए।

कुरुजांगल (11/8/9)

महाभारत-काल में यह एक सुविख्यात भारतीय जनपद के रूप में प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी।[7] आदिपुराण में इसकी अवस्थिति थानेश्वर, हिसार अथवा सरस्वती एवं यमुना-गंगा के बीच के प्रदेश में बतलाई गयी है। तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी तपस्या का एक वर्ष पूर्ण होने पर इस जनपद में विहार किया था।[8] राजशेखर ने भी हस्तिनापुर जनपद का उल्लेख किया है।[9]

केरल (6/3/12, 14/5/8)

महाभारत के अनुसार यह एक दक्षिण-भारतीय जनपद था।[10] कर्ण ने दिग्विजय के समय यहाँ के राजा को जीत कर उसे दुर्योधन का करद बनाया था।[11] वर्तमान भूगोल के अनुसार दक्षिण का मलाबार प्रान्त, जिसमें मलाबार, कोचीन एवं त्रावनकोर के जिले भी सम्मिलित हैं, केरल कहा जाता है। आदिपुराण में इसका सुन्दर वर्णन किया गया है।[12]

कोसल (5/11/5)

महाभारत में यह एक प्रसिद्ध जनपद के रूप में वर्णित है, जो उत्तर एवं दक्षिण कोशल में विभक्त था।[13] विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार वहाँ के निवासी सुन्दर तथा पुरुषार्थी होते थे।[14] वर्तमान में इसकी पहचान अवध प्रदेश स्थित गोंडा, बहराइच, बाराबंकी, फैजाबाद और लखनऊ के प्रदेश से की जाती है।

जैन साहित्य में कोशल-देश का बड़ा महत्व है। ऋषभदेव का जन्म इसी देश की अयोध्या नगरी में हुआ था। अतः उन्हें कौशलिक भी कहा जाता है। बृहत्कल्पभाष्य से विदित होता है कि इसका प्राचीन नाम विनीता था।

---

1. सभा पर्व, 27/17, भीष्म पर्व, 9/53-67। 2. का०मी० परिशिष्ट 2, पृ० 283। 3. योगवाशिष्ठ, 3/31/10; 3/32/11-12। 4. दे० प्रशस्ति श्लोक 4, पृ० 56। 5. बृहत्संहिता, 4/23। 6. वही० कू० विभाग 14/29। 7. आदि पर्व, 94/49। 8. आ०पु०, 16/153। 9. का०मी० 8/17। 10. भीष्म पर्व; 9/58। 11. वन पर्व, 254/15-16। 12. आ०पु० 16/154/ 29/79। 13. भीष्म पर्व; 9/40-41। 14. विष्णुधर्मोत्त० पुराण, 1/2/4।

कोंकण (14/5/5)

महाभारत के अनुसार यह एक प्राचीन दक्षिण-भारतीय जनपद था।[1] स्कन्दपुराण के अनुसार कोंकण एवं लघु कोंकण क्रमश: 36,000 तथा 1422 ग्रामों के देश थे।[2] रघुवंश में इसका अपरनाम अपरान्तक कहा गया है।[3] जिनसेन के अनुसार इसकी अवस्थिति काठियावाड़ तथा अपरान्तक-प्रदेश के आसपास मानी गयी है।[4] वर्तमानकालीन भूगोल के अनुसार यह पश्चिमी घाट (सह्याद्रि) एवं अरब सागर के बीच का प्रदेश है।

गउड (गौड़, 6/3/12, 14/5/5)

शक्तिसंगमतन्त्र[5] नामक ग्रन्थ में 'गउड़' देश का विस्तार बंग से भुवनेश्वर तक बताया गया है। यथा—

बंगदेशं समारभ्य भुवनेशांतगः शिवे।
गौडदेशः समाख्याता सर्वविद्याविशारदः।।

स्कन्दपुराण में भी यही सीमा बतलाई गयी है। अत: प० च० में जिस गउड देश का उल्लेख आया है, उसकी सीमा रेखा वर्तमान-कालीन आसनसोल से बंगाल तक मानी जा सकती है और इस आधार पर आधुनिक पश्चिमी बंगाल के पश्चिमी भाग को गउड देश माना जा सकता है।

गज्जण (गजनी, 14/5/5)

कवि सिंह ने आधुनिक गजनी देश को गज्जण कहा है। गजनी का शुद्ध रूप वस्तुत: गज्जण अथवा गाजना ही होना चाहिए। पृथिवीचन्द्रचरित्र (वि०सं० 1478) में भी उसे गाजण कहा गया है। मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत'[6] में दो स्थानों पर उसे 'गाजना' शब्द से स्मृत किया है, यथा—

हेम सेत औ गौर गाजना जगत्त बात फिरि आई। —*पद्मावत, 35/5*
हेम सेत औ गौर गाजना बंग तिलंग सब लेत। —*पद्मावत, 42/10*

स्कन्दपुराण में इसे गाजनक कहा गया है।[7] यह गजनी अथवा गज्जण या गाजनक वर्तमान अफगानिस्तान देश में स्थित है। प्राच्य भारतीय-साहित्य में इसे गजगृह, गजदेश अथवा मातंग-विषय भी कहा गया है।[8]

गुर्जर (गुजरात, 14/5/6)

प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में गुर्जर अथवा गुजरात की सीमाएँ उतनी अधिक विस्तृत नहीं थीं, जितनी कि आजकल। आज का गुजरात, प्राच्यकालीन सौराष्ट्र, लाट, कच्छ एवं दक्षिणी मारवाड़-प्रदेश मिलाकर बना है।

जैन-साहित्य में गुजरात का विशेष महत्व है। अर्द्ध-मागधी आगम-साहित्य की अन्तिम वाचना यहाँ के 'बलभी' नामक स्थान में हुई थी। जैन-साहित्य में गुजरात को जैन-संस्कृति का प्रधान गढ़ माना गया है।

गंग (14/5/3)

महाभारत में इस जनपद का उल्लेख नहीं है। किन्तु आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार कदम्बवंशी नरेशों ने इसे अपने साम्राज्य का केन्द्र बनाया था। उनके अनुसार वर्तमान मैसूर प्रदेश में स्थित गंगवाड़ी और उसके आसपास का प्रदेश ही गंग-जनपद था, जिसके पश्चिम में कदम्बराज और पूर्व में पल्लव-नरेशों का राज्य था।[9]

---

1. भीष्म पर्व, 9/60। 2. स्क० पु० 1/2/39-14-3। 3. रघु० 4/58। 4. आ०पु० 16/156। 5. शक्ति सं०त०, 3/7/38। 6. दे० पद्मावत विरचित (झाँसी), प्रथम सं० 2। 7. स्क०पु० 33/65। 8. दे०प्रा०भा० भौगो० स्व०, पृ० 102-103। 9. दे०के० नीलकण्ठ शास्त्री कृत "हिस्ट्री ऑफ इण्डिया" खण्ड 1, पृ० 145-147।

चीण (चीन, 6/3/12)

महाभारत में इसे एक प्राचीन देश माना गया है।[1] वहाँ का राजा युधिष्ठिर को भेंट देने के लिए आया था।

प्राचीन भारतीय जैन, बौद्ध एवं वैदिक साहित्य में चीन का उल्लेख प्रचुर मात्रा में हुआ है। दोनों देशों में व्यापारिक सामग्रियों के आयात-निर्यात के अनेक वृत्तान्त मिलते हैं। रेशमी-वस्त्रों की जो भी चर्चाएँ मिलती हैं, उसमें अधिकांश चीन के रेशम से सम्बन्ध रखने वाली थीं। यद्यपि प०च० में उसकी अवस्थिति पर प्रकाश नहीं डाला गया है। किन्तु वह भारत के उत्तर-पूर्व सीमानुवर्ती प्रदेश था, इसमें सन्देह नहीं है।

चोड (6/4/1)

महाभारत में इसे दक्षिण भारत का एक जनपद माना गया है। उसके अनुसार वहाँ के पराक्रमी राजागण धृष्टद्युम्न द्वारा निर्मित क्रौंच व्यूह की दाहिनी पांख का आसरा लेकर खड़े थे।[2] अशोक के दूसरे शिलालेख में इसका उल्लेख अनेक राष्ट्रों के साथ आया है। कहीं-कहीं इसका अपरनाम द्रविड़-देश भी माना गया है।[3]

टक्क (6/4/1, 14/5/3)

उत्तरज्झयणसुत्त की सुखबोधा-टीका में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। उस में टक्क अथवा ढक्क जाति का ब्राह्मण मूलदेव के साथ वेण्णातट की ओर साथ-साथ चलता है। उसके प्रसंग के अनुसार वह टक्क अथवा ढक्क देश का निवासी था। महाकवि राजशेखर ने भी इसका उल्लेख किया है। कनिंघम के गम्भीर अध्ययन के निष्कर्षों के अनुसार यह सिन्ध से लेकर व्यास नदी तक विस्तृत समस्त प्रदेश का नाम था, जो आजकल पंजाब के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने इसकी सीमा-रेखा उत्तरीय-पर्वतों की तलहटी से लेकर दक्षिण में मुलतान तक निर्धारित की है।[4]

णाड (15/5/3)

महाभारत में 'नाटकेय' नाम के एक देश की चर्चा की गयी है[5]। किन्तु इसकी अवस्थिति का ठीक पता नहीं चलता। प्रतीत होता है कि यह 'आनर्त' का ही संक्षिप्त रूप है। कवि ने छन्दोभंग-दोष से बचने के लिए सम्भवतः पूर्ववर्त्ती 'आ' का लोप कर दिया है। वायुपुराण के अनुसार आनर्त्त-देश उत्तर नर्मदा-खण्ड में स्थित बतलाया गया है।[6] राजशेखर ने भी इसे पश्चिम-भारत का एक देश कहा है।[7] स्कन्द पुराण के अनुसार इसे आनर्त्त नामक एक राजा ने बसाया था।[8] आनर्त्तपुर, कुशस्थली या द्वारका इसकी राजधानी थी। वर्तमान में इसकी पहचान काठियावाड़ से भी की जाती है। प० च० में इसकी अवस्थिति के विषय में कोई सूचना नहीं है।

तिउर (14/5/7)

महाभारत के एक उल्लेख के अनुसार यह एक प्राचीन जनपद था। कवि ने इसका उल्लेख दक्षिण स्थित तिलंग-देश के साथ किया है। इससे विदित होता है कि यह दक्षिण-भारत में कहीं स्थित होना चाहिए। महाभारत के अनुसार ही यहाँ के नरेश को सहदेव ने अपनी दिग्विजय के प्रसंग में विजित किया था।[9] वैसे पूर्व भारत में भी 'त्रिपुरा' एवं मध्यप्रदेश की जबलपुर कमिश्नरी में 'त्रिपुरी' (आधुनिक 'तीवर') नामक स्थल है। किन्तु वर्णन

---

1. सभा पर्व, 51/23। 2. भीष्म पर्व 9/60, 50-51। 3. दे० एन०एल० डे ज्योग्राफिकल पृ० 98। 4. दे० ऐंशियेंट ज्योग्राफी पृ० 125। 5. सभा पर्व, 38/29। 6. वा०पु० 45/131। 7. का०मी० परिशिष्ट 2, पृ० 280। 8. स्क० पु० 3/3/182। 9. सभा पर्व, 31/60।

प्रसंग से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि कवि ने उनमें से किसी का उल्लेख यहाँ किया है।

तिलंग (14/5/7)

महाभारत में इसका उल्लेख नहीं मिलता। स्कन्दपुराण में इसका अपरनाम अतिलांगल देश भी मिलता है।[1] यह प्रदेश गोदावरी एवं कृष्णा नदियों के बीच में स्थित है। तैलंग अथवा तिलंग-देश का प्राचीन रूप त्रिकलिंग है।[2]

दिविड (6/3/12)

वर्तमान भूगोल के अनुसार मद्रास अथवा तमिलनाडु से लेकर श्रीरंगपट्टम और कुमारी अन्तरीप तक विस्तृत भू-भाग को द्रविड़-देश माना गया है।[3] वैसे दक्षिणापथ के जनपदों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु महाकवि राजशेखर ने काव्य-मीमांसा में इसका उल्लेख दक्षिणी-प्रदेशों में किया है।[4] जैन-शिलालेखों एवं प्राकृत-साहित्य में इसे द्रमिल-देश कहा गया है। राजशेखर ने भी इसी शब्द का प्रयोग किया है।[5]

पंडी (पाण्ड्य, 6/4/1)

महाभारत के अनुसार पाण्ड्य-देश के राजा बड़े पराक्रमी थे। वहाँ के राजा पाण्ड्य ने अपने दिव्य-धनुष की टंकार करते हुए वैडूर्य-मणि की जाली से आच्छादित चन्द्रकिरण के समान श्वेत घोड़ों द्वारा आचार्य द्रोण पर आक्रमण किया था।[6] इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि यह दक्षिण भारत का एक प्राचीन जनपद था। आधुनिक भूगोल के अनुसार यह मदुरा एवं तिनैवलि के प्रदेशवाला देश था। कर्पूरमंजरी के अनुसार यहाँ की नवयुवती स्त्रियों का सौन्दर्य एवं मलयज (शीतल) वायु प्रसिद्ध थी।[7] प०च० में इसी 'पाण्ड्य' को पंडी के नाम से अभिहित किया गया है।

पुष्कलावती देश (4/10/6, 14/9/10)

अर्धमागधी आगम-साहित्य के अनुसार पुष्कलावती गान्धार-देश की पश्चिमी राजधानी थी। कुछ विद्वान् इसकी पहचान वर्तमान पेशावर (पाकिस्तान) से करते हैं। महाकवि सिंह के अनुसार 'पुष्कलावती' पूर्व-विदेह में स्थित थी। उनके अनुसार यह नगर प्रकृति का अपूर्व क्रीड़ा-स्थल था। महाभारत में इसका उल्लेख देखने में नहीं आया।

बंग (6/3/12, 14/5/3)

महाभारत में बंग देश का उल्लेख देखने में नहीं आया। वायुपुराण[8] एवं मत्स्यपुराण[9] के अनुसार वह पूर्व दिशा में स्थित एक विस्तृत प्रदेश था। गरुड़ पुराण[10] तथा बृहत्संहिता[11] के अनुसार पूर्व-दक्षिण में स्थित प्रदेश का नाम बंग था। भागवतपुराण[12] तथा मत्स्यपुराण[13] के अनुसार राजा बलि के बंग नामक पुत्र के नाम पर उससे सम्बन्धित प्रदेश का नाम बंग पड़ा। बौद्धागमों के सुप्रसिद्ध 16 जनपदों में इसके नाम का उल्लेख मिलता है।[14] काव्य-मीमांसा के अनुसार बंग की अधिष्ठात्री देवी कालिका थी।[15] वर्तमानकालीन कलकत्ता का नाम इसी देवी के नाम पर पड़ा और बाद में उसके आसपास का प्रदेश बंगाल के नाम से प्रसिद्ध हो गया, जिसमें ढाका, चटगांव आदि भी सम्मिलित थे।[16]

---

1. कुमा० सं० 33/72। 2. डे० ज्योग्राफीकल०, पृ० 204। 3. वही०, पृ० 54। 4. का०मी०, 34/6। 5. वही०, 39/13। 6. द्रोण पर्व० 33/23/72-73। 7. क०मं०, 1/15। 8. वा०पु०. 45/122। 9. म०पु० 114/44। 10. ग०पु०, 55/12। 11. बृ०सं० 14/8। 12. भा०पु०, 9/2215। 13. म०पु० 48/25। 14. अंगुत्तर निकाय, ऊ०भा०, पृ० 197 (6/10) नालन्दा सं०। 15. का०मी०, 14/12। 16. सरकार ज्योग्राफी०, पृ० 27।

प० च० में इस देश का नाम एक स्वयंवर-प्रसंग में आया है।

मगध (4/14/9, 14/5/3)

महाभारत के अनुसार यह एक प्राचीन देश है जिसकी राजधानी गिरिव्रज (आधुनिक राजगृह) थी।[1] इसकी चर्चा वैदिक, बौद्ध एवं जैन सभी साहित्य में प्रचुर मात्रा में आयी है। भगवान महावीर का सर्वप्रथम उपदेश मगध की राजधानी गिरिव्रज के विपुलाचल पर हुआ था। वैचारिक-क्रान्ति का मूल-स्थल होने के कारण इसकी जैन साहित्य में प्रशंसा एवं वैदिक-साहित्य में निन्दा की गयी है।

महाकवि जिनसेन ने इसका विस्तृत वर्णन किया है।[2] प० च० में इसकी समृद्धि का वर्णन करते हुए यहाँ के नरेश श्रेणिक का सुन्दर वर्णन किया गया है।

मालव (मालवा, 6/4/1, 14/5/4)

महाभारत के अनुसार पश्चिम भारत का एक प्रसिद्ध जनपद था, जिस पर नकुल ने विजय प्राप्त की थी।[3] जैन-साहित्य में मालवा का प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है। शक्तिसंगमतन्त्र में अवन्ती से पूर्व और गोदावरी के उत्तर में इस जनपद की अवस्थिति मानी गयी है।[4] काव्यमीमांसा में मालवा के कई विभागों का उल्लेख किया गया है।[5] हर्ष के युग में मालवा एक सुप्रसिद्ध देश था।[6] दशकुमारचरित में मालव देश और मालव राज का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। इसके अनुसार उज्जयिनी मालवा की राजधानी थी।[7] स्कन्दपुराण के अनुसार मल की बाहुल्यता के कारण ही इस भूखंड को मालवा कहा गया है[8]—'मलस्य बहु सम्भूत्या मालवेति प्रकीर्त्तिता।'

यवन (10/18/4)

महाकवि सिंह ने यवन देश की स्थिति के विषय में कोई चर्चा नहीं की किन्तु जिनसेन के अनुसार आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने यवन-देश की स्थापना की थी।[9] महाभारत के अनुसार नन्दिनी ने योनि-देश से यवनों को जन्म दिया था।[10] उसके अन्य सन्दर्भों के अनुसार कम्बोज-राज्य सुदक्षिण यवनों के साथ एक अक्षौहिणी सेना के लिए दुर्योधन के पास आया था।[11] महारथी कर्ण ने अपने दिग्विजय-काल में पश्चिम में यवनों को जीता था। उसके एक अन्य प्रसंग के अनुसार ही यवन एक भारतीय जनपद है। वहाँ के निवासी पूर्व में क्षत्रिय थे। परन्तु बाद में ब्राह्मणों से द्वेष रखने के कारण वे शूद्रत्व को प्राप्त हो गये थे।[12] कुछ विद्वान् मुलतान के समीप स्थित सिन्ध एवं उसके आसपास वाले प्रदेश को भी यवन-देश कहते हैं।

लाड (6/3/12, 14/5/4)

लाड देश पश्चिमी भारत का एक प्रसिद्ध जनपद माना गया है। कुमारगुप्त के दशपुर (मन्दसौर, मध्यप्रदेश) शिलालेख में बताया गया है कि यहाँ के जुलाहों का रंगाई-बिनाई का काम विश्व-विख्यात था।[13]

वर्तमान भूगोल के अनुसार यह दक्षिणी गुजरात का नाम था, जो आज भी अपने वस्त्र-उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। इसमें वर्तमान सूरत, भड़ौंच, बड़ौदा, अहमदाबाद एवं खेड़ा जिले के भूभाग सम्मिलित हैं। राजशेखर ने "प्राकृते लाटदेश्या:" कह कर यहाँ के प्राकृत-भाषा बोलने वालों की प्रशंसा की है।[14]

---

1. सभा पर्व, 21/2/3। 2. आ०पु०, 16/153। 3. सभा पर्व, 32/7। 4. शक्ति० संगत० 3/7/21। 5. का०मी०, 9/3। 6. हर्ष०च० 225, 227। 7. दश०कु० च०, पृ० 5, 6, 9, 14। 8. स्क० पु० 5/1/11/12। 9. आ०पु०, 16/155। 10. आदि पर्व० 174/36-37। 11. उद्योग पर्व, 19/21-22। 12. अनुशासन पर्व, 35/18। 13. मन्दसौर शिलालेख, श्लोक 4। 14. का०मी०, 109/5, 110/22, 51/5।

वराड (14/5/4)

वराड नाम के देश का उल्लेख प्राचीन-साहित्य में नहीं हो सका है किन्तु यदि इसे विराट देश मान लिया जाए तो इसकी पहचान मत्स्य देश के साथ की जा सकती है। महाभारत के अनुसार अज्ञात वनवास में भटकते हुए पाण्डव मत्स्य देश में आये थे। मत्स्य[1] देश वर्तमान राजस्थान के भरतपुर एवं अलवर जिलों में सीमित था।

सायंभरि (शाकम्भरी, 6/9/3)

महाभारत के अनुसार यह एक देवी सम्बन्धी तीर्थ था।[2] आधुनिक भूगोल के अनुसार वर्तमान कालीन साम्भर (राजस्थान) ही शाकम्भरी देश है। यह चौहानों का प्रसिद्ध राज्य था।

सिन्धु (14/5/7)

महाभारत के अनुसार यह एक प्राचीन जनपद था, जिसका राजा जयद्रथ द्रौपदी के स्वयंवर में आया था।[3] शक्तिसंगमतन्त्र के अनुसार इस जनपद का विस्तार लंका से मक्का पर्यन्त बतलाया गया है।[4] इसके अनुसार यह प्रदेश उत्तरी एवं दक्षिणी दो भागों में विभक्त था। उत्तरी भाग डेरा इस्माइलखां (आधुनिक पाकिस्तान) की ओर था। उत्तरी सिन्धु को शुक्तसिन्धु और दक्षिणी को पान-सिन्धु कहा गया है। अनेक प्राचीन ग्रन्थों में सिन्धु को सौवीर के साथ उल्लिखित किया गया है। इससे विदित होता है कि दोनों देशों की सीमाएँ परस्पर में जुड़ी हुई थीं। स्कन्दपुराण के अनुसार यहाँ के घोडे इतने प्रसिद्ध थे कि वे सिन्धु-देश के पर्यायवाची बन गये थे।[5] इसीलिए अमरकोशकार ने घोड़े के पर्यायवाची नामों में सिन्धु अथवा सैन्धव को भी रखा है।

सोरट्ठ (सौराष्ट्र 4/12/5, 14/5/6)

प० च० में सौराष्ट्र देश का विस्तृत वर्णन आया है। वहाँ के नदियों, पर्वतों, समुद्र, कृषि, भवन एवं वहाँ के निवासियों की समृद्धि, सुन्दरता एवं सुरुचियों का सुन्दर वर्णन किया है। जैन-साहित्य में सुराष्ट्र को जैन-संस्कृति का प्रधान गढ़ तो माना ही गया है, साथ ही उसे बड़ा भारी व्यापारिक केन्द्र भी माना गया है। दूर-दूर के व्यापारी वहाँ व्यापारिक-सामग्रियों का आदान-प्रदान करने के लिए आते-जाते बने रहते थे। जैनियों के 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ को अत्रस्थित गिरनार पर्वत से ही मुक्ति प्राप्त हुई थी।

ई०पूर्व० 317 के लगभग चन्द्रगुप्त मौर्य ने यहाँ कुछ पर्वतीय नदियों को बाँधकर सुदर्शन-झील का निर्माण कराया था। महाभारत के अनुसार दक्षिण दिशा के तीर्थों के वर्णन प्रसंग में उक्त देश के अन्तर्गत चमसोद्भेद, प्रभास क्षेत्र, पिंडारक एवं ऊर्जयन्त अथवा रैवतक पर्वत आदि पुण्यस्थलों का वर्णन आया है।[6]

हूण (6/3/12)

महाभारत के अनुसार 'हूण' एक देश था, जहाँ का राजा युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में भेंट लेकर आया था। हर्षचरित के अनुसार यह उत्तरापथ का एक देश था।[7] शक्तिसंगमतन्त्र के अनुसार यह देश कामगिरि के दक्षिण और मरुदेश के उत्तर में स्थित था। यहाँ के लोग शूर-वीर अधिक होते थे, जैसा कि कहा गया है—

---

1. आदि पर्व, 155/2। 2. वन पर्व, 84/13-17। 3. आदि पर्व, 185/21। 4. शक्ति सं०तं० 3/7/57। 5. स्क०पु० 2/2/49/30, 2/8/5/26। 6. वन पर्व, 88/19-21। 7. सरकार ज्योग्राफी०, पृ० 27, नोट 2।

कामगिरेदक्षभागे मरुदेशात्तथोत्तरे।
हूण देश: समाख्यात: शूरास्तत्र वसन्ति हि।।[1]

इनके अतिरिक्त प० च० में चंग (14/5/6), कण्ह (14/5/6) एवं बोड (14/5/4) देशों का भी उल्लेख आया है। किन्तु इनकी अवस्थिति के विषय में प्राचीन-साहित्य में कोई भी सन्दर्भ नहीं मिल सके। हो सकता है कि कृष्णा नदी के पार्श्ववर्त्ती प्रदेश को कण्ह-देश माना जाता रहा हो।

नगर

पुर एवं नगर (4/5/14)

महाकवि जिनसेन ने पुर एवं नगर दोनों को पर्यायवाची बताया है।[2] प० च० में भी कवि ने नगरों के साथ-साथ प्राय: छन्द रचना को ध्यान में रखते हुए पुर एवं नगर दोनों विशेषणों को समानार्थक प्रयुक्त किया है। यथा — दारमइपुरि (10/14/9), दारामईणयरि (1/9/7) आदि। प्राचीन-साहित्य का अध्ययन करने से विदित होता है कि इन पुरों एवं नगरों में प्रासाद, निकुंज, सुन्दर जल-व्यवस्था, विस्तृत-मार्ग, मल-प्रवाहिनी नलिकाएँ, परिखा, गोपुर, शिक्षास्थल, औद्योगिक-भवन, चिकित्सालय, चतुष्पथ आदि विधिवत् निर्मित रहते थे।

अयोध्या एवं साकेत नगरी (5/11/5, 9/4/9)

अयोध्या का अपर नाम साकेत नगरी भी है। जैन-साहित्य में उक्त अयोध्या के लिए दोनों नाम प्रचलित हैं। आद्य-तीर्थंकर ऋषभदेव के गर्भ एवं जन्म, दूसरे तीर्थंकर — अजितनाथ, चौथे तीर्थंकर — अभिनन्दननाथ, पाँचवें तीर्थंकर — सुमतिनाथ तथा चौदहवें तीर्थंकर — अनन्तनाथ के प्रथम चार कल्याणक इसी भूमि पर हुए थे।

महाभारत के अनुसार इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की यह राजधानी थी और मुनिवर वशिष्ठ, राजा कल्मषपाद के साथ यहाँ पधारे थे।[3] ऐतिहासिक-काल में भी अयोध्या नगरी पर्याप्त प्रसिद्ध रही है। शुंग-वंशी नरेश पुष्यमित्र का एक महत्वपूर्ण शिलालेख इसी नगरी की खुदाई में मिला है। गुप्त-सम्राट चन्द्रगुप्त के शासनकाल में अयोध्यापुरी विद्या का प्रमुख केन्द्र थी। वर्तमान-काल में इसे भगवान् राम की जन्म-भूमि के रूप में पूजा जाता है, किन्तु राम जन्म-स्थल पर 'बाबरी मस्जिद' बनी हुई है।[4] मुस्लिम-सम्प्रदाय में भी इसे खुर्द-मक्का और सिक्खों की सराय के रूप में पूजा जाता है।[5]

अलकापुरी (8/1/2, 8/2/7, 8/3/1)

कवि सिंह ने अलकापुरी का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने इसके साथ-साथ वहाँ के यक्ष का भी वर्णन किया है। महाभारत में इसे कुबेर की नगरी और पुष्करिणी कहा गया है।[6] महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत में इस नगरी के समृद्धि-वैभव का विस्तार-पूर्वक वर्णन करते हुए इसे हिमालय की गोद में बसी हुई बतलाया है। उन्होंने अलकापुरी को सुवर्णबालुकामयी भूमि कहा है[7], जबकि पं० सूर्यनारायण व्यास ने इसे वर्त्तमान जोधपुर से 70 मील दक्षिण में स्थित बतलाया है।[8] आदिपुराण में इसकी अवस्थिति विजयार्ध की

---

1. शक्ति सं० तं०, 44। 2. आ०पु० 19/51। 3. आदि पर्व, 176/35-36। 4. उत्तर प्रदेश की ऐतिहासिक विभूति, पृ० 60। 5. भा०दि० जैन ती०, भा० 1, पृ० 160। 6. आदि पर्व, 85/9; सभा पर्व 10/8। 7. मेघदूत, पूर्वमेघ 7, उत्तरमेघ 2, 3, 4, 13, 14। 8. विश्वकवि कालिदास : एक अध्ययन (ज्ञानमण्डल प्रकाशन, इन्दौर) पृ० 77।

उत्तरश्रेणी में कही गयी है।[1]

कनखल (5/17/9)

महाभारत के अनुसार कणखल एक पवित्र तीर्थ-स्थल है।[2] यहाँ स्नान करके तीन रातों तक उपवास करने वाला व्यक्ति अश्वमेध-यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

कवि सिंह ने कणखल के वर्णन-प्रसंग में वहाँ प्रवाहमान गंगा-जल की पवित्रता की सूचना दी है। इससे स्पष्ट है कि वर्तमान कनखल की ओर ही कवि का संकेत है।

कुरुखेत्त (5/17/9)

महाभारत के अनुसार सरस्वती एवं दृषद्वती नामक नदी के मध्यवर्ती क्षेत्र कुरुक्षेत्र था।[3] कुरु ने अपनी तपस्या से इस क्षेत्र को पवित्र बनाया था।[4]

कुंडिनपुर (2/11/10, 9/11/9)

महाभारत के अनुसार यह विदर्भ देश की राजधानी था।[5] अर्द्धमागधी आगम-साहित्य में भी विदर्भ-देश के प्रमुख नगर के रूप में इसकी चर्चा आती है।

इस कुण्डिनपुर की पहचान विदर्भप्रदेश के कौण्डवीर्य से की गयी है।[6] प०च० में भी इसकी अवस्थिति कोशल के दक्षिण प्रदेश में की गयी है, जो कि महाभारत के उक्त उल्लेख से मेल खाती है।

द्वारका (वारमई, दारामई, 1/9/7, 1/12/2, 1/14/1)

प०च० में इसका वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है। उनके अनुसार इसकी अवस्थिति सौराष्ट्र देश में मानी गयी है। महाभारत के अनुसार इसे रैवतक-पर्वत से सुशोभित रमणीय कुशस्थली बताया गया है[7], जहाँ पर जरासन्ध से बैर हो जाने पर समस्त यादव श्रीकृष्ण की आज्ञापूर्वक यहाँ आकर बस गये थे। जैन-साहित्य, विशेष रूप से उत्तराध्ययन-सूत्र की सुखबोधा टीका तथा जैन-हरिवंश एवं विविध पाण्डवपुराणों में इसकी विस्तृत चर्चाएँ आयी हैं। वर्तमानकाल में यह गुजरात-प्रदेश के पश्चिमी-समुद्री किनारे पर अवस्थित है।

पुण्डरीकणी (4/10/9, 14/9/10)

प०च० में इसकी अवस्थिति पूर्व-प्रदेश के पुष्कलावती देश के अन्तर्गत बतलायी गयी है। अर्द्ध-मागधी आगम-साहित्य के अनुसार शत्रुंजय का ही अपरनाम पुण्डरीक है।[8] जैन मान्यतानुसार यहाँ पाण्डव एवं अनेक ऋषियों ने मुक्ति-लाभ किया था। आचार्य जिनसेन ने इसे विदेह की एक नगरी माना है।[9]

बंभणवाड (1/4/8)

स्कन्दपुराण के अनुसार ब्राह्मणवाड एक प्राचीन देश था, जिसमें साढ़े तीन लाख ग्राम सम्मिलित थे।[10] कुछ लोग वर्तमान पाकिस्तान के बहमनाबाद से इसकी पहचान करते हैं[11], किन्तु यह उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। ब्राह्मणवाड वस्तुतः वर्तमान कालीन 'बाढ़वाण'[12] (गुजरात) है। यहीं के एक जैन मन्दिर में बैठकर महाकवि

---

1. आ०पु० 4/104। 2. वन पर्व, 84/30, 90/22। 3. वही०, 83/4; 204/205। 4. आदि पर्व, 94/50। 5. वन पर्व, 60, 73, 77; उद्योग पर्व, 158। 6. ज्यो० ज्योग्राफीकल, पृ० 116। 7. सभा पर्व, 14/50-55। 8. भा०प्रा०जैन०ती०, पृ० 50। 9. आ० पु० 46/19। 10. स्क०पु०, 1/2/39/16। 11. प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० 80। 12. जैन०स्ट०, पृ० 117।

जिनसेन (प्रथम) ने अपने संस्कृत हरिवंशपुराण की रचना की थी।[1] महाकवि हरिषेण ने अपने कथा-कोष की रचना भी यहीं बैठकर की थी।[2] इस प्रकार बम्हणवाड निश्चित रूप से 7वीं सदी से जैन विद्या का केन्द्र रहा था, जो आगे कई शताब्दियों तक जैन लेखकों के लिए प्रेरणा केन्द्र बना रहा। प्रस्तुत प०च० की रचना भी वहीं के एक जैन-विहार में की गयी।

मेघकूडपुर (7/9/1)

यह कोई पौराणिक नगर प्रतीत होता है, जो किसी विद्याधर-क्षेत्र में स्थित था। कवि सिंह के अनुसार इसी नगरी के राजा कालसंवर एवं रानी कनकमाला ने प्रद्युम्न का 16 वर्षों तक पालन-पोषण किया था।

रत्नसंचयपुर (8/20/3)

महाकवि जिनसेन ने इस नगर का उल्लेख किया है। उनके अनुसार विदेह क्षेत्र के मंगलावती देश में यह नगर स्थित था।[3] इसकी पहचान अभी तक नहीं हो सकी।

रथनूपुर-चक्रवाल (2/3/7)

यह विद्याधरों का एक नगर-राज्य था। जैन-भूगोल के अनुसार यह विजयार्द्ध-पर्वत की दक्षिण श्रेणी का 22वां नगर है। वर्तमान खोजों के अनुसार दक्षिणी बिहार के चाइबासा के आसपास इसकी अवस्थिति मानी जा सकती है। महाभारत में इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

वडपुर (6/18/2)

'वडउर' नामक नगर प्राचीन साहित्य में उपलब्ध नहीं होता। कवि सिंह के उल्लेख के अनुसार इसे अयोध्या के समीप ही कहीं होना चाहिए। हमारा अनुमान है कि वर्तमान बटेश्वर ही (जो कि आगरा जिले में यमुना नदी के किनारे स्थित है) प०च० का वडउर होना चाहिए। बटेश्वर जैन एवं हिन्दू दोनों संस्कृतियों का प्रधान केन्द्र रहा है।

सालिग्राम (4/14/9, 5/17/7)

इस नगर की चर्चा अन्यत्र देखने में नहीं आती। महाकवि सिंह ने इसे मगध-जनपद में अवस्थित बतलाया है। प्रतीत होता है कि यह वर्तमान राजगीर अथवा बिहारशरीफ (बिहार) के आसपास कोई स्थल रहा होगा। कवि के वर्णन के अनुसार यह स्थान वही प्रतीत होता है, जो इन्द्रभूति- गौतम का आश्रम-स्थल था। इसकी पहचान वर्तमान 'सिलाव' (बिहार) से की जा सकती है।

सिंहपुर (7/8/9)

प०च० में सीहउर की स्थिति विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में बतलाई गयी है। जिनसेन ने आदि पुराण में विदेह क्षेत्र के गन्धला देश की अमरपुरि के समान ही इस नगर को बताया है।[4] जैन-साहित्य में सिंहपुर की पहचान वर्तमान सारनाथ (वाराणसी) से की जाती है।

ग्राम (1/7/3, 4/14/9)

महाकवि सिंह ने देश एवं नगरों के साथ-साथ ग्रामों तथा उनके अनेक रूपों की भी चर्चा की है। कवि सिंह

---

1. जै०सा०इ०, पृ० 116-117। 2. वही०। 3. आ०पु०, 7/14। 4. वही० 5/203।

ने ग्राम शब्द की कोई परिभाषा नहीं दी है। किन्तु उन्होंने ग्राम-वर्णन के प्रसंग में कृषकों एवं उनके द्वारा की गयी खेती, जलाशय, सुरम्य-उद्यान एवं गाय-भैंसों की चर्चा की है। इससे विदित होता है कि ग्राम कृषि-प्रधान स्थल कहलाते थे। जिनसेन के अनुसार एक सामान्य ग्राम में 100 घर होते थे।[1] तथा 500 घर वाला ग्राम या बड़गाँव कहलाता था। ग्रामों में कृषकों के साथ-साथ कुम्हार, चमार, लुहार, बढ़ई, माली आदि लोगों का निवास अधिक होता था, जो कच्चे मिट्टी के बने घरों अथवा घास-फूस के झोंपड़ों में रहते थे।[2]

महाकवि सिंह ने कुछ ग्रामीण इकाइयों की भी चर्चा की है, जिनमें मडंब, खेड, दरि, कव्वड एवं पत्तन के नाम प्रमुख हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

मडंब (1/15/6)

आदिपुराण[3] तथा वरांगचरित[4] में इसकी परिभाषा करते हुए बताया गया है कि मडंब 500 ग्रामों के बीच में एक व्यापारिक केन्द्र होता था। प०च० में इसकी कोई परिभाषा नहीं दी गयी है।

खेड (1/15/6)

जिनसेन ने पर्वत एवं नदी के मध्यवर्त्ती-स्थल को खेड कहा है[5], जब कि समरांगण-सूत्रधार नामक ग्रन्थ के अनुसार ग्राम एवं नगर के मध्यवर्ती स्थल को खेड़ कहा गया है। यह स्थल नगर से छोटा एवं ग्राम से बड़ा होता था।[6] आज की भाषा में इसे कस्बा कह सकते हैं। यहाँ के निवासियों में शूद्रों एवं कर्मकारों की संख्या अधिक होती है।[7]

दरि (गुफा, 1/15/6)

पर्वतीय नदियों के किनारे एवं पहाड़ों के भीतर प्राकृतिक दरारों वाले छोटे-बड़े स्थल 'दरि' कहे जाते हैं।

कव्वड (पर्वतीय प्रदेश, 4/9/14)

आचार्य जिनसेन ने इसे खर्वट की संज्ञा प्रदान की है। इसके अनुसार वह पर्वतों से घिरा हुआ प्रदेश माना गया है।[8] कौटिल्य ने खर्वट को दुर्ग के समान माना है, जो 200 ग्रामों की रक्षा के लिए निर्दिष्ट किया जाता था।[9] प०च० में इसकी कोई परिभाषा प्राप्त नहीं होती।

पत्तन (1/4/8)

प्राचीन काल में 'पत्तन' उस नगर को कहा जाता था, जो समुद्री किनारों पर बसा हुआ हो और जहाँ निरन्तर जलयानों का आवागमन होता रहता हो। कवि सिंह ने इसी अर्थ में पत्तन शब्द का प्रयोग किया है। समरांगणसूत्र के अनुसार राजाओं के उष्णकालीन एवं शीतकालीन उपस्थान को पट्टन कहा गया है।[10] आदिपुराण, बृहद्कथाकोश आदि ग्रन्थों के अनुसार पत्तन एक प्रकार का वाणिज्य-बन्दरगाह है, जो किसी समुद्र या नदी के तट पर स्थित होता है और जहाँ मुख्य रूप से व्यापारी वर्ग ही निवास करता है।[11] आधुनिक युग में भी समुद्री तट पर बसे हुए नगर बड़े भारी व्यापारिक केन्द्र हैं, जिन्हें बन्दरगाह कहा जाता है, एवं जिन के नामों के साथ पट्टम अथवा पट्टन शब्द जुड़ा हुआ है। जैसे—विजगापट्टम, मछलीपट्टम, रंगपत्तन एवं विशाखापत्तन आदि।

1. आ०पु०. 16/164-165। 2. वही०, 16/164-167। 3. वही० 16/172। 4. वरांगचरित. 3/4/12-44। 5. आ०पु०. 16/172। 6. भारतीय वास्तुशास्त्र (लखनऊ), पृ० 104। 7. वही०, पृ० 105। 8. आ०पु० 16/171। 9. कौटिल्य अर्थशास्त्र. 17/1/3। 10. समरांगणसूत्र. 16/172। 11. मानसार० नवम अध्याय।

(7) सामाजिक चित्रण

व्यक्ति के जीवन में सामाजिकता का अत्यन्त महत्व है। समाज के बिना व्यक्ति की वैयक्तिक स्थिति सम्भव नहीं। समाज में रहकर ही वह उन्नति के पथ पर अग्रसर होता हुआ अपने जीवन को परिष्कृत एवं सुसंस्कृत बनाता है और शाश्वत-सुख की आनन्दानुभूति का अनुभव कर सकता है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए महाकवि सिंह ने प०च० में सामाजिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला है। पूर्वगत भारतीय सामाजिक-परम्परा के अनुसार कवि-कालीन भारत भी विभिन्न वर्णों एवं जातियों में विभक्त था। कवि ने परम्परा-प्राप्त 'चार वर्णों'[1] के उल्लेख किये हैं, जिनमें कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र परिगणित हैं।

(अ) वर्ण-व्यवस्था

(1) ब्राह्मण

वैदिक-युग से ही सभी वर्णों में ब्राह्मणों को श्रेष्ठ बतलाया जाता रहा है। महाकवि सिंह के समय में भी उनकी यह श्रेष्ठता अखण्ड-रूप में बनी हुई थी। कवि ने ब्राह्मणों को वेदों का ज्ञाता[2], चतुर्वेदों का घोष करते हुए यज्ञ करने वाला[3] एवं सन्ध्या-तर्पण करनेवाला कहा है।[4] विवाह आदि शुभ-कार्यों के पूर्व ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था।[5] भले ही ब्राह्मणों की श्रेष्ठता बनी रही हो, किन्तु कवि ने कुछ ऐसे संकेत भी किये हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि उनकी जीवन-धारा में कुछ परिवर्तन होने लगा था। कवि ने एक स्थल पर उन्हें 'कृषि-कार्य' करनेवाला[6] भी कहा है और बतलाया है कि वह किसी का दान नहीं लेता था।[7] कवि ने स्पष्टरूपेण बतलाया है कि ब्राह्मण भी कृषक का कार्य कर सकता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 12-13वीं सदी में ब्राह्मण-वर्ग विद्याध्ययन के साथ ही साथ अपनी आजीविका के लिए खेती भी करने लगे थे।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने ब्राह्मणों को उनके कार्यों के अनुसार विभिन्न प्रसंगों में विविध नामों से सम्बोधित किया है। यथा—द्विज[8], बंभण[9], अग्गहार[10] एवं विप्र[11]। यशस्तिलकचम्पू में भी ब्राह्मणों के इसी प्रकार के अनेक नाम मिलते हैं।[12]

(2) क्षत्रिय

प०च० में अनेक राजाओं के उल्लेख मिलते हैं। किन्तु 'क्षत्रिय' शब्द के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख नहीं मिलते। न ही उनकी सामाजिक-स्थिति पर ही प्रकाश डाला गया है। हाँ, कुण्डिनपुर के राजा भीष्म को अपने 'क्षात्र-धर्म को पालने वाला क्षत्रिय राजा' कहा है।[13] उनके इस कथन से प्रतीत होता है कि क्षत्रिय जाति प्रशासन एवं सुरक्षा आदि का कार्य कुशलतापूर्वक करती थी। अलबेरुनी (11वीं सदी का पूर्वार्द्ध) ने भी लिखा है कि क्षत्रिय-जाति लोगों पर शासन एवं उनकी सुरक्षा करती थी।[14]

(3) वैश्य

भारतीय-वर्ण-व्यवस्था में वैश्यों का तीसरा स्थान था। यदि ब्राह्मण धार्मिक-कार्यों एवं क्षत्रिय राजनैतिक कार्यों के द्वारा सामाजिक-व्यवस्था बनाये रखते थे, तो वैश्य अपनी कुशाग्र-बुद्धि तथा कृषि एवं वाणिज्य के

---

1. प०च०, 6/8/10। 2. वही०, 4/14/14। 3. वही०, 6/1/7। 4. वही०, 5/17/10। 5. वही० 11/21/1। 6. वही० 4/16/9। 7. वही० 4/16/9। 8. वही०, 4/15/2। 9. वही०, 4/14/12। 10. वही० 4/14/12। 11. वही० 1/20/11। 12. यशस्तिलकचम्पू, उत्तरखण्ड, पृ० 88, 105, 108, 126। 13. प० च०, 2/12/3। 14. अलबेरुनीज़ इंडिया, पृ० 136।

द्वारा देश के पालन-पोषण एवं समृद्धि-वृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान देते थे। इसलिए ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के साथ-साथ समाज में इनका भी सम्मानित स्थान था। प०च० में इन्हें वणिक्[1] एवं वणियारे[2] के नाम से सम्बोधित किया गया है। राजकुमार प्रद्युम्न के द्वारावती प्रवेश के समय कवि ने बाजार-हाट, एवं वहाँ बिकने वाली विविध वस्तुओं के नामों के साथ वणिकों के उल्लेख किये हैं।[3] इससे स्पष्ट होता है कि उस समय व्यापार-वणिकों के हाथों में ही था। एक अन्य प्रसंग से विदित होता है कि वणिग्जन एक स्थान से दूसरे स्थानों में जाकर आयात-निर्यात कर व्यापार किया करते थे[4], जिसके लिए रास्ते में उनसे चुंगी[5] (टैक्स) भी वसूल की जाती थी। इससे तत्कालीन चुंगी-प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है।

महाकवि सिंह ने 'वणिक्' शब्द के साथ ही 'श्रेष्ठि' शब्द का प्रयोग भी किया है एवं उन्हें धन तथा स्वर्ण से समृद्ध बतलाया गया है। इससे ज्ञात होता है कि श्रेष्ठि और वणिक् में समृद्धि तथा व्यापार की दृष्टि से अन्तर था। 'श्रेष्ठि' समाज में सबसे अधिक समृद्ध समझे जाते थे। णायाधम्मकहाओ[6] एवं समराइच्चकहा[7] में ऐसे अनेक श्रेष्ठियों के वर्णन आये हैं जो समाज एवं राष्ट्र में सर्वश्रेष्ठ समृद्ध व्यक्ति होते थे तथा जो एक ही स्थान पर रहकर व्यापार भी करते थे। उन्हें राज-दरबार में सम्मानित स्थान प्राप्त होता था। भविसयत्तचरिउं के नायक भविष्यदत्त के पिता वणिक् धनदत्त को गजपुर-नरेश भूपाल ने श्रेष्ठि की उपाधि प्रदान की थी।[8] इससे विदित होता है कि 'श्रेष्ठि' एक राष्ट्रीय उपाधि थी, जो उच्च-श्रेणी के समृद्ध-वणिकों को राजा द्वारा प्रदत्त की जाती थी। कुमारगुप्त (प्रथम) के दामोदरपुर ताम्र-पत्र में भी इसका उल्लेख है।[9]

(4) शूद्र

वैदिक युग में शूद्र को निम्न कोटि का वर्ग माना जाता रहा है एवं उन्हें वेदादि धार्मिक-ग्रन्थों को सुनने योग्य भी नहीं माना गया है। यद्यपि प०च० में स्पष्टरूपेण 'शूद्र' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु उसके अन्तर्गत आने वाली कुछ जातियों के उल्लेख उनके कार्यों के आधार पर किये गये हैं। इस प्रकार की जातियों में चाण्डाल[10], नापित[11], माली[12], चामीकर[13] (स्वर्णकार) एवं डोम[14] आदि के नामोल्लेख प्राप्त हैं।

भले ही वैदिक धर्म में शूद्रों को वेदादि धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के अयोग्य माना गया हो, किन्तु जैन धर्म में मानव मानकर उन्हें धार्मिक-ग्रन्थों के अध्ययन के अयोग्य नहीं माना। वे जैन धर्म के व्रत-नियमों का पालन कर परलोक में अपनी गति का सुधार करने के लिए स्वतन्त्र थे। प्राचीन जैन-साहित्य में इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। प०च० में भी चाण्डाल एवं एक ऐसी धीवरी कन्या का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, जिसने शूद्र-कुल में जन्म लेकर भी परिस्थितियों वश श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जैनाचार का पालन किया और सद्गति को प्राप्त किया।[15]

तात्पर्य यह कि शूद्र-कुल में जन्म लेने वालों के लिए भी जैनाचार पालन करने की छूट थी। उन पर कभी किसी भी प्रकार का बन्धन या निषेधाज्ञा लागू न थी।

(अ) चाण्डाल

वैदिक प०च० में चाण्डाल, डोम एवं मातंग शूद्र-वर्ग में पर्यायवाची माने गये हैं। परवर्तित-वेश में प्रद्युम्न को

---

1. प० च०, 10/10/6। 2. वहीं० 11/13/12। 3. वहीं०, 11/12/2। 4. वहीं० 10/10/6। 5. वहीं०, 10/10/4। 6. णायाधम्मकहाओ 5/19। 7. समराइच्चकहा 3, पृ० 184; 5 पृ० 398। 8. भविसयत्तचरिउ, गाथा 11। 9. इंडि० हिस्टॉ० 15, पृ० 135। 10. प० च०, 5/16/15। 11. वहीं०, 12/12/5। 12. वहीं०, 11/12/13। 13. वहीं०, 6/3/4। 14. वहीं०, 14/23/10। 15. वहीं० 6/2/7, 9/10/16, 9/11/8।

कवि ने एक स्थान पर चाण्डाल[1] दूसरे पर मातंग[2] एवं डोम[3] कहा है। 'समराइच्चकहा' में भी इन तीनों को पर्यायवाची माना गया है।[4] उसके अनुसार इस वर्ग के लोगों के कार्य निम्नतर श्रेणी के होते थे।[5] फाहियान[6] (5वीं सदी) एवं इत्सिंग[7] (7वीं सदी) के अनुसार ये उपेक्षित एवं अस्पृश्य-वर्ग में आते थे।

उत्तराध्ययनसूत्र की सुखबोधा-टीका (दसवीं सदी) के अनुसार चम्पानरेश-दधिवाहन के पुत्र करकण्डु का पालन-पोषण एक चाण्डाल ने ही किया था, बाद में मातंगपुत्र के रूप में प्रसिद्ध वह करकण्डु दन्तिपुर के राजा के रूप में निर्वाचित हुआ, तो सामन्त वर्ग के विरोध करने पर भी बड़ी कठिनाई पूर्वक उसे राजा स्वीकृत किया गया।[8] इससे विदित होता है कि दसवीं शताब्दी में भी मातंगों की समाज में अच्छी स्थिति नहीं थी। महाकवि सिंह ने भी उक्त जातियों को समाज के उपेक्षित वर्ग में ही रखा है। यद्यपि डोम एवं चाण्डाल गीत एवं नृत्य में कुशल होते थे। इसलिए महाकवि कल्हण ने उन्हें संगीत एवं नृत्यकला में कुशल कहा है।[9] विदेश से वापिस लौटते समय राजा श्रीपाल को राजा धरपाल की दृष्टि में गिराने हेतु धवल सेठ ने मातंगों को ही फुसलाकर श्रीपाल को अपना सम्बन्धी घोषित करने का अभिनय कराया था।[10]

(आ) नापित

प्राचीन काल में नापित का मुख्य कार्य मालिश एवं स्नान कराना था। उसकी व्युत्पत्ति 'स्नपित' से मानी गयी है, किन्तु परवर्ती-कालों में उसे केश-कर्त्तक के रूप में ही लिया जाने लगा। कवि सिंह ने नापित को केश-कर्त्तक के रूप में ही स्वीकृत किया है।[11]

(इ) माली

आदिपुराण के अनुसार माली अथवा मालाकार का प्रधान कार्य पुष्प-चयन पुष्पग्रथन एवं राजपरिवार के लिये पुष्पार्पण तथा वाटिकाओं की रखवाली करना था।[12] कवि सिंह ने भी इसी अर्थ में उक्त जाति का उल्लेख किया है।[13]

उक्त जातियों के अतिरिक्त कवि ने कुछ वन्य-जातियों—वनेचर[14], पुलिंद[15], शबर[16], एवं भील[17] के भी उल्लेख किये हैं।

(ई) वनेचर

"वने चरति इति वनेचरः" अर्थात् वन में रहकर जीवन व्यतीत करने वाली जातियाँ वनेचर कहलाती थीं। महाकवि सोमदेव ने इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है।[18] किरातार्जुनीयम् में 'वनेचर' ही महाराज युधिष्ठिर को दुर्योधन के कार्य-कलापों की सूचना देता है। इससे विदित होता है कि वनेचरों को गुप्त सन्देशवाहक बनने की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी।[19] महाकवि सिंह ने भील, शबर एवं पुलिंद को वनेचर का पर्यायवाची माना है और उन्हें धनुर्धारी[20] एवं व्यापारियों से वन्य-मार्ग का कर-वसूल करनेवाला कहा है।[21]

प०च० में इनके अतिरिक्त पर्वतों पर निवास करने वाली विद्याधर[22], यक्ष[23], नाग[24], किन्नर[25] आदि जातियों

---

1. प०च०, 5/16/15। 2. वही०, 11/4/2। 3. वही०, 14/23/10। 4. सम० क० 4, पृ० 348। 5. वही०, पृ० 349। 6. ट्रेवेल्स ऑफ फाहियान, पृ० 43। 7. इत्सिंग—तकाकुसू, पृ० 139। 8. कहाणय तिग — करकंडचरियं एवं करकंडचरिउ। 9. राजतरंगिणी 5/354, 6/182। 10. रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० 257। 11. प०च० 12/11/5। 12. आ० पु० प्रथम खंड, पृ० 262। 13. प०च० 11/13/1। 14. वही०, 10/13/7-8। 15. वही०, 10/11/1। 16. वही०, 10/8/13। 17. वही०, 11/9/1। 18. यशस्तिलक० पृ० 60। 19. किरातार्जुनीयम्, 1/1। 20. प०च० 10/11/10। 21. वही०, सुक्कुउग्गाहक 10/10/4। 22. वही०, 2/2/10। 23. वही०, 7/17/13। 24. वही०, 2/11/5। 25. वही०, 2/11/2।

के भी उल्लेख उपलब्ध हैं। ये लोग विद्याओं की साधना करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते थे।

(आ) संस्कार

भारतीय-पारिवारिक-जीवन में संस्कारों का विशेष महत्व होता है। परिवार की विविध प्रवृत्तियाँ इन्हीं संस्कारों द्वारा विकसित एवं संचालित होती हैं। वैदिक परम्परा में इन संस्कारों की संख्या सोलह मानी गयी है। जैन-परम्परा में प्रारम्भ में तो इन संस्कारों का कोई विशेष महत्त्व नहीं था, किन्तु आगे चलकर संभवतः वैदिक संस्कारों से प्रभावित होकर ही जैन कवियों ने भी उनमें से कुछ संस्कारों का वर्णन अपने नायक के वर्णन-प्रसंगों में उपस्थित किये हैं।

महाकवि सिंह ने प्रद्युम्न के जन्म-प्रसंग में निम्न-संस्कारों की चर्चा की है-- 1. गर्भ[1], 2. पुंसवन[2], 3. सीमन्तोनमन[3], 4. छट्ठी (नामकरण)[4], 5. शिक्षारम्भ[5], 6. विवाह[6], 7. वानप्रस्थ[7] एवं 8. सन्यास[8]।

उक्त संस्कारों में से दोहला एवं छट्ठी के संस्कार प्राकृत एवं अपभ्रंश जैन-साहित्य में प्रचुर रूप से उपलब्ध होते हैं। आचार्य देवेन्द्रगणि (1141 ई०) ने चम्पानरेश दधिवाहन के प्रसंग में लिखा है कि उनकी रानी पद्मावती को दोहला होता है और उसी की प्रेरणा स्वरूप वह श्रेष्ठ शुभ्र हाथी पर पुरुष की वेषभूषा धारण कर वन-विहार के लिए निकलती है।[9] अपभ्रंश में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है।

आचार्य देवेन्द्रगणि ने अपने एक अन्य प्राकृत खण्डकाव्य "अगडदत्तचरियं" में भुजंगम चोर की बहन वीरमति के द्वारा ठगने के प्रयत्न के समय अगडदत्त से कहलावाया है—"जो जगइ परछट्ठिं सो किं निय छट्ठिं सुयई?"[10] अर्थात्—जो दूसरे की छट्ठी की रात्रि में भी स्वयं जागता रहता है, वह क्या अपनी ही छट्ठी के दिन सोता रहेगा? प्राचीन-परम्परा के अनुसार यह छट्ठी अथवा नामकरण 11वें दिन अथवा 101वें दिन अथवा दूसरे वर्ष में किए जाने का विधान है।[11]

दसवीं सदी के समाज में छट्ठी के विषय में जो तत्कालीन मान्यता प्रचलित थी, कवि सिंह ने उसे ही व्यक्त किया है। कवि के उल्लेख से विदित होता है कि नामकरण संस्करण की विविध दीर्घ-विधियाँ घटाकर छठे दिन कर दी गयीं थीं और वह छठे दिन होने के कारण ही उस संस्कार का नाम छट्ठी पड़ गया था।

बिहार प्रान्त में वर्तमान काल में जन्म के छठे दिन ही रात्रि जागरण कर बच्चे का नामकरण किया जाता है। उसका मूल कारण, यह मान्यता है कि जन्म-काल में शिशु को बुद्धि का वरदान नहीं मिलता, वह तो उसे छठे दिन की रात्रि में ही प्राप्त होता है। अतः उस समय जो जागेगा, वही बुद्धि पायेगा और जो सोयगा सो वह खोयेगा।

(1) शिक्षा-संस्कार

प०च० में शिक्षा-संस्कार का उल्लेख मिलता है।[12] बालक के पाँच वर्ष के हो जाने पर उसे शिक्षा-प्राप्ति हेतु एक प्रवीण-पण्डित की नियुक्ति की जाती थी।[13] पुस्तकी-शिक्षा के साथ-साथ बालकों को अश्व-विद्या, गज-विद्या, ज्योतिष-विद्या तथा कृषि-विद्या का ज्ञान भी कराया जाता था। प०च० में कुमारप्रद्युम्न को ये सभी शिक्षाएँ प्रदान की गयी थीं।[14]

---

1. प०च०, 3/11/1। 2. वही० 3/14/4। 3. वही०, 3/12/5। 4. वही०, 3/13/11। 5. वही० 7/13/2-3। 6. वही०, 14/4-7। 7. वही०, 5/15/8, 7/5। 8. वही० 15/21/13। 9. करकंडचरिउ, प्रारम्भिक भाग। 10. अगडदत्तचरियं गाथा सं० 148। 11. भारतीय संस्कृति, पृ० 94-96। 12. प०च०, 7/13/1। 13. वही०, 7/13/5। 14. वही०, 7/13/7-9।

(2) विवाह

समाज-शास्त्र के अनुसार स्त्री-पुरुष का पारस्परिक मिलन नैसर्गिक एवं प्राकृतिक है। इस स्थिति को जब से मान्य ठहराया गया, तभी से उसे 'विवाह' की संज्ञा प्रदान की गयी। मनुस्मृति में 8 प्रकार के विवाहों की चर्चा की गयी है[1] और उन्हें ही पारिवारिक जीवन की आधार-शिला बताया गया है।

रॉबर्ट एच० लाइ के अनुसार विवाह उन स्पष्टत: स्वीकृत संगठनों को प्रकट करता है, जो इन्द्रिय-सम्बन्धी सन्तोष के उपरान्त भी स्थिर रहता है। वस्तुत: वही पारिवारिक-जीवन की आधारशिला है।[2]

जिनसेनाचार्य ने विवाह को एक धार्मिक-कृत्य माना है। उनका कथन है कि मानव-जीवन की परिपूर्णता उसके विवाह एवं सन्तानोत्पत्ति के द्वारा ही हो सकती है।[3]

अ. विवाह-प्रकार

प०च० में धर्म, अर्थ एवं काम इन तीन पुरुषार्थों को दृष्टि में रखते हुए कवि ने विवाह को आवश्यक बतलाया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने तीन प्रकार के विवाहों के उल्लेख किये हैं—

(क) स्वयंवर-विवाह (ख) कन्यापहरण विवाह, एवं (ग) धर्मविधिपूर्वक पाणिग्रहण

(क) स्वयंवर-विवाह

यह परम्परा यद्यपि रामायण एवं महाभारतकालीन थी, किन्तु परवर्ती युगों में भी छिटपुट रूप से चलती रही। प०च० के उल्लेख से विदित होता है कि कवि के समय में भी कुछ राजघरानों में स्वयंवर-प्रथा का प्रचलन था।[4] जब कन्या युवावस्था को प्राप्त हो जाती थी, तब पिता दूर-दूर के राजाओं को आमन्त्रित[5] कर एक निश्चित समय पर स्वयंवर का आयोजन करता था। उस समय कन्या हाथ में वरमाला लिए हुए स्वयंवर-मण्डप में प्रवेश करती एवं अपनी इच्छानुसार योग्य वर के गले में उसे डाल देती थी[6] और शुभ-लग्न में विवाह-संस्कार सम्पन्न किया जाता था। इसी प्रकार की स्वयंवर-प्रथा के उल्लेख जातक-कथाओं[7], जैनागम-साहित्य[8] तथा समराइच्चकहा[9] एवं यशस्तिलकचम्पू[10] में भी मिलते हैं।

(ख) कन्यापहरण-विवाह

इस प्रकार का विवाह धार्मिक विधिपूर्वक या वर-कन्या के परिवारों के पारस्परिक समझौते के माध्यम से नहीं होता, अपितु वर-कन्या की स्वेच्छा से ही होता है। इसमें अवसर पाकर वर कन्या के संकेत अथवा अपनी सुविधानुसार अपहरण कर विवाह कर लेता है। प्राचीन-साहित्य में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प०च० में कन्या-हरण करके उससे विवाह करने के भी उल्लेख मिलते हैं। कवि सिंह ने कृष्ण रुक्मिणी के विवाह का वर्णन इसी प्रथा के अन्तर्गत किया है।[11]

(ग) परिवार द्वारा विवाह

वरान्वेषण की प्रथा का उल्लेख भी प०च० में मिलता है। योग्य वर का पता चलते ही तथा वैवहिक-सम्बन्ध की वार्त्ता निश्चित हो जाने पर वधू-पक्ष के लोग वैभव-सम्पन्नता के साथ अपनी कन्या को लेकर वर-पक्ष के

---

1. मनुस्मृति, 3/20-21। 2. मैरिज डिनोट्स दोस इनेक्वीवोकली सेंक्शंड यूनियनस् विच पर्सिस्ट्स बियोंड सेटिसफेक्शन एण्ड दस केम टू अंडरलाइ फेमिली। — मैरिज इन एन्सायक्लोपीडिया ऑफ सोशल सायन्सेस, वाल्० 10, पृ० 146। 3. आ०पु०, 15/63-64 4. प०च० 6/3/9। 5. वही०, 6/3/11-12। 6. वही०, 6/4/8। 7. जातक, 5/126। 8. नायाधम्मकहा, 1/16/122-125। 9. सम०क० 4, पृ० 339। 10. यशस्तिलक०, पृ० 79। 11. प०च०, 2/15/8।

यहाँ पहुँचते थे तथा बड़ी धूमधाम के साथ वर-पक्ष के यहाँ ही विवाह सम्पन्न होता था। प्रद्युम्न और दुर्योधन की पुत्री उदधिकुमारी एवं अन्य कन्याओं के विवाह इसी प्रकार के सम्पन्न हुए दिखाये गये हैं।[1] प०च० में प्रद्युम्न[2] और भानु[3] का विवाह अपनी ममेरी बहिन के साथ भी सम्पन्न होने की चर्चा आई है। इस प्रसंग को देख कर यह विदित होता है कि कवि के समय में ममेरे-फुफेरे भाई-बहिन के वैवाहिक सम्बन्ध हुआ करते थे 7वीं, 8वीं, 9वीं, एवं 10वीं सदी में लिखित संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश-साहित्य में भी इसी प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प०च० में बहु-विवाह (पोलीगेमी) प्रथा के भी प्रचुर प्रमाण मिलते हैं। प्राप्त उल्लेखों के अनुसार निम्न राजाओं के बहु विवाह हुए थे— प्रद्युम्न का विवाह 500 कन्याओं के साथ हुआ[4] था। इसी प्रकार कृष्ण[5] और राजा कालसंवर[6] की 360-360 रानियाँ थीं। कवि का यह वर्णन नवीन नहीं है। पूर्ववर्त्ती-साहित्य में भी बहु-विवाह के अनेक प्रमाण मिलते हैं। वरांगचरित में भी बहु-विवाह के अनेक उल्लेख मिलते हैं।[7]

राजकुमारियाँ कभी-कभी अपने मनोनुकूल पति को प्राप्त करने के लिए तपस्या भी करती थीं। विद्याधर मरुद्वेग की पुत्री 'रति' ने राजकुमार प्रद्युम्न की प्राप्ति के लिए कठोर तपस्या की थी।[8] प्रतीत होता है कि इस प्रसंग में कवि को महाकवि कालिदासकृत 'कुमारसम्भव' महाकाव्य से प्रेरणा मिली होगी। जिसके पंचम सर्ग में शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए पार्वती ने कठोर तपस्या की थी। जिस प्रकार पार्वती की तपस्या सफल हुई, उसी प्रकार प०च० में रति की तपस्या भी सफल बतलाई गयी है।

आ. वैवाहिक रीति-रिवाज

महाकवि सिंह ने प०च० में विवाह-विधि का सर्वांगीण वर्णन किया है। उसके अनुसार विवाह का शुभ लग्न निर्धारण, आमन्त्रण, मण्डपाच्छादन, ब्राह्मण-भोज, मंगलवादन, मंगलगान, महिलाओं के गीत एवं नृत्य, वर-वधू का अभिषेक एवं अलंकरण, पारस्परिक मुखावलोकन, अन्तर्वस्त्र-परिवर्त्तन, पाणिग्रहण-संस्कार, दान-दहेज आदि विविध रीति-रिवाजों का सुन्दर वर्णन किया गया है। यहाँ संक्षेप में उन पर प्रकाश डाला जा रहा है—

(क) शुभ लग्न निर्धारण

विवाह-क्रिया सम्पन्न कराने के लिए सर्वप्रथम ज्योतिषियों द्वारा शुभ लग्न दिखलाया जाता था। प्रद्युम्न के विवाह के लिए ज्योतिषी ने शुभयोग में अशुभ-निरोधक-नक्षत्र में लग्न बतलाया है।[9] हर्षचरित में भी विवाह के लिए शुभ-मुहुर्त्त निर्धारित करने का उल्लेख है।[10]

(ख) आमन्त्रण

लग्न के निश्चित हो जाने पर सभी सम्बन्धियों एवं इष्ट मित्रों को निमन्त्रण-पत्र प्रेषित किये जाते थे। प०च० में प्रद्युम्न के विवाह के उपलक्ष्य में देश-विदेश के राजाओं को आमन्त्रित करने के उल्लेख मिलते हैं। इस अवसर पर श्री कृष्ण ने अहंगपाल, चंग, कण्ड, डेसर, कच्छ, सौराष्ट्र, गज्जण एवं विद्याधर-श्रेणी के राजाओं को आमन्त्रित किया था।[11]

(ग) मण्डप

महाकवि सिंह ने प०च० में मण्डप की सजावट का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया है। मण्डप का निर्माण

---

1. प०च०, 14/5/12। 2. वही०, 15/1/10। 3. वही०, 14/8/9। 4. प०च०, 14/5/11। 5. वही०, 1/13/5। 6. वही०, 4/2/7। 7. वरांग०, 19/8, 20/40। 8. प०च० 8/16/7। 9. वही०, 14/2/10। 10. हर्षचरित 4, पृ० 145। 11. प०च०, 14/5/3-10।

बहुमूल्य उपकरणों द्वारा किया गया। स्वर्ण-जटित ठोस-स्तम्भों से मण्डप बनवाया गया। पूर्व भाग की दीवारों को सूर्यकान्त-मणियों, पश्चिम की दीवारों को चन्द्रकान्त-मणियों से सजाया गया। मरकत-मणियों से जटित कलश रखे गये। चारों प्रवेश-द्वार कदली-स्तम्भों से सुनिर्मित किये गये, जिन पर सुरुचि सम्पन्न दिव्य तोरण लटकाये गये तथा चतुर्दिक छत्र, चमर, ध्वजा, दर्पण एवं रंग-बिरंगे दिव्य-वस्त्रों से उन्हे आच्छादित किया गया।[1]

(घ) ब्राह्मण-भोज

विवाह के पूर्व ब्राह्मणों को भोज देने का वर्णन भी प०च० में आया है।[2] इससे प्रतीत होता है कि उस समय शुभ-कार्यों से पूर्व ब्राह्मण-भोज दिया जाता था।

(ङ) ब्राह्मणों द्वारा मंगलगान

वैवाहिक-कार्यों में ब्राह्मणों का महत्वपूर्ण योगदान रहता था। वे विवाह-सम्बन्धी धार्मिक क्रियाएँ, मंगलोच्चार आदि के उत्तरदायित्व का निर्वाह करते थे।[3]

(च) कामिनी-नारियों का गीत एवं नृत्य

विवाह को जीवन का सर्वश्रेष्ठ सुखद-काल माना गया है। रसवन्ती युवती-महिलाएँ आह्लादित होकर विवाह-काल में विविध शृंगारिक गीत एवं नृत्य प्रस्तुत कर अपने मन की भावनाओं को व्यक्त कर वातावरण को मधुमय बना देती हैं। प०च० में इस प्रकार के गीतों एवं नृत्यों के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं।[4] प०च० के अनुसार इन अवसरों पर मृदंग, कंसाल, वंसाल, ताल, डक्क आदि अनेक वाद्य बजाये जाते थे।[5]

(छ) वर-वधु का अभिषेक

शुभ मुहुर्त्त में वर-वधु का स्वर्ण-कलशों से अभिषेक[6] किया जाता था। तत्पश्चात् वर-वधु का अलंकरण[7] एवं लग्न आने पर दोनों योग्य आसन ग्रहण करते थे।[8]

(ज) परस्पर-वदनावलोकन

प०च० में विवाह के समय परस्पर वदनावलोकन का वर्णन भी आया है।[9] सम्भवतः यह क्रिया इसलिए आवश्यक थी कि वर-वधू एक दूसरे को ठीक से समझ लें तथा आश्वस्त हो जायें कि उनका विवाह उनके स्वर्णिम-भविष्य के लिये आवश्यक है। यदि कोई भ्रम हो तो उसके निवारण का भी यही समय है और यदि अधिक सन्देह हो तो अभी सम्बन्ध-विच्छेद भी किया जा सकता है, क्योंकि विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद सम्बन्ध-विच्छेद सम्भव नहीं था। बौधायन-धर्म-सूत्र में भी इस क्रिया का उल्लेख मिलता है।[10]

(झ) उत्तरीय (चादर) वस्त्र का पारस्परिक परिवर्त्तन

विवाह-मण्डप में परस्पर में उत्तरीय-वस्त्र को बदलने का उल्लेख भी प०च० में मिलता है।[11] इससे प्रतीत होता है कि सम्भवतः उस समय सिले-सिलाये वस्त्रों का प्रयोग बहुत कम किया जाता होगा। उस युग में उत्तरीय एवं अधोवस्त्र (धोती) का अधिक प्रचलन था। वैवाहिक-प्रसंगों में वर-वधू के इस परिवर्तन का उद्देश्य पारस्परिक स्नेह-सम्बन्धों का संस्थापन तथा विश्वास का प्रकाशन ही रहा होगा। वर्तमान युग में भी यह नियम प्रचलित है।

1. प०च० 14/4/1-10। 2. वही०, 11/17; 11/21। 3. प०च०, 14/6/1। 4. वही०, 14/4/13, 14/6/5। 5. वही० 14/6/3। 6. वही०, 14/6/9। 7. वही०, 6। 8. वही०, 14/6/10। 9. वही०। 10. धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 1, पृ० 304। 11. प०च०, 14/6/15।

(ट) पाणिग्रहण-संस्कार

पाणिग्रहण संस्कार के समय वर-वधू को एक विशेष वेदिका पर बैठाया जाता था और मन्त्रोच्चार के साथ यह क्रिया सम्पन्न की जाती थी और वर-वधू के लिए सप्त-स्वरों का उच्चारण किया जाता था। प०च० में इस संस्कार का इसी प्रकार उल्लेख हुआ है।[1] प०च० में प्रद्युम्न के पाणिग्रहण के समय बलदेव, कृष्ण का नाम लेकर मनोहर गीत गाये गये[2] और इस प्रकार विविध [illegible] दिवस तक चलते रहे।[3]

(ठ) दान-देना

प०च० में विवाह के पश्चात् ब्राह्मणों को दान देने का वर्णन आया है दान में गाय, भवन, स्वर्ण, ग्राम, नगर, हाथी, घोड़ा, रथ आदि का उल्लेख हुआ है[4]। इसके साथ ही दीन-दुखी याचकों तथा वैतालिकों को भी स्वर्ण दान दिया जाता था।[5] आदिपुराण में भी विवाह के अवसर पर दान देने की क्रिया का उल्लेख है।[6] इससे प्रतीत होता है कि विवाह के अवसर पर दान की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है जो कवि सिंह के समय तक ज्यों की त्यों विद्यमान थी। उस समय ब्राह्मण को इतना पूज्य माना जाता था कि लोग उसे दान देना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे।

(ड) दहेज

दहेज-प्रथा प्राचीन-भारतीय वैवाहिक पद्धति रही है। कवि सिंह ने प०च० में सम्पन्न विवाह प्रसंगों में उसकी पर्याप्त चर्चा की है। इस प्रथा पर विचार करने से विदित होता है कि समृद्धि एवं आत्म-वैभव प्रदर्शन ही इसका मुख्य उद्देश्य था। जटासिंहनन्दि कृत 'वरांगचरित' में भी इस प्रथा का उल्लेख हुआ है।[7] आदिपुराण में इस दहेज को अन्वयिनिक कहा गया है।[8] प०च० में प्रद्युम्न-विवाह के अवसर पर रत्नों सहित कोष, सेना, सेनापति आदि बहुमूल्य सामग्रियों को कुण्डिनपुर के राजा रूपकुमार ने दहेज के रूप में वर-वधु को भेंट की थी।[9]

(इ) नारी

प्राचीन भारतीय-साहित्य रूपी भित्ति पर नारी-जीवन के अनेकों चित्र उत्कीर्ण किये गये हैं, जिन्हें देखकर नारी की महानता का स्पष्ट बोध होता है। वैदिक युग से नारी पुरुष की सहचरी के रूप में मानी गयी है और वह सामाजिक उत्थान में अपना बहुमुखी योगदान देती रही है। ऋग्वेद की ऋचाओं के निर्माण में नारियों ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है[10] फिर भी डॉक्टर पी०वी० काणे के अनुसार उत्तरकाल की नारी की स्थिति वैदिकयुगीन नारी की स्थिति से अच्छी थी।[11] प०च० में कवि ने नारी के विविध रूपों पर अच्छा प्रकाश डाला है। तत्कालीन नारी की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति प्राय: सन्तोषजनक थी। यद्यपि एक ओर उसे बहु-विवाह प्रथा के कारण हीनोन्मुखी बनने के अधिक अवसर प्रदान किये जा रहे थे, तथापि दूसरी ओर वह मात्र भोग्या भी नहीं समझी जाती थी। उसे आत्म-विकास के पर्याप्त अवसर प्राप्त थे।[12] प०च० में नारी के विभिन्न रूपों यथा— कन्या, पत्नी, माता, दासी, वेश्या तथा साध्वी रूपों के भी दर्शन होते हैं।

(1) कन्या

प०च० में 'कन्या' आदर की पात्रा रही है। महाकवि सिंह के युग में कन्या को लक्ष्मी का रूप माना जाता

1. वही०, 14/7/5। 2. वही०, 14/7/6। 3. वही०, 14/7/10। 4. वही०, 11/16/11-12। 5. वही०, 14/7/7-8। 6. आ०पु०, 7/268-70। 7. व०च० 19/21-23। 8. आ०पु० 8/36। 9. प०च०, 15/1/8-10। 10. ऋग्वेद, 8/80/9। 11. धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 1, पृ० 324। 12. प०च० 6/5, 15/13।

था।[1] माता-पिता कन्या का पालन-पोषण बड़े ही सुव्यवस्थित ढंग से करते थे। उनके लिए धाय नियुक्त रहती थी।[2] माता-पिता के पूर्ण अनुशासन में रहकर वह अपना यथेच्छ विकास कर सकती थी। राजकन्याएँ युवावस्था को प्राप्त होने पर स्वेच्छा से अपने भावी-पति का वरण कर सकती थीं।[3] यद्यपि तत्कालीन समाज के लोगों में कन्या के प्रति स्नेह-भावना थी, फिर भी युवावस्था को प्राप्त, सौन्दर्य-युक्त कन्या के अपहरण का उल्लेख भी प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है।[4] कृष्ण ने रुक्मिणी का अपहरण कर उससे विवाह किया था। किन्तु इस प्रकार की भावना प्राय: राजघरानों तक ही सीमित दिखलायी पड़ती है।

(2) पत्नी

प०च० में पत्नी को गृहिणी[5], घरिणी[6], महादेवी[7], प्रिया[8], प्रियतमा[9] आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है। कवि ने दाम्पत्य प्रेम एवं उनकी विभिन्न क्रियाओं का वर्णन किया है।[10] कर्त्तव्य-शील पत्नी गृहस्थी का केन्द्र-बिन्दु होती थी, क्योंकि उसीकी सहायता से समस्त परिवार धर्म, अर्थ एवं काम का सम्पादन कर पाते थे। पति-पत्नी हृदय से एक-दूसरे को प्रेम करते थे। उसे घूमने-फिरने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इससे प्रतीत होता है कि परिवार में पत्नी की प्रतिष्ठा थी। वरांगचरित[11] एवं आदिपुराण में भी उसकी प्रतिष्ठा एवं स्वतन्त्रता के वर्णन मिलते हैं।[12] प०च० में पत्नी के रूप में नारियों को पति के साथ-साथ सास-ससुर तथा गुरुजनों के आदर करने की सलाह दी गयी है।[13]

(3) माता

भारतीय-संस्कृति में नारी के माता-रूप को बड़ी श्रद्धा एवं आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा है। नारी-जीवन का चरम लक्ष्य मातृत्व की प्राप्ति ही है। प०च० में नारी के जननी-रूप का मार्मिक-चित्रण मिलता है, उसे अनेक शब्दों से अभिहित किया गया है—माउल[14], अम्मि[15], माइ[16], मायरि[17]। मनुस्मृति में माता को पिता से भी सहस्र गुना अधिक पूजनीय माना गया है।[18] आदिपुराण में माता की वन्दना करते हुए उसे तीनों लोकों की कल्याणकारिणी कहा गया है।[19] सुप्रसिद्ध जैन ग्रन्थ 'उपमितिभवप्रपंच कथा' में कहा गया है कि परिवार में माता का स्थान पिता से उच्च था।[20] प०च० में जब राक्षस धूमकेतु प्रद्युम्न का हरण कर ले जाता है, उस समय रुक्मिणी का रुदन पाषण-हृदय को भी पिघला देने वाला सिद्ध होता है। वह दहाड़ मारकर रोती है और चेतनाशून्य हो जाती है, मूर्च्छा टूटते ही वह माथा-धुनती हुई विलाप करती है और कहती है कि—"मेरा हृदय शत-शत खण्ड होकर फट रहा है।" कभी वह हृदय को अपने हाथों से पीटती है, तो कभी गिर पड़ती है, और कहती है "हाय देव, मैं अब पुत्र के बिना जीवित नहीं रह सकती, मैं तो अब जलती हुई चिता में प्रवेश करूँगी। मेरे हृदय को शोकजाल में डुबाकर, हा सुत, हे बाल, तू कहाँ चला गया?"[21] प्रद्युम्न की माता का यह करुण-रुदन हमें वाल्मीकि-रामायण के कौशल्या-रुदन का स्मरण कराता है। जब राम वनवास के लिए चले जाते हैं, तब उनकी माता कौशल्या इसी प्रकार का गगनभेदी रुदन करती है।[22]

(4) दासी

प०च० में नारी के दासी रूप का भी उल्लेख हुआ है।[23] नारी का यह रूप निर्धनता का प्रतीक है।

---

10. वही०, 6/4/9। 2. वही०। 3. वही०, 6/4। 4. वही०, 2/15। 5. वही०, 6/3/3। 6. वही०, 4/17/12। 7. वही० 11/6/15। 8. वही० 4/13/11। 9. वही० 5/11/8। 10. वही०, 3/3, 3/4। 11. व०च०, 1/90-93। 12. आ०पु० 4/76। 13. प०च० 4/7। 14. वही०, 8/18/1। 15. वही०, 8/18/10। 16. वही०, 9/2/8। 17. वही०, 9/3/7। 18. मनुस्मृति, 2/145। 19. आ०पु०, 13/30। 20 उपमिति भव प्रपंच कथा, पृ० 153। 21. प०च०, 4/5-8। 22. वाल्मीकि रामायण का राम-वन गमन प्रकरण द्रष्टव्य। 23. प०च० 4/4/15।

निर्धनता के कारण वे धनिकों के यहाँ उनकी सेवा-शुश्रुषा कर अपनी एवं परिवार की आजीविका चलाती थीं।

प०च० में दासी के दो रूपों का वर्णन मिलता है—दासी एवं धात्री रूप।

दासी समस्त-परिवारों में व्यक्तिगत परिचर्या के साथ-साथ घर-गृहस्थी के कार्यों को निष्ठा-भाव से करती थीं। प०च० में रुक्मिणी की दासी (लज्जिका) इसी रूप में वर्णित है।[1]

धात्री की नियुक्ति बच्चों के पालन-पोषण के लिए की जाती थी। वे बच्चों की देखरेख, पालन-पोषण, कपड़े पहनना, खेल-खिलाना आदि कार्य करती थीं। इनका स्तर दासियों से ऊँचा होता था।[2] सम्राट अशोक के चतुर्थ स्तम्भ लेख में भी बच्चों के लालन-पालन हेतु धायों की नियुक्ति की चर्चा आती है।[3] इन धायों का स्थान विश्वसनीयता एवं [illegible] में माता के बाद ही होता था।

(5) वेश्या

प०च० में वेश्या के लिए 'पण्णत्तिय' (पण्य-त्रिया) शब्द का उल्लेख हुआ है।[4] कवि सिंह ने रूपाजीवा वेश्या की तुलना नदी से की है। उसके कथनानुसार नदी और वेश्याएँ विस्तृत और रमणीय होती हैं। दोनों ही मन्थर गति वाली हैं, वेश्याएँ जहाँ स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाली हैं, वहीं नदियाँ भी स्वच्छ जल धारण करती हैं। दोनों ही मनुष्यों के मन को हरने वाली हैं, वेश्याएँ तो भुजंग (गुण्डों) के साथ रहती हैं और नदियाँ भुजंग-सर्पों के साथ संग करने वाली हैं।[5] एक अन्य प्रसंग में उन्होंने वेश्याओं को हाव-भाव-रस में निपुण कहा है।[6] इससे प्रतीत होता है कि उस काल में वेश्या-वृत्ति का भी प्रचलन था तथा दुर्भाग्य के मारे अविवाहित-जनों, विधुरों अथवा रसिक जनों का मनोरंजन कर वे समाज में समता वृत्ति उत्पन्न करने में सक्रिय योगदान किया करती थीं।

बाण[7], दण्डी[8] आदि आचार्यों ने भी वेश्याओं के विविध उल्लेख किये हैं।

(6) आर्यिका

महाकवि सिंह के काल में नारी का आर्यिका (साध्वी) रूप अत्यधिक प्रतिष्ठित एवं पूजनीय माना जाता था।[9] जैन-सम्प्रदाय के अनुसार जो महिलाएँ सांसारिक सुख-भोगों से विरक्त होकर दीक्षा धारण करती हैं, वे आर्यिका अथवा साध्वी कहलाती हैं। समाज में नारी के स्वस्थ-विकास एवं अध्यात्म के क्षेत्र में उनकी प्रगति में आर्यिकाओं का रचनात्मक योगदान रहा है। भगवान महावीर ने जिस चतुर्विध संघ की स्थापना की थी, उनमें आर्यिका अथवा साध्वी का द्वितीय महत्वपूर्ण स्थान था।

आर्यिकाओं के त्यागपूर्ण आचार-विचार एवं कठोर तपश्चर्या के विषय में महाकवि सिंह ने अनेक स्थलों पर उल्लेख किए हैं। ऐसे प्रसंगों में राजकुमार प्रद्युम्न की दीक्षा-महोत्सव के उत्सव पर दीक्षा-धारण करने वाली परिवार एवं राज्य की प्रधान महिलाएँ प्रमुख हैं।[10] राजकन्याओं द्वारा दीक्षा-ग्रहण करने का भी उल्लेख उपलब्ध है।[11] इतना ही नहीं, निम्न जाति की कन्याओं के दीक्षा एवं तपश्चर्या के वर्णन भी उक्त ग्रन्थ में द्रष्टव्य है।[12] प०च० में श्रमण धर्म का पालन करने वाली स्त्रियों के संघ का भी उल्लेख है और वह उस संघ की प्रधान गणिनी कहलाती थी।[13] आचार्य हरिभद्र (8वीं सदी) ने भी अपनी समराइच्चकहा में साध्वी संघ की प्रधान को गणिनी की संज्ञा प्रदान की है।[14]

---

1. प०च० 4/4/15। 2. वही० 6/4/9, 8/19/4, 9/1/17। 3. प्रियदर्शी अशोक का चतुर्थ स्तम्भ-लेख। 4. प०च० 1/8/10, 1/10/3। 5. वही० 1/8/9-10। 6. वही० 1/10/13 7. हर्षचरित 2, पृ० 75। 8. दशकुमारचरित 2, पृ० 66-68। 9. प०च० 9/5/7। 10. वही० 15/21/15। 11. वही० 6/5/6। 12. वही० 9/51/2। 13. वही० 9/11/1। 14. स०क०, 2, पृ० 104 तथा 7, पृ० 613।

(8) राजनैतिक-सन्दर्भ

प०च० चूँकि राजतन्त्रीय-प्रणाली में पोषित एक नायक से सम्बन्धित महाकाव्य है, अतः उसमें प्रसंगवश कुछ राजनैतिक सामग्री भी उपलब्ध होती है। यह सच है कि शान्त-रस प्रधान एक पौराणिक-महाकाव्य होने के कारण उसमें राजनीति के पूर्ण तथ्यों का समावेश नहीं हो पाया है और कथा-नायक प्रद्युम्न जन्मकाल से ही अपहृत होकर युवा-जीवन के बहुल-काल तक संघर्षों से जूझता हुआ इधर-उधर भटकता रहा। इस कारण इस ग्रंथ में उसके संघर्षों एवं युद्धों की चर्चा ही अधिक हुई है, फिर भी प्रसंग-प्राप्त-अवसरों पर प०च० में जिन राजनैतिक तथ्यों के उल्लेख प्राप्त होते हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

(क) शासक-भेद

(1) राजा

प्रभुसत्ता में हीनाधिकता के कारण राजाओं की परिभाषा में भेद किया गया है। इसीलिए प०च० में राजाओं के लिए चक्रवर्ती (4/10/14), अर्द्ध-चक्रवर्ती (10/16/5), माण्डलिक (6/11/1), नराधिप (14/5/5), नरनाथ (14/5/11), नरपति (13/5/14), नरेन्द्र (13/5/14) जैसे विशेषणों के प्रयोग किये गये हैं।

आदिपुराण[1] के अनुसार चक्रवर्ती वह राजा कहलाता था जो छह खंडों का अधिपति होता था और बत्तीस हजार राजा जिसके अधीन होते थे। कवि सिंह ने भी चक्रवर्ती की यही परिभाषा दी है[2] तथा पोदनपुर नरेश को चक्रवर्ती एवं महाराज श्रीकृष्ण को अर्द्धचक्रवर्ती (10/16/5), के नाम से अभिहित किया है। अर्द्ध-चक्रवर्ती को उन्होंने तीन खण्डों का अधिपति बतलाया है।[3] नराधिप, नरपति, नरनाथ, नरेन्द्र एवं राजा, ये शब्द पर्यायवाची हैं। कवि के द्वारा वर्णित राजाओं के निम्न कार्यों पर प्रकाश पड़ता है—

(1) शत्रु राजाओं को पराजित करके भी वे उन्हें क्षमा प्रदान कर देते थे।[4]

(2) इच्छानुसार पर-नारियों का अपहरण कर लेते थे[5] एवं

(3) विजेता राजा अपने अधीन राजाओं को विजयोत्सव के समय बुलाता था।[6]

(2) माण्डलिक

आदिपुराण के अनुसार माण्डलिक वह राजा कहलाता था, जिसके अधीन चार सौ राजा रहते थे। किन्तु आगे चलकर संभवतः यह परम्परा परिवर्तित हो गयी और माण्डलिक वह कहलाने लगा, जो किसी सम्राट या अधिपति के अधीन रहकर एक मण्डल अथवा एक छोटे से प्रान्त के शासक के रूप में काम किया करता था। कवि सिंह ने माण्डलिक को भृत्य कहा है, इसका तात्पर्य यही है कि वह किसी सम्राट द्वारा नियुक्त, उसके राज्य के प्रदेश-विशेष के एक शासक के रूप में यथा-निर्देशानुसार कार्य किया करता था तथा जिसका सुनिश्चित शर्तों के अनुसार उसे भुगतान मिलता था। महाकवि सिंह ने अपनी आद्य-प्रशस्ति में 'भुल्लण' को बम्हणवाडपट्टन का भृत्य (1/4/10) कहा है, जो बल्लाल नरेश का माण्डलिक था। प०च० में वटपुर के राजा कनकरथ को भी कवि ने माण्डलिक (6/11/1) कहा है।

(3) सामन्त

कवि ने प०च० में सामन्त (6/10/4, 6/14/5, 6/18/1) शब्द का भी उल्लेख किया है, जो शासकों की एक

1. आ०पु० 6/196। 2. प०च०, 4/10/14। 3. वही०, 1/13/10। 4. वही०, 6/16/3। 5. वही० 6/16/10। 6. वही० 6/16/11।

बहुत छोटी इकाई थी। कवि सिंह ने सामन्तों का जिस ढंग से वर्णन किया है, उससे निम्न तथ्यों पर प्रकाश पडता है—

1. सामन्तगण अपने अधिपति राजा के आज्ञापालक होते थे।
2. वे अपने राजाओं के इतने पराधीन रहते थे कि माँगे जाने पर अपनी रानियाँ भी उन्हें समर्पित करने को बाध्य हो जाते थे। तथा
3. मनोनुकूल कार्य करने पर अधिपति राजा विशेष अवसरों पर वस्त्राभूषण प्रदान कर सम्मानित करते थे।

(ख) राज्य के प्रमुख अंग

(1) **मन्त्री**—मानसोल्लास[1] में राज्य के 7 अंगों में से अमात्य अथवा मन्त्री को प्रमुख स्थान दिया गया है। महाकवि विबुध श्रीधर (12वीं सदी) ने अमात्य को स्वर्गापवर्ग के नियमों को जानने वाला[2], स्पष्टवक्ता[3], नयनीति का ज्ञाता[4], वाग्मी[5], महामति[6], सद्गुणों की खानि[7], धर्मात्मा[8] सभी कार्यों में दक्ष, सक्षम[9] एवं धीर[10] कहा है। कवि सिंह ने भी अमात्य के इन्हीं गुणों को प्रकाशित किया है।[11] प०च० में उल्लिखित ऐसे अमात्यों अथवा मन्त्रियों में सुमति नामक मन्त्री (6/16/7) का नाम उल्लेखनीय है।

(2) **सेनापति**—कवि सिंह ने युद्ध प्रसंगों में सेनापति (6/9/7, 15/2/1) का नामोल्लेख किया है। क्योंकि उसमें उसका ही विशेष महत्व होता है। जय अथवा विजय उसी की कुशलता, चतुराई, दूरदर्शिता एवं मनोवैज्ञानिकता पर निर्भर करती है। अतः राजा किसी अनुभवी योद्धा को ही सेनापति नियुक्त करता था और सम्भवतः उसे अमात्य की श्रेणी का सम्मान दिया जाता था। युद्ध घोषणा के पूर्व राजा मन्त्रियों के साथ-साथ सेनापति से सलाह लेकर ही युद्ध-घोषणा करता था। कवि ने सेनापतियों के नामों के उल्लेख नहीं किए, किन्तु युद्ध प्रसंगों में उसने सेनापतियों को पर्याप्त महत्व दिया है।[12]

(3) **तलवर**—राज्य में शान्ति एवं शासन-व्यवस्था बनाए रखने के लिए तलवर (वर्तमान कोतवाल) के पद को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। वह राजा का विश्वासपात्र होता था। प०च० के उल्लेखों से ध्वनित होता है कि उसकी सलाह के अनुसार ही राजा किसी को दण्डित करने अथवा पुरस्कृत करने का अपना अन्तिम निर्णय करता था। प०च० के एक प्रसंग के अनुसार परदारा-गमन करने वाले एक व्यक्ति को पकड़कर जब तलवर उसे राजा के सम्मुख प्रस्तुत करता है[13], तब राजा उसे शूली पर लटका देने का सीधा आदेश दे देता है।[14]

(4) **दूत**—शासन-व्यवस्था के लिए राजा विविध प्रकार के दूतों की नियुक्ति करता था। ये दूत अत्यन्त विश्वस्त, कर्त्तव्य-निष्ठ एवं कुशल होते थे। प्राचीन साहित्य में वर्णित दूतों की विशेषताओं का समाहार करना चाहें तो उन्हें निम्न प्रकार विभक्त किया जा सकता है[15]—

1. **व्यक्तिगत गुण**—मनोहरता (सौजन्य), सुन्दरता (आकर्षक व्यक्तित्व), आतिथ्य भावना, निर्भीकता, वाक्पटुता, शालीनता, तीव्र स्मरण शक्ति एवं प्रभावशाली वक्तृत्व शक्ति।
2. **सन्धिवार्ता से सम्बद्ध गुण**—कुशल सूझ-बूझ, शान्ति, धैर्य वृत्ति एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व।
3. **सुविज्ञता**—विविध भाषाओं का ज्ञान और परिग्राहक राष्ट्र की प्रथाओं एवं परम्पराओं से परिचय आदि।

---

1. मानसोल्लास, अनुक्रम 20। 2. वड्ढमाणचरिउ, 3/7/6। 3. वही० 3/7/14। 4. वही०, 3/8/5। 5. वही० 3/9/12। 6. वही०। 7. वही० 3/9/13। 8. वही०, 3/12/1। 9. वही०, 3/12/9। 10. वही०, 3/12/11। 11. प०च०, 6/12/13। 12. वही०, 6/9/7। 13. वही०, 7/3/2। 14. वही०, 7/3/6। 15. दे० राजनय के सिद्धान्त : डॉ० गान्धी जी राय (पटना 1978), पृ० 180-81।

4. अपनी सरकार के प्रति मनोवृत्ति—निष्ठा.

कौटिल्य-अर्थशास्त्र में तीन प्रकार के दूत बताये गये हैं-- (1) निसृष्टार्थ, (2) परिमितार्थ एवं (3) शासनहर[1]।

कवि सिंह ने इनमें से शासनहर नामक दूत का उल्लेख किया है। इस कोटि के दूत आवश्यकता पड़ने पर शत्रुदेश के प्रमुख राजपुरुषों से येनकेन-प्रकारेण सम्बन्ध जोड़कर उनकी अन्तरंग बातों की जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न किया करते थे, साथ ही वे राजा के गुप्त-सन्देशों को भी यत्र-तत्र प्रेषित किया करते थे। प०च० में उल्लिखित दूत राजा मधु का सन्देश लेकर उसके शत्रु शाकम्भरी नरेश भीम के पास इस उद्देश्य से पहुँचता है कि निरपराध सैनिकों की हत्या के पूर्व ही यदि दोनों पक्षों में शान्ति-समझौता हो सके तो उत्तम है। इस प्रसंग में देखिए, उसका वर्णन किस प्रकार किया गया है। कवि कहता है—"वह दूत राजा भीम के पास इस प्रकार पहुँचा—मानों रौद्र-समुद्र में से मकर ही उछल पड़ा हो (6/13/11-12)।" विवाह का निमन्त्रण भी दूत के द्वारा ही भेजा जाता था। उसे कवि ने 'हक्कारा' (वर्तमान हल्कारा, 14/3/17) कहा है। इसी प्रकार दुर्योधन ने कृष्ण के पास जिस व्यक्ति के द्वारा अपना लेख भेजा, उसे कवि ने 'लेखधारी' (3/9/11) के नाम से अभिहित किया है। विशेषण कुछ भी हो, वस्तुतः वे सभी शासनहर दूत की कोटि के ही दूत हैं।

(ग) युद्ध

कवि का सैन्य-प्रकार एवं युद्ध-विद्या सम्बन्धी ज्ञान

कवि सिंह ने प०च० में युद्ध वर्णन के प्रसंगों में विविध प्रकार की शब्दावलियों के प्रयोग किए हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वह युद्ध-विद्या का अच्छा ज्ञाता था। उसकी शब्दावलियों मे से अच्छोह (3/2/5), कटक (2/14/6), सण्णाह (2/15/12), कण्णिय (2/17/9), सडंगु (13/14/8), स्कन्धावार (6/12/8), चतुरंगिणी सेना (6/14/1) एवं चमु (12/28/11) के शब्द-प्रयोग प्रमुख हैं। इनसे कृष्ण एवं शिशुपाल युद्ध (2/17-20), राजा मधु एवं भीम-युद्ध (6/14-15), प्रद्युम्न एवं कालसंवर युद्ध (9/17-23), प्रद्युम्न एवं कृष्ण (12/25-28, 13/1-13) के युद्ध-वर्णनों से भी हमारे उपर्युक्त अनुमान का समर्थन होता है।

शस्त्रास्त्र

अनादिकाल से ही मानव अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए विविध प्रकार के संघर्षों को करता आया है। सम्भवतः इसीलिए नृतत्त्व-शास्त्र की एक परिभाषा के अनुसार हथियारों के विधिवत् प्रयोग करने वाले को मानव कहा गया है। सिन्धु-घाटी में जब खुदाई की गयी तो उसमें विविध प्रकार के आभूषण, आलेख, मुहरें एवं भवन सम्बन्धी सामग्री के साथ-साथ विविध प्रकार के हथियारों की भी उपलब्धि हुई है। इससे हथियारों के अस्तित्व पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वैदिक काल में धनुर्विद्या को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है, इसीलिए उसे धनुर्वेद की संज्ञा प्रदान की गयी। उसी समय से लोहे के प्रयोग के उदाहरण भी मिलते हैं। वहाँ धनुष को कोदंड, सारंग, इषु, कार्मुक जैसे नामों से सम्बोधित किया गया है। इतना ही नहीं, उसके "इषुकृत" एवं "इषुकार" जैसे शब्द-प्रयोगों से पता चलता है कि उस समय धनुष-बाणों के निर्माण करने सम्बन्धी उद्योग- धन्धे भी पर्याप्त

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1/15/1, पृ० 59।

मात्रा में प्रचलित हो गये थे। यूनान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार "हेरोडोटस" ने लिखा है कि ई० पूर्व 5वीं सदी में फारस की सेना में भारतीयों का भी एक दल सम्मिलित था, जो धनुष-बाण चलाने में अत्यन्त कुशल माना जाता था।[1] कौटिल्य ने बाणों के साथ अन्य अनेक हथियारों के भी उल्लेख किये हैं। महाभारत, जो कि युद्ध-विद्या का एक महान् ऐतिहासिक ग्रन्थ-रत्न है, उसमें भिन्दिपाल, शक्ति, तोमर, नालिका जैसे अनेक हथियारों के उल्लेख मिलते हैं। शस्त्रास्त्रों की यह परम्परा परवर्त्ती कालों में उत्तरोत्तर विकसित होती रही।

कवि सिंह ने सम्भवतः पूर्व-साहित्यावलोकन तो किया ही, साथ ही उसे समकालीन प्रचलित युद्ध-सामग्री की भी जानकारी थी, क्योंकि प०च० में कवि ने प्राच्यकालीन युद्ध-सामग्री के साथ-साथ समकालीन अनेक शस्त्रास्त्रों के उल्लेख किये हैं। विविध बाणों, सिद्धियों एवं विद्याओं के प्रकार भी उसमें उल्लिखित हैं। इनकी वर्गीकृत सूची यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

चुभने वाले हथियार— कुन्त्य (2/11/9), कुन्त (6/10/7), सल्लम (6/10/7), भाला (2/17/9)।

काटने वाले हथियार— खड्ग (4/17/7, 6/10/7, 8/5/8), रथाङ्गचक्र (2/19/16), चक्र (1/12/9)।

चूर-चूर कर डालने वाले अथवा भयानक मार करने वाले हथियार— शैल (2/17/12), सब्बल (2/17/10), शूल (2/17/10), मुद्गर (2/16/4), घन (6/10/8)।

दूर से फेंके जाने वाले अस्त्र— मोहनास्त्र (13/12/2), दिव्यास्त्र (13/12/8), आग्नेयास्त्र (13/13/1), वारुणास्त्र (13/14/1), गिरिंदु-अस्त्र (9/20/9), तमप्रसारास्त्र (9/20/11), नागपाश (2/20/7), हलप्रहरणास्त्र (2/7/12), प्रहरणास्त्र (13/12/1)।

विविध प्रकार के बाण— पंचाणणु-बाण (2/15/9), धोरणिबाण (2/18/7), कणियबाण (2/20/6), दिव्यधनुष (9/20/8), शुक्लबाण (9/20/8), इक्षुकोवंड (11/3/7), भुसुंढि (9/13/2)।

दैवी सिद्धियाँ—

विद्याएँ— प्रज्ञप्ति-विद्या (10/17/3), गृहकारिणी-विद्या (8/5/14), सैन्यकारिणी-विद्या (8/5/14), जयसारी-विद्या (8/14/6), इन्द्रजाल-विद्या (8/14/7), आलोचनी विद्या (9/17/4)।

शक्तियाँ— तीन बुद्धियाँ एवं तीन शक्तियाँ (6/8)। कवि ने इनके नामों के उल्लेख नहीं किये हैं।

(9) आजीविका के साधन

(1) कृषि एवं अन्य उत्पादन

अनुकूल प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण कृषि-कर्म भारत के उत्पादन एवं धनार्जन का प्रमुख साधन रहा है। वैदिक काल से मध्यकाल तक प्रायः यही स्थिति देखने को मिलती है। प०च० के अध्ययन से उसका पूर्ण समर्थन होता है। उसमें कृषि के उत्पादनों से विविध प्रकार की धान, दालें, तिलहन, ईख एवं विभिन्न फलों की चर्चा की गयी है। धान की कोटियों में कवि ने विशेष प्रकार से कमलशालि धान (1/7/4) का उल्लेख किया है। किन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि उसने गेहूँ एवं चने जैसे प्रधान-खाद्य पदार्थों के उपज की चर्चा नहीं की। विश्लेषण करने पर इस तथ्य से हमारे उस अनुमान का समर्थन अवश्य होता है कि कवि दक्षिण-भारत का कहीं का निवासी

---

1. भारत के प्राचीन शस्त्रास्त्र और युद्ध कला, (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, 1964), नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृ० 5।

रहा होगा, जिसका कि प्रधान भोजन चावल, दाल एवं चावल से बने अन्य पदार्थ रहे होंगे। इस विषय में यह ध्यातव्य है कि कवि ने प०च० में भोज्य-पदार्थों में मीयय (इमली का रस, 11/21/9) एवं नारियल (15/3/12) के उल्लेख किये हैं, जो कि दक्षिण-भारत में आज भी सहभोजी पदार्थों में प्रमुख हैं।

कवि ने विविध कोटि के फलों के नामोल्लेख किये हैं, जिनकी सन्दर्भ-सूचियाँ [illegible]-प्रकरण में दी जायगी। इनको देखने से ऐसा विदित होता है कि इन उत्पादित फलों का स्थानीय-जन तो उपयोग करते ही होंगे, सम्भवतः उनका निर्यात भी किया जाता रहा होगा। प०च० में केला (3/7/4), उच्छु (1/7/7), एवं इक्षुरस (1/7/7), की भी चर्चा की गयी है। इससे बनी हुई शर्करा का भी उल्लेख किया गया है, जिससे विविध प्रकार के सुस्वादु मोदक (12/3/7), पानक (शरबत 15/3/12), आदि तैयार किये जाते थे। ये वस्तुएँ उस समय के लोगों की आजीविका के प्रधान साधन थे।

(2) वाणिज्य

आय के साधनों में दूसरा स्थान वाणिज्य का आता है। कवि ने प०च० में नगर वर्णन के प्रसंग में समृद्ध बाजारों (1/10/5), एवं हाटों (11/11/12) की चर्चा की है। इनसे यह स्पष्ट होता है कि कवि-काल में वाणिज्य की स्थिति सन्तोषजनक थी। कवि ने बताया है कि द्वारावती के बाजार वस्त्रों (11/12/2), बर्त्तनों (11/12/2), लौह-भांडों (11/12/2), स्वर्ण-भांडों (11/12/1), कुम्भ-भांडों (11/5/14, 11/12/1) एवं खिलौनों (मणि-निर्मित-खिलणउ, 7/12/10) से भरे रहते थे। एक स्थल पर कवि ने वणियारा (10/10/3, 10/10/6) शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ 'बनजारा' होता है। ये लोग आयातक एवं निर्यातक-व्यापारी के रूप में कार्य किया करते थे (10/10/6)। प०च० में हय, गज, एवं वसह (बैल) के बाजारों की भी चर्चा की गयी है (11/12/2)। प्रतीत होता है कि पशुओं के ये बाजार गाँवों अथवा नगरों के बाहर भरे जाते होंगे।

(3) लघु उद्योग धन्धे

आजीविका के तीसरे साधन हैं लघु उद्योग धन्धे। कवि ने यद्यपि उनका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया, फिर भी कवि के प्रासंगिक-उल्लेखों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि निम्न उद्योग-धन्धे उस समय प्रचलित रहे होंगे—

(क) **वस्त्रोत्पादनोद्योग**— जिसमें पुरुषों एवं महिलाओं के प्रतिपट्ट एवं नेत (—रेशमी 1/10/5) वस्त्रों का उत्पादन होता है।

(ख) **बर्त्तनोद्योग**— जिसमें स्वर्णकलश (8/21/2), मणिकलश (3/3/3), स्वर्णथाल (11/21/2) जैसे कीमती बर्त्तनों तथा अन्य धातुओं के बर्त्तनों का निर्माण किया जाता था।

(ग) **आभूषणोद्योग**-- प०च० में विभिन्न प्रकार के स्वर्णाभूषणों के नाम मिलते हैं, जो उस समय के स्वर्णकार निर्मित किया करते थे। इस प्रकार के आभूषणों में केयूर (1/13/4, 1/14/2), हार (1/13/4, 1/14/2, 3/13/10), कुण्डल (1/13/4), कंकण (कंगन—1/13/4), णेउर (नूपुर 1/13/5), मउड (मुकुट—1/14/2, 5/8/13, 14/15/7), मोत्तियदाम (मुक्तामाला—5/13/8), रयणावली (रत्नावली—6/4), झुमुक्क (झुमका—10/2/6), अँगुलीउ (मुद्रिका—11/2/9) कडिसुत्त (कटिसूत्र—14/15/7)।

(घ) **वस्त्र-सिलाई उद्योग**— जिसमें तम्बू (2/14/8) एवं उल्लोवया (—चंदोवा—10/2/8), की विशेष रूप से

सिलाई की जाती थी। इनके अतिरिक्त अन्य दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाले वस्त्रों की भी सिलाई की जाती थी।

(ङ) **काष्ठ, लौह एवं आयुध-निर्माण**— जिसमें वाद्य-सामग्री तथा रथ (2/13/8), शिविका (2/14/3), कृषि के औजार, साँकल (11/4/6), लोहे के बर्त्तन (11/21/1), कचउ (कवच 12/25/8), वक्खर (2/14/10) हल एवं युद्ध सम्बन्धी अनेक आवश्यक आयुध-वस्तुओं का निर्माण होता था।

(च) **चर्मोद्योग**— मृगचर्म (11/7/9) के साथ-साथ अन्य चर्म-वस्तुएँ तैयार की जाती थीं।

(छ) **पशुपालन**— समाज के कुछ लोग गाय, भैंस (1/7, 15/6/1) एवं अन्य जानवरों को पालते-पोसते थे तथा उनके व्यापार से एवं उनके घी, दूध एवं दही से अपनी आजीविका चलाते थे।

(ज) **भवन-निर्माण सम्बन्धी सामग्री का निर्माण**— इसके अन्तर्गत भवन-निर्माण सम्बन्धी विविध सामग्रियों का निर्माण होता था। उसमें ईंट, रंग एवं चूना (छुहपंकय 15/3/14) आदि प्रमुख हैं। कवि सिंह ने चूने को छोड़कर अन्य सामग्रियों का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उसने विविध भवनों एवं मन्दिरों के उल्लेख अवश्य किये हैं। चूँकि वे ईंटों द्वारा ही निर्मित होते थे, अतः ईंटों का निर्माण तथा साज-सज्जा के लिए चित्र-विचित्र रंगों का निर्माण अवश्य होता रहा होगा।

(झ) **प्रसाधन-लेप-सामग्री उद्योग**— कवि सिंह ने प्रसंग वश प्रसाधन-सामग्रियों का भी उल्लेख किया है—इनमें घणसारु (कर्पूर, 2/11/10, 4/5/7), चंदणु (3/1/13), घुसिण (चन्दन, 3/13/7), गोसीरह (4/5/7), कुंकुम (6/17/9), मयणाहि (कस्तूरी, 4/10/6, 1/14/3), जाइफल (3/5/11), वंदइं (सिन्दूर, 3/1/13), अंजन (3/2/10), दप्पण (दर्पण, 1/16/7) सोने-चांदी के स्तवक मिश्रित चन्दन के लेप (15/3/3) प्रमुख हैं।

(4) खनिज-पदार्थ

राष्ट्र के आर्थिक-विकास में खनिज-सम्पदा बहुत उपयोगी मानी गयी है। इसीलिए मानसोल्लास[1] में उसे राज्य का एक प्रधान अंग माना गया है। प०च० में कवि ने अनेक प्रकार के खनिज-तत्त्वों की सूचना दी है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं— सोना (–कणय–1/10/5), विविध प्रकार के रत्न (4/10/5), पविमणि (हीरा-2/16 11), मरगयमणि (–मरकतमणि-2/10/8), लौह (11/2/1) एवं तंब (ताम्र-9/20/13)। इनसे जन-जीवन में उपयोग आने वाली अनेक उपयोगी वस्तुओं का निर्माण होता था। इस कारण ये भी लोगों की आजीविका के मुख्य साधन थे।

(5) क्रय-विक्रय के माध्यम

प्राचीन काल में क्रय-विक्रय वस्तुओं के पारस्परिक विनिमय के माध्यम से किया जाता था, जिसे अंग्रेजी में बार्टर-सिस्टम कहा गया है। कवि ने प०च० में इस माध्यम की कोई सूचना नहीं दी। उसके अनुसार वस्तुओं के क्रय-विक्रय का माध्यम दीणार (11/13/13) एवं सिक्के (10/18/9) थे।

(6) राज्य-कर

प०च० में सुक्क (10/10/4) एवं कर (4/14/11) के उल्लेख भी मिलते हैं। इससे विदित होता है कि राजागण अपने राज्य की शासन-व्यवस्था चलाने के लिए लोगों से विविध प्रकार के कार्यों एवं व्यापारों पर कर (टैक्स) वसूल किया करते थे। कवि ने इनके प्रकार अथवा दरों की चर्चा नहीं की।

---

1. मानसोल्लास अनुक्रम 20।

(10) सांस्कृतिक सामग्री

(क) मनोरंजन-संगीत, उत्सव, क्रीड़ाएँ एवं गोष्ठियाँ

जीवन-विकास के लिए मनोरंजन उतना ही आवश्यक है, जितना जीवित रहने के लिए अन्न-जल। मनोरंजन से जीवन की नीरसता को दूर किया जाता है तथा नवीन स्फूर्ति, प्रेरणा, उत्साह एवं नया जीवन प्राप्त किया जाता है। महाकवि सिंह ने प०च० में पात्रों एवं पाठकों की नीरसता को दूर करने के लिए ही मानों कुछ मनोरंजन सामग्री प्रस्तुत की है, जिसका वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है।

(1) संगीत ---- गीत, नृत्य, नाटक एवं वाद्य

कवि के कलात्मक विनोदों में जन्मोत्सव एवं विवाहोत्सवों के अवसरों पर विविध मंगलगीत (1/14/6, 3/13/11, 9/6/8, 13/15/10 14/5/6), सट्टक-नृत्य (15/3/10), मयूर-नृत्य (15/3/15), ताण्डव-नृत्य (14/20/10), तथा विविध वाद्य-वादनों के उल्लेख प्रधान हैं। उसने विभिन्न प्रसंगों में इन वाद्यों के उल्लेख किए हैं। जैसे— पडह (1/11/10), पडुपडह (2/16/1), तूर (2/1/2), अङ्कूर (2/1/2), तुरि (2/15/9), भेरी (2/16/1), डुक्क (11/23/10), ढक्क (6/10/1), करड (11/23/9), काहल (11/5/11), कंबु (13/16/10), कंसाल (11/23/9), ताल (13/16/11), मुअंग (मृदंग- 11/23/9) वणिताल (11/23/9), वीणा (11/23/9), एवं डक्क (13/16/12)। उक्त वाद्यों के प्रकार एवं संख्या देखकर उस समय के संगीत के उपकरणों की समृद्धि का अनुमान सहज रूप में लगाया जा सकता है।

(2) क्रीड़ाएँ, उत्सव एवं गोष्ठियाँ

क्रीड़ाओं में—जलक्रीड़ा (6/17/9), विमान-क्रीड़ा (15/5/10), अश्वारोहण (14/18/11), एवं नाट्य-क्रीड़ा (15/3/10), कुक्कुट-क्रीड़ा (14/16/4-6), सारिपास द्वारा द्यूत-क्रीडा (14/15/10), सैन्य-प्रदर्शन-क्रीड़ा (14/15/10), एवं हिंदोला क्रीड़ा (-झूला 15/3/5) उत्सवों में— छट्ठी (3/13/11), वसन्तोत्सव (6/16/12-17, 6/17), स्वयंवरोत्सव (6/17), युवराज-पदोत्सव (7/15/4, 13/17/15), नन्दीश्वर-व्रतोत्सव (15/5/9), पाणिग्रहणोत्सव (14/2-7), तथा गोष्ठियों में—प्राकृत काव्य गोष्ठी (15/3/16-17) के नाम प्रमुख हैं।

(ख) भोजन-पान

भोजन-पान के द्वारा शरीर की पुष्टि के साथ-साथ मन एवं मस्तिष्क का संवर्धन भी होता है। भोजन पर ही हमारे विचार एवं क्रिया-कलाप निर्भर रहते हैं। भोजन के गुण- अवगुण के अनुरूप ही विचारों का भी निर्माण होता है। आहार की शुद्धता से मन शान्त एवं शुद्ध रहता है। भारतीय-संस्कृति में भोजन-पान का महत्व वैदिक-काल से ही चला आ रहा है। तैत्तरीय-उपनिषद में तो उसे सर्वौषधि कहा गया है।[1]

प०च० में भी भोजन-सामग्रियों का उल्लेख हुआ है। उसमें कहा गया है कि शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पवित्र भोजन करना चाहिए। उसमें उपलब्ध भोजन-सामग्री का वर्गीकरण चार प्रकार से किया जा सकता है। (1) अशन, (2) स्वाद्य, (3) पान एवं (4) अवलेह।

(1) **अशन** के अन्तर्गत वह खाद्य-सामग्री आती है, जो जीवित रहने के लिए आवश्यक है। इसमें गेहूँ, चना, चावल आदि से निर्मित भोजन आता है। इस प्रकार की खाद्य-सामग्री में केवल कूलु (भात 1/21/4), दाल

1. तैत्तरीय उपनिषद्, 2/2।

(11/21/5), मांड (11/21/9) के ही उल्लेख मिलते हैं।

(2) स्वाद्य-पदार्थों में— ताम्बूल (1/14/4, 3/2/9), लवंग (3/1/5), मोदक (12/3/7), खाजा (11/21/9), श्रीखण्ड (11/21/9), खीर (11/21/9), कंकेलि (3/1/5), आम्र (3/7/5), द्राक्षा (3/1/5), सूवाह (11/21/6), णालिएर (15/3/12), आउलं (आमला, 10/6/9) तिल (14/16/14), फणिस (पनस, 3/7/4), नारंगी (10/6/6) एवं दही (15/3/13) और

(3) पेय-पदार्थों में— पानक (नारियल+द्राक्षा, 15/3/12), (शर्करा + केला 15/3/12), (दही + कर्पूर 15/3/13), एवं (शर्करा + दुग्ध 15/4/6), दूध (1/7/9-11), गुडरस (11/21/9), इक्षुरस (1/7/7) एवं मदिरा (11/19/11) तथा—

(4) अवलेह में— मोय (इमली की चटनी, 11/21/9), रसायन (15/14/10) एवं हरड़ (10/6/9), प्रधान पदार्थ हैं।

(ग) जैन दर्शन, सिद्धान्त, आचार, योग, अध्यात्म एवं व्रत

प०च० एक पौराणिक महाकाव्य है। उसमें कथा नायक के जीवन-चरित का विश्लेषण ही कवि का प्रमुख उद्देश्य है, फिर भी उसने जैनदर्शन, सिद्धान्त, आचार, अध्यात्म एवं पुनर्जन्म की चर्चा के भी कुछ प्रसंग उपस्थित किये हैं। इनमें मुनि सात्यकि और विप्र-पुत्र अग्निभूत एवं मरुभूति के बीच द्वादशानुप्रेक्षाओं के साथ-साथ पाँच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों एवं चार शिक्षाव्रतों की उपदेश-चर्चा (4/15-17, 5/1-8), मुनि अरिंजय द्वारा धर्माधर्म-चर्चा (5/13-14), मुनि त्रिगुप्ति (6/6/1) एवं मुनि शुभ द्वारा दीक्षा वर्णन (6/8/9), मुनि विमलवाहन (7/4) तथा मुनि उदधिदत्त द्वारा प्रद्युम्न और रूपिणी के भवान्तर-वर्णन (9/4—15) एवं तीर्थंकर नेमिनाथ द्वारा तत्वचर्चा (15/11—20) आदि प्रमुख हैं।

इन प्रसंगों में कवि की **जैन दार्शनिक शब्दावलियों में —** सप्तभंगी (4/11/11), पदार्थ (15/11/12)। **सैद्धान्तिक शब्दावलियों में** — सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय (5/14/4), जीवादि नवपदार्थ (15/11/12), षट्लेश्या (14/9/15), बन्ध एवं मोक्ष (14/9/14), मार्गणा (15/11/9), केवलज्ञान (15/13/2), परमेष्ठि (4/11/5), असंज्ञी (5/12/6), द्रव्य (15/17/10), तत्त्व (15/18/3), **आचारात्मक शब्दावलियों में**— निर्ग्रन्थ (5/9/3), दशलक्षण धर्म (5/15/5), परीषह (7/6/2), समवृत्ति (7/5/4), पंचमहाव्रत (7/5/6), द्वादशानुप्रेक्षा (7/4/2), सल्लेखना (5/7/1), अष्टमूलगुण (5/10/3), क्षुल्लक (11/23/4), स्वाध्याय (7/5/8), गुप्तित्रय (7/5/7)। **योग एवं अध्यात्म सम्बन्धी शब्दावलियों में** — योग-निवृत्ति (14/2/7), शुक्लध्यान (15/11/7), प्रतिमायोग (15/10/15), ध्यान (7/5/8), नासाग्रदृष्टि (8/16/9) तथा **व्रतों में** — नन्दीश्वर व्रत (8/16/9) एवं कवलचन्द्रायण व्रतों (9/11/5) के उल्लेख प्रमुख हैं।

जैनेतर दर्शन एवं आचार तथा ग्रन्थों के उल्लेख

जैनेतर दार्शनिक एवं धार्मिक सम्प्रदायों में कवि ने मीमांसा (4/15/7), सांख्य (15/16/10), एवं कौलिक (15/16/6) सम्प्रदायों के उल्लेख किये हैं। जैनेतर आचार में पशुवध (6/1/10, 15/5/6), सन्ध्या-चरण (5/16/10) कुश-प्रयोग (5/16/10), यज्ञ (6/1/2) पंचाग्नितप (7/8/3), चतुर्वेद घोष (6/1/1) और वेदों में सामवेद (4/14/14, 4/16/8) तथा छन्द (5/12/3) एवं निघण्टु (11/17/8) जैसे जैनेतर शास्त्रों के नामोल्लेख किये हैं।

अन्य दार्शनिक वादों में नियतिवाद (11/16/10, 15/20/11) के भी उल्लेख मिलते हैं।

यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि कवि ने उक्त सभी प्रसंगों में केवल उक्त शब्दावलियों के प्रयोग ही किये हैं। उनके विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किये। उनके विश्लेषण का कवि को वस्तुत: इतना अवसर भी नहीं था क्योंकि उससे ग्रन्थ का विस्तार अत्यधिक हो जाने की सम्भावना थी। अत: उसने इन प्रसंगों को प्रस्तुत कर रूढ़िगत परम्परा का निर्वाह ही किया है।

(घ) भवान्तर अथवा पुनर्जन्म-वर्णन

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि जैन-चरित-काव्यों में भवान्तर वर्णन प्राय: अनिवार्य रूप से प्रस्तुत किए जाने की परम्परा है। इसका मूल कारण है— जैन-दर्शन का आत्मा पर अटूट विश्वास। वह आत्मा को अजर-अमर मानता है। साथ ही वह यह भी मानता है कि संसार-चक्र में वह आत्मा अष्टविध-कर्मों से आबद्ध होकर नरक, तिर्यंच आदि चतुर्गतियों में जन्म-मरण रूप विविध प्रकार के भव-भवान्तरों में कष्टों को भोगता रहता है। जैनेतर-दर्शनों में इन्हीं भवान्तरों को पुनर्जन्म की संज्ञा से अभिहित किया गया है। प०च० में इस प्रकार के भवान्तर प्रसंगों में प्रद्युम्न (4/14—17, 5/1—16, 6/1—23, 7/1—9) रूपिणी (9/7—11) कनकरथ (7—8) एवं कनकमाला (7/8/6—10, 7/9/1—3) के भवान्तर-प्रसंग उल्लेखनीय हैं।

(ङ) अन्ध-विश्वास और लोकाचार

मानव-जीवन में अन्ध-विश्वासों एवं लोकाचार का विशेष महत्व है। किसी कार्य-विशेष का आरम्भ अथवा इष्टजनों के स्वागत अथवा विदाई के समय उनके प्रति लोक-विश्वासों के आधार पर श्रद्धा-समन्वित-भावना से कुछ विशेष प्रकार के कार्य या रीति-रिवाज ही उक्त लोकाचारों एवं अन्ध-विश्वासों की श्रेणी में आते हैं। कवि ने विविध-प्रसंगों में उनके उल्लेख किये हैं जो निम्न प्रकार हैं—

शकुन-सूचक— अन्ध-विश्वासों में कवि ने शुभ स्वप्न दर्शन (3/10/3—6), पुरुषों के दाहिने नेत्र एवं बाहु का फरकना (13/7/6), स्त्रियों के बाएँ अंगों का स्फुरण (वामच्छि फुरेसइ, 7/10/8) एवं असमय में वनस्पति के प्रफुल्लित (7/10/7) हो जाने को उल्लिखित किया है। तथा **अपशकुन** सूचक — अन्धविश्वासों में कौवा (12/27/8) एवं शिवा (12/27/8) का बोलना, कबन्ध-नृत्य (12/27/8), एवं गिद्ध पंक्ति का नरपतियों के छत्रों पर बैठने (12/27/9) के उल्लेख किये हैं।

लोकाचारों में कवि ने दूर्वा (3/3/1), दही (3/3/1), अक्षत (3/3/1), मुक्ताफल-चौक (3/3/3), मणिकलश का जल से भरकर रखने (3/3/3) का उल्लेख किया है।

उपसंहार

1. पज्जुण्णचरिउ अपभ्रंश-भाषा में लिखित प्रद्युम्न के चरित से सम्बन्ध रखने वाला आद्य चरित काव्य है। अपभ्रंश के अद्यावधि उपलब्ध चरित-काव्यों में यही एक ऐसा काव्य-रत्न है, जिसने परवर्ती कालों में लिखे गए संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी के प्रद्युम्न चरितों पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है।
2. पज्जुण्णचरिउकार ने पौराणिक-महाकाव्यों एवं अन्य पूर्ववर्ती साहित्य से उपादानों का ग्रहण कर प्रस्तुत पौराणिक प्रबन्ध में भी सौन्दर्य-बोध की प्रतिष्ठा की है, क्योंकि वह मनुष्य की एक शाश्वतिक प्रकृति है और

काव्य, मनुष्य के इसी सौन्दर्य-बोधात्मक प्रवृत्ति का प्रतिफलन है। महाकवि ने त्याग के साथ जीवन के भोग एवं सौन्दर्य का समन्वय करने हेतु प्रस्तुत आख्यान में काव्यत्व का सुन्दर समन्वय किया है। रस, अलंकार एवं छन्द तथा अन्य काव्य-सामग्री का यथास्थान संयोजन कर उसने उसमें अपने काव्य-कौशल का सुन्दर परिचय दिया है।

3. कवि ने प्रस्तुत महाकाव्य में यद्यपि नायक एवं अन्य पात्रों का चित्रण एक पौराणिक वातावरण में किया है,फिर भी उनके जीवन के वैभव-विलास की विविध रंगरेलियाँ युग-प्रभाव से चर्चित हैं।

4. पज्जुण्णचरिउ विश्वकोश की कोटि का महाकाव्य कहा जा सकता है। इसमें काव्य, दर्शन, धर्म, आचार, ललित-कलाओं, संस्कृति, भूगोल एवं मानव मूल्यों का पूरी तरह समवाय किया गया है। कवि ने यद्यपि धर्म एवं दर्शन का विस्तृत विश्लेषण नहीं किया है, किन्तु मानव-जीवन के व्यक्तित्व-विश्लेषण में उनका बड़ी ही सतर्कता के साथ उपयोग किया है। भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद का संघर्ष भी इसमें चित्रित है। मेघकूटपुर नरेश कालसंवर, जहाँ भौतिकता का प्रतीक है, वहीं कुमार प्रद्युम्न आध्यात्मिकता का। कषाय एवं वासनाएँ व्यक्ति के जीवन का किस प्रकार संचालन करती हैं और किस प्रकार व्यक्ति उनके रंग में रंग कर अपने आचरण को राक्षसों की कोटि में ले आता है, इसके प्रमुख उदाहरण हैं- –राजा मधु एवं रानी कनकमाला। कवि की अनुभूति का यह निष्कर्ष है कि भोग-सामग्री व्यक्ति को सुखी नहीं बना सकती और न वह उसे जीवन में मंगल-प्रभात के दर्शन ही करा सकती है। यही कारण है कि कवि के अधिकांश पात्र जीवन के प्रारम्भिक आनन्द भोगों के तत्काल पश्चात् ही वैराग्योन्मुख दिखायी देने लगते हैं।

5. ललित-कलाओं की दृष्टि से प०च० अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काव्य है। कवि ने विभिन्न प्रसंगों में संगीत, वाद्य, नृत्य, चित्र, गुड्डि-उद्धरण, रंगोली आदि की चर्चाएँ की हैं। इनके साथ-साथ कवि ने प्रेक्षण-गृह की भी चर्चा की है। श्वेतवस्त्राननना एवं पुष्पावगुंठिता रूपिणी का चित्रण वस्तुतः तत्कालीन मूर्तिकला को प्रकाशित करता है। कवि-काल में चित्र, मूर्त्ति, संगीत एवं नृत्य-कला का क्या रूप रहा होगा, इसका अनुमान कवि के इन वर्णनों से लगाया जा सकता है।

6. सामाजिक सन्दर्भों की दृष्टि से भी प०च० अपना विशेष महत्व रखता है। कवि की दृष्टि से सभ्यता एवं संस्कृति दोनों भिन्न-भिन्न हैं। संस्कृति जहाँ आत्मा का संस्कार करती है, वहीं सभ्यता समृद्ध ढंग से जीवित रहना सिखाती है। कवि ने आत्मा को सुसंस्कृत करने वाले त्याग, संयम और तपश्चर्या को यथास्थान आवश्यकतानुसार विवेचित किया है। इसी प्रकार सभ्यता का भी उसने यथास्थान विवेचन किया है। सहृदय पाठक दोनों की सीमा-रेखा को स्पष्ट रूप से आँक सकते हैं।

7. पज्जुण्णचरिउकार यद्यपि एक महाकवि है और वह महाकाव्योचित कल्पनाओं के आकाश में विचरण किया करता है। उसने एक ओर जहाँ क्लिष्ट शब्दावली (दे० 14/20/4—13), समस्यन्त (दे० 14/21/2—4) एवं गूढार्थक पदों (दे० 10/20/9, 10/21/9) की रचनाएँ कीं, वहीं दूसरी ओर उसने सामान्य जन-जीवन से भी अपना सम्पर्क नहीं तोड़ा। यही कारण है कि उसने तत्कालीन प्रचलित झुमुक्क (10/3/6), छल्ला (मुँदरी, 10/2/11) झोंपड़ (झोंपडी, 15/20/8) रसोई (13/5/7), रंगोली (13/15/7), उर्सीसि (तकिया, 3/12/11) चोज (आश्चर्य 14/13/16), पहुच्च (पहुँच, 11/22/5), मइरी (माता, 8/19/4), रावल (राजकुल, 7/14/9) फागुण (फाल्गुन, 15/5/3) जैसे लोक प्रचलित शब्दों के भी प्रयोग किए हैं।

8. पज्जुण्णचरिउकार की यह विशेषता है कि उसने प्रस्तुत कथानक के निर्माण में जैन एवं जैनेतर दोनों ही सम्प्रदाय के साहित्य का आवश्यकतानुसार उपयोग किया है। जैन-साहित्य में उसने वसुदेवहिण्डी (संघदासगणि), हरिवंशपुराण (जिनसेन प्रथम), उत्तरपुराण (गुणभद्र), अपभ्रंश-महापुराण (पुष्पदन्त), प्रद्युम्नचरित (महासेन), तत्त्वार्थराजवार्तिक (अकलंक), सर्वार्थसिद्धि (पूज्यपाद), समन्तभद्र भारती (समन्तभद्र), परमात्मप्रकाश और योगसार (जोइन्दु) आदि ग्रन्थों का उपयोग किया है, उसी प्रकार उसने महर्षि व्यासकृत महाभारत, सौन्दरनन्द (अश्वघोष), रघुवंश, कुमारसम्भव, ऋतुसंहार एवं मेघदूत (कालिदास), शिशुपाल-वध (माघ), किरातार्जुनीयम् (भारवि) के साथ-साथ मनुस्मृति तथा सांख्य, वेदान्त, मीमांसा, योग एवं कौलिक-सम्प्रदाय सम्बन्धी कुछ ग्रन्थों से भी वैचारिक प्रेरणाएँ संग्रहीत की हैं। प० च० में प्रयुक्त अगस्त्य ऋषि द्वारा समुद्र शोषण (11/11/7), पशुवध (6/1/2), अग्निहोत्र (4/14/12), वेदमन्त्रोच्चार (6/1/1), उक्त ग्रन्थों से ही गृहीत हैं। इसी प्रकार सव्वसाइ (—अर्जुन, 13/14/15), विउयरु (वृकोदर-भीम—13/14/15), जमल (नकुल-सहदेव, 13/14/15/), कुम्भोयरु (द्रोण 13/14/15) आदि शब्दावली भी उक्त साहित्य से ही गृहीत है। कवि ने उनमें प्रयुक्त संस्कृत नामों का अपभ्रंशीकरण कर लिया है। एकाध स्थान पर कवि ने राजशेखरकृत कर्पूर-मंजरी से भी प्रेरणा ली है। उसकी प्रथम जवनिका के पद्य सं० 13 की प्रथम पंक्ति प० च० की 15/4/14 के पद से मेल खाती है।

9. प० च० में तत्कालीन सामाजिक भ्रष्टाचारों का भी कवि ने दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया है। उसके अनुसार रिश्वतखोरी (11/2/9), आत्महत्या (4/8/6), पुत्रापहरण (4/5), कन्यापहरण (2/15) तथा पति के जीवित रहते हुए भी पत्नी का अपने अन्य प्रेमी के साथ जीवन-निर्वाह (6/22) जैसे समाज विरोधी कार्य भी होते रहते थे।

10. कवि का पूर्वकाल भारतीय राजनीति का अशान्तिकाल था। चतुर्दिक युद्ध एवं आक्रमणों की बौछारें होती रहती थीं एवं सैन्य-संगठनों में ही राजाओं की अधिकांश शक्ति लगी रहती थी। इसकी झलक प० च० के विविध युद्ध-प्रसंगों में मिलती है। कवि ने अश्वों के विषय में (यथा— 1/10, 10/17-21, 14/18) विशेष प्रकाश डाला है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध में अश्वों का प्रमुख स्थान था। युद्ध में प्रयुक्त आयुधास्त्रों से मध्यकालीन युद्ध-सामग्री पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

11. नभोयान की चर्चा यद्यपि प्राचीन-साहित्य में भी मिलती है। महर्षि वाल्मीकि के बाद महाकवि कालिदास ने "अभिज्ञान-शाकुन्तल" में उसका सुन्दर चित्र खींचा है किन्तु कवि सिंह का चित्रण उससे भी विशिष्ट प्रतीत होता है। कवि ने विमान की संरचना, उसके गुण-दोषों का विवरण, आकाश-मार्ग में विहार, आवश्यकता पड़ने पर उसे आकाश-मार्ग में ही रोके रखने, आवश्यकता पड़ने पर महिलाओं द्वारा उसके संचालित करने आदि का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। यही नहीं, तीव्रगति से संचालित विमान को एकाएक रोक देने पर किस प्रकार का झटका लगता है, इसका भी सुन्दर वर्णन किया है।

12. महाकवि ने देश, नगर, जनपद, ग्राम आदि के वर्णन-प्रसंगों में अनेक ऐसे भौगोलिक नामों के उल्लेख किये हैं, जिनमें मध्यकालीन भारतीय भौगोलिक परिस्थिति का परिचय मिलता है। इस वर्णन को देखकर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि महाकवि भौतिक जगत का भी अच्छा ज्ञाता था। यही कारण है कि उसने प्राकृतिक भूगोल में द्वीप, पर्वत, अरण्य, वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी एवं जीव-जन्तुओं तथा राजनैतिक भूगोल में अनेक

देशों, नगरों, ग्रामों के साथ-साथ मडम्ब, खेड, पत्तन जैसी भौगोलिक इकाइयों का भी वर्णन किया है। इसके साथ-साथ कवि ने आर्थिक-जीवन पर भी प्रकाश डाला है, जिसका विश्लेषण हमने 'आजीविका के साधन' प्रकरण में किया है। कवि के इस वर्णन से बारहवीं, तेरहवीं सदी के भौतिक अथवा प्राकृतिक भारत की झाँकी मिलती है।

13. प० च० की आद्य एवं अन्त्य प्रशस्तियों में तत्कालीन नरेश बल्लाल, मलधारी गुरु अमियचन्द, शाकम्भरी-नरेश अर्णोराज एवं भृत्य भुल्लण के उल्लेख मिलते हैं, यद्यपि आधुनिक भारतीय इतिहास में ये अत्यल्प चर्चित अथवा सर्वथा उपेक्षित व्यक्ति हैं, किन्तु कवि के उल्लेखों से इनकी महत्ता प्रकट होती है। वस्तुत: ये व्यक्ति इतिहास की टूटी हुई कड़ियाँ जोड़ सकते हैं। इनका विशेष अध्ययन किया जाना चाहिए।

14. कवि मार्मिक-प्रसंगों के नियोजन में अत्यन्त पटु है। युद्ध क्षेत्र में जब दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने भुजंगी तलवारें निकाल कर खड़ी हैं, तब पराक्रमी एवं विवेकशील राजा अहंकारी प्रतिपक्ष के पास अपना शान्तिदूत भेजकर किस प्रकार व्यर्थ के खून-खराबे को शमन करने का प्रयास करता है, इसका कवि ने राजा मधु एवं शाकम्भरी नरेश भीम के माध्यम से सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार प्रद्युम्न जब सोलह वर्षों के चिर-विछोह के बाद अपनी माता के सम्मुख प्रस्तुत हो कर उसे अपना यथार्थ परिचय देता है, तब आनन्द विभोर होकर चिर वियोगिनी माता रूपिणी (रुक्मिणी) अपने शब्दों से हृदय के प्रमोद को व्यक्त नहीं कर पाती, वह केवल छलछलाते हर्षाश्रुओं से उसे अपने गले से लगा लेती है। प्रसंग की मार्मिकता उस समय और भी अधिक बढ़ जाती है, जब स्नेहमयी माँ की मनोकामना जानकर वह आज्ञाकारी पुत्र जन्मकाल से लेकर शैशवकालीन समस्त बाल-क्रीड़ाएँ अपनी विद्या के प्रभाव से यथाक्रमानुसार स्वाभाविक रूप से प्रदर्शित करता है।

15. व्यावहारिक क्षेत्र में भी कवि ने अपनी कुशल प्रतिभा का परिचय दिया है। उसका क्षेत्र किसी घेरे में आबद्ध नहीं रहा। चाहे चिकित्सा का क्षेत्र हो, या ज्योतिष का, चाहे वाणिज्य-विद्या का क्षेत्र हो या ताम्बूल बनाने एवं सुगन्धित पदार्थों के निर्माण करने की प्रक्रिया का (3/5/11, 14/16/14), कवि ने उसका सफल वर्णन किया है। औषधि के क्षेत्र में पौष्टिक औषधियों के नुस्खे (15/3/3), ज्योतिष-विद्या के क्षेत्र में ग्रहों, राशियों एवं नक्षत्रों की चर्चा (14/21/11, 15/2/3), एवं माप-तौल के क्षेत्र में उसने अद्धमास (आधा माशा-10/20/9), अद्धवरिस (आधा तोला, 10/21/9) के प्रासंगिक उल्लेख किए हैं।

16. प० च० एक पौराणिक महाकाव्य है। अत: इसमें पौराणिक तत्वों का प्राचुर्य है। स्वर्ग-नरक वर्णन, सृष्टि-विद्या आदि के उल्लेख इसमें समाहित हैं। यद्यपि परम्परा की दृष्टि से इन उल्लेखों में कवि की कोई मौलिकता नहीं, न ही कवि का कोई चिन्तन ही, फिर भी कवि ने उन तथ्यों का प्रासंगिक रूप में प्रस्तुत कर परम्परा का निर्वाह किया है।

17. उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त प०च० में क्वचित्-कदाचित् विसंगतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं, जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं—

(1) कवि ने कहीं-कहीं प्रसंगों या व्यक्तियों के उल्लेख किए बिना ही वक्तव्य या घटनाओं का वर्णन प्रारम्भ कर दिया है। इससे यह पता नहीं चल पाता कि किसने किससे कहा है। यथा—

(क) 14/2/6-7 — यह वक्तव्य राजा कालसंवर का है, जो कि कृष्ण के लिए कहा गया है, किन्तु कवि

ने इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया।

(ख) 14/3/8 — यह कथन सत्यभामा का है अथवा रूपिणी का? यह स्पष्ट नहीं होता। इसी प्रकार- -

(ग) 13/7/7 — यह स्पष्ट नहीं कि कौन किसको कह रहा है? वस्तुत: यहाँ पर "कृष्ण द्वारा कहा गया है।" ऐसा स्पष्ट लिखा जाना चाहिए था।

(2) कुरुभूमि का युद्ध यहाँ प्रसंगोचित नहीं प्रतीत होता (13/9/8)।

(3) कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि कवि कथानक-प्रसंग को सरस ढंग से विस्तृत रूप में प्रस्तुत कर सकता था, किन्तु उसने क्षिप्रगति से उस विषय को आगे बढ़ाया है। कवि ने कथा-नायक — प्रद्युम्न की युवावस्था का वर्णन मात्र एक-दो कडवक में ही समाप्त कर दिया (7/12/7-10; 7/13/1-9) जबकि कवि उसके विविध अन्तर्बाह्य सौन्दर्य तथा उसके गुणों का वर्णन विस्तृत रूप में कर सकता था।

इनके अतिरिक्त पूर्वोक्त तथ्यों के प्रकाश में कोई भी सहृदय विद्वान् महाकवि सिंह के प्रस्तुत पज्जुण्णचरिउ का मूल्यांकन भली भाँति कर सकता है। वस्तुत: संक्षेप में कहा जाय तो प्रस्तुत महाकाव्य में चरित, आख्यान, तत्त्व, सिद्धान्त, दर्शन, आचार, योग, अध्यात्म, सांस्कृतिक एवं सामाजिक तथ्य एवं भूगोल के विविध रूप प्रस्तुत किये गये हैं। भाषा एवं साहित्य की दृष्टि से भी कवि सिंह एक महाकवि के रूप में और उनका प्रस्तुत काव्य अपनी गुणवत्ता के आधार पर महाकाव्य की कोटि में खरा उतरता है इसमें सन्देह नहीं।

❑❑❑

विषयानुक्रम (मूल एवं हिन्दी अनुवाद)

[सन्धि एवं कडवकों के अनुक्रम से]

पहली सन्धि

कडवक सं०			मूल / हिन्दी अनुवाद पृ०सं०
1.	(1)	ऊर्जयन्तगिरि से सिद्धि को प्राप्त नेमि-जिनेश्वर की स्तुति	1
2.	(2)	कवि को श्वेतवसना सरस्वती ने स्वप्न दर्शन दिया	2
3.	(3)	सरस्वती कवि को स्वप्न में काव्य-रचना की प्रेरणा देती है	3
4.	(4)	कवि अपने गुरु अमृतचन्द्र एवं समकालीन राजा बल्लाल तथा मण्डलपति भुल्लण का परिचय देता है	4
5.	(5)	गुरु-स्तुति तथा दुर्जन-सज्जन वर्णन	5
6.	(6)	कवि अपना संक्षिप्त परिचय देकर प्रद्युम्न-चरित काव्यारम्भ के प्रसंग में राजगृह एवं अन्य भारतीय भूगोल का वर्णन करता है	6
7.	(7)	सोरठ (सौराष्ट्र) देश का वर्णन	7
8.	(8)	सोरठ (सौराष्ट्र) देश की विशेषता	8
9.	(9)	सोरठ देश की सुरम्यता और द्वारावती नगरी का वर्णन	9
10.	(10)	द्वारावती नगरी का वर्णन	10
11.	(11)	समुद्र का वर्णन	11
12.	(12)	द्वारावती (द्वारिका) के राजा मधुमथन-कृष्ण का वर्णन	12
13.	(13)	राजा जनार्दन – कृष्ण का वर्णन	13
14.	(14)	नारद का कृष्ण की सभा में आगमन	14
15.	(15)	कृष्ण, बलदेव एवं नारद का वार्त्तालाप	15
16.	(16)	नारद के सहसा आगमन पर रूपगर्विता सत्यभामा लज्जित हो जाती है	16

दूसरी सन्धि

1.	(17)	रूपगर्विता सत्यभामा के प्रति नारद का क्रोध	18
2.	(18)	आकाश मार्ग से जाते हुए नारद, पृथिवी-मण्डल के प्राणियों की क्रीड़ाएँ देखते हुए विद्याधर श्रेणी में पहुँच कर वहाँ के निवासियों की नागरी-वाणी सुनते हैं	19
3.	(19)	विद्याधर श्रेणी का वर्णन	20
4.	(20)	सत्यभामा से भी अधिक सुन्दरी कन्या की खोज में नारद की विद्याधर नगरियों की वेगगामी यात्राएँ	21
5.	(21)	विद्याधर-प्रदेश की परिक्रमा कर नारद कुण्डिनपुर में पहुँचता है	22
6.	(22)	कुण्डिनपुर के राजा भीष्म ने नारद को अपने नगर में प्रवेश करते हुए देखा	23

7. (23) राजा भीष्म नारद का स्वागत कर उसे अन्तःपुर ले जाता है जहाँ राजकुमारी रूपिणी के सौन्दर्य से प्रभावित होकर वह उसे मधुमथन की प्रियतमा बनने का आशीर्वाद देता है 24
8. (24) नारद रूपिणी को हरि-कृष्ण का परिचय देता है 25
9. (25) नारद उस रूपिणी की प्रतिच्छवि तैयार कराता है। रूपिणी का नख-शिख वर्णन 26
10. (26) नारद ने रूपिणी का चित्रपट द्वारावती के राजा पद्मनाभ नारायण (कृष्ण) को समर्पित कर दिया 27
11. (27) रूपिणी के सौन्दर्य से काम-पीड़ित होकर नारायण कृष्ण नारद से उसका परिचय पूछते हैं 28
12. (28) चेदिपति के साथ रूपिणी के विवाह की तैयारी की नारद द्वारा नारायण को सूचना 29
13. (29) जनार्दन सदल-बल कुण्डिनपुर पहुँचते हैं। नारद रूपिणी की फूफी को चुपचाप संकेत कर देता है 30
14. (30) फूफी (सुरसुन्दरी) के आदेश से रूपिणी नगर के बाहरी उद्यान में कामदेव की पूजा हेतु आती है 31
15. (31) जनार्दन रूपिणी को उठाकर रथ में बैठा लेते हैं और पाँचजन्य शंख फूँक देते हैं। युद्ध की तैयारी 32
16. (32) युद्ध की तैयारी : रूपिणी जनार्दन की परीक्षा लेती है 33
17. (33) शिशुपाल एवं रूपकुमार (रूपिणी का भाई) हरि-बलदेव से भिड़ जाते हैं 34
18. (34) शिशुपाल एवं हरि-हलधर का बाण युद्ध 35
19. (35) तुमुल-युद्ध : मधुमथन शिशुपाल पर रथांग चक्र छोड़ता है 37
20. (36) शिशुपाल-वध एवं हरि का रूपिणी के साथ द्वारावती वापिस लौटना 38

तीसरी संधि

1. (37) सौराष्ट्र के मार्गवर्ती एक लतागृह में विष्णु ने रूपिणी से अग्नि की साक्षी पूर्वक पाणिग्रहण कर लिया 39
2. (38) हरि-नारायण का द्वारामती में प्रवेश। नगर की विह्वल युवतियों का वर्णन 40
3. (39) हरि एवं रूपिणी का द्वारामती के नागरिक जनों द्वारा अभिनन्दन 41
4. (40) वसन्त ऋतु का आगमन 42
5. (41) सत्यभामा की विरहावस्था सुनकर हरि उसके आवास पर पहुँचते हैं 43
6. (42) रूपिणी के उगाल का लेप कर लेने से हरि सत्यभामा की हँसी उड़ाते हैं 44
7. (43) सत्यभामा उपवन में रूपिणी से मिलने जाती है 45
8. (44) शुभ्र वेशधारिणी रूपिणी को भ्रम से वनदेवी मानकर सत्यभामा उससे मनौती माँगती है 46
9. (45) रूपिणी सत्यभामा की प्रतिज्ञा स्वीकार करती है कि उन दोनों में से जिसे सर्वप्रथम पुत्र उत्पन्न होगा, वह दूसरी का सिर मुँडवा देगी 47

10. (46) रूपिणी एवं सत्यभामा के द्वारा एक समान चार-चार स्वप्नों का दर्शन एवं उनका फल वर्णन 49
11. (47) रूपिणी एवं सत्यभामा के गर्भ-काल का वर्णन 50
12. (48) संयोग से रूपिणी एवं सत्यभामा दोनों को ही पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है किन्तु विष्णु को रूपिणी के पुत्र-प्राप्ति की सूचना सर्वप्रथम मिलती है 51
13. (49) पुत्र-जन्म एवं नाम-संस्कारोत्सव 52
14. (50) रूपिणी-पुत्र प्रद्युम्न का धूमकेतु नामक दानव द्वारा अपहरण 53

चौथी सन्धि

1. (51) धूमकेतु दानव ने उस शिशु प्रद्युम्न को तक्षकगिरि की एक विशाल शिला के नीचे चाँप दिया 55
2. (52) राजा कालसंवर का नभोयान तक्षकगिरि के ऊपर अटक जाता है 56
3. (53) पट्टरानी कंचनमाला पुत्रविहीन थी, अतः राजा कालसंवर उसे पुत्र के रूप में उस बालक को दे देता है तथा उसी दिन उसे राज्याधिकारी भी घोषित कर देता है 58
4. (54) कालसंवर के यहाँ शिशु (प्रद्युम्न) का उचित लालन-पालन होने लगा और इधर उसकी माता रूपिणी उसकी खोज करने लगी 59
5. (55) पुत्र के अपहरण पर माता रूपिणी का विलाप 60
6. (56) रूपिणी एवं हरि की शोकावस्था का वर्णन। सभी राजा पुत्र की खोज में निकल पड़ते है 61
7. (57) नारद का आगमन। रूपिणी उससे पूछती है कि हमारे पुत्र का अपहरण किससे करा दिया है? 63
8. (58) सास एवं ननद की झिड़कियाँ सुनकर रूपिणी का दुःख दुगुना हो गया 64
9. (59) नारद आकाश-मार्ग से प्रद्युम्न की खोज में निकलते है 65
10. (60) नारद पूर्व-विदेह जाते समय मार्ग में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकणी नगरी को देखते हैं 66
11. (61) पूर्व विदेह क्षेत्र स्थित सीमंधर स्वामी के समवशरण में पहुँच कर नारद उनकी स्तुति करते हैं 68
12. (62) नारद का सूक्ष्म-शरीर अपनी हथेली पर रखकर चक्रेश्वर-पद्म जिनवर से पूछता है कि यह प्राणी कहाँ से आ गया है? 69
13. (63) जिनवर ने बताया कि शिशु प्रद्युम्न का, पूर्वजन्म के बैरी धूमकेतु दानव ने अपहरण कर उसे तक्षकगिरि की शिला के नीचे चाँप दिया है 70
14. (64) प्रद्युम्न का पूर्व-जन्म (1) मगध स्थित शालिग्राम निवासी सोमशर्म भट्ट का परिचय 71
15. (65) प्रद्युम्न का पूर्व-जन्म कथन (2) मुनिराज सात्यकि एवं द्विजवरों का विवाद 73

16. (66) (प्रद्युम्न के पूर्वभव के अन्तर्गत) अग्निभूति वायुभूति के पूर्व जन्म शालिग्राम के प्रवर द्विज का वर्णन 74
17. (67) (प्रद्युम्न पूर्व जन्म कथन प्रसंग में–) प्रवर विप्र ने शृगाल-बच्चों के शवों को अपने दरवाजे पर लटका दिया 75

पाँचवीं सन्धि

1. (68) (प्रद्युम्न के पूर्व–जन्म के प्रसंग में–) प्रवर विप्र मरकर अपनी पुत्र-वधु की कोख से जन्म लेता है 77
2. (69) (प्रद्युम्न के जन्मान्तर कथन के प्रसंग में-) मूक विप्र पुत्र (प्रवर विप्र के जीव) को धर्मोपदेश 78
3. (70) (प्रद्युम्न के पूर्व–जन्म–कथन के प्रसंग में–) अग्निभूति वायुभूति द्वादश-व्रत ग्रहण कर अपने पिता सोमशर्मा को कहते हैं कि श्रमण मुनि को विवाद में जीतना कठिन है 79
4. (71) (प्रद्युम्न के पूर्व–जन्म–कथन के प्रसंग में–) दोनों विप्र-पुत्र मुनि संघ की हत्या के लिए प्रस्थान करते हैं 79
5. (72) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म–कथन के प्रसंग में–) गुप्त यक्षदेव मुनि-हत्या के लिए प्रयत्नशील अग्निभूति–वायुभूति को कीलित कर देता है 80
6. (73) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) कीलित विप्र-पुत्रों का वर्णन 81
7. (74) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में–) मुनिराज के आग्रह से यक्षराज विप्र-पुत्रों को क्षमा कर देता है 82
8. (75) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) मुनिराज के समीप द्विजपुत्रों ने व्रतभार ग्रहण किया 83
9. (76) (प्रद्युम्न के पूर्व–जन्म-कथन के प्रसंग में–) सोमशर्मा की रत्नप्रभा में उत्पत्ति 84
10. (77) (प्रद्युम्न के पूर्व–जन्म-कथन के प्रसंग में–) दोनों सौधर्म देव (दोनों विप्र-पुत्र के जीव) अयोध्या की सेठानी धारणी के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए 85
11. (78) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म–कथन के प्रसंग में–) अयोध्यापुरी में मुनीश्वर महेन्द्रसूरि का आगमन 86
12. (79) (प्रद्युम्न के पूर्व–जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा अरिंजय मुनिराज महेन्द्रसूरि के दर्शनार्थ नन्दनवन में जाता है 87
13. (80) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म–कथन के प्रसंग में-) राजा अरिंजय एवं उनके प्रजाजनों को मुनिराज महेन्द्रसूरि का धर्मोपदेश 88
14. (81) उपदेश श्रवण कर राजा का दीक्षा ग्रहण 89
15. (82) सेठ-सेठानी तथा उनके दोनों पुत्रों (मणिभद्र एवं पूर्णभद्र) ने भी व्रत ग्रहण किये 90
16. (83) मणिभद्र एवं पूर्णभद्र के जन्मान्तरों का नवागत मुनि द्वारा वर्णन 91

छठी सन्धि

1. (84) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) शालिग्राम निवासी सोमशर्मा एवं अग्निला के पूर्वभवों का वर्णन 93
2. (85) मुनिराज द्वारा चाण्डाल एवं श्वानी का पूर्वभव कथन एवं उनकी संन्यास विधि 94
3. (86) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) श्वानी शुभ-मरण कर अयोध्यापुरी के राजा गजरथ के यहाँ जन्म लेती है। उसके स्वयंवर का वर्णन 95
4. (87) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजकुमारी का स्वयंवर, जिसमें नन्दीश्वर देव भी उपस्थित होता है 96
5. (88) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) नन्दीश्वर देव द्वारा राजकुमारी माला को प्रतिबोधन एवं स्वयंवर के पूर्व ही उसका दीक्षा-ग्रहण 97
6. (89) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजकुमारी माला को मुनिराज त्रिगुप्ति द्वारा दीक्षा प्रदत्त 97
7. (90) त्रिगुप्ति मुनिराज द्वारा मणिभद्र-पूर्णभद्र का पूर्व-जन्म-कथन 98
8. (91) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा कनकनाथ ने अपने दोनों पुत्रों (मधु-कैटभ) को राज्य सौंपकर मुनिराज शुभ से दीक्षा ग्रहण कर ली 99
9. (92) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) शाकम्भरी नरेश राजा भीम एवं राजा मधु के युद्ध की तैयारियाँ 100
10. (93) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु का चतुरंगिणी सेना के साथ अरिराज भीम के साथ युद्ध हेतु वडपुर पहुँचना 101
11. (94) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) वडपुर नरेश कनकरथ राजा मधु का स्वागत करता है। उसकी रानी कनकप्रभा पर राजा मधु आसक्त हो जाता है 102
12. (95) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) मधु राजा अपनी कामावस्था का रहस्य अपने मन्त्री सुमति को कह देता है 103
13. (96) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु अरिराज भीम के पास अपना दूत भेजता है 103
14. (97) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु एवं अरिराज का भीषण युद्ध 104
15. (98) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) युवराज कैटभ एवं अरिराज भीम का युद्ध 105
16. (99) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) अरिराज भीम को पराजित कर राजा मधु वापिस घर लौटा। वसन्त ऋतु का आगमन 106
17. (100)(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) ऋतुराज वसन्त का वर्णन। विरह-व्याकुल राजा मधु केवल कनकप्रभा के चिन्तन में रत था 108
18. (101) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु के आदेश से कनकरथ अपनी युवती सुन्दरी रानी कनकप्रभा को उसी के यहाँ छोड़ देता है 109

19. (102) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु रानी कनकप्रभा के पास दूती भेजता है। सन्ध्या एवं रात्रि वर्णन 109

20. (103) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) चन्द्रोदय वर्णन 110

21. (104) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) चन्द्रोदय वर्णन, दूतियाँ रानी कनकप्रभा को समझाकर राजा मधु के सम्मुख ले आती हैं 111

22. (105) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु एवं रानी कनकप्रभा की काम-केलियों का वर्णन 112

23. (106) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु रानी कनकप्रभा को पट्टरानी का पद प्रदान करता है। उधर कनकरथ इस समाचार को सुनकर विक्षिप्त हो जाता है 113

सातवीं सन्धि

1. (107) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) विक्षिप्तावस्था में राजा कनकरथ अयोध्या पहुँच जाता है, जिसे देखकर कंचनप्रभा की धाय रोने लगती है 115

2. (108) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) अपने प्रियतम कनकरथ की दुःस्थिति रानी कनकप्रभा राजा मधु को सुनाती है 116

3. (109) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) परस्त्री-सेवन के अपराधी को शूली की सजा (सुनाये जाने) से रानी कनकप्रभा राजा मधु पर क्रोधित हो उठती है 117

4. (110) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु को वैराग्य, उसने मुनिराज विमलवाहन से दीक्षा माँगी 118

5. (111) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु एवं रानी कनकप्रभा का दीक्षा-ग्रहण एवं कठिन तपश्चर्या 119

6. (112) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) घोर तपस्या कर मुनिराज मधु अच्युत देव हुए। राजा कैटभ ने एक सरोवर में कमल पुष्प देखा 120

7. (113) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा कैटभ की मुनि-दीक्षा एवं अच्युत स्वर्ग-गमन 120

8. (114) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा कनकरथ मरकर तापस एवं उसके बाद असुर कुमार देव तथा रानी कंचनप्रभा मरकर विद्याधर पुत्री हुई 121

9. (115) (प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु के जीव का कृष्ण-पत्नी रूपिणी के पुत्र रूप में जन्म एवं छठवें दिन असुर द्वारा उसका अपहरण 122

10. (116) विदेह क्षेत्र में प्रद्युम्न का पूर्व वृत्तान्त एवं वर्तमान उपस्थिति जानकर नारद मेघकूटपुर पहुँचता है 123

11. (117) नारद ने रूपिणी को बताया कि प्रद्युम्न मेघकूटपुर के विद्याधर राजा कालसंवर के यहाँ सुरक्षित है 124

12. (118) नारद ने प्रद्युम्न की कुशलता की सूचना रुपिणी को देकर उसे सन्तुष्ट कर दिया। प्रद्युम्न का शैशव-वर्णन 125
13. (119) कुमार प्रद्युम्न की शिक्षाएँ 126
14. (120) कुमार काल में प्रद्युम्न का पराक्रम एवं यश 127
15. (121) प्रद्युम्न को युवराज के रूप में देखकर सौतों को बड़ी ईर्ष्या हुई 128
16. (122) कालसंवर के 500 राजकुमार पुत्रों के साथ कुमार प्रद्युम्न विजयार्द्ध-पर्वत पर क्रीड़ा हेतु पहुँचता है 129
17. (123) प्रद्युम्न का सर्पवेशधारी यक्ष से युद्ध 130
18. (124) यक्षराज एवं कुमार प्रद्युम्न का वार्त्तालाप 131

आठवीं सन्धि

1. (125) कुमार प्रद्युम्न द्वारा विद्या-लाभ का उपाय पूछे जाने पर यक्षराज द्वारा पूर्व-कथा वर्णन 132
2. (126) 36 वर्षों में समस्त विद्याएँ प्राप्त कर कनकपुत्र हिरण्य मदान्ध हो गया 133
3. (127) राजा हिरण्य की दीक्षा एवं उसके लिए सिद्ध विद्याओं के आश्रय की चिन्ता 134
4. (128) विजयार्द्ध के दुर्गम जिनभवन में प्रवेश करने पर पवनाशन यक्ष द्वारा कुमार प्रद्युम्न के लिए अमूल्य विद्याएँ एवं मणिशेखर की भेंट 134
5. (129) कालमुखी गुफा में निशाचर द्वारा कुमार को छत्र, चमर, वसुनन्दक-खड्ग तथा नागगुफा के नागदेव ने दो विद्याएँ एवं विभिन्न वस्तुएँ भेंट स्वरूप प्रदान कीं 135
6. (130) कुमार प्रद्युम्न की सुर-वापिका के रक्षपाल से मुठभेड़ 137
7. (131) कुमार प्रद्युम्न को देव-वापिका के रक्षपाल द्वारा मकरध्वज, अग्निदेव द्वारा दूष्यवस्त्र एवं पर्वतदेव द्वारा कुण्डल-युगल की भेंट 137
8. (132) कुमार प्रद्युम्न को विशाल पर्वत के आम्रदेव के पास ले जाया जाता है 138
9. (133) कुमार प्रद्युम्न को वानर वेशधारी देव द्वारा शेखर एवं पुष्पमाला की भेंट 139
10. (134) कुमार प्रद्युम्न को गजदेव ने गज एवं मणिधर सर्प ने उसे असि, नपक, सुरत्न, कवच, कामांगुष्ठिका एवं छुरी भेंट स्वरूप प्रदान की 140
11. (135) कुमार प्रद्युम्न को महासुर ने अंगद, कंकण-युगल, सुवस्त्र, हार एवं मुकुट भेंट स्वरूप दिये 142
12. (136) कुमार प्रद्युम्न को वराहदेव द्वारा पुष्पचाप एवं विजय-शंख प्रदान 143
13. (137) पयोवन का वर्णन, वसन्त नामक विद्याधर मनोजव विद्याधर को बाँध लेता है किन्तु कुमार प्रद्युम्न उसे बन्धन मुक्त कर देता है 144
14. (138) कुमार प्रद्युम्न को विद्याधर मनोजव ने जयसारी एवं इन्द्रजाल विद्याएँ एवं विद्याधर वसन्त ने अपनी पुत्री नन्दनी का उसके साथ विवाह कर दिया 145
15. (139) कुमार प्रद्युम्न को अर्जुनवन के यक्ष द्वारा पंचवाण युक्त पुष्प-धनुष, भीमासुर द्वारा पुष्प-शैया एवं पुष्प-छत्र की भेंट 145

16. (140) कुमार प्रद्युम्न विपुलवन में एक लावण्यमती तरुणी को देखता है 147
17. (141) तरुणी का नख-शिख वर्णन एवं उस पर प्रद्युम्न आकर्षित होकर उसके साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा करता है 148
18. (142) (धर्ममाता) कंचनप्रभा की (धर्मपुत्र) प्रद्युम्न के प्रति प्रबल काम-भावना 150
19. (143) कामविह्वल होकर कंचनमाला कुमार प्रद्युम्न को दूती द्वारा अपने निवास पर बुलाती है 151

नवमी सन्धि

1. (144) रानी कनकमाला (कंचनप्रभा) की कामावस्थाएँ। कुमार प्रद्युम्न किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है 152
2. (145) काम-विह्वल होकर रानी कंचनमाला कुमार प्रद्युम्न से प्रणय-निवेदन करती है 153
3. (146) कुमार प्रद्युम्न रानी कंचनप्रभा की भर्त्सना कर उदधिचन्द्र मुनिराज से उसका पूर्वभव पूछता है 154
4. (147) मुनिराज द्वारा रानी कंचनप्रभा का पूर्वभव-कथन 156
5. (148) कंचनप्रभा का पूर्व-भव। वह वडपुर के माण्डलिक राजा कनकरथ की पत्नी थी 157
6. (149) मुनिराज द्वारा कंचनमाला को प्रद्युम्न-प्राप्ति का वृत्तान्त कथन तथा रूपिणी के भवान्तर 158
7. (150) (रूपिणी के भवान्तर-) मगधदेश के सोम-द्विज की लक्ष्मी नामकी रूपगर्विता पुत्री थी 159
8. (151) (रूपिणी के भवान्तर-) वह रूपगर्विता पुत्री (लक्ष्मी) कुष्ट रोगिणी होकर मरी। विभिन्न योनियों में जन्म लेकर पुनः पूतगन्धा नामकी धीवरी कन्या के रूप में जन्मी 160
9. (152) पिता द्वारा निष्कासित पूतिगन्धा नदी किनारे रहने लगी। वहाँ एक मुनिराज पधारे 161
10. (153) धीवर कन्या को अणुव्रत प्रदान कर मुनिराज कोसलपुरी की ओर चले। वह धीवर कन्या भी उनके पीछे-पीछे चल दी 162
11. (154) व्रत-तप के फलस्वरूप वह धीवरी कन्या, स्वर्ग-देवी तथा वहाँ से चयकर राजा भीष्म की राजकुमारी रूपिणी के रूप में जन्मी 164
12. (155) राजकुमारी रूपिणी से विवाह करने हेतु शिशुपाल एवं हरि-कृष्ण कुंडिनपुर पहुँचते हैं 165
13. (156) शिशुपाल का वध कर हरि-कृष्ण रूपिणी को हर कर ले आये। उससे प्रद्युम्न का जन्म हुआ, जिसका छठे दिन अपहरण कर यक्ष ने उसे खदिराटवी में शिला के नीचे चाँप दिया और वहाँ से कालसंवर उसे उठा कर अपने घर ले आया 166
14. (157) वज्रदंष्ट्र आदि 500 सौतेले भाई ईर्ष्यावश प्रद्युम्न की हत्या करना चाहते हैं किन्तु उन्हें असफलता ही मिलती है 167
15. (158) कुमार प्रद्युम्न को रानी कंचनमाला द्वारा तीन विद्याओं की प्राप्ति 168
16. (159) त्रिया-चरित्र का उदाहरण, राजा कालसंवर प्रद्युम्न का वध करने के लिए तत्पर हो जाता है 169
17. (160) आलोचनी-विद्या का चमत्कारी प्रभाव, कुमार प्रद्युम्न का वध नहीं किया जा सका 170

18. (161) कालसंवर एवं प्रद्युम्न का युद्ध 171
19. (162) प्रद्युम्न की सैन्यकारिणी विद्या का चमत्कार राजा कालसंवर एवं प्रद्युम्न में तुमुल युद्ध 172
20. (163) आलोकिनी-विद्या का चमत्कार-कालसंवर एवं प्रद्युम्न में भयानक युद्ध 173
21. (164) कालसंवर, प्रद्युम्न से पराजित होकर अपनी रानी कनकप्रभा से विद्याएँ माँगने जाता है और नहीं मिलने पर निराश हो जाता है 174
22. (165) प्रज्ञप्ति विद्या का चमत्कार-कालसंवर एवं प्रद्युम्न में तुमुल युद्ध 175
23. (166) कालसंवर एवं प्रद्युम्न का तुमुल युद्ध, महर्षि नारद आकर युद्ध बन्द करा देते हैं 176
24. (167) नारद के साथ कुमार प्रद्युम्न द्वारावती के लिए प्रस्थान करता है 177

दसवीं सन्धि

1. (168) (द्वारावती चलने के लिए) महर्षि नारद ने तत्काल विमान का निर्माण किया 179
2. (169) नारद द्वारा निर्मित विमान प्रद्युम्न के पैर रखते ही सिकुड़ जाता है। अतः नारद के आदेश से प्रद्युम्न दूसरा विमान तैयार करता है 180
3. (170) प्रद्युम्न अपने नव-निर्मित सुसज्जित नभोयान में बैठकर मेघकूटपुर से द्वारावती की ओर प्रस्थान करता है 181
4. (171) विमान की वेगगति से नारद थरहराने लगता है, अतः प्रद्युम्न मन्द-गति से आगे बढ़ाता है 182
5. (172) कुमार प्रद्युम्न ने नभ-मार्ग में जाते हुए रौप्याचल को देखा 183
6. (173) अटवी का विहंगम वर्णन 184
7. (174) मार्ग में कुमार प्रद्युम्न ने एक सुसज्जित सैन्य-समुदाय देखा 185
8. (175) कुरुनाथ-दुर्योधन की सेना, माता रूपिणी के पराभव का कारण बनेगी, यह जानकर प्रद्युम्न आकाश में ही विमान रोककर शबर के रूप में धरती पर उतरता है 186
9. (176) विकराल शबर वेशधारी प्रद्युम्न कुरुसेना को रोक लेता है 187
10. (177) शबर वेशधारी प्रद्युम्न कुरुसेना से शुल्क के रूप में राजकुमारी उदधिकुमारी को माँगता है 188
11. (178) शबर ने कुरुसेना के छक्के छुड़ा दिये 189
12. (179) शबर द्वारा उदधिकुमारी का अपहरण 190
13. (180) उदधिकुमारी शीलभंग के भय से महर्षि नारद से अपनी सुरक्षा की माँग करती हुई उग्र तप की प्रतिज्ञा करती है 191
14. (181) नारद के आदेश से प्रद्युम्न उस उदधिकुमारी को अपना यथार्थ रूप दिखा देता है। वह प्रसन्न मन से उसके साथ द्वारामती पहुँचती है 192
15. (182) प्रद्युम्न महर्षि नारद एवं उदधिकुमारी के साथ द्वारामती पहुँचता है 194
16. (183) नारद एवं उदधिकुमारी युक्त विमान को नभ में ही स्थिर कर वह प्रद्युम्न अकेला ही उतर कर द्वारावती घूमने निकलता है 195

17. (184) प्रज्ञप्ति-विद्या का चमत्कार-कुमार वृद्ध अश्वपाल के रूप में अपने सौतले भाई भानुकर्ण के सम्मुख पहुँचता है 196
18. (185) अहंकारी भानुकर्ण वृद्ध अश्वपाल (प्रद्युम्न) का तुरंग लेकर उस पर सवार हो जाता है 197
19. (186) भानुकर्ण को वह तुरंग पटक देता है तब वह लज्जित होकर स्वयं उसे उस पर सवार होने की चुनौती देता है 198
20. (187) अश्वपाल जर्जर देह होने के कारण सेवकों के साथ भानु से घोड़े पर बैठा देने का आग्रह करता है, किन्तु उस दैवी–शरीर को वे उठा नहीं सके 199
21. (188) अश्वपाल भानुकर्ण को लतया कर घोड़े पर बैठकर आकाश में उड़ जाता है 200

ग्यारहवीं सन्धि

1. (189) प्रज्ञप्ति-विद्या का चमत्कार-प्रद्युम्न मायामय दो घोड़ों के साथ सत्यभामा के उपवन के समीप पहुँचता है 202
2. (190) रिश्वत में अँगूठी लेकर वनपाल ने प्रद्युम्न के घोड़ों को सत्यभामा का उपवन चरा दिया 203
3 (191) कुमार प्रद्युम्न सत्यभामा का उपवन नष्ट कर, दूसरों के लिए वर्जित उसके माकन्दी वन में पहुँचता है 204
4. (192) मातंग (प्रद्युम्न) के मायामय वानर ने माकन्द-वन में तोड़-फोड़ मचा दी 205
5. (193) माकन्द-वन को नष्टकर प्रद्युम्न आगे बढ़ता है और मंगल तरुणियों के झुण्ड को देखता है 206
6. (194) मंगल तरुणियों की भीड़ तितर-बितर कर वह प्रद्युम्न सत्यभामा की वापी पर पहुँचा 207
7. (195) अन्ध-बधिर ब्राह्मण के वेश में प्रद्युम्न वापिका के पास एकत्रित तरुणियों से वार्तालाप करता है 209
8. (196) वह द्विज (प्रद्युम्न) तरुणियों को भिल्लराज द्वारा उदधिकुमारी के अपहरण की सूचना देता है 210
9. (197) उदधिकुमारी को परिणीता-पत्नी घोषित कर द्विज वेशधारी प्रद्युम्न बलपूर्वक वापी में प्रवेश कर जाता है 211
10. (198) वह (द्विज) तरुणियों को विरूप बनाकर जल-मार्ग से आगे बढ़ने लगता है 212
11. (199) सत्यभामा की तरुणियों को कुरूप तथा सुरूप बनाता हुआ वापी का जल शोषित कर वह प्रद्युम्न लीलापूर्वक द्वारावती के बाजार-मार्ग में जा पहुँचता है 213
12. (200) तरुणियों के पीछा करने पर द्विज (प्रद्युम्न) का कमण्डल गिरकर फूट जाता है और उसके जल से समुद्र का दृश्य उपस्थित हो जाता है। आगे चलकर वह मालियों के यहाँ पहुँचता है 214
13. (201) मालियों द्वारा पुष्प न दिये जाने पर वह पुष्पों की सुगन्धि का अपहरण कर बाजार की सभी व्यापारिक सामग्रियों के रूप को बदल देता है 215

14. (202) मायामय मेष लिये प्रद्युम्न को देखकर वसुदेव उसे राजभवन में बुलवाते है 216
15. (203) मायावी मेष से वसुदेव को मूर्च्छित करा कर प्रद्युम्न आगे बढ़ जाता है 217
16. (204) वह प्रद्युम्न कपिलांग वटुक–द्विज के वेश में सत्यभामा के यहाँ पहुँच कर उससे भोजन माँगता है 218
17. (205) सत्यभामा एवं कपिलांग वटुक का वार्त्तालाप, कपिलांग प्रशंसा करता है 219
18. (206) कपिलांग वटुक-द्विज के उच्चासन पर बैठ जाने से अन्य ब्राह्मण क्रुद्ध हो उठते हैं 220
19. (207) कपिलांग वटुक-द्विज द्वारा यथार्थ ब्राह्मण की परिभाषा 221
20. (208) कपिलांग वटुक-द्विज के कथन से अन्य सभी ब्राह्मण आपस में कलह करने लगे, सत्यभामा कपिलांग की प्रशंसा करती है 222
21. (209) कपिलांग वटुक एक वर्ष में खाने योग्य सामग्री निमिष मात्र में ही खाकर सबको आश्चर्यचकित कर देता है 223
22. (210) भोज्य पदार्थों से तृप्त न होकर कपिलांग-द्विज सत्यभामा की भर्त्सना कर वहीं पर वमन कर देता है 224
23. (211) मायावी वटुक क्षीण एवं विकृत-काय क्षुल्लक वेष बनाकर रुक्मिणी के निवास-स्थल पर पहुँचता है 225

बारहवीं सन्धि

1. (212) रूपिणी-सौन्दर्य-वर्णन 228
2. (213) व्रतधारी क्षुल्लक रूपिणी से उष्ण पेय-पदार्थ की याचना करता है 229
3. (214) कृष्ण के लिए सुरक्षित दुष्पाच्य विविध-मोदकों को क्षुल्लक खा जाता है; फिर भी उसकी भूख शान्त नहीं होती 230
4. (215) क्षुल्लक के आते ही प्राकृतिक आश्चर्य होने से रूपिणी को अपने पुत्र विषयक मुनिराज की भविष्यवाणी का स्मरण आ जाता है 231
5. (216) रूपिणी सोचती है कि क्या यह क्षुल्लक ही उसका पुत्र है जो अपना वेश बदल कर उसकी परीक्षा ले रहा है? 232
6. (217) रूपिणी क्षुल्लक का परिचय पूछती है 233
7. (218) रूपिणी क्षुल्लक को अपना परिचय देती है 233
8. (219) (रूपिणी अपना परिचय देती है-) एक दिन कृष्ण ने रूपिणी को वनदेवी की तरह बैठाकर सत्यभामा को उसके दर्शन करने की प्रेरणा दी 234
9. (220) रूपिणी क्षुल्लक से कहती है कि भानुकर्ण के विवाह के समय मेरा सिर-मुण्डन होने वाला है 235
10. (221) शोकातुर रूपिणी को आश्वस्त कर क्षुल्लक उसकी मायामयी प्रतिमूर्त्ति बनवाता है 236

11. (222) सत्यभामा का नापित रानी रूपिणी के केश–कर्त्तन के स्थान पर अपनी तथा साथ में आयी हुई समस्त महिलाओं की नाक, अंगुलियाँ एवं केश काट लेता है 237

12. (223) सत्यभामा विरूपाकृति वाले अपने सभी परिजनों को कृष्ण के सम्मुख भेजकर रूपिणी की शिकायत करती है 238

13. (224) रूपिणी को प्रतिभासित होता है कि क्षुल्लक के वेश में उसका पुत्र उसके सम्मुख उपस्थित हो गया है 239

14. (225) क्षुल्लक अपनी चिर–वियोगिनी माता रूपिणी के दुःख से व्यथित होकर अपना यथार्थ रूप प्रकट कर देता है और उसे माँ कहकर साष्टांग प्रणाम करता है 240

15. (226) माता रूपिणी की इच्छापूर्ति हेतु वह अपने विद्या–बल से शिशु रूप धारण कर विविध बाल्य लीलाओं से उसका मनोरंजन करता है 241

16. (227) हलधर क्रुद्ध होकर क्षुल्लक के विरोध में अपने खेचर–सेवक भेजता है 242

17. (228) क्षुल्लक अपनी विद्या के बल से क्षीणकाय द्विज का रूप धारण कर रूपिणी के दरवाजे पर गिर पड़ता है 243

18. (229) हलधर क्षीणकाय विप्र (प्रद्युम्न) पर क्रोधित हो उठता है 244

19. (230) हलधर उस द्विज के पैर पकड़कर खींच ले जाता है, किन्तु नगर के बाहर पहुँचकर वह आश्चर्यचकित हो जाता है, क्योंकि उसके हाथों में द्विज के केवल पैर मात्र ही थे, शरीर के अन्य अंग नहीं 245

20. (231) प्रद्युम्न पंचानन–सिंह का रूप धारण कर हलधर को पुनः विस्मित कर देता है 246

21. (232) पंचानन हलधर को परास्त कर राजमहल में फेंक देता है 247

22. (233) रूपिणी के पूछने पर प्रद्युम्न ने बताया कि नारद एवं पुत्रवधु ऊपर नभोयान में रुके हुए हैं 248

23. (234) प्रद्युम्न के पराक्रम से रूपिणी अत्यन्त प्रभावित होकर प्रमुदित मन से आशीर्वाद देती है 249

24. (235) मायामयी रूपिणी को हथेली पर रखकर प्रद्युम्न, कृष्ण एवं उनके दरबारियों को चुनौती देता है, कि यदि वे पराक्रमी हों तो उस अपहृत महिला को उससे वापिस लें

25. (236) रणभूमि के लिये प्रयाण की तैयारी 250

26. (237) रणभूमि के लिये प्रयाण की तैयारी, हवा में महाध्वज अँगड़ाईयाँ लेने लगा 251

27. (238) रण–प्रयाण के समय होने वाले अपशकुनों से हरि–कृष्ण का चित्त विह्वल हो उठा 252

28. (239) अपने नभोयान में, विद्या के प्रभाव से प्रद्युम्न रूपिणी को छोड़कर गोविन्द–कृष्ण से दुगुनी सेना एवं साधन निर्मित कर युद्ध–भूमि में कृष्ण–सेना से जा भिड़ता है 253

तेरहवीं सन्धि

1. (240) रण वर्णन-समरभूमि में दोनों शत्रु-सेनाओं के बीच की अन्तर्भूमि की दुखःद अवस्था का कवि द्वारा मार्मिक-चित्रण 255
2. (241) प्रतिपक्षी सेनाओं का तुमुल-युद्ध। कबन्धों का पराक्रम
3. (242) तुमुल-युद्ध 256
4. (243) तुमुल-युद्ध कृष्ण अपने भटों को सावधान कर स्वयं अपना रण-कौशल दिखलाते हैं 257
5. (244) कृष्ण की चतुरंग सेना नष्ट होने लगी 258
6. (245) तुमुल-युद्ध-पराजित बल, हरि महागज छोड़कर महारथ पर सवार होते है 259
7. (246) समर-भूमि में दाएँ अंगों के फरकने से कृष्ण को किसी मंगल-प्राप्ति की भावना जागृत होती है 261 262
8. (247) प्रद्युम्न, कृष्ण को पराजित कर उसे आत्म-समर्पण की सलाह देता है, किन्तु उसकी अस्वीकृति पर वह (प्रद्युम्न) अपना धनुष खींच लेता है 263
9. (248) प्रद्युम्न, कृष्ण के धनुष को छिन्न-भिन्न कर उन्हें ललकारता है। कृष्ण भी पुनः प्रद्युम्न पर आक्रमण करते हैं 265
10. (249) कृष्ण ने आग्नेयास्त्र छोड़ा तब प्रद्युम्न ने भी उसके विरुद्ध तैयारी की
11. (250) प्रद्युम्न ने वारुणास्त्र छोड़ा, उसके विरुद्ध कृष्ण ने अपना पवनास्त्र छोड़ा 266
12. (251) माधव ने सहस्राक्ष बाण छोड़ा, उसके उत्तर में प्रद्युम्न ने मोहनास्त्र एवं दिव्यास्त्र छोड़े। उनके भी विफल होने पर कृष्ण ने चर्म-रत्न धारण कर कृपाण से युद्ध किया 267 269
13. (252) कृष्ण का क्रोधावेग देखकर नारद चिन्तित हो उठते हैं और नभोयान से उतर कर पिता-पुत्र का परिचय कराते हैं 270
14. (253) पिता-पुत्र मिलाप। प्रद्युम्न अपनी दिव्य-विद्या से कृष्ण के मृत बन्धु-बान्धवों को जीवित कर कृतार्थ कर देता है 271
15. (254) कृष्ण के आदेश से प्रद्युम्न के स्वागत के लिए सारा नगर सजाया गया। कृष्ण, रूपिणी, उदधिकुमारी आदि सभी मिलकर बड़े प्रसन्न होते हैं 273
16. (255) प्रद्युम्न एवं रूपिणी सहित कृष्ण गाजे-बाजे के साथ नगर में प्रवेश करते हैं 274
17. (256) नागरिक जनों द्वारा कृष्ण, रूपिणी एवं प्रद्युम्न की प्रशंसा तथा प्रद्युम्न का युवराज पट्टाभिषेक 275

चौदहवीं सन्धि

1. (257) प्रद्युम्न का यश सुनकर कनकमाला अपने पति के साथ उसे देखने पहुँची। कृष्ण एवं रूपिणी ने उनका बड़ा सम्मान किया 278
2. (258) प्रद्युम्न का विद्याधर-पुत्री रति के साथ विवाह
3. (259) वसुदेव, मधुमथन एवं बलदेव आदि की मध्यस्थता से रूपिणी एवं सत्यभामा का वैर-भाव दूर हो जाता है 279 280

4. (260) प्रद्युम्न के विवाह हेतु विशिष्ट मण्डप का निर्माण किया गया 281

5. (261) प्रद्युम्न का 500 कन्याओं के साथ विवाह कार्य आरम्भ। इस अवसर पर लगभग 31 देशों के नरेश उपस्थित हुए 282

6. (262) प्रद्युम्न का वैवाहिक-कार्य प्रारम्भ (विवाह-विधि) 283

7. (263) प्रद्युम्न के वैवाहिक कार्यक्रम 284

8. (264) सत्यभामा प्रद्युम्न-विवाह से पराभव अनुभव कर अपने पुत्र भानु का विवाह रत्नचूल की विद्याधर-पुत्री स्वयंप्रभा से कर देती है 285

9. (265) प्रद्युम्न भोगैश्वर्य का जीवन व्यतीत करने लगता है। सुरेश्वर कैटभ पुण्डरीकणी नगरी में विराजमान सीमन्धर स्वामी के समवशरण में पहुँच कर प्रवचन सुनता है 286

10. (266) सीमन्धर स्वामी द्वारा मधु एवं कैटभ के पूर्वभव वृत्तान्त कथन 287

11. (267) अच्युत देव एक मणिमय हार कृष्ण को भेंट करता है 289

12. (268) जाम्बवती को कामरूप अँगूठी देकर प्रद्युम्न उसे सत्यभामा के रूप के समान बना देता है 290

13. (269) कृष्ण ऊर्जयन्तगिरि पर मुद्रिका के प्रभाव से सत्यभामा दिखाई देने वाली जाम्बवती को देव-प्रदत्त हार पहिना देते हैं 291

14. (270) प्रपंच का रहस्य खुलने पर नारायण-कृष्ण आश्चर्यचकित हो उठते हैं। सत्यभामा के साथ वह अपने घर वापिस लौट आते हैं 292

15. (271) जाम्बवती का पुत्र शम्बुकुमार, सत्यभामा के पुत्र सुभानकुमार को द्यूत-विधि में बुरी तरह पराजित कर देता है 293

16. (272) मुर्गे की लड़ाई में पराजित कर शम्बु, सुभानु के सुगन्धित द्रव्य को भी अपने विशिष्ट सुगन्धित द्रव्य से नष्ट कर देता है 294

17. (273) शम्बुकुमार दिव्य-वस्त्रों की प्रतियोगिता में भी सुभानु को पराजित कर देता है 296

18. (274) घुड़सवारी एवं सैन्य-प्रदर्शन में भी शम्बु, सुभानु को पराजित कर देता है 297

19. (275) पुत्र सुभानु की पराजय से निराश होकर सत्यभामा उसका मनोबल बढ़ाने के लिए दूसरा उपाय खोजती है 298

20. (276) अनुन्धरी एवं सुभानु का पाणिसंस्कार 299

21. (277) राजा रूपकुमार अपनी बहिन रूपिणी द्वारा प्रेषित विवाह-प्रस्ताव को ठुकरा देता है 300

22. (278) माता-रूपिणी के अपमान से क्रोधित होकर प्रद्युम्न एवं शम्बु डोम का रूप धारण कर कुण्डिनपुर जाते हैं और राजा रूपकुमार से उनकी पुत्रियों के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव रखते हैं 302

23. (279) असह्य अपमान के कारण डोम वेशी प्रद्युम्न अपनी विद्या के चमत्कार से कुण्डिनपुर को उजाड़ देता है 303

24. (280) विदग्ध राजा रूपकुमार एवं उसकी दोनों पुत्रियों का प्रद्युम्न एवं शम्बु द्वारा अपहरण 304

पन्द्रहवीं सन्धि

1. (281) कृष्ण से क्षमा-याचना कर रूपकुमार अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह प्रद्युम्न एवं शम्बू के साथ कर देता है 306
2. (282) राजा रूपकुमार प्रसन्नचित्त होकर वापिस लौट जाता है। प्रद्युम्न अपने विमान से सदल-बल क्रीड़ा हेतु निकलता है 307
3. (283) कामदेव प्रद्युम्न की वसन्त एवं ग्रीष्म-कालीन क्रीड़ाएँ, वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु वर्णन 308
4. (284) प्रद्युम्न की शरद एवं हेमन्त ऋतु कालीन विविध-क्रीड़ाएँ 309
5. (285) फाल्गुन मास के अठाई-पर्व के आते ही प्रद्युम्न में धर्म-प्रवृत्ति जागृत होती है और वह कैलाश-पर्वत के जिनगृहों की वन्दना हेतु वहाँ पहुँचता है 310
6. (286) प्रद्युम्न कैलाश-पर्वत पर चतुर्विंशति जिनेन्द्रों की स्तुति करता है 312
7. (287) कैलाश-पर्वत पर स्थित चौबीसी मन्दिर में प्रद्युम्न द्वारा दश दिक्पालों का स्मरण एवं जिनेन्द्र का अभिषेक तथा पूजन 314
8. (288) सुगन्धि, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल एवं शालि द्रव्यों द्वारा पूजा 316
9. (289) नेमिकुमार को संसार से वैराग्य हो जाता है 317
10. (290) चतुर्विध ज्ञानधारी नेमिप्रभु द्वारावती के राजा वरदत्त के यहाँ जाकर आहार ग्रहण करते हैं 318
11. (291) नेमिप्रभु को कैवल्य प्राप्ति एवं धनद द्वारा समवशरण की रचना 319
12. (292) कृष्ण नेमिप्रभु के समवशरण में जाकर उनका धर्म-प्रवचन सुनते हैं 320
13. (293) नेमिप्रभु का संघ सहित विहार। उनके आगे-आगे धर्म-चक्र चलता था 321
14. (294) वनपाल द्वारा सूचना पाते ही कृष्ण सदल-बल रैवतगिरि पर नेमिप्रभु के दर्शनार्थ चल पड़े 323
15. (295) कृष्ण द्वारा स्तुति। नेमिप्रभु का प्रवचन-जीव-स्वरूप 324
16. (296) बौद्ध, सांख्य एवं मीमांसकों के जीव-स्वरूप का खण्डन 325
17. (297) जीव-स्वरूप एवं प्रकार-वर्णन 327
18. (298) तत्त्व-वर्णन एवं पूर्वभवावलि वर्णन 328
19. (299) द्वारिका-विनाश सम्बन्धी भविष्यवाणी तथा प्रद्युम्न का वैराग्य 330
20. (300) प्रद्युम्न नेमिप्रभु से दीक्षा ले लेता है 331
21. (301) शम्बु, अनिरुद्ध, भानु, सुभानु के साथ-साथ सत्यभामा एवं रूपिणी आदि भी अपनी बहुओं के साथ दीक्षित हो जाती है 332
22. (302) दीक्षा के बाद अपने संघ सहित वह प्रद्युम्न द्वारावती पहुँचा। 334
23. (303) प्रद्युम्न को ज्ञानत्रय की प्राप्ति 335
24. (304) घोर तपश्चरण कर प्रद्युम्न ने कर्म प्रकृतियों को नष्ट कर दिया 337
25. (305) प्रद्युम्न को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इन्द्र ने भाव विभोर होकर उनकी स्तुति की 339

26. (306) कैवल्य--प्राप्ति के बाद प्रद्युम्न की अवस्था 340
27. (307) प्रद्युम्न सिद्धगति को प्राप्त हो गया 342
28. (308) प्रद्युम्न के साथ भानु, शम्बु एवं अनिरुद्ध को मोक्ष-प्राप्ति 343
अन्त्य-प्रशस्ति अ. प्रति एवं प्रतिलिपिकार प्रशस्ति 345
शब्दानुक्रमणिका 350
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 373
परिशिष्ट

महाकइ सिंह विरइउ पज्जुण्णचरिउ

पढमी संधी

(1)

खम-दम-जम-णिलयहो तिहुअण-तिलयहो वियलिय-कम्मकलंकहो।
थुइ करमि संसत्तिए[1] अइणिरु भत्तिए हरिकुल-गयण-ससंकहो।। छ।।
पणवेप्पिणु [2]णेमिजिणेसरहो भव्वयण-कमल-सर-णेसरहो।
भवतरु-उम्मूलण-वारणहो कुसुमसर-पसर विणिवारणहो।
कम्मट्ठ-विवक्ख णिहंजणहो मय-घण पवहंत पहंजणहो।
भुवणत्तय पयडिय सासणहो छब्भेय-जीव आसासणहो।
णिरवेक्खिणिमोह-णिरंजणहो सिव-सिरि-पुरंधि-मणरंजणहो।
पर-समय भणिय णय-सय महहो कम-कमल-जुयल णय-सय-महहो।
महिसेसि पदंसिय सुप्पहहो मरगय-मणि-गण-कर-सुप्पहहो।
माणावमाण-सम-भावणहो अणवरय णमंसिण भावणहो।
भयवंतहो संतहो पावणहो सासय-सुह-संपय-पावणहो।

प्रद्युम्नचरित

पहली सन्धि

(1)

ऊर्जयन्त-गिरि से सिद्धि को प्राप्त नेमि-जिनेश्वर की स्तुति

उत्तम क्षमा, दम (संयम) एवं यम-नियम के निलय स्वरूप, त्रिभुवन के लिए तिलक के समान, कर्म-कलंक से रहित तथा हरि-कुल-गगन के लिए शशांक के समान श्री नेमि-जिनेश्वर की अत्यन्त भक्ति एवं यथाशक्ति स्तुति करता हूँ।। छ।।

भव्यजन रूपी कमल-सर के लिए सूर्य स्वरूप, भवतरु (संसार रूपी वृक्ष) के उन्मूलन के लिए वारण (गज) के समान, कुसुम-शर (कामदेव) के प्रसार को रोकने में समर्थ, (मोक्ष-मार्ग के) विपक्षी ज्ञानावरणादिक अष्टकर्मों के नाशक, अष्टमद रूपी मेघों को उड़ा देने के लिए प्रभंजन के समान, भुवनत्रय में अपने शासन को प्रकट करने वाले, षट्कायिक जीवों को आश्वासन (रक्षण) देने वाले तथा निरपेक्ष, निर्मोह एवं निरंजन, शिवश्री रूपी पुरन्धी (कुलवधू) का मनोरंजन करने वाले तथा जो पर-समय (अन्य ऐकान्तिक मतों में कथित शताधिक कुनयों) का मन्थन करने वाले हैं, जिनके चरण-कमल-युगल शतमख (इन्द्र) द्वारा नमस्कृत हैं, जो महीपतियों के सुमार्ग-दर्शक, मरकत-मणिसमूह की प्रभा के समान प्रभा वाले, मानापमान में सम-विचार वाले तथा भवनवासी देवों द्वारा अनवरत प्रणम्य हैं, जो सन्त, पावन तथा शाश्वत सुख-समृद्धि को प्राप्त हैं और—

---

(1) 1. अ 'सु'। 2. अ 'ने'।

घत्ता— भुवणत्तय-सारहो णिज्जय-मारहो अवहेरिय घर-दंदहो।
उज्जिलगिरि-सिद्धहो णाण-समिद्धहो दय-वेल्लिहि कल-कंदहो।। 1।।

(2)

गय दुरिय रिणं तइलोयइणं।
भवभय-हरणं णिज्जिय करणं।
सुहफल कुरुहं वंदिमि अरुहं।
पुणु सद्दमई कलहंस-गई।
वरवण्ण-पया मणि धरिवि [1]मया।
पय-पाणि-मुहा तोसिय विबुहा।
सग्गग्गि णिया बहु [2]संगिणिया।
पुव्वाहरणा सुविसुद्ध-मणा।
सुयवर-वयणी णय-गुण-णयणी।
कइयण-जणणी तंदु वि हणणी।
मेहा-जणणी सुह-सय करणी।
घर-पुर-पवरे गामे णयरे।

घत्ता— जो भुवनत्रय में सारभूत, कामदेव को निर्जित करने वाले, आत्मद्वन्द्व को अपहृत करने वाले हैं तथा जो ज्ञान-समृद्ध, दया-बेल के कलकन्द स्वरूप हैं, उन ऊर्जयन्तगिरि से सिद्धि को प्राप्त भगवान् नेमि-जिनेश्वर को मैं (कवि) प्रणाम करता हूँ।। 1।।

(2)
कवि को श्वेतवसना सरस्वती ने स्वप्न में दर्शन दिया

जिनका दुरित रूपी ऋण चुक गया है, जो त्रैलोक्यपति हैं, जो भवभय का हरण करने वाले हैं, जिन्होंने कर्मेन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है, तथा जो शुभ-फल की भूमि में उत्पन्न हुए हैं, उन अरहन्तों की मैं वन्दना करता हूँ।

पुन: कलहंस गामिनि (निश्चयनय से ज्ञानी आत्मा में जिसकी गति है तथा व्यवहारनय से कलहंस पर जिसकी गति है वह) श्रेष्ठ वर्ण एवं पदों वाली (निश्चयनय से उत्तम वर्णन करने वाले पद हैं जिसमें तथा व्यवहारनय से उत्तम निर्दोष (व्याकरणाबद्ध) वर्ण एवं पद जिसमें हैं) उस सरस्वती को भी मन में धारण करता हूँ, जिसके विबुधों को सम्पुष्ट करने वाले पद ही हाथ एवं मुख हैं, जो जीव को स्वर्ग (मोक्ष) में ले जाने वाली है, जो अनेक विध प्रतिष्ठा प्राप्त है, चौदह विध पूर्व साहित्य ही जिसका आभरण है, जो विशुद्ध मन वाली है और श्रेष्ठ श्रुतों का वर्णन करने वाली है तथा अपने नय-गुण रूपी नेत्रों से सभी को आनन्दित करने वाली है। जो कविजनों की माता है, जो तन्द्रा का हनन करने वाली है, जो मेधा (बुद्धि) की जननी है, सैकड़ों सुखों को उत्पन्न करने वाली है, उत्तम घर, पुर,

(2) 1. [illegible] 2. [illegible]

णिव-विउस सहे सुह-आणवहे।
सरसइ सुसरा महु होउ वरा
इम बज्जरई छुडु सिद्धकई।
हय-चोर भए णिसि भरि[3]वि कए।
पहरद्धि ठिए चिंततु हिए।

घत्ता— जा सुत्तउ अच्छइं ता सहि पेच्छइं णारि एक्क मणि[4]हारणिया।
सियवच्छ णियच्छिय कंजयहच्छिय अक्ख-सुत्त सुया[5] धारिणिया।। 2।।

(3)

सा चवेइ सिव[1]णंति लक्खणे काइ[2] सिद्ध चिंतयहि णियमणे।
तसु[3]णेवि कइ सिद्धु जंपए मज्झ माइ णिरु हियउ कंपए।
कव्व-बुद्धि चिंततु लज्जिओ तक्क-छंद-लक्खण विवज्जिओ।
णवि समासु ण विहत्ति-कारउ संधि-सुत्त गंथहं असारउ।
कव्वु को वि ण कयावि दिट्ठउ महु णिहंडु[4] केणवि ण सिट्ठउ।
[5]तेण वहिणि चिंततु अच्छमि खुज्जहो विसाल हलु वंच्छमि।
अंधु होवि णवणट्ठ पिच्छिरो गेय सुणणि वहिरो वि इच्छिरो।

ग्राम एवं नगर में, नृप एवं विद्वानों की सभा में शुभ आज्ञा को धारण करने वाले कवियों में सरस एवं सुस्वरों का संचार करने वाली हे देवि सरस्वती, मुझे वरदान दो।

इस प्रकार प्रार्थना कर संयमशील वह सिद्ध कवि रात्रि के अर्ध प्रहर के व्यतीत हो जाने पर चोरों के भए से आहत होकर चिन्तित हृदय जब बैठा था तभी उसे नींद आ गयी और—

घत्ता— जब वह सो रहा था, तभी उसने श्वेतवस्त्र धारण किये हुए, हाथों में कमल तथा अक्षसूत्रमाला धारण किये हुए एक मनोहारिणी नारी को (स्वप्न में) देखा।। 2।।

(3)

सरस्वती कवि को स्वप्न में काव्य-रचना की प्रेरणा देती है

तत्क्षण ही वह सरस्वती स्वप्न में उस कवि से बोली—हे सिद्ध, अपनेमन में क्या चिन्तन कर रहा है?' यह सुनकर कवि ने उत्तर दिया—हे माता, मेरा हृदय निरन्तर काँपता रहता है। काव्य-रचना के विषय में विचार करते हुए मेरी बुद्धि लज्जित होती है क्योंकि मैं तर्क (नाड़ी), छंद (पिंगल), लक्षण (व्याकरण), से विवर्जित (रहित) हूँ। मुझे न समास का ज्ञान है, न विभक्तिकारक ही जानता हूँ। सन्धि-सूत्रों सम्बन्धी ग्रन्थों (व्याकरण) में, मैं (सर्वथा) असार (मूर्ख) हूँ। मैंने कभी भी कोई काव्य देखा तक नहीं। मैंने निघण्टु या कोष भी किसी से नहीं सीखा। इसी कारण हे बहिन, मैं चिन्तन करता हुआ बैठा हूँ। मैं क्षुद्र होकर भी विशाल फल (तोड़ना)

---

(2) 3. अ "रे"। 4. अ "ग"। 5. अ. "च।

(3) 1. अ "मि"। 2. अ "इ। 3. ब मु"। 4. अ. "घंटु। 5. ब. ते"।

तं सुणेवि जा जय महासई णिसुणि सिद्ध जंपइ सरासई।

घत्ता— आलसु संकेल्लहि हियउ म मेल्लहि मज्झु वयणु हउं[6] दिट्ठु धरहि।
हउं मुणिवरवेसें कहमि विसेसें कव्वु किंपि तं तहु[7] करहि।। 3।।

(4)

ता मलधारि देउ मुणि-पुंगमु णं पच्चक्खु धम्मु[1] उच्च[2] समु-दमु।
माहवचंदु आसि सुपसिद्धउ जो खम-दम-जम-णियम-समिद्धउ।
तासु सीसु[(1)] तव-तेय दिवायरु वय-तव-णियम-सील रयणायरु।
तक्क-लहरि झंकोलिय परमउ वर वायरण पउर पसरिय[3] प[(2)]उ।
जासु[(3)] भुवणि दूरंतरु[4] वंकिवि ठिउ पच्छण्णु मयणु आसंकिवि।
अमयचंदु णामेण भडारउ[5] सो[(4)] विहरंतु पत्तु[(5)] बुह सारउ।
सरि-सर[(6)]-णंदणवण-संछण्णउ मढ-विहार जिण-भवण रवण्णउ।
बंभणवाडव णामें पट्ट[(7)]णु अरिणरणाह-सेण्ण-दल-वट्टणु।

चाहता हूँ। अंधा होकर भी नवीन-नवीन पदार्थ देखने की इच्छा रखता हूँ। बहिरा होकर भी गेयगीत सुनने के लिए इच्छाशील हूँ। यह सुनकर (उसके हृदय की भावना जानकर) महासती सरस्वती ने "जा तू विजयी बने" इस प्रकार आशीर्वाद देकर कहा—"हे सिद्ध कवि, तू सुन—

घत्ता— आलस को सकेल, उसे हृदय में प्रवेश मत करने दे। मेरे इन वचनों को दृष्टि में धर, मैं मुनिवर के वेश में विशेष रूप से कोई काव्य कहूँगी। तू उस काव्य की (अर्थात् उस काव्य के आधार पर ही अपने काव्य की) रचना कर।। 3।।

(4)

कवि अपने गुरु अमृतचन्द्र एवं समकालीन राजा वल्लाल तथा मण्डलपति भुल्लण का परिचय देता है

वे सुप्रसिद्ध मुनिपुंगव, मलधारी माधवचन्द्रदेव धन्य हैं, जो प्रत्यक्ष ही उत्तम शम-दम, क्षमा, इन्द्रिय-जय आदि गुणों से समृद्ध हैं उनके शिष्य जग प्रसिद्ध अमृतचन्द्र नामके भट्टारक हुए, जो अपने तप के तेज से दिवाकर (सूर्य) के समान व्रत, तप-नियम एवं शील के रत्नाकर (समुद्र), अपनी तर्क-लहरी के द्वारा परमतों को झकझोर देने वाले तथा जो निर्दोष व्याकरण में पानी की तरह फैले हुए (प्रतिष्ठित) पद वाले थे (अर्थात् तर्क, न्याय और व्याकरण के उत्तम एवं सुप्रसिद्ध ज्ञाता थे) तथा जिनकी आशंका (भय) से मानों मदन भी प्रच्छन्न हो गया था। बुधों में सारभूत मुनिपुंगव वे अमृतचन्द्र भट्टारक विहार करते हुए बंभणवाड नामके उस पट्टन में पधारे, जो नदी, सरोवर एवं नन्दनवन से व्याप्त तथा मठ, विहार और जिनभवनों से सुशोभित था। उस पट्टन का शासक अर्णोराज जैसे पराक्रमी राजा के सैन्यदल को नष्ट करने वाला, शत्रु मनुष्यों के क्षय के लिए काल (यम)

---

(3) 6. अ. ए° । 7. अ तु

(4) 1. अ वंमु । 2. अ. °उ° । 3. अ. °इ । 4. ब दूरंतु तर । 5. अ °ह ।

(4) (1) अमृतचन्द्र । (2) पानियं. (3) अमृतचन्द्रस्य । (4) अमृतचन्द्र । (5) प्राप्त । (6) ब्रम्हणवाडे नइने । (7) पट्टण ।

जो भुंजइ अरि-णर खयकालहो　　रणधोरियहु सुअहो वल्लालहो[(8)]।
जासु भिच्चु दुज्जण-मण सल्लणु　　खत्तिउ गुहिल-उत्तु[6] जहिं भुल्लणु।
तहिं संपत्तु मुणीसरु जावहिं　　भव्वलोउ आणंदिउ तावहिं।

घत्ता— णियगुण अपसंसिवि मुणिहि णमंसिवि जो लोएहिं अदुगुंछियउ।
णय-विणय समिद्धें पुणु कय सिद्धें जो जइवरु आउच्छियउ।। 4।।

(5)

अहो-अहो परमेसर बुह-पहाण　　तव-णियम-सील-संजम-णिहाण।
सुविणंतरु जो मइ कल्ल[1] दिट्ठु　　सो हउँ मणि[2]-मण्णमि अइविसट्ठु।
तुम्हागमणें जाणियउ अज्जु　　ता[3] मुणिणा जँपिउ अइ मणोज्जु।
णाणाविह कोऊहलहिं भरिउ　　तुहुं तुरिउ करहि पज्जुण्णचरिउ।
ता सिद्धु भणइ महु गरुव संक　　दुज्जणहं ण छुट्टहिं रवि-मयंक।
तहिं पुणु अम्हारिस कवण मित्त　　ण मुणहिं जि कयाइ कवित्त-वत्त।
कुडिलत्थि [4]कुडिलंगइ गमणली[5]ल　　परछिद्द-णिहालण डसणसील।

के समान बल्लाल नामका राजा था, जो रणधोरी का पुत्र था। दुर्जनों के मन को काँटे के समान चुभने वाला क्षत्रियवंशी गुहिलोत गोत्रीय भुल्लण जिसका भृत्य (माण्डलिक, सामन्त अथवा गवर्नर) था। उस पट्टन में जब अमृतचन्द्र मलधारी मुनीश्वर पहुँचे, तब वहाँ के भव्य लोग बड़े ही आनन्दित हुए।

घत्ता— अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करने वाले उन लोक पूजित मुनिराज को नय-विनय गुणों से समृद्ध उस सिद्ध कवि ने नमस्कार कर उस मति की इस प्रकार स्तुति की।। 4।।

(5)
गुरु-स्तुति तथा दुर्जन-सज्जन वर्णन

हे परमेश्वर, हे बुधप्रधान, तप-नियम-शील एवं संयम के हे निधान, आप धन्य हैं, धन्य हैं, जिन्हें मैंने स्वप्न के मध्य कल देखा था उन्हें अपने मन में मैं अति-विशिष्ट मानता हूँ। आपके आगमन से मैंने आज उस (स्वप्न के रहस्य) को समझ लिया है।" यह सुनकर उन मुनिराज ने मधुर-वाणी में कहा—"तुम तुरन्त ही नाना प्रकार के कौतुहलों (कौतुकों) से भरे हुए प्रद्युम्नचरित का प्रणयन करो।" यह सुनकर सिद्ध कवि ने कहा—"मुझे (उक्त ग्रन्थ प्रणयन में) बड़ी भारी शंका (उत्पन्न हो रही) है। जब दुर्जनों से रवि और चन्द्र भी नहीं छूटे तब उनके सम्मुख हमारी कौन मात्रा (शक्ति)?"

जो (दुर्जन) यत्किंचित् भी कवित्व की वार्ता नहीं जानते, जो कुटिल नेत्र वाले, कुल को वींग लगाने वाले, गमन करने में (आचरण में) नील (भ्रष्ट) तथा दूसरों के दोषों को देखने वाले होते हैं। डसना (काट लेना)

---

(4) 6. अ ब थु°।　　(4) (8) वल्लालहो भिच्चु भुल्लणु।

(5) 1. अ. °ल्लि। 2. अ °णे। 3. अ. सो। 4. अ. कुलहिं। 5. अ. णी°।

दुव्वयण-गरल-पूरिय-सदप्प | दुज्जीह-दुट्ठ-दुज्जण-विसप्प।
जे वयणें चउम्मुह किण्ह चित्ति | दंसणेण रुद्द अवयरिय [6]भत्ति।

घत्ता— दुज्जण-गुण-झंपिरु-दोस-पयंपिरु सुयणु सहावें सद्दमइ।
पच्छण्ण मज्झच्छहँ करमि पसच्छहँ गुणदोसहुँ जहुँ णिउणमइ।। 5।।

(6)

पुणु पंपाइय[1] देवण णंदणु | भवियण जण-मण-णयणा णंदणु।
बुहयण-जण पय-पंकय छप्पउ | भणइ सिद्धु पणविय परमप्पउ।
विउलगिरिहिं [1]जह-हयभव-कंदहो | समवसरण सिरि वीरजिणिंदहो।
णर-वर खयरामर समवाएँ | गणहरु पुंछिउ सेणिय राएँ।
मयरद्धयहो विणिज्जय-मारहो | कहहि चरिउ पज्जुण्ण कुमारहो।
अच्छि दीउ दीवंतर-राणउँ | जंबूतरु अहिणाण पहाणउँ।
तासु मज्झि गिरि मेरु विसालउ | णं णरवइ हरि करि परिपालऊ।

जिनका स्वभाव है और जो दुर्वचन रूपी विष से भरे हुए दर्प युक्त दुष्ट जिह्वा वाले, निर्मम और दुर्जन रूपी सर्प के समान होते हैं, जो दुर्जन वचनों में चतुर्मुख (मुंहफट) कलुषित हृदय वाले, देखने में रौद्र और जो केवल ऊपर-ऊपर से भक्ति करने वाले होते हैं—

घत्ता— वे दुर्जन गुणों को तो झाँपते हैं और दोषों को प्रकट करते हैं, जब कि सुजन स्वभाव से स्वच्छ मति वाले होते हैं। फिर भी गुण-दोषों में यथा निपुणमति मैं प्रच्छन्न-मध्यस्थ होकर प्रशस्तकाव्य का ही प्रणयन करूँगा।। 5।।

(6)

कवि अपना संक्षिप्त परिचय देकर प्रद्युम्न-चरित-काव्यारम्भ के प्रसंग में राजगृह एवं अन्य भारतीय भूगोल का वर्णन करता है

पम्पा माता और देवण का पुत्र, भव्य जनों के मन और नेत्रों को आनन्द देने वाला, तथा बुध जनों के चरण कमलों का भ्रमर यह सिद्ध कवि परमात्मा को प्रणाम कर प्रद्युम्नचरित का वर्णन (प्रारम्भ) करता है—

विपुलगिरि पर (राजगृह स्थित विपुलाचल पर) जहाँ कि भव के कंद (मूल मोहनीय कर्म) को नाश करने वाले श्री वीर जिनेन्द्र का समवशरण लगा था तथा जिसमें मनुष्य, विद्याधर और देवों का समुदाय (एकत्रित) था। वहाँ पर राजा श्रेणिक ने गणधर से पूछा (और निवेदन किया) — कि वे काम के विजेता मकरध्वज (कामदेव पद के धारी) — प्रद्युम्नकुमार का चरित्र कहें।

(तब गौतम-गणधर ने उत्तर में कहा) जम्बू-वृक्ष के अभिज्ञान (चिह्न) से प्रधान तथा अन्य द्वीपों में श्रेष्ठ राजा के समान जम्बूद्वीप नामक एक द्वीप है, जिसके मध्य में विशाल सुमेरु पर्वत स्थित है। वह ऐसा प्रतीत होता है मानों सिंह और हाथी का परिपालक कोई राजा ही हो। वह सुमेरु पर्वत विस्तार में प्रचुर है। उसके दक्षिण

---

(5) 6. अ. पं'।

(6) 1. अ. जि'।

(6) (1) ज़मिसादेवी।

अइवित्थरेण पउरु तहो दाहिणि भरहखेत्तु कयउवहिय पाहिणि।
उलीज[(2)] गब्भाइँ-जम्म कल्लाणइँ जिण-णिक्खवण-णाण-णिव्वाणइँ।
अणिमिस णाहहो आसणु वेविरु[(3)] चउणिकाय गिव्वाणहिँ सेविरु।
घत्ता— जण-धण-कण रिद्धउ जगिसुपसिद्धउ तहिँ सोरट्ठु णाम विसउ[2]।
दक्खारस पाणहिँ मंडवथाणहिँ जहि[(4)] पहियहँ छिज्जइ तिसउ।। 6।।

(7)

जहिँ सरवरि-सरवरि कंदोट्टइँ परिमल व लहंद अइ सुविसट्टइँ।
अलि चुंवियइँ सरल-दल-णयणइँ णं कामवुहिँ विलासिणि वयणइँ।
कइसेवियइँ सुणीलारामइँ[(1)] वलसि[1]ण्णहो सारिच्छइँ गामइँ।
कण-भरय-णमियाइँ अइसघणइँ जहिँ सकमलइं कमलसालि वणइँ[2]
सुय-पेहुण णिहाइ[(2)] सुसि[3]णिद्धइँ जहिँ तिणाइँ वहु भंग समिद्धइँ।
पंडुर[(3)] पंडुराइँ[(4)] सुकइत्तइँ गोहणाइँ णं णहि णक्खत्तइँ।[4]

में समुद्र से प्रदक्षिणा किया हुआ (घिरा हुआ) भरत नामका क्षेत्र है।

जहाँ जिनेन्द्र के गर्भ, जन्म, निष्क्रमण, ज्ञान एवं निर्वाण-कल्याणक सम्पन्न किये जाते हैं। जहाँ (तीर्थंकर के जन्म से) अनिमिष—देव के नाथ इन्द्र के आसन कम्पित होते हैं और जो चारों निकाय के गीर्वाणों (देवों) से (जो भरतक्षेत्र) सेवित है।

घत्ता— जन, धन और कण (अन्न) से ऋद्ध, जगत में सुप्रसिद्ध वहाँ सोरठ नामका एक देश है। द्राक्षा (अंगूर) रस पीने के मण्डपस्थानों से जहाँ पथिकों की तृषा का क्षय किया जाता है।। 6।।

(7)
सोरठ (सौराष्ट्र) देश का वर्णन

जहाँ सरोवर-सरोवर में कमल कन्द (समूह सुशोभित) हैं, जिनसे निःसृत परिमल सर्वत्र प्रवहमान रहती है। जिन कमलों का अलि (गण) चुम्बन करते रहते हैं, जिनके पत्र रूपी नेत्र सरल हैं, वे (कमल) ऐसे प्रतीत होते हैं मानों कामदेव की रति-विलासिनी के वदन (मुख) ही हों। उस देश में राम की सेना के समान कपियों (वानरों) द्वारा सेवित सुनील (हरित) वर्ण की वाटिकाएँ हैं, जिनका कविगण भी सेवन किया करते हैं। जिस देश में बलदेव की सेना के समान ग्राम हैं (अर्थात् जिन ग्रामों में वीर पराक्रमी पुरुष निवास करते हैं)। जिस देश में कमल पुष्पों के साथ-साथ धान्य कणों के भार से झुके हुए कलम नामकी शालि (धान) के पौधों के अत्यन्त सघन वन (खेत) हैं। जिस देश में सुग्गे के पंखों के समान अत्यन्त स्निग्ध हरी-हरी घास के खेत हैं, जिन के बार-बार तोड़े (खोटे) जाने पर भी समृद्धि कम नहीं होती। जिस देश में गोधन (गाएँ) पाण्डुर-पाण्डुर वर्ण की हैं और उसी प्रकार प्रतिभासित होती हैं जिस प्रकार आकाश में नक्षत्र। जिस देश में पत्रों से अलंकृत तथा

---

(6) 2. ब दि°।

(7) 1. अ सै°। 2. ब° इँ°। 3. ब स°। 4. अ° ए।

(6) (2) भरितंसेविरु। (3) कम्पमानु। (4) देशे।

(7) (1) नीलवर्ग : नीलविद्या राम सेव्यवत्। (2) शुकपक्ष सदृशः। (3) शुभ्र शुभ्राणि। (4) प्रधानानि।

उच्छुवणइँ पत्तालंकरियइं ण्उं णिवउलइँ [5]पउरि रस-भरियइँ।
जहिँ सामलियउ मंथर गमणिउँ णेहल्लिउ महिसिउ वि सु-रमणिउँ।[(5)]
जहिँ गोंदिउ गोरसु परिऊसें मंथहिँ णिउ णवय[6]ण णिग्घासें।
जहिँ जल पाएण[7] मिसें तिस रहियहिँ पवपालिणि कुल्लावित्र पहियहिँ।
घत्ता— पय सक्कर-[8]भारहिँ विविहपयारहिँ थामि[9]-थामि[10] भुंजिज्जइँ।
जहिँ तहिँ तहो देसहो अइ सुविसेसहो को[11] कोण[12] भुवणि रंजिज्जइ।। 7।।

(8)

गयणमलहो णिवडइ कीरपंति जहिँ सहइँ साल-कणिसइँ चुणंति।
जह पोमराय मरगयइ[1] मिलिय हारावलिणं णह सिरिह [2]घुलिय।
वुक्कारंतिहिँ गहवइ सु आहि वेल्लहल-सरल-कोमल-[3]सुयाहि।
घण-थणहिँ सु-विहुल-णियंबिणीए जहिँ जंपिउ खेत्त-कुडुंबिणीए।
हलि पेक्खु-पेक्खु खज्जंति सास करताल[(1)] रहियणो दुहिँ हयास।
कणइल्लवि तहे पडिवयणु दिंति तं सुणिवि पहिय जहिँ पउ ण दिंति।

रसपूरित इक्षु के वन (खेत) हैं। वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानों प्रचुर आनन्द रस से भरे हुए राजकुल ही हैं। जिस देश में सुरमणीक श्यामल वर्णवाली मन्द गमन करती स्नेहिल भैंसें हैं। वे ऐसी प्रतीत होती हैं मानों रमणीय हथिनी ही हों। जिस देश में गोंदियाँ (ग्वालिनें) प्रत्यूष काल में निपुण मधुर वचनों के निर्घोषों के साथ (अर्थात् मधुर गीत गाती हुई) गोरस (दही) को मथती हैं। जिस देश में जल प्रपा (प्याऊ) के बहाने से विशेष स्वरों के साथ पय-पालिनी पथिकों को अपने निकट बुलाती हैं)।

घत्ता— जिस देश में ठाम-ठाम में नाना प्रकार के जल, दूध, शक्कर के भारों से पथिकों को भोजन कराये जाते हैं। भुवन में ऐसा कौन होगा जो सुविशेष रूप से उस देश से राग नहीं करेगा?।। 7।।

(8)

सोरठ (सौराष्ट्र) देश की विशेषता

जिस देश में आकाश मार्ग से खेतों पर कीर पंक्ति उड़कर आती है, जो शस्य कनिशों (बालों) को चुनती हुई सुशोभित होती है। वह इस प्रकार होती है मानों पद्मरागमणि की हारावलि नभशिखर से घुल-मिल रही हो। जहाँ गृहपति (किसान) लता के समान सरल एवं सुकोमल भुजाओं वाली पुत्रियों को पुकारा करते हैं, जहाँ कृषकगण पीन-स्तनी एवं पृथुल नितम्बवाली क्षेत्र की कुटुम्बिनी (मालकिन) से कहते रहते हैं—हले, हे-हे, देखो-देखो, शस्य (धान्य) खाये जा रहे हैं। अरी हताश, करताल—(हाथ की ध्वनि) रहित, तू दुखी नहीं है? (अर्थात् धान्य के नष्ट होने का तुझे जरा भी दुःख नहीं है?) तब कण तोड़ने वाली नारियाँ उन्हें जो प्रतिवचन (प्रत्युत्तर) देती हैं, उसे सुन कर पथिक जन जहाँ खेत में पद नहीं देते (अर्थात् वे नारियाँ कीर पंक्ति को

---

(7) 5. अ 'व'। 6. अ. 'ध'। 7. ब. 'ए'। 8. अ. 'स'।
9. अ. ठामे। 10. ठामे; 11. अ. कु। 12. अ. कृण।

(7) (5) रमणिका।

(8) 1. अ. 'हे'। 2. अ. 'ग'। 3. अ. 'भु'।

(8) (1) करतलनाद रहित।

जहिं णंदण-वण-फल [4]भर णमंति कोइल-कुल वह-वह-वह भणंति।
पवहंति जच्छ णिज्झर-जलाइँ मयजूहहिं जहिं सेविय-थलाइँ।
घत्ता— जहिं सुपिहुल[(2)] रमणिउँ मंथर गमणिउँ कय भुअंग सहसंगिणिउँ।
सच्छंबर[(3)] धारिउ जण-मण-हारिउ पण्णत्तिय वँ तरंगिणिउँ।। 8।।

(9)

मयसंगु[(1)] करिणि ज हिं पे[1]यकंदु[2(2)] खरदंडु सरोरुह ससि-सर वंदु[3]।
जहिं कव्व-बंधु विग्गहु सरीरु धम्माणुरत्तु जणु पावभीरु।
थट्टत्तणु मलणु वि मणहराहँ वरतरुणिहिं घण-थण[4] हराहँ।
हयहिंसणु रायणिं हेलणेसु खलु विगम[(3)] णेहु तिल-पीलणेसु।
मज्झण्णयालि गुण-गणहराहँ परयार-गमणु जहिं मुणिवराहँ।

सावधानी पूर्वक भगा देती हैं और गृहपति को उन्हें भगाने के लिए दौड़ना नहीं पड़ता)। जिस देश में नन्दनवन के वृक्ष फलों के भार से झुके रहते हैं और जहाँ वृक्षों पर कोकिल-कुल वाह-वाह-वाह (अर्थात् कुहू-कुहू) करती रहती हैं। जिस देश में झरनों के जल निरन्तर बहते रहते हैं और जहाँ के स्थल मृगयूथों से सेवित हैं।

घत्ता— जिस देश की नदियाँ पण्यस्त्री के समान हैं। नदियाँ और वेश्याएँ विस्तृत एवं रमणीय हैं। दोनों ही मन्थर गमन करने वाली हैं। वेश्याएँ तो भुजंग-गुण्डों के साथ संगम करने वाली हैं। नदियाँ भी सर्पों के साथ संग करने वाली हैं। वेश्याएँ स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाली हैं। नदियाँ भी स्वच्छ जल को धारण करती हैं। इस प्रकार दोनों ही मनुष्यों के मन को हरने वाली हैं।। 8।।

(9)

सोरठ देश की सुरम्यता और द्वारावती नगरी का वर्णन

जहाँ मदोन्मत्त हाथी-हथिनियों के साथ प्रेमलीलाएँ किया करते हैं। जहाँ चन्द्रखण्ड के समान सरोवरों में कमल समूह उगे हुए हैं। जहाँ काव्य बन्ध में तो विग्रह (टेढ़ा) शरीर (आकार) होता है। किन्तु वहाँ कोई भी व्यक्ति वक्रशरीर वाला (अथवा मायाचारी) नहीं होता। वहाँ के जन धर्मानुरागी तो हैं किन्तु विषयानुरागी नहीं। उस देश के लोग पाप से तो डरते हैं, किन्तु दुष्टों से नहीं। उस देश में पीन-पयोधर वाली मनोहर उत्तम तरुणियों के स्तनों में तो कठोरता तथा मलिनपना (मासिक धर्म) था किन्तु अन्य व्यक्तियों में कठोरता एवं कलुषता नहीं थी। राजा की घुड़साल में घोड़ों का हींसना तो था किन्तु अन्य व्यक्तियों में हिंसा का भाव नहीं था। तिलीपन-यन्त्रों (कोल्हू) में स्नेह (तिल) रहित खलपना तो था, अन्यत्र स्नेह (प्रेम) रहित खलपना (दुष्टपना) नहीं था। जहाँ मध्याह्न काल में राह (मार्ग) तो गुणी गणों से दूर रहते थे (अर्थात् दोपहर में मार्ग में कोई नहीं चलता था, शून्य पड़े रहते थे) किन्तु अन्य कोई व्यक्ति गुणिगणों से दूर नहीं रहता था। जिस देश में मुनिवरों का तो परदार गमन (अर्थात् आहार के लिए दूसरों के गृहद्वार में गमन) होता था किन्तु अन्य कोई जन परदारगमन करने वाला नहीं था। जहाँ प्रिय का विरह केवल विधवाओं में ही था अन्यत्र कहीं प्रियविरह—इष्ट

(8) 4. अ °रे।

(9) 1. अ. वे°। 2. अ °डु। 3. अ. °डु। 4. ब. °णिगाउ।

(8) (2) विस्तीर्णः। (3) पानीयं स्वच्छ।

(9) (1) मंद संगि गजे। (2) वेद निषदे। (3) पानीन दुर्जन ते रहित न तुल्यिवंद्यः।

पिय विरहु विजहिँ कडुयउ[5] कसाउ कुडिलु विज्जवइहिँ कुंतल-कलाउ।
तहिँ देस-णयरि धण-कण-समिद्ध बारमइ णाम तिहुव[6]णि पसिद्ध।
अइमणहर भणिवि [7]कियायरेहिँ पर [8]अंचिय जारय णायरेहिँ।

घत्ता— पुर णयरहँ सारिय हरिहिँ पियारिय बारह-जोयण वित्थरिया।
कंचण-आहरणहिँ भूसिय-रयणहिँ णं अमराउरि अवयरिया।। 9।।

(10)

जहिँ थामि-थामि णंदणवणाइँ साहार-पउर सुरतरु घणाइँ।
किं-सउहयलइँ[(1)] अइसुंदराइँ णं-णं गिव्वाणहँ[(2)] मंदिराइँ।।
जहिँ हाव-भाव-रस कोच्छराउ पणयं[1]गणाउ[(3)] णं अच्छराउ।
जहिँ थामि[2]-थामि[3]-हिलि-हिलिहि तुरय विरयंति[(4)] मत्त गज्जंत दुरय।
जहिँ आवणि[(5)]-आवणि रमइ घणउ पडिपट्टणेत्त वहु रयण-कणउ।
कप्पूर [4]पवर मयणाहि वहल[5] चउहट्टय कप्पंघिव [6]सुसहल[(6)]।
पासाय-सिहर मरु-हय-धएहिँ णं छिवइ सग्गु उब्भिय भुएहिँ।

वियोग नहीं था। यदि कमी थी तो केवल कषायों में ही अन्यत्र कहीं भी कमी नहीं थी। जहाँ कुन्तल-कलापों में (केशों में) तो कुटिलता थी किन्तु अन्यत्र कोई व्यक्ति में कुटिलता नहीं थी। ऐसे उस सौराष्ट्र देश में धनकण (धान्य) से समृद्ध एवं त्रिभुवन में प्रसिद्ध द्वारावती (द्वारिका) नामकी एक नगरी थी जो आदरपूर्वक अत्यन्त मनोहर कही गयी है तथा जो श्रेष्ठ नागरिकों से युक्त है।

घत्ता— वह द्वारावती समस्त पुर-नगरों में श्रेष्ठ एवं सारभूत तथा हरि (कृष्ण) की प्यारी थी। विस्तार में वह बारह योजन तथा सुवर्णाभरणों एवं रत्नों से भूषित थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों स्वर्गपुरी ही नीचे उतर आयी हो।।। 9।।

(10)

द्वारावती नगरी का वर्णन

जिस द्वारावती नगरी में थाम-थाम (स्थान-स्थान) पर नन्दनवन हैं, जिनमें आहार से प्रचुर कल्पवृक्ष के समान सघन वृक्ष हैं। जहाँ अतिसुन्दर सौध-तल (गृह) निर्मित थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों देवों के मन्दिर (विमान) ही हैं। जहाँ की पण्यांगनाएँ हाव-भाव रस में अत्यन्त कुशल थीं। वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानों देवांगनाएँ अथवा अप्सराएँ ही हों। जहाँ स्थान-स्थान पर घोड़े हिनहिनाते रहते हैं। जहाँ मत्त द्विरद गज स्थान-स्थान पर गर्जना किया करते हैं। जहाँ आपण-आपण (हाट-बजार) में प्रतिपट्टनामक वस्त्र, रेशमी वस्त्र, विविध प्रकार के रत्न, सोना आदि एवं कर्पूर मृगनाभि (कस्तूरी) बहुल मात्रा में (भरे पड़े रहते) हैं। प्रत्येक चौराहे पर कल्पवृक्षों के समान फल वाले वृक्ष लगे हैं। जहाँ प्रासादों के शिखरों की वायु से आहत ध्वजाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानों वह द्वारावती उन ध्वजाओं रूपी अपने हाथों से स्वर्ग का स्पर्श ही कर रही हो। उत्तुंग प्राकारों

(9) 5. अ. °व°। 6. अ. °व। 7. अ. क°। 8. अ. यं°।
(10) 1. अ. °यं° नहीं है। 2. अ. °मि। 3. अ. °मि। 4. अ. °व। 5. अ. °ल°। 6. ब. स°।

(10) (1) सौधतल। (2) देवस्थाना। (3) वेश्यासमूह। (4) कुर्वन्ति। (5) चतुष्पथे-चतुष्पथे हट्टस्थाने। (6) फलवेलः।

पायारतुंग चउ-गोउरेहिं जास लहिय गयणंमि[7] सुरेहिं।
सा णयरि-णिंयविणि चित्तेधरइ तिणउ अहिरत्ति दिणुसेव करइ।
सो भुल्लउ पर-परतियहिं केम[8] गहव घरिणिहिं दहवयणु जेम।

घत्ता— पसरि कल्लोलहिं भुयहिं विसालहिं णं णियंवु[9] विप्फालइ[10]।
खणि संकि विफिट्टइ पुणु वि पयट्टइ मूढउ अप्पउ खोलइ[11]।। 10।।

(11)

पयणिहि रयणट्ठु सलोणु जइवि अहलित्तु मज्झु तह[(1)] तणउ तहवि।
गयदंतु-संख-मोत्तिय-पवाल ढोयत्तु ण थक्कइ सयल काल।
धणु दिंतु वि णवि इंछियउ जाम्व[1] पुणु उअहि वि लक्खी हुवउ ताम्व।
चल लहरि समुट्ठिय वाहु दंडु[2] पुक्कार करइ अइ णिरु पयंडु[3]।
बहु रयणइ सारइ जाइँ-जाइँ वारवइ लेवि थिय ताइँ-ताइँ।
घडहड-सद्द[4]इँ [5]एरिस[6] च्चवंतु गय [7]णइ[(2)] लग्गु सो सिंधु-कंतु।

एवं चतुर्दिक निर्मित गोपुरों वाली वह नगरी ऐसी प्रतीत होती थी, मानों आकाश-मार्ग से जाते हुए देवों द्वारा प्रशंसित हो रही हो। वह नगरी रूपी नितम्बिनी अपने चित्त में समुद्र को धारण करती है, इसी कारण से समुद्र भी उसकी रात-दिन सेवा किया करता है। वह समुद्र पर-स्त्रियों द्वारा कैसे भुला दिया गया था? ठीक इसी प्रकार, जिस प्रकार दशवदन रावण, राघव-गृहणी—सीता के कारण अपनी गृहणियों को भूल गया था।

घत्ता— वह समुद्र अपनी फैलती हुई कल्लोल रूपी विशाल-भुजाओं से मानों उस द्वारावती रूपी अपनी प्रेयसी के नितम्ब (कटिभाग) का स्पर्श करता है, फिर क्षण भर में शंका कर हट जाता है। पुनरपि प्रवर्त्तता है और इस प्रकार वह मूढ़ अपनी हँसी कराता है।। 10।।

(11)

समुद्र का वर्णन

वह समुद्र यद्यपि खारा है तो भी रत्नों से व्याप्त है। वह द्वारावती नगरी के समस्त पापों (गन्दगी) को अपने उदर में लेता रहता है। इसीसे खारेपन को प्राप्त हो गया है। वह नगरी सभी कालों में गज-दन्त, शंख, मौक्तिक एवं प्रवालों को ढोते हुए भी नहीं थकती। इस प्रकार धन देते हुए भी जब नगरी ने समुद्र की इच्छा नहीं की तब पुनः समुद्र भी विलखी (दुःखी) हो गया। चंचल लहरोंरूपी उठायी हुई बाहुओं के दम्भ से (छल से) रात दिन पगला हुआ वह समुद्र पुकार करता रहता है, जो भी मेरे सारभूत रत्न थे उन उनको लेकर यह द्वारावती (रूपी प्रेयसी) बैठ गयी है। घडहड-घडहड शब्दों से प्रतीति सत्य वचन वाला वह समुद्र रूपी कान्त, गगन का स्पर्श करता रहता है (अर्थात् आकाश तक उछल-उछल कर रोता रहता है)। तब जल के जीव चक्र (आकाश)

(10) 7. अ. °णे। 8. अ. ब. °व। 9. ब °पं। 10. अ. उ°।
11. ब खा°।

(11) 1. अ °म। 2. ब °मु। 3 ब °भु। 4. अ सद्दें। 5. ब पं। 6. अ °सु। 7. अ. छि। -

(11) (1) तस्याः द्वारवत्याः। (2) नदी।

आउलिउ ताम जल-[8]जंतु चक्कु   पाढीणु[(3)] मयरु[(4)] -कक्कउ[(5)] एक्कु।
पारिहरिवि उवहि णह वीढि चलिय   रासिहि मिसेण उड्गणहो मिलिय।

घत्ता---- सायरु जहि भुल्लउ णहयलि तुल्लउ काइँ णयरि तहि वण्णियइँ।
पडु-पडह सहासहिं मंगल-घोसहिं कण्ण बडिउ णायण्णियइँ।। 11।।

(12)

वारवइ किं वण्णण[1] [2]तरइ को[3]वि   जा पेछिवि मणि विंभिउ ण कोवि।
उववणि सहंति जहिं कोइलाइ   तहि सरिसु णयरु पुरु कोइलाइँ[(1)]।
जहिं[(2)] जणु रंजइ पंजर सुएहिं[(3)]   घरु सहइ [4]चवंतहिं सिसु सुएहिं[(4)]।
रायालय मत्ता वारणेहिं   सुविचित्ता[5] मत्ता वारणेहिं।
तोरणहिं रयण-मणि-गण-विचित्त   सोह-यलहिं जहिं वर-विविह-चित्त।
मढ-मढिय पवर जहिं जिण-विहार   वच्छयलण मणुयह जहिं विहार।
वसुएव तणउ जगे पुण[(5)] भाय   बलहद्ददेव स कणिट्ठ[6] भाय।
चउवाहु दंडु जण-जणिय-राउ   महुमहणु णामु तहि अच्छिराउ।

में आकुलित हो उठे। मीन, मगर, कर्कट वहाँ (आकाश में) इकट्ठे कैसे रहते? (यहाँ पर कवि की मीन, मकर, कर्क, राशियों की कल्पना है)। (कवि के विचार से) ये मीन, मगर, कर्कट नामके जन्तु (तभी से) समुद्र को छोड़ कर नभोवीथी (आकाश मार्ग) में चले गये और राशियों के बहाने उडु (तारा) गण से मिल गये हैं।

घत्ता— सागर भी जहाँ भूल गया (जिस नगरी को देखकर अपने को भूल गया) और नभस्तल में जाकर तुल गया (उछल गया) उस नगरी की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है। हजारों पटहों तथा मंगल घोषों से कर्ण पतित होने पर भी उसे (पूरी तरह) सुनाया नहीं जा सकता।। 11।।

(12)

द्वारावती (द्वारिका) के राजा मधुमथन — कृष्ण का वर्णन

द्वारावती का वर्णन करने में कौन समर्थ होगा? उसे देखकर कौन अपने मन में आश्चर्यचकित नहीं होगा? जहाँ कोयलें उपवन में शब्द किया करती हैं कि इस नगरी के सदृश बड़ा नगर पृथ्वी में और कौन है? जहाँ के लोग पिंजड़े के शुकों से रंजित किये जाते हैं। जहाँ के घर बोलते हुए शिशु-पुत्रों से सुशोभित रहते हैं। जहाँ के राजप्रासाद सुन्दर छज्जों तथा सुविचित्र मदोन्मत्त हाथियों से सुशोभित हैं। जो नगरी विचित्र रत्न एवं मणियों से युक्त तोरणों एवं चित्र-विचित्र विविध श्रेष्ठ भवनों से अलंकृत है। जहाँ मठ एवं मढियों से प्रवर जिनविहार (मन्दिर) बने हुए हैं। जहाँ वत्सों (बच्चों) के चरण वाले मनुष्यों के विहार (भवन) हैं (अर्थात् घर-घर में बच्चे हैं)।

पुण्य भाग्य वाले वसुदेव का पुत्र बलभद्रदेव का कनिष्ठ भाई एवं त्याग रूपी बाहु के छल से मनुष्यों में राग उत्पन्न करने वाला मधुमथन (मधुसूदन कृष्ण) नामका राजा राज्य करता है।

---

(11) 8. ब. तं"।

(12) 1. अ. 'हुं। 2. ब. स'। 3. अ. लों"। 4. ब. वं'। 5. अ. त्तहिं। 6. अ. ट्ठु।

(11) (3) मीन:। (4) मकर.। (5) कर्कट:।

(12) (1) पृथिव्यां। (2) द्वारवत्यां। (3) सुक। (4) पुत्रै:। (5) पुण्य शोभते।

घत्ता— चाणउर विमद्दणु देवइ णंदणु संख-चक्क-सारंगधरु।
रणे कंस-खयंकरु असुर-भयंकरु वसुह ति-खंडहिँ गहियकरु।। 12।।

(13)

जो दाणव-माणव दलइ दप्पु जिणि गहिय असुर-णर-खयर कप्पु।
णव-णव-जोव्वण सुमणोहरीहिँ चक्कल-घण पीणयउ[1] हरीहिँ।
छण इंद-बिंब-सम वयणियाहिँ कुवलय-दल-दीहर णयणियाहिँ।
केयूर[2]-हार-कुंडल-धराहँ कण-कण कणंत कंकण कराहँ।
पयरक्खोलिक्खल णेउराहँ सोलह सहसइँ अंतेउराहँ।
तह मज्झे सरस तामरस(1) मुहिय जा विज्जाहरहो सुकेय[3] दुहिय।
सइँ सव्व सुलक्खण सुस्सहाव(2) णामेण पसिद्धी[4] सच्चहाव(3)।
दाडिम कुसुमाहर सुद्ध साम अइवियडु[5] रमण णिरु मज्झखाम।
सा अग्गमहिसि तहो सुंदरासु इंदाणिव सग्गे पुरंदरासु।
को वण्णिवि सक्कइ रिद्धि ताहिँ सुरणाहु ण पुज्जइ अवसु जाहँ।

घत्ता— देवकी का पुत्र वह मधुमथन (कृष्ण) चाणूरमल्ल का विमर्दन करने वाला, शंख, चक्र एवं शारंग नामक धनुष का धारी रण में कंस का क्षय करने वाला, असुरों के लिए भयकारक तथा भूमि के तीन खण्डों से कर ग्रहण करने वाला है (अर्थात् वह तीन खण्ड का अधिपति नारायण है)।। 12।।

(13)

राजा जनार्दन — कृष्ण का वर्णन

जो दानवों और मानवों के दर्प का दलन करता है। जिसने असुर, नर एवं खेचरों की कल्पना को ग्रहण किया है (अथवा जिसने असुरों, नरों एवं खचरों के कल्प का निग्रह किया है)। जिस जनार्दन कृष्ण को प्रसन्न रखने वाली अत्यन्त मनोहरा नवयौवनवाली सुमनोहरी, चक्राकार पीनस्तनों वाली, पूर्णचन्द्र बिम्ब के समान मुखवाली कुवलय (कमल) पत्र के समान दीर्घनेत्रों वाली, केयूर तथा मोती के हार, कुण्डल धारण करने वाली कण-कण की ध्वनि करने वाले कंकण युक्त हाथों वाली, पदों में खल-खल करने वाले नूपुर धारण करने वाली, सोलह सहस्र तरुणी रानियाँ थीं। जो उनके अन्तःपुर में (रणवास में) निवास करती थीं। उन सभी में सरस कमलमुखी तथा विद्याधर सुकेतु की सुप्रसिद्ध एक पुत्री सत्यभामा थी, जो सुलक्षणा एवं उत्तम स्वभाव वाली थी तथा जो दाडिम के समान आभावाली, नव-कुसुम के समान अधरों वाली शुद्ध श्यामा, अत्यन्त विकट नितम्ब वाली थी। जिसका कटि भाग अत्यन्त कृश था। वही सत्यभामा उस सुन्दर हरि की (कृष्ण की) अग्रमहिषी (पट्टरानी) हुई। वह ऐसी प्रतीत होती थी जैसे स्वर्ग में पुरन्दर (इन्द्र) की इन्द्राणी। उसकी ऋद्धि का वर्णन कौन कर सकता है? सुरनाथ इन्द्र भी उस (वर्णन) में समर्थ नहीं हो सकता।

---

(13) 1. अ. °पं। 2. अ. °ऊं। 3. अ. उ। 4. अ. °द्धिय। 5. ब. °ह।

(13) (1) कमल। (2) निजस्वभाव। (3) सत्यभामा।

घत्ता— तहि रज्जु करंतहो महिपालंतहो जण-मण णयणाणंदणहो।
बलहद्द[(4)]-सणेहहो हय अवराहहो को उवमियइँ जणद्दणहो[(5)] ।। 13 ।।

(14)

जायव-कुल-णहयल णेसरेण[(1)] दारामइपुरि-परेमसरेण।
मंडलिय मिलिय सामंत सारु केऊर-हार-मणि-मउड-फारु।
कामिणि-कर-चालिर-चारु-चमरु मयणाहि[(2)] गंधि वियरत भमरु।
कप्पूर पव[1]र तंबोल बहलु फंफावय सरवर संत मुहलु।
पडिपट्ट णेत्त गट्ठिय विचित्तु ससि-सूर कंत कर-णियर दित्तु।
संगीय-विविह-सुविणोय किण्णु चक्केसँ जहि अत्थाणु दिण्णु।
कंचण-मइ[2]-सिंहासण सुणेह णं मेरु-सिहरि णव[(3)] कस[3]ण मेह।
बलहद्द-जणद्दण भुव[4]णि बलिय जह इंद-फणिंद वि वेवि मिलिय।
तहि अवसरे कलह-पियारएण गयणंगणे जंते णारएण।
अत्थाणु णिहालिउ हरि[5]हिं जाव[6] सहसत्तिय ढुक्कउ तहि जि ताम।

घत्ता— वहाँ द्वारावती नगरी में राज्य करते हुए पृथ्वी का पालन करनेवाले प्रजाजनों के मन, नेत्रों को आनन्दित करनेवाले, बलभद्र के स्नेह को प्राप्त करनेवाले तथा अपराधियों का हनन करनेवाले उन जनार्दन की (कृष्ण की) उपमा किससे दूँ? ।। 13 ।।

(14)

नारद का कृष्ण की सभा में आगमन

जो कृष्ण यादव कुल रूप आकाश का सूर्य, तथा द्वारावती पुरी का परमेश्वर था। जो श्रेष्ठ सामन्तों एवं प्रदत्त माण्डलिकों द्वारा प्रदत्त केयूर, हार तथा मणि जटित दैदीप्यमान मुकुट धारण किये था। जिसके ऊपर कामिनियों के करों से सुन्दर चमर ढुराए जा रहे थे, मृगनाभि (कस्तूरी) की गन्ध के कारण जिस पर भ्रमर विचरण कर रहे थे। कर्पूर प्रधान ताम्बूल का सेवन करने से जो फंफा रूप स्वर से (पीक—) बरसाते हुए मुखवाला था (अर्थात् पीक थूँकता रहता था)। प्रतिपट्ट एवं नेत्त (रेशमी) सूत से चित्र-विचित्र रूप से गठित (अर्थात् बिने हुए) सुन्दर वस्त्र धारण किये था, जो चन्द्र एवं सूर्य की मनोहर किरण-समूह के समान दीप्तिवाला था। ऐसा वह चक्रेश कृष्ण संगीत और विविध सुविनोद (खेलों) से कीर्ण (व्याप्त) आस्थान में कंचण मणि खचित सिंहासन पर ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसे मेरु शिखर पर नव कृष्ण मेघ ही आ गया हो। भुवन में अतिशय बली जनार्दन और बलभद्र दोनों (उस समय) ऐसे लगते थे मानों इन्द्र एवं फणीन्द्र दोनों ही वहाँ आकर मिल गये हों।

उसी अवसर पर कलहक्रिया में रत, गगनांगण में जाते हुए नारद ने जब हरि के उस आस्थान को देखा, तब उन्होंने सहसा ही आकर उस आस्थान में प्रवेश किया।

---

(14) 1. अ. 'उ'। 2. ब. 'ण'। 3. अ. 'ल'। 4. अ. 'उ'। 5. अ. हलिहे। 6. अ. 'म'।

(13) (4) बलभद्र सनाथस्य। (5) णारायणस्स।

(14) (1) सूर्येन। (2) कस्तूरी। (3) श्वेतकृष्णा मेघौ।

घत्ता— सीहासणु छंडिवि पय-अवरुंडिवि ता दोहिमि सुह-भायणहिं।
खुल्लय-वय धारउ णियमइँ सारउ पणमिउ बल णारायणेहिं।। 14।।

(15)

त[1]दो [2]तहिं तिण्णि वि सुट्ठु पहिट्ठ   झडत्ति हरी-बलवीढे[(1)] [3]वइट्ठ।
हरीबलहद्दहँ मज्झे मुणिंदु   णं[(2)] कण्णतुले[(3)] भरे संठिउ चंदु।
पसंसिउ णारउ तक्खणे तेहिं   विहप्फइ णावइ सग्गे सुरेहिं।
पयंपिउ अम्हहँ जम्मु कयत्थु   समागय जंपहु तुम्हहँ इत्थु।
कहंतहो अज्जु पहिट्ठउ[4] ताय   मुणीवि सु सच्च पयासइ वाय।
गिरी-दरि-खेड-मडंब भमंतु   अकित्तिम-कित्तिम-तित्थ णमंतु।
जिणेंद थुणंतु स-कम्म धु[5]णंतु   जयम्मि कलीकल-कील कुणंतु।
णहाउ णिहालिवि सतत्त-सुवण्ण   पुरी वर-वावि-तलायर वण्ण।

घत्ता— सुर-णर-मणहारउ अवर तुहारउ [6]इहु अत्थाणु विसिट्ठउ।
हरिसहु बलद्दें [7]अरि-बल मद्दें[8] जहि तुहु तं मइ दिट्ठउ[9]।। 15।।

घत्ता— तब दोनों सुख भाजन भाई—बलभद्र और नारायण ने सिंहासन छोड़कर क्षुल्लक व्रतधारी एवं नियम में सारश्रेष्ठ नारद के चरणों में वन्दना कर प्रणाम किया।। 14।।

(15)
कृष्ण, बलदेव एवं नारद का वार्त्तालाप

वे तीनों ही मिल कर बड़े प्रसन्न हुए। हरि (कृष्ण) एवं बल (बलभद्र) ने उन्हें (नारद को) शीघ्र ही सिंहासन पर बैठाया। वे मुनीन्द्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानों कर्णतुला (सुवर्णतुला) के मध्य चन्द्रमा ही स्थित हो। इन दोनों ने तत्क्षण नारद की उसी प्रकार प्रशंसा की जिस प्रकार स्वर्ग में देवों द्वारा वृहस्पति की संस्तुति की जाती है। उन्होंने कहा—"हे तात आज हमारा जन्म कृतार्थ हुआ, आप कैसे प्रसन्न हो गये, जो यहाँ पधारे। अपने आगमन का कारण बतलाइये।" यह सुन कर मुनिराज नारद ने यथार्थ रूप में कहा—"मैं पर्वतों, दरी (गुफाओं), खेड़ों, मटम्ब (पर्वत के तल स्थान) में भ्रमण कर अकृत्रिम, कृत्रिम तीर्थों को नमन करता रहा तथा जिनेन्द्र की स्तुति करते हुए मैं अपने कर्मों को धुनता रहा। इस प्रकार जगत में कलिकाल की मधुर क्रीड़ा करते हुए जब मैंने आकाश से तप्त स्वर्ण के समान सुन्दर नगरी (द्वारावती), श्रेष्ठ वापिकाएँ एवं सुन्दर तालाब देखे और—

घत्ता— तुम्हारा यह देवों एवं मनुष्यों के मन को हरने वाला विशिष्ट आस्थान देखा साथ ही में अरि की सेना का मर्दन करने वाले बलभद्र सहित तुम (हरि) को मैंने देखा (इसलिए मैं यहाँ चला आया हूँ)।। 15।।

---

(15) 1. अ. "उ। 2. अ. ए। 3. ब. पं। 4. अ. पपट्ठउ। 5. ब. छुं। 6. अ. ए। 7-8. अ. में नहीं है। 9. ब. "ट्ठु"।

(15) (1) सिंहासणे। (2) इति वितर्के। (3) मध्ये चन्द्र।

(16)

ता हरिणा जंपिउ अइ मणोज्जु हुउ अम्हहँ वासरु सहलु अज्जु।
तहिं अवसरे उच्चाइय करेण आसीस दिण्ण पुणु मुणिवरेण।
सकलत्तु-सपुत्तु-सबंधु ताम तुहुं णं दिवट्ठि ससि-सूर जाम।
[1]इत्थंतरे मुणि संचलिउ तेत्थु जा सच्चहाव हरि घरिणि जेत्थु।
णियराउलि सीहासणे णिविट्ठ सिंगारु लिंति णारएण दिट्ठ।
सज्जंति अलय विरयंति तिलउ केऊर-हार-मणि-णियर णिलउ।
द[2]प्पणें करयले मुहुं णियइँ जाम रिसि णारउ तहि अवयरिउ ताम।
सो पेछिवि किय अवहेरि ताए[(1)] सोहग्ग-रूव-मय-गव्विराए।

घत्ता— सिंगारहो अवसरे अज्जु सुवासरे कहिं आएउ कोवीण जुउ।
वेयालु वसंतिहिं मज्झु करंतिहिं एउ[3] आहाणु पसिद्धु हुउ।। 16।।

इय पज्जुण्णकहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइ सिद्ध विरइयाए पढमो संधी परिसमत्तो।। संधी:।। 1।। छ।।

---

(16)

नारद के सहसा आगमन पर रूपगर्विता सत्यभामा लज्जित हो जाती है

नारद का कथन सुन कर हरि ने अति मनोज्ञ शब्दों में कहा—"आज का हमारा दिन सफल हुआ।" यह सुनकर मुनिवर नारद ने उसी समय हाथ उठा कर उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—"कलत्र, पुत्र, बन्धु सहित तुम जब तक चन्द्र एवं सूर्य हैं तब तक वृद्धि को प्राप्त होते रहो।" इसी बीच मुनिराज वहाँ से उस ओर चल पड़े जहाँ हरि की गृहिणी सत्यभाव-सत्यभामा निवास करती थी। सत्यभामा अपने राजभवन के सिंहासन पर बैठकर श्रृंगार कर रही थी। केशों को सजा कर तिलक लगा रही थी, केयूर तथा मणिसमूह का निलय समान हार पहिनकर जब वह हाथ में दर्पण लेकर अपना मुख देख रही थी तभी ऋषि नारद वहाँ उतरे। सौभाग्य रूप मद से गर्ववाली वह सत्यभामा उन नारद को देख लज्जित हो गई (और विचार करने लगी कि)—

घत्ता— श्रृंगार के अवसर पर आज शुभ दिन में यह कौपीनधारी कहाँ से आ गया? "मेरे आनन्द करने में बेताल बस गया।" यह आहान (अहाना—कथानक) चरितार्थ हो गया है।"।। 16।।

इस प्रकार धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष पुरुषार्थ को प्रकट करने वाली कवि सिद्ध द्वारा विरचित प्रद्युम्न-कथा में प्रथम सन्धि समाप्त हुई।। सन्धि: 1।। छ।।

---

(16) 1. अ. ए। 2. अ 'प। 3. अ हु।

(16) (1) तस्स सत्यभामाया।

(पुष्फिया)

यत्काव्य[1] चतुराननाद्य[2] निरलं सत्पदम्[3] दा[1]तन्वत:
स्वैरं भ्राम्यति भूमिभागमखिलं कुर्व्वन् चलक्षं क्षणात्।
तेनेदं प्रकृतं चरित्रमसमं सिद्धेन नाम्ना पर[4]
प्रद्युम्नस्य सुतस्य कर्ण्ण सुखद: श्री पूर्वदिव द्विष:[2]।।

❑❑❑

पुष्पिका— सर्वज्ञादि के मुख से निर्गत समीचीन पद ही जिस काव्य रूपी शरीर की शोभा है और जो प्रचुर काल तक समस्त भूमि-भाग में स्वच्छन्द रूप से सत्पद्य के रूप में भ्रमण करता आया है उसके आधार पर प्रद्युम्न चरित्र के शीघ्र ही प्रणयन में मैं एक भी क्षण लज्जा का अनुभव नहीं करता हूँ।

सिद्ध नाम के उस कवि ने यह कर्ण सुखद अनुपम श्रीपूर्वक देवद्विष् (मधुसूदन—श्रीकृष्ण) के पुत्र प्रद्युम्न के चरित्र को प्रकृत — प्रकट किया है।। छ।।

पुष्पिका- 1. अ° °सन्यत: । 2. अ.×

पुष्पिका (1) यत्काव्यं कृतं (2) सर्वज्ञमुखारविन्निर्गत। (3) सत् समीचीन पद तेषां प्रधानाम सोभा यात्र अरु काव्यस्य। (4) कविना।

बीउ संधी

(1)

दुवई— ण वि पणिवाउ किउ संभासिउ ण वि सिय सेविए।
वइसहु ण वि भणिउँ सो णारउ हरि महएविए।। छ।।
दुवई— ठिय अवहेरि करि जा राणिय ता कोवेण कंपिउ।
इहि [1]उवयारु किंपि दरिसावमि मुणि णियमणे पयंपिउ।। छ।।
तवो[2] णिग्गओ चित्ते खो[3]हं वहंतो विलक्खी हुउ तं विसायं [4]सहंतो।
वयं णच्चिमो जो अवज्जंत तूरो ण णच्चामि किं वज्जिए से अदूरो।
इमं संभ[5]रंतो गओ सो तुरंतो सिहीजाल पिंगा-जडालो फुरंतो।
णहे गच्छमाणो वणंते पइट्ठो पुणो चिंतए [6]सयल सिंगे वइट्ठो।
अलं कत्थ जामो अहं किं कुणामो किउँ मज्झु तीएण पायं पणामो।
हरावमि किं कस्स पासम्मि दुट्ठा सियाव्व सोहग्ग गव्वेण पुट्ठा।
परं एरिसं मज्झु काउ ण जुत्तं इमं वासुदेवस्स इट्ठं कलत्तं।
ण कीरमि तस्से व चित्ते असोसो ण वच्चेउ मज्झं अवज्झं[(1)] वि रोसो।

दूसरी सन्धि

(1)

रूपगर्विता सत्यभामा के प्रति नारद का क्रोध

द्विपदी— सखियों से सेवित हरि की महादेवी सत्यभामा ने उस नारद को प्रणाम भी नहीं किया, न सम्भाषण ही किया और "बैठिए" इस प्रकार भी नहीं कहा।। छ।।

द्विपदी— वह सत्यभामा जब नारद की अवहेलना करके भी बैठी ही रही तब कोप से कम्पित उस मुनि ने अपने मन में कहा "अब इसे कुछ उपचार दिखा ही दूँ"।। छ।।

तब मुनि नारद अपने चित्त में खेद धारण करता हुआ, विलखता हुआ तथा उस विषाद को सहन करता हुआ, वहाँ से निकल गया। जब हम बिना तूर के बजे ही नाचने वाले हैं, तब क्या तूर के बजने पर मैं नहीं नाचूँगा? ऐसा मन में स्मरण करता हुआ वह तुरन्त गया। अग्नि की ज्वाला समान पीली जटाओं को फैलाता हुआ, वह आकाश में जाते-जाते वन के मध्य में जा घुसा। पुनः पर्वत के शृंग (शिखर) पर बैठकर वह विचारने लगा—"बस, अब मैं कहाँ जाऊँ, अब मैं क्या करूँ? कैसे मैं इस स्त्री से अपने चरणों में प्रणाम कराऊँ? क्या मैं किसी के पास में इस दुष्टा का अपहरण करा दूँ? क्योंकि सीता के समान यह भी रूप-सौभाग्य के गर्व से पुष्ट हो रही है। परन्तु ऐसा करना मेरे लिए उचित नहीं है। (क्योंकि) यह वासुदेव की इष्ट कलत्र है। उस वासुदेव के चित्त में मैं असन्तोष उत्पन्न नहीं करूँगा तथा मैं अपने रोष को भी निष्फल (अवन्ध्य) नहीं करूँगा। संसार

---

(1) 1. अ अं। 2. अ. उ। 3. ब खेयं। 4. अ. पसंतो। 5. ब ँमं। 6. अ सल।

(1) (1) नि.फल।

जए[2] राय-सामंत कस्सेव धूवा स-भूगोयरी-खेयरी सार-भूवा।
पयच्छामि कण्हेण अण्णो वियप्पो पभंजामि बुद्धीए हं ताहि[3] दप्पो।

घत्ता— अहिमाणें भरिउ णियमणु संठवइ ण केवहिं।
तहो गयहो चलिउ सो णारउ तक्खणे खेवइ।। 17।।

(2)

दुवई— णहे गछंतु संतु सो पेच्छइ हरि सु[1]ह मुक्कणी[2]सणं।
वणु-गिरि-तुंग [3]दुग्गय-गय-गंडय दुस्सह-सरय भीसणं।। छ।।

कत्थवि किडि[(1)]-पुल्लिहिं संगामो पेछिवि मणे मण्णइँ अहिरामो।
कत्थइँ फड-फुंकार सदप्पो आढत्तो णवलेणं सप्पो।
कत्थवि लोल-ललाविय-जीहो करि-कुंभे संघडिउ सीहो।
वाहेणं विरइय ठाणेणं तिक्खेणेक्के णं वाणेणं।
किरि-डीहिमि[(2)]-सीहस्स वि जीउ वंधेप्पि[4]णु पंचत्तहिं णीउ।
कत्थवि णवि मण्णहिं भयभंगो भिडिउ सरोसु कुरंगि[(3)]-कुरंगो।

में यदि किसी राजा, सामन्त या विद्याधर की सारभूत भूमिगोचरी अथवा खेचरी पुत्री हो तो उसे ही क्यों न कृष्ण को दिला दूँ? इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं करूँगा। इसी प्रकार सत्यभामा के ऊपर कृष्ण की प्रेमबुद्धि को भंग कर इसके दर्प को भंग करता हूँ।

घत्ता— अभिमान से भरा हुआ वह नारद किसी भी प्रकार अपने मन में शान्त नहीं हुआ। वह तत्क्षण आकाश मार्ग से चल दिया।। 17।।

(2)

आकाश मार्ग से जाते हुए नारद, पृथ्वी-मण्डल के प्राणियों की क्रीड़ाएँ देखते हुए विद्याधर-श्रेणी में पहुँचकर वहाँ के निवासियों की नागरी-वाणी सुनते हैं

द्विपदी— आकाश में जाते हुए उस नारद ने रहस्यपूर्वक छोड़े हुए श्रीकृष्ण के उस आस्थान तथा दुर्गम वन, उन्नत पहाड़ और दुस्सह एवं भयानक वन गज, गेंडा तथा शरभ (अष्टापद) देखे।

उस वन में कहीं किटि (शूकर) और पुल्लि (भीलों) का संग्राम देख कर उस मुनि ने अपने मन में आनन्द माना, कहीं फण सहित फुंकार करने वाले दर्पीले सर्प को नवेले से जूझते देखा। कहीं लोल (चंचल) लपलपाती जिह्वा वाले सिंह को गज के कुम्भ (मस्तक) पर घात करते देखा। कहीं उस वन में स्थान बना कर बैठे हुए व्याध के द्वारा एक तीक्ष्ण बाण से सिंह का वध कर पंचत्व (मृत्यु) को प्राप्त कराते देखा। कहीं पर भय नहीं मानते हुए एक सरोष कुरंग (मृग) कुरंगी के पीछे दौड़ रहा था और ईर्ष्या के कारण क्रुद्ध लुब्धा मुग्धा हरिणी को मूर्च्छित होते हुए देखा, कहीं मृगों से मृगों की कलह को देखा और इस प्रकार उस वन को देखता हुआ वह

---

(1) (2) जगति। (3) आकासे पद पूरणं।

(2) 1. अ. सु। 2. अ. भी। 3. अ. दु। 4. अ. वि।

(2) (1) सूकर.। (2) हस्तिन. सहसिंह:। (3) मृगाणी।

हरिणिए मुद्धाए लुद्धा मुच्छ पवण्णा अमरिस कुद्धा।
ममहि[(4)] - मिइय कलहँ[(5)] पिछंतो विज्जाहर-सेढी[5] संपत्तो।
घत्ता— जहि पुरवर-पवर-वर-गाम-णयर उहामिर।
गामार ण्ण वि सरस जंपंति सयल णायर-गिर।। 18।।

(3)

दुवई— जहि उच्छ-वण सालिकेयारहि पयसंचारु भज्जिए।
पढमायास गमणु[(1)] महि वितहिं[(2)] गमणागमण किज्जए।। छ।।

जहिं गाम णिरंतरे जिणहराइँ गणाह इव सावय-मण हराइँ।
मुणि-गण सेविय णं उववणाइँ पडिभोया इव फणिगणाइँ।
जहिं णयरइँ सुर-पुर सण्णिहाइँ कंचणमय रयण-विणिम्मियाइँ।
गिरि वेयड्ढहो दाहिणि पए[1]सि विज्जाहर जणे णिवसिय असेसि।
तहिं तुंग-सिहरे सुरहरे विसाले गउ मुणि रहणेउरे-चक्कवाले।
जहिं विज्जाहरवइ सणकुमारु रूवेण विणिज्जिउ [2]जेणि मारु।

नारद विद्याधरों की उस श्रेणी में जा पहुँचा।

घत्ता— जहाँ श्रेष्ठ पुर, उत्तम ग्राम, पर्वतीय नगर तथा ग्रामारण्य हैं और जहाँ के सभी निवासी नागर-वाणी में सरस बोलते हैं।। 18।।

(3)

विद्याधर-श्रेणी का वर्णन

द्विपदी— जहाँ इक्षु के वन तथा शालिधान के खेत हैं। जिनसे पद-संचार (पैरों से चलने का मार्ग) टूट जाता है। पदों से आकाश-गमन होता है। मही में भी गमन होता है। इस तरह विद्याओं के आश्रय से गमनागमन किया जाता है।। छ।।

जहाँ पास-पास में बसे हुए ग्राम तथा प्रत्येक ग्राम में पास-पास में निर्मित अनेक जिन-भवन हैं, जो श्रावकों के मन का हरण करने वाले संघ के समान प्रतीत होते हैं। वहाँ मुनिजनों द्वारा सेवित उपवन हैं। वे (मुनि) ऐसे प्रतीत होते हैं मानों पतित भोग (भोग=फण जिनके गिर गये हैं अर्थात् क्षांत) फणिगण (सर्प) ही हों।

जहाँ के नगर सुरपुर (स्वर्ग-अमरावती) के समान हैं, जो कंचनमय रत्नों से विनिर्मित हैं, ऐसे उस वैताढ्य (विजयार्द्ध पर्वत) के दक्षिण प्रदेश (श्रेणी) में सम्पूर्ण विद्याधर-जन निवास करते हैं।

वहाँ तुंग शिखर पर विशाल सुरघर (विमान) समान रथनूपुर-चक्रवाल नगर में वह मुनि नारद गया, जहाँ विद्याधरों का राजा सनत्कुमार निवास करता था, जिसने अपने रूप से खोटे मार (काम) को भी जीत लिया था। जल, स्थल एवं आकाश में घूमता हुआ कलहप्रिय, कलहरत वह नारद राजकुल में जा पहुँचा।

---

(2) 5. अ. सेढिए।
(3) 1. अ. ते। 2. अ. 'णि' नहीं है।

(2) (4) मृगाणां। (5) नारदः।
(3) (1) विद्या। (2) वैताड्ये।

जले-थले-णहे कलह-पियारएण तहो[3] राउले गंपिणु णारएण।
सकलत्तु सपरियणु सुज्जि दिट्ठु सयलहँ विणवंतहँ णवि वइट्ठु।

घत्ता— अवलोएवि णीहरिउ तहिँ हेएवि णिवसइ णारउ।
रूउ कुमारियहे तहिं काहि वि णियइ ण सारउ।। 19।।

(4)

दुवई— विज्जाहर[1]हं विविह पुर णयरिउ जइवि भमंतु अच्छए।
तहिं[(1)] सारिच्छवण्ण लाव[2]ण्णइ[3] अण्ण ण कोवि पेच्छए।। छ।।

दाहिणि-सेढिहो वि णीसरियउ उत्तरसेढि पइ[4]ट्ठउ तुरियउ।
गिरिवेयट्ठु [5]तियइ मुणि मणहरु अट्ठावयहो सिहरुणं गणहरु।
जहिं अकियमउ जण णयणा-णंदिरु सहसकूडु णामें जिणमंदिरु।
विज्जाहर-सुर-णर कय महि महँ अट्ठुत्तरु सउ जिणवर-पडिमहँ।
काउवि जत्थ सुकंचण घडियउ काउवि रयणविणिम्मिय पडिमउ।
वंदिवि पुणिवि तिलोयहो सारउ पुणु णिग्गउ उत्तर-दिसि णारउ।
तहिं पुर-णयर णिंरतरु कमियउँ मण-पवणु व णीसेसु वि भमियउँ।

कलत्र सहित परिजनसहित विराजमान राजा ने उस नारद को देखा। सभी नें विनयपूर्वक झुककर उन्हें प्रणाम किया और बैठाया।

घत्ता— वहाँ होकर (घूमकर) सबको देख-परख कर नारद ठहरा। परन्तु राजकुल में किसी भी कुमारी का सार रूप नहीं देखा।। 19।।

(4)

सत्यभामा से भी अधिक सुन्दरी कन्या की खोज में नारद की विद्याधर-नगरियों की वेगगामी यात्राएँ

द्विपदी— विद्याधरों के विविध पुर एवं नगरियों को यद्यपि नारद ने भ्रमण कर देखा तथापि वहाँ सत्यभामा के समान रूप लावण्यवाली अन्य किसी कन्या को नहीं देखा।। छ।।

तब वह नारद उस दक्षिण श्रेणी से निकल पड़ा और तुरन्त ही उत्तर श्रेणी में प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसने वैताढ्यगिरि की मुनियों के भी मन का हरण करने वाली स्त्रियों को देखा। फिर वहाँ से वह गणधर समान मनोहर अष्टापद (कैलाश) शिखर पर पहुँचा। वहाँ जनों के नयनों को आनन्ददायक उस अकृत्रिम सहस्रकूट जिनमन्दिर में गया, जहाँ विद्याधरों, सुरों एवं नरों द्वारा महिमा (प्रभावना—पूजा) प्राप्त 108 जिनवर मूर्तियाँ विराजमान हैं। उनमें से कुछ तो निर्मल स्वर्ण घटित थीं और कुछ रत्न-विनिर्मित। तीनों लोकों में सारभूत उन प्रतिमाओं की वन्दना कर वह नारद उत्तर दिशा की ओर चला। वहाँ के समस्त पुरों एवं नगरों में मन एवं पवन की गति से भ्रमण किया। हरि-कृष्ण के योग्य प्रिया की सर्वत्र खोज की किन्तु वहाँ का तो राजकुल

(4) 1. अ. वि। 2. अ. य। 3. अ. ण्णि। 4. अ. पयड्ढ। 5. अ णि।

(3) (3) नगकुमारस्य।

(4) (1) तस्याः सत्यभामाया।

राउलु सोण्णारउ जु ण दिट्ठउ हरिपिय कार[6]णे सयलु गविट्ठउ।
सा ण-धीय णरवइ मंडलियहो जा सच्चहे रूवेण व लियहो।

घत्ता— वेयट्ठहो गिरिवरहो उत्तरदाहिणसेढि णिहालिय।
तहे सुकेय-सुयहे सुललिय भुयहे सरिसगल कवि ण वालिय।। 20।।

(5)

दुवई— विज्जाहरहँ विसय परियचेवि भूगोयरहँ देसहो।
पुणु संचलिउ झत्ति कलियारउ उज्झाउरि पएसहो।। छ।।

सा कोसलु पुरि पुर-णयरहँ धुरि।
पयसेवि णारउ कलह पियारउ।
गउ जिण-मंदिरे णयणा-णंदिरे।
रिसहुँ भडारउ तिहुयण सारउ।
भत्तिए वंदेवि अप्पउ णिंदिवि।
पुणु गउ राउलि भेरि रवाउलि।
तहिं णिव सुंदरु राउ पुरंदरु।
दिट्ठि ढोइउ पुणु अवलोइउ।
सरसि सणेउरि तहो अंतेउरि।
कुमरि ण दिट्ठिय कावि विसिट्ठिय।

ही शून्य मिला। कोई राजा भी वहाँ नहीं दिखा। माण्डलिक नरपति की कन्या सत्यभामा के समान निर्दोष रूपवती तरुणी कन्या के समान कोई राजकुमारी उसे वहाँ नहीं दिखायी दी।

घत्ता— तब उस (नारद) ने वैताढ्य गिरि की उत्तर दाहिनी श्रेणी की ओर दृष्टिपात किया, किन्तु वहाँ भी उस सुललित भुजाओं वाली सुकेतु-सुता सत्यभामा के समान अन्य बालिका दिखायी नहीं दी।। 20।।

(5)

विद्याधर-प्रदेश की परिक्रमा कर नारद कुण्डिनपुर में पहुँचता है

द्विपदी— वह कलहप्रिय नारद विद्याधरों के देश की परिक्रमा (समाप्त) कर भू-गोचरियों के देश में पहुँचा और चलता-चलता अयोध्यापुरी के प्रदेश में आया।। छ।।

वहाँ पुर एवं नगरों की धुरी के समान कोशलपुरी में प्रवेश कर वह नेत्रों को आनन्ददायक त्रिभुवन के सारभूत ऋषभदेव के जिन-मन्दिर में गया। वहाँ भक्तिपूर्वक वन्दना कर उसने आत्मनिन्दा की, पुनः भेरी नाद से युक्त राजमन्दिर में गया। वहाँ के राजा का नाम पुरन्दर था, जो बड़ा सुन्दर था। नारद ने वहाँ सर्वत्र दृष्टिपात किया। उसके अन्तःपुर को भी देखा किन्तु कोई भी सरस, स्नेहातुर एवं विशिष्ट कुमारी कन्या उसे नहीं दिखाई दी। यह

---

(4) 6. ब० काण्णे।

किंपि ण बोल्लिउ लीलइँ चल्लिउ।
दाहिण-मंडलु धरिय कमंडलु।
पिछिय सुहत्थउ छत्तिय मत्थउ।
णयर-णिरंतरे भुवणुब्भंतरे।
तेण भमंतइँ मयण कयंतइँ।

घत्ता— कोइल कलयलु रम्मु सवण सुहावणु जहिं अवरु।
जो उववणेहिं गहिरु दीसई कुंडिणपुर पवरु।। 21।।

(6)

दुवई— जहिं वेयब्भणाम सरि-सारिय अमर-तरंगिणी सभा।
गिरि-मह सुजड कड्ढणु परिसेसेवि कय सायर समागमा।। छ।।

दह-फारहे-सारहे तीरिणिहे तरु-संकडे तहे तडे तीरिणिहे।
णय-वट्टणु-पट्टणु सो वसइ जसुरायहो घायहो रिउ तसइ।
अणु कलियहो चलियहो णीसमहो अहिहाणहो जाणहो भीसमहो।
मंडलियहँ मिलियहँ घण-घणउ सोहाउलु राउलु तहो तणउं।
सो राणइ माणउ को भणइँ फुडु सत्तिए कंतिए को जिणइँ।

सब देखकर भी नारद वहाँ कुछ बोला नहीं, लीलापूर्वक वहाँ से कमण्डल लेकर दक्षिण मण्डल की ओर चल दिया। उसके हाथ में पिच्छी थी और माथे पर छत्र। मदन के लिए कृतान्त के समान वह नारद संसार के नगर-नगर में भटकता रहा।

घत्ता— इसी क्रम में वहँ उस कुण्डिनपुर में जा पहुँचा, जो कानों को सुहावने लगनेवाला कोयलों के कल-कल रवों से रम्य एवं सघन उपवनों से सुशोभित देखा जाता है।। 21।।

(6)

कुण्डिनपुर के राजा भीष्म ने नारद को अपने नगर में प्रवेश करते हुए देखा

द्विपदी— उस कुण्डिनपुर में वेदर्भा (विदगर्भा) नाम की नदी बहती है, जो अमरतरंगिणी (देवगंगा) के समान है तथा जो महान् पर्वतों को भी उखाड़ती हुई तथा विशाल प्रदेश का सिंचन करती हुई समुद्र में जा गिरती है।। छ।।

विस्तृत सरोवरों के लिए सारभूत तथा सघन वृक्षों से युक्त उस वेदर्भा नदी के तट पर न्याय का वर्त्तन करने वाला वह कुण्डिनपुर नामक पट्टन बसा हुआ है, जहाँ के राजा के पराक्रम से शत्रुगण त्रस्त बने रहते हैं। उस राजा का नाम भीष्म है। भयानक शत्रु समूह भी जिसके पीछे-पीछे चलते हैं, जिससे माण्डलिक लोग बार-बार मिलते रहते हैं और इस प्रकार जिसका राजकुल सदा सुशोभित बना रहता है। उस राजा के सम्मान का वर्णन कौन कर सकता है? निश्चय ही उसकी शक्ति एवं कान्ति को कौन जीत सकता है? आकाशगामी इन्द्र, चन्द्र एवं

णहे इंदु वि चंदु वि भंत्ति णवि — सु पयावइ णावइ भुवणे रवि।
जगु दंडइ चंडइ वल-वलिउ — कलिकालु विसालु वि जिणि छलिउ।
जसु पणइणि सिरिमइ पाण-पिया — तहे रुप्प पुत्तु-रुप्पिणि दुहिया।

घत्ता— कंचण-मणिगण सारे णिउ हरि वीढे वइट्ठउ।
गयणहो मुणि णारए सो कुंडिपुरवरे पइट्ठउ।। 22।।

(7)

दुवई— पुणु उवयरे वि झत्ति अत्थाणें तहिं णारउ पइट्ठउ।
रूवकुमार तउ पेच्छेविणु णिरु णियमणे पहिट्ठउ।। छ।।

एण णमंसिउ णय-सिरेण — संभासिउ सुमहुरु वर-गिरेण।
करमउलिवि भीसमु भणइ ताय — दिणु धण्णु अज्जु जँ तुम्ह पाय।
मलु गलइ णिहालिउ हुंति जाम — आसीस मुणीसरु देह ताम।
तुह मंडलग्गि जयलच्छि वसउ — परचक्कु असेसु विट्ठरे तसउ।
सकलत्त सपुत्तहो रिद्धि-विद्धि — मण-इंछिय तुह संपडउ रिद्धि।
एउ भणेवि खणद्धें गयउ तेत्थु — अंतेउरे ससण रायइहिं जेत्थु।

सूर्य भी जिससे भ्रान्ति में पड़ जाते हैं। प्रजापति जिसके सामने झुका रहता है, जो जग के चंचल लोगों को प्रचण्ड रूप से दण्डित करता है, जो विशाल कलिकाल से ठगा नहीं जाता। उस राजा भीष्म की श्रीमती नामकी रानी थी, जो उसे प्राणों से भी प्यारी थी, उसका रुप्प नामक पुत्र एवं रुप्पिणी नामकी पुत्री थी।

घत्ता— जब वह राजा भीष्म स्वर्ण एवं मणि समूह से जटित सिंहासन पर विराजमान था तभी उसने आकाशमार्ग से कुण्डिनपुर में प्रवेश करते हुए उस नारद को देखा।। 22।।

(7)

राजा भीष्म नारद का स्वागत कर उसे अन्तःपुर ले जाता है जहाँ राजकुमारी रूपिणी के सौन्दर्य से प्रभावित होकर वह उसे मधुमथन की प्रियतमा बनने का आशीर्वाद देता है

द्विपदी— पुनः (आकाशमार्ग से) उतर कर वह नारद उस आस्थान—राजकुल में प्रविष्ट हुआ। रूपकुमार उसे देखकर अपने मन में बड़ा प्रसन्न हुआ।। छ।।

राजा भीष्म ने सिर झुका कर उसे नमस्कार किया और हाथ जोड़कर मधुर वाणी में इस प्रकार बोला—'आज का दिवस धन्य है जो आपको यहाँ पाया, क्योंकि आपके दर्शन कर हमारे पाप-कर्म गलित हो गये हैं।' यह सुन कर मुनीश्वर (नारद) ने आशीर्वाद देते हुए कहा—'तुम्हारे मण्डल (भामण्डल) के आगे जयलक्ष्मी का निवास बना रहे। समस्त शत्रु दूर से ही तुमसे त्रस्त बने रहें। अपनी रानियों एवं पुत्र-पुत्रियों सहित तुम मनोवांछित समस्त ऋद्धियों-सिद्धियों को प्राप्त करते रहो। यह कहकर वह आधे क्षण में ही वहाँ जा पहुँचा जहाँ अन्तःपुर में राजा की बहिन थी। उस गुण गरिष्ठा का नाम सुरसुन्दरी था। राजा पुत्री को वरिष्ठा रूपिणी के

सुर-सुंदरि णामइँ गुण-गरिट्ठु तहिउ बोलिहिं रुप्पिणी वइट्ठु।
ससिमुहिं इणि एतहो किउ पणामु रूविणिए णमंसिउ कलह-धामु।
सा पेक्खेवि मणे हरिसेण भिण्णु गिव-दुहियहे आसीवाउ दिण्णु।
तुहु होहि पुत्ति गुण-गण मणोज्ज य किंहि महुमहणहो तणियसज्ज।
तं णिसुणि विच्छविणि मुणिहि वयणु पुणु हसिवि णियइ फुफुय हे वयणु।

घत्ता— हउँ सिसुपालहो दिण्ण दसमइँ वासरे परिणयणु।
हुअ सामग्गि असेस अवरु चयइ किं गुणिरयणु।। 23।।

(8)

दुवई— तातहि तासु[1] वहिण्णि पडिजंपइ आसि तिणा णे भासियं।
रूविणि चक्कवइट्ठि परिणेसइ तं एहि[2] पयासियं।। छ।।

रिसि णारउ जंपइ तुम्ह कहमि मणे वसइ महारइँ तं णरहमि।
कहिं परिमाणुउँ कहिं कणयसेलु कहिं वक्कलु कहिं देवंगु वे[3]लु।
कहिं पंचाणणु कहिं वण-कुरंगु कहिं अरुहणाहु कहिं किर अणंगु।
जो कंसु-केसु-चाणूरदमणु जं क[4]हिं सो हरि तहिं सिसुपाल कवणु।

गाने से बोलते थे। चन्द्रवदनी उस रूपिणी ने उस कलहधाम नारद को प्रणाम कर नमस्कार किया। उस नृप-सुता को नमस्कार करती देखकर वह नारद मन में बड़ा हर्षित हुआ और आशीर्वाद दिया—"गुण-गणों में मनोज्ञ हे पुत्री, तुम मधुमथन—कृष्ण की भार्या बनोगी। उस छविनी (रूपवती) रूपिणी ने मुनि के उस वचन को सुनकर पुनः हँसकर फूफू (फुवा) के मुख की ओर देखा।

घत्ता— तब उस फूफु ने (नारद से) कहा—"मैंने तो रूपिणी को शिशुपाल के लिये दे दी है। दशवें दिन विवाह होगा। विवाह की समस्त सामग्री तैयार हो गयी है। हे गुणिरत्न ! और क्या कहें?"।। 23।।

(8)

नारद रूपिणी को हरि-कृष्ण का परिचय देता है

द्विपदी— बहिन सुरसुन्दरी का कथन सुनकर राजा भीष्म ने कहा—"मति, श्रुति एवं अवधि रूप तीन ज्ञानों के धारी (मुनीश्वर—) नारद ने (जो) कहा है (वह अन्यथा कैसे हो सकता है?)। (अब) रूपिणी का विवाह चक्रवर्ती (कृष्ण) के साथ होगा, यह स्पष्ट है।"

ऋषिवर नारद ने कहा—"मैं तुम्हें कह रहा हूँ कि महाकामी नराधम उस शिशुपाल के मन में तुम कैसे स्थान पा सकती हो? (तुम्हीं सोचो कि—) कहाँ तो तुच्छ परमाणु (के समान शिशुपाल) और कहाँ कनकाचल (सुमेरु के समान वह मधुमथन कृष्ण)? कहाँ तो (तुच्छ) छाल और कहाँ देवांगलता? कहाँ तो पंचानन और कहाँ वनकुरंग? कहाँ तो अरुहनाथ और कहाँ अनंग कामदेव? कंस, केशी एवं चाणूर का दमन करने वाले हरि—कृष्ण के सामने शिशुपाल क्या है (अर्थात् उसकी शक्ति ही क्या है)? वह हरि—कृष्ण अतुल्य शक्ति वाले बलभद्र

---

(8) 1. ब. 'य'। 2. अ 'नि'। 3. अ 'चे'। 4. अ. 'क' नहीं है।

बलहद्दु सहोयरि अतुल-थामु ससिफलहे लि[5]हाविउ जेण जामु।
जसु हंसु जासु तिहुव[6]णे ण माइ वसुएव सुवहो विक्खाय [7]भाइ।
चउभुव जसु रणे परवल णिसुंभु दिढ कढिण वा[8]हु जग भुवण खंभु।
महु[9]महणहो को पडिमल्लु अत्थि पेसइ विवक्खु जसु[10] णयर पंथि।

घत्ता— सो संपहि[11] वल वलिउ[12] वसुह तिखंडहि गहियकरु।
जग को तहो सम सरिसु सिसुपाल जेण किउ दुक्करु।। 24।।

(9)

दुवई— सुरसुंदरिहि वयणु पुणजोएवि रूविणि मणे विसण्णि[1]या।
ता णारएण भणिय थिरु सुंदरि तुहु णर भुवणे धण्णिया।। छ।।

अरि-असुर-खयर-णर-मद्दणेण परिणेसहि तुहुँ पि जणद्दणेण।
कमलिणिहि हरिसु जिम जणइ मित्तु तेम[2] ताह दुहुमि सुणि मिलिउ[3] चित्तु।
तहिं अवसरे जग जं सारभूउ लेहाविउ पडि[4] रूविणिहि रूउ।

का सहोदर भाई है। वह कृष्ण ऐसा प्रतीत होता है, मानों बलभद्र रूपी शशि-फलक पर कृष्ण रूपी रात्रि का ही लेखन कर दिया गया हो। जिस (कृष्ण) का धवल यश तीनों लोकों में नहीं समाता, जो सर्वत्र विख्यात है, वसुदेव का पुत्र है, जिसकी दृढ़ एवं कठिन भुजाएँ रणभूमि में शत्रुओं का संहार करती रहती हैं और जो जग रूपी भवन के लिये खम्भे के समान हैं। अपने शत्रु को यम के नगर के मार्ग में भेजने वाले उस मधुमथन के सामने दूसरा कौन पराक्रमी हो सकता है?

घत्ता— उस हरि-कृष्ण ने इस समय अपने पराक्रम से पृथिवी के तीनों खण्डों को अपने अधिकार में ले लिया है। अत: इस संसार में उसके समान और कौन हो सकता है और वह शिशुपाल, जिसने अनेक दुष्कर्म किये हैं, उसकी उस कृष्ण से क्या समता?।। 24।।

(9)

नारद उस रूपिणी की प्रतिच्छवि तैयार कराता है। रूपिणी का नख-शिख वर्णन

द्विपदी— सुरसुन्दरी के मुख को देखकर रूपिणी पुन: मन में विस्मित हुई। तब नारद ने स्थिर होकर कहा — हे सुन्दरि तू इस नरलोक में धन्य है।। छ।।

—अरि असुर, खचर और नरों का मर्दन करने वाले जनार्दन से तू परणी (विवाही) जायगी। जिस प्रकार मित्र (सूर्य) के दर्शन कर कमलिनी हर्षित हो उठती है (उसी प्रकार वह रूपिणी भी प्रफुल्लित हो उठी)। दु:खी उस रूपिणी का चित्त हरि—कृष्ण से जा मिला।

उसी अवसर पर जगत् में सारभूत उस रूपिणी के रूप की प्रतिच्छवि का लेखन कराया गया। उसमें उसके

---

(8) 5. ब. जि। 6. अ. °अ°। 7. ब °वा। 8. अ णाईं।
9. ब. हो। 10. अ. मं°। 11. अ. इ। 12. अ. वलिवउ।

(9) 1. ब °न्नि°। 2. ब. तिम्म। 3. अ. य°। 4. अ. डि., ब डें°।

रत्तुप्पल-[5]णेवर चरण-[6]कंति   णहमणि दित्तिए उडु-गण तिणंति।
गूढइँ-गुफइँ तहि बालियाहें   कयली-कंदल सोभालियाहे।
पय-जुयल[7] खोणि[8]र णेउरेहिं   पोमाइउ जंघाजुयलु तेहिं।
उरु खंभइ[(1)] रइहरहँ भाइँ   मणि-रसणा तोरणु भरिउ णाइँ।
अइ वियड्ढ रमणि मज्झम्मि तुच्छि   गय-सवणहँ[(2)] णं उवलं[(3)] मियच्छि।
उत्तुंगहि पीण-पओहरेहिं   इल वलउ ण सुज्झइ किंपि तेहिं[(4)]।
मा कहिमि कुणेसहो मणिअ तोसु   जइ भज्जइ तो अम्हहँ ण दोसु।

घत्ता— सरल मुणाल भुवाहे[(5)] जसु अवला सु ण पुज्जइ।
लेहत्तयहिं अलंकरिउ गलकंदलु तहे छज्जइ।। 25।।

(10)

दुवइ— ससि सकलंकु क[1]मलु खेण वियसइ अणुवमु वयण पंकयं।
अद्धमियंक भालु भूजु[2]वलु वि ससहावइ [3]सुवंकयं।। छ।।

नूपुर सहित चरणों की कान्ति ऐसी लिखी गयी कि रक्त-कमल उसी प्रकार तिरस्कृत हो गये जिस प्रकार नभोमणि -- सूर्य की दीप्ति से उडुगण (तारागण) तिरस्कृत हो जाते हैं। फिर उस बालिका के गूढ़ गुल्फ (गाठें) लिखी गयीं। पुनः उस शोभावाली के कदली कंद (स्तम्भ) समान उरु लिखे गये। पद युगल में ध्वनि करते हुए नूपुरों से उसके जंघा युगल पद्मवत् दिखाई दे रहे थे। उसके उरु युगल रति गृह के दो स्तम्भों के समान शोभित हो रहे थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों मणि की रशना (कटिसूत्र) रूपी तोरण से भरे हुए (सजे हुए) हों। उसके विकट रमण फलकों के मध्य अत्यन्त तुच्छ कटि थी। उस मृगाक्षी के कानों तक विस्तृत नेत्र ऐसे प्रतीत होते थे मानों कमल-पुष्प ही हों।

उस कन्या के पीन-पयोधर इतने उन्नत थे कि उनके कारण पृथिवी का वलय (शरीर- मण्डल) कुछ भी नहीं सूझता (दिखाई पड़ता) था। उन (पीन-पयोधरों) को देखकर यदि किसी के मन में असन्तोष हो जाये तो मुझ (कवि) को लेशमात्र भी उलाहना मत देना और उन (कुचों) के भार से यदि कटि भग्न हो जाये तो भी उसका दोष मुझ (कवि) को मत देना।

घत्ता— जिस अबला कन्या की भुजाओं की समता सरल मृणाल भी कर पाने में समर्थ नहीं थे। उस रूपिणी का गलकंदल तीन रेखाओं से अलंकृत एवं सुशोभित हो रहा था।। 25।।

(10)

नारद ने रूपिणी का चित्रपट द्वारावती के राजा पद्मनाभ नारायण (कृष्ण) को समर्पित कर दिया

द्विपदी— शशि तो कलंक सहित है, कमल तो क्षण में विकसित होता है और मिट जाता है, इसलिए इसका मुखकमल दोनों की उपमा से रहित अनुपम है अर्थात् उस रूपिणी का मुख-कमल कलंक रहित और सदा विकसित रहता है। उसका भाल अर्धमृगांक के समान था। उसकी दोनों भौहें स्वभाव से ही अत्यन्त वक्र थीं।। छ।।

---

(9) 5-6. अ. "चलणं णठ्वणं"। 7. ब °रं। 8. अ. °लि°।
(10) 1. अ. 'क' नहीं है। 2. अ °जुभलु। 3. अ. सवंकयं।

(9) (1) इवै। (2) कर्णयोः। (3) उपलंभळ्ळ लाहणो। (4) पयोधरे।
(5) रुक्मिण्या।

अलिउल तमाल णिहु अइ सफारु वरहिण कलाउ णं चिहुर-भारु।
सव्वंगहि-सव्व-सुलक्खणाहे पडिलेवि रूउ मुणि चलिउ ताहे।
जो सच्चहाव कोहेण-तत्तु णिमि[4] सि[5]द्धइँ पुरि वारम[6]इँ पत्तु।
कालिंदिहि दहे कालियहो दमणु गोवियण-पियारउ गरुड-दमणु।
जरसिंधु-कंस-चंदक्क राहु दिट्ठउ कयणासणे पउमणाहु[(1)]।
बलहद्द सहिउ सो सहइ केम मरगय-मणि मुत्तिउ मिलिउ जेम।
णारउ पेछिवि हरिवीढु चइ[7]वि दोहिंमि पणविउ पय अग्धु घिववि।
संतोसेण सिंहासणे वइट्ठु कर-मउलिवि पुणु संचवइ विट्ठु।

घत्ता— कहि होए-विणु आगमणु एउ परमेसर कहहि महु।
मुणिणा तं णिसुणेवि पडु वि प[8]यंछिउ तासु लहु।। 26।।

(11)

दुवई— रूविणि रूउ णिएवि णारा[1]यणु मयण सरेहि सल्लिउ।
भूगोयरि किं खेयरि-किण्णरि किं गंधव्वि वोल्लिउ।। छ।।

पायाल कण्ण किं सुरकुमारि किं लच्छि किण्णु गंधारि गोरि।

उसके चिकुरभार (केश) अलि-कुल के समान अत्यन्त काले एवं तमाल के समक्ष अत्यन्त विस्तृत थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों मोर के पुच्छकलाप ही हों। इस प्रकार उस सुलक्षणा के समस्त अंगों के रूप-पट को लेकर वह मुनि चल दिया जो सत्यभामा के प्रति क्रोध से तप्त था — वह नारद मुनि निमिष मात्र में ही द्वारावतीपुरी में पहुँचा और (वहाँ राजकुल में पहुँच कर) कालिन्दी (यमुना) के द्रह में कालियानाग का दमन करने वाले, गोपीजनों के प्यारे, गरुड़ का दमन करने वाले, जरासन्ध और कंस के चन्द्र और सूर्य के लिए राहु के समान शत्रु—पद्मनाभ नारायण (कृष्ण) को कनकासन पर देखा। बलभद्र सहित वह पद्मनाभ किस प्रकार सुशोभित था? ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मरकत-मणि मोतियों से मिल कर सुशोभित होता है। नारद को देखकर सिंहासन छोड़कर दोनों ने चरणों में अर्घ दे कर प्रणाम किया, सन्तोष से सिंहासन पर बैठाया और दोनों हाथ मुकुलित कर विष्णु ने कहा —

घत्ता— हे परमेश्वर, इस प्रकार (बिना अवसरके) कहाँ से आगमन हुआ? मुझसे कहिए। मुनिराज ने उनके वचन सुन कर उन्हें शीघ्र ही उस कन्या का वह चित्र-पट समर्पित कर दिया।। 26।।

(11)

रूपिणी के सौन्दर्य से काम-पीड़ित होकर नारायण कृष्ण नारद से उसका परिचय पूछते हैं

द्विपदी— रूपिणी के रूप को देखकर नारायण — कृष्ण मदनबाणों से शल्य-युक्त हो गया और अपने मन ही मन में बड़बड़ाने लगा कि क्या यह कन्या भूमि-गोचरी है अथवा खेचरी किन्नरी है, अथवा गन्धर्व कन्या।। छ।।

"क्या यह पाताल (नाग) कन्या है अथवा सुरकुमारी, यह लक्ष्मी है अथवा गांधारी या गौरी? क्या यह बुद्धि

---

(10) 4. ब. 'वि'। 5. अ. सद्धें। 6. अ. व। 7. अ. ए। 8. अ डि। (10) (1) नारायण।

(11) 1. अ. र।

किं बुद्धि-सिद्धि किं कित्ति-सत्ति गाविति-सरासइ संति सत्ति।
पण्णय-कुले किं सुरलोय-मेत्ति[1] एहु उवलद्धउ भणु मुणि कहंति[2]।
मुणि[3] पभणइं णिसुण[2] मज्झु वयणु जहिं दिट्ठु एहु मइ णारि-रयणु।
उच्छवण-सालि घण-धणिर[3] छेत्ति वर वि[4]सउ एक्कु इह भरहछेत्ति।
उत्तरदिसि दाहिण जणिय हरिसु अइ मणहर धण-कणय वरिसु।
वेयब्भ[4] महा-तीरिणिहे तीरे मालइ मल्लिय सुरहिय समीरे।
तहे कुंडिणपुरु णामेण णयरु मयणाहि बहलु घणसारु पवरु।
घत्ता— चाउद्दिसु मह-महइ जहि अणुदिणु सुविसेसइँ।
णिम्मिउ णं धणएण अमराहिव आएसइँ।। 27।।

(12)

दुवई— तहिं कुसुमसरु देउ पुरवाहिरे णंदणवणे मणोहरो।
जेण[1] अणु[2] हंतु मुअवि जगु णडियउ हरि-बंभु वि पुरंदरो।। छ।।
तहिं भीसमु णामेण पहाणउँ खत्तिउ खत्त-धम्मु जगे जाणिउँ।
तासु पट्ट महएवि महासइ सिरिरूवेण[1] व णामें सिरिमइ।[2]
रूवकुमारु णामु तहि णंदणु सज्जण-जण-मण णयणाणंदणु।

या सिद्धि अथवा कीर्ति या शक्ति? क्या गायत्री है या सरस्वती? शान्ति है अथवा सती, यह पन्नगकुल की है अथवा सुरलोक कन्या? हे मुनि, ऐसी कन्या आपने कहाँ से प्राप्त की है?" यह सुन कर मुनि नारद ने कहा— "(हे नारायण) मैंने इस नारी-रत्न को जहाँ देखा है, उसके विषय में मेरा कथन सुनो। इसी भरतक्षेत्र में इक्षुवन तथा शालि के घने-घने क्षेत्रों के मध्य एक उत्तम देश बसा हुआ है, जिसकी उत्तर दिशा की दाहिनी ओर हर्षोत्पादक, अतिमनोहर धन-धान्य-कनक की वर्षावाला, वेदर्भा नाम की महानदी के तीर पर मालती-मल्लिका से सुगन्धित वायु वाला कुण्डिनपुर नामका नगर है, जो मृगनाभि बहुल एवं कर्पूर प्रधान कहा जाता है।

घत्ता— जो प्रतिदिन अपनी विशेषताओं के कारण चारों ओर श्रेष्ठता का प्रसार करता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों देवेन्द्र के आदेश से धनद ने ही उसका निर्माण किया है।। 27।।

(12)

चेदिपति के साथ रूपिणी के विवाह की तैयारी की नारद द्वारा नारायण को सूचना

द्विपदी— "वहाँ नगर के बाहर मनोहर नन्दनवन में कुसुमशर (कामदेव) नामक देव हैं, जिसने जगत में अरहन्त को छोड़कर हरि, ब्रह्मा एवं पुरन्दर को भी नचाया है।। छ।।

वहाँ क्षात्र धर्म को पालने वाला, संसार में प्रधान रूप से प्रसिद्ध भीष्म नामका राजा राज्य करता है। उसकी पट्टमहादेवी महासती लक्ष्मी एवं सौन्दर्य में यथार्थ श्रीमती नामकी प्रधान महारानी है। सज्जन जनों के मन एवं नेत्रों को आनन्द देने वाला रूपकुमार नामका उसका पुत्र तथा उससे छोटी सर्व सुलक्षणा, सुविचक्षणा रूपिणी

---

(11) 2. अ. णहुँ। 3. अ. ले। 4. ब. वसिउ।

(12) 1. अ. 'ण' नहीं है। 2. अ. 'ण'।

(11) (1) मैत्री। (2) कुत्रात्। (3) नारदः। (4) वैदर्भ।

(12) (1) लक्ष्मी। (2) श्रीमती।

तहो(3) कणिट्ठ एह सव्वं सुलक्खण रूविणि णाम धीय सुवियक्खण।
दिवसे चउत्थिए विवाहु हवेसइ चेइवइहि हत्थे(4) लग्गेसइ।
तिउराहिउ(5) णं तिउर(6) - पुरंदरु(7) तहो सिसुपाल णामु रणे दुद्धरु।
भड[3]परिमिउ हय-गय-रहवाहणु रूविणि पाणिग्गहणे स साहणु।
तहिं संपत्तु पवट्टिय तोसहिं मंगल-तूर लक्ख णिग्घोसहिं।

घत्ता— पुरवरे रत्था सोहें घरे-घरे गुडि उद्धरणु किउ।
घरे-घरे मंगल-सद्द घरे-घरे कलस दुवारे ठिउ।। 28।।

(13)

दुवई— घरे-घरे तोरणइँसुविसालइँ घरे-घरे तूर वज्जए।
सिसुपालहो पवेसे कुंडिणपुरे णं णवमेहु गज्जए।। छ।।

तं णिसुणेवि जलणु व घिय सित्तउ सिसुपालहो णामेण पलित्तउ।
उट्ठिउ सिंहासणहो जणद्दणु जो रण भरे भड-थड-[1]कयमद्दणु।
बलहद्दइ अत्थाणु विसज्जिउ कुंडिणपुरहो पयाणउ सज्जिउ(1)।
भम[2]-थम[3]-रह मयगइँ[4] चल्लिय मंडलिय वि सामंत वि वालिय(2)।

नामकी एक पुत्री है। आज से चौथे दिन उसका विवाह होगा। चेदिपति के साथ उसका लग्न होगा। वह चेदिपति त्रिपुराधिप है अथवा मानों वह त्रिपुर पुरन्दर ही है। रण में वह दुर्धर है। उसका नाम शिशुपाल है। अपरिमित भट, हय, गज, रथ, वाहन जैसे साधनों के साथ वह रूपिणी के साथ पाणिग्रहण करने हेतु वहाँ जा पहुँचा है। वह मंगल तूरों के लाखों निर्घोषों के साथ सन्तुष्ट होकर वहाँ रह रहा है।

घत्ता— उस उत्तम नगर की गलियों-गलियों में शोभा की गयी है तथा घर-घर में गुडियों के उद्धरण (चित्रण) किये गये हैं। घर-घर में मंगल शब्द—गीत हो रहे हैं तथा घर-घर के दरवाजों पर मंगल-कलश स्थापित किये गये हैं।। 28।।

(13)

जनार्दन सदल-बल कुण्डिनपुर पहुँचते हैं। नारद रूपिणी की फूफी को चुपचाप संकेत कर देता है

द्विपदी— घर-घर मे सुविशाल तोरण बनाये गये हैं। घर-घर में बाजे बज रहे हैं। राजा शिशुपाल के कुण्डिनपुर में प्रवेश करने पर वे बाजे नवीन-मेघों के समान गरज रहे हैं।। छ।।

नारद का कथन सुनकर तथा शिशुपाल का नाम सुनते ही वह जनार्दन घी सींची हुई अग्नि के समान प्रदीप्त हो उठा। रण के मध्य में भटों के थड (समूह) का मर्दन करने वाला वह जनार्दन सिंहासन से उठा। बलभद्र ने भी अपना आस्थान छोड़ दिया और दोनों ने कुण्डिनपुर की ओर प्रयाण की तैयारी की। वे घूमते हुए रहस्यमय गति से चले। साथ में माण्डलिक और सामन्त भी बुला लिये। रथों में मन तथा पवन से भी अधिक

---

(12) 3. अ प., ब ए।

(13) 1. अ. 'ड'। 2. अ. ड। 3. अ. ड। 4. अ न।

(12) (3) रूपकुमारस्य। (4) शिशुपालस्य। (5) त्रिपुराधिप.। (6) ईश्वर:। (7) इन्द्र।

(13) (1) दत्त। (2) व्याघुटिता:।

रहे मण-पवण-वेय-हय-जुत्तिय　　जो[5] कुस-कुस[6]ल सील णं सोत्तिय।
वहु पहरण [7]परिपूरिय संदणु　　तहि वलहद्दु चडिउ स जणद्दणु।
अरिदमणु वि सारहि आरूढउ　　विविह महाहवे[(3)] जो णिव्वूढउ[(4)]।
वाहिउ रहुरहसेण ण माइय　　कुंडिणपुरहो णियड संपाइय।

घत्ता— तहिं थाइवि णारेण सुरसंदरे राउले गंपिणु।
हरि-वलहद्दु पहुत्त फूइय[(5)] दाविय सण्ण करेविणु।। 29।।

(14)

दुवई— भीसम ससए ताम सा रूविणि वुच्चइ जाहिं तेत्तहिं।
पुज्जण-मिसेण काम सुरमंदिरु वहिरुज्जाणु जेत्तहिं।। छ।।

तहिं अवसरेसिंगारु करेवि[1]णु　　रूविणि सिवियाजाणे चेडविणु।
रायकुमारिहिं सेविय सुंदरि　　अच्छरविंदहि णाइ पुरंदरि।
वाहिरे कुंडिणपुर हो विणिग्गय　　णं गणियारि[(1)] गयहो सम्मुह गय।
णियइ कडउ सिसुपालहो केरउ　　ज[(2)] [illegible][2] [illegible][3] जणेरउ।
पुरवाहिरे आवासु पदिण्णउँ　　गुहर मंडवियहिं संच्छण्णउँ।

वेग वाले घोड़े जुते हुए थे। वे घोड़े कुश में कुशल थे। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों कुश चढ़ाने में कुशल स्वभाव वाले श्रोत्रिय-ब्राह्मण ही हों। साथ में अनेक प्रकार के प्रहरणों (आयुधों) से भरे हुए स्यन्दन (रथ) भी थे। ऐसे रथ पर जनार्दन सहित बलभद्र चढ़े। नाना प्रकार के युद्धों में कुशल अरिदमन नामका सारथी भी चढ़ा। रथ को चलाता हुआ वह इतना हर्षित था कि वह उसमें समा नहीं रहा था। इस प्रकार वह कुण्डिनपुर के निकट जा पहुँचा।

घत्ता— हरि बलभद्र प्रभृति को वहीं ठहरा कर नारद सुरसुन्दरी के राजकुल में गया और रूपिणी की फूफी सुरसुन्दरी को संकेत कर दिया। सुरसुन्दरी ने भी रूपिणी को संकेत करा दिया।। 29।।

(14)

फूफी (सुरसुन्दरी) के आदेश से रूपिणी नगर के बाहरी उद्यान में कामदेव की पूजा हेतु आती है

द्विपदी— तब राजा भीष्म की बहिन सुरसुन्दरी ने उस रूपिणी से कहा—"तुम नगर के बाहिरी उद्यान में पूजा के बहाने कामदेव के मन्दिर में जाओ।"

उसी समय उस रूपिणी ने शृंगार किया। राजकुमारियों से सेवित शिविका-यान में चढ़कर वह कुण्डिनपुर से उसीप्रकार बाहर निकली जैसे मानों शत्रु गज के सम्मुख हथिनी जा रही हो। वहाँ (मार्ग में) वह देवों को भी विस्मित करने वाले शिशुपाल के कटक को देखती है। कटक को नगर के बाहर आवास दिया गया था, जो सुघड़ मण्डपों से संछन्न था।

---

(13) 5-6. अ. जैसकुसलथ। 7. अ. परिपूरिय, ब. प्ररिय।

(14) 1. अ. °ण्पि। 2. अ. °उ। 3. अ. °वि।

(13) (3) संग्रामे। (4) समर्थ। (5) तस्याः फूफी।

(14) (1) हस्तिनी; (2) जनकंटकं।

दूसहिं(3) रवि-गम-छिंजहिं दूसिय णं महिवहु भूसणहिं वि[4]भूसिय।
कत्थवि मत्त-महागय-गज्जिय कत्थवि उउडिउ करह पवज्जिय।
कत्थवि चवल-तुरंग-महरवर कत्थवि सुहड[5] णिसिय असिवक्खर(4)।
इय पेच्छंति काम-सुर भवणहो गयवर तिय पच्छिम लय भवणहो।
तहि तहो अमरहो पुज्ज करेविणु[6] पुणु णिग्गय मणे विट्ठु [7]धरेविणु

घत्ता— ता सहसत्ति णिएहिं हरि-वलहद्द ससंदण।
परवल-दलण पयंड सक्कव पडिसक्कंदण।। 30।।

(15)

दुवई— रहिउ[1]यरेवि(1) झत्ति महुमह[2]णें अंचले धरिय तक्खणें।
रूविणि भणिय तेण हे(2) सुंदरि हउँ सो हरि सुलक्खणे।। छ।।

तुह कज्जें गिरिवण लंघेवि[3]णु इह आयउ वारमइ मुएविणु[4]।
करि पसाउ चडु-चडु लहु संदणु एम पयंपइ जाम जणद्दणु।
ता वालिय अह समुहँ णिहालइ चरणंगुट्ठइँ धर पोम्हालइ(3)।

दूष्य तम्बुओं से सूर्य की किरणें तक रुक जाती थीं। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों महीप के भूषणों से विभूषित (तम्बू) हों।

कटक में कहीं मत्त गज गरज रहे थे, कहीं ऊँट बलबला रहे थे। कहीं महाखुरवाले चपल तुरंग हिनहिना रहे थे। कहीं निशित (तीक्ष्ण) असि वाले सुभट बख्तर (कवच) धारण किये थे। यह देखती हुई वह उत्तम स्त्री रूपिणी भवन के पश्चिम भाग से कामदेव के भवन में प्रविष्ट हुई। वहाँ उसने कामदेव की पूजा की फिर मन में विष्णु को धारण करती हुई वहाँ से निकल पड़ी।

घत्ता— तभी उस कन्या ने सहसा ही परवल (सेना) दलने में प्रचण्ड शक्र की तरह प्रतीन्द्र—प्रतिनारायण हरि और बलभद्र को रथ में देखा।। 30।।

(15)

जनार्दन रूपिणी को उठाकर रथ में बैठा लेते हैं और पाँचजन्य शंख फूँक देते हैं। युद्ध की तैयारी

द्विपदी— सहसा ही रथ से उतर कर मधुमथन ने तत्क्षण उस रूपिणी का अंचल पकड़ लिया और बोले— "हे सुलक्षणे, हे सुन्दरि, हे रूपिणि, मैं वही हरि हूँ"।। छ।।

"केवल तुम्हारे लिए ही मैं द्वारावती को छोड़ कर पर्वतों एवं वनों को लाँघता हुआ यहाँ आया हूँ। अब कृपा करो। शीघ्र ही रथ में चढ़ो।" जब जनार्दन ने इस प्रकार कहा। तब वह बालिका नीचे की ओर देखने लगी और चरण के अंगूठे से धरा (भूमि) पपोलने लगी तथा सशंकित होकर अपने बाँके नेत्रों से देखने लगी। वह

---

(14) 4. ब °गि। 5. ब °म। 6. अ °म्मि°। 7. अ °ण°।

(15) 1. अ °परे। 2. अ. °ण°। 3. अ. °म्मि°। 4. अ °म्मि°।

(14) (3) किरण। (4) तीक्ष्ण।

(15) (1) उत्तरित्वा। (2) विल्लुना। (3) स्पर्शयति।

णयण-ससंक वंक करि जोवइ तणु झंकइ संकु सइव ढोयइ।
अइ सवीड पर पासु ण छंडइ हरि-[5]हलि लज्जइ किं अवरुंडइ।
इय चिंतिवि णियमणे गंजोल्लिय अवरुंडेवि णिय रहवरे घल्लिय।
पूरिवि [6]पंचाणणु[(4)] तहिं तुरियउ णं जयसिरि लेविणु णी[7]सरियउ।
ता उच्छलिउ गरुउ कोलाहलु सण्णज्झइ सिसुपाल महावलु।

घत्ता— हिलि-हिलंतु हय थट्टरणे पक्खारिय गय वि गुडिय।
कय सण्णाह पयंड राउ रूवि जोहिवि चडिय।। 31।।

(16)

दुवई— ता पडु-पडह ढक्के भेरी-रव-पूरिय दिम्मुहंतरा।
कडुव्वि[(1)] हडवि ण जाइ भम संकडे मिलिय अणेय णरवरा।। छ।।

सिसुपाले भीसम णंदणेहिं[(2)] [1]संचल्लहिं हरि-करि संदणेहिं।
बहु छत्त-चमरामरु धय-धयेहिं रण-खंभ-कोंत मोग्गर-सएहिं।
कुंतयहिं णिविड-सिक्किरि-घणेहिं रवियर[(3)]-छाइय णं णाहि घणेहिं।

संकुचित शरीर हो रही थी। वह अपने शरीर को कीलित हुए के समान ढो रही थी। वह अत्यन्त लजा रही थी। परन्तु (हरि के) पास को नहीं छोड़ रही थी। हरि और हलि उसका स्पर्श करने में लजा रहे थे, कि उसका स्पर्श कैसे करें? ऐसा अपने मन में विचार कर हरि ने गंजोली हुई रूपिणी को पकड़कर अपने श्रेष्ठ रथ में घाल लिया (पटक लिया) और वहाँ तुरन्त ही हरि ने पाँचजन्य शंख पूर दिया (बजा दिया)। ऐसा प्रतीत होता था मानों वह जयश्री को लेकर ही निकल पड़ा हो। उससे वहाँ बड़ा भारी कोलाहल हुआ, उसे सुनकर शिशुपाल की महासेना तैयार होने लगी।

घत्ता— लौह कवच धारण कर प्रचण्ड राजरूप योद्धा हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा अपने शरीर को पखारते हुए हाथियों पर सवार होकर रणभूमि में एकत्रित होने लगे।। 31।।

(16)

युद्ध की तैयारी : रूपिणी जनार्दन की परीक्षा लेती है

द्विपदी— तभी पटु-पटह ढक्क एवं भेरी के शब्दों से दिग-दिगन्तर भर उठे। विकट कटक में भी (युद्ध का) भ्रम न रहा। संकट में अनेक नर-श्रेष्ठ आ मिले।। छ।।

अनेक छत्रों तथा चमरों से युक्त राजा शिशुपाल एवं राजा भीष्म के राजकुमार पवन से प्रेरित सैकड़ों ध्वजाओं वाले घोड़े, हाथी एवं रथों द्वारा चले। उनके रणखम्भ, कोंत, मुद्गर अत्यन्त भयानक कुन्त तथा घनी सिकड़ियों से सूर्य की किरणें भी ढंग गयीं। ऐसा प्रतीत होता था मानों आकाश को घने मेघों ने ही ढँक लिया हो। जब संग्राम का प्रवर तूर बजा तभी रूपिणी त्रस्त हो उठी और बोली—"मेरे कारण ही यह अयुक्त कार्य

---

(15) 5. अ. व°। 6. अ. पंचयण्णु। 7. ब. °ह°।
(16) 1. अ. 'सं' नहीं है।

(15) (4) पचजनु संखु।
(16) (1) कटकु। (2) रुक्मकुमार। (3) रविकिरणा।

संगाम-तूर जहिं पवर रसिय तहिं अवसरे रूवाए वि तसिय।
पभणइ महु कारणे किउ अज्जत्तु तुम्ह किर ए जणवलु बहुत्तु।
तं णिसुणिवि भणिउ जणद्दणेण देवइ वसुएवहो णंदणेण।
सुणि सुंदरि महु पडिमल्लु णत्थि सहु सरेहिं[2] रणु ण करहि हत्थु।
अहवा पच्चउ दक्खवमि मुद्धि सुणि सुंदरि णिय [3]कुलवंस-सुद्धि।
पवि-मणिवि सअंगुच्छलउ लेवि संचूरिउ णियकरयलेहिं णेवि।
अवरूवि पडिजंपइ पुणु विवाल जइ खुडहि खुरप्पइ सत्ततार।

घत्ता— एक्कहु-एक्कु ण मिलइ जो[(4)] खल इव अइ विसमठिय।
ते एक्के वाणेण जइ-पइ दो खंडी किय।। 32।।

(17)

दुवई— ता तुह होहि देव णारायणु एहु संदेहु तुट्टए।
अहवण कुणहि ताल-परियट्टणु[(1)] तो महु [1]संति भट्टए[2]।। छ।।

तं णिसुणिवि कुवि[3]यउ वासुएउ अहिमुह[(2)] चप्पिवि किउ ताल-छेउ।
सत्त वि पाडिय एक्कें सरेण तिउरहो[(3)] पायारवि णं हरेण[(4)]

किया गया है। आकाश में क्या तुम्हारा जनबल बहुत है?" उसका कथन सुनकर देवकी वसुदेव के नन्दन जनार्दन ने कहा—"हे सुन्दरि सुनो, मेरे समान प्रतिमल्ल (दूसरा मल्ल) नहीं है। मैं बाणों से नहीं हाथ से रण करता हूँ, अथवा हे मुग्धे, मैं प्रत्यक्ष ही दिखा देता हूँ। अपने कुलवंश की शुद्धि स्वरूप हे सुन्दरि, सुनो—तभी जनार्दन ने अपनी अँगूठी में जड़े हुए वज्ररत्न को निकाल कर अपने ही करतल से चूर-चूर कर डाला। यह देखकर भी वह बाला रूपिणी पुन: बोली—"आप ऐसे सात ताल वृक्षों को खुरपा से काटो।"

घत्ता— "जो एक से एक नहीं मिला हुआ है और जो खल — दुष्टों की तरह विषम (ऊबड़-खाबड़) रूप से स्थित हैं। उनके क्या तुम अपने एक ही बाण से दो-दो टुकड़े कर सकते हो?"।। 32।।

(17)

शिशुपाल एवं रूपकुमार (रूपिणी का भाई) हरि-बलदेव से भिड़ जाते हैं

द्विपदी— तभी मेरा सन्देह टूटेगा और मैं तुम्हें नारायण—कृष्ण समझूँगी और यदि तालवृक्ष को नहीं काटोगे तो मेरे मन की शान्ति भ्रष्ट हो जाएगी। ।। छ।।

रूपिणी का कथन सुनकर वासुदेव कुपित हो उठा और बोला—"ताल वृक्षों का छेदन तो क्या मैं तो सर्प के मुख को चाँप कर उसके विष का भी छेदन कर सकता हूँ।" यह कहकर उसने उन सातों ताल वृक्षों को एक ही बाण से पाड दिया। ऐसा प्रतीत होता था मानों महादेव ने त्रिपुर के प्राकार को ही पटक दिया हो।

(16) 2. अ. और ब. मे 'हिं' नहीं है।
(17) 1. अ. भ॰। 2. अं. वंदए। 3. अ. हु॰।

(16) (4) जेहक्षा।
(17) (1) परिवर्तनं। (2) सर्पमुखं। (3) त्रिपुरदैत्यस्य जथा। (4) ईश्वरेण।

तं पेच्छिवि रूविणि भणइ एम — महु ताउ[4]-भाइ रक्खियहि देव।
ता पलय-समुद्दु वसु[5]ह पमुक्कु — सिसुपालुससाहणु झत्ति ढुक्कु।
अवरू वि रूउ वि रूविणिहि भाइ — उच्छलिउ पलय-समुद्दु णाइ।
पहरण-दुज्जउ[(5)] णं गयणु घाइ — [6]चालिउ बलु पुहमिहि कहिण माइ।
सिसुपाल वि रूवकुमारु सूर — णं भिडिय विडप्पहु[(6)] चंद-सूर।
वावल्ल-भल्ल-कण्णिय-खुरुप्प — मेल्लंति सुहभड[7] कण्णहहो सदप्प।
असि-सूल स-सव्वल केविभिडिय — जह मय-समूह केसरिहि चडि[8]य।
फेरंति कुंत केवि सेल्ह हत्थ — हलिणा हल-पहरहिं किय णिरत्थ।

घत्ता— पुणु धणु-गुण-टंकारु किउ परवल-घण-पवणेण।
हक्किउ सो[(7)] समुहुं तु सिसुपालु वि अरिदमणेण[(8)]।। 33।।

(18)

दुवई— वुच्चइ जाहि-जाहि मा पइ सहि जम-मुह-कुहर-दुद्धरे।
तुहुं सिसुपाल काल-खद्धोसि किं[(1)] जाहि अहि[1]ण्ण-कंधरे।। छ।।

वासुदेव के इस कार्य को देखकर रूपिणी बोली—"हे देव, मेरे तात और भाई की रक्षा करना। तभी समुद्र एवं वसुधा पर प्रलय मच गया। राजा शिशुपाल अपने साधनों सहित वहाँ आ ढुका और इधर उस रूपिणी का भाई प्रहारों में दुर्जय रूपकुमार भी प्रलय कालीन समुद्र के समान वहाँ आ उछला। ऐसा लगता था मानों गगन का घात होने वाला हो। वह (रूपकुमार) अपने इतने अधिक सैन्य समूह के साथ चला कि वह पृथिवी पर कहीं समा नहीं पा रहा था। शिशुपाल एवं शूरवीर रूपकुमार नारायण से ऐसे भिड़े कि प्रतीत होता था मानों सूर्य एवं चन्द्र राहु से जा भिड़े हों। योद्धागण वावल्ल, भल्ल, कणिक, खुरप्प आदि को दर्प सहित कृष्ण की तरफ छोड़ने लगे। कोई सुभट तो असि लेकर भिड़ा, कोई शूल लेकर भिड़ा और कोई सव्वल लेकर उसी प्रकार आ भिड़े जिस प्रकार मृगसमूहों पर केशरी आ चढ़ता है। कोई सुभट तो कुन्त फेरता था और कोई हाथ में लेकर शैल फेरता था। किन्तु हली—बलदेव ने तत्काल ही अपने हल प्रहरण से उन सबको निरर्थक कर दिया।

घत्ता— पुन: परबल — सेना रूपी मेघों के लिए पवन के समान हली ने धनुष की डोरी का टंकार किया। अरिदमन नामक कृष्ण के सारथि ने उन्हें शिशुपाल के सम्मुख हकाया (ला खड़ा किया)।। 33।।

(18)

शिशुपाल एवं हरि-हलधर का बाण-युद्ध

द्विपदी— अरिदमन ने कहा—"जा-जा रे शिशुपाल, दुर्धर यममुख के छिद्र में प्रवेश मत कर। हे शिशुपाल तू क्या काल का खाया हुआ है? जो अहीन (नागिन) के कंधर में जा रहा है।" ।। छ।।

---

(17) 4. अ 'द'। 5. अ. 'भु'। 6. अ. में यह पंक्ति नहीं है। 7. ब. भम; 8. ब. 'म'।

(18) 1. अ 'दि'।

(17) (5) आवर्दै दुर्जय। (6) राहुणे। (7) शिशुपाल:। (8) कृष्ण सारथिना।

(18) (1) किं बहुना।

तं णिसुणेवि सिसुपालु पलित्तउ सत्तच्चि[2] व घिय-घडेण पसित्तउ।
हरिहे बाण पंचा[2]स पमेल्लइ ते णारायणु दसहिं पपेल्लइ।
सिसुपालइँ सउ[3] सरइँ पमुक्कउ सो[4] णारायण-पासु ण[3] ढुक्कउ।
वीसहिं सरहिं किपउ सय सक्करु[5] वज्जु णिहायइँ णं गिरिकक्करु।
पुणु सिसुपाल मुयइ सर धोरणि बिणिवि अतुल-पयंड-महारणे।
इयहरि सिसुपालहो रणु वट्टइ भड-थड बलहो भिडिवि आवट्टइ।
सुण तुरंगु सुण करि सुण रहवरु सुण धउ-छत्तु चिंधु सुण णरवरु।
जोणा सीरिहिं सर पहरहिं भिण्णउँ कासु वि सिर कर-जुवलु वि छिण्णउँ।
कासु वि अंतावलि णिय गिद्धहिं सिर करोडि पुणु अंजण सिद्धहिं।
तणु सिवाहि जीविउ सुर-गणियउ[6] जसु पुणु दिण्णु भडेण णिय-धणियउ[7]।

घत्ता— इम चाउ करेविणु अंतयाले गउ कोवि भडु।
कासु वि सिरु पडिउ असि भामिरु रणेँ णडइ धडु।। 34।।

अरिंदमन का कथन सुन कर शिशुपाल उसीप्रकार क्रोध से प्रज्वलित हो उठा जिस प्रकार घी के घड़े से सींची हुई सप्तार्चि की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो जाती है। शिशुपाल ने हरि के ऊपर पचास बाण छोड़े। नारायण ने उसके उन बाणों को केवल दश बाणों से ही पेल दिया (निरर्थक कर दिया)। पुनः शिशुपाल ने सौ बाण छोड़े। किन्तु वे नारायण के पास तक भी न पहुँच सके। नारायण ने अपने बीस बाणों से उन बाणों को उसी प्रकार खण्ड-खण्ड (शत-खण्ड) कर डाला, जैसे वज्र के घातों से पर्वत खण्ड-खण्ड में बिखर जाता है।

पुनः शिशुपाल ने धोरिणी नामक बाण छोड़ा। दोनों का अतुल प्रचण्ड महारण हो रहा था। इस प्रकार दोनों हरि एवं शिशुपाल के रण में भड समूह बलभद्र से भिड़ते थे और लौट जाते थे। उस युद्ध में तुरंग शून्य हो गये, गज शून्य हो गये और रथवर भी शून्य हो गये। (अर्थात्) घोड़ा, हाथी एवं रथ सभी नष्ट हो गये। ध्वजा, छत्र, चिह्न भी शून्य हो गये। अनेक नरश्रेष्ठ भी शून्य हो गये।

ऐसा कोई नहीं बचा जो सीरी (बलभद्र) के शर प्रहारों से छिन्न-भिन्न नहीं हुआ हो। किसी का शिर और करयुगल छिन्न हो गया तो किसी की अंतावलि (अंतड़ियां) गृद्ध पक्षी ले भागे। करोड़ों सिर अंजन सिद्ध ले भागे। शिवा (शृगाली) ने किसी के शरीर को जीवित स्वर्ग पहुँचा दिया (खा लिया), तो किसी सुभट ने अपनी धन्या को यश प्रदान किया।

घत्ता— इसी प्रकार कोई भट अंतकाल में शरीर त्याग कर चला गया। तो किसी सिरकटे भड का धड़ तलवार घुमाता हुआ रणभूमि में नाचने लगा।। 34।।

---

(18) 2. अ. 'ण्णा' 3. ब. 'ण'।

(18) (2) अग्निवत् (3) शतं शर-समूह। (4) बाणेन। (5) शतखण्ड। (6) देवाङ्गनायां। (7) स्वामिनः।

(19)

दुवई- हरि-सिसुपाल भिडिय जहि विण्णि वि णहे पेच्छंति सुरवरा।
एक्कहो एक्कु णवइ उह[1]ट्टइ विहिमि वहंति वक्खरा।। छ।।

तो सिसुपालएँ भिउडि कराएँ।
हरि पच्चारिउ अइणिरु[2] वारिउ[(1)]।
अरे गोवालय वण्णइँ कालय।
एह सोमालिय भीसम-वालिय
लेविणु चल्लिउ मुह सरु सल्लिउ।
मरहि णिरुत्तउ वल-संजुत्तउ।
तो हरि जंपिउ रोसइँ कंपिउ।
रूविणि वेसइँ अज्जु विसेसइँ।
मिच्चु पढुक्किय विहिणा मुक्किय।
साडिय वाहहँ सउ-अवराहहँ[(2)]।
जं मइँ खमियउ रोसें दमियउ।
पुणु चेईवइ[(3)] गयवरु चोवइ[(4)]
मंडिउ रहवरें हउ से[3]ल्लइ हरि।

घत्ता --- महुमहणेण रहंगु[(5)] घुडुवंतु तहो मेक्कउ।
कालचक्कु कंठग्गें णं सिसुपालहो ढुक्कउ।। 35।।

---

(19)

तुमुल युद्ध : मधुमथन शिशुपाल पर रथांग-चक्र छोड़ता है

द्विपदी— जब हरि शिशुपाल दोनों ही भिड रहे थे, तब आकाश में सुरवर देख रहे थे। एक से एक लड़ रहे थे। कोई नहीं पीछे हटते थे। दोनों ही बख्तर (लौह-कवच) धारण किये हुए थे।। छ।।

भयंकर भृकुटि वाले शिशुपाल ने हरि को अत्यन्त कर्कश वचनों द्वारा फटकारा और बोला—"अरे गोपालक, वर्ण से काले, राजा भीष्म की इस सुकुमार बालिका को लेकर चल दिया और मुझे बाण चुभो दिया। बल संयुक्त अब तू मर।"

तब रोष से काँपते हुए हरि ने कहा---"रूपिणी के वेष में विधि द्वारा विशेष रूप से छोड़ी हुई तेरी निश्चय ही आज मृत्यु आ चुकी है। याद रख कि मैं वही कृष्ण हूँ जिसने द्रौपदी की साडी खींचने वाले अपराधी 100 कौरवों को भी क्षमा कर अपना क्रोध दाब लिया था।"

पुनः चेदिपति शिशुपाल ने गजवर को प्रेरित किया। रथवर में संस्थित हरि ने भी घोड़ों को प्रेरित किया।

घत्ता--- मधुमथन ने रथांग-चक्र को घुमाकर शिशुपाल के ऊपर छोडा। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों काल-चक्र ही उसके कण्ठाग्र पर पड़ा हो।। 35।।

---

(19) 1. अ. रह। 2. अ. र। 3. अ. ल्लें।

(19) (1) कर्कश वचनैः। (2) श्री अपराध। (3) शिशुपाल। (4) प्रेरयति। (5) चक्र।

(20)

दुवई— हउ सो[(1)] तेण[(2)] कंठे वक्खर मणि-मय-कुंडल-मउड-मंडियं।
रण सरवरि वि सेवि सुक्खंगइ[(3)] सिर-कमलं पि खंडियं।। छ।।

रूवकुमारहो बलहद्दइँ-बलु[1] पाण-सेस किउ कोवि विहलंघलु।
कोवि दस-दिसहिँ पणट्ठउ जाम[2]हिँ रूवेण[(4)] हलि वि पिसक्केण ताम[3]हिँ।
हउ[(5)] वच्छयलेण तहो तणु भिंदिउ बलहद्देणावि तहो [4]धणु छिंदिउ।
कण्णिय-वाणें हणेवि थणंतरे जा भणेइ किर वइवस-पुरवरे।
ता रूविणि हिय-वयणु परियाणिउ सो फणि-पासइ बंधिवि आणिउं।
पुणु भइणीए भाइ मेल्लाविउ कुंडिणपुरे णिय-णिलयहो पाविउ।
वहु[(6)] संजुउ चउरंग-समिद्धउ रहु खेडवि हरि चलिउ पसिद्धउ।

घत्ता— हरि वलहद्दु वि वेवि हरिसइ अंगे ण माइय।
रूविणि जय[(7)]-सुपसिद्ध-पुरि-वारमइ पराइय।। 36।।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइ-सिद्ध-विरइयाए[5] बीउ संधी परिसमत्तो।। संधी: 2।। छ।।

---

(20)

शिशुपाल-वध एवं हरि का रूपिणी के साथ द्वारावती वापिस लौटना

द्विपदी— सरोवर में उत्पन्न कमलनाल के तन्तुओं को खाने वाला चक्रवाक पक्षी जिस प्रकार कमल को खंडित करता है उसी प्रकार उस हरि के चक्र ने रण रूपी सरोवर में शिशुपाल के कण्ठ में लगकर बख्तर और मणिमय कुण्डल तथा मुकुट से मण्डित शिर कमल को खण्डित कर दिया।। छ।।

बलभद्र ने निश्चय से रूपकुमार का प्राण शेष कर दिया अर्थात् प्राण बचा दिये। तब कोई तो विफल होकर भाग गया और अन्य अनेक दशों-दिशाओं में भाग गये। रूपकुमार ने भी हली को छोड़ दिया।

हयग्रीवहर हरि ने शिशुपाल का शरीर भेद दिया। बलभद्र ने भी उसका धनुष छेद दिया और वक्षस्थल में अपने कनिक बाण को मारकर उस शिशुपाल से कहा—"अब यमपुर में वास कर।"

इधर उस रूपिणी के हृदय एवं मुख से उसकी अन्तरंग भावना को जानकर उस शिशुपाल को नागपाश में बाँध कर उसके सम्मुख ले आये। पुनः भगिनी से भाई का मिलाप कराया गया और कुण्डिनपुर में उसे अपने घर पहुँचा दिया गया।

वधु सहित चतुरंग सेना से समृद्ध वह प्रसिद्ध हरि भी रथ को खदेड़ कर चल दिया।

घत्ता— हरि और बलभद्र दोनों के ही अंगों में हर्ष नहीं समाया। दोनों ही रूपिणी सहित जगत् में सुप्रसिद्ध द्वारमतीपुरी को लौटे।। 36।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली, कवि सिद्ध विरचित प्रद्युम्न कथा में शिशुपाल वध एवं रूपिणी-कन्यापहरण नामकी दूसरी सन्धि समाप्त हुई।। सन्धि: 2।। छ।।

---

(20) 1. ब. घ°। 2. अ. 'व'। 3. अ. 'व'। 4. अ. त।
5. अ० सिसुपाल-वहणं रूविणि-कन्नाहरणं णाम°।

(20) (1) सिसुपालः। (2) चक्रेण। (3) चक्रेणांखि चक्रवाके।
(4) रूपकुमारेण। (5) मारयित्वा। (6) वधु संजुक्तः। (7) जगति।

तीउ संधी

(1)

गाहा— तिण्णि वि चल्लियइँ गंजोल्लियइँ हरि-बलु रूविणि तहो ठायहो।
देसहु प[1]हसीय मुहहिं सोरट्ठहो णिरु विक्खायहो।। छ।।

रहम्मि[(1)] तुरंगम खेडिय जाम मणेण[(2)] पहंजण[(3)] - वेएण ताम।
णियंतइ गामाराम - पुराइँ गिरी णयरं पि हुंतइँ ताइँ।
जहिं कलकेलि-लवंग-पियंग सचंदण-दक्ख-कयंब-विडंग।
सहारस कोइल-सद्दवमालु सरोवर ताल-तमाल-विसालु।
लयाहरु तत्थ मणोहरु दिट्ठु रई-रस-लोलु सहेण ण विट्ठु।
पयंपिउ रूविणि तेण मयच्छि मह[(4)]-मुह[2] अज्जु मुहुत्त प[3]यच्छि।
तहिं पिहुयासणु[(5)] सक्खि करेवि विवाहिय हत्थइँ हत्थु धरेवि।
कियउ कलयंठिवि मंगलचारु झुणेइ अलीउलु गेउ सुसारु।
सिहंडि पणच्चिय णिट्ठु रसालु पढंति सुकीरवि कव्व[(6)]-[4]वमालु।

तीसरी सन्धि

(1)

सौराष्ट्र के मार्गवर्त्ती एक लतागृह में विष्णु ने रूपिणी से अग्नि की साक्षी पूर्वक पाणिग्रहण कर लिया

गाथा— तीनों हरि, बलदेव और रूपिणी रथ में बैठ कर गंजोलते (हंसी मज़ाक करते) हुए चल दिये और मार्ग में ठहरते हुए वे अति-विख्यात सोरठ देश की ओर चले।। छ।।

जब रथ में जुते हुए घोड़ों को खेदा, तो वे मन एवं पवन के वेग से चले। वे तीनों ही ग्राम, आराम (उद्यान) पुरों, पर्वतों और नगरों का प्रेक्षण करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

जहाँ सुन्दर केलि (केला), कंकेलि (अशोक), लौंग, प्रियंगु, चन्दन सहित द्राक्षा, कदम्ब, विडंग, सहारस (सहकार आम) के वृक्ष देखे, जिन पर कोयलें मधुर शब्द कर रही थीं। विशाल सरोवर तथा विशाल ताल एवं तमाल वृक्ष भी देखे। वहाँ उन्होंने एक विशाल लताघर भी देखा (जिसे देखकर) रति रस में लोल वह विष्णु रति को नहीं सहन कर सका। अत: उसने रूपिणी से कहा—"हे मृगाक्षि, आज (अब) मेरे मुख की मुहुर्त्त भर प्रतीक्षा तो कर।" उसी समय वहाँ अग्नि को साक्षी कर हाथ पर हाथ रखकर विवाह कर लिया—पाणिग्रहण कर लिया। कलयण्ठी कोकिलों ने मंगलाचार किये, अलिकुल भ्रमर सुसार गीतों की ध्वनि करने लगे। शिखण्डी—मयूर रसाल नृत्य करने लगे और शुकी—कीर भी काव्यमाला पढ़ने लगे।

---

(1) 1. ब सम्मुहइ। 2. अ °हा। 3. अ °पं। 4. ब.×।

(1) (1) रथविषये। (2) मनोवेगेन। (3) वायुवेगेन। (4) मम मुखं। (5) अग्नि। (6) कोलाहलु।

घत्ता — लय-मंडवे णवरे आणंदयरे वेइल्ल-जाइ-मचकुंदइ।
नलहद्दु वि वरहो तहो वहुवरहो सएँ हत्थइँ चंदणु वंदइँ।। 37।।

(2)

गाहा — कप्पूरायर-मयरंद-वासिए तत्थ तम्मिलय-भवणे।
रयलीला भुंजित्ता संचल्लिउ पुणु वि महुमहणे।। छ।।

पुरि-बारमइहिं जाम पराइय ता सवडंमुह सयल वि आइय।
णर-णरवइ णायर-जणु मिलियउ पुर-परियणु वि सहरिसइँ चलियउ।
रच्छाच्छोह भमाडिय पट्टणे अरि-णरणाह सेण्णदलु वट्टणे।
तूर-णिणायइँ किंपि ण सुम्मइँ णारिहिं उच्छयाहिँ जहिं गम्मइँ[1]।
जिणि सिसुपालु रणंगणे वहियउ सो णारायणु रुविणि सहियउ।
परमोच्छाहइँ णयरे पइसइ अण्णइँ अण्णहो जुवइहिं दीसइ।
कावि णारि तंबोलहु भुल्लिय णिग्गय लहु आमलय मुहुल्लिय[2]।
काइँ वि घुसिणेँ अंजिय-णयणइँ अंजणेण पीयल पुणु वयणइँ।
काइँ वि डिंभु चडाविउ कडियले सिरु विवरीउ करिवि पयउरयले[3]।
रोवंतहो थणु चलणहिं लावइ जंपइ पेक्खु-पेक्खु हरि आवइ।

घत्ता— आनन्दकारी बेला, जाति (जुही) एवं मचकुन्द पुष्पों से सुशोभित बलभद्र ने उन श्रेष्ठ वधु-वर को अपने हाथ से चन्दन एवं वन्दन प्रदान किया।। 37।।

(2)

हरि — नारायण का द्वारामती में प्रवेश। नगर की विह्वल युवतियों का वर्णन

गाथा— कर्पूर-अगर की मकरन्द से वासित उस लता भवन में रति-क्रीड़ा भोग कर वह मधुमथन पुन: वहाँ से चल दिया।। छ।।

जब द्वारावती पुरी में लौटा तो सभी लोग उसके सम्मुख आ रहे थे। मनुष्य, राजा और नागरजन तथा नगरी के अन्य परिजन भी हर्ष सहित मिलने चले। पट्टन में शत्रु राजाओं की सेना का मर्दन करने वाली सुरक्षित अक्षौहिणी सेना को घुमाया गया। तूरों के निनादों से कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था। नारियाँ भी बड़े उत्साह के साथ वहाँ गमन कर रही थीं। जिसने रणांगण में शिशुपाल का वध किया था, रुपिणी सहित उस नारायण ने परमोत्साह से नगर में प्रवेश किया। युवतियाँ एक दूसरे को (संकेत से) उसे दिखाने लगीं। कोई नारी ताम्बूल भूलकर बहुल आमलों को मुख में डाल कर निकली, किसी नारी ने घुसृण (घिसे हुए चिकने चंदन) को नयनों में आँज लिया। पुन: अंजन से अपने मुख को पोत लिया। कोई युवती अपने शिशु के पैर ऊपर एवं सिर नीचे किए हुए ही उसे अपने कटि भाग में चढ़ाकर भाग खड़ी हुई और उस रोते हुए बालक के चरणों को स्तन से लगाने लगी और दूसरी नारियों से बोलने लगी कि देखो-देखो हरि आ रहा है।

(2) 1 ब. न

(2) (1) गम्यते (2) आमलकं प्रक्षिप्य (3) स्कन्धतलपत्ल

घत्ता- इय विंभिय मणहो जुवई जणहो पेक्खंतहिँ लोयहिँ दिट्ठउ।
वलरूविणि सरिसु वड्ढिय-हरिसु पुरि[2] [illegible] ।। 34 ।।

(3)

गाहा— दहि-दोवक्खइँ-चंदण णाणाविह कुसुम-फल समिद्धेहिँ।
णवि लब्भइ संचारो वद्धावंतेहिँ णायर-जणेहिँ ।। छ ।।

परिपूरिउ मुत्ताहल-चउक्कु जल-भरिउ पुरिउ[1] मणि-कलसु मुक्कु।
वर-पड-पच्छाइय कणयवीढे भीसम-सुयाइं सहु रयण-लीढे।
उवविट्ठु-विट्ठु जणु सयलु महइ णं जिणवरु खंति-समाणु सहइ।
वहु मंगल धवलुब्भासिणीउँ कत्थवि णच्चंति सुवासिणीउँ।
कत्थवि वज्जहिँ पडु-प[1]डह[2] पवर कत्थवि विणोय विरइयहिँ अवर।
तं पेक्खेवि मणे णायरहो हरिसु महुमहणु वि पुणु घण कणयवरिसु।
तोसियइँ विविह दुत्थिय-जणाइँ वंदियण वि खुज्जय णाम[3]णाइँ।
वलहद्दु पयत्थइ पुणु वि दाणु रूविणि वि रणि[2] हरि णाइँ माणु।

घत्ता— इस प्रकार लोगों ने विह्वल मन से देखती हुई उन युवतिजनों को देखा। इस प्रकार बढ़े हुए हर्ष वाले उस हरि ने बलभद्र एवं रूपिणी के साथ पुरि द्वारामति में प्रवेश किया।। 34 ।।

(3)

हरि एवं रूपिणी का द्वारामती के नागरिक जनों द्वारा अभिनन्दन

गाथा— दधि, दूर्वा, अक्षत, चन्दन तथा नाना प्रकार के पुष्पफलों से समृद्ध "वृद्धि को प्राप्त हो" इस प्रकार बधाई देने के लिए आये हुए नागर जनों की भीड़ के कारण हरि को संचार—मार्ग नहीं मिल रहा था।। छ ।।

किसी ने मुक्ताफलों से चौक पूरा तो किसी ने आगे जलपूर्ण मणि का कलश रखा। उत्तम पट से प्रच्छादित कनकमय रत्नों से लीढ (खचित) पीठ पर भीष्म सुता—रूपिणी के साथ बैठा हुआ विष्णु लोकों द्वारा पूजा गया। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों क्षमा समान जिनवर ही सुशोभित हो रहे हों। कहीं तो धवल रूप चमकती हुई सुवासिनियाँ अनेक विध मंगलगान करती हुई नाच रही थीं और कहीं-कहीं महाप्रवर पटु-पटह बज रहे थे और कहीं-कहीं विनोद रचने वाले विनोद कर रहे थे। उस हरि को देख कर नागर जनों के मन में बड़ा हर्ष हुआ। पुनः मधुमथन ने भी घनी कनकवर्षा की (स्वर्ण दान दिया)। विविध दुःखीजनों, बन्दीजनों एवं क्षुद्रजनों को भी मनोवांछित रूप से सन्तुष्ट किया। पुन. बलभद्र ने भी दान दिया। रूपिणी ने हरि की तरह ही अन्य रानियों का भी मान किया।

---

(2) [illegible]

(3) [illegible]

(1) [illegible] (2) [illegible]

घत्ता— वेवि सुसुंदरइँ णिरु वहु-वरइँ दामोयरु-रूविणि राणिय।
अणमिस-लोइट्ठिय सक्कोइँ[3] पिय किं सय[4] वारमइंहि आणिय।। 39।।

(4)

गाहा— बहु [1]भोय-भुंजमाणो णव-वहु सरिसो पुरम्मि।
महुमहणो अणुदिणु अणुरत्त-मणो अच्छइ रइ-लालसो जम्मि।। छ।।

फागु[2]ण दिणंत भासुर-वयणु जासवण-कुसुम-लोहिय[3]-रयणु।
वेइल्ल-मल्लि-फुल्लिर-दसणु साहार-लुलिय णव-दल-रसणु।
अयवत्तु[(1)] - कुसुम सुइज्जअ पवरु रुणुरुणिर भमर-गुंजारि सरु।
कलि[(2)]-कुंद-पसूण तिक्ख-णहरु वहु मंजरि चवलुग्गिण्ण-करु।
ता तहिं संपत्तु वसंतु-हरि तहो भएण पणट्ठउ सिसिर[(3)]-करि।
इत्थंतरे परिपालिय-पयहो रूविणि-मुहँ-पंकय-छप्पयहो।
विरहेण सच्चहामा मरइ हूव पेम्म परव्वस किं करइ।
असुहत्थी तल्लो वेल्लि केम थिय तुच्छ तोए तिमियणहो[(4)] जेम।

घत्ता— दामोदर और रूपिणी रानी दोनों ही वर-वधु बड़े सुन्दर लग रहे थे। वे कैसे प्रतीत हो रहे थे? मानों अनिमिष (स्वर्ग-देव) लोक में स्थित शक्र एवं उसकी प्रिया शची ही द्वारामती पुरी में ले आये गये हों।। 39।।

(4)

वसन्त-ऋतु का आगमन

गाथा— वह मधुमथन (अपनी) नववधु के साथ विविध भोगों को भोगता हुआ भी प्रतिदिन उसमें अनुरक्त मन से रति-लालसा के साथ वहीं रहने लगा।। छ।।

उसी समय वसन्त ऋतु रूपी हरि—सिंह का आगमन हो गया। उसका वदन—मुख फाल्गुन के अन्तिम दिनों के समान भास्वर था। जपा कुसुम—समूह ही जिसके लोहित वर्ण वाले नेत्र थे। बेला तथा मल्लिका पुष्प ही मानों उसके दशन (दाँत) थे। नव-दलों से युक्त चंचल शाखाएँ ही उसकी जिह्वा थी। अतिमुक्त तथा अतिवृत्त कुसुम ही मानों जग में श्रेष्ठ उसके श्रुति—कर्ण थे। रुण-रुण करते हुए भ्रमरों की गुंजार ही मानों उसके स्वर थे। मनोहर कुन्द-पुष्प ही मानों उसके तीक्ष्ण नख थे। अनेक चपल मंजरियाँ ही मानों उसके हाथ थे। इस प्रकार जब वह (वसन्त रूपी हरि—सिंह) द्वारावती में प्रविष्ट हुआ तब उसके भय से शिशिर ऋतु रूपी हाथी चुपचाप खिसक कर भाग गया।

इसी बीच प्रजापालक तथा रूपिणी के मुख रूपी कमल के षट्पद — हरि के विरह से सत्यभामा मरने लगी। प्रेम की वशीभूत हुई वह (भला) कर ही क्या सकती थी? अत्यन्त दुखी होकर वह किस प्रकार तड़पती थी? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार अत्यन्त जल में मछली।

---

(3) (3) इन्द्रेण। (4) शची।

(4) 1. ब. लों। 2. ब. फागु। 3. ब. र।

(4) (1) कर्णदीप्ति। (2) मनोज्ञ। (3) सीतकाल हस्ती। (4) मत्स्ययुगल।

घत्ता— तहिँ तेत्तडइँ खणे णिउ चंदुज्जणे(5) सो हरि बलएवइँ भणियउ।
तहिँ सुकेय सुयहे सुललिय-भुयहे मयण-सरहि तणु वण्णियउ।। 40।।

(5)

गाहा— अणुणहि(1) जाएवि पिय जाव ण विहडेवि जाइ पंचत्तं।
[1]पावहु अणुरत्तमणो जेण तुमंतेण सा सुस[2]ए।। छ।।

तं णिसुणेवि सो रूविणिहि कंतु घरु चलिउ सच्चहावहे तुरंतु।
जं रूव[3]ए वरु तंवोलु खद्धु उग्गालु सुचेलंचले(2) णिबद्धु।
गउ लेविणु जहि ठिय सच्चहाव वहु-विरह-जलण-संजणिय ताव।
पिउ पेच्छिवि खणे जंपइ ण जाव तेण संभासिवि अवगूढ(3) ताम।
रइहरि पइसे[4]वि पिययम-पियाइँ गुण-दोस चववि सेज्जहिँ ठियाइँ।
पुणु हसिवि रमेवि धुत्ताण-धुत्तु हरि कूडु-कवडु णिद्दाइ सुत्तु।
घोलंतु सुकुंकुम लोल छेउ अमुणंतियाइँ तहो तणउ भेउ।
गंठिहि णिवडउ ता तीए दिट्ठु मणे चिंतिउ किर जग्गइ ण विट्ठु।

घत्ता— जब वह नृपचन्द्र—हरि उद्यान में था तभी उससे बलदेव ने कहा "सुकेतु की ललित भुजा वाली सुता सत्यभामा का शरीर मदनवाणों से व्रणित (घायल) हो गया है।। 40।।

(5)

सत्यभामा की विरहावस्था सुनकर हरि उसके आवास पर पहुँचते हैं

गाथा— (बलदेव ने हरि से कहा कि) —"जब तक वह सत्यभामा विरह पीड़ा से जल कर पंचत्व (मृत्यु) को प्राप्त न हो जाय तब तक तुम जाकर प्रिया का अनुनय करो। अनुरक्त मन होकर उसका पालन करो, जिससे तुम्हारे संयोग से वह आश्वस्त होवे।"।। छ।।

यह सुनकर रूपिणी का वह कान्त तुरन्त सत्यभामा के घर चला। रूपिणी ने जो उत्तम ताम्बूल खाया था उसका उगाल अपने वस्त्र के अंचल (छोर) में बाँध कर वह वहाँ पहुँचा जहाँ विरहाग्नि द्वारा उत्पन्न ताप से सन्तप्त सत्यभामा स्थित थी। प्रिय को देखकर भी क्षणभर तक जब वह नहीं बोली तब हरि ने ही सम्भाषण कर उसका आलिंगन कर लिया। प्रियतम और प्रिया दोनों रतिघर में प्रवेश कर तथा शैया पर स्थित होकर (पारस्परिक) गुण दोष कहने लगे। पुन: हँसकर तथा रमणकर धूर्तों में धूर्त वह हरि कूट-कपट-निद्रा पूर्वक सो गया। घोले हुए कुंकुम सहित वह लोल छेद (उगाल) था उसका भेद न जानती हुई उस सत्यभामा ने तब गांठ से गिरते हुए उस उगाल को देखा तब मन में वह चिन्ता करने लगी कि—कहीं विष्णु जाग न जायें।

---

(5) 1. अ. नव°। 2. अ. °अइ। 3. ब °पा। 4. अ. °रे°।

(4) 5. नृपचंद्र विष्णु।

(5) (1) मिष्ट वचनै: संबोधय। (2) अंचले। (3) आलिंगिता।

घत्ता— णिस[5] णिरु परिमल-बहलु अलिउल-मुहलु कप्पूर-जाइफल-मीसिउ।
वच्छ दुलहु भणेवि एउ मणे मुणेवि उग्गाल सुपट्टए पीसिउ।। 41।।

(6)

गाहा— एउ रुविणिस्स[1] कज्जे बद्धचेलंचलम्मि मण्णंती।
मुणिवि सुयंध दव्व सच्चाए विलेवियं अंगं।। छ।।

ता उट्ठिउ हरि कह-कह-हसंतु णियकर अप्फालिवि ताल दिंतु।
हले वयण-णयण जिय ससि कुरंगि पभणिउ जो पइं लेविउ सुअंगि।
जाइहल-एल-कप्पूर-घणाउँ उग्गालु सुयहु रुविणिहि तणाउँ।
ता कोवि पयंपइ सच्चहाव रे दुट्ठ पिसुण-खल-खुद्ध-पाव।
गोवालय तुह केत्तडिय बुद्धि उवहासु करंतहँ कवण-सुद्धि।
रुविणि वि मज्झु सा ससि कणिट्ठ उग्गालु सु वहे तुह काइँ धिट्ठ।
जइ लाविउ तो महु णत्थि दोसु सस[2] हो[3]य राइँ सहुँ कवणु रोसु।
महुमहणु पयंपइ पिहुल-रमणि रुविणि किं दिट्ठ पइं हंसगमणि।

घत्ता— कर्पूर एवं जायफल से मिश्रित वह उगाल बहुत सुगन्धित एवं अलिकुल को मुखरित करने वाला था। वत्स के लिए (यह) दुर्लभ है ऐसा कहकर और ऐसा ही मन में मानकर उसने उस उगाल को पट्टे (पटिये) पर पीसा।। 41।।

(6)

रूपिणी के उगाल का लेप कर लेने से हरि सत्यभामा की हँसी उड़ाते हैं

गाथा— "रूपिणी के निमित्त ही इसे वस्त्र के अंचल से बाँधा गया है।" ऐसा मन में कहती हुई तथा उसे अति सुगन्धित द्रव्य जानकर सत्यभामा ने उसका अपने शरीर में विलेपन कर लिया।। छ।।

इस पर हरि कहकहा कर हँसते हुए उठे। वह अपने हाथों को फैला-फैला कर ताली बजाने लगे और बोले-- "हे हले, हे प्यारी, तेरा वदन चन्द्र के समान तथा नयन कुरंगी के समान हैं। (पइं) तूने जो (यह विलेपन अपने) सुअंग में लगाया है। वह तो रूपिणी का जातिफल, एला, कपूर आदि घनी चीज वाला उगाल है।" तब कोप कर सत्यभामा बोली—"रे दुष्ट, रे पिशुन, रे खल, रे क्षुद्र, रे पापी — रे गोपालक, तेरी कितनी (कपट) बुद्धि है? उपहास करने में तेरी कौन सी विशेष बुद्धिमत्ता है? (अन्ततः) वह रूपिणी भी तो मेरी छोटी बहिन ही है। हे धीठ, तू उसका उगाल लाया ही क्यों? यदि लाया ही है (और मैंने उसका लेप भी कर लिया) तो इसमें मेरा दोष नहीं है। हे राजन, अपनी बहिन से रोष कैसा?" (यह सुनकर) मधुमथन ने कहा "हे पृथुल रमणि, क्या तुमने हंसगामिनी रूपिणी को देखा है?"

---

(5) 5. अ. 'णिस' नहीं है।

(6) 1. अ. 'यहि'। 2. अ. '[illegible]'। 3. अ. '[illegible]'

घत्ता— ता सच्चइँ भणिउ मइँ कहिँ[1] मुणिउँ रूविणिहे रूव दिक्खालहि।
ता हरि चवइ पिए पुर-कमल-सिए णिय उववणहिं णिहालहि।। 42।।

(7)

गाहा— इय जंपिऊण सहसा रूविणि-णिलयस्स[1] गयउ महुमहणे।
सा भणिय तेण सुंदरि सुब्भयरं[2] कुणहि सिंगारं[3]।। छ।।

तं तहि काऊण सयत्थैं संचालिय रूविणि सिरिवत्थैं[4]।
जहिं कल-केलि-फणिस-पुप्फलि घण अंब-कयंब-जंबु-रिद्धि[1]जन।।
तिलय-लवंग-वउ[2]ल-करवंदहिं चंपय-देवदारु मचकुंदहिं।
कुलु-कुलंत कोइल कल-संदहिं जहिं अलि मिलिय कुसुम-मयरंदहिं।
तहिं उववणे असोय-तरुवर-तले भीसम-सुय वरफलिह-सिलायले।
भणइ विट्ठु[3] "[4]खणु तुहु इह[5] अच्छहि अणमिस-दिट्ठिए वावि णियच्छहि।
पुणु अप्पुणु गउ सच्चहिं मंदिरु भणिय जाहि णियवणु मण-सुंदरु।
हउँ रूविणि हक्कारिवि आवमि णिय णव-वहु पुणु तुह दरिसावमि।

घत्ता— तब सत्यभामा बोली "मैं क्या जानूँ। आप मुझे उसका रूप दिखाइए।" तब हरि ने कहा "हे श्रेष्ठ कमल के समान हृदय वाली प्रिये, अपने उपवन में देखना।"।। 42।।

(7)

सत्यभामा उपवन में रूपिणी से मिलने जाती है

गाथा— ऐसा कहकर वह मधुमथन सहसा ही रूपिणी के निलय को गये और उन्होंने उस रूपिणी से कहा हे — सुन्दरि, तुम शुभ्रतर शृंगार करो (अर्थात् शुभ्र वेश-भूषा धारण कर तैयार रहो)।। छ।।

श्रीवत्स विष्णु शुभ्र शृंगार कराके रूपिणी को वहाँ ले गये, जहाँ कंकेलि (अशोक) कल (मधुर) केलि (केला) फणिस (पनस) आदि फल और पुष्पवाले घने वृक्ष तथा आम, कदम्ब, जम्बू, ऋद्धांजन, तिलक, लवंग, वकुल, करवंद (करौंदा), चम्पक, देवदारु, मचकुन्दों के वृक्ष थे। जहाँ कुलकुलाती कोयलों के मधुर शब्द हो रहे थे, जहाँ अलि कुसुमों की मकरन्दों से मिल रहे थे (अर्थात् मंडरा रहे थे)। उस उपवन में अशोक वृक्ष के तले उत्तम स्फटिक की शिलातल पर हरि ने भीष्म-सुता — रूपिणी से कहा — कुछ क्षण तुम यहाँ बैठो और अनिमिष दृष्टि से (पलकरहित टकटकी लगाकर) ही देखो।

पुनः वह स्वयं सत्यभामा के भवन में गया और बोला—"अपने मन को सुन्दर लगने वाले वन में जाओ वहाँ मैं अपनी नव-वधु रूपिणी को बुलाकर लाता हूँ और उसे दिखाता हूँ।"

(7) 1. अ. 'द्ध'। 2. अ. 'च' 3. ब 'ड्ड'। 4-5. अ 'तुहुं इच्छणु'।

(6) (1) ज्ञातः।

(7) (1) गृहस्य (2) श्वेततरं। (3) सिंगारं। (4) विष्णुना।

घत्ता— हरि तक्खणे चलेवि रूविणिहिं मिलिवि पच्छण्णु होइ ठिउ जामहिं।
कय-सिंगारवर तंबोलकर सा सच्च समागय तामहिं।। 43।।

(8)

गाहा ता विंभिय महएवि रूवा[1]ए विहि-रूवु[2] दट्ठूण।
धवलंसु[(1)] धवल-कुंडल गोसीरुह[(2)] धवल-तणु[(3)]-अंगी।। छ।।

इमं चिंतमाणा स सच्चाहिहाणा।
णियच्छेवि[3(4)] रूवं[4] णिरं सारभूवं[5]।
किमेसा वि देवी सु उज्जाण सेवी।
मह भत्ति [6]भारं मुणेऊण सारं।
पदंसेइ अप्पं कुणंती वियप्पं।
स कण्ह[7]स्स जाया सचेला[(5)] वि ण्हाया।
गया तत्थ देवी पमोत्तूण वावी।
जहिं रूव-राणी सु-सोहग्ग-खाणी।
तहो पाय-पोम्मा णुया तीए रम्भा।
सिरे णाविऊणं पयं पेयणूणं।

घत्ता— हरि तत्क्षण वहाँ से चलकर तथा रूपिणी से मिलकर वहीं उपवन में छिप गया। (और इधर) वह सत्यभामा उत्तम-शृंगार कर ताम्बूल हाथ में लिए हुए उपवन में आयी।। 43।।

(8)

शुभ्र वेशधारिणी रूपिणी को भ्रम से वनदेवी मानकर सत्यभामा उससे मनौती माँगती है

गाथा— उस उपवन में सत्यभामा महादेवी के रूप से भी अधिक विशिष्ट रूप को देख कर विस्मित हुई। वह सोचने लगी कि "इसके अंशु (वस्त्र) धवल हैं, कुण्डल धवल हैं, गोसीरुह धवल है और यह कृशांगी भी धवल है।"।। छ।।

वह सत्य नामकी भामा उसके पूर्ण सारभूत रूप को देखकर विचारने लगी—"क्या यह उद्यान सेवी देवी है? मेरे लिए यह भक्ति के योग्य सारभूत है, ऐसा विचार कर वह विकल्प करती है तथा अपने को उस देवी के सम्मुख प्रदर्शित करती है।

कृष्ण की वह जाया (पत्नी) सत्यभामा वस्त्र सहित बावड़ी में स्नान कर वापी को छोड़कर वहाँ गयी जहाँ उत्तम सौभाग्य की खान स्वरूपा देवी रूपिणी बैठी थी। उस सत्यभामा ने उसके रम्य पाद-पद्मों को नमस्कार किया। उसके चरणों में सिर को झुका कर प्रार्थना करने लगी हे देवि, हरि मेरा भक्त हो जाय, वह मुझमें अनुरक्त

---

(8) 1-2. अ. रूविणिहि रूवाएत्तव। 3. अ. च्छी। 4. अ. °वा। 5. अ. °उ। 6. ब. सा। 7. अ. कुण्हस्स।

(8) (1) अंशुक वस्त्र:। (2) श्रीखंड। (3) कृशांगी। (4) अवलोकयेत। (5) सचेलस्नानंकृत्वा:

हरी मज्झु भत्तो　　सया[8] होउ रत्तो।
तहो अण्ण णारी　　ण रुच्चेउ सारी।
तउ हास जुत्तो　　वसूएव – पुत्तो
खणे तम्म खिप्पँ[(6)]　　पदंसेइ अप्पँ।

घत्ता— स पढमवि धणिय तिणि[(7)] तहि भणिय वियसिय-पंकय-मुहिग्गहे।
जं चलणहिँ पडिय तुहुं किं खुडिय रूविणिहि वि भीसम-दुहियहे।। 44।।

(9)

गाहा— ता चवइ सच्चहामा होवि विलक्खिवि चित्तु धीरंती।
मइणिय सस गउरविया ता भइं तुज्झु रे कीस।। छ।।

इय विविह विणोयहिँ तहिँ रमंतु　　णंदणवणि जल-कीला कुणंतु।
गय दियहँ ण जाणइ कण्हु जाम　　[1]दुज्जोहण[2]-राएँ लेहु ताम।
पेसिउ सो वण्ण-विचित्त सारु　　कसवट्टउव्व बहु-रेह-फारु।
वग्गाहिट्ठउ[(1)] णं आसवारु[3]　　भोज्जुव विचित्तु विंजण[(2)] स फारु।

रहे, उसे अन्य समस्त श्रेष्ठ नारियाँ न रुचें। तभी वसुदेव का पुत्र हरि हँसता हुआ तत्काल ही वहाँ आया और अपने को उसे प्रदर्शित कर दिया। और—

घत्ता— उस (विष्णु) ने अपनी विकसित पंकजमुखी प्रथम धन्या—पत्नी सत्यभामा से कहा—"भीष्मसुता - रूपिणी के चरणों में पड़कर तूने कैसा खोटा काम कर दिया?"।। 44।।

(9)

रूपिणी सत्यभामा की प्रतिज्ञा स्वीकार करती है कि उन दोनों में से जिसे सर्वप्रथम पुत्र उत्पन्न होगा, वह दूसरी का सिर मुड़वा देगी

गाथा— हरि का कथन सुन कर मन में बिलखती हुई तथा विचित्र रूप से (ऊपरी) धीरज धारण करती हुई वह सत्यभामा बोली—"मैंने अपनी बहिन को गौरव दिया। सो भला ही किया है। किन्तु, रे कृष्ण तुझे इससे क्या?।। छ।।

इस प्रकार विविध विनोदों से वह वहाँ रमण करता हुआ नन्दन-वन में जल क्रीड़ाएँ किया करता था। कृष्ण ने जब व्यतीत होते हुए दिनों को नहीं जाना तभी दुर्योधन राजा ने एक लेख भेजा। वह लेख सुवर्ण के वर्णों से विचित्र एवं विशाल था। जो अनेक रेखाओं से विस्तृत कषवट्ट (कसौटी) के समान था। वर्गों से अधिष्ठित वह ऐसा प्रतीत होता था मानों अश्वबल ही हो (अर्थात् जिस प्रकार घोड़ों की सेना कई वर्गों से युक्त होती है उसी प्रकार वह लेख भी कवर्ग आदि वर्गों से युक्त था)। जिस प्रकार भोज व्यंजनों (शाक आदि) से विचित्र होता है उसी प्रकार वह लेख भी विचित्र व्यंजनाक्षरों से भूषित विचित्र विशाल था, जिस प्रकार कुसुमाल महायुद्ध से

---

(8) 8. अ. ग।
(9) 1-2. अ. हत्थिणपुर' 3. ब वसु।

(8) (6) शीघ्रेन। (7) तेन विष्णुना।
(9) (1) अ, क ख ग घ ङ प, म सापि वर्गा पक्षे वेस वाग। (2) अ व्यंजन च।

कुसुमालु व जित्त महाहवेण छोडिवि वाइउ सो माहवेण।
तुम्हहँ सुउ जइ संभवइ कोइ अम्हहँ वि कहव वरदुहिय होइ।
सा परिणेविय हरि तव[4] सुएण वेल्लहल पवर दीहर-भुएण।
अह अम्हहँ सुउ तुम्हहँ वि दुहिय परिणे[5]सइ णव-कंदोट्ट[6]-मुहिय[7]।
पडिवज्जिउ तं कण्हेण जाम गय लेहाए[8] णिय-पुरउ ताम।
एत्थंतरे जंपइ सच्चहाव मुहि-महुरहे अइणिरु दुट्ठभाव।
णिसुणहिं हरि सुणि बलहद्ददेव ण[9]र-खयर-रक्खए[10] विय पायसेव।
हउँ दमिय जाइ [(3)]कय-कवड-विज्ज एवहि रूवए सहु इह पयज्ज।
होएसइ जाहि पहिल्ल पुत्तु जं करइ कहमि इयरहिं णिरुत्तु।
सिरु मुंडेवि तहि परिणहमि[(4)] जंतु वर केस-कलावहिं पय ठवंतु।
भीसम-सुयाइँ ता चविउ वयणु आयहो वयणहो परिमाणु[(5)] कवणु।

घत्ता— भणइ सुकेय-सुय विल्लहल-भुय बलहद्ददेव आयण्णहो।
वहु ण कुणंतियहे भज्जंतियहे पडउ[11] तुम्हि [12]एउ मणहो।। 45।।

जीता गया था, उसी प्रकार बड़े उत्साह से जीता गया वह लेख था। उस लेख को छोड़ कर माधव ने (इस प्रकार) बाँचा — यदि तुम्हारे कोई पुत्र जन्मे और हमारी पुत्री जन्मे, तो हे हरि, तुम्हारा सुन्दर लता के समान श्रेष्ठ दीर्घभुजा वाला पुत्र हमारी पुत्री को परणेगा। अथवा, यदि हमारा पुत्र जन्मे और तुम्हारी पुत्री तो हमारा पुत्र तुम्हारी नवकमल मुखी पुत्री को परणेगा।" तब श्रीकृष्ण ने दुर्योधन राजा के इस कथन को स्वीकार कर लिया और लेखधारी पुरुष लेख लेकर निजपुर को चला गया। इसी बीच में सत्यभामा बोली—"नरश्रेष्ठों एवं यक्षों द्वारा सेवित चरण-कमल हे हरि, मुख में मधुर किन्तु हृदय में अत्यन्त दुष्ट भाव वाले हे हरि, तुम सुनो। हे बलभद्रदेव तुम भी सुनो—"कपट-विद्या द्वारा मैं दमी (छली) गयी हूँ। अतः अब रूपिणी के साथ मेरी यह प्रतिज्ञा है कि—"जिसको भी पहिला पुत्र उत्पन्न होगा, वह जैसे भी होगा, दूसरी का शिर-मुण्डन करा देगी और वह पुत्र विवाह के लिये जाते समय उस केशकलाप पर पैर रखता हुआ ही जायगा।" भीष्म-पुत्री ने तब (यह सुन कर) कहा—"इस प्रतिज्ञा वचन का प्रमाण (साक्षी) कौन होगा?"

घत्ता— तब सुकेलसुता ने कहा—"बिल्वफल भुजा वाले हे बलभद्र देव, तुम्हीं साक्षी हो। कोई बहू इस प्रतिज्ञा को भंग न करेगी। यदि करेगी तो तुम ही बीच में पड़ना। ऐसा मानो।। 45।।

---

(9) 4. अ. वर। 5. ब "ए"। 6-7. कोकण दमुहिय। 8. अ. "र। 9-10. अ. णरखयरयक्खए"। 11. अ. "हु वि। 12. अ प।

(9) (3) जया। (4) विवाहणिमित्तं गच्छन्। (5) साक्षीभूतः।

(10)

गाहा— पु[1]णु रूविणिहि भणिउ जेट्ठो किज्जउ अम्हाणं।
तुडिहि णिव्वाणहणं पडहुत्तणं(1) पि [2]मन्नहु दोहिं पि व लोहु उत्तामो।। छ।।

गाहा— कण्हेवि कुरु-णरिंदो हरि सपसण्णावि बेवि णिय भुवणे।
ता दिट्ठ णिसि विरमे रूवणिए विसिट्ठिय सिविणं।। छ।।

मयमत्त-गयं मिलियालि सयं।
विलुलिय-जीहं पुणरवि-सीहं।
कल-कमल सरं पेच्छई पवरं।
कणलुं वि घणं वरसालि-वणं।
रूविणिए जिमं सच्चाइ तिमं।
दोहिमि हरिहे अरि तरुह विहे[3]।
फुडु दज्जरिउ हरिसहो भरिउ।
मणे तुट्ठु छुडु हरि कहइ फुडु।
हय-दुरिय खलु सिविणयहो फलु।
पीणत्थणीहि दोहिमि जणीहि।
होसंति सुया दिढ-कढिण-भुया।

---

(10)

रूपिणी एवं सत्यभामा के द्वारा एक समान चार-चार स्वप्नों का दर्शन एवं उनका फल-वर्णन

गाथा— सत्यभामा की प्रतिज्ञा को सुनने के पश्चात् रूपिणी ने उससे कहा-ठीक है ऐसा ही करना। हमारी सामर्थ्य रहते मरते दम तक प्रतिज्ञा टूटेगी नहीं और ऐसा मानो कि यह प्रतिज्ञा लोक में दोनों के लिए उत्तम होगी।। छ।।

गाथा— कृष्ण और कुरुनरेन्द्र दुर्योधन दोनों भी हर्ष से प्रसन्न हुए, अपने-अपने भवनों में रह रहे थे। तभी रात्रि के अन्त में रूपिणी रानी ने चार विशिष्ट स्वप्न देखे।। छ।।

(प्रथम स्वप्न में) सैकड़ों अलिकुल जिस पर मिल रहे हैं (झूम रहे हैं) ऐसे मदमत्तगज को देखा। पुनः (द्वितीय स्वप्न में) चंचल जिह्वावाले सिंह को देखा। (तृतीय स्वप्न में) प्रवर मनोहर कमल वाले सरोवर को देखा तथा (चतुर्थ स्वप्न में) जिस में बहुत कणिश (बालें) लटक रही हैं, ऐसे उत्तम शालिवन को देखा। जैसे रूपिणी ने (उक्त चार) स्वप्न देखे, वैसे ही सत्यभामा ने भी देखे। हर्ष से भरी हुई दोनों ही रानियों ने शत्रुरूपी वृक्ष को हरने वाले हरि को जाकर वे स्वप्न कहे। मन में अत्यन्त सन्तुष्ट हत-दुरित हरि ने स्वप्नों का फल तत्काल ही पीनस्तनी उन दोनों रानियों से स्पष्ट रूपेण कहा—(इस प्रकार) "तुम दोनों के ही दृढ़ कठिन भुजावाले पुत्र उत्पन्न होंगे—

---

(10) 1. ब. ×। 2. ब. °स। 3. ब हिं°।

(10) (1) लाघणं

ते चरम तणु सिद्धिहिँ गमणु।
पावंति पुणु तह तुट्ठ मणु।

घत्ता— जे सुर संभविय[2] सग्गहो चविय ते बेवि सच्चरुविणिहिमि।
उव[4]रहँ अवयरिय अमर वि तुरिय ते सुय वि ताहँ दुहुँ जाणिहिमि।। 46।।

(11)

गाहा— तेणं सुकेय भीसम-सुयाण कुवलय-मुणाल-ललियाइं।
गब्भहिँ सुंदरीहिमि जायाइमि सालसंगाइं।। छ।।

एक्कहि वयणुल्लउ णिरुवमउँ अणेक्कहि छण-सस[1]हर-समउँ।
एक्कहि मुहुँ सरलु पुणु[(1)] णयणु अणेक्कहि उक्कोइय मयणु।
एक्कहि वरकंठु कम्बु हणइ अणेक्कहि रूउ जि जगु जिणइ।
एक्कहि वेल्लहलु बाहु-जुवलु अण्णहे मालइ-माला पवलु।
एक्कहि [illegible] अण्णहँ णं कणय-कलस [2]धरिया।
एक्कहि तुच्छेयरु णाहि-गहर अण्णहे रोमावलि थंभु किर।
किउ विहिणा[(2)] एक्कहे गोरियहे अणेक्कहे मुणि-मण चोरियहे।

जो चरम शरीरी सिद्धि (मुक्ति) को गमन करने वाले होंगे। यह सुनकर वे रानियाँ मन में सन्तुष्ट हुईं।

घत्ता— दोनों देव, जो स्वर्ग में उत्पन्न हुए थे, वे दोनों ही वहाँ से चलकर तत्काल ही सत्यभामा और रूपिणी के गर्भ में अवतरित होकर उन दोनों के पुत्र के रूप में जन्म लेंगे।। 46।।

(11)

रूपिणी एवं सत्यभामा के गर्भ-काल का वर्णन

गाथा— उस गर्भ से सुकेत-सुता — सत्यभामा और भीष्म-सुता — रूपिणी के कुवलय के मृणाल समान ललित-अंग सालस (आलस्य सहित) हो गए।। छ।।

एक रानी का वदन निरुपम हो गया, अन्य दूसरी रानी का वदन शशधर-चन्द्र समान हो गया। एक के मुख में सरलपूर्ण नेत्र थे, तो दूसरी के नेत्र उत्कोरित मदन वाले हो गये। एक रानी का उत्तम कण्ठ था, जो कम्बु (शंख) को हनता था—जीतता था, तो दूसरी का रूप जगत् को जीतने वाला था। एक रानी के बाहु युगल वेलफल-लता के समान सुशोभित थे, तो दूसरी रानी के माला प्रबल बाहु-युगलमाला के समान सुशोभित थे। एक रानी के अत्यन्त सघन पयोधर थे तो दूसरी रानी के स्तन ऐसे दिखाई देते थे मानों भरे हुए सुवर्ण-कलश ही हों। एक रानी का नाभि गह्वर (गर्त्त-गढ़ा) तुच्छेतर विशाल था तो अन्य दूसरी रानी की नाभि रोमावलि के लिये मानों निश्चल स्तम्भ ही थी। विधि ने एक रानी का रूप गौर-वर्ण बनाया था जब कि अन्य दूसरी रानी का रूप मुनियों के मन को चुराने वाला निर्मित किया था। "मेरा वह रानी रूपी एक रूप-स्तम्भ टूट जायगा

---

(10) 4. अ. द।
(11) 1. अ [illegible] 2. [illegible]

(10) (2) प्रथमवार्ता।
(11) (1) सरलपूर्णनेत्र। (2) विधिना।

भज्जइ व मज्झु तं थंभु कि[3]उ किं तेण वणं [4]सुट्ठिहि धरिउ।
एक्कहि मसिणूरय मणहरण सुललिय-जंघउ कोमल-चरण
एक्कहिँ सुदित्त-णह भंति-णवि अण्णहिँ तल-चलण रत्त-छवि।

घत्ता— दुण्णिवि राणियउँ सुवियाणियउँ[(3)] वरगब्भहिँ णिरु सच्छायउ।
को-वण्णहु तरइ णियमणे धरइ केवलि-तित्थयरहो मायउ।। 47।।

(12)

गाहा— गब्भेण णारियाणँ रूविणि सच्चाण [1]कमल-वय[2]णाइँ।
णंदण[3] जसेण विय[4] सइ ईसीसिवि[(1)] जाइ धवलाइँ।। छ।।

अइतुंग पीण-पीवर-थणाहँ कसणइँ मुहाइँ दुज्जण थणाहँ।
संजयाइँ णिवडण भएण जाम किय गब्भ-सुद्धि दोहंपि ताम।
फल-कुसुम-विलेवण चारु सव्व दोहलय[5] विविह-आयार-पुव्व।
सुह-दिणे सुमुहुत्ते सुरिक्ख-जोइ जामिणि-विरामे जण-भुत्ति भोए।

(यही सोच कर) क्या विधि ने दूसरा (रानी रूपी) रूप-स्तम्भ भली-भाँति निर्मित किया है? एक रानी का मनोहर मसृण (चिक्कण) उरु था तो दूसरी का सुललित उरु। उन दोनों के चरण अत्यन्त कोमल थे। एक रानी के नख सुदीप्त थे। इसमें कोई भ्रान्ति नहीं। अन्य दूसरी रानी के चरण-तल रक्त छवि वाले थे।

घत्ता— (वे) दोनों ही रानियाँ (बड़ी) सुविचक्षण थीं। उत्तम गर्भ के कारण वे सुन्दर कान्तिवाली हो गयीं। उनका वर्णन करने में कौन तर (पार पा) सकता है? तीर्थंकर की माता को अपने मन में धारण करने वाली वे दोनों रानियाँ ऐसी प्रतीत होती थीं, मानों तीर्थंकर की माता ही हों।। 47।।

(12)

संयोग से रूपिणी एवं सत्यभामा दोनों को ही पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है किन्तु विष्णु को रूपिणी के पुत्र-प्राप्ति की सूचना सर्वप्रथम मिलती है

गाथा— गर्भ के भार से रूपिणी एवं सत्यभामा दोनों नारियों के कमल समान मुख ईषत्-ईषत् धवल (पाण्डुर) हो गये। मानों वे अपने (गर्भस्थ) नन्दनों के (भावी) यश से ही विकसित हो गयी हों।। छ।।

जिस प्रकार दुर्जन-जनों के मुख कृष्ण वर्ण के (फीके छायारहित) हो जाते हैं उसी प्रकार अति-तुंग पीन पीवर (कठोर) एवं घने स्तनों के मुख भी कृष्ण-वर्ण के हो गये। वे दुर्जनों के समान स्तन अपने पतन के भय से जब कृष्ण हो गये तब दोनों की गर्भ-सृष्टि-शुद्धि-संस्कार किया गया। श्रेष्ठ फल एवं पुष्पों का चारु पद्धति से सर्वांग विलेपन कर विविध आचार-पूर्वक दोहले पूर्ण किये गये।

शुभ दिवस, शुभ मुहूर्त तथा शुभ नक्षत्र के योग में यामिनी के विराम-काल में, जनभुक्ति काल में सत्यभामा

---

(11) 3. अ. 'वि'। 4. अ. 'मु'।
(12) 1-2. अ. वयण कमलाइँ। 3. अ. णंदणाह।
4. अ. वि। 5. अ. इँ।

(11) (3) विचक्षण।
(12) (1) स्तोक-स्तोक।

सा सच्चहाव रूविणिवि देवि   पसवियउ सुलक्खण पुत्त वेवि।
आणंदु पवट्टिउ सज्जणाहँ   मसि कुंचउ णं मुहे दुज्जणाहँ।
वद्धावय पेसिय [7]दुहिमि तेत्थु   णिय राउले ठिउ महुमहणु जित्थु।
जग्गइ ण विट्ठु सोवंतु दिट्ठु   आवणे सो रूविणि णरु वइट्ठु।
उसीसि सच्चहावहि वसिट्ठु   जय-मंगल-रव पडिबुद्धु विट्ठु।
कर-मऊले कयंजलि णय-सिरेण   वद्धाविउ ता रूविणि णरेण।

घत्ता— भीसम-सुयाहे सुउ अइ-सरल-भुउ पहु जेम सिवएविहि जिणवरु।
रूविणि राणियहे गुरु जाणियहे उप्पण्णु तेण जण-मण-हरणु।। 48।।

(13)

गाहा— पुणु सच्चहाव पुरिसो वद्धावइ देव पढम स महएवी।
पसुया[1]वि सच्चहावा जाउ सुउ रूविणिहि पच्छा।। छ।।

तउ हरि समुट्ठिउ हरिस्समाणउ[(1)]   हरी करव्विऊण हत्थु दिण्ण दाणउ।
सम्माणिया वेवि ते विसिट्ठ राइणा   सुचेल-कणय तुरिय दिव्व दायिणा।

एवं रूपिणी दोनों ही देवियों ने सुलक्षण सम्पन्न दो पुत्रों को जना। इससे सज्जनों को आनन्द हुआ किन्तु दुर्जनों के मुख काले हो गये मानों उनके मुख पर मसी की कूँची फेर दी गई हो। जहाँ राजकुल में मधुमथन स्थित था, वहाँ उन दोनों रानियों ने वर्धापन भेजा। विष्णु जगे हुए नहीं थे अतः उन्हें सोता हुआ देख कर रूपिणी के नर आँगन में (पैरों की तरफ) बैठ गये। सत्यभामा के मनुष्य विष्णु के सीस की तरफ बैठ गये। "जयमंगल" शब्द सुनकर (जब) विष्णु प्रतिबुद्ध (जागृत) हुए तब हाथ मस्तक पर लगाकर अंजलि बनाकर तथा मस्तक नवा कर रूपिणी के मनुष्यों ने उन्हें बधाई दी, और कहा—

घत्ता— "हे प्रभु, जिस प्रकार शिवादेवी के जिनवर नेमिनाथ पुत्र हुए उसी प्रकार आपकी गम्भीर रूप से जानी हुई भीष्म-सुता रूपिणी रानी के अतिसरल भुजावाला और जनों के मन को हरने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ है।। 48।।

(13)

पुत्र-जन्म एवं नाम-संस्कारोत्सव

गाथा— तत्पश्चात् सत्यभामा के पुरुषों ने वर्धापन दिया "हे देव, आपकी प्रथम महादेवी सत्यभामा ने प्रथम पुत्र-प्रसव किया है और रूपिणी ने पीछे पुत्र-प्रसव किया है।। छ।।

तब हरि (इन्द्र) के समान वह हरि (विष्णु) उठा। उसने (उन दोनों संदेशवाहकों के लिए) ऊँचा हाथकर दान दिया। उस राजा ने उन दोनों शिष्ट पुरुषों का सम्मान किया तथा तुरन्त ही दिव्य वस्त्र एवं कनकाभूषण प्रदान किए। उसने पट्टन में उत्तम महोत्सव कराया, जिसमें शत्रु राजाओं के समूह भी आये।

---

(12) 7. अ. °वि।

(13) 1. अ. °आ°।

(13) (1) हर्ष संपृक्तः।

करावियं महोच्छवं वरं स-पट्टणे अरी-णरिंद-विंद-थट्ट-लोट्टणे।
घरं-घरं पि मंगलाइँ-तूर वज्जए अयाले तक्खणे णवं घणुव्व गज्जए।
कहिं पि चारु घुसिण-छउड दिज्जए कहिं चउक्क-सारु मोत्तिएहिं किज्जए।
सुयस्स दंसणेण रूविणी पहिट्ठिया हरि-हरेण[2] अमरसरिव दिट्ठिया।
गउ पुणोवि कण्हु सच्चहावहे घरे समाणु-दाणु कारिऊण संठिउ वरे।
णडंति हार-डोर भूसियाउ कामिणी इहप्पयारएण जाम पंच-जामिणी।[3]

घत्ता— छट्ठि जायरणु जा महुमहणु दोहिमि राउलहिं करावइ।
रूवें-सच्च सुयहं सुललि भुअहिं[2] रासिहिं अहिहाणु धरावइ।। 49।।

(14)

गाहा – रूविणि-सुअस्स रइयं अहिहाणं गणणएहिं पज्जुण्णो।
सच्चाहिं भाणु अण्णो भणिउ [1]बहु-गंथत्थ[2]-जाणेहिं।। छ।।

[3]भाम रूविणि घरे गीय-मंगले वरे।
चारु मत्तवा[(1)]रणे बद्ध मत्तवारणे[(2)]।
गुंठ पुप्फ-दामए भिंग संग कामए।

घर-घर मंगलाचार होने लगे। उसी समय अकाल में ही नवमेघ की गर्जना के समान तूर-वाद्य बजने लगे। कहीं तो सुन्दर घुसृण (चन्दन) का छिड़काव किया जा रहा था, तो कहीं मोतियों से सारभूत चौक मॉडा जा रहा था। सुपद्म—हरि द्वारा किये गये पुत्र दर्शन से रूपिणी उसी प्रकार हर्षित हुई जिस प्रकार हरिहर द्वारा देखी गयी अमरसरित—गंगा। पुन: (रूपिणी के यहां से लौटकर वह) कृष्ण सत्यभामा के घर गया (और वहाँ भी) सम्मान-दान कराकर वह वहाँ संस्थित हुआ। वहाँ हार-डोरा (कटिबन्ध) से भूषित कामिनियाँ नाच रही थीं और इसी प्रकार जब पाँच रात-दिन व्यतीत हो गये—

घत्ता— उसके बाद मधुमथन ने राजकुल में दोनों का छट्ठी जागरण (का उत्सव) कराया तथा (उसी दिन) गणकों द्वारा सुललित भुजा वाले रूपिणी और सत्यभामा के पुत्रों के नाम धराये।। 49।।

(14)

रूपिणी-पुत्र प्रद्युम्न का धूमकेतु नामक दानव द्वारा अपहरण

गाथा— ग्रन्थों के अर्थ जानने वाले गणकों के द्वारा रूपिणी के पुत्र का नाम प्रद्युम्न तथा सत्यभामा के पुत्र का नाम भानु रचा (रखा) गया।। छ।।

सत्यभामा और रूपिणी के घरों में उत्तम मंगल गीत हो रहे थे। छज्जे सुन्दर रूप से सजाये गये। मदोन्मत्त गज बँधे हुए थे। गुँथी हुई पुष्प-मालाएँ भृंगों के संग से सुन्दर लग रही थीं। जब आधी रात व्यतीत हुई और

---

(13) 2. अ 'घ'।

(14) 1. अ ×। 2. अ ×। 3. अ ताँ।

(13) (2) ईश्वरेण विष्णुना। (3) पंचदिनानिगता।

(14) (1) बालागवाक्षे। (2) हस्तिन.।

अद्ध रत्तए [4]गए लोयएण सुत्तए।
ताण हम्मे जंतए दुद्धमे महंतए।
भग्ग देव-माणवे धूमकेय दाणए(3)।
अंतरिक्ख जाणयं थंभि[5]यं विमाणयं।
ताम विंभओ मणे चिंतवेइ तक्खणे।
केण वोम जाणयं थंभियं विमाणयं(4)।
तं णहम्में वालियँ मंदिरं णिहालियँ।
गेवमाण वालओ सद्दु सो विसालओ।
सो(5) हरेवि आणिओ पुव्व-वेरि आणिओ।
मंदिराउ कड्ढिओ वालु लेवि वड्ढिओ।
किलि-किलंतु णिग्गिओ वोम-मंडलं गओ।
तच्छ सो ण मारिओ णं विही णिवारिओ।

घत्ता— खइराडवि जहिं सो णियए रूविणिहिं सुउ तहिं णाणा लक्खण रिद्धउ।
किर[6]डि-खय-कंदराउ परिफुरियमउ जहिं तक्खउगिरि सुपसिद्धउ।। 50।।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइसिद्ध विरइयाए धूम[7]केतु-दानव पज्जुण्णकुमारावहरणं णाम[8] तीउ-संधी परिसमत्तो।। संधी: 3।। छ।।

लोग सो चुके थे, तब आकाश में जाता हुआ दुर्दम महान् अन्य देवों और मनुष्यों को भग्न (पीड़ा) करने वाला, धूमकेतु नामके दानव का यान—विमान अंतरिक्ष में रुक गया। तब वह मन में विस्मित हुआ तत्क्षण चिन्ता करने लगा। यह व्योम यान—विमान किसने स्तम्भित किया है? तब उसने आकाश में अपने विमान में से एक मन्दिर (राजभवन) देखा तथा उसमें रोते-गाते शब्द करते हुए एक विशाल शिशु को देखा। उसे पूर्व-जन्म का बैरी जानकर उसने उसका अपहरण कर लिया। उसने मन्दिर (महल) से उस बालक को निकाला और उसे लेकर आगे बढ़ा। किलकिलाता हुआ वह वहाँ से निकला और व्योम मण्डल में चला गया। वहाँ उसने उसे मारा नहीं, मानों विधि (भाग्य) ने ही (उसे ऐसा करने से) रोक दिया हो।

घत्ता— वह यक्षराज दानव नाना लक्षणों से समृद्ध रूपिणी के पुत्र को उस खदिरा-अटवी में ले गया, जहाँ कन्दों को खाने वाले सैकड़ों शूकर चंचल मृगों को भय उत्पन्न करते रहते हैं। वहीं पर तक्षक नामका एक सुप्रसिद्ध पर्वत है।। 50।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली सिद्ध कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में धूमकेतु-दानव द्वारा प्रद्युम्न के अपहरण सम्बन्धी तृतीय सन्धि समाप्त हुई।। सन्धि: 3।। छ।।

---

(14) 4. अ. हॅ। 5. अ. 'क्क'। 6. अ किडि। 7-8. अ.।

(14) (3) दानवे। (4) विमानं। (5) बालकः।

चउत्थी संधी

(1)

जंहिं णिरंतर सीह-सद्दूल मय-गंडय बहुय गय,
वग्घ घोर किडि सय तरच्छहिं बुक्कारिय।। छ।।

वत्थु-छंद— साहा-मयहि[1] रुजंत रत्तच्छ रिच्छहिं
घोर रीद्ध भल्लु व पवर जहिं। जसु[2] तसइ भएण
णिवि सिद्धेण तहिं वण गहणे बालु पराणिउ तेण[(1)]।।
उवहिहि[(2)] अणुहरमाणु [3]मज्झु [4]पएसु विसालउ।
जो हरि-करि परियरिउ गिरिवरु णं महिपालउ।। छ।।

णहग्ग-लग्ग-मग्ग-तुंग-सिंगवे सु पुप्फ-रेणु रत्त[5]-मत्त [6]पिंगवे।
कहिं पि वच्छ-पवण-पहय कंपिउ कहिं पि कीर-कुरर-सद्द जंपिउ।
कहिं पि पडिय पुप्फ-पयर अंचिउ कहिं पि[7] साह उद्ध-बाह-णच्चिउ।

चौथी सन्धि

(1)

धूमकेतु-दानव ने उस शिशु प्रद्युम्न को तक्षकगिरि की एक विशाल शिला के नीचे चाँप दिया

जिस तक्षक गिरि में सिंह, शार्दूल, मृग, गंडक (गैंडाहाथी) अनेक प्रकार के गज, व्याघ्र एवं सफेद आँखों वाले सैकड़ों भयानक शूकर निरन्तर गरजते रहते हैं।। छ।।

वस्तुछन्द— जहाँ पर रंजायमान शाखामृग (वानर) लाल नेत्र वाले भयानक विशाल भालू प्रचुर मात्रा में हैं, जिनके देखने मात्र से त्रास होता है। महाकवि सिद्ध कहते हैं उसी पर्वत के गहन वन में वह सिद्ध दानव उस बालक को ले आया। वह गिरिवर ऐसा प्रतीत होता था, मानों कोई राजा ही हो। क्योंकि राजा घोड़ों एवं हाथियों के परिकर सहित होता है, यह पर्वत भी सिंहों एवं हाथियों से परिवृत था, अथवा वह पर्वत उदधि समान मन को हरने वाला था। समुद्र जिस प्रकार मनोहर होता है, यह पर्वत भी उसी प्रकार मनोहर था। समुद्र में जिस प्रकार विशाल टापू प्रदेश रहते हैं उसी प्रकार इस पर्वत पर भी विशाल गहन वन-प्रदेश था।। छ।।

उस पर्वत का उत्तुंग श्रृंग नभ के अग्र को मग्न करता था। पीत वर्ण का वह (श्रृंग) सुन्दर पुष्पों की रेणु से रक्त वर्ण का होकर मतवाला हो रहा था। कहीं तो उसके वृक्ष पवन से प्रहत होकर काँप रहे थे, कहीं कीर (शुक) एवं कुरर पक्षी मधुर वाणी बोल रहे थे। कहीं वह पर्वत गिरे हुए पुष्प प्रकरों से पूजित था। कहीं वह पर्वत सुशाखाओं रूपी उर्ध्व बाहुओं से नाचता था। कहीं कोयल सुकुमार शब्दों में मधुर संगीत कर रही थी तो

---

(1) 1. अ. साहे भीम। 2. अ. सु। 3. अ. रा°। 4. अ. सुपंसु। 5. अ. त्ते। 6. अ. पिं°। 7. ब. हु।

(1) (1) धूमकेतुना। (2) समुद्रः।

कहिं पिंई सुसद्द-महुर गायए कहिं सुवंसु सुसिर-वण वायए।
गिरीसु तक्खउ चित्तेण दिट्ठउ लए वि बालु तत्थ सो पइट्ठउ।
वियारिऊण किंतु णहमि[8] मारमि विचिंतए णिसिंदु[9] वइरु[10] सारमि।
किं अज्जु[11] घिवमि उवहि मज्झे वाडवे पयंड-मच्छ-सुंसुमार[12] फाडवे।
परं मरेइ अज्जु णत्थि जीवियं कहं हणेमि तं[13] भणेमि एम खीवियं।
धरायले सिला-विसाल चप्पियं सुअं भणेवि बालयं वियप्पियं।
किं मिच्चु ए ण[14] केवली सुलक्खणे गए णिसायरम्मे तत्थ तक्खणे।।

घत्ता— ता तहिं णिसि परिगलिय सव्वंगारुण कायउ।
णं बालहो आवइए सूरु पुव्व-दिस आयउ।। 51।।

(2)

वत्थु-छंद— जंबुदीवहँ भरहे[1] सुपसिद्ध
वेयट्ठु दाहिणि दिसहि मेहकुडु णामेण पुरवरु।
जण्ण-धण्ण-कण-भर पउर णंदण-वण सरिसु सरवरु।।

कहीं उत्तम बाँस-सुसिर-राग का आलाप कर रहे थे। ऐसे उस तक्षक पर्वत को मनोयोगपूर्वक उस दानव ने देखा और वह उस बालक को लेकर वहाँ प्रविष्ट हुआ। वह बैरी राक्षस इस प्रकार विचार करने लगा—"क्या मैं तुझे आकाश में फेंक कर मार डालूँ और अपना बैर भुना लूँ? क्या तुझे आज मैं बड़वानल वाले तथा प्रचण्ड मच्छ, सुंसुमार (मगर) से युक्त विशाल भयानक समुद्र में फेंक दूँ? जिससे तू आज ही मर जाए जीवित न रह सके? मैं इसे कैसे मारूँ? इस फेंके हुए को मैं किससे कहूँ कि उसे ऐसे मारा है?" इस प्रकार विकल्प कर दानव ने उस बालक को लेकर धरातल में विशाल शिला के नीचे चाँप दिया। यह सुलक्षणों वाला बालक भावी केवली है। इसे मृत्यु से क्या (भय) यह विचार कर वह निशाचर वहाँ से तत्क्षण चला गया?

घत्ता— तब वहाँ रात्रि गलित हो (बीत) गयी। सर्वांग (आकाश) अरुणाभ हो गया। मानों बालक की आपत्ति से ही सूर्य पूर्व दिशा में आ गया हो (अर्थात् प्रभात हो गया)।। 51।।

(2)

राजा कालसंवर का नभोयान तक्षकगिरि के ऊपर अटक जाता है

वस्तु-छन्द— जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में सुप्रसिद्ध वैताढ्य (विजयार्ध) नामका पर्वत है, जिसकी दक्षिण दिशा में मेघकूट नामका एक बड़ा नगर है। जो प्रचुर जन-धन एवं कण से समृद्ध है तथा वहाँ नन्दनवन के समान वन हैं और जो विशाल सरोवरों से युक्त है— जहाँ कंचनमय श्रेष्ठ भवन बने हुए हैं।

---

(1) 8. ब लि°। 9-10. अ. णिं सिंधु वेरु। 11. अ. मक्कु।
12. अ. आं। 13. ब. ×। 14. अ. °म।

(2) 1. अ. हि।

कंचण-मय-धरपवर जहिं दीहर णयण-विसाल।
राउ कालसंवरु वि तहिं राणिय कंचणमाल।। छ।।

अवरहिं रंखोलिर णेउरिहिं   घण-पीणुत्तुंग पऊहरिहिं।
जिय अलि-तमाल-अलयावलिहिं   णं मयरद्धय-वाणावलिहिं।
विण्णाण-कला-गुण-जाणियहँ   सय-तिण्णि-सट्ठ तहो राणियहँ।
पंच-सय कुमारहँ णर वइहे   सुपहुत्तणु णं णहे सुरवइहे।
एक्कहिं दिणे सो मेइणि-वलउ   वियरंतु संतु दाहिण-मलउ।
पिय कंचणमाला परियरिउ   विज्जाहरु णहं जाणइँ तुरिउ।
चल्लिउ झडत्ति णं मण-पवणु   संपत्तउ तं गिरिवर-गहणु।
जहिं खइराडयहे[(1)] सिलाहि तले   परिसंठिउ बालउ धरणियले।

घत्ता— खलिउ विमाणु ज्झडत्ति तह विज्जाहर-रायहो।
पुंछिय कंचणमाल पिए किं कारणु [2]एयहो[(2)]।। 52।।

वहाँ का राजा कालसंवर (नामका) है, जिसके नेत्र दीर्घ एवं विशाल हैं और जिसकी रानी का नाम कंचनमाला है।। छ।।

इसके अतिरिक्त भी उस राजा की अन्य 360 रानियाँ और थीं, जो खुल-खुल करते नूपुरवाली एवं घने-घने पीन उत्तुंग पयोधर वाली थीं। जिनकी अलकावली अलि अथवा तमाल के समान कृष्ण वर्ण की थी। वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानों मकरध्वज (कामदेव) की वाणावलि ही हो। वे सभी रानियाँ विज्ञान एवं कलागुण की जानने वाली थीं। उस राजा के 500 पुत्र थे। उस राजा का पृथिवी पर उसी प्रकार का प्रभुत्व था, जिस प्रकार सुरपति का आकाश (स्वर्ग) में।

किसी एक दिन वह राजा मेदिनी वलय में विचरता हुआ प्रिया कंचनमाला सहित विद्याधर नभोयान (विमान) से शीघ्र ही दक्षिणमलय की तरफ चला। मन और पवन के वेग के समान चलकर वह झट से उसी गहन गिरिवर में जा पहुँचा, जहाँ उस खदिराटवी में धरणीतल पर शिला के तले वह बालक (प्रद्युम्न) चँपा पडा था।

घत्ता— उस विद्याधर राजा का विमान वहाँ झट से स्खलित हो गया (रुक गया)। तब कंचनमाला ने अपने प्रिय पति से पूछा कि इस विमान के यहाँ रुकने का क्या कारण है?"।। 52।।

---

(2) 2. ब अ॰।

(2) (1) अटव्या। (2) विमानस्य।

(3)

वत्थु-छंद— ताम कंचणमाल तहिं चवइ अवलोयहि
धरणियलु सत्तु-मित्तु अह कोवि णाणिउ।
णह-जाणु चल्लइ [(1)]जिण[1] कारणु[2] तंपि जाणिउं।।
तहिं अवसरे णरवइ स पिउ णियइ अहमुहु जाव।
दलु[(2)]-छिण्णहँ तरुवरहँ जिम सिल परिकंपइ ताव।। छ।।

तं अच्चरिउ णिएवि णरेसरु मेहकूडु पुरवर परमेसरु।
गउ उयरेवि विमाणहो तेत्तहिं थरहरंति सिल अच्छइं जेत्तहिं।
साहेलइ उच्चाइय रायइँ कोडिसिला इव दहरह-जायइँ।
ता तहिं बहु-लक्खण-रयणायरु दिट्ठु बालु णं बालु दिवायरु।
णं वणसिरि वियसिय रत्तुप्पलु णं कंकेल्लिहिं णव-किसलय-दलु।
पुणु उच्चाएवि णयण-विसालहो ढोविउ देविहे कंचणमालहो।
ताइं पडिच्छिवि भणिउ णरेसर पिय ससरीर णिसुणि वम्मीसर।
जं हउँ असुव[3(3)] भणेवि तं जुत्तउ दिण्णु पुत्तु किं तुहुमि अपुत्तउ।

---

(3)

पट्टरानी कंचनमाला पुत्र-विहीन थी, अतः राजा कालसंवर उसे पुत्र के रूप में उस बालक को दे देता है तथा उसी दिन उसे राज्याधिकारी भी घोषित कर देता है

वस्तु-छन्द— तब राजा ने उस कंचनमाला से कहा—"हे कंचममाले, देखो धरणीतल पर (अवश्य ही) कोई शत्रु, मित्र अथवा ज्ञानी पुरुष है जिस कारण से नभोयान नहीं चल रहा है। उसके कारणों को जानो।" उसी समय प्रियतमा के साथ उस नरपति ने नीचा मुख करके वृक्षों के दलों को फैला कर जब देखा तो वहाँ एक शिला काँप रही थी।। छ।।

मेघकूटपुर का वह परमेश्वर नरेश्वर (-कालसंवर), उसे देखकर आश्चर्यचकित हुआ। वह विमान से उतर कर वहाँ गया, जहाँ शिला थरहरा रही थी। कालसंवर ने उस शिला को सहज ही उसी प्रकार उठा लिया, जिस प्रकार (राजा) दशरथ के पुत्र (लक्ष्मण) ने कोटि शिला को सहज में ही उठा लिया था। वहाँ उसने अनेक सुलक्षणों के रत्नाकर रूप तथा बाल-दिवाकर (सूर्य) के समान तेजस्वी बालक को देखा उसे वह बालक ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वनश्री का विकसित लालकमल ही हो अथवा मानों कंकेलि (अशोक) का नवीन किसलय (कोंपल) पत्र हो। उस बालक को उठाकर वह नयन-विशाला कंचनमाला देवी के पास ले गया और उसे देकर उसने कहा—"हे प्रिये सुनो, यह सशरीर कामदेव है। यह पुत्र तुम्हें मैंने क्यों दिया? क्योंकि तुम पुत्र-विहीन हो अतः अब इसे तुम अपना ही पुत्र मानो। मैंने इसे जो 'पुत्र' कह दिया है, वह ठीक ही है। किन्तु घर में इस

---

(3) 1-2. अ इह काइ भरणु। 3. अ 'अ।

(3) (1) जेनकारणेन। (2) पर्णछेदसिलाउंनीक्षत। (3) अहंपुत्ररहिता।

अतुल-परक्कम-विक्कमसारहँ घरे अच्छहिं सय-पंच-कुमारहँ।
तहँ अग्गइ एउ काइँ करेसइँ रज्जु-धुरंधरु किम किर होसइ।

घत्ता— ता पभणइँ णरणाहु कंति म जाहे विसायहो।
तुहुँ जि पट्ट-महएवि दिण्णु रज्जु मइ आयहो।। 53।।

(4)

वत्थु-छंद— तं णरेसहो वयणु णिसुणेवि संतोसु
परिवड्ढियउ लइउ बालु उच्छंगे देविए।
णह-जाणु संचालियउ णिय-णाहहो चलण-सेविए।।
मेहकूडु तक्खणे गयइँ जं मढ-मढिउ रवण्णु।
सरि-सरवर वर सुरहरहँ घण तरुवर सछण्णु।। छ।।

गुडिउ [1]घरणिहिं रच्छा सोहहिं तूर-णिणाय भुवणासंखोहहिं।
पिउ[(1)]-पियय मणि रुहिट्ठ पहिट्ठइँ जय-जय सद्दइँ णयरे पइट्ठइँ।
जणु जंपइ णिय पइ-पय-सेविए गूढ-गब्भु हुंतउ महएविए।

समय अतुल पराक्रम वाले तथा सारभूत विक्रम वाले जो 500 राजकुमार हैं उनके आगे यह क्या कर पायेगा? राज्य की धुरा को यह कैसे धारण कर पायेगा?"

घत्ता— यह सुनकर राजा ने कहा—"हे कान्ते, विषाद को प्राप्त मत हो। तू तो पट्टमहादेवी है अतः तेरी साक्षी से मैंने आज से ही इसे राज्य प्रदान कर दिया है।"।। 53।।

(4)

कालसंवर के यहाँ शिशु (प्रद्युम्न) का उचित लालन-पालन होने लगा और इधर उसकी माता रूपिणी उसकी खोज करने लगी

वस्तु-छन्द—राजा की प्रतिज्ञा सुनकर रानी का सन्तोष बढ़ा। अपने पति की चरण सेविका उस देवी रानी ने बालक को अपनी उत्संग (गोद) में ले लिया और नभोयान को संचालित किया। जो मठ एवं मढ़ियों से रम्य है। जहाँ उत्तम-उत्तम नदियाँ एवं सरोवर हैं, जहाँ उत्तम सुरघर (देव विमान) के समान घर बने हुए हैं जो विविध तरुवरों से संछन्न हैं (अर्थात् जहाँ अनेक उपवन हैं)। उस मेघकूट-पुर में उसका यान तत्काल ही पहुँच गया।। छ।।

घरों के दरवाजों एवं मार्गों में चित्राकृतियाँ बनाकर उन्हें सुशोभित किया गया। तूर- निनादों से भुवनों को संक्षुब्ध कर दिया गया। अपने मन में अत्यन्त हृष्ट-प्रहृष्ट हुए प्रिया और प्रियतम जय-जय शब्दों के बीच नगर में प्रविष्ट हुए। वहाँ मनुष्य (परस्पर में) कह रहे थे कि "अपने पति की चरण-सेविका महादेवी को गूढ़-गर्भ था

---

(4) 1. ब 'व्व'

(4) (1) राजाराज्ञी।

तो वण-गइहिँ पुत्तु उप्पण्णउँ अज्जु मुहुत्तु रिक्खु दिणु धण्णउँ।
घरे-घरे तोरणु मंगलु घोसिउ णच्चइ णारीयणु परिउसिउ।
णेत्तपट्ट पडि कंचण चायइँ वंदि-विंद परिपूरिय रायइँ।
किय आयारु सच्चु तहो बालहो अलि-जिय-कुडिल-केस सोमालहो।
इव तहिँ बीया-इंदुव वड्ढइ दिवे-दिवे रूव-रिद्धि आवड्ढइ[2]।
घत्ता— एत्तहिँ रूविणिए पल्लंकें दिट्ठु ण बालउ।
पुंछिउ लंजियउ कहिँ महु सिसु णयण-विसालउ।। 54।।

(5)

वत्थु-छंद— हलि लवंगिए-एलि-कंकेलि-कल[1]-
कुवलय-दल-णयणि चंदवयणि चंदिणि सुलक्खणि।
महु वालु कहिँ पासु भण भाणुमइ तुहुं कहि वियक्खणि।।
ताम णियंति णियंबिणिउँ मंदिरु सयलु गविट्ठु
पुणु रूविणिहिँ पयासियउ माइ कहिँपि ण दिट्ठु।। छ।।
तं णिसुणेवि रूविणि पुणु रुयंति महि-मंडले णिव मिय थरहरंति।

अत: उसके वन में जाते ही पुत्र उत्पन्न हो गया। आज का मुहूर्त, नक्षत्र एवं दिन धन्य है। "घर-घर में तोरण बाँधे गये। मंगलघोष किये गये। गणिकाएँ एवं अन्य नारीजन नाच रही थीं। राजा ने नेत्रपट्ट और कंचनभूषणों का दान देकर बन्दी-वृन्दों की मनोकामनाएँ पूर्ण कीं। अलि को जीतने वाले, काले कुटिल केश वाले उस सुकुमार बालक का आदरपूर्वक योग्य पालन-पोषण किया जाने लगा। वह बालक द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा और प्रतिदिन उसके (रूपिणी के पुत्र प्रद्युम्न) रूप की ऋद्धि बढ़ने लगी।

घत्ता— और इधर, रूपिणी ने (जब) पलंग पर (अपने) बालक (प्रद्युम्न) को नहीं देखा तब उसने अपनी लज्जिका (दासी) से पूछा कि मेरा नयन विशाल शिशु कहाँ है?।। 54।।

(5)

पुत्र के अपहरण पर माता रूपिणी का विलाप

वस्तु-छन्द—हे लवंगिके, हे एले, हे कंकेलि, हे कले, हे कमलनेत्रे, हे चन्द्रवदनी, हे चन्दने, हे सुलक्षणे, बोलो, मेरा बालक किसके पास है? हे भानुमति, हे विचक्षणे, बोलो, मेरा बच्चा कहाँ है? यह सुनकर उन नितम्बिनियों ने समस्त राजभवन खोज मारा और आकर रूपिणी से निवेदन किया कि हे माता, उसे हम लोगों ने कहीं भी नहीं देखा।। छ।।

उसको सुनकर रूपिणी पुन: रोने लगी और थरहराती काँपती हुई वह महीमण्डल पर गिर पड़ी। वह प्रद्युम्न

---

(4) (2) आकर्षयति।

(5) (1) मनोज्ञ।

मुच्छाविय सा पज्जुण्ण-माय विहलंघल रूवाए वि जाय।
गोसीरस-घणसारहो जलेहिं सिंचिय सुसुयंघहिं सीयलेहिं।
उट्ठाविय हा-हा सुअ भणंति विलवंति कणंति रुवंति संति।
हा वच्छ-वच्छ कुवलय-दलच्छ पइं पेच्छमि कहिंहउं सेय तुच्छ[2]
हा बाल-बाल अलि-णील-बाल करयल-जिय रत्तुप्पल-सुणाल[3]।
हा-कंबु-कंठउज्जय सुणास हा-सवण विणिज्जिय मयण-पास।
मोक्कल-कल-कोंतल तोडणेण कोमल-करयल उरे ताडणेण।
विहुणिय-तणु सिर-संचालणेण पाणियल-धरणि अप्फालणेण।
रूविणिएं रुवंतिए[4] कुं-कुं-ण रुण्णु बारमइहे णं संखउलु[5] भिण्णु।

घत्ता— तं णिसुणेवि महुमहणु रणे परवले कय-भद्दहिं।
पिउ वसुएवेण सहिउ दस-दसार बलहद्दहिं।। 55।।

(6)

वत्थु-छंद— इम मिलेविणु सयल तहिं समए
णायर-णर परिवरिय संपत्त रूविणिहि राउले।

की माता रूपिणी विह्वल होकर जब मूर्च्छित हो गई, तब सुगन्धित शीतल गोशीर्ष (चन्दन) और कर्पूर के जलों से उसे सींचा गया। मूर्च्छा टूटने पर उसे उठाकर बैठाया गया। वह "हा पुत्र—हा पुत्र" कहती हुई, विलाप करती हुई, माथा पीटती हुई, रोती हुई कह रही थी कि हा पुत्र, हा पुत्र, तुम्हें कौन ले गया? मेरा हृदय शतखण्ड होकर फूट रहा है। हा कुवलय दलाक्ष वत्स, हा वत्स। श्रेय तुच्छ· (पुण्यहीन) में तुझे कहाँ देखूँ, कहाँ देखूँ?

हा अलिनील बाल (केश) बाल, हा बाल। करतल से रक्त कमल को जीतने वाले सुनाल (विशाल पैर वाले) बाल। हा कम्बु (शंख) समान कण्ठ वाले हे बाल, उन्नत नासिका वाले हे बाल। हा श्रवण से मदनपाश को विनिर्जित करने वाले हे बाल। हा ! इस प्रकार वह रूपिणी रानी कभी खुले बिखरे सुन्दर केशों को तोड़ती थी। कभी कोमल करतल से उर को (छाती को) ताड़ती थी—पीटती थी। कभी सिर घुमा-घुमा कर शरीर को धुनती थी, कभी पाणितल से पृथिवी को पीटती थी। हूं, हूं, हूं, हूं, शब्दों से रूपिणी जब रो रही थी तब द्वारावती में ऐसा कोई नहीं था, जो न रोया हो। मानों शंखकुल ही फूट पड़ा हो (रो रहा हो)।

घत्ता— रण में परबल का मर्दन करने वाले मधुमथन और बलभद्र उस पुत्र के अपहरण का वृत्तान्त जान कर तथा रूपिणी का विलाप सुनकर पिता वसुदेव सहित दशों दिशाओं में खोजने निकल पड़े।। 55।।

(6)

रूपिणी एवं हरि की शोकावस्था का वर्णन। सभी राजा पुत्र की खोज में निकल पड़ते हैं

वस्तु-छन्द—इस दुखद घड़ी में समस्त नागर जन सपरिवार मिलकर रानी रूपिणी के, ध्वजाओं से अलंकृत, कनक-कलशों से मनोहर एवं रमा से भरपूर राजकुल में पहुँचे। वहाँ उन्होंने उस भीष्म की सुता

---

(5) (2) पुनिरक्तिता। (3) विशाल। (4) हूं हूं हूं इति रुदंति। (5) शंखसमूह :

धय-मालालंकरिउ कणय-कलस-पेसल रमाउले।।
ता पेछेवि भीसम-सुअ कलणु-पलाउ करंति।
वाह पवाहहिँ सयल महि सरि-सरवरइँ भरंति।। छ।।

[(1)]तं पेछेवि हरि विलुलिय-गत्तउ सुवहो विओय-सोय संतत्तउ।
पुणु-पुणु संवोहिउ वलहद्दें आयम-वयणहिँ सुमहुरें-सद्दें
अहो महुमहण सोउ णउ किज्जइ सोयइँ सुहडत्तणु णासिज्जइँ।
सोयइँ खयहो जाइ माहत्तमु तुम्हारिसु पुणु इह पुरिसोत्तमु।
सोउ करंतु किण्ण किर लज्जइ संसारहो गइ मुणहि ण[1] अ[2]ज्जइ[(2)]।
अद्धुव-असरण-जग गुरु-सिक्खउ कहिउ तासु वारह अणुवेक्खउ।
इम संवोहिउ महुमुहु राणउँ पुत्त-विओय-सोय-विद्दाणउँ।
पुणु सच्चहिँ रूविणि संवोहिय बहु दिट्ठंतहिँ तो वि ण बो[3]हिय।
पुणरवि णरवइ मिलेवि असेसा गय रूविणि-णंदणहो गवेसा।

घत्ता— सरि-सुरगिरि पवरे आराम-गाम सुविसिट्ठउ।
घर-पुरवर सयल जोयंतहिँ वालु ण दिट्ठउ।। 56।।

—रूपिणी को करुण-प्रलाप करते हुए तथा अपने अश्रुओं के धारा-प्रवाहों से पृथिवी को तथा समस्त नदियों एवं सरोवरों को भरते हुए देखा।। छ।।

रूपिणी की शोकावस्था को देखकर वह हरि भी विलुलित-गात्र हो गया और शोक-सन्तप्त हो गया तब बलभद्र ने आगम के वचनों द्वारा सुमधुर शब्दों से उसे बार-बार सम्बोधित किया और कहा—"अहो मधुमथन, शोक मत कीजिए। शोक से सुभटपना का नाश हो जाता है, शोक से माहात्म्य (बड़प्पन) का क्षय हो जाता है।

फिर इस संसार में यदि तुम्हारे जैसा पुरुषोत्तम इस प्रकार शोक करे तो क्या लज्जा का विषय नहीं है? क्या संसार की गति को आज तक भी नहीं समझा? जगद्गुरु जिनेन्द्र ने अध्रुव, अशरण जैसी बारह अनुप्रेक्षाएँ एवं उनकी शिक्षाएँ बतलाई हैं। इस प्रकार बलभद्र ने पुत्र-वियोग के शोक से विद्रावित राजा मधुमथन को सम्बोधित किया। पुन: सत्यभामा ने भी अनेक दृष्टान्तों से रूपिणी को सम्बोधित किया तो भी वह चुप नहीं हुई। पुनरपि सभी राजा मिले और रूपिणी के नन्दन को खोजने गये।

घत्ता— नदियों पर, प्रवर सुरगिरि पर, विशिष्ट आराम में, ग्राम में, सकल पुरवरों के घर गये। वहाँ देखते हुए भी बालक को नहीं देखा।। 56।।

---

(6) 1. अ. वि। 2. अ. ण'। 3. ब. मो'।

(6) (1) तां रुक्मिनी। (2) न अयाति।

(7)

वत्थु-छंद— आय सयल वि मिलेवि सामंत
भूगोयर महि भमेवि णरवरेहिं पुणु वासुएवहो।
पणवेप्पिणु वज्जरहिं कय तिखंड महिराय सेवहो।
अहो परमेसर सयल-इल जोइय दिट्ठ ण बालु।
किं देवइँ किं दाणवइँ णियउ सुणयण विसालु।। छ।।

एत्थंतरे पुणु रूविणि-रुवइ णीसास-दीहे सिरिहरु [1]धुअइ।
वसुएउ वि विहुणइ णियय-सिरु वलहद्दु पयंपइ होउ थिरु।
तहिं अवसरे जो कोवीण-धरु छत्तिय कोमंडल [2]मिसिय करु।
जिणि पंचविहु णिज्जियउ करणु जो णवविह वंभचेर धरणु।
णह-गामिउ तव-सिरि राइयउ सो णारउ तहिं जि पराइयउ।
सव्वेहिमि उम्मण-दुम्मणेहिं मुणि पणविउ णाणाविह जणेहिं।
रूविणि तहो चलणोवरि पडिय रोवइ सदुक्ख सोयइ णडिय।
अहो-अहो परमेसर दिव्ववाणि[3] हुअ पेछु ताय महो पुत्त-हाणि।
कहिं गच्छमि को अणुसरमि अज्जु विणु पुत्तइँ महु ण सुहाइ रज्जु।
हा सुअ-सुअ कहिं तुहु गयउ बाल महो हियइ-छुहेविणु सोय-जाल।

---

(7)

नारद का आगमन। रूपिणी उससे पूछती है कि हमारे पुत्र का अपहरण किससे करा दिया है?

वस्तु-छन्द—समस्त सामन्त एवं भूमिगोचरी नरवर सम्पूर्ण पृथिवी का भ्रमण कर आये और सभी मिल कर त्रिखण्ड पृथिवी के राजाओं द्वारा सेवित वासुदेव को प्रणाम कर बोले "हे परमेश्वर, हमने सम्पूर्ण पृथिवी खोज डाली किन्तु उस बालक को कहीं नहीं देखा। उस नयन विशाल बालक को क्या कोई देव ले गया है, अथवा कोई दानव (यह समझ में नहीं आता), ।। छ।।

वह रूपिणी पुनः रोने लगी। दीर्घ निश्वासों से वह अपना सिर धुनने लगी। वासुदेव भी अपना सिर धुनने लगे। (यह देखकर) बलभद्र समझाते थे कि—"धीरज धरो—धीरज धरो"

उसी समय जो कौपीनधारी हैं, क्षत्री हैं, कमण्डल से युक्त हाथ वाले हैं, जिन्होंने पाँच प्रकार की इन्द्रियों को जीत लिया है, जो नव प्रकार के ब्रह्मचर्य के धारी हैं, नभोगामी हैं और जो तपश्री से सुशोभित हैं, ऐसे नारद वहाँ आ पहुँचे। सभी अनमने दुर्मने जनों ने मुनिराज को नाना प्रकार से प्रणाम किया। दुःख से व्याकुल शोकाकुल रूपिणी उनके चरणों में गिरकर रोने लगी और बोली—"अहो परमेश्वर, दिव्य वाणी युक्त हे तात् देखो, मेरे पुत्र की हानि हो गयी है। अब मैं कहाँ जाऊँ, क्या काम करूँ, क्या अनुसरूँ? आज बिना पुत्र के मुझे राज नहीं सुहाता। मेरे हृदय को शोक-जाल में डुबाकर हा सुत-हा सुत, हे बाल, तू कहाँ चला गया?"

---

(7) 1. ब अ. धु। 2. अ. नि। 3. ब व।

घत्ता— हा ताय-ताय पइँ आसि महु परिणयणु कराविउ।
जइ चक्कवइहे दिण्ण कहि[1] सुउ केण हराविउ।। 57।।

(8)

वत्थु-छंद -- तो सुहद्दइँ अवरु देवइए पडिजंपिउ
रूविणि णि[1]सुणि[2] पुण्णहीण तुहुं अज्जु जाणिय।
परपुण्णहिं अगलिय सच्चहाव जा पढम राणिय।।
सो जि मुहुत्तु विवा[3]रु सो वि जणिय सुरणंदणपेच्छ।
तुह केरउ दइवें हरिउ सच्चवि पुणु अणहच्छ।। छ।।

देवइ-सुहद्द दुव्वयणु देवि णिय णिलउ गयइँ दूसणु ठवेवि।
ता रूविणि सुय-संताव-तत्त पमणइ हउं पुण्ण-पहाव-चत्त।
पइसरमि जलंतइँ जलणे अज्जु घर-वावारेण ण किंपि कज्जु।
तवचरणु घोरु किं चरमि ताय जं सासु णणंदहँ णिसुअ वाय।
अवरु वि गरुवउ सं[4]ताउ मज्झु मुणि णिसुणि पयत्तें कह वि तुज्झु।

घत्ता-- "हा तात, हा तात्। आपने ही तो मेरा परिणयन (विवाह) कराया है। यदि चक्रवर्ती को पुत्र दिया है तो फिर उसका अपहरण किससे करा दिया है, (साफ-साफ कहो।")।। 57।।

(8)

सास एवं ननद की झिड़कियाँ सुनकर रूपिणी का दुख दुगुना हो गया

वस्तु-छन्द—तब सुभद्रा (ननद) और देवकी (सास) ने कहा "हे रूपिणी सुनो, तू पुण्य-हीना है, ऐसा हमने आज जाना, जब कि प्रथम रानी सत्यभामा पुण्य से अगलित है—हीन नहीं है।" —"जब उस (तुम्हारे पुत्र-जन्म) के मुहूर्त्त पर विचार किया तो यह पाया कि वह सुरनन्दन-पक्ष में जन्मा है। इसीलिए तुम्हारा पुत्र तो दैव (दुर्भाग्य) से अपहृत हो गया जब कि सत्यभामा का पुत्र अनाहत (अनपहृत या अपीड़ित) है।। छ।।

देवकी और सुभद्रा दोनों ही दुर्वचन देकर (लांछन लगाकर) अपने-अपने घर गईं। तब सुत-सन्ताप से सन्तप्त रूपिणी बोली—"मैं पुण्य-प्रभाव से त्यक्त हूँ। अब आज मैं जलती हुई अग्नि में प्रवेश करूँगी, अब मुझे घर के व्यापारों से क्या प्रयोजन? हे तात, क्या अब मैं घोर तपश्चरण करूँ, जिससे सास, ननद की बातें न सुननी पड़ें। (उनके ताने सुनकर तो) मुझे और भी घोर सन्ताप हो रहा है। हे मुनिराज, सावधानी पूर्वक सुनिए, मैं (केवल) आपसे (ही) निवेदन कर रही हूँ कि सपत्नी (सौत) ने कुछ त्रुटि की (टोटका अवश्य किया) है, ऐसा मुझे भास रहा है। "हा-हा, दैव ने मेरे पुत्र का अपहरण कर मेरे साथ क्रूर हँसी (व्यंग्य) की है।" फिर उसी

(7) (1) कथय्।

(8) 1-2. अ में नहीं है। 3. अ °र। 4. अ. दुक्खु।

कय तुडि जि सवत्तिए समउँ भास हय दइवइ इह महो पुत्त [5]हास
तहिँ अवसरे पुणु महमहणु चवइ कहिं अम्हहँ एहा वच्छ हवइ।
सव्वत्थ गवेसिउ वच्छु[6] अज्जु पर केणवि णियउ ण लद्धु खोज्जु।
घत्ता— मुणि भाणु णिउणु मुणेवि सो सिसु मरइ कि जीवइ।
कह संजोवण मिलइँ किं णिवसइ इह दीवइँ।। 58।।

(9)

वत्थु-छंद— ताम णारउ भणइ महुमहण फुडु
रूवाए वि सुणि को-कोण गयउ महे भवण भित्तरु।
उग्गवणु अत्थवणु तिम ससि-सूरहँ जिम णिरंतरु।।
तित्थंकर-चक्कवइ कहिँ हरि-हर-रावण-राम।
जे पायउ फणि-णर-सुरहँ तिजग[1] विणिग्गय णाम।। छ।।

एत्थंतरे ता रूविणि चवइ एवहिं महो होसइ कवण गइ।
विणु पुत्तइँ किम संठवमि मणु सुहु णत्थि सरीरहो ताय खणु।
मुणि पभणइँ म करि विसाए सुए मालइ-माला वेल्लहल-भुए।
सज्जण-मण-णयणाणंदणहो हउँ जामि [2]गवेसइँ[3] णंदणहो।

अवसर पर मधुमथन ने कहा—"हमारी ऐसी अवस्था कैसे हुई? हमारा यह वत्स कहाँ होगा। हे आर्य, वत्स को सर्वत्र खोजा किन्तु खोज करते समय न तो उसे किसी ने कहीं देखा और न पाया।"

घत्ता— ज्ञान निपुण तथा भानु के समान हे मुनिराज, आप (अपने ज्ञान से) जानकर बताइए कि वह शिशु मर गया है या जीवित है। किस संयोग से वह मिलेगा? क्या वह इसी द्वीप में रह रहा है।। 58।।

(9)

नारद आकाश-मार्ग से प्रद्युम्न की खोज में निकलते हैं

वस्तु-छन्द—तब नारद ने कहा—"हे मधुमथन, हे रूपिणी, स्पष्ट सुनो। इस महान्। भुवन (लोक) के भीतर कौन-कौन नहीं गया। उद्‌गमन और अस्तमन सभी का वैसा ही हुआ जैसे चन्द्र एवं सूर्य का उदय एवं अस्त निरन्तर होता रहता है। तीर्थंकर और चक्रवर्ती कहाँ तथा हरि-हर, रावण एवं राम कहाँ? जो साक्षात् ही फणी, नर एवं सुर थे, त्रिजग में उनका भी नाम कहीं निकला है (अर्थात् वे इस संसार में रह सकेंगे)?"

इसी बीच में वह रूपिणी (नारद का कथन सुनकर) बोली—"अब मेरी कौन गति होगी। बिना पुत्र के मैं अपने मन को कैसे ढाढ़स बँधाऊँ। हे तात् मेरे शरीर को क्षण भर भी सुख नहीं मिल रहा है।" तब मुनिराज ने कहा—"हे मालती की माला के समान सुन्दर सुकुमार भुजावाली हे सुते, विषाद मत करो। सज्जन जनों के मन को आनन्द देने वाले तेरे उस पुत्र की गवेषणा के लिये मैं जाता हूँ। "सुत के शोक से बिल्लाती विह्वल रूपिणी

---

(8) 5. अ हँ। 6. अ जाल्हु।

(9) 1. अ क्च। 2-3. अ. लग्गमि कुहे तहं।

[4]सिरु इल लाइवि किय वंदणहिं सुय-सोय विउयंतहि जि तहे।[5]
सो एम भणेविणु णीहरिउ णह-मग्गइ मंदिरु गिरि तुरिउ।
गउ तहिं-जहिं थियइँ अकित्तिमइँ जिण-भवणइँ णिरु तिजगुत्तमइँ।
भव-भय संचिय दुक्किय-हरइँ वंदिवि थुणेवि चेई हरइँ।
तहिं चिंतइँ पुणु मुणि मणेण एम उवलंभु लहमि तहो तणउँ केम।
पुर-गाम-खेड-कव्वड-अचले [illegible]।
सिरिविजय राय सिवण-वहुओ जो अच्छइ णेमिकुमारु सुओ।

घत्ता— सो जिणु बावीसमउँ चरम-सरीरु णिरुत्तउ।
अण्णु ण दीसइ कोवि तिहिं णाणिहिं संजुत्तउ।। 59।।

(10)

वत्थु-छंद— पर ण अज्जवि तासु णिक्खवणु
ण वि केवलणाण किर छद्मत्थु किम कहइ पुच्छिउ।
रिसि णारउ ता एम मणे चिंतवंतु खणु एक्कु अच्छिउ।।
पुणु उप्पणु विवेकि तसु पुव्व-विदेहहिं जामि।
समवसरण तित्थयरु जहिं सिरि सीमंधरु सामि।। छ।।

ने अपना सिर पृथिवी पर लगाकर मुनि की वन्दना की। हे तुम जियो, नारद मुनि ऐसा कहकर राजभवन से निकले और आकाश-मार्ग से शीघ्र ही उस मन्दरगिरि (सुमेरु पर्वत) पर गये, जहाँ तीनों लोकों में अत्यन्त श्रेष्ठ अकृत्रिम जिनभवन स्थित हैं। भव-भव के संचित सैकड़ों दुष्कृतों को हरने वाले चैत्यगृहों की वन्दना स्तुति कर वे वहाँ मन में ऐसा विचार करने लगे कि—"रूपिणी के तनय की उपलब्धि कैसे करूँ? पुरों, ग्रामों, खेडों, कर्वटों (पर्वतीय प्रदेशों), अचल पर्वतों तथा समस्त पृथिवी तल में ज्ञानी, श्री (समुद्र) विजय राजा और शिवर्ण बहु (शिवादेवी) का पुत्र जो नेमिकुमार है"—

घत्ता— जो बाईसवाँ चरमशरीरी जिनेन्द्र कहा गया है। (उसके सामने) तीन ज्ञानों से युक्त अन्य कोई नहीं दीखता। 1। 59।।

(10)

नारद पूर्व-विदेह जाते समय मार्ग में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी को देखते हैं

वस्तु-छन्द— "परन्तु आज भी उनका निष्क्रमण कल्याणक और केवलज्ञान कल्याणक नहीं हुआ है। वे निश्चय ही अभी छद्मस्थावस्था में हैं। पूछने पर क्या कहेंगे? इस प्रकार ऋषि नारद अपने मन में विचारता हुआ एक क्षण ठहरा। पुनः उसे विवेक उत्पन्न हुआ कि जो पूर्व विदेह है, वहाँ समवशरण में स्थित श्री सीमन्धर-स्वामी (विराजमान) हैं—।। छ।।

---

(9) 4-5. अ. यह पूरी पंक्ति नहीं है।

एउ चिंतेवि वोमभाई[1] चलिउ णं सूरु-तूलु[2] पवणहो मिलिउ।
णंदण-वण-घण-कीलर विसउ ता णियइ पोक्खलावइ विसउ।
दाहिणयडे सीय-महाणइहे करि मयक्ख-वच्छ कीलण-रइहे।
जहिं अमरविमाणहो उयरेवि तिविहे णवि तिपयाहिण करेवि।
तहिं भव्व विविह सिय[3]-सउहयरि पइसरइ पुंडरिंकिणि-णयरि।
पुव्वाण-कोडि जणु जियइ जहिं अंतरे मिच्चु वि कासु वि ण कहिं।
धणु सइयं-पंच उछेह तणू जहिं पोम-तेय-सिय लेस मणू।
तित्थंकर-हलहर-चक्कहर उप्पज्जहिं जहिं सुपसिद्ध णर।
पोमाणणु-पोमालंकरिउ पय-पोम दिवायरुव्व फुरिउ।
तहिं वसुह छखंडहिं गहियकरु चक्केसरु-पउमु णामु पवरु।
जसु रयण-चउद्दह णव-णिहाण णेसप्पाइय-पिंगल-पहाण।

घत्ता— [illegible] कोडिउ जसु हय संखि तुरंगहँ।
लक्खहँ-चउरासिय वि तुंग मत्त-मायंगहँ।। 60।।

—ऐसा विचार कर वह आकाशमार्ग से वहाँ के लिए चला। ऐसा प्रतीत होता था मानों आकवृक्ष की तूल (रुई) ही पवन से मिल कर व्योम भाग में चली गई हो। जहाँ अनेक नन्दनवन विविध क्रीडाओं के विषय हैं। वह नारद सर्वप्रथम सीता महानदी के दक्षिण तट पर स्थित उस पुष्कलावती देश को देखता है, जो हाथी, सिंह, मृग जैसे पशुओं की क्रीड़ा-रति का स्थान है, जहाँ देवगण अपने विमानों से उत्तर कर मन-वचन-काय से जिसकी तीन प्रदक्षिणाएँ करते हैं। नारद मुनि ने उस देश की भव्य एवं विविध शुभ्र वर्णों के सौध वाली पुण्डरीकणी में प्रवेश किया। जहाँ के जन एक पूर्व कोटि तक जीते हैं (अर्थात् उनकी एक पूर्व कोटि की आयु है)। जहाँ बीच में किसी की भी मृत्यु (अकाल मृत्यु) नहीं होती। शरीर का उत्सेध (ऊँचाई) 500 धनुष का है, जहाँ पद्मलेश्या, तेजो (पीत) एवं सित (शुक्ल) लेश्या वाले मनुष्य ही होते हैं और जहाँ सुप्रसिद्ध मनुष्य, तीर्थंकर हलधर, चक्रधर उत्पन्न होते रहते हैं। वहाँ छखण्ड वसुधा से कर ग्रहण करने वाला कमल-मुख, पद्मा—लक्ष्मी से अलंकृत, कमल के समान चरण वाला स्फुरित (चमकते हुए) दिवाकर सूर्य के समान पद्म नाम का प्रवर चक्रेश्वर हुआ, जिसे 14 रत्न, और पिंगल प्रधान नैसर्पादिक नौ निधियाँ प्राप्त थीं।

घत्ता— जिसके नौ के दूने अर्थात् 18 कोड़ि घोड़ों की संख्या थी। जिसके 84 लाख तुंग मत्त मातंग हाथियों की संख्या थी।। 60।।

(10) (1) आकासे। (2) अर्कतूल। (3) सौध-मंदिर।

(11)

वत्थु-छंद--- जक्ख-विंतरदेव भुवणयले
जसु सेव अणु-दिणु करहिं थुणहिं वंदिवंदहिं णिरंतरु।
जणु तणउँ जसु पसरियउ सग्गे-मत्ते-पायाल भिंतरु।।
समवसरणु सो[1] जिणवरहो जहिं संठिउ णरणाहु।
पुच्छइ धम्माहम्म-फलु सुरकरि-कर[2]-समवाहु।। छ।।

परमेट्ठि [3]सहिउ तं समवसरणु पइसरमि स-दुक्किय कम्म-हरणु।
पणवेवि ति भांमरि देवि जिणहो थुइ करइ विवज्जिय-दुरिय-रिणहो।
जय मयण-हुयासण-पलय-मेह दह-अट्ठदोस परिमुक्क-देह
जय अणह-अरह-अरहंत-दंत जय मोक्ख-महासिरि-देवि कंत।
जय फणि-णर-सुर कय पाय[4] सेव जय परम णिरंजण देव-देव।
हरियासण-भामंडल-असोय[5] जय-दुंदुहि-सर विंभिय तिलोय।
जय कुसुम-पस[6]र सिय णहहो अमर जय-जयहिं ढलिय चउसट्ठि चमर।

---

(11)

पूर्व-विदेह क्षेत्र स्थित सीमंधर स्वामी के समवशरण में पहुँच कर नारद उनकी स्तुति करते हैं

वस्तु-छन्द—भुवनतल में यक्ष एवं व्यन्तर देव जिसकी प्रतिदिन सेवा किया करते हैं और बन्दी वृन्द जिसकी निरन्तर स्तुति किया करते हैं और जिसका (चक्रवर्ती) यश स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक के भीतर फैला हुआ था। ऐसा वह ऐरावत हाथी की सूँड के समान बाहुवाला नरनाथ राजा पद्म वहाँ बैठा हुआ था, जहाँ जिनवर का समवशरण था। वह उन जिनवर से धर्म-अधर्म के फल को पूछ रहा था।। छ।।

"अब मैं अपने दुष्कृत कर्मों को नष्ट करने के लिये परमेष्ठी का उच्चारण कर उस समवशरण में प्रवेश करता हूँ। इस प्रकार विचार कर वह नारद दुरित ऋण (कर्मों) से रहित जिनेन्द्र को प्रणाम कर तीन भ्रामरी (प्रदक्षिणा) देकर स्तुति करने लगा—"मदन रूपी हुताशन को शान्त करने के लिए प्रलयकालीन मेघ के समान आपकी जय हो। अठारह दोषों से रहित शरीर वाले आपकी जय हो। हे अनघ, अनन्तानुबन्धी आदि कषायों का हनन करने वाले (तथा मोहनीय कर्म से रहित), हे अरह (—रहस्य अन्तरायकर्म रहित) हे दान्त—(इन्द्रिय विजयी) अरहन्त आपकी जय हो, मुक्ति रूपी महालक्ष्मी देवी के कान्त आपकी जय हो। जिनके चरणों की सेवा फणी, नर और सुर किया करते हैं, ऐसे आपकी जय हो। परम निरंजन देवों के देव, आपकी जय हो, अष्ट प्रातिहार्य में सिंहासन, भामण्डल-छत्र एवं अशोक (तरु) जिनके हैं, ऐसे आपकी जय हो। दुन्दुभि स्वर से त्रिलोक को विस्मित कर दिया है, ऐसे आपकी जय हो। देवों द्वारा आकाश से जिन पर पुष्प-वृष्टि की जाती है, जिन पर चौंसठ चमर ढोले जाते हैं, ऐसे आपकी जय हो। सप्तभंगी रूप दिव्यध्वनि के द्वारा बहुविध प्रमेयों को प्रकट

---

(11) 1. अ. जो। 2. ब. कर। 3. अ. हे सुउ। 4. ब. स। 5. अ. असोय।
6. अ. 'च।

जय सत्तभंगि बहुविह पमेय[(1)] पइं भासिय समयाणेय भेय।।

घत्ता— जय परमणिरंजण-परमपहु मोक्ख-महापय-गामिय।
जय-जय केवलणाण-घर सिरि-सीमंधर-सामिय।। 61।।

(12)

वत्थु-छंद— ता चक्केसरु णिहेवि तहो रूउ
अइसुहुमु करयले करेवि मणे विंभिउ [1]पुणु अरु[2]हु पुंछइ।
परमेसरु कवणु यहु कहिं तणउ महु करिज्जु अच्छइ।।
कहइ जिणेसरु राय सुणि जो तिहुवणे सुपसिद्ध।
भरहखेत्तु णामेण जय[(1)] धण-कण-रयण समिद्धु।। छ।।

तहिं अत्थि सोरट्ठु णामेण वरविसउ[(2)] जहिं तरुण णिप्फलु वि सरवरु[3] ण णिव्विसउ[(3)]।
पुरि णाम वारमइ तिक्खंड महिपालु वलहद्दु सकणिट्ठु दुट्ठारि-गण-कालु।
तहिं अत्थि महुमहणु णामेण वर राउ रिउ-सेल सिहरम्मि सोदामिणी घाउ।

करने वाले आपकी जय हो। आपने समय-मतों के अनेक भेद भाखे हैं। ऐसे आपकी जय हो।

घत्ता— परम निरंजन मोक्षमहापथगामी परमप्रभु आपकी जय हो। केवलज्ञानधारी श्री सीमन्धर स्वामी आपकी जय हो।। 61।।

(12)

नारद का सूक्ष्म-शरीर अपनी हथेली पर रखकर चक्रेश्वर-पद्म जिनवर से पूछता है कि यह प्राणी कहाँ से आ गया है?

वस्तु-छन्द— तब चक्रेश्वर—पद्म उस नारद का अतिसूक्ष्म रूप देखकर तथा उसे अपने करतल में रखकर मन में विस्मित हुआ और उसने प्रभु के चरणों में नमस्कार कर पूछा "हे परमेश्वर, यह जो मेरे कर (हाथ) में स्थित है, यह कौन है और कहाँ का (जीव) है?" जब जिनेश्वर बोले "हे राजन् सुनो। त्रिभुवन में जो भरतक्षेत्र नाम से सुप्रसिद्ध है, जो कि धन-कण एवं रत्नों से समृद्ध है।। छ।।

उसी भरतक्षेत्र में सोरठ नामका एक समृद्ध देश है, जहाँ के वृक्ष कभी निष्फल नहीं होते और विशाल सरोवर कभी भी जलरहित नहीं होते। वहाँ द्वारावती नामकी एक पुरी है। वहाँ तीन खण्ड का महीपाल (राजा) बलभद्र दुष्ट शत्रु-गणों के लिए काल के समान अपने छोटे भाई (कृष्ण) के साथ निवास करता है। वहाँ मधुमथन (कृष्ण) नामका लोकप्रिय राजा है, जो शत्रु-रूपी पर्वत-शिखर के लिए सौदामिनी के घात के समान है। उस भरतक्षेत्र में होकर यह (सूक्ष्म प्राणी) यहाँ आया है।" (यह सुनकर) नरनाथ पद्म ने पुनः पूछा—"क्या यह युक्त घटित होता है कि भरतक्षेत्र के ऐसे लघु मनुष्य का आगमन यहाँ हो?" तब देव ने पुनः उत्तर

---

(12) 1. ब. धु°। 2. ब. °क°। 3. ब. °उं।

(11) (1) प्रमाणीभूत।

(12) (1) जगति। (2) देस। (3) जलरहितः।

तहि भरहे होएवि एहु इत्थु संपत्तउ पुणु भणइ णरणाहु इउ घडइ किम जुत्तु।
भरहस्स तणयस्स(4) मणुयस्स आगमणु ता कहइ पुणु देउ णिसुणेहि एम[4] वय[5]णु।
णामेण णारोत्ति एहु बंभ-वयधारि दिव्व-तणु सुद्ध मणु महि भवणु णहचारि।
णिउ भणइँ पुणु केण कज्जेण एहु आउ जिणु कहइँ (5)तहिं अद्धचक्की वि जो राउ।
महुमहणु तहो घरिणि रूविणिहि जो जाउ(6) तेणत्थु कज्जेण पुच्छणहु एहु आउ।
सो णियहु केणावि हरिऊण जा सुद्धि णिसुणेवि इह अम्ह पासम्मे सा वुद्धिं।।

घत्ता— ते चक्केसरु चवइ कहहु केण सो हरियउ।
कहिं अछउ[6] तणउँ महु णियमणे अच्चरियउ।। 62।।

(13)

वत्थु-छंद— ताम तिहुअण-सामि वज्जरइ।
चक्केसर पोम सुणि जसु तसेइ सुरु-असुरु-माणउँ।
किक्किंध-मलयहँ वसइ धूमकेउ णामेण दाणउँ।।
तेण रूविणि-सुउ हरिवि णिउ सो पज्जुण्णु कुमारु।
पुव्व-वइरु संभरेवि मणे किर विरइय तहो मारु।। छ।।

दिया—कि "इस वचन को सुनो, — इस ब्रह्मव्रतधारी, दिव्यशरीरी, शुद्धमन, महीभ्रमणकारी, नभचारी प्राणी का नाम नारद है।" पुनः राजा ने पूछा—"किस कारण से (वह) यहाँ आया है? तब जिनेन्द्र ने उत्तर दिया कि वहाँ भरतक्षेत्र में जो अर्धचक्री राजा मधुमथन (कृष्ण) है, उसकी गृहिणी रूपिणी के शिशु के विषय में पूछने के लिए ही वह यहाँ आया है। उस शिशु को कोई हरण कर ले भागा है? उस रूपिणी का विलाप सुनकर यह बुद्धिमान हमारे पास (उसी के विषय में) पूछने के लिए आया है।"

घत्ता— तब चक्रेश्वर ने कहा—"उस शिशु का अपहरण किसने किया है? कहाँ है वह? मुझे अपने मन में आश्चर्य है?"।। 62।।

(13)

जिनवर ने बताया कि शिशु-प्रद्युम्न का, पूर्वजन्म के बैरी धूमकेतु दानव ने अपहरण कर उसे तक्षकगिरि की शिला के नीचे चाँप दिया है

वस्तु-छन्द—तब त्रिभुवन स्वामी ने उसे बताया—"हे चक्रेश्वर पद्म सुनो, सुर असुर एवं मानवों को त्रास देने वाला, धूमकेतु नामका एक दानव किष्किन्ध-मलय में निवास करता है—वह (दानव) पूर्व बैर का स्मरण कर और अपने मन में उसके मारने का विचार कर (रानी) रूपिणी के उस शिशु प्रद्युम्नकुमार का अपहरण कर ले गया है।। छ।।

---

(12) 4. अ. °य। 5. अ. मणु। 6. अ. चक्केस।

(12) (4) सूक्ष्मलघु मनुष्य। (5) भरतक्षेत्रे। (6) पुत्र।

छुडु जायइँ दिणे पंचमइ गए छट्ठिहिँ पुणु अद्धरयणि समए।
सो असुरु घोरु कत्थवि चलिउ णहे जंतहो वोमजाणु खलिउ।
चिरु रिउ भणेवि मणे जाणिउँ तेणे वालु हरे विणु आणियउँ।
तक्खयगिरि-तले सद्दूल घणे तहिँ सिल चप्पिवि खइराडवणे।
गउ कत्थइं मुअउ भणेवि असुरु ता मेहकूडु णामेण पुरु।
तहिँ राउ कालसंवरु वसइ परचक्कु असेसु वि जसु तसइ।
सो चडिवि विमाणेहिँ कहिँमि तुरिउ पिय कंचणमाला परियरिउ।
विज्जाहरवइ संचलउ जहिँ तासु वि विमाणु पुणु खलिउ तहिँ।

घत्ता— खयराडविहे[1] पएसि चलइ विमाणु ण जामहिँ।
पेच्छइ सिल-वेवंति[2] विज्जाहरवइ तामहिँ।। 63।।

(14)

वत्थु-छंद— सा उच्चाइय तेण राएण
तं पेच्छिवि वालु तहिँ पुणु ढोइउ कणयमालहे।
तहिँ णत्थि णंदणु भणिवि तार-तरल-लोयण विसालहे।

जब उस कुमार के जन्म के पांच दिन बीत गए तब छठे दिन अर्धरात्रि के समय वह घोर असुर कहीं चलकर आकाश-मार्ग में जा रहा था तभी उसका जाता हुआ वह व्योम यान अटक गया। यह चिरकाल का (कोई) रिपु है, यह कह कर उसने मन में उसे पहचान लिया। वही दानव उस बालक को हरकर ले आया है। जहाँ बहुत शार्दूल रहते हैं, ऐसे तक्षकगिरि के तल भाग के खदिराटवी-वन में एक शिला के नीचे उसे चाँप दिया और बालक मर गया है, ऐसा विचार कर वह दानव कहीं चला गया। तत्पश्चात् मेघकूटपुर नामके पुर में कालसंवर नामक राजा रहता है, जिससे कि समस्त शत्रुगण डरते रहते हैं, वही (कालसंवर) राजा अपनी प्रिया कंचनमाला के साथ विमान में चढ़कर शीघ्रतापूर्वक कहीं के लिए निकला। वह विद्याधर पति तब चला जा रहा था तभी वहाँ जा पहुँचा (जहाँ वह प्रद्युम्न शिशु चँपा पड़ा था राजा का वह विमान वहीं अटक गया)।

घत्ता— वहाँ खदिराटवी के प्रदेश में जब वह विमान नहीं चला, तब विद्याधर पति ने शिला को काँपती हुई देखा।। 63।।

(14)

प्रद्युम्न का पूर्व-जन्म (1) मगध स्थित शालिग्राम निवासी सोमशर्म भट्ट का परिचय

वस्तु-छन्द— "राजा कालसंवर ने वह शिला ऊँची की (उठाई) और उस शिशु को देखकर 'उसे (रानी को) पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ", यह कहकर वह उसको विशाल चंचल नेत्र वाली कनकमाला के पास उठा लाया

---

(13) (1) खदिराटवी। (2) कंपति।

मेहकूडे-पुरवरे णियउ सव्व सुलक्खण पुण्णु।
गय कालसंवरहो घरे तहिं वड्ढइ पज्जुण्णु।। छ।।

पुणु भणइ पोमु-चक्कवइ देव फणि-गण-सुर-णर कय पाय सेव।
जं वालहो सुरहो विरोहु आसि तं कारणु महो सामिय पयासि।
ता णाणाविह अच्चरिउ भरिउ जिणु वित्थारइ पज्जुण्णचरिउ।
ठिउ समवसरणे तइलोउ सुणइँ णिव करयलत्थु मुणि सिरु वि धुणइँ।
मगहा-मंडले जण-धण-पगामु[1] जाणियइ पसिद्धउ सालिगामु।
उच्छुवण सालि-सरि-सर रवण्णु पप्फुल्लिय-फलियाराम छण्णु।
भोयालउ जइवि ण तो वि सप्पु कर-रहिउ[2] वि तहव ण सो विडप्पु।
वंभणहं-कुलागउ अग्गहारु दिक्खं गिहो त्ति सोत्तियहे सारु।
तहिं सोमसम्मु णामेण भट्टु अग्गिलपिय जिय घण-थण-भरट्टु।
तहो अग्गिभूइ - मरुभूइ तणय दिय-वेय सत्थ-विण्णाण गणय।

घत्ता— ता चउसंघेण वि सहिउ तिहिं णाणेहिं संजुत्तउ।
तहो गामहो आसण्णु मुणि-पुंगमु संपत्तउ।। 64।।

तथा मेघकूटपुर ले गया। इस प्रकार सभी सुलक्षणों से परिपूर्ण वह बालक (प्रद्युम्न) राजा कालसंवर के घर में बढ़ रहा है।"।। छ।।

पुन: पद्मचक्रवर्ती ने पूछा—"फणिगणों, सुरों एवं मनुष्यों द्वारा सेवित चरण हे देव, बालक एवं देव का जो विरोध हुआ था, हे स्वामिन्, उसका कारण भी मुझे प्रकाशित कीजिए।" तब जिनेन्द्र देव ने नाना प्रकार के आश्चर्यों से भरे हुए प्रद्युम्न चरित्र को विस्तारपूर्वक प्रकट किया। तब समवशरण में स्थित सभी लोगों ने सुना। नृप के करतल पर स्थित मुनि नारद ने भी (अपना) सिर धुन लिया। (जिनेन्द्र कथित प्रद्युम्न कथा निम्न प्रकार है—)

"मगध-मण्डल में जन-जन से प्रसिद्ध शालिग्राम (नामक) ग्राम है, जहाँ सुन्दर-सुन्दर ऊख के वन, शालि के खेत तथा नदी एवं सरोवर हैं। जो ग्राम फूले-फले बगीचों से व्याप्त हैं। यद्यपि वह ग्राम भोगों का आलय है तो भी वह सर्प नहीं है। (क्योंकि सर्प के भोग (फलों) का स्थान होता है)। यद्यपि वह ग्राम कर रहित है (टैक्सहीन है) तथापि वह विडप्प (राहु) नहीं है। ब्राह्मणों का कुलागत अग्निहोत्र प्रधान है। श्रोत्रिय ब्राह्मणों का सारभूत दीक्षागृह है। वहाँ सोमशर्मा नामका एक भट्ट रहता था। उसकी घन-स्तनों के भार वाली अग्निला नामकी प्रियतमा थी। उसके दो पुत्र थे— अग्निभूति और वायुभूति। वे दोनों द्विज वेद, शास्त्र एवं ज्योतिष के विज्ञानी थे।"

घत्ता— उसी समय उस ग्राम के निकट चतुर्विध संघ सहित, तीन ज्ञानधारी मुनि-पुंगव पधारे।"।। 64।।

---

(14) (1) विख्यात:। (2) राहु:करछ अरहित:।

(15)

वत्थु-छंद — णंदिवद्धउ णाम भवहरणु आणंदिय
भव्वयणु मिलि णिएवि जो जगे अकुच्छिउ।
कोऊहलु[(1)] काइँ पहु जणु जुआइँ कहिं दियहं[(2)] पुच्छिउ।
ता केणवि तहिं वज्जरिउ जिण तव मुणि[(3)] संपत्त।
ते दीसहिं जे[1] दुग्गे-थिय तह पय-पंकय भत्त।। छ।।

तो सोमसम्म[(4)] दिय-वरेण वुत्त सिहिभूइ-वाइभूइ वि सुपुत्त।
ए वेय-सत्थ अपमाणा भणिय गइ जण-विहाणहो जेहिं हणिय।
मीमंस-तक्कवाएण जिणेवि [2]णीसार होइ इह महो[3] वयणु सुणे[4]वि।
सच्चइ[(5)] मुणिणा तावें त मुणिय सुइ-णाणें दूरे चवंत सुणिय।
तहिं अवसो सम्मुहउँ[(6)] चलिउ पुणु अद्धंतरे तउँ गंपि मिलिउ[(7)]।
पुच्छिय दियवर कत्थ होवि आय ता तेहिं तासु उवहसिय-वाय
एहु सालिगामु-भुवणहो पसिद्धु किं ण मुणहिं सो बहुगुण समिद्धु।
तहो होवि णिहालवि णीहरं[(8)]त किं पुच्छहिं अण्णाणिहिं महंत।

---

(15)
प्रद्युम्न का पूर्व-जन्म-कथन
(2) मुनिराज सात्यकि एवं द्विजवरों का विवाद

वस्तु-छन्द— उन मुनिराज का नाम नन्दिवर्धन था। भव (संसार के दुःखों) के हरने वाले तथा संसार में अकुत्सित (अनिन्दित) थे। आनन्दित भव्यजनों को मिला हुआ देखकर उन द्विजों ने पूछा कि मार्ग में क्या कौतूहल है? यह जन कहाँ जा रहे हैं? तब वहाँ किसी ने उन्हें बताया कि—"यहाँ जिन-तपस्वी-मुनि आ पहुँचे हैं। वे दुर्ग में स्थित हैं। उनके चरणकमलों के भक्त जाते हुए दिखायी दे रहे है।। छ।।

तब सोमशर्मा द्विजवर्मा ने शिखि (अग्नि) भूति, वायुभूति नामक अपने दोनों पुत्रों से कहा—"ये मुनि वेदशास्त्र को अप्रमाण कहते हैं। जिन विधान से जिन्होंने सभी का खण्डन किया है। तर्कवाद से मीमांसकों को जीता है। मेरा वचन सुनो। ये निःसार (बिकार) होते हैं (अर्थात् इनके पास जाना व्यर्थ है)।" जिन तपस्या से तप्त सात्यकि मुनि (जो सब वेद के ज्ञाता थे) ने अपने श्रुत ज्ञान द्वारा दूर से बोलते हुए उन विप्रों को सुना। तब अवश होकर वे (सात्यकि मुनि) उनके सन्मुख चले। आधी दूरी पर ही उनका आमना-सामना हो गया। तब उस मुनि ने द्विजवरों से पूछा—"आप कहाँ से आये हो।" तब उन्होंने (विप्रों ने) उन पर हास्य-बाण छोड़े और कहा कि—"क्या तुम अनेक गुणों से समृद्ध एवं जगत् में प्रसिद्ध शालिग्राम को नहीं जानते? वहाँ से निकलते आते देखकर भी अन्य क्या पूछते हो? यह पूछना बड़प्पन नहीं है।"

---

(15) 1. अ. जे। 2-3. अ णीसारहु मड्ड इय। 4. अ मु'।

(15) (1) कौतूहल। (2) विप्रेण। (3) दिगंबरा। (4) सोमशर्मणः। (5) सत्यगि नामोमुनिना। (6) संमुखम्। (7) तयोः विप्रपुत्रयो.। (8) तत्रभूत्वा।

घत्ता— ता मुणिणा वि पउत्तु एउ ण मइँ किर पुंछिय।
अण्ण भवंतरे वेवि भणु तुम्हइं कहिं अछिय।। 65।।

(16)

वत्थु-छंद— अग्गिभूइ वि चवइ भो सवण-जइ मुणहिं
ता तुहुंमि भणु अण्ण जम्मे को काइँ हुँतउ।
अण कहिए ण छुट्टिपइ तुहुं म जाहिं जहिं कहिमि जंतउ।।
मुणि पभणइँ दूरंतरिउ ता अच्छउ वि अभव्वु।
जम्मंतरु तुम्हहँ तणउँ पयडमि पच्चय पुव्वु।। छ।।

ताम तक्खणे णिरुत्त — अग्गिभूइणा पउत्तु।
जो[1] स-पच्चयं कहेइ — को ण तं जइं[(1)] महेइ।
तो जइ भणेइ कामि — आसि इत्थु सालिगामि।
सुत्तकंठु सुद्ध-सामु — विप्प कोवि पवरु णामु।
णेय लेइ दिण्णु-दाणु[(2)] — बंभणो वि जो किसाणु
एक्क वासरे जुएवि — छेत्ते सिरिहलं लएवि।
वाहणत्थे जाइ जाम — वोमि-मेहु-छुट्टु ताम।
गज्जए सु [2]घडहडंतु[3] — गिंभ डामरं जणंतु।

घत्ता— तब मुनिराज ने कहा—"यह मैंने नहीं पूछा है। अन्य भवान्तर में तुम दोनों कहाँ थे, सो कहो।"।। 65।।

(16)

(प्रद्युम्न के पूर्वभव के अन्तर्गत) अग्निभूति वायुभूति के पूर्व-जन्म शालिग्राम के प्रवर द्विज का वर्णन

वस्तु-छन्द—मुनिराज का कथन सुनकर अग्निभूति ने भी कहा—"हे श्रमण यदि जानते हो तो तुम ही कहो कि अन्य जन्म में कौन कहाँ था? जहाँ कहीं भी जाते हुए (अभी) मत जाओ। अब बिना कहे छूटोगे नहीं।" तब मुनिराज ने दूर से ही कहा—"भव्य, अच्छा रुको। मैं तुम्हारे जन्मान्तरों को प्रत्यय पूर्वक प्रकट करता हूँ।। छ।।

तब अग्निभूति ने विनम्रतापूर्वक तत्काल कहा—"जो यतिवर सप्रत्यय कहेगा—उन्हें कौन द्विज नहीं पूजेगा?" तब यति ने कहा—"पहले इसी शालिग्राम में कण्ठ में सूत्र (जनेऊ)धारी शुद्ध सामवेदी प्रवर नामका कोई विप्र रहता था। वह दिया हुआ भी किसी का दान नहीं लेता था। वह ब्राह्मण होकर भी किसान था।

एक दिन वह प्रवर सिर पर हल लेकर खेत में आया। जोतने के लिए जब वह जा रहा था कि तभी आकाश में मेघ छूटे (बादल चढ़ आये)। वे मेघ हडहडाते हुए गरजने लगे और गर्मी को भय उत्पन्न करने लगे। खूब

(16) 1. ब. सो। 2-3 अ. घुडुघुडंत।

(16) (1) मुनीश्वरं। (2) अयाची।

विज्जु दंड विप्फुरंतु वासरत्तउ[3] तुरंतु।
पत्तउ णिएवि तेण तंपि[4] मुक्क उच्छुवेण[5]।
जोत्त-णाडए समाणु छंडिउ करे वि ताणु[6]।
जास मंदिरं पि [4]एत्तु वुट्ठिदेउ सत्त रत्तु।
शक्क पंथियाण मग्ग आव[7] - उह गणियँ लग्ग।
ओअरा[8] अणेय भग्ग मुच्छिया मुआ विहंग।
तम्मे तेरि-सम्मे काले तम्म-छित्तए सियाले।
दो सियालु ताहँ माय[5] सा फिरंति संति आय।

घत्ता— सत्तमए दिवहो रवि अच्छवणे छुडु जलहरु उवसंतउ।
तापवर छेत्ते णाडय-सिरि सुहलु वि सियालहिं पत्तउ।। 66।।

(17)

वत्थु-छंद— सा सि[1]यालिय-छुहेण आसण्ण-साएण
रज्जू असइ ताम तेत्थु बालहिं सियालहिं।
दोहिं पि तेहिमि असिउ[1] तिव्व-तिव्व णिरु छुह-करालहिं।।
उवरे लग्गु णाडय[2] खरउ चम्मु सु ते विवण्ण।
दोवि सियालवि अग्गिलहिं पुणु उवरइ अइवण्ण।। छ।।

बिजली चमकने लगी। तत्काल वर्षा होने लगी। उसे देखकर आनन्दित होकर उसने हल को छोड़ दिया। वह प्रवर नाड़ी सहित जोत भी वहीं छोड़ कर अपनी रक्षा हेतु घर आ पहुँचा। सात रात तक (लगातार) वृष्टि होती रही। पथिक जनों के मार्ग अवरुद्ध हो गये। आप् (जल) ऊह (ओघ-प्रवाह) आकाश में लग गया। अनेक भवन भग्न हो गये। पक्षी मूर्च्छित हो-हो कर मरने लगे। उस क्षेत्र में शृगाल रहते थे। तभी उस समय उनमें से दो शृगाल और उनकी माता फिरते हुए वहाँ आये।"

घत्ता— सातवें दिन सूर्यास्त काल में जलधर (मेघ) उपशान्त हुए। तभी उस प्रवर के क्षेत्र में उन दोनों शृगालों ने नाड़ा रस्सी (चर्मरस्सी) वाला वह हल पा लिया।। 66।।

(17)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म कथन प्रसंग में-) प्रवर विप्र ने शृगाल-बच्चों के शवों को अपने दरवाजे पर लटका दिया

वस्तु-छन्द— शृगालिनी तथा उसके दोनों बच्चों द्वारा तीव्र भूख के कारण अच्छे स्वाद वाली वह रस्सी खा डाली गयी। नाड-रस्सी का कर्कश चर्म उनके उदर में जा लगा (अर्थात् गड़ने लगा) उससे वे मर गये और दोनों ही वे सुन्दर (शृगाली सुत) अग्निला के उदर में पुनः अवतरे।। छ।।

(16) 4. ब. दु॰। 5. ब. भा॰।

(17) 1. अ. मि॰।

(16) (3) वर्षाकाले। (4) हलं। (5) हर्षितचित्तेण। (6) रक्षा। (7) जलौघा जल प्रवाह.। (8) गृहउवरे।

(17) (1) भक्षित.। (2) नाड्व चर्म।

सत्त-दिवह[2] वरिसेवि जलु थक्कउ ताम पवरु[(3)] णिय छे[3]त्तहे ढुक्कउ।
हलु-णाडउ वि णिहालइँ जामहिं वाल-सियाल वेवि मुअ तामहिं।।
पेछेवि णाडउ खद्धु [4]मुणेविणु पुणु असि-दुहिय करम्मे करे[5]विणु
तो गोमाय[(4)] बेवि परिफालिवि णाडय-खंडइँ उयरे णिहालिवि।
अप्पाणहो वारह डिम जाणिय ताहमि छव णिय-णिलयहो आणिय।
पुणु पयडइ अप्पणउ पवाडउ पेछहो पेट्टहो कड्ढिउ णालउ।
छवमइँ लइय सियालइँ मारेवि सिर[(5)]-चरणोवंगइं पवियारेवि।
णयण-वयण णिज्जिय ससि हरिणि हे सोमसम्मा दियवर-वर घरिणि।

घत्ता— ते तुम्हइँ उप्पण्ण अग्गिभूइ-मरुभूइ सुव[6]।
आयम-वेय-पुराण बिण्णि वि जगे सुपसिद्ध हुआ।। 67।।

इय पज्जुण्णकहाए पयडिय-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइ सिद्ध विरइयाए [7]अग्गिभूइ-मरुभूइ उप्पत्ति वण्णणो णाम[8] चउत्थो संधी परिसमत्तो।। संधी: 4।। छ।।

सात दिनों की वर्षा के पश्चात् (जब) जल रुक गया, तब (वह) प्रवर विप्र अपने क्षेत्र में आया। जब (उसने) नाड वाला हल देखा तभी वहाँ मरे हुए उन दोनों बाल-शृगालों को भी देखा। उनको देखकर तथा उन्हें नाडा खाया हुआ जानकर प्रवर विप्र ने असिदुहिता (छुरी) को कर में लेकर उससे उन दोनों गोमायु (शृगालों) को फाड़कर उनके पेट में नाडा के खण्ड देखे।

वह प्रवर विप्र अपने द्वार पर लटकाने योग्य जानकर उन शृगाल बच्चों के शवों को उठा कर अपने घर ले आया। फिर अपने प्रवाद को प्रकट किया और उनके पेट से नाल निकाल कर (सबको) दिखाई। उन मरे हुए शृगालों के सिर, चरण आदि उपांगों को विदार कर उनके शवों को लटका दिया। अपने नेत्रों एवं वदन-मुख से हरिणी एवं चन्द्रमा को जीतने वाली सोमशर्मा द्विजवर की घरिणी (पत्नी) से--

घत्ता— उत्पन्न तुम दोनों (उसी शृगाली के पूर्व-पुत्रों के जीव हो) वही अग्निभूति, —वायुभूति पुत्र हो, जो जगत में आगम, वेद एवं पुराण में सुप्रसिद्ध हो।। 67।।

इस प्रकार धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली कवि सिद्ध द्वारा विरचित प्रद्युम्न-कथा में अग्निभूति-मरुभूति की उत्पत्ति सम्बन्धी चौथी सन्धि समाप्त हुई।। सन्धि: 4।। छ।।

---

(17) 2. ब °स। 3. अ खे°। 4. अ. भईप्पिणु। 5. अ. करेप्पिणु।
6. अ. °य। 7-8. ब ×।

(17) (3) प्रवरोनामविप्र। (4) तौ द्वौ शृगाली। (5) उपांग विदारयित्वा।

पंचमी संधी

(1)

पुणरवि भणइ मुणि सिहिभूइ सुणि परिणइ संसारहो केरिय।
पयडमि पवर-कह रंजिय सु-सह जा जणे[1] अच्चरिउ जणेरिय।। छ।।

इह गाम ठिउ सो पवर-दिउ।
वरिसद्ध मुओ सुण्ह[(1)] हवि सुओ।
कम्मेण हुउ पुण्णें सुपउ।
सपुत्तइँ[(2)] जणिउँ सो वलि भणिउँ।
अछइ पवरे हरि-विप्प-घरे।
मणि लज्जियउ सर-वज्जियउ।
चवइ ण वयणु सुहि मय-णयणु।
मूओ[(3)] वि [2]भणइ एरिसु मुणइ।
तहं वालियहँ सियआलियहँ।
छव तहिँ णिलए ण विगय विलए।
अज्जु वि[3] रहिया जा तेण गहिया।
तं मुणि-वयणु सो विप्पयणु।
णिसुणेवि [4]तुरिउ विंभय भरिउ।
मुणि जाणियउ तहिँ आणियउ।

पाँचवी सन्धि

(1)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म के प्रसंग में-) प्रवर विप्र मरकर अपनी पुत्र-वधु की कोख से जन्म लेता है

पुनः उन सात्यकि मुनिराज ने कहा—"हे शिखिभूति, सुनो अब मैं संसार की परिणति सम्बन्धी सुसभा रंजित करने वाली तथा लोगों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाली प्रवर कथा को प्रकट करता हूँ।। छ।।

इसी ग्राम में प्रवर नामका वर द्विज वर्ष के अर्द्ध भाग में मरा और पुण्य कर्म से अपनी पुत्रवधु से उत्पन्न हुआ। अपने ही पुत्र से उत्पन्न (पिता का जीव) वह बलि नाम से पुकारा गया। वह प्रवर (विप्र इस समय) हरि-विप्र के घर में है। वह मन में लज्जित स्वर वर्जित (गूंगा) कुछ भी बोलता नहीं। सुखी तथा मृगनयन वाला वह मूक होकर भी बोलता है, ऐसा जान पड़ता है। उन शृगाल बालकों के शव उसके घर में हैं, वे विलय को प्राप्त नहीं हुए हैं। जो उसने पकड़े थे वे आज भी रक्षित हैं। मुनि-वचनों को सुनकर वे विप्रजन विस्मय से भर गये। मुनि द्वारा बताया गया स्थिर मोटी भुजा वाला हरि विप्र का वह पुत्र वहाँ ले आया गया और जीर्ण गोमायु

---

(1) 1. ब. जे। 2-3. अ. प्रति में इतना अंश नहीं है।। 4. ब तुअ।

(1) (1) वधु उदरे पुत्रो जात.। (2) स्वकीयः पुत्रेण। (3) मूकः इव।

हरि विप्प सुउ थिर थोर भुउ।
अवरु बिण्णि वा गोमाय-छवा।
दक्खालियइँ सुणिहालयइँ।
घिण कय मणउ हरि दिय तणउ।

घत्ता— सो जइणा भणिउ पुत्तें जणिउ जं तेण काइँ तुह लज्जहिं।
भो-भो पवर-दिय साविति पिय किं पुव्व[4] वियाणिवि भज्जहि।। 68।।

(2)

संसारे भमंतउ जीउ एहु भवे-भवे उप्पाइय अण्णु देहु।
इय जाणिवि चित्ते म करि वियप्पु वप्पो वि पुत्त पुत्तो वि वप्पु।
जाया वि माय माया वि जाय भायर वइरिय अरियण वि भाय।
रे मूढ म मूढत्तणु पयासि जंपहि ण काइँ जं हुउउ आसि।
तं णिसुणेवि सो मुणिणाह वयणु पडिजंपइ वाहुब्भरिय णयणु।
भो-भो परमेसर दिव्व-वाणि तुह सरिसु ण दीसइ को वि णाणि।
हउँ-पवरुज्ज आसि सियालयाहँ इह स(छव मइँ संगहिय ताहँ[1]।

घत्ता— मूअत्तणु मुअ वि पुणु-पुणु रूवविं मुणि-चरण-जुवले सो लग्गउ।
पभणइ सामि महो वउ देवि लहु संसार-दुक्ख हउँ भग्गउ।। 69।।

(शृगाल) के शव भी वहाँ दिखाये गये। सबके द्वारा देखे गये। हरि द्विज का वह पुत्र अपने मन में घृणा करता हुआ मौन बना रहा।

घत्ता— तब यति ने उससे कहा—"तू अपने पुत्र से जन्मा है किन्तु इससे तू लज्जित क्यों हो रहा है? सावित्री (माता) के प्यारे भो-भो प्रवर द्विज, पूर्व-जन्म को जानकर भी भाग रहे हो?।। 68।।

(2)

(प्रद्युम्न के जन्मान्तर कथन के प्रसंग में-) मूक विप्र पुत्र (प्रवर विप्र के जीव) को धर्मोपदेश

"संसार में भ्रमता हुआ यह जीव भव-भव में अन्य-अन्य देह पाता है। ऐसा जानकर चित्त में विकल्प मत करो बाप भी पुत्र हो जाता है और पुत्र भी बाप हो जाता है। स्त्री भी माता होती है और माता भी स्त्री हो जाती है। भाई बैरी हो जाता है और अरिजन भी भाई हो जाता है।

"रे मूढ़, अब मूकपने को प्रकाशित मत कर। बोलता क्यों नहीं? जो था वही बन।" मुनिनाथ के वचन सुनकर नेत्रों में अश्रु भर कर वह बोला—"भो-भो परमेश्वर, हे दिव्य-वाणि, आपके समान कोई ज्ञानी दिखाई नहीं देता। मैं ही प्रवर था। मैंने ही उन दोनों शृगालों के शव को संगृहीत किया था।

घत्ता— मूकपना छोड़कर वह द्विजपुत्र बार-बार रोता हुआ मुनि के चरणों में गिर पड़ा और बोला, "हे स्वामिन् मुझे संसार के दुःखों को भंग करने वाले व्रत शीघ्र दीजिए।। 69।।

---

(2) 1. ब 'य'।

(1) (4) किं पूर्वं विज्ञानेऽपि गच्छसि अस्मिन् प्रस्तावे इति उक्त मया शृगाल मारितौ।

(2) (1) तयोः।

(3)

भुणिणा-विहिणा तहो दिण्ण वयं णवयार-जुयं पयडिय समयं।
अवरेहिमि[(1)] तेण[(2)] समं अमलं णविऊण मुणीसर [1]पय-जुअलं।
पडिवज्जिय[(3)] सावय [2]चारु वयं[(4)] सयलंपि जणं णिय गेहु गयं।
सिहिभूइ[(5)] वि मरुभूइ वि जुवलं मणे चिंतइ तंपि वि[3]णाण-बलं
जिणऊण णिहिप्पइ जेण अलं[(6)] परियाणिय[(7)] सच्च[4]-वियार-कलं।[(8)]
सवणं चइ-मंजण-पूय-कमं[(9)] अवरं णहु दीसइ जेण समं।
इय चिंतेवि ते वि[5] पलंब-भुवा गय विण्णिवि सोम-दियस्स सुवा।
पयडंति स विंभिय ताय सुणि णहु वायण ते जिणियंति मुणि।

घत्ता— समय-कमल-भसलु णाणइँ कुसलु सो सवणु एक्कु किम जिप्पइ।
वेय-सत्थ-बलेण तक्कहो-छलेण भणु ताय कयावि ण धिप्पइ।। 70।।

(4)

एत्थंतरे सच्चइ परमइँ दुलंघे मुणि मिलिउ जाम जाइवि सुसंघे।

---

(3)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) अग्निभूति वायुभूति द्वादश-व्रत ग्रहणकर अपने पिता सोमशर्मा को कहते हैं कि श्रमण मुनि को विवाद में जीतना कठिन है

मुनिराज ने विधिपूर्वक उसे व्रत दिये। णमोकार मन्त्र के साथ आगमिक सिद्धान्तों को प्रकट किया। उन मुनीश्वरों के पदयुगल को नमस्कार कर उस विप्र पुत्र ने अन्य विप्रों के साथ निर्दोष श्रावक के 12 व्रत स्वीकार किये और सभी जन अपने घर गये।

शिखिभूति-मरुभूति युगल ने उन मुनि के ज्ञान बल का अपने मन में (इस प्रकार) चिन्तवन किया—"जिस ज्ञान-बल से उन्होंने सत्य-विचार की कला को जानकर तथा अत्यर्थ को जीतकर उसका सर्वस्व त्याग कर दिया। ऐसे उन त्यक्त स्नान एवं पूज्य चरण श्रमण मुनिराज के समान अन्य कोई दिखायी नहीं देता।" ऐसा विचार कर दीर्घबाहु वे दोनों पुत्र अपने घर लौटे और विस्मय पूर्वक अपने पिता से बोले—"हे तात् सुनो, विवाद से वे मुनिराज नहीं जीते जा सकते हैं।

घत्ता— शास्त्र रूपी कमल का भ्रमर तथा ज्ञान-कुशल वह श्रमण (सात्यकि मुनिराज) अकेला भी कैसे पराजित किया जाये? वेद-शास्त्र के बल से अथवा तर्क के छल से कहो तो भी हे तात् उसे कभी भी नहीं जीता जा सकता।"।। 70।।

(4)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) दोनों विप्र-पुत्र मुनिसंघ की हत्या के लिए प्रस्थान करते हैं

इसी बीच परमतियों के लिए दुर्लंघ्य (अजेय) वे सात्यकि मुनि जाकर मुनि संघ से मिले तथा आचार्य नन्दिवर्धन

---

(3) 1. अ अहि। 2. अ सार। 3. अ ण भाग। 4. अ च्च. 5. अ प्रति में 'वि' नहीं है।

(3) (1) अपरैरन्य। (2) विप्रेण सह। (3) अंगीकृतं। (4) मुनिगां (अंगीकृतं व्रतं)। (5) अग्निभूति। (6) अत्यर्थं। (7) ज्ञानं। (8) विचार (9) पदकमलस्य।

पणवेवि णंदिवद्धणहो पाय पभणिउ गुरु महो णिसुणेहि वाय।
अहिमाणिउ-मइं विप्पयणु जं जि पच्छित्तु किं पि महो देहि तं जि।
गुरु पभणइँ तं णिसुणेवि कज्ज पइँ माराविहु एहु संघु अज्जु।
तो वरि तुहुँ फुडु एत्ति[1]उ करेइ जहिं ते जिय तहिं विवसग्गु देहि।
ताणंतरे सो सच्चइ मुणिंदु जाइवि तहि ठिउ णं गिरि वरिंदु।
[2]एत्तहिं[(1)] सोमेण स सुअ भणिय माणुव-वेसइं मइं पसुअ जणिय।
जइ सत्थइं ते तुम्हहँ ण जिणहु तो णिसि असि-पहरहिं किण्ण हणहु।

घत्ता— तहिं ते [3]भडइ खणे तहिं विहिमि [4]मणे पिउ-वयणु णिरारिउ भाविय।
णिसि असि-दुहियपर करवाल-कर मुणिसंघहो हणण पराइय।। 71।।

(5)

ताम मुणीसरु हय वम्मीसरु।
पंथि[(1)] अमूढिउ झाणारूढउ।
सो तहिं दिट्ठउ जंपिउक्किट्ठउ।
भो किं पवरहिं घाएहिं अवरहिं।
जेणें परिहउ किउ सा उब्भउ ठिउ।

के चरणों में प्रणाम कर बोले—"हे गुरो, मेरे वचन को सुनिए—"मैंने जो आज विप्रजन को अपमानित किया है, उसका मुझे कुछ भी प्रायश्चित दीजिये।" उस कार्य को सुनकर गुरु ने कहा—"तुमने आज इस संघ को मरवा दिया। तो भी अब तुम्हें स्पष्ट रूप से ऐसा करना चाहिए। तुमने जहाँ उनको पराजित किया है वहीं पर व्युत्सर्ग (काय से ममत्व छोड़ कर) तप करो।"

तदनन्तर वह सात्यकि मुनीन्द्र उसी स्थल पर गिरीन्द्र के समान खड़े हो गये और इधर सोम ने अपने उस पुत्र से कहा—"मनुष्य के वेश में मैंने तुम जैसे पशुओं (अज्ञानियों) को जन्म दिया है। यदि शास्त्र के बल से तुम उसे नहीं जीत सकते तो रात्रि में असि-प्रहार कर उसे क्यों नहीं मार देते?"

घत्ता— तब वे दोनों भट्ट पुत्र क्षण भर में ही पिता के वचनों को निःशंक रूप से विचार कर हाथों में छुरी एवं तलवार धारण कर रात्रि में उस मुनि-संघ को मारने के लिए प्रस्थान करते हैं।। 71।।

(5)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) गुप्त यक्षदेव मुनि-हत्या के लिए प्रयत्नशील अग्निभूति-वायुभूति को कीलित कर देता है

तब कामदेव को नष्ट करने वाले अमूढ़ (मूढ़ता रहित — अज्ञान रहित) ध्यानारूढ़ उन उत्कृष्ट मुनिराज को (उन विप्र पुत्रों ने) मार्ग में देखा और (परस्पर में) कहा—"अरे क्या देर लगाते हो? इसी को मारो, कोई भी यहाँ नहीं देख रहा है (अब) क्या देखते हो, मारकर भाग चलो।"

---

(4) 1. अ. °रिसु। 2. अ. उ°। 3. अ. त°। 4. ब. भ.।

(4) (1) निजगृहे

(5) (1) मार्गे दृष्टा।

अग्गइ-अच्छइ को वि ण पेच्छइ।
काइं णियच्छहु मारिवि गच्छहु।
तो तहिं असिवर सव[1]र भय[2]किर।
कड्ढिय जामहिं गुज्झउ तामहिं।
ता[(2)] तहिं कुद्धउ [3]भणइँ विरुद्धउ[4]।
जे उवसंतहँ खम-दम वंतहँ।
मारहुँ आइय बिण्णि वि भाइय।
ए खंडेवि-बले देमि भुवावलि।
पर जणु जाणइँ किर वक्खाणइँ।
णयरोसारिय[(3)] रिसिणा मारिय।

घत्ता— दुइ दोवासट्ठिय[(4)] मुणि-हणण किय-करवाल भमाडेवि जामहिं।
कुणहिं स दुट्ठ मण ते बेवि जण कीलिय जक्खेसइँ तामहिं।। 72।।

(6)

भव्व-कुमुअ [1]पडिवोहण चंदें भग्गे सल्लेहण-दुविह मुणिंदे।
कय किं गहणु परीसह-धीरहो महु णिवित्ति आहार-सरीरहो।
जइ पंचत्तु पत्तु हउँ आयहँ सोमसम्म दिव-सुव असि-घायहँ।

जब उन दोनों ने स्व-पर को, भयंकर तलवार को काढ़ा (निकाला) तभी वहाँ गुह्यक (गुप्त यक्ष) देव उन पर क्रुद्ध हुआ और उनके विरुद्ध (अपने मन में इस प्रकार) बोलने लगा—"ये मुनिराज उपशान्त हैं, शम-दम वाले हैं। इनको मारने के लिए ये दोनों भाई आये हैं। यदि मैं इनको अपने बल से खण्डित कर भूमि पर पटक दूँ। तो दूसरे जन यही जानेंगे और निश्चय से कहेंगे कि नगर से निकाल कर इन मुनिवर ने ही इन दोनों को मार दिया है।"

घत्ता— और इधर वे दोनों द्विज-पुत्र मुनि के दोनों पार्श्व में खड़े होकर मुनि को मारने के लिये जब तलवार घुमाने लगे और दुष्टमन होकर जब उनकी हत्या करने के लिए तत्पर हुए कि उसी समय यक्षेश ने उन दोनों जनों को कीलित कर दिया।। 72।।

(6)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) कीलित विप्र-पुत्रों का वर्णन

भव्य कुमुदों को प्रतिबोधित करने के लिए चन्द्रमा के समान तथा परीषह सहने में धीर उन मुनीन्द्र ने अपने मन में दोनों प्रकार की सल्लेखना को धारण किया कि "मेरा आहार एवं शरीर का त्याग है। यदि सोमशर्मा के इन द्विजपुत्रों के असिघात से आगे पंचत्व (मरण) को प्राप्त होऊँ, अथवा मृत्यु को प्राप्त नहीं होऊँ तो सूर्य

---

(5) 1. अ. 'म'। 2. अ. एं। 3-4. अ. प्रति में नहीं है। (5) (2) नभो: इचे। (3) नगराभिरस्सरयित्वा। (4) द्वौपार्श्वस्थितौ।

(6) 1. अ. वण।

अहवा जइ ण मिच्चु किर पावमि सूरुग्गमे तो झाणु खमावमि।
जा मज्झइ मुणि इउ चिंतंतउ अप्पइ-अप्प-सरूउ णियंतउ।
एम ताह णिसि सयल विहाणिय ता पच्चूसहिं लोयहिं जाणिय।
थट्ट थक्क पीडिय-मह-कट्ठइँ अग्गिल सुवणें णिम्मिय कट्ठइँ।
तहो पियरहँ पुणु सिट्ठउ कवणें सिहि-मरुभूइ वि कीलिय सवणें।
एत्थंतरे धाइय पिउ-मायरि णंदण मरण-भयइँ हुव कायरि।

घत्ता— कय-करवाल-कर वर रूवधर णं सेवय तिहुवण चंदहो।
मुणि दोवास हुउ अग्गिलहि सुअ णमिवि-णमिवआइ जिणेंदहो।। 73।।

(7)

पेछिवि णंदण अणिमिस-लोयण ताय-माय परिवट्ठिय सोयण।
मुणि-कम-कमलोवरि लोलंतइँ अग्गिल सोमु वि कंता कंतइँ।
भणहिं बेवि मुणि एत्तिउ किज्जउ णंदण-भिक्ख अम्ह पहु दिज्जउ।
तुहुँ किर संतु जीव-दयवंतउ रक्खहिं वडुव [1]दोवि उवसंतउ।

के उद्‌गम होते ही ध्यान खुलने पर मैं उन दोनों को क्षमा करा दूँगा।"

मुनिराज जब इस प्रकार का चिन्तन कर रहे थे और अपने से अपने स्वरूप को देख रहे थे। तभी, कीलित हुए उन दोनों की समस्त रात्रि बीत गयी, प्रातःकाल में जब लोगों ने यह जाना कि अग्निला के दोनों पुत्रों (अग्निभूति एवं वायुभूति) ने मुनिराज को महान् कष्ट दिया है, तब सभी लोग बड़े पीड़ित होकर वहाँ इकट्ठे हुए। उसी समय किसी ने पुत्रों के माता-पिता को बताया कि श्रमण मुनि ने शिखिभूति एवं मरुभूति को कीलित कर दिया है, तब वे दौड़े और अपने पुत्रों के मरण के भय से कातर होने लगे।

घत्ता— हाथों में तलवार धारण किये हुए अग्निला के वे दोनों सुन्दर पुत्र ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों त्रिभुवन के लिए चन्द्रमा के समान उन मुनिराज के दोनों ओर दो सेवक (खड़े) हों और उन्हें नमस्कार कर आदि जिनेन्द्र को नमस्कार कर रहे थे।। 73।।

(7)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) मुनिराज के आग्रह से यक्षराज विप्र-पुत्रों को क्षमा कर देता है

अनिमिष लोचन (टिमकार रहित नेत्र वाले) नन्दनों को देखकर तात-मात दोनों शोक से भर गये। अग्निला और सोमशर्मा दोनों ही कान्ता एवं कान्त (पत्नी-पति) मुनिराज के चरण-कमलों पर लोट गये और दोनों ही कहने लगे कि—"हे मुनिराज इतना कीजिये। हे प्रभु, नन्दन की भिक्षा हमें दीजिये। तुम निश्चय ही सन्त हो, जीव दया करने वाले हो तथा उपशान्त हो, हमारे दोनों बटुकों की रक्षा कीजिये तब मुनीन्द्र ने ध्यान में क्षमा

---

(6) 2. उ मि।

(7) 1. अ तो'।

झाणु खमाविवि ताम मुणिंदें भणिउ जक्खु हय-भव-भय-कंदें।
भो-भो दुट्ठ भूअ[1] रणे मद्दण उक्खिल्लहि बिण्णिवि दिय-णंदण
ताम जक्खु णर-रूउ धरे[2] विणु मुणिणाहहो कम-कमल णवेविणु।
पभणइं साहु-साहु संजमधर तुहुँ णिय-संगु जाहि खम-दयपर।
आयहँ मइँ णिग्गहु जि करेव्वउ भाइ-जुअ वि जम-पंथइ णेव्वउ।
पुणु खम-दम-दयवंतु पयंपइ मा दिय वहहि मज्झु मणु कंपइ।
ए सामण्ण ण हुंति मुणेव्वउ आयहँ वर वउ णियमु [3] कुणेव्वउ।
ए णिच्छउ दूरोसारिय तम होएसहिं सग्गापवग्ग खम।
ता जक्खइँ ते मुक्क तुरंतइँ वर कंकण-मणि-मउड फुरंतइँ।

घत्ता— पुणु मुणि कम-जुवले हय-पाव मले परिलुढिर पघोसहिं दिअ-सुअ।
अम्हं होंतु वहु[2] तुम्हइँ ण[4] पहु ण धरंत तो जक्ख खग्गइँ [5]मुअ।। 74।।

(8)

अम्हइं पाविट्ठ-दप्पिट्ठ-णिक्किट्ठ तुह हणणे संपत्त णिसि समय णिरु दुट्ठ।

कर दिया। फिर पूरा ध्यान होने पर भव-भय के मूल के नाश करने वाले मुनीन्द्र ने यक्ष से कहा—"दुष्ट जीवों को रण में मर्दन करने वाले हे यक्षदेव, दोनों ही द्विज नन्दनों को उत्कीलित करो।" (अर्थात् छोड़ दो) तब यक्ष ने मनुष्य का रूप धारण कर मुनिराज के चरण कमलों को नमस्कार किया और बोला—"हे संयमधारी सच्चे साधु, हे क्षमा, दया में तत्पर साधु आप अपने मुनिसंघ में जाइये, किन्तु मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं इनका निग्रह करूँ और भाई युगल को यम के पन्थ को ले जाऊँ।"

पुनः क्षमा, दम एवं दयावान् मुनि ने कहा—"मेरा मन काँपता है। इन द्विजों का वध मत करो। ये द्विज सामान्य नहीं हैं—ऐसा जानो। ये आगे चल कर उत्तम व्रत-नियम (धारण) करेंगे। ये दोनों निश्चय से तम (मिथ्यात्व) रूपी अज्ञान को दूर हटा कर स्वर्ग-अपवर्ग जाने में समर्थ होंगे। तब उत्तम कंकण, मणिमयमुकुट से स्फुरायमान उस यक्ष ने उन दोनों को तुरन्त छोड़ दिया।

घत्ता— पुनः द्विज सुत जय प्रघोषों के साथ पापमल को दूर करने वाले मुनिराज के क्रम युगल में लौटने लगे, और बोले—"हे प्रभो, हमारा वध होने से तुम्हीं ने बचाया है। नहीं तो, यक्ष खड्ग से मारे बिना नहीं छोड़ता।। 74।।

(8)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) मुनिराज के समीप द्विजपुत्रों ने व्रतभार धारण किया

हम पापिष्ठ हैं, दर्पिष्ठ हैं, निकृष्ट हैं। तुम्हारे हनन के लिए अत्यन्त दुष्ट हम लोग रात्रि समय में यहाँ आये थे। हे स्वामिन्, आपके माहात्म्य की उपमा हम किससे दें। जिन्हें रोष नहीं है, (प्रत्येक परिस्थिति में जो सदा)

---

(7) 2. ब. धणेविणु। 3. अ. करेवउ। 4. अ. नि न्हु। 5. ब. सुं।

(7) (1) दुष्टभूतः। (2) वधः।

उमियइँ[(1)] कहु सामि तुह तणउँ माहप्पु जसु रोसु णवि तोसु णवि माणु णवि दप्पु।।
तुह णाणे-तिय लोउ गोपय-समायारु णिग्गंथु रुइ गंथ-सत्थत्थ गउ पारु।
पछित्तु लहु[(2)] देहु पहु किंपि अम्हाण तं[(3)] चर वि जेम करहु पय-भत्ति तुम्हाण।
ता मुणिय आसण्ण-भव्व तिं णियमणेण अणुवय वि गुणवय वि सिक्खा सुवयणेण।
ते दिण्ण आयरेवि मण-वयण-काएण णिय गेहु संपत्त सहुँ ताय-माएण।
पियरेहिं पुणु भणिय जो लयउ वयभारु सो कुणवि माहणउ दिय-कुल समायारु
सिहिभूईं-मरुभूइँ ते सुणेवि पुणु चवहिं इय वयण कहिंमाइ भुवणयल संभवहि।
जिण-भणिय मुणि-दिण्ण[1] वय-णियम जु ण करइ अणवरय सो णरु[2] तिरि-एसु संचरइ।

घत्ता— पुणु पिउ परियणेण बहुविह-जणेण मण्णाविय तो वि ण भण्णहिं।
वेय-कहिय सयल [(4)]जे किंपि फल ते णिच्छउ सहि अवगण्णहिं।। 75।।

(9)

ता तायइँ परिसेसिय णंदण जे सज्जण-मण णयणा-णंदण।
तेहिं वि ताय-माय परिचत्तिय मुणि-भासिय परवय आवज्जिय।

सन्तुष्ट हैं, मान नहीं है और दर्प नहीं है, जिनके ज्ञान में तीनों लोक गोपद समान आकार वाले हैं। यद्यपि आप निर्ग्रन्थ हैं। तो भी आगम ग्रन्थों (शास्त्रों) में रुचि वाले हैं अर्थात् आप शास्त्रों के समस्त अर्थों में पारगामी हैं।

हे प्रभो, हमें शीघ्र ही कुछ प्रायश्चित दीजिए, जिससे आपके चरणों की भक्ति कर सकें। तब मुनिराज ने अपने मन में उन्हें आसन्न भव्य जानकर अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतों को सुवचनों द्वारा समझा कर प्रदान किया। वे भी आदरपूर्वक मन, वचन, काय से उन्हें स्वीकार कर माता-पिता के साथ अपने घर पहुँचे।

माता-पिता ने पुनः कहा—"जो व्रतभार ग्रहण किया है उनका पालन करते हुए भी द्विजकुल के विहित-आचार को मत छोड़ो।" इस बात को सुनकर अग्निभूति-वायुभूति ने पुनः कहा—"भुवनतल में यह कहीं भी सम्भव नहीं है अर्थात् आपके कथन की पूर्ति सम्भव नहीं। जिनेन्द्र कथित तथा मुनिराज द्वारा प्रदत्त व्रत नियमों का जो पालन नहीं करता वह निरन्तर ही तिर्यंचगति में संचरण करता रहता है।"

घत्ता— पुनः माता-पिता, परिजनों एवं अन्य अनेक लोगों ने उन्हें मनाया-समझाया, तो भी वे नहीं माने। वेद कथित तथा उसके जो कुछ भी फल हैं उन सभी का उन द्विज-पुत्रों ने अवगणन किया।। 75।।

(9)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) सोमशर्मा की रत्नप्रभा में उत्पत्ति

तब माता-पिता ने सज्जन-जनों के मन एवं नेत्रों को आनन्द देने वाले उन दोनों नन्दनों को छोड़ दिया। उन पुत्रों ने भी तात-मात को छोड़ कर मुनि-भाषित उत्तम व्रतों को अंगीकार किया।

---

(8) 1. अ. °त। 2. अ. °उ।

(8) (1) उपमा कल्यदीयते। (2) प्रायश्चित्। (3) क्षणमात्रेण। (4) समस्तानि।

अट्ठ[1]-पंच-ति-चयारि सु समय[2] अणुदिणु वारह परिपालण रय।
चउविह-संघहँ दाणु करंतहँ दंसण-णाणु चरिउ चिंतंतहँ।
किरिया पुव्वइँ अरुहु-णवंतहे कालु जाइ जा उत्तमसंतहँ।
ताम वि सोमसम्मु जो तहँ पिउ जण्ण विहाणइँ पसुणि हणिवि दिउ।
सो कालहिं जंतेहिं विवण्णउँ स पिउ वि रयणप्पहे उप्पण्णउँ।
सो अणुह[1]वइ तंजि जं जो करु अह सुहु तहँ जीवंतहँ दुक्करु।

घत्ता— जीव दया वरहँ दिढ वय धरहँ तह अग्गिभूइ-मरुभूइहे।
सालिगाम ठियहँ दोहिमि दियहँ भुंजंतहँ विविह-विहूइहिं।। 76।।

(10)

गय दिवसहिं ते बिण्णिवि भायर दंसण-णाण चरित्ते कयायर।
परम पंच-णवयार सरेप्पिणु मुणि पंडिय-मरणेण-मरेप्पिणु।
अइणिम्मलु वि पुणु अज्जिवि[1] हुउ सोहम्मे-सग्गे उप्पज्जिवि।
बहुविह [1]सुर-सोक्खइँ भुंजेप्पिणु अमर वरंगण सय रंजेप्पिणु।

सम्यक्त्व सहित आठ मूल गुण तथा पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत एवं चार शिक्षाव्रत रूप बारह व्रत आगम के अनुसार ही अनुदिन पालन करने में रत रहने लगे। चतुर्विध संघ को दान करते हुए, सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र रूप रत्नत्रय का चिन्तन करते हुए तथा क्रिया (विधि) पूर्वक अरहन्त को नमस्कार करते हुए उन उत्तम सन्तों का काल व्यतीत होने लगा।

उन पुत्रों का पिता सोमशर्मा द्विज भी यज्ञ विधान से पशुओं को मारता था। वह भी अपना आयुष्य काल व्यतीत करता हुआ मरा और रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ। अपने पूर्व-जीवन-काल में उसने जिन-जिन दुष्कर्मों को करते हुए भौतिक सुख भोगे थे, उनके फलों का भोग उसने वहाँ (नरक भूमि में) जाकर किया।

घत्ता— जीव दया में तत्पर दृढ़ व्रतधारी, शालिग्राम में स्थित उन अग्निभूति एवं वायुभूति नामक दोनों द्विजों का, विविध विभूतियों को भोगते हुए समय व्यतीत होने लगा।। 76।।

(10)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) दोनों सौधर्म देव (दोनों विप्र-पुत्र के जीव) अयोध्या की सेठानी धारणी के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए

वे दोनों भाई सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र का आदर करते थे। इसी प्रकार दिनों के बीत जाने पर जब मरण-काल आया तो उन्हें परमपंच णमोकार मन्त्र का स्मरण कर मुनि पद धारण कर लिया। पुनः पण्डित मरण से मरे और अति निर्मल पुण्य उपार्जन करने के कारण वे दोनों सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुए और वहाँ अनेक प्रकार के उत्तम सुख भोगते हुए तथा सैकड़ों अमर वरांगनाओं के साथ मनोरंजन करते हुए समय व्यतीत करने लगे।

---

(9) 1. ब. 'दि'।
(10) 1. ब. 'व'।

(9) (1) मूलगुण अणुव्रत, गुण, शिक्षा। (2) सम्यक् सहित।
(10) (1) उपार्ज्जयित्वा।

कोसल दिसएं अउज्झहिं पुरवरि जिण-कल्लाणइँ णंदिय सुरवरि।
तहिं णरणाहु-रणंगणे दुज्जउ णिज्जियारि णामेण अरिंजउ।
तहो पियदम पियवयण मणोहरि पियवयणाहिहाण सुपयोहरि।
रेहइ पउलोमिय इव सक्कहो रविहि रण्णि रोहिणिव ससंकहो।
अवरु वि तहिं धण-कणय समिद्धउ सेट्ठि समुद्ददत्तु सुपसिद्धउ।
तहो पणइणि सइं पइ[2]-वय-धारिणी पीण-पओहर णामे धारिणी।

घत्ता— ते बिण्णिवि अमर-करि-कर-सुकर बहुविह-लक्खण-धारिणि यहे[(2)]।
उवहिदत्त पियहि तहि वरतियहे हुव कमेण पुत्त धारिणियहे।। 77।।

(11)

ते बिण्णिवि लक्खण-गुण-भरिया णं इंद-पडिंद वि अवयरिया।
मणिभद्द-पुण्णभद्दाहिहाण ते बिण्णिवि सयल-कला-णिहाण।
दोहिमि णाणाविह सत्थ-गुणिय बहुलक्खण-छंद-णिहंट [1]मुणिय।
परिणाविय ताइयँ बेवि जाम तहिं अवसरे तहिं पुर पत्त ताम।
णंदणवणे घणे ताली-तमाले हिंताल-ताल-मालूर-[2]माले।

कोशल देश में जिन-कल्याणकों में सुरवर (इन्द्र) को आनन्दित करने वाली अयोध्या नामकी एक श्रेष्ठ पुरी है। वहाँ रणांगण में दुर्जय शत्रुओं को जीतने वाला अरिंजय नामका राजा (राज्य करता) है। उसकी प्रियवदना नामकी सुन्दर पयोधर वाली प्रियतमा थी, जो अपनी प्रियवाणी से सभी के मन को हर लेती थी। वह रानी शक्र की पौलोमी (इन्द्राणी) अथवा रवि की रानी अथवा चन्द्रमा की रोहिणी के समान सुशोभित थी, और भी उसी नगर में धन-कनक से समृद्ध एक सुप्रसिद्ध समुद्रदत्त नामका सेठ (रहता) था। उसकी पतिव्रत धारिणी पीन पयोधरा धारिणी नामकी प्रणयिनी थी।

घत्ता— वे दोनों ही हाथी की सूँड के समान भुजाओं वाले सौधर्मदेव (विप्र-पुत्र के जीव) उदधिदत्त (समुद्रदत्त) की उत्तम गुणों वाली प्रियतमा धारिणी की कोख से अनेक लक्षणधारी पुत्रों के रूप में क्रमशः उत्पन्न हुए।। 77।।

(11)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) अयोध्यापुरी में मुनीश्वर महेन्द्रसूरि का आगमन

वे दोनों ही पुत्र सुन्दर लक्षणों और गुणों से भरे-पूरे ऐसे प्रतीत होते थे मानों इन्द्र तथा प्रतीन्द्र ही अवतरे हों। उनके नाम क्रमशः मणिभद्र और पूर्णभद्र थे। वे दोनों ही सभी कलाओं के निधान थे। दोनों ने ही नाना प्रकार के शास्त्रों को गुना (अर्थात् अभ्यास किया)। अनेक प्रकार के लक्षण (व्याकरण), छन्द एवं निघंटु का मनन किया। (जब वे पढ़ चुके तब) पिता ने उन दोनों का विवाह कर दिया। तब उसी समय उस नगर में ताली, तमाल, हिंताल, ताल, मालूर इत्यादि वृक्षों और लवलि, लवंग एवं प्रचुर प्रियंगु वृक्षों से सुशोभित नन्दन वन

---

(10) 2. ब. 'हि'।

(11) 1. अ. सु'। 2. अ. मा'।

(10) (2) पतिव्रता व्रतधारिका।

जहिं लवलि-लवंग पियंग(1) भूरि मुणिवरु णामेण महिंदसूरि।
मलु अंग भासु तवि विमल चित्तु तिणु कंचणु जसु समु सत्तु-मित्तु।
सो गाम-णयरि-कव्वड़-[3]भमंतु चउसंघ-सहिउ विहरंतु संतु।

घत्ता— तहिं उववविट्ठु वणे ता तहि जि खणे वणवालइँ [4]पुणु किह दिट्ठउ।
तव-धारय(2) आगमणु फल-कुसुम-घणु जाणे विहु वउ-विसिट्ठउ।। 78।।

(12)

तवो वणवालु पहुत्तु सुधउ जहिं पुरे रावले संट्ठिउ गउ।
णवेवि पयंपिउ तेण णरिंद अहो जण संत कईरव-चंद।
अयाले वणासइँ फुल्लिय अज्जु मुलुक्कइ दाहिणु वाउ मणोज्जु।
फलावलि भूरि कहिंपि ण माइ जलंपि णियाणहिं उप्पहे धाइ।
तहिं पि(1) वयण्णु(2) सुहग्गइ गामि सामायउ-कोवि अरिंजय सामि।
मुणीसरु चारु सिलाहिं णिसण्णु भवोह-णिविण्णु असण्णु पसण्णु।
वणम्मि णिहालिउ जम्मइँ देव समीरिउ तं तुह सव्वु अलेव।

में महेन्द्रसूरि नामक मुनिराज पधारे। यद्यपि वे मलिन शरीर थे तो भी तप से भास्वर थे। उनका चित्त निर्मल था। जिनकी तृण-कंचन तथा शत्रु-मित्र में सम-दृष्टि थी। वे मुनिराज ग्राम, नगर, कर्वट आदि में भ्रमण करते हुए चतुर्विध संघ सहित वहाँ (अयोध्यापुरी के नन्दन-वन में) आये।

घत्ता— वे (जैसे ही) उस उपवन में बैठे उसी समय वनपाल ने देखा कि उस उपवन में (अकाल में ही) घने फल-फूल लग गये हैं। तब उसने (वनपाल) उन तप-धारक मुनिराज के आगमन को ही इसका विशिष्ट कारण जाना।। 78।।

(12)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा अरिंजय मुनिराज महेन्द्रसूरि के दर्शनार्थ नन्दनवन में जाता है

तब वनपाल बहुत प्रहृष्ट (हर्षित) हुआ। नगर के राजकुल में जहाँ राजा स्थित थे वह वहाँ गया। उन्हें नमस्कार कर वह बोला—हे लोगो, सन्तों रूपी कमलों के लिए चन्द्रमा के समान हे राजन् (नन्दनवन में) आज अकाल में भी समस्त वनस्पति स्वयं फल-फूल उठी है। दक्षिण की मनोज्ञ वायु मुलक रही है (मन्द-मन्द बह रही थी)। फलावलि की प्रचुरता वन में कहीं भी नहीं समा रही है। जल भी निपानों (जलाशयों) से ऊपर उत्पथ में दौड़ रहा है। हे स्वामी अरिंजय, उसी वन में शुभगति से गमन करने वाले व्रती तथा प्रिय वचन बोलने वाले कोई स्वामी आये हैं। वे मुनीश्वर सुन्दर शिला पर बैठे हैं। वे संसार समूह (शरीर और भोग) से निर्विण्ण (उदास) हैं। असंज्ञ (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह एवं संज्ञारहित) तथा प्रसन्नचित्त हैं। हे देव, जो मैंने वन में प्रत्यक्ष देखा है, सो सब आपको अलेप (बिना लाग-लपेट के) कह दिया है। उस वनपाल के मोती के समान

---

(11) 3. ब. स°। 4. अ. व°।

(11) (1) प्रचुराणि। (2) संसार विरक्त आसनं:।

(12) (1) वने। (2) व्रतवंत।

सुणेविणु णरणहो मोत्तियदामु   पयच्छिय कंकण-मोत्तियदामु।

घत्ता— तहिं अवसरे णिवेण कय जण सिवेण चालिय दुह-दुरिय-णिवारणे।
पुरयण कय तण भेरी-रवेण मुणि-वंदण भत्तिए कारणे।। छ ।।

घत्ता[1]— आणंदहो भरियउ मुणि संभरियउ णरवइ णयरहो संचलिउ।
णिय कंत सइत्तउ वल-संजुत्तउ भविय विंदु जहिं मिलयउ।। 79।।

(13)

गज्जंत गयं   हिंसंत हयं।
मिलियालि सयं   सु धुव्वंत धयं।
खेल्लंत भडं   सामंत थडं।
घोलिर चमरं   सिंगिरि पवरं।
घुरुहुरिय रहं   तासिय करहं।
वज्जिय तूरं   दिम्मुह पूरं।
कत्थवि गुट्ठं   करि-भय-तट्ठं।
इम णयरं जणं   मुणि भत्ति मणं।
मण्णवि[(1)] सहियं   णरवइ [1]महियं

स्पष्टाक्षर वाले कथन सुनकर राजा ने उसको कंकण एवं मोती लगी हुई माला प्रदान की।

घत्ता— उसी अवसर पर जनकल्याणकारी, राजा ने पुरजनों के निमित्त भेरी-नाद करा दिया तथा दुःख रूपी पाप का निवारण करने वाले मुनिराज की वन्दना करने के लिए चल पड़ा।। छ।।

घत्ता— आनन्द से भरकर, मुनि (महेन्द्रसूरि) का स्मरण कर वह राजा अपनी पत्नी के साथ सुरक्षा अधिकारियों सहित नगर से चला तथा वहाँ जा मिला जहाँ भव्यजन (प्रतीक्षारत) थे।। 79।।

(13)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा अरिंजय एवं उनके प्रजाजनों को मुनिराज महेन्द्रसूरि का धर्मोपदेश

कोई गरजते गज पर जा रहे थे तो कोई हींसते (हिनहिनाते) हुए घोड़ों पर चढ़े थे। जहाँ सैकड़ों भ्रमर इकट्ठे मिल गये थे, ऐसे सुगन्धित द्रव्य लगाये मनुष्य थे। कोई ध्वजा उठाये हुए थे, कोई भट खेल रहे थे, तो कहीं सामंतों (मल्लों) के झुंड इकट्ठे थे। कोई चमर चला रहे थे। कोई ऊँटों को त्राँसते हुए श्रीगिरि प्रवर समान रथ को आगे चला रहे थे। कोई तूर बजा कर दिशाओं को पूर रहे थे। कहीं गुट्ठ के गुट्ठ हाथी के भय से त्रस्त थे। इस प्रकार मुनिराज की भक्ति के मन वाले नागरिक जन वहाँ चले जहाँ नरपति से पूजित तथा स्वहित को जानने वाले यतिनाथ थे। सबने उन मुनिराज के दर्शन किये। राजा आनन्दित हुआ। सभी के दर्शन कर लेने

(12) 1. अ. यह घत्ता अनुपलब्ध है।

(13) 1. अ. 'स'।   (13) (1) स्वहितंनरजणं।

संचलिउ तहिं जइणाहु [2]जहिं।
सो वंदियउ णिउ[(2)] णंदियउ।
मुणि-णाणवहो तहो [3]पच्छि वहो।
उब्भविवि करं आसीस वरं।
देविणु सम्मं पयडिय धम्मं।

घत्ता— केवि संसार-थिरु णवि अत्थि णिरु धणु-कणु परियणु परियाणहिं।
तमु रवि-किरण-हउ तेम सयलु गउ एउ मुणेवि कुणहिं जं जाणहिं।। 80।।

(14)

मुणिणाहु पयंपइ दिव्व-वाय मणुव-तणु देवहँ दुलहु राय।
मणुयत्तणेण सग्गापवग्गु मणुयत्तें कु कुम्मइँ कुगइ-मग्गु।
उत्तमु मणुयत्तणु लहेवि जेण[(1)] तउ-णियमु ण किउ हारियउ तेण।
णर-जम्में धम्मु जिं[1] णउ विढत्तु ते णरय-महण्णव दुक्ख पत्तु।
धम्मु वि दह-भेउ जिणिंद कहिउ [2]माणुस-जम्में ण जेण गहिउ।
भव-जलणिहि णिट्ठइ[(2)] तासु अहिउ[(3)] इय धम्माहम्मु जिणिंद कहिउ।
तं णिसुणेवि तेण णरेसरेण उज्झाउरि-धुरि परमेसरेण।

के पश्चात् ज्ञानधारी मुनिराज ने हाथ ऊँचा कर आशीर्वाद दिया और सम्यक् प्रकार धर्म को प्रकट करते हुए कहा—

घत्ता— "यह धन, कन, परिजन, जितना तुम सब जानते हो वह कोई भी संसार में स्थिर नहीं है। जैसे तम रवि किरणों से हत हो जाता है, उसी प्रकार सब कुछ नष्ट हो जाता है, ऐसा समझो और जो ठीक जानो सो करो।। 80।।

(14)

उपदेश श्रवण कर राजा का दीक्षा-ग्रहण

मुनिनाथ पुन: दिव्य वचनों से बोले—"हे राजन् यह मनुष्य तन (पर्याय) देवों को भी दुर्लभ है। मनुष्य पर्याय से स्वर्ग और अपवर्ग मिलता है। मनुष्य पर्याय में कुकर्म करने से कुमति का मार्ग भी मिलता है, ऐसा उत्तम मनुष्य जन्म पाकर भी जिसने तप, नियम नहीं किया, उसने मनुष्य जन्म को (व्यर्थ में ही) हरा दिया (खो दिया), जिन्होंने मनुष्य भव में धर्म का आचरण नहीं किया, वे नरक महार्णव के दु:ख को प्राप्त होते हैं। जिनेन्द्र ने धर्म के दस भेद कहे हैं। सो ऐसे दशलक्षण धर्म को मनुष्य जन्म पाकर जिसने नहीं किया उस जीव का संसार समुद्र अभी आगे बहुत अधिक बड़ा है। जिनेन्द्र देव ने इसी प्रकार का धर्म-अधर्म का स्वरूप कहा है।"

उस उपदेश को सुनकर उस अयोध्यापुरी के परमेश्वर नरेश्वर ने मुनिनाथ के पास तपश्चरण लिया (दीक्षा

---

(13) 2. ब. नं। 3. ब. पाछि.।

(14) 1. ब जेंगे। 2. अ. सों।

(13) (2) निजआत्मनं।

(14) (1) पुरुषेण। (2) न समाप्तिं भवति। (3) तस्य अधिकत:।

तव-चरणु लइउ मुणिणाह-पासि तडयउ तोडिय दिढ-कम्म-पासि।
घत्ता— समउ अरिंजएण [3]रणें दुज्जएण तउ पडिवण्णउ सामंतहिं।
सिय ढोयवि सुअहँ सुंदर भुअहँ अवरेहिमि मंति महंतहिं।। 81।।

(15)

पुणु उवहिदत्तेण[(1)] जिण-चलण-भत्तेण।
वंदेवि मुणिणाहु जो मयण मय वाहु।
आयरिय[(2)] जिण-दिक्ख जा कम्मं कय-सिक्ख।
तह[(3)] चेव धारिणिएँ संसारु तारिणिएँ।
संगहिउ तव भारु जिण-समय जो सारु।
णंदण वि तहँ दक्ख[(4)] मणि-पुण्णभद्दक्ख।
मुणि-चलण पुज्जेवि दो-दह वि वय लेवि।
णिय-णिलउ संपत्त मय-माण-भय-चत्त।
सो संघु विहरंतु भव्वयण सुहु दिंतु।
गउ कहिमि किर जाम गय कइवि दिणताम।
मुणि अवरु संपत्तु तहिं संग-मल-चत्तु।
णुउ मिलिवि सव्वेहिं अइ विविह भव्वेहिं।

ग्रहण की) और कर्मों के दृढ़ पाश को तड़तड़ तोड़ दिया।

घत्ता— रण में दुर्जय अरिंजय राजा के साथ सामन्तों ने भी तप ग्रहण किया। सुन्दर भुजा वाले पुत्रों को समझाकर, सिर पर भार रखकर और भी अनेक महान् मन्त्रियों ने तप ग्रहण किया।। 81।।

(15)

सेठ-सेठानी तथा उनके दोनों पुत्रों (मणिभद्र एवं पूर्णभद्र) ने भी व्रत ग्रहण किये

जिनचरणों के भक्त सेठ उदधिदत्त ने भी काम रूपी मृग के लिए व्याध के समान उन मुनिनाथ की वन्दना कर उस जिन-दीक्षा एवं शिक्षा को धारण किया, जो कर्मों का नाश करती है। उसी प्रकार धारिणी (सेठानी) ने भी संसार से तारने वाले जिनतप का भार-संग्रह किया, जो जिन समय में सारभूत माना गया है तथा दक्ष (कुशल) मणिभद्र, पूर्णभद्र नामक उसके दोनों नन्दनों ने भी मद, मान एवं भय से रहित होकर, मुनि चरणों की पूजा कर बारह प्रकार के व्रत ले लिये और फिर अपने घर लौट आये।

वह संघ भी विहार करता हुआ तथा भव्यजनों को सुख देता हुआ कहीं अन्यत्र चला गया। कुछ दिन जाने के बाद परिग्रह मल रहित अन्य दूसरे मुनि वहाँ पधारे।

सभी विविध भव्यों ने मिल कर तथा मद से विमुख उन मणिभद्र आदि को लेकर अन्य मनुष्यों ने भी

(14) 3. अ रा.।

(15) (1) समुद्रदत्तेन। (2) आचरित:। (3) धारिणीतथा। (4) प्रवीण:।

मणिभद्द पमुहेहिं अण्ण मय विमुहेहिं।
घत्ता— समउ[5] सुणंतयहिं णयवंतयहिं मणिभद्द-पुण्णभद्दक्खहिं।
सरमा धारिय करु चंडालु णरु दुच्चेट्ठिउ दिट्ठु [6]सुलक्खहिं।। 82।।

(16)

सरिम[1] चंडालहो दंसणेण मणु सल्लिउ दुहुं[2] तहिं तक्खणेण।
जइ पुच्छिउ भणु कारणु मुणिंद भव्वयण-कुमुअ-छण-णिसि-सु चंद।
सहुँ [1]साणिएं एहु चण्डालु आउ तं अम्हहं णिरु कंटइउ काउ।
एत्थंतरे भासइ मुणि-पहाणु भवियण कंदोट्ट-विआसे[3] भाणु।
पच्छिम-भवे तएँ तणउँ णेहु मणिभद्द वियाणहिं सयलु एहु।
एह भरहखेते मगहाहिहाणे उच्छुवण-सालि-धण-कण णिहाणे।
तहिं सालिगामु णामेण गामु आराम-साम-सरि-सर-पगामु।
मढ-मढिय पउर सुरहर विचित्तु जं देसु गंग-सलिलुअ पवित्तु।
पउराणिय [4]बहु पाढय समिद्धु कुरुखेत्तु व जो कणखले पसिद्धु।

नमस्कार किया।

घत्ता— आगम उपदेश सुनने वाले नय के ज्ञाता, सुलक्षण युक्त मणिभद्र, पूर्णभद्र ने सरमा (कुत्ती) हाथ में लिए हुए चाण्डाल नर को दुष्चेष्टा करते हुए देखा।। 82।।

(16)

मणिभद्र एवं पूर्णभद्र के जन्मान्तरों का नवागत मुनि द्वारा वर्णन

तब सरिमा (कुत्ती) और चाण्डाल के दर्शन से तत्काल ही उन दोनों (मणिभद्र एवं पूर्णभद्र) का मन आकर्षित हो गया। उन्होंने यति से पूछा—"भव्य रूप कुमुदों को प्रसन्न करने के लिए पूर्णमासी की रात्रि के चन्द्र समान हे मुनीन्द्र, इसका कारण समझाइए। इस कुत्ती के साथ यह चाण्डाल आया है, इनको देखकर हमारी काय कण्टकित हो रही है (रोमांचित हो रही है यह क्यों?)। यह सुन कर भव्यजन रूपी कमलों के विकास के लिए भानु के समान उन मुनि-प्रधान ने उत्तर में कहा—"गत भव में तुम्हारा इनके साथ स्नेह था। हे मणिभद्र, वह सब तुम इस प्रकार जानो।"

इसी भरतक्षेत्र में मगध नामका देश है, जो इक्षुवन, शालि एवं धन-धान्य का निधान है। वहाँ शालिग्राम नामका एक ग्राम है, जो ग्राम, आरामों से श्याम (हरा-भरा) है। नदी सरोवरों से प्रकाम (पूर्ण) है। मढ-मढियों से प्रचुर है, वह ऐसा प्रतीत होता है मानों विचित्र सुरघर ही हो। जो देश गंगाजल से पवित्र है, अनेक पौराणिक-पाठक जनों से समृद्ध है, जो कुरुक्षेत्र अथवा कनखल के समान ही प्रसिद्ध है।

---

(15) (5) आगम। (6) सुष्टु अवलोकनं।

(16) 1. ब सा°।

(16) (1) शीनीं। (2) तयो. द्वयो.। (3) प्रकाशे। (4) चिरन्तन पाठक जन।

घत्ता— णासग्गु वि धरहिं कय कुस करहिं संझा-वंदणु जहिं किज्जइँ।
सिद्ध रसोइ घरे मज्झण्ण भरे दिवि-दिवि जहिं परिवाइज्जइँ।। 83।।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइ सिद्ध विरइयाए [2]पज्जुण्णसंभु भवांतर वण्णणं मणिभद्द पुण्णभद्द उप्पत्ती[3] पंचमी संधी परिसमत्तो।। संधी: 5।। छ।।

घत्ता— जहाँ पर नासाग्र पकड़कर कुश हाथ में लेकर (निरन्तर) सन्ध्या वंदन किया जाता है तथा मध्याह्न काल में रसोई घर में ही बनी रसोई जहाँ दिन-दिन में परोसी और खाई जाती है।। 83।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्रकट करनेवाली सिद्ध कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में प्रद्युम्न एवं शाम्बु के भवान्तर वर्णन तथा मणिभद्र-पूर्णभद्र की उत्पत्ति सम्बन्धी पंचम-सन्धि समाप्त हुई।। सन्धि: 5।। छ।।

---

(16) 2-3. ब. प्रति में यह चरण नहीं है।

छट्ठी संधी

(1)

धुवकं— जहिं अणु-दिणु चउवेय-घोसु णिरंतरु किज्जइ।
जण्ण-विहाण-मिसेण विप्पहिं पसु होमिज्जइ।। छ।।

तहिं आसि वियाणिय जण्ण-कम्मु णामेण वसइ दिउ सोमसम्मु।
तहो वंभणि अग्गिलाहिहाण सुव बेवि ताहिं गुण-गण-णिहाण।
हुअ अग्गिभूइ-मरुभूइ णाम वेयागम-सत्थ-पुराण-धाम।
ते बिण्णिवि जिणवर-धम्मु सुणेवि अणुवय-गुणवय दिढमणेण कुणेवि।
सिक्खावय पालिवि चारु मग्गे सल्लेहण मरणइं पढम सग्गे।
संजाय अमर सुर णमिय चरण सहजाय कडय-मणि-मउड धरण।
पिउ सोमसम्मु अग्गिल वि जणणि[1] दय-दूसणे मुणि गुण-गणणि हणणि।
बिण्णि वि पसु जण्ण-मिसेणवहेवि रयणप्पह-णरए दुदोह सहेवि।
पुणु कम्म वसइँ चंडालु जाउ सो सोमसम्मु एहु तुम्ह ताउ।
जा जणणि आसि मणिभद्द सुवहिं सा दुरिय पहावइ[2] जाय सुणहिं।

छठी सन्धि

(1)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) शालिग्राम निवासी सोमशर्मा एवं अग्निला के पूर्व-भवों का वर्णन

धुवक— जहाँ उस शालिग्राम में प्रतिदिन चारों वेदों का निरन्तर घोष किया जाता है तथा जहाँ यज्ञविधान के बहाने विप्रों द्वारा पशु होमे जाते हैं।। छ।।

वहाँ पहले यज्ञों का ज्ञाता सोमशर्मा नामका द्विज निवास करता था। उनकी अग्निला नामकी ब्राह्मणी पत्नी थी। उसके गुण-गण निधान दो पुत्र थे। उनका नाम अग्निभूति वायुभूति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वे भी वेदागम शास्त्र-पुराणों के धाम (ज्ञाता) थे। उन दोनों ने जिनवर का धर्म सुनकर अणुव्रत, गुणव्रत का दृढ़ मन से पालन किया। शिक्षाव्रतों का भी सुन्दर रूप से पालन किया।

अन्त में सल्लेखना मरण से दोनों प्रथम स्वर्ग में प्रधान देव हुए। जिनके चरणों में अन्य देव नमस्कार किया करते थे, जो सहज ही उत्पन्न कटक, मणिमय मुकुटों के धारी थे।

पिता सोमशर्मा और अग्निला माता ने गुणगण से युक्त मुनिगणों को दूषण दिया (हनन कराया), दोनों ने यज्ञ के बहाने पशुवध किया, उस कारण से रत्नप्रभ नामक प्रथम नरक में दुःख समूह सहा। फिर वह कर्म वश चाण्डाल हुआ है। तुम मणिभद्र सुतों की जो माता थी वही पाप के प्रभाव से यह शुनी हुई है।

---

(1) (1) मेघाज्ञानयो । (2) पापप्रभावेन उत्पन्ना ।

घत्ता— आयहं[(3)] सुअ आसि एमहिं सग्गहो आइय।
[1]धारिणिय हे उप्पण्ण विण्णिवि तुम्हहँ भाइय।। 84।।

(2)

एउ कारणु संबंधहो लक्खिउ भव्व भवंतरु तुम्हहँ अक्खिउ।
तं णिसुणेविणु सुमरिय जम्मइँ चिंतिवि [1]मुक्किय-दुक्किय कम्मइँ।
चंडालेण भणिउँ परमेसर तुह पय सरणउँ हय-वम्मीसर।
एमहिं सो उवएसु कहिज्जइ संसारिणिय[(1)] जेण तिस छिज्जइ।
तं णिसुणेवि मुणिणाहइँ वुत्तउ [2]तीस दिवस तुअ आउ णिरुत्तउ।
साणिवि जा किर इह बंभणि तुह सा मण्णहि सत्तमे वासरे मुअ।
एत्थंतरे चण्डालु सुवुद्धिएँ अणुवय-गुणवय धरेवि विसुद्धिएँ।
परम पंच-णवयार सरेप्पिणु सल्लेहण मरणेण मरेप्पिणु।
हुव णंदीसरु णामइँ सुरवरु कडय-मउड-मणिमय कुंडल धरु।
[(2)]इलयल कल सिर मुणि चरणग्गइँ चल लंगूल ललावि रमग्गइँ।

घत्ता— "तुम दोनों पहले इसी के पुत्र थे। अभी स्वर्ग से आये हो और धारिणी से उत्पन्न तुम दोनों भाई उसी के पुत्र हो।"।। 84।।

(2)

मुनिराज द्वारा चाण्डाल एवं श्वानी का पूर्वभव कथन एवं उनकी संन्यास विधि

"यही तुम्हारे सम्बन्ध (स्नेह) का कारण लक्षित होता है। हे भव्य, भवान्तर भी तुम्हें बताया गया।" यह सुनकर तथा पूर्व जन्म को स्मरण कर वह चाण्डाल विचारने लगा कि अब दुष्कृत कर्मों से मुक्ति पाऊँ। यह निश्चय कर उस (चाण्डाल) ने मुनिराज से कहा—"हे परमेश्वर, हे हतकामदेव, मुझे अब आपके चरणों की ही शरण है। अब वह उपदेश कहिए जिससे संसार सम्बन्धी त्रास छूट जाये।"

चाण्डाल का निवेदन सुन कर मुनिनाथ ने कहा—"अब तेरी आयु तीस दिन की ही शेष है। यह श्वानी भी, जो कि, तुम्हारी ब्राह्मणी (पूर्व भव की पत्नी) थी, वह सातवें दिन मृत्यु को प्राप्त हो जायगी, ऐसा मान लो।" मुनिराज की भविष्यवाणी का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसे (चाण्डाल को) उसी समय सुबुद्धि उत्पन्न हुई और उसने विशुद्धि पूर्वक अणुव्रत-गुणव्रत धारण कर लिये पंच णमोकार मन्त्र का स्मरण कर सल्लेखना मरण से मरण कर वह चाण्डाल नन्दीश्वर नाम कटकं, मुकुट, मणिमय, कुण्डलों का धारी देव हुआ।

वह कुत्ती भी मुनि के चरणों के आगे अपने सिर को पृथिवीतल पर लगा कर चंचल लाँगूल (पूँछ) के साथ बैठ गयी।

---

(1) 1. अ ह'।
(2) 1. अ पु"। 2. अ नी।

(1) (3) स्वर्गो: इमे:।
(2) (1) सम्बन्धी। (2) पृथ्वीतलके।

घत्ता— जइणाहेण मुणेवि तहिं साणिहिं सण्णास-विहि।
पंच वि णवयार दिण्णु भव-तिमिर-सिहि।। 85।।

(3)

सा सुहभावइ[1] मरेवि अउज्झहें णर णरणाहहं समरे दुगेज्झहें।
णयरहु[2] राउ अरिंजय णंदणु जो रणभरे परबल कय मद्दणु।
तहो गेहिणि णामेण वसुंधरि[3] सीलामल-गुण साम वसुंधरि।
तहे[4] तुच्छोवरे सा[5] उप्पण्णी चारु रूव चामीयर-वण्णी।
दिवि-दिवि ससहर-कंति व वड्ढइ तणु लायण्ण रिद्धि आयड्ढइ।
छुडु-छुडु बाल भाव परिवज्जिय णाइँ अणंगइँ भल्लिवि सज्जिय।
उक्कुक्कुरिय[6] सिहि णण्व वरि जाय जुवाणहं कामुवकोयरि।
जह-जह पोढत्तणु-तणु पावइ खिज्जइ मज्झु रमण पिहुलावइ।
सा पेच्छवि चिंतिउ मणे ताएं रइउ सयंवरु गयरह रायइं।
कोसलपुरि परियरिय सुसंचहिं चउदिस भमेर णिरंतर मंचहिं।

घत्ता— मुनिनाथ ने अपने मन में (उस श्वानी की प्रवृत्ति) समझ कर उसी समय संन्यास-विधि करा दी और भव-वन के लिये अग्नि समान पंचणमोकार भी उसे धारण कराया।। 85।।

(3)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन प्रसंग में—) श्वानी शुभ-मरण कर अयोध्यापुरी के राजा गजरथ के यहाँ जन्म लेती है। उसके स्वयंवर का वर्णन

वह (श्वानी) शुभ भावों से मर कर युद्ध में शत्रु राजाओं के लिए दुर्गम अयोध्यापुरी में जन्मी। अयोध्यापुरी के राजा का नाम गजरथ था जो कि अरिंजय का पुत्र था। वह रण में परबल (शत्रुसेना) का मर्दन करने वाला था। उसकी वसुन्धरा नाम की गृहिणी थी, जो निर्दोष शील-गुण रूपी शस्य के लिए वसुन्धरा थी। वहाँ उसके उदर से वह कुत्ती (का जीव) कन्या रूप में जन्मी। उस कन्या का रूप अत्यन्त सुन्दर और वर्ण चामीकर—सुवर्ण के समान था। चन्द्रकला के समान वह कन्या दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसके शरीर की लावण्य-ऋद्धि भी वृद्धिंगत होने लगी।

धीरे-धीरे वह बालभाव को छोड़कर तरुणभाव को प्राप्त होने लगी। वह ऐसी लगती थी मानों अनंग ने उसे भले प्रकार सजा दिया हो। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों वह उत्तुंग यौवन शिखि-ज्वाला ही हो अथवा युवकों के लिए कामांकुर ही हो। जैसे-जैसे उसे प्रौढ़ापने का शरीर प्राप्त हुआ, उसके रमण-पलकों की पृथुलता ने कटिभाग को क्षीण बना दिया। अपनी कन्या की उस तरुणावस्था को देखकर उसका पिता राजा गजरथ बड़ा चिन्तित हुआ। उसने एक स्वयंवर रचा। (उस अवसर पर) कोशल की उस पुरी अयोध्या को चारों ओर सुन्दर सामग्रियों एवं मंचों से लगातार घेर (कर सुन्दर बना) दिया।

(3) (1) [illegible] (2) [illegible] (3) [illegible] (4) [illegible]
(5) [illegible] (6) [illegible]

घत्ता— हूण-चीण-करहाडलाड-बंग केरलवइ।
गउड-दिविड-कण्णाड गयरह-सुअ परिणयण मइ।। 86।।

(4)

मंचहि रायकुमार असेसवि मालव-टक्क-चोड पंडीसवि।
कय सिंगार सार सुपरिट्ठिय अमर-विमाणहिँ णाइँ अहिट्ठिय।
तहि मणि-पुण्णभद्द गुण पोढवि देक्खण मिसेण मंच आरूढेवि।
एत्थंतरे सा कण्ण सुलोयण[(1)] णिग्गय णावइ आसि सुलोयण।
मणि-कुंडल-मंडिय गंडत्थल रयणावलि घोलिर वच्छत्थल।
कण-कणंत उण्णय कंकण करे ....
मणियारेहिं[(2)] आरूढिय सुंदरि। [1]णवजोवण परहुव कोमलसरि[2]
[3]णं सग्गहो अवयरिय पुरंदरि[4]। रायकुमारि भुवणत्तय सुंदरि
कुसुममाल करयले उच्चल्लिय रोहिणि णाइँ सयंवरे चल्लिय।
पुरउ परिट्ठिय धाइ विहावइ[(3)] कुमारहि रायकुमर दरिसावइ।

घत्ता— एत्थंतरे सो देउ णंदीसरु संपत्तउ।
जगे-उज्जोउ करंतु णं रवि-किरण फुरंतउ।। 87।।

घत्ता— हूण, चीन, करहाट, लाट, बंग, केरलपति, गौड, द्रविड, कर्णाट से (राजा-गण) गजरथ राजा की पुत्री से परिणयन कामना लेकर वहाँ आये।। 86।।

(4)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) राजकुमारी का स्वयंवर, जिसमें नन्दीश्वर देव भी उपस्थित होता है

मंच पर मालव, टक्क, चोल एवं पाण्ड्य आदि के राजागण बैठे। सार-शृंगार कर सुप्रतिष्ठित तथा अमर विमान में अधिष्ठित देवी के समान वह वहाँ आयी। पुनः वहाँ गुणों से प्रौढ़ मणिभद्र, पूर्णभद्र भी उसे देखने के बहाने मंच पर आरूढ़ हुए। इसी बीच सुलोचना तथा सुन्दर मणियों के कुण्डलों से मण्डित कपोलों वाली वह सलोनी राजकुमारी (माला) वहाँ से निकली। उसके वक्षस्थल पर रत्नावली (हार) झूल रही थी, तथा हाथों में कण-कण करने वाले बहुमूल्य कंकण थे। नवयौवना तथा कोयल के समान स्वर वाली वह सुन्दरी मणियों से भूषित हथिनी पर आरूढ़ होकर चली। वह ऐसी प्रतीत होती थी मानों स्वर्ग से इन्द्राणी ही अवतरित हुई हो। वह राजकुमारी तीनों लोकों में (अतिशय) सुन्दरी थी। हाथों में कुसुममाला उठाये हुए रोहिणी के समान वह स्वयंवर में चली। राजकुमारी की धाय आगे थी, जो उसे राजकुमारों को दिखा रही थी (अर्थात् परिचय दे रही थी)।

घत्ता— इसी बीच संसार में उद्योत करता हुआ अपनी किरणों से स्फुरायमान सूर्य के समान वह नन्दीश्वर देव भी वहाँ आ पहुँचा।। 87।।

---

(4) 1-2. अ प्रति में यह चरण नहीं है। 3-4. अ. प्रति में यह चरण नहीं है। (4) (1) सुलोचना। (2) हस्तिनी। (3) विचारयति।

(5)

तेण बोल्लाविय सा सुमणोहरि चक्कल-घण-उत्तुंग पओहरि
हले वीसरिय काइ हिय वरभवे पाउ करेवि णिवडिय जं रउरवे।
पुणु कुक्कुरि चंडाल भवंतरे जइ बेण्णिवि संठियइँ णिरंतरे।
तं तुह चित्ते काइँ ण चमक्कइ भोयासत्तहे मणु ण वियक्कइ।
लहिवि अज्जु दुल्लहु मणुव[1]त्तणु करि अप्पहिउ मुअहि परिणत्तणु।
तं णिसुणेवि सुमरिय जम्मंतरे मुच्छ पवण्णिय करिणिहे उप्परे।
धाइउ उव्वोलियइँ सुसंचिय घणसारहो जलेण अहिसिंचिय।
उम्मुच्छाविय जाम किसोयरि एत्थंतरे पुणु गय जिणवर घरे।

घत्ता— पुच्छिवि जणणु जणेरि ताइ सुकंचण वण्णए।
मालए जिणपय महेवि मुणि मग्गिउ तउ कण्णए।। 88।।

(6)

तो ताहि तिगुत्ति मुणीसरेण तउ दिण्णु ताम णिज्जिय-सरेण।
एउ भणिउ पसंग वसेण अज्जु महु [1]सुणु पज्जुण्ण-कहाइँ कज्जु।

---

(5)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) नन्दीश्वर देव द्वारा राजकुमारी माला को प्रतिबोधन एवं स्वयंवर के पूर्व ही उसका दीक्षा-ग्रहण

उस नन्दीश्वर देव ने, चक्राकार घने उत्तुंग पयोधरों वाली उस कन्या को अपने पास बुलवाया और बोला— "हले, पूर्वभव को क्या तू भूल गयी? जब पाप करके रौरव नरक में जा पड़ी थी। पुन: चाण्डाल भव के मध्य कुक्कुरी हुई थी। जहाँ हम और तुम दोनों स्थित थे। उस समय तेरे चित्त में यह विकल्प क्यों नहीं उठा कि भोगासक्ति संसार का कारण है? अब दुर्लभ किन्तु परिणमनशील मनुष्य-पर्याय पाकर आत्महित करो और मरो।" वह (देववाणी) सुनकर उस कन्या को जन्म-जन्मान्तरों का स्मरण हो आया और वह हथिनी के ऊपर ही मूर्च्छित हो गयी। धाय ने स्वर्ण पात्र में संचित कर्पूर-जल से उसका सिंचन किया। जब उस किशोरी की मूर्च्छा दूर हुई तभी—

घत्ता— स्वर्ण वर्ण वाली वह कन्या माला अपने माता-पिता से पूछ कर जिन-भवन चली गयी तथा जिनचरणों की पूजा कर उस (कन्या) ने मुनिराज से दीक्षा माँगी।। 88।।

(6)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) राजकुमारी माला को मुनिराज त्रिगुप्ति द्वारा दीक्षा प्रदत्त

तब उस जिन-भवन में काम-शर-विजेता मुनीश्वर त्रिगुप्ति ने उसे जिनदीक्षा दी, तथा प्रसंग वश कहा कि हे आर्ये, प्रद्युम्न कथा के प्रसंग में मणिभद्र, पूर्णभद्र की विशिष्ट कथा को कौतुहल के साथ मनोयोगपूर्वक सुनो—

---

(5) 1. अ. ज°।
(6) 1. अ, ब. पु°।

मणिभद्द-पुण्णभद्दइं विसिट्ठु तं कोऊहलु सहि सुणिउँ दिट्ठु।
दिढवय पुणु सावइ धम्मे जाय तिक्काल णमंसहिं अरुह पाय।
चउसंघे प चउव्विहु दाणु दिंत ण्हवणच्चणु जिण अणु-दिणु कुणंत।
चउपव्वेसु पोसह-बंभचेर परिगह-पमाण दिसि-विदिसि-मेर।
भोगोपभोप - परिसंख करेवि कालंतरे सण्णासेण मरेवि।
गय पढम-सग्गे पुणरवि कुमार सह जाय मउड-कोऊर-धार।

घत्ता— हुव बिण्णिवि गिव्वाण इंद-पडिंद समाण तहिं।
अइणिम्मल तणु-कंति धाउ-विवज्जिउ देहु जहिं।। 89।।

(7)

अच्छर-सर-कर चामर-चलंत देवंग-वत्थ-पल्लव-ललंत।
मंदार-माल-भूसिय-सरीर सम्माइट्ठिवि संसार [1]तीर।
माणस-सरवरे कीला करंत ठिय दिव्व-विमाणहिं संचरंत।
मंदर-कंदरहिं रमंत संत जिणबिंब-अकित्तिम-सय णमंत।
णंदीसर दीवाई थुणंत .. ..
एम कालु ताहँ तहिं जाइ जाम पूरिय [2]दो-उवहि पमाणु लाम।

"दृढ़तापूर्वक श्रावक-व्रतों का पालन करते हुए तथा अरहन्त के चरणकमलों को त्रिकाल नमस्कार करते हुए, चतुर्विध संघ को चार प्रकार के दान देते हुए, प्रतिदिन जिनेन्द्र का न्हवन-अर्चन करते हुए, चारों पर्वों के प्रोषध, ब्रह्मचर्य, परिग्रह प्रमाण, दिशा-विदिशा की मर्यादा भोगोपभोगों का परिसंख्यान करके तथा कालान्तर में संन्यास मरण करके वे कुमार एक साथ मुकुट-केयूर को धारण करने वाले प्रथम स्वर्ग वाले सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुए।

घत्ता— वहाँ वे दोनों इन्द्र-प्रतीन्द्र के समान अत्यन्त निर्मल कान्तिवाले तथा धातु-विवर्जित शरीर वाले देव हुए।। 89।।

(7)

त्रिगुप्ति मुनिराज द्वारा मणिभद्र-पूर्णभद्र का पूर्व-जन्म-कथन

श्रेष्ठ अप्सराएँ अपने हाथों से चमर ढुराती हुई आयी और उन्होंने पल्लवों के समान लहराते हुए देवदूष्य उन (दोनों सौधर्म देवों) को प्रदान किये। मन्दार-पुष्प की मालाओं से भूषित सांसारिक शरीर वाले वे देव मानस-सरोवर में क्रीड़ाएँ करते हुए, दिव्य-विमानों में बैठ कर संचरण करते हुए, मन्दराचल की कन्दराओं में रमण करते हुए, सैकड़ों अकृत्रिम जिन-बिम्बों को नमस्कार करते हुए नन्दीश्वर द्वीपादि की स्तुति-वन्दन करते हुए, वहाँ जब पूरे दो सागर प्रमाण काल व्यतीत हो गया तब वे वहाँ से च्युत हुए और कोशलपुरी के राजा श्री

---

(7) 1. अ. 'भि'। 2. अ. उअहे'।

ते तहो [3]चुय पुणु कोसल-पुरम्मे सिरिकणह णाह रायहो घरम्मे।
लायण्ण-मणोहर-धारिणिहें उप्पण्ण गब्भें ते धारिणिहें।

घत्ता— वियसिय कमलाणणहे जणिय णरिंदहो धीयहे।
ते पंडियाडिए जाय लवणंकुस जिम सीयहे।। 90।।

(8)

ते सव्व-सुलक्खण चारु-गत्त उत्तत्त-कणय-छवि-कमल-वत्त।
वड्ढंति माउहरे बेवि केम सिय-पक्खिउ इह ससि-कलहिं जेम।
महु-णामु गुणंगहिं जेट्ठु भणिउँ कइडिहु वि कणिट्ठहो पुणु वि गुणिउँ।[(1)]
एम रज्जु करंतहो णिवरासु संवत्थर वारह[1] गय वि तासु।
ता वेक्कहिं दिणे णं गिरि पयंडु विहडंतु णिहालिवि मेह-खंडु।
तहो [2]रायहो पावेवि तं णिमित्तु रज्जोवरि खणेण विरत्तु चित्तु।
किउ रज्ज धुरं धरु महुकुमारु जुवराउ कइडिहुउ सुहड सारु।
चामीयर णाहु सिरी मुएवि सुह मुणिहे पासे जिण-दिक्ख लेवि।
वावीस-परीसह सहणसीलु संठिउ पालिय तव-लच्छि लीलु।
महुराउ अउज्झहे रज्जु करइ चत्तारि-वण्ण सुह-मग्गे धरइ।

कनकनाथ के घर में उनकी लावण्य-पूर्ण मनोहर-धारिणी, रानी धारिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए।

घत्ता— विकसित कमलानन के समान राजा कनकनाथ की रानी धारिणी से वे दोनों पुत्र उसी प्रकार उत्पन्न हुए जिस प्रकार सीता के लवण एवं अंकुश।। 90।।

(8)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा कनकनाथ ने अपने दोनों पुत्रों — (मधु-कैटभ) को राज्य सौंपकर मुनिराज शुभ से दीक्षा ग्रहण कर ली

समस्त सुलक्षणों से युक्त, सुन्दर-गात्र, तपाये हुए स्वर्ण की छवि वाले, कमल के समान मुख वाले, वे दोनों कुमार मातृगृह में किस प्रकार वृद्धिंगत होने लगे? उसी प्रकार, जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ने लगती हैं। अपने गुणों के कारण जेठा पुत्र मधु कहा गया तथा कनिष्ठ को कैटभ नाम वाला कहा गया। इस प्रकार राज्य करते हुए उस राजा ने जब संवत्सर व्यतीत किये तभी एक दिन उसने पर्वत के समान प्रचण्ड मेघखण्ड को विघटित देखा। उसी निमित्त को पाकर राजा को तत्क्षण ही राज्य-लक्ष्मी से वैराग्य हो उठा और राज्य की धुरा पराक्रमी कुमार मधु को देकर कैटभ को युवराज पद प्रदान किया। कनकनाथ ने अपनी राज्यश्री को छोड़कर "शुभ" नाम के मुनिराज के पास जाकर जिन-दीक्षा ले ली और बाईस परीषहों में सहज रूप से ही सहनशील होकर तपरूपी लक्ष्मी को पालता हुआ स्थिर हो गया। मधु राजा अयोध्या में राज्य करने लगा और चारों वर्णों के लोगों को शुभ मार्ग में लगाने लगा।

---

(7) 3. ब. नु।

(8) 1. अ छुदु। 2. ब ण। (8) (1) कथितः

घत्ता— तिण्णि वि बुद्धिउ तासु सत्तिउँ तिण्ण फुरंति केम।
परिपालिय कुवलयहो आसि कणयणाहहो वि जेम।। 91।।

(9)

महुरायहो रिउ को खलइराउ कलिकुमरु जासु कइडिहु सहाउ।
तहो रज्जु कुणंतहँ भुवणे ताम अवरु वि गय बारह-वरिस जाम।
एत्थंतरे रणभरे [1]अरिहि भीमु सायंभरि-वइ णिउ णाम भीमु।
तिणि कंद[2]लु चालिउ कय-छलेण महुरायइँ सहुं दुग्गहो बलेण।
अरिराय धम्मक्कु विरुद्ध धरिउ तं णिसुणेवि महु सणद्धु तुरिउ।
हक्कारिय मंडलवइ स णाम सामंत समरे जे भिडण काम।
सेणावइ अरिसेण हो कयंत तंताहिव परिपालिय सुतंत।
साहणिय सु सुहड अणंत जोह[3] संजोइय धय-चल चामरोह।
घत्ता— पल्लाणिय तुरिय मयमत्त महागय सज्जिय।
रह जोत्तिय पवर जय पूर तूर [4]खण वज्जिय।। 92।।

घत्ता— पृथिवी का पालन करते हुए उस मधु राजा की तीन बुद्धियाँ एवं तीन शक्तियाँ किस प्रकार स्फुरायमान हुईं? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि राजा कनकनाथ को स्फुरायमान हुई थीं।। 91।।

(9)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में–) शाकम्भरी नरेश राजा भीम एवं राजा मधु के युद्ध की तैयारियाँ

जिस मधु राजा का कलिकुमार एवं युवराज कैटभ सहायक थे, उसका शत्रु कौन हो सकता था? कौन-सा ऐसा राजा था जो उसे स्खलित करता? भुवन में उसे राज्य करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये। उसी समय रण में शत्रुओं के लिए भयंकर शाकम्भरी नगरी का स्वामी भीम नामका राजा था। उसने छलपूर्वक दुर्ग के बल से मधुराजा के साथ लड़ाई चलायी।

"अरिराज रौद्र रूप धारण कर आ धमका है यह सुनकर मधुराजा तुरन्त युद्ध की तैयारी करने लगा। उसने समर में भिड़ने के इच्छुक सामन्तों एवं मण्डलपति को अपने नाम पर बुलाया। साथ ही अधिप—राजा मधु के राज्य का सुयुक्ति पूर्वक पालन करने वाले तथा अरिसेना के लिए कृतान्त के समान सेनापति को बुलाकर आदेश दिया कि—"ध्वजा और चंचल चामर समूहों से युक्त सुभटों के अनन्त-समूह को तैयार करो।"

घत्ता— तब घोड़ों पर पलान बाँधे जाने लगे। मदोन्मत्त हाथी सजाये जाने लगे और तत्काल ही जयघोष से लोक को पूर देने वले तूर बज उठे।। 92।।

---

(9) 1. अ. भड°। 2. ब. °ढं°। 3. ब हो°। 4. ब घ°।

(10)

कहिमि तं चक्कु हय ढक्क-भेरी सर . कहिमि पट्टु-पडह दडिणंद वज्जिय खरं।
कहिमि कलतिं-बिल-दुमु-दुमिय कोलाहलं कहिमि खर-करड तडतडिय गुरु काहलं।
कहिमि हय थट्ट उट्ठंत जण [1]संक्कडं कहिमि खेलंत भड धंत णिरु तक्कडं।
कहिमि मंडलिय बहु मिलिय चल-चामरं कहिमि सामंत-धीमंत पर डामरं।
कहिमि दुग्घोट्ट-संघट्ट लोटिट्टर[2] हयं कहिमि रवण खंभ फरहरिय मरु धय धयं।
कहिमि घण छत्त सिंगिरिहि छाइय णहं कहिमि रय-पवर पसरंत हय रवि-पहं।
कहिमि असि-कुंत झलकंत चल सव्वलं कहिमि कडितल्ल वा वल्लमुज्जलं।
विसम घण थट्ट फोट्टंतु कय [3]समथल(1) चलिउ समय[4]रेण महुराय रायहो वलं।

घत्ता— एम चउरंगु समिद्धु णिसिवासरु अगणंतउ।
वडउरपुर णामेण जंतु-जंतु संपत्तउ।। 93।।

---

(10)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में–) राजा मधु का चतुरंगिणी सेना के साथ अरिराज भीम के साथ युद्ध हेतु वडपुर पहुँचना

कहीं पर तो चक्राकर ढक्क वाद्य और कहीं भेरी के स्वर हो रहे थे। कहीं पर दडिण-दडिण का कर्कश स्वर करने वाले पटु-पटह बाजे बज रहे थे। कहीं पर टिविल नामक बाजों का कल-कल, विल-विल, दुम-दुम का कोलाहल हो रहा था, तो कहीं पर बड़े-बड़े काहल नामक वाद्य कर्कश कर्र-कर्र, तड़-तड़ शब्द कर रहे थे और कहीं पर घोड़ों के थट्ट से उठते हुए लोगों की भीड़ थी, तो (उस शिविर में) कहीं पर अत्यन्त उत्कट भट खेल (अभ्यास) कर रहे थे, तो कहीं पर शत्रुओं के लिए भयंकर बुद्धि वाले सामन्त गण थे। कहीं पर दुर्जेय घोड़ों का झुण्ड लौट रहा था, तो कहीं पर रम्य खम्भों पर वायु से काँपती हुई ध्वजाएँ फहरा रही थीं। कहीं पर घने छत्रों के अग्र शिखरों से आकाश ढका जा रहा था, तो कहीं पर फैलते हुए रजप्रसर से सूर्य की प्रभा हत (नष्ट) हो रही थी। कहीं पर असि, कुन्त एवं चंचल सव्वल झलक रहे थे। कहीं उज्ज्वल बल्लम कटितल को चंचल बना रहा था। कहीं विषम घन भूमि को फोड़कर उसे समस्थल कर रहे थे। इस प्रकार मधु राजा का सैन्यबल सम-भार से (सन्तुलित—एक साथ मिल कर) चला।

घत्ता— इस प्रकार समृद्ध चतुरंगसेना चलते-चलते रात्रि दिवस न गिनती हुई वडपुर नामके पुर (के पास) में जा पहुँची।। 93।।

---

(10) 1. अ. संकुलं। 2. अ "प। 3. अ महल। 4. अ. "भ"।

(10) (1) समानभूमि।

(11)

तहि मंडलिउ कणयरहु णामइँ जो मायंग तुलइ भुअ थामइँ।
सा महुसेणहो समुहु परायउ सिरेण-णमंतहो दिण्णउ साइउ।
गुडि उद्धरणु कराविवि पुरवरे पुणु तें कोसलवइ णिउ णिय-घरे।
किय पडिवत्तिवि त्तहो परमत्थइँ णं पिए सिहुं विच्छोहु सहत्थइँ।
णरवइ कणयासणे वइसारिउ णं पिय-विरहु सइँ जि हक्कारिउ।
जा उतत्त(1) चारु कणयप्पह [1]कणयरहहो राणी कणयप्पह[2]।
दहि-अक्खउ [illegible] सा दिट्ठिय [illegible]-घल्लिव हियइँ पहिट्ठिय।
तार-तरल सरलुज्जल लोयणि तरणि जुवाणह(2) कामुक्कोयणि।

घत्ता— सा पेच्छेवि महुराउ चिंतइ किं रायत्तइं।
जहि एही णउ माणियइ वलि हय-गय-रह[3]-छत्तइं।। 94।।

---

(11)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन प्रसंग में–) वडपुर नरेश कनकरथ राजा मधु का स्वागत करता है। उसकी रानी कनकप्रभा पर राजा मधु आसक्त हो जाता है

वहाँ कनकरथ नामका माण्डलिक, जो कि मातंग (गज) के समान भुजा स्तम्भवाला था, वह मधु की सेना के सम्मुख आया और उसने सिर झुका कर (नमस्कार कर) स्वागत किया। फिर अपने वडपुर में गुडि उद्धरण (सजावट) कराया। पुनः उस कोशलपति मधु को अपने घर ले गया। वहाँ उसने परमार्थवश उसकी इस प्रकार प्रतिपत्रि (आदर-सत्कार) की मानों अपनी प्रिया के साथ उस (कनकरथ) के विछोह की सूचना ही हो। कनकरथ ने राजा मधु को कनकासन पर क्या बैठाया, मानों उसने स्वयं ही अपनी प्रिया के विछोह को ही बुला लिया। उस कनकरथ की अग्नि में तपाए हुए स्वर्ण की प्रभा के समान कनकप्रभा नामकी रानी थी। राजा मधु ने जब चंचल, सरल एवं उज्ज्वल नेत्र वाली तथा युवक जनों के मन में कामांकुर उत्पन्न कर देने वाली उस तरुणी (कनकप्रभा) को दही एवं अक्षत से अपनी आरती उतारते हुए देखा तब वह मधु राजा के हृदय में काम रूपी भाले के समान प्रवेश कर गयी।

घत्ता— उस रानी (कनकप्रभा) को देखकर मधुराजा इस प्रकार चिन्तन करने लगा—"मेरे राजापने से क्या? बली, घोड़े, हाथी, रथ एवं छत्रों से भी लाभ क्या? यदि मैंने इसे प्राप्त नहीं किया?"।। 94।।

---

(11) 1-2. अ प्रति में यह पंक्ति नहीं है। 3. ऊ "वर"।

(11) (1) तापोत्तीर्ण। (2) महुराणी।

(12)

तहि दंसणे सो मयण-परव्वसु विरह राणइँ संठिउ णावइ पसु।
ठिउ अप्पउ[1] घल्लि[2]वि सयणोवरि[3] अणु-दिणु मणे चिंततु किसोयरि।
गेउ ण सुणइ अण्ण णाउ रुच्चइ मंति सुमइ णामइ ता बुच्चइ।
देव-देव किं तुहुँ विवणम्मणु ण वि आहरणु अंगे ण विलेवणु।
पर-णरणाहइँ चप्पिय सीमहु रणभरे किं आसंकिउ भीमहु।
बाहिर आवासिय परिवारहो चिंतिवि मुक्क काइँ खंधारहो।
तं णिसुणेवि महुराउ पयंपइ मयण भव्वि तिलु-तिलु मइ कप्पइ।
असुहत्थी कलिमल णउ हट्टइ तल्लोवेल्लि सरीरहो वड्ढइ।
घत्ता— इय कंचणरहहो रमणि णिहालय जामहिं।
एह मेल्लवि महो ताय अण्णु ण रुच्चइ तामहिं।। 95।।

(13)

किं पंचाणणु तसइ गयंदहो हउ किं संकमि भीम णरिंदहो।

---

(12)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) मधु राजा अपनी कामावस्था का रहस्य अपने मन्त्री सुमति को कह देता है

वह राजा मधु रानी कनकप्रभा को देखते ही मदन से परवश हो गया। उस के विरह से वह ऐसा विह्वल हो गया जैसे पशु। वह (पगला होकर) बिछौने पर पड़ गया और मन में निरन्तर उसी कृशोदरी का चिन्तन करने लगा। न तो वह गेय गीत ही सुनता था, और न उसे अन्न ही रुचता था। तब सुमति नामक मन्त्री बोला—"हे देव, हे देव, आप अनमने क्यों हो? न तो आप आभरण धारण करते हो और न अंग में विलेपन ही करते हो। क्या शत्रुराजा भीम ने राज्य की सीमा चाँप ली है? अथवा रण में आप उस भीम से आशंकित होकर भयभीत हो रहे हो?

परिवार को बाहर ठहरा कर क्या आपने स्कन्धावार (सेना) की चिन्ता छोड़ दी है? मन्त्री का कथन सुनकर राजा मधु बोला—"(भयभीत नहीं हूँ किन्तु)" हे भव्य, मदन के कारण मेरा तिल-तिल काँप रहा है उसके कारण मेरे शरीर में तड़फड़ी हो रही है। अशुभार्थी कलि-मलों से नहीं हटता।"

घत्ता— जब से मैंने कंचनरथ की रमणी को देखा है तब से हे तात, इस रमणी को छोड़ कर मुझे अन्य कोई नहीं रुचता।। 95।।

(13)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) राजा मधु अरिराज भीम के पास अपना दूत भेजता है

"...क्या पंचानन सिंह गजेन्द्रों से डरता है? मैं भीम नरेन्द्र से क्यों डरूँ? जिसके लिए कैटभ की साहाय्य कही

---

(12) 1. अ 'णु। 2. ब 'डी'। 3. अ 'रवि।

जसु कइडिहु सहाउ सच्चरियउ सइँ केसरि अवरु वि पक्खियउ।
पर किं करमि उवाउ को पेच्छमि किमु पावमि एह कहिं किर गच्छमि।
तं णिसुणेवि आमच्चइ वुच्चइ एरिसु कज्जु मंतु किंतु[1] सुच्चइ।
अहवइ तुह अणुराउ ण भंजमि विजय-जत्त काऊण पहुंजमि।
एहु महुवयणु कुणहिं णिरु चंगउ अवसु करावमि हउँ जि समग्गउ।
तं सुमइहिं मंतिहिं वयणुल्लउ [1]भग्गउ कणयणरिंदहो भल्लउ।
पुणु वडउरहो राउ णीसरियउ भीम णरिंदहो उप्परि तुरियउ।
वलिय सेण्ण पयभरु असहंतिए आकंपिउ भए तसिय धरित्तिए।
फणि-सलवलिय चलिय गिरि ठायहो णियवि पयाणहो महुमहरायहो।

घत्ता— पेसिउ भीमहो दूउ तेणि जाएवि पवोल्लियउ।
उ[2]करि मयर रउद्दु णं समुद्दु उच्छल्लिउ।। 96।।

(14)

पसरिउ चाउरंग कल्लोलउ भीमु-भीमु एहु तुहुँ जग बोल्लउ।
रायधसक्कु पत्तु कोसलवइ समरे भिडइ जइ तो पहरणु लइ।

गयी है, वह मुझे स्वयं विपक्षी (रूपी हाथी) के लिए दूसरा सिंह समझो। परन्तु मैं क्या करूँ, कौन उपाय देखूँ? उस रानी कनकप्रभा को मैं कैसे पाऊँ? और उसे प्राप्त किये बिना मैं कैसे जाऊँ?" यह सुनकर अमात्य बोला—"हे सन्त आप ऐसा कार्य (अभी) क्यों सूचित करते हैं? अथवा, मैं आपके अनुराग को भंग नहीं करना चाहता हूँ। किन्तु विजय यात्रा करके उसका उपाय जोड़ूँगा। यह मेरा वचन भलीभाँति प्रमाणित कीजिए। उसके बाद आगे मैं उसकी (कनकप्रभा की) उपलब्धि अवश्य करवा दूँगा।" वह उस सुमति मन्त्री के वचन सुनकर कनक-नरेन्द्र की भलाई ही भूल गया।

पुन: वडपुर से राजा निकला और तत्काल ही भीम नरेन्द्र पर जा चढ़ा। बलवती सेना के पद भार को सहन न करती हुई पृथिवी उसके भय से काँपने लगी। मधु राजा के महान् प्रयाण को देखकर गिरि भी अपने स्थान से टल गया तथा फणी भी सलबला गया।

घत्ता— (सर्वप्रथम) राजा मधु ने अपना दूत अरिराज—भीम के पास भेजा। वह दूत भीम के सम्मुख इस प्रकार पहुँचा, मानों रौद्र समुद्र में से मकर ही ऊपर उछल पड़ा हो।। 96।।

(14)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) राजा मधु एवं अरिराज का भीषण युद्ध

दूत ने जा कर अरिराज भीम से कहा—"चतुरंगिणी सेना रूपी समुद्र की कल्लोलें चारों तरफ पसर गयी हैं, हे भीम, अब तुम जागो और हे भीम, बोलो (अब तुम क्या चाहते हो)? हे रायधशक्र, कोशलपति राजा मधु यहाँ पहुँच गये हैं। यदि तुम उनसे समर में भिड़ते हो तो प्रहरण (आयुध) हाथ में लो। अथवा, यदि शंका

---

(13) 1. अ. ल° । 2. अ. उहुकरि।

(13) (1) कथंकथयति

अह संकहि तो दडहि गढंतरे   महु पडिखलइ को भरहब्भंतरे।
तं णिसुणेविणु भीमु पलित्तउ   णं हुवासु घिउ-घड-सयसित्तउ।
रह-भड[1]-तुरय-थट्ट दुग्घोट्टहिँ   सामंतहिँ अरि दलण [2]मरट्टहिँ।
सण्णज्झ वि दुग्गहो उवरियउ   रायध-सक्कु विरदु जें धरियउ।
आवेवि भिडउ तासु महुराणउँ   सो संगाम-भेय बहु जाणउँ।
विहिमि वलहँ एम समरु पवट्टिउ   कासुवि कर-सिर-कमलु पवट्टिउ(1)।
कोवि कुंतहिँ णिब्भिण्णु महाभड   कासु वि अस हत्थउ णच्चइ धडु।
केणवि कोवि समुहत्तु(2) छइल्लइँ(3)   राउत्तु विसत्तसु रउ हउ सेल्लइँ।

घत्ता— [3]अण्णेवि खीलिय इल-वलय सहुं एक्कु वि टल वि ण पडियउ।
गउजीउ णाइँ कित्तिमु धड वि संभिडउ रणे भिडियउ।। 97।।

(15)

तो दप्पुब्भडु   भीमइँ[1] गय-गमु[2]।
जहिँ महुराणउँ   णिवहं पहाणउँ।
तहिँ सो लग्गउ   लक्खय खग्गउ।
[3]तहो संमुहु गउ[4]   ....।
महु भीमहो रणु   मच्छर घण-घणु।

करते हो तो गढे के बीच दब जाओ (छिप जाओ)। इस भरत-क्षेत्र में ऐसा कौन है जो राजा मधु को पराजित कर सके।" दूत का कथन सुनकर राजा भीम क्रोध से जल उठा, मानों अग्नि पर सैकड़ों घड़े घी ही सींच दिया गया हो। रथों, भटों एवं तुरंग समूहों के दुर्घोषों तथा अरि-दलन में समर्थ सामन्तों से सन्नद्ध रायधशक्र विरुदधारी वह राजा भीम अपने दुर्ग से निकल कर आया और राजा मधु से जा भिड़ा। दोनों ही बलों का ऐसा समर होने लगा कि उसमें किसी का हाथ छिद गया तो किसी का सिर-कमल ही छिन्न हो गया। कोई महाभट कुन्तों से भिन्न हो गया, तो किसी के हाथ में असि लिए धड़ ही नाचने लगा। किसी के द्वारा कोई सम्मुख ही छेद दिया जाता है तो किसी राजा का घोड़ा हत (घायल) हो गया है फिर भी वह उसे चलाये जा रहा है।

घत्ता— अन्य दूसरे भी इल वलय (भूमण्डल) में कीलित हो गये किन्तु एक भी राजा ढीला नहीं पड़ा, मानों, जीवरहित कृत्रिम धड़ ही मिल कर रण में भिड रहे हों।। 97।।

(15)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में–) युवराज कैटभ एवं अरिराज भीम का युद्ध

एक तरफ तो दर्प से उद्भट गजगामी भीम था तो दूसरी ओर नृपों में प्रधान मधु राजा था। वहाँ वह मधु खड्ग उठा कर लड़ने लगा। वह भीम के सम्मुख गया। राजा मधु एवं अरिराज भीम में जब अत्यन्त मात्सर्य भाव से घनघोर भयंकर रण चल रहा था उसी समय लम्बी ध्वजा फहराता हुआ, पद से गज को प्रेरित करता

(14) 1. ब. 'र'। 2. ब 'भ'। 3. अ. 'लिं'।   (14) (1) प्रविष्ट । (2) सन्मुख। (3) छेदित ।

(15) 1. अ. भेसईं। 2. अ. 'घडु'। 3-4. अ. प्रति में यह चरण नही है।

जाम पयट्टइ अवसरु वट्टइ।
ता लंबिय-धउ पय चोइय गउ।
सुणेवि महारउ झत्ति समागउ।
[5]समरि अकायरु महुहि सहोयरु।
कयडिहु कय छिलु पयडिय भुवबलु।
तेणि अरिर वारिउ रणे पच्चारिउ।
बलु ऊरइ तुहुँ जोव[6]इ मुहु-मुहु[7]।
ता भड [8]भीमइँ णिय करि[(1)] भीमइँ।
चोइउ तेत्तहिँ कयडिहु जेत्तहिँ।
बेवि महाभड सूडिय गय-घड।
भिडिय समच्छर तोसिय अच्छर।
कइडिहु करिवरु किउ सो जज्जरु
संठिउ णिच्चलु हुउ विउलंघलु।

घत्ता— तो तहि कइडिहेण लहुविज्जकरणु[9] [10]संठविउ।
णिय करे [11]कंधि ठिउ उप्फिडिवि भीमु रणे वड्ढउ।। 98।।

(16)

अवर केवि भड खग्गालिंगणे धीरिस केवि-केवि णिहय रणंगणे।

हुआ, महाशब्दों को सुनता हुआ कैटभ शीघ्र ही वहाँ आ गया। वह कैटभ समर में अकायर (वीर), मधु का सहोदर भ्राता, अपने भुजबल को प्रकट करता हुआ वहाँ आया। उसने अरिराज भीम को रोका, रण में फटकारा और कहा—"तेरा बल नष्ट हो गया है इसलिए बार-बार मेरा मुँह देखता है?" तब योद्धा भीम ने अपने भीम नामक भयानक हाथी को कैटभ की ओर चलने को प्रेरित किया। दोनों ही महाभट गजों की घटाओं को काटते हुए मत्सर भाव सहित तथा अप्सराओं को सन्तुष्ट करते हुए भिड़ गये।

कैटभ का जो उत्तम गज था, उसे भी भीम ने जर्जर कर दिया तथा वह घबरा कर निश्चल हो गया।

घत्ता— कैटभ ने लघुविद्य नामके हाथी को ला खड़ा किया। भीम भी अपने हाथी के कन्धे पर उछल कर जा बैठा और रण में बढ़ा।। 98।।

(16)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में–) अरिराज भीम को पराजित कर राजा मधु वापिस घर लौटा। वसन्त-ऋतु का आगमन

और अन्य कोई भट् खड्ग के आलिंगन में काम आये तो कोई (भट) कोई रणांगण में धर कर मारे गये।

---

(15) 5. अ सम° 6-7. अ. महु जोवहिँ मुहुँ। 8. ब भीमइँ। 9. अ सेलु। 10. अ सन्नद्धउ। 11. अ खं।

(15) (1) भयानकेन।

भीमु वि कइडिहेण महुरायहो दक्खालिउ जयलच्छि सहायहो।
महुरायइं णियणयरहो आणिउँ मोक्कल्लिवि राव¹र सम्माणिउँ।
तेण[(1)] वि तहे पुरे णयणाणंदिरे लइय दिक्ख जाएवि जिण-मंदिरे।
णिव वि पवेसिय णिय-णिय ठाय²हो सा कणयप्पह पुणु महुरायहो।
णट्ठ सल्लु जेम हियइँ चहुट्टइ तल्लोवेल्लि सरीरहो वट्टइ।
रावउ वि सेउ तणु कंपइ तहे अवसरे पुणु सुमइ पयंपइ।
सा आणमि इह केण उवायइँ तं णिसुणिवि जंपिउ महुरायइँ।
ताय-ताय मा मइ उप्पेक्खहि[(2)] तेम करि जेम जीविउ महो रक्खहि।
ता मंतिहि उवाउ चिंतिज्जइ णायक्कहँ[(3)] आणउँ पेसिज्जइ।
णिय-णिय अंतेउरहँ सवाणा आणविभि णीसेस वि राणा।
ताम वसंतु-राउ संपत्तउ फग्गुणि णिय दूवउ पेसंतउ।
तेण[(4)] णिब्भच्छिलउ जाम सियालउ केसु कलियो मिसेण मुहु कालउ।
ठिउ करेवि ता पत्तहिं मुक्कउ सो आएवि केयार पढुक्कउ।
अवरु वि जो अवमाणिउ[(5)] णरवरु अवसु स रइ भउ भरइ मेल्लिवि घरु[(6)]।

कैटभ ने जयलक्ष्मी की सहाय वाले मधुराजा के लिए भीम को दिखाया (अर्थात् जीवित बँधा दिया)। मधुराजा भीम को अपने नगर ले आया। बंधन छोड़कर उस (भीमराज) का समुचित सम्मान किया। उस भीम ने भी नयनानन्ददायक पुर में जिनमन्दिर में जाकर दीक्षा ले ली। अन्य राजागण भी अपने-अपने स्थानों पर चले गये।

(राजा भीम के वश में हो जाने के कारण—) नष्ट शल्य उस मधु राजा के हृदय में कनकप्रभा वाली वह शल्य पुनः चुभने लगी। उसके लिए उसके शरीर में पुनः तड़फड़ी होने लगी। उसके अनुराग के कारण राजा को पसीना आने लगा, शरीर काँपने लगा, उस अवसर पर सुमति मन्त्री पुनः बोला—"उस कनकप्रभा रानी को किस उपाय से लाऊँ?" यह सुनकर राजा मधु बोला—"हे तात, हे तात मेरी उपेक्षा मत करो। ऐसा उपाय करो, जिससे मेरे जीवन की रक्षा हो।"

तब मन्त्री सुमति ने हितकारी उपाय सोचा कि (क्यों न) नायक राजाओं को (दूत द्वारा) आज्ञा प्रेषित की जाय और अपने-अपने अन्तःपुर सहित सब राजाओं को यहाँ बुलाया जाये?"

उसी समय ऋतुराज वसन्त आ पहुँचा। उसने अपना फाल्गुनमास नामका निज दूत भेजा। उस दूत ने सियाला (शीतकाल) को डाँटा। तब वह सियाला केशु (पलाश) की कली के मिष से काला मुँह करके स्थित हो गया। तब पत्रों ने उसे छोड़ दिया (पतझड़ होने लगा)। अतः वह शीतकाल जाकर केदार में (हिमालय में) ढुक गया, और भी जो अपमानित नरवर घर (पत्नी) को छोड़ कर चले गये थे। वे भी रति से अवश (विवश) होकर भय (वधु) को स्मरण करने लगे (जो पात्र केदार चले गये थे वे घर को आने लगे)।

(16) 1. अ °उले। 2. अ °ण°।

(16) (1) भीमेन। (2) अवगणय। (3) सुभटानां। (4) फागुणदूतेन। (5) अपमानेन। (6) निजस्थानं।

घत्ता— पत्तु वसंतु तुरंतु विरहीयण संतावणु।
वणसइ कुसुम मिसेण णं [3]णिय सिय[4(7)] दरिसावणु।। 99।।

(17)

कत्थइँ विविह जीव साधारहो[(1)] रेहइ वणि मंजरि साहारहो[(2)]।
कत्थवि रत्त-पत्त कंकेलिहिँ[(3)] वणे पइसइ णिज्झर केल्लिहिं।
कत्थवि उण्णइँ पत्त-वि[1]यंगइ मारइ विरहो वि विणु वि पियंगइ।
कत्थवि णिरु कुसुमिय वर-पडुल सरि-कीलंति विविह वर-पडुल।
कत्थइँ णिय वि रिद्धि मोग्गयरहो[(4)] सइरिणि सण्ण करइ भोग्गयरहो।
कत्थवि वणे विलसइ कोइलसरु अरहु मुअवि भंजइ कोइलसरु।
कत्थवि पढम कलिय वेइल्लइ दरसिय वण-लच्छिहिँ[(5)] वेइल्लइ।
कत्थवि कुंदु हसिउ दवणउँ पिय-विरहियहँ जीव वि दवणउँ।

घत्ता— कुंकुम-जल-सिं[(6)]चणउं खंडुक्खलिय ण भावइ।
अणिमिस-लोयणु राउ कंचणपह मणे भावइ।। 100।।

घत्ता— विरही जनों को सन्ताप देने वाला वसन्त तुरन्त आ गया। मानों वनस्पतियों के पुष्पों के मिष से वह अपनी शोभा दिखलाने लगा।। 99।।

(17)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) ऋतुराज वसन्त का वर्णन। विरह-व्याकुल राजा मधु केवल कनकप्रभा के चिन्तन में रत था

कहीं पर वनों में विविध जीवों के लिए आधारभूत आमों की मंजरियाँ सुशोभित होने लगीं। कहीं कंकेलि वृक्षों में लाल-पत्र आ गये, तो कहीं वन में निर्झरों के किनारे सुन्दर केलों ने प्रवेश किया। कहीं उपवनों में प्रियंगु वृक्षों के पत्ते उन्नत हो रहे थे, तो विरह भी प्रिया के अंग के बिना भर्तार को मारने लगा। कहीं पर वर पटल (गुलाब) कुसुमित हो रहे थे, तो कहीं पर सरोवर में विविध वर पटल (लाल कमल) क्रीड़ा कर रहे थे। कहीं मोगरा (मुक्तराग) पुष्पों की ऋद्धि देखकर स्वैरिणी स्त्री (एकान्त में) भोगीवरों को संज्ञा करती थी। कहीं वन में कोकिल का स्वर शोभता था तो कहीं कोकिल स्वर वाली स्त्री और को छोड़कर भाग रही थी।

कहीं वनलक्ष्मी ने सुन्दर वेला की प्रथम कली दिखायी, तो कहीं शुभ्र कुन्द पुष्प, और कहीं प्रिया के विरहीजनों के जीव (मन) को पिघलाने वाला द्रोण पुष्प हर्षित हुआ।

घत्ता— उस मधु राजा को कुंकुम (केशर) जल का छिड़काव अथवा खंडोत्कलित पानक भी नहीं भाता था। अनिमिष लोचन (टकटकी लगाये) राजा के मन में केवल कनकप्रभा ही भाती थी।। 100।।

---

(16) 3-4. अ. प्रति मे नहीं है।

(17) 1. अ. पिं।

(16) (7) सोभा।

(17) (1) आधारीभूतण। (2) आम्रस्य। (3) अशोकस्य। (4) मुक्तारागस्य। (5) वणलक्ष्मी दर्शिता। (6) जलकीला।

(18)

ता सामंत-[1]चक्कु संपत्तउ णिय-णिय अंतेउर संजुत्तउ।
कणयप्पह[(1)] सहियउ कंचणरहु कोसलपुरि पइट्ठु वडउर पहु।
सयलहं वर आहरण सुवत्थइँ ढोइयाइँ राएण पसत्थइँ।
कंचणरहहो हत्थि संजोइवि वर आहरण-तुरंगम ढोएवि।
सयल विसज्जिय पुणु संखेवइँ कणयरहु वि तोसिवि महुएवइँ।
भणिउ जाउ तुम्हइँ णिय-णयरहो णंदण-वण घण कीलिर-खयरहो।
कणयप्पहहे जोग्ग सिंगारवि कंकण-कडिसुत्त मणिहारहिं।
सिज्झहिं जाम-ताम इह अच्छउ पुणु सुपसाहणु भूसिय गच्छउ।

घत्ता— महुरायहो वयणेण आएसु मणेण मुणेप्पिणु।
गउ वडउरवइ जाम राणिय तहिं जि थवेप्पिणु।। 101 ।।

(19)

णिय परिवार सहिय कंचणपह अच्छइ जाम [1]जच्च कंचणपह[(1)]।

---

(18)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु के आदेश से कनकरथ अपनी युवती सुन्दरी रानी कनकप्रभा को उसीके यहाँ छोड़ देता है

राजाज्ञा सुनते ही समस्त सामन्त चक्र अपने-अपने अन्तःपुर सहित वहाँ आ पहुँचे। वटपुर का प्रभु कंचनरथ भी कंचनप्रभा के साथ कोसलपुरी आया। राजा मधु द्वारा उन आगत सभी सामन्तों को उत्तम आभरण एवं सुन्दर वस्त्र (सिरोपाव) प्रदान कराये गये। कंचनरथ को तो सँजो कर हाथी तथा उत्तम आभरण सहित, तुरंग प्रदान किये पर अन्य सभी को यत्किंचित् कुछ-कुछ देकर विदा किया गया। राजा मधुदेव ने कनकरथ को विशेष रूप से सन्तुष्ट कर कहा—"तुम विद्याधरों की घनी क्रीड़ाओं के योग्य नन्दनवन से युक्त अपने नगर को वापिस लौट जाओ। कनकप्रभा के योग्य शृंगार के लिए कंकण, कटिसूत्र, मणिहार (यहाँ बनवाये जा रहे हैं वे) जब तक नहीं बन जाते, तब तक वह कनकप्रभा यहीं बनी रहे। पुनः उनके बन चुकने पर उन्हीं से प्रसाधित, आभूषित होकर ही वह यहाँ से जावे।"

घत्ता-— राजा मधु का कथन सुनकर तथा उसके आदेश को अपने मन में समझ कर वडपुरपति वह कनकरथ रानी कनकप्रभा को वहीं छोड़कर वापिस लौट गया।। 101 ।।

(19)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में-) राजा मधु रानी कनकप्रभा के पास दूती भेजता है। सन्ध्या एवं रात्रि-वर्णन

जात्य कंचन के समान प्रभावाली वह रानी कनकप्रभा जब अपने परिवार के साथ वहाँ रही तभी राजा

---

(18) 1. अ. °वग्गु।

(19) 1. अ. तत्थ।

(18) (1) कंचणरथ हस्तेन मूलं।

(19) (1) स्वर्णप्रभा।

ता महुणा मयणग्गि पलित्तें गोसीरु घणसार पसि[2]त्तें।
अइवड्ढिएण गरुय अणुरायइं दूइय ताहि[(2)] विसज्जिय रायइँ।
ता संकोमवि[(3)] णियय पयंगइ[(4)] अत्थ-सिहरि आसरिय पयंगइ।[(5)]
णिवइ अणय[(6)]- रोसएँ णं रत्तउ अह पच्छिम-दि[3]ह वेसहि रत्तउ।
अह रत्तो वि विविह पहरा हउ[(7)] कोण अत्थवइ विविह पराहउ[(8)]।
अवरण्हइँ णिवडंतइँ सूइँ संज्झा[(9)] रत्त-लित्त जहिँ सूरइँ।
तणु पक्खालणत्थ तहिँ [4]चल्लिउ णं अप्पउ जलरासिहिँ वोल्लिउ।

घत्ता— तहिँ अत्थाणु करेवि थिउ दससय-करु जामहिँ।
ढुक्किय उडु दसणट्ठ णिसिवि णिसायरि तामहिँ।। 102।।

(20)

णिप्फारिय णह-पायाल-वयणि पज्जलिय पईवारत्त णयणि।
अलि-कसण-काय णिण्णट्ठ मग्ग रवि भडउ गिलिवि णं गयणि लग्ग।
एत्थंतरे तम[1] दुज्जण णिसुंभु णं सिंगार मय णिहाण-कुंभु।

मधु की गोशीर (चन्दन) और घनसार (कर्पूर) से सींची हुई वह मदनाग्नि और भी अधिक भभक उठी। अत्यन्त बढ़े हुए अनुराग के कारण राजा मधु ने अपनी एक दूती को कनकप्रभा के पास भेजा। उस समय अपनी किरणों को संकुचित कर पतंग (सूर्य) अस्ताचल के शिखर पर आश्रय ले रहा था, मानों मधुराजा के अन्याय पर रोष के कारण रक्तवर्ण होकर वह (सूर्य) पश्चिम दिशा में जाकर छुप गया हो। विविध प्रहारों से आहत प्रेमी भी अनेक प्रकार से तिरस्कृत होकर क्या छिप नहीं जाता? सन्ध्या की लालिमा से लिप्त सूर्य उसी प्रकार (समुद्र में) गिर गया जिस प्रकार समर-भूमि में लड़ता हुआ शूर-वीर अपराह्न में खून से लथपथ होकर गिर जाता है। इसीलिए मानों उस सूर्य ने चलकर अपने शरीर के प्रक्षालन-हेतु अपने को समुद्र में डुबा दिया है।

घत्ता— वहाँ स्थान पाकर दशशत कर सूर्य जब ठहरा हुआ था तभी रात्रि में निशाचर (चन्द्र) उडुदर्शन के लिये आ ढुका (आ पहुँचा)।। 102।।

(20)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) चन्द्रोदय वर्णन

आकाश से पाताल तक वदन (मुख) फैलाए हुए प्रज्ज्वलित प्रदीप के समान रक्त किरण रूपी नेत्रों वाले भ्रमर के समान कृष्ण वर्ण वाले तथा नष्ट (भूले हुए) मार्ग उस सूर्य रूपी भट को निगल कर मानों चन्द्रमा आकाश में लग गया (अर्थात् रात्रि आ गयी)।

इसी बीच अन्धकार रूपी दुर्जन का दमन करने वाला शृंगारमय निधान (खजाने) के कुम्भ कलश के समान

---

(19) 2. अ. लि। 3. अ. स। 4. अ. वो।

(20) 1. ब. स।

(19) (2) तस्या:। (3) संकोच्य। (4) किरणा। (5) सूर्येण। (6) भूपस्य अन्याय रोषेण। (7) वलु, प्रहरैर्हत:। (8) प्रहारघाती: कानय:। (9) संध्या रक्तेन लिप्तेन सूर्येण।

दंतछइँ रुइसर खगे भाइ णह सायरि फेण व थक्कु णाइँ।
कामुय[1] कल-कीला भामिणीहिँ दप्पणु वसु सामा-कामिणीहिँ।
णं आयवत्तु रइ-सामियहो[2] सिर-रमणु व गोवइ-[2]सामियहो[3]।
रइ-पल्लंकु व किं फलिहो मउ णह-हरिणा णं करे संख कउ।
दिक्कण्णहिँ णावइ कु[3]दुवउ पंचेसु णिसाण[4]-[4]साण हुवउ।
किं अमउ महेवि णवणिय थवक्कु सिसु राहुहि पीडिय कज्जे मुक्कु।

घत्ता— णं कइरवु कोसाउ कढेवि अलि रिंछोलि असि।
माणंसिणि[5] हिययत्थु णिहणइँ[6] माण विवक्खु[7] ससि[8]।। 103।।

(21)

ससि जोण्हालंकिय भुवणयले अविला[1]स-सुहास कास धवले।
णिम्मलु भणेवि मइँ जाणियउँ जगु णं खीरोवहि ण्हाणियउ।
सुणिद्दय वि ण वायसु-हंसु णहिँ दीसइ सव्वु वि सियवण्णु जहिँ।

तथा दाँतों की छवि को रुचिकर बनाने वाला चन्द्रमा आकाश के अग्रभाग में इस प्रकार सुशोभित होने लगा, मानों आकाश रूपी समुद्र में फेन पुंज ही इकट्ठा हो गया हो अथवा वह (चन्द्र) कामुक जनों की मनोहर क्रीड़ा करने वाली भामिनियों और सुश्यामा (तरुणी) कामिनी जनों का दर्पण ही हो, अथवा, मानों रति के स्वामी कामुक जनों का आतपत्र (छत्र) ही हो अथवा मानों गोपति-स्वामी—शिवजी के सिर का रत्न ही हो अथवा क्या वह स्फटिक-मणि द्वारा निर्मित रति का पलंग था? वह ऐसा प्रतीत होता था मानों आकाश रूपी विष्णु ने अपने हाथ में शंख धारण कर लिया हो। वह चन्द्र दिक्कन्याओं की गेंद के समान प्रतीत होता था, अथवा मानों पंचेषु (कामदेव के पांचों वाणों) की धार तेज करने के लिए शान (पत्थर) ही हो। अथवा वह क्या अमृत-मंथन करके निकला नवनीत का एक थव (पिण्ड) है? या राहु को पीड़ित करने के लिये छोड़ा हुआ कोई शिशु?

घत्ता-- मानिनी नारियों के हृदय में स्थित मान को खण्डित करने वाला वह चन्द्र ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों कुमुदों के निकले हुए कोश पर कोई भ्रमर पंक्ति ही विराजमान हो।। 103।।

(21)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में–) चन्द्रोदय-वर्णन, दूतियाँ रानी कनकप्रभा को समझा कर राजा मधु के सम्मुख ले आती हैं

उस समय चन्द्र-ज्योत्स्ना से अलंकृत भुवनतल ऐसा (शुभ्र) प्रतीत हो रहा था मानों वह शेष नाग के सहास्य अथवा धवल कांस्य से व्याप्त हो। लोक उस भुवनतल को निर्मल कहते हैं, किन्तु मैं तो यह जानता हूँ कि जग ने मानों क्षीरोदधि में स्नान ही कर लिया है। लोक आकाश में काक को देखकर भी कहते थे कि यह काक नहीं, हंस है। इस प्रकार जहाँ रात्रि में (चांदनी से) सभी वस्तुएँ धवल दिखाई देती हैं, जहाँ सरोवर के तीर पर चकवी

---

(20) 2. अ. गा'। 3. अ. 'डु'। 4. अ. 'म।

(20) (1) कामुकः मगोज्ञ। (2) कामुकस्य। (3) ईश्वरस्य। (4) पंचवाणघर्षण प्रमाण। (5) मानवतीनां। (6) नष्टमनः पर्णं। (7) स्फोटयति। (8) मानस्यसत्रु चंद्रः।

(21) (1) शेष।

सरि चक्कि णिहालइ जहिं स पिउ गउ कहिंमिणि णिसागमेक्खु सवि ठिउ।
चंचू[2] उडि भिसिण दलेण दलु उच्चल्लल्लइ सरि [1]डोहइ सलिलु।
वल्लह विउउ असहंति[3] तहिं कुरलइँ त्रि सदुक्खु[4] रहंगि जहिं।
ता पयडिय विविह विहूइयहिं कणयप्पहँ राणिय दूइयहिं।
सवउम्मुहं आणिय णरवरहो गणियारि वणं सिंधुर वरहो।

घत्ता— महुराएँ समुहंति सा वि णिहालिय तक्खणेण।
रणे सत्तिहि भिण्णेण णाइँ विसल्ला लक्खणेण।। 104।।

(22)

सामाहिवइमासणे णिय अद्धासणे सइँठविया दिग्गय-गय-गामिणी णिय गोसामिणि परिठविया।
पुणु णिरु बावरंगउ हुवउ संचगउ तेण सहु माणिउ सुरयहो सुहु हय विरहहो दुहु तेहिं लहु[1]।
दरसिय भू भावणु[2] णिरु कोद्धावणु रइ-रमणु खलिक्खर जंपणु अहर समप्पणु अवि समणु[3]।
बहु हाव-भाव धरु णिरु विब्भम भरु कय करणु सविलासि णिरक्खणु अणकयसिक्खणु[4] मणहरणु।
एम सयणे रमंतहँ कील करंतहँ उडु णयणे कंचणपह देविहिं सहु सिय सेविहि गय रयणि।

रात्रि में अपने प्रिय पति को बैठा हुआ देखकर भी निशा के आगमन पर (भ्रमवश) "मेरा चक्रवाक कहाँ चला गया?" यह कह कर चिल्लाती हुई चोंच उठा-उठा कर वह सरोवर के जल में विसिनी (कमलिनी) के दल से दल को मार कर उछालती रहती है और इस प्रकार वह चकवी वल्लभ के वियोग को नहीं सहती हुई दुःख सहित जहाँ रात्रि में कुर-कुर ध्वनि करती रहती है।

इस प्रकार की रात्रि विविध-विभूतियों को प्रकट करने वाली दूतियों के द्वारा वह रानी कनकप्रभा राजा मधु के सन्मुख लायी गयी। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों वन में गज श्रेष्ठ के सम्मुख हस्तिनी ले आयी गयी हो।

घत्ता— राजा मधु ने सन्मुख लायी गयी उस कनकप्रभा को तत्क्षण ही उसी प्रकार देखा जिस प्रकार रण में शक्ति से भेदे हुए लक्ष्मण ने विशाला को।। 104।।

(22)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में–) राजा मधु एवं रानी कनकप्रभा की काम-केलियों का वर्णन

दिग्गज-गामिनी वह श्यामा---रानी कनकप्रभा राज्य सिंहासन के, रानी के लिए प्रतिष्ठापित अर्धासन पर स्वयं आकर बैठ गयी। राजा मधु के साथ नई-नई रंगरेलियाँ हुईं और वह उसके साथ शैयागत हो गयी। उसने सुरत-सुख देकर राजा मधु के विरह दुःख को शीघ्र ही दूर कर दिया। रानी ने अपनी क्रुद्ध भ्रकुटियों से कामवेग की भावना प्रकट कर रति-रमण भाग को दिखा-दिखाकर तथा लड़खड़ाती वाणी से प्रेमालाप स्वतः ही अधर-समर्पण, चुम्बन, आलिंगन आदि अनेक प्रकार के हाव-भाव स्वामिनी, विभ्रम-विलासों से भरी चेष्टाओं वाली उस विलासिनी ने बिना किसी द्वारा सिखाये गये मनोहर विलासों से उसे रत रखा। इस प्रकार शैया पर सखियों द्वारा सेवित मृगनयनी उस रानी कनकप्रभा के साथ रमा करते तथा काम-क्रीड़ाएँ करते हुए रात्रि व्यतीत हो गयी।

---

(21) 1. अ. सो।

(21) (2) मध चंचुपुटे दलेन कूवाहलं उच्छलते तथा जल. शोभते। (3) सुभ्रूरूप हमस्त जात। (4) चक्रवाकं।

(22) (1) मह्तुना। (2) चनण.। (3) निश्चमन.। (4) स्वयमेवगुणजात:।

रावलि महुरायहो लच्छि लहायहो तम्मि खणे जय मंगल वज्जिय पडह सुसज्जिय वंदि घणे।
तम णि[1]यर पहंजणु जण-मण रंजणु अरुणछवि ता पवर महीहरे उदयगिरिहि[(5)] सिरे उइउ रवि।
कंकेल्लहिं पल्लव अरुणछत्तुव दिसि गणिहे णं तहि मुह-मंडउ कुंकुम-पिंडिउ घण थणहे।
घत्ता— पुहवीसरु जं कुणइ तंपि अज्जुत्तु-विजुत्तउ।
किं राउलिय कहाए णायर-जणेण पउत्तउ।। 105।।

(23)

परयारासत्तइँ पत्थिवेण सा अग्गमहिसि परिठविय तेण।
भिच्चयणु[(1)] जि कंचणरहेण[(2)] मुक्कु गउ सो आएवि वडउरहो ढुक्कु।
तिंणि वइयरु कहिउ असेसु जाम मुच्छाविउ सो कणयरहु ताम।
अहिसिंचिउ सलिलइ सीयलेण पडिवाइउ चल[1]-चमराणिलेण।
उट्ठाविवि बोल्लिउ परियणेण तुहु आउ समप्पिवि सहि करेण।
एमहिं भवि सूरहि सामि साल परहत्थ जाय सा भुयविसाल।

प्रभात होते ही अपनी सहाय वाले उस राजा मधु को शीघ्र ही निद्रा खुल गयी। जयमंगल ध्वनि होने लगी। पटु-पटह बजने लगे और बन्दीजन सुसज्जित हो गये। तभी तम रूपी रज के लिए प्रभंजन (वायु), जनों का मनोरंजन तथा अरुणछवि (लाल कान्ति) युक्त रवि महीधर प्रवर उदयगिरि के शिखर उदित हुआ। वह ऐसा प्रतीत होता था, मानों कंकेलि का रक्त-पत्र ही हो। अथवा मानों दिग्गजों पर लाल छत्र ही तन गया हो, अथवा मानों घनस्तनी नारियों के मुख का मण्डन करनेवाला कुंकुम-पिण्ड ही हो।

घत्ता— पृथिवीश्वर जो कुछ भी करता है वह अनुचित होने पर भी उचित के समान ही माना जाता है। राजकुल की कथा-वार्त्ता को नागरजन से कहने में क्या लाभ?।। 105।।

(23)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में–) राजा मधु रानी कनकप्रभा को पट्टरानी का पद प्रदान करता है। उधर राजा कनकरथ इस समाचार को सुनकर विक्षिप्त हो जाता है

परदारासक्त उस पार्थिव मधु ने रानी कनकप्रभा को अग्रमहिषी पद पर स्थापित किया। उस रानी की सुरक्षा के लिए राजा कनकरथ ने जिनभृत्य-जनों को छोड़ा था, वे अब वड़पुर वापिस लौट गये। जैसे ही उन भृत्यों ने राजा मधु की करतूतों का समस्त वृत्तान्त कहा वैसे ही वह राजा कनकरथ मूर्च्छित हो गया। उन्होंने शीतल सलिल से राजा का अभिसिंचन किया, चंचल चमरों की वायु से उसकी प्रतिपत्ति—उपचार किया परिजनों ने उसे उठाकर कहा—"तुम स्वयं अपनी रानी को उसके लिए समर्पित कर आये हो।"

हे स्वामिन्, हे साल श्रेष्ठ, हे भुजविशाल, अब तो वह रानी परहस्तगत हो गयी। वह लोक में शूरवीर राजा

---

(22) 1. ब. णिरच।
(23) 1. अ. चर।

(22) (5) उदयाचले।
(23) (1) किंकरसमूह। (2) नम्रधरितं।

रंखोलिर कंकण णेउरेण दिट्ठिहि[2] करहि इयर अंतेउरेण।
इय वयणु चवइ जो मंति कोवि असि-दंड पहारहिं हणइँ सोवि।

घत्ता— कंचणपह विरहेण जोव्वण[3] रूव[4] समिद्धउ।
हुउ बाउलउ तक्खणि सो कणयरहु पसिद्धउ।। 106।।

इय पज्जुण्ण-कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए। कइसिद्ध विरइयाए[5] छठी संधी परिसमत्तो।। संधी: 6।। छ।।

द्वारा अधिकृत कर ली गयी है। अत: अब खन-खन बजने वाले कंकण एवं नूपुर वाली अन्य अन्त:पुर की रानियों से धृति धारण करो।" इस प्रकार के वचन जब किसी मन्त्री ने कहे, तब वह राजा असि के और दण्ड के प्रहारों से उसे मारने लगा।

घत्ता— यौवन और रूप से समृद्ध प्रसिद्ध वह राजा कनकरथ रानी कंचनप्रभा के विरह के कारण उसी समय से बावला (पागल) हो गया।। 106।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली सिद्ध कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में मधु-कैटभ के कथान्तर तथा कनकप्रभा के अपहरण सम्बन्धी छठी सन्धि समाप्त हुई। ।। सन्धि: 6।। छ।।

---

(23) 2. अ. ट्ठिं। 3. अ. °ल। 4. अ. °ए। 5. अ. मधु कइटिह कहंतर कणयप्पह-अवहरणं णाम।

सत्तमी संधी

(1)

सुसहायहो[(1)] तहो महुरायहो कंचणपहहि समाणहो।
भुंजंतहो कील कुणंतहो रइ-रस अणुहरमाणहो।। छ।।

उज्झाउरि पवर णरेसरहो अरि-तम-भर णिट्ठ वणेसरहो।
तहो रज्जु कुणंतहो णरवइहो लच्छी-पउमिणि माणससरहो।[(2)]
उत्तुंग मत्त सिंधुर-गइहो कंचणमालहे तहो णरवरहो।
छहरिउ[1] पयडण कुच्छरहँ गयहिमि कसवय संवच्छरहँ।
सो वडउरवइ पिय विरहरत्तु कंचणपह पवर गहेण भुत्तु।
खणे रुवइ-हसइ खणे गेउ करइ खणे पढइ खणे चिंतंतु मरइ।
खणे णच्चइ खणे उब्भाइ-धाइ खणे अण्ण कवलु उवब्भुब्भु खाइ।
खणे लुट्टइ खणे णिय वेसु[2] मुवइ खणे पाय-पसारिवि पुणु वि रुवइ।

सातवीं सन्धि

(1)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन प्रसंग में--) विक्षिप्तावस्था में राजा कनकरथ अयोध्या पहुँच जाता है, जिसे देखकर कंचनप्रभा की धाय रोने लगती है

जिसके अनेक सहायक हैं ऐसा वह राजा मधु कंचनप्रभा के साथ भोग भोगता हुआ क्रीड़ाएँ करता हुआ रति रस का अनुसरण कर रहा था।। छ।।

शत्रु-रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान तथा अयोध्यापुरी के प्रवर नरेश्वर के रूप में राज्य करते हुए उस राजा मधु के मानस रूपी मानसरोवर में राज्यरूपी लक्ष्मी एवं कनकप्रभा रूपी पद्मिनी दोनों का ही निवास था। उत्तुंग मत्त सिन्धुर के समान गति वाली रानी कंचनमाला (कंचनप्रभा) और राजा मधु के छह ऋतुओं के अनुकूल उत्सवों को मनाते-मनाते सहज ही अनेक वर्ष बीत गये और इधर वडपुर का अधिपति प्रिया के विरह से उन्मत्त वह कनकरथ कंचनप्रभा रूपी प्रवर ग्रह से ग्रस्त होने के कारण क्षण में रोता था तो क्षण भर बाद हँसता था और क्षण भर में गाने लगता था। किसी क्षण वह (कुछ) पढ़ता था तो किसी क्षण वह चिन्तन करता हुआ मृत के समान हो जाता था। क्षण भर में वह नाचने लगता था तो क्षण भर में खड़ा होकर दौड़ने लगता था। क्षण भर में अन्न का ग्रास खड़े-खड़े खा लेता था, तो क्षण भर में लोटने लगता था, क्षण भर में अपना वेस छोड़ देता था, तो क्षण भर में पैर पसार कर वह बार-बार रोने लगता था। इस

---

(1) 1. अ. गरि। 2. ब. °हु।

(1) (1) यस्य प्रचुर सहाया:। (2) मानससरोवरस्य।

एम गाम-णयर-कव्वडु भमंतु सो कंचणपह राणियहे कंतु।
विहि संजोएण कोसल पइट्ठु धाइए सउहलय ठियाएँ दिट्ठु।
ऊलक्खिवि वाहुब्भ[3]रिय णयणु सों पुंछइ सो कंचणपह सुवयणु।
हे माइ-माइ तुहु रुवहि काइ भणु हिय उल्लइ दुक्खाइँ जाइ।
एत्थंतरे धाइ भणिउ पुत्ति संसारि विसम फुडु[4] दइव जुत्ति।

घत्ता— कय कम्मह एक्कहँ जम्महँ जम्म सहासु वि सीसइ।
भव[5] परिणइ दुक्खहो गइ [3]सए पच्चक्खु वि दीसइ।। 107।।

(2)

कंचणरहु जो तुह आसि कंतु सो दिट्ठउ मइँ रच्छहे भमंतु।
गले घल्लिउ जक्खं थरय-खंडु चिर फरुस सीसु णिव्वाय तुंडु।
मल-मलिण दसणु जय-कय विराउ विरहग्गि दट्ठु धूसरिय काउ।
ता णिब्भंछिय[1] कंचणपहाए किं जंपहि असुहावणउँ माए।
सो धीरु-वीरु कुसुम-सर (य) तुल्ल तहो धड इव किं एरिसउ बोल्ल।

प्रकार ग्राम, नगर, खर्वटों में घूमता हुआ "भो कंचनप्रभा", भो कंचनप्रभा चिल्लाता हुआ रानी कंचनप्रभा का पति वह कनकरथ विधि (भाग्य) के संयोग से उसी कोशलपुरी में प्रविष्ट हुआ। उसे सौधतल पर स्थित एक धाय ने देखा।

उसे देखकर उस धाय के नेत्रों में आँसू भर आये। रानी कंचनप्रभा ने उससे पूछा—"हे माता, हे माता, तू क्यों रोती है। तेरे हृदय में भरे हुए जो दु:ख हैं उन्हें कह।" यह सुनकर धाय ने कहा—"हे पुत्रि, संसार में दैव की युक्ति सचमुच ही बड़ी विषम है।"

घत्ता— "एक जन्म का किया हुआ कर्म हजारों भवों तक भोगना पड़ता है। भव की परिणति ही दु:खों की गति है, सो यहाँ प्रत्यक्ष ही दिखायी दे रही है।। 107।।

(2)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) अपने प्रियतम कनकरथ की दु:स्थिति रानी कनकप्रभा राजा मधु को सुनाती है

"......कंचनरथ जो तुम्हारा पहला पति था, उसे मैंने गली में घूमते हुए देखा है। जो अपने गले में कथरी का टुकड़ा लटकाये हुए है, सिर के बाल चिरकाल से रूखे हो रहे हैं तथा मुख कान्तिहीन हो रहा है। उसके दाँत मल से मलिन हैं तथा जो अस्वाभाविक बोली बोल रहा है। धूलि-धूसरित वह विरहाग्नि से जल रहा है। यह सुनकर कंचनप्रभा ने उस धाय को डाँटते हुए कहा—"हे माई, ऐसे असुहावने शब्द क्यों बोल रही है? मेरा पहला पति तो धीर-वीर एवं कामदेव के तुल्य है। उसको धीठ की तरह इस प्रकार के बोल क्यों बोल रही हो?"

---

(1) 3. अ. सुणि।

(1) (3) प्रवाह। (4) कर्मयुक्ते। (5) संसार परिणति।

(2) (1) निरस्कृत।

ता धाइए मंचोवरि ठियाइँ.... दक्खालिउ पुणरवि सो वि ताहें।
दिट्ठउ जाणिउँ कंचणपहाए बुच्चइ एहु जि सो माइ-माइ।
हा पिय-पिय महु विरहाणलेण एवड्डो वत्थहिं गयउ तेण।
हउँ पाविणि णिवडे समि तमाले जं वंचिउ पिउ [1]णव पणय-काले।
घत्ता— महुराणउँ ण उण्णयमाणउँ तहिं अवसरे संपत्तउ।
कंचणपह णिय-पिययम कह जंपइ तहि भड जुत्तउ।। 108।।

(3)

आरत्तिउ लोणुत्तणउँ.... पयडवि पडिवत्ति स वारणउँ।
जा ठिय कंचणपह देवि खणु तलवरहो भिच्चु तावेक्क खणु।
आवेप्पिणु णरवइ विण्णवइ पणवेप्पिणु तेणि बुच्चइ णिवइ।
णरु एक्कु देव बंधिवि धरिउ परयार करणु तें आयरिउ।
अच्छइ दुवारे भणु किं करमि किण्णि हणमि किं अज्जुवि धरमि।
णरणाहु पयंपइ मा धरउ उब्भुब्भु तिक्ख-सूलिहिं भरहु।
[1]राणियए पतुच्चइ करि म कोहु परयारह सामिय कोवि गेहु।

तब मंच के ऊपर बैठी हुई धाय ने उस राजा (कनकरथ) को रानी के लिये पुनः दिखलाया। कंचनप्रभा ने जैसे ही उसे देखा तो पहचान लिया और बोली—"हे माई, हे माई, यह तो वही है। हा प्रिय, हा प्रिय, मेरे विरहानल से तू ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हो गया है। मैं पापिनी तो ऐसे तमाल (भयानक अन्धेरे) में आ पड़ी हूँ। हे प्रियतम, मैं तो नव-प्रणय-काल में ही ठग ली गयी हूँ।

घत्ता— (संयोग से) उसी समय उन्नत मान वाला वह राजा मधु अपने भटों सहित वहाँ आ पहुँचा। तब कंचनप्रभा ने उसे अपने प्रियतम की (व्यथा-) कथा कह सुनायी।। 108।।

(3)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में-) परस्त्री-सेवन के अपराधी को शूली की सजा (सुनाये जाने) से रानी कनकप्रभा राजा मधु पर क्रोधित हो उठती है

लोण समान मधुर राजा मधु के प्रति आसक्ति प्रकट कर वह अनुरागिनी रानी कंचनप्रभा- देवी जब बाहिरी छज्जे पर खड़ी थी, उसी समय तलवर (कोतवाल) का एक भृत्य (वहाँ) आया और नरपति (मधु) को प्रणाम कर उससे विनयपूर्वक बोला—"हे देव, मैंने आज एक मनुष्य को बाँध कर पकड़ा है। उसने परदारकरण (परस्त्री गमन) किया था। वह द्वार पर स्थित है, कहिए क्या उसे मार दूँ अथवा अभी पकड़े ही रहूँ?" तब नरनाथ ने कहा—"पकड़े ही मत रहो, उसे (तत्काल) ऊपर की ओर खड़ी हुई तीखी शूली पर चढ़ा दो।" (यह सुनकर) रानी ने पति राजा मधु से कहा—"क्रोध मत कीजिए, क्योंकि इस घर में भी तो परदारा-सेवी कोई स्वामी (उपस्थित) है?" आगे वह रामा (-कंचनप्रभा) राजा से पुनः बोली कि परदारगमन यदि (भयंकर) दोष है, (और

---

(2) 1. अ. मय।

(3) 1. अ. राणिय एवतुच्चइ न करहु कोहु।

ता राउ पयंपइ रामणेण दुहु पत्तु भुवण संतावणेण।
पिय भणइँ दोसु परयार जइवि भणु किण्ह देव तुम्हह ण तइवि।

घत्ता— कंचणपह वयणहिं पउलिय णयणहिं थि[2]उ णरवइ तुण्हिक्कउ।
अद्धुव जगु भाविवि मणि परिभाविवि णं भव-पासहिं मुक्कउ।। 109।।

(4)

एम अप्पउ णिंदइ जाम राउ विसयाहिलास विरइय[(1)] विराउ।
जिण भणियउं जाउ [(2)]सुपावणाउ चिंतइ णिरु बारह-भावणाउ।
ता भव्व पवर कइरव सुचंदु णामेण विमलवाहणु मुणिंदु।
मज्झण्हयाले रिया णिमित्तु जा भवियायण पंकरुह मित्तु।
सो णियवि[1] चिंतिय सिवेण णियमणि परिभाविवि पत्थिवेण।
उट्ठिवि वंदिउ सव्वायरेण पुणु भणिउ णिरु सविणय गिरेण।
सुणि परमेसर मुणि-गण पहाण तव-णियम-सील-संजम णिहाण।
तवयरण अज्जु महो देहि सामि भो मोक्ख महापुर मग्ग गामि।

उसके लिये तलवर द्वारा पकड़ा हुआ) वह व्यक्ति भुवन में सन्ताप देने वाला दु:ख भोगे (अर्थात् शूली प्राप्त करे) तो फिर हे प्रिय, आप ही कहिए, कि वही दु:ख आप क्यों न भोगें?"

घत्ता— कंचनप्रभा के वचनों को सुनकर वह राजा (मधु) नेत्र निमीलित किये हुए चुपचाप रहा और जगत की अध्रुव—(अनित्य) भावना को मन में उतार कर उस ने अपराधी को मुक्त कर दिया। मानों वह स्वयं ही भव-पाश से मुक्त हो गया हो।। 109।।

(4)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में—) राजा मधु को वैराग्य, उसने मुनिराज विमलवाहन से दीक्षा माँगी

वह राजा मधु जब आत्म-निन्दा कर रहा था, तभी विषयाभिलाषा से विरत होकर उसने वैराग्य धारण कर लिया जिनोक्त जो पवित्र अध्रुवादि बारह भावनाएँ हैं उनका वह चिन्तन करने लगा। उसी समय भव्य कमलिनियों के लिए चन्द्रमा के समान तथा भविकजन रूपी कमलों के लिए सूर्य के समान विमलवाहन नामके मुनीन्द्र मध्याह्नकाल में चर्या निमित्त पधारे। आत्म-कल्याण का चिन्तन करने वाले उस चतुर पार्थिव ने अपने मन में भावना भाकर (वहाँ से) उठकर सभी प्रकार के आदरपूर्वक उनकी वन्दना की और सविनयवाणी में निवेदन किया—"तप, नियम, शील एवं संयम के निधान, मुनिगण में प्रधान हे परमेश्वर, सुनिए—मोक्षरूपी महापुर के मार्ग में गमन करने वाले हे स्वामिन्, मुझे आज ही तपश्चरण (दीक्षा) दीजिए।"

---

(3) 2. अ. ठिं।

(4) 1. अ. म्प॑।

(4) (1) त्यजभिक्षिलावैरागतंत.। (2) जया।

घत्ता— णय-विणय विसिट्ठउ भाइ कणिट्ठउ कयडिहु रज्जि ठवेप्पिणु।
उज्झाउरि राणउँ भुवणि पहाणउँ समभावण भावेप्पिणु।। 110।।

(5)

संसार-जलहि उत्तरण कूले जइ पुंग[1]मसु तहो पाय-मूले।
तवयएणु लइउ महुराणएण धम्मत्थ-काम सु वियाणएण।
जिम महुरायइँ कंचणपहाउ वउ पडिवण्णउँ कंचणपहाइँ।
राएण राउ मउ-माणु चत्तु समभावए मण्णिउँ सत्तु-मित्तु।
तिणु कंचणु पुणु मणि तुल्लु दिट्ठु णवि रूसइ-अह ण कयावि हि[2]ट्ठु।
णिरु पंचमहव्वय-भार धरणु णिज्जिणिउ जेण पंचविहु करणु।
समिदीउ-पंच पालइ अतंदु गुत्तित्तय माहइँ फुडु सुकंदु।
जसु भउ ण-माणु-मच्छरु ण हरिसु सज्झायज्झाणु णिय मणहो हरिसु।

घत्ता— तरुमूले घणागमे विसइ दुद्दमे जलधारा णिरु तडि वडणु।
पुणरवि सिसिरहो भरे अइणिरु दुद्धरे णिमिहि चउप्पहे हिम [3]पडणु।। 111।।

घत्ता— भुवन में प्रधान अयोध्यापुरी का नय-विनय (न्यायनीति) में विशिष्ट वह मधु राजा अपने कनिष्ठ भाई कैटभ को राज्य में स्थापित कर समभाव की भावना भाने लगा।। 110।।

(5)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में—) राजा मधु एवं रानी कनकप्रभा का दीक्षा ग्रहण एवं कठिन तपश्चर्या

संसार समुद्र से पार उतरने के लिए तट समान उन यति पुंगव के चरणमूल धर्म, अर्थ एवं काम के सुविज्ञाता उस राजा ने तपश्चरण ले लिया। जैसे ही राजा मधु ने तप ग्रहण किया, वैसे ही कंचन के समान प्रभावाली उस कंचनप्रभा ने भी व्रत स्वीकार कर लिये।

राग, मद, मान आदि सभी का उस राजा ने त्याग कर दिया तथा शत्रु एवं मित्र को समभाव से माना। पुनः उन्होंने अपने मन में तृण एवं कांचन को एक समान देखा। न कभी वह रूठता था और न प्रसन्न होता था। उस राजा ने भली-भाँति पंच-महाव्रतों को धारण कर लिया और पाँचों ही इन्द्रियों को जीत लिया। अतन्द्र (प्रमाद रहित) पंच समितियों का पालन किया, मोक्ष की मूल तीन गुप्तियाँ पालीं। जिसके न तो भय था और न मान ही, न तो उनके मत्सर था और न हर्ष ही। वे मन लगाकर हर्ष पूर्वक स्वाध्याय एवं ध्यान करते रहते थे।

घत्ता— दुर्द्दम घनों के आगमन पर (वर्षा ऋतु में) तरु के मूल में बिजली चमकती तड़-तड़ पड़ती जलधारा को सहते थे (अर्थात् वे वर्षा योग करते थे) पुनरपि शिशिर के भार युक्त शीतकाल की अति दुर्धर रात्रि में वे चतुष्पथ में हिमपतन को सहते थे (अर्थात् शीति योग करते थे)।। 111।।

---

(5) 1. अ °षा°। 2. अ. °दि। 3. अ. व।

(6)

गिंभयाले खर किरणायावणु विसहइ महु गिरि-सि[1]रि [2]सममणु।
पक्खोवास-मास उववासहिँ एम वावीस परीसहो सामहिँ।
तणु खामिउ जल्ल-मल्ल बिलित्तउ ठिउ चम्मट्ठिवि सेसु णिरुत्तउ।
अंतयाले सण्णास [3]मरेप्पिणु चउविह आराहण भावेप्पिणु।
परम पंच-णवयार सरेप्पिणु मुणि-पंडिय मरणेण मरेप्पिणु।
अच्चुव-[4]कप्पे हुवउ सो सुरवरु सहज सु कडय-मउड-कुंडलधरु।
णिय तणु-तेउ हणिय उडु-पहु मोहि पवरामर अच्छरसहु।
एम तहो सुर [5]सोक्खइँ भुंजंतहो अच्चुव सग्गें णवर अच्छंतहो।

घत्ता— एत्तहिँ कोसलपुरे कंचणमय घरे रज्जु करइ कयडिहु वि जहिँ।
[6]सो एक्कहिँ वासरे गयउ महासरे पंकयवणे कमलेक्क तहिँ।। 112।।

(7)

दिट्ठउ रायइँ रवि उदय काले महुलिहु पइट्ठु जो[(1)] तहिँ वियाले।

---

(6)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन प्रसंग में–) घोर तपस्या कर मुनिराज मधु अच्युत देव हुए।
राजा कैटभ ने एक सरोवर में कमल पुष्प देखा

वह मधु (मुनि) ग्रीष्मकाल में गिरि शिखर पर सम-मन से तीखी सूर्य-किरणों का आतापन सहता था (आतापन योग)। पक्ष के उपवास एवं मास के उपवास करता था। इसी प्रकार समभावों से बाईस परीषह सहता था। उसका शरीर कृश तथा जल्ल (स्वेद) एवं मल से लिप्त हो गया। उसकी चमड़ी और हड्डी शेष रह गयी। वह तपस्वी मुनि अन्तकाल में संन्यास मरण करके चार प्रकार की आराधना भाकर परमपंच-णमोकार को स्मरण कर पण्डित-मरण से मरा। फलस्वरूप वह अच्युत कल्प में सहज सुकटक, मुकुट एवं कुण्डल धारी सुरवर हुआ। अपने शरीर के तेज से उसने उडु प्रभा (तारा कान्ति) को भी तिरष्कृत कर दिया। इस प्रकार प्रवर अप्सराओं के साथ मोहित वह देव अच्युत स्वर्ग में सुख भोगता हुआ आनन्द पूर्वक रहने लगा।

घत्ता— इधर, कंचनमय घरों वाले कोसलपुर में जहाँ वह कैटभ राज्य कर रहा था, वहाँ एक दिन वह (कैटभ) महासरोवर पर गया, जहाँ उसने पंकजवन में एक कमल-पुष्प देखा।। 112।।

(7)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में–) राजा कैटभ की मुनि-दीक्षा एवं अच्युत स्वर्ग-गमन

सूर्योदय (प्रभात) काल में राजा कैटभ ने देखा कि उस कमल-पुष्प के बीच में एक मधुलिह (भ्रमर) प्रविष्ट हो गया है और सन्ध्या-काल में कमल के संकुचित होने पर वह वहीं स्थित रहकर मर गया है। उस मृत भ्रमर

---

(6) 1. ब. सिहरे। 2. अ. एयम्मणं; ब पयथम्मणु। 3. अ क। 4. अ सग्गेहु। 5. अ. °य। 6. ब. °भो°।

(7) (1) कमले।

संकुइय कमले सो ए[(2)] विवण्णु तं पेच्छिवि महिवइ मणि णि[1]विण्णु।
घाणिंदिय लुद्धइँ छप्पएण णिय-मरणु ण याणिउँ जिम अणेण।
तिम अवर वि विसयासत्त एम णिच्छउ मरंति अलि मुअउ जेम।
इय चिंतिवि झत्ति णेरसरेण णिहणिय दुज्जय वम्मीसरेण।
ढोएवि रज्जु णिय णंदणासु अप्पुणु गओ तहो महमुणिहिं पासु।
अ[2]णुसरिय तेण जिणणाह दिक्ख [3]मुणिणाहहो केरी परम-सिक्ख।
किय सव्व संग-परिचायएण तवयरणु घोरु आढत्तु तेण।

घत्ता— तेम कियउ कणिट्ठें जम चिरु जेट्ठें तउ-संजमु-चारित्तु वउ।
सा कइडिहु राणउँ भुवणे पहाणउँ आउसंति अच्चवहो गउ।। 113।।

(8)

तव-णियम पहावइँ अरुह-मग्गे ते बिण्णि विट्ठिय सोलहमे सग्गे।
जो कंचणरहु वडउर पहाणु कंचणपह विरह विमुक्क ठाणु।
सो भवे-भमंतु तावस तवेण पंचग्गि-विसम विसहेवि तेण।
उप्पाइवि असुरकुमारु जम्मु जीवहो अइदुद्धरु राय[(1)]-कम्मु।

को देखकर महीपति कैटभ का मन वैराग्य से भर उठा (और विचारने लगा कि) जिस प्रकार घ्राणेन्द्रिय के लोभी इस भ्रमर ने अपना मरण नहीं जाना, उसी प्रकार अन्य अनेक विषयासक्त प्राणी भी उसी भ्रमर के समान मर जाते हैं। यह चिन्तनकर उस नरेश्वर कैटभ ने दुर्जय कामदेव को नष्ट कर तथा अपने नन्दन को राज्य देकर वह स्वयं महामुनीन्द्र के पास चला गया। वहाँ उसने मुनिनाथ से परम शिक्षाएँ सुनकर जिन-दीक्षा का आश्रय ले लिया। उसने सर्वपरिग्रह का त्याग कर घोर तपश्चरण प्रारम्भ कर दिया।

घत्ता— उस कनिष्ठ कैटभ ने उसी प्रकार तप, संयम एवं चारित्र व्रत का पालन किया, जिस प्रकार कि पूर्व में उसके बड़े भाई मधु ने किया था। भुवन में प्रधान वह कैटभ मुनि की आयु के अन्त में अच्युत नामके सोलहवें स्वर्ग में गया।। 113।।

(8)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) राजा कनकरथ मरकर तापस एवं उसके बाद असुर कुमार देव तथा रानी कंचनप्रभा मरकर विद्याधर-पुत्री हुई

अरहन्त मार्ग में तप-नियम के प्रभाव से वे दोनों (मधु एवं कैटभ) ही सोलहवें स्वर्ग में स्थित हुए। वटपुर का प्रधान जो राजा कंचनरथ था, उसने रानी कंचनप्रभा के विरह के कारण स्थान छोड़ दिया (अर्थात् सद्गति प्राप्त नहीं कर सका)। संसार में अनेक गतियों में भटककर वह एक तापस हुआ। उसने विषम पंचाग्नि तप तपा जिसके प्रभाव से उसने असुर कुमार का जन्म पाया।

इस जीव का राग कर्म (मोह कर्म) अत्यन्त दुर्धर है। वह दृढ़ बाहुदण्ड वाला अति प्रचण्ड धूमध्वज नामका

---

(7) 1. अ., ब. णिलुण। 2. ब. आल। 3. ब. 'सु।

(7) (2) तत्रस्थितवामृत:।

(8) (1) हे चक्रवर्ति।

सो[2] भमइ भुवणे दिट्ठु वाहुदंडु　　धूमद्धउ णामें अइपयंडु।
जा कंचणपह चिरु तासु घरिणि　　णयणेहिँ परज्जिय बालहरिणि।
तउ करिवि सावि कालंतरेहिँ　　उप्पण्णिय भमिवि-भमंतरेहिँ।
वेयड्ढहो दाहिण-दिहि विभाइ　　विज्जाहर-सेढिए णिरुवमाए।

घत्ता— सीहउर रवण्णए धण-कण पुण्णए सूरप्पह विज्जाहरहो।
राणियहे सुणेत्तहे ससहर-वत्तए दुहिय जाय सुरकरि करहो।। 114।।

(9)

सा तार-तरल लोयण विसाल　　अहिहाणएँ जा जगि कणयमाल।
विज्जाहर-पइ परमेसरेण　　परिणिय घणकूड[1]-णरेसरेण।
णामेण कालसंवर णिवेण　　णिय-परियण सय णिच्छिय[2] सिवेण।
णंदण-वण-घण कीलंति खयरि　　जा मज्झहिँ तहिँ घणकूड णयरि।
ता महु संठिउ जो अरुह-मग्गे　　संजायउ सुरु सोलहमि सग्गे।
सो अच्चुव-कप्पहो चएवि आउ　　महुमहेण गब्भि रुविणिहिँ जाउ[3]।
जो कइडिहु सो जंवइ आहिँ　　होसइ पच्छइ हरिहि वि पियाहे।

असुर (तापस का जीव) भुवन में भटक रहा है। उस राजा कनकरथ की अपने नेत्रों से बाल हरिणी को भी पराजित कर देने वाली गृहिणी कंचनप्रभा ने भी तपस्या की और कालान्तर में मरी, पुनः अनेक भवों में भ्रमणकर विजयार्ध की दक्षिण दिशा में प्रभावाली निरुपम विद्याधर श्रेणी में उत्पन्न हुई।

घत्ता— धन-धान्य से पूर्ण एवं रम्य सिंहपुर के ऐरावत हाथी की सूँड के समान भुजाओं वाले सूरप्रभ विद्याधर की सुन्दर नेत्रवाली तथा कमलमुखी रानी की वह पुत्री हुई।। 114।।

(9)

(प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में—) राजा मधु के जीव का कृष्ण-पत्नी रूपिणी के पुत्र रूप में जन्म एवं छठवें दिन असुर द्वारा उसका अपहरण

उन्नत, चंचल एवं विशाल नेत्रों वाली वह (विद्याधर) कन्या जग में कनकमाला के नाम से प्रसिद्ध हुई और विद्याधरों के स्वामी घनकूट के परमेश्वर-नरेश्वर से उसका विवाह कर दिया गया। उस घनकूट नरेश्वर का नाम कालसंवर था। जो अपने सैकड़ों परिजनों को निश्चित रूप से शिव (कल्याण, सुख) देने वाला था। मेघकूट नगर के घने नन्दन-वन में जब वह विद्याधर, विद्याधरियों के साथ क्रीड़ाएँ कर रहा था उसी बीच में अरहन्त-मार्ग में स्थित जो पूर्ववर्त्ती तपस्वी राजा मधु था और जो (पण्डित मरण कर) सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ था, वह अच्युत स्वर्ग से चयकर आया और मधुमथन (पति से) रूपिणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ। कैटभ (का जो जीव मुनि होकर सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ था वह) भी वहाँ से चय-कर हरि की प्रिया जाम्बवती के गर्भ से बाद में पुत्र के रूप में उत्पन्न होगा।

---

(8) (2) असुर

(9) (1) मेघकूटपुर। (2) वांछित सौख्येन। (3) उत्पन्न.।

रुविणिहे वालु पज्जुण्णु णामु   पच्चक्खु वि जो अवयरिउ कामु।
सा छट्ठिहिं रयणिहिं दाणवेण   णह-जाण खलणु जाणियउँ तेण।
घत्ता— धूमद्धय णामइँ अतुलिय[(4)] थामइँ भवि कंचणपह कंतए।
णिउ[(5)] वालु हरेप्पिणु करइ करेप्पिणु पच्छिम वइरु सरंतइँ।। 115।।

(10)

पज्जुण्णहो असुरहो जं लक्खिउ   एहु कारणु वि विरोहहो अक्खिउ।
पुणु चक्केसरु भणइ जिणेसरु   दिव्व-वाणि पयडहि परमेसरु।
तहो ठायहो वि कुमारु चलेसइ   जणणिहि कइ वासरहो मिलेसइ।
कहइ जिणेसरु लद्धुक्करिसइ   वोलीणहमि दु[1]अट्ठह वरिसइ।
दिव्वलाहु सोलह संजुत्तउ   वहु विण्णाण-विज्जा-वलवंतउ।
पंगु वि कुंद-मंद बहिरंधल   सयल सुचक्कवंत णिरु पंजल।
सुक्क वि तरु फल-कुसुम समिद्धइँ   होसहिं तहो आगमणि सणिद्धइँ।
वा संसउ वामच्छि फुरेसइ   इए चि[2]ण्हहिं रुविणि घरु एसइ।
सा पज्जुण्णु कुमारु महाभडु   को पडिखलइ समरे जस-लंपडु।

उस रूपिणी के बालक का नाम प्रद्युम्न था, प्रत्यक्ष में ऐसा प्रतीत होता था, मानों कामदेव ही अवतरा हो। उसके जन्म की छठी रात्रि में एक दानव का नभोयान उसके ऊपर अटक गया।

घत्ता— अतुलित बलवाले धूमध्वज नाम के उस असुर ने पूर्वभव की कान्ता कंचनप्रभा के सम्बन्ध से पूर्व-बैर का स्मरण किया और उस बालक को अपने हाथों से हरकर ले गया।। 115।।

(10)

विदेह क्षेत्र में प्रद्युम्न का पूर्व-वृत्तान्त एवं वर्त्तमान उपस्थिति जानकर नारद मेघकूटपुर पहुँचता है

(सीमन्धर स्वामी चक्रेश्वर-पद्म से कहते हैं कि—) "इस प्रकार मैंने प्रद्युम्न और असुर के विरोध का जो कारण देखा, वही कहा है।" यह सुनकर उस चक्रेश्वर ने जिनेश्वर से पुन: पूछा—"हे परमेश्वर, दिव्य वाणी से यह भी प्रकट कीजिए कि वह कुमार (प्रद्युम्न) उस स्थान से कब चलेगा और अपनी माता से कितने वर्षों के बाद मिल पायगा?" तब जिनेश्वर ने कहा—"वह कुमार सोलह दिव्य-लाभों से युक्त तथा विविध विज्ञान एवं विद्याओं से बलवान होकर 16 वर्षों में उत्कर्ष को प्राप्त कर लौटेगा। उसके आगमन से लंगड़े (पैर के), लूले (हाथ के), मंद (मन्द बुद्धि) बहिरे एवं अन्धे आदि सभी प्राणी सुन्दर गति वाले तथा सरल, प्रांजल और भली-भाँति देखने, सुनने वाले हो जायेंगे। सूखे वृक्ष भी फल पुष्पों से समृद्ध और स्निग्ध हो जायेंगे। जब वह बालक विष्णु और रूपिणी के घर आयेगा तब नि:सन्देह ही रूपिणी की बायीं आँख फड़केगी। वह प्रद्युम्न कुमार तो महाभट है। यश का लम्पटी कौन व्यक्ति उसे समर में हरा सकता है?"

(9) (4) प्रचुरबलेन। (5) नीत.।

(10) 1. अ. ज्झट्ठहं। 2. ब. वि°

इय णिसुणेवि णिव हत्थुत्तरियउ जिणु पणववि णारउ णीस[3]रियउ।

घत्ता— मेहकूडि पुर पत्तउ हरिसु वहंतउ तहिं पज्जुण्णु वि दिट्ठउ।
दीहर णयण विसालहे कंचणमालहे वर उच्छंगे णिविट्ठउ।। 116।।

(11)

अवलोएवि आसीवाउ देवि णीहरियउ सइँ दिट्ठउ करेवि।
गउ पुरि बारमइहिं तक्खणेण सुच्छाह सइत्तइँ णियमणेण।
रूवि राउले सो मुणि पइट्ठु दिण्णासणे पणवंतहँ बइट्ठु।
रूवाएविए पय-गय सिराएँ पुणु पणविउ सो गग्गिर गिराएँ।
पुंछिउ पाय-पक्खालणु करेवि अग्घंजुलि कम-कमलहँ धिववि।
मुणि भणइँ माइ पुहविहि रवण्ण पइँ मेल्लिवि अवर ण णारि धण्ण।
जिणि जाणियउ सो सुंदरु कुमारु अवयरियउ जो इह भुवण मारु।
तुह तणउँ वालु मइँ दिट्ठु अज्जु जो होसइ अरि-गिरिदलणु-वज्जु।
पासाय-कलस णह लग्गे चूडे वेयड्ढहो दाहिणे मेहकूडे।

यह सुनकर राजा चक्रेश्वर के हाथ से उतरा हुआ वह नारद जिनेन्द्र सीमन्धर स्वामी को प्रणाम कर वहाँ से निकला।

घत्ता-- हर्षित होकर वह नारद मेघकूटपुर जा पहुँचा और वहाँ उसने दीर्घ एवं विशाल नेत्र वाली कंचनमाला की गोद में बैठे हुए उस प्रद्युम्न को देखा।। 116।।

(11)

नारद ने रूपिणी को बताया कि प्रद्युम्न मेघकूटपुर के विद्याधर राजा कालसंवर के यहाँ सुरक्षित है

नारद उस प्रद्युम्न को देखकर, आशीर्वाद देकर उसे स्वयं दृष्ट करके (अर्थात् स्वयं ही सारी परिस्थितियाँ समझकर) वहाँ से निकला। अपने मन में सैकड़ों उछाहों के साथ वह नारद तत्क्षण द्वारावती पुरी पहुँचा। वह मुनि रूपिणी के राजमहल में प्रविष्ट हुआ और प्रणाम करके दिये गये आसन पर बैठा। रूपिणी ने चरणों में सिर झुकाकर पुनः उसे प्रणाम किया। चरण पखारकर तथा चरण-कमलों में अर्घ्यांजलि प्रदान कर गद्गद् वाणी से प्रद्युम्न सम्बन्धी समाचार पूछने पर मुनि ने कहा—"हे माई, तू पृथिवी में रम्य है। तुझे छोड़कर अन्य कोई नारी धन्य नहीं हो सकती। जिनेन्द्र ने बताया है कि वह कुमार बड़ा सुन्दर है। वह ऐसा प्रतीत होता है मानों इस संसार में कामदेव का ही अवतार हुआ हो। हे आर्ये, तेरे बालक को मैंने देखा है। वह शत्रु रूपी पहाड़ों का दलन करने के लिए वज्र के समान होगा। वह विजयार्ध की दक्षिण दिशा के मेघकूट नामक नगर में है। जहाँ के प्रासादों के कलशों के चूड़े (शिखर) आकाश को छूते हैं।

---

(10) 3. ब 'ह'।

घत्ता— तहि पट्टण अरिदल वट्टणे राय कालसंवरहो घरे।
सो पुत्तु तुहारउ णयण पियारउ दंसुव सोहइ कमलसरे।। 117।।

(12)

भुणि भणइ सुणि रूवि[1] आय[2]णि महावयणु तुह तणउँ भुवणम्में अवयरिउ [3]णर-रयणु।
जसु [4]गणउ [5]झस णिवहु तित्थयर वणंति चरम-तणु सिव गमणु भणिऊण मणंति।
वहु विज्जलाहेण संजुत्तु संभवइ सोलहमि वरिसम्मे आऊण तुह मिलइ।
बलहद्द-महुमहण एयंपि सुणिऊण सलहंति मुणि-वयणु सिर कमलु धुणिऊण।
अवरे वि जे चिण्ह जिण भणियउ उवएस ते कहिय णारेण रुविणिहि सुविसेस।
सवाण णिय मणहो संतोसु संजणेवि पुणु कहमि संचलिउ मुणि झत्ति दुहु हणेवि।
सो बालु पज्जुण्णु घरे कालसंवरहो वड्ढइव ससिकलह-कलु जेम अंबरहो।
उत्तुंग-धण-कढिण-पीउ-थणालाण हत्थेव-हत्थोवि संचरइ बालाण।

घत्ता— अरिदल को नष्ट करने वाले उस (मेघकूटपुर) पट्टन में राजा कालसंवर के घर में नेत्रों को प्रिय लगने वाला दर्शनीय एवं सरोवर में खिले हुए कमल के समान तुम्हारा पुत्र सुरक्षित है।। 117।।

(12)

नारद ने प्रद्युम्न की कुशलता की सूचना रूपिणी को देकर उसे सन्तुष्ट कर दिया। प्रद्युम्न का शैशव-वर्णन

मुनि ने कहा—"हे रूपिणी, सुन, मेरे वचन ध्यान पूर्वक सुन! तुम्हारा पुत्र भुवन के मध्य नर-रत्न के रूप में अवतरा है। जिसे गणक-जन झषनृप (मीनराज—कामदेव) कहते हैं तथा जो "तीर्थंकर वर्ण वाला है", 'चरमशरीरी है', 'शिवगामी है', ऐसा कह कर मानते हैं। वह विविध विद्याओं से युक्त होगा और सोलहवें वर्ष में आकर तुमसे मिलेगा।"

बलभद्र और मधुमथन ने जब यह सुना तो वह अपना सिर चरण-कमलों में झुका कर उन मुनि वचनों की श्लाघा करने लगे, और भी जो चिह्न, जिनेन्द्र ने उपदेश में कहे थे, उन्हें नारद ने रूपिणी से विशेष रूप से कहा। वर्णन करने योग्य नारदमुनि उस रूपिणी के मन में सन्तोष उत्पन्न कर तथा उसके दुःखों को नष्ट कर तत्काल ही वहाँ से अन्यत्र ही चला गया।

वह बालक प्रद्युम्न कालसंवर (राजा) के घर में इस प्रकार बढ़ने लगा, जिस प्रकार आकाश में कलाधर चन्द्र की कला।

वह बालक उत्तुंग कठोर एवं सुपुष्ट स्तनों वाली युवतियों के हाथ में खेलता हुआ संचरण करता था।

(12) 1. ब रु। 2. अ अप्पु। 3. अ न'। 4. अ तणउँ। 5 अ. ज.

घत्ता— कंचणमालहे घरे रइउ विविह परिकंचणमउ तेहँ पालणउँ।
कंचण-कडिसुत्तहो रयण विचित्तहो वालहो मणिमउ खेलणउँ।। 118।।

(13)

दिवे-दिवे उडु-णाहुव वड्ढंतहो छुडु-छुडु पंच-वरिस संपत्तहो।
रायइँ पाढणत्थे तहो वालहो सरल-कमल-दल-णयण विसालहो।
विज्जाहर वरसत्थ-वियाणा मेहकूडे पुहय-णह-पहाणा।
पज्जुण्णहो कारणे आणंतो जे यहु बुद्धिवंत उवसंता।
ताहँ पुरउ सो गुणइ णिरुत्तउ लिहइ-पढइ जं [1]सत्थि उत्तउ।
सिक्खइ उरिउ गंथ अवगाहइ [2]छंदु णिहंटु तक्क जं साहइ[3]।
होइ असेस गुणइ अब्भासइ णीसेस वि विण्णाण वियासइ।
हरि-करि आरोहणइँ विसिट्ठइँ [4]जोइस-गह-गणिमाइमि [5]सिट्ठइँ।
जुज्झइँ जाइ मल्ल रण जुत्तइँ कत्तरि-करण [6]बंध संजुत्तइँ[7]।

घत्ता— रानी कंचनमाला के घर में उस बालक के लिए विविध मणि कंचनमय पालना रचा गया। रत्नों से विचित्र कंचनमय कटिसूत्र धारण किये हुए उस बालक के खिलौने भी मणिमय थे।। 118।।

(13)
कुमार प्रद्युम्न की शिक्षाएँ

दिन प्रतिदिन उडुनाथ चन्द्र की तरह शनैः शनैः बढ़ता हुआ वह बालक पाँचवें वर्ष को प्राप्त हुआ। तब सरल स्वभावी, कमलदल के समान विशाल नयनों वाले उस बालक प्रद्युम्न को पढ़ाने के निमित्त राजा कालसंवर द्वारा मेघकूटपुर के शास्त्रार्थ-विज्ञानी तथा पृथिवी एवं आकाश-विद्या (अर्थात् भूगोल, खगोल एवं गणित) में प्रधान विद्याधर-पण्डितों को बुलाया गया जिससे कि वह बुद्धिमान उपशान्त प्रकृति का बन जाये।

उन पण्डितों के सामने वह ठीक-ठीक गुणने लगा (अर्थात् गुणनवाला गणित बनाने लगा), जो शास्त्रों में कहा गया है, वही लिखने, पढ़ने तथा सीखने लगा। छन्दशास्त्र, निघण्टु एवं तर्कशास्त्र जो भी उसे पढ़ाये जाते थे उन सभी ग्रन्थों का वह हृदय में अवगाहन करने लगा। उसे समस्त गुणों का अभ्यास हो गया तथा समस्त विज्ञान का विकास हो गया। हरि (घोड़ों) पर चढ़ना तथा हाथी पर चढ़ना भी सीख लिया। नक्षत्रादि-ग्रह-गणित भी सीख लिया। बन्ध—छन्द-बन्ध, (कविता बनाना) तथा कर्त्ता-करण आदि व्याकरण (अथवा कर्तन-करण सम्बन्धी कृषि-विद्या) मल्लयुद्ध तथा रण-युक्ति विद्या भी सीख ली।

(13) 1. अ. सच्छब्भंतरु। 2-3. अ. छंदु णिहंटु कोवि ण सीहइ। 4. भंडम। 5. अ. दि.। 6-7. अ. बंध जुत्तह।

घत्ता— एयमि असेसइँ अइ सुविसेसइँ अवरइ पवर जि लक्खियइँ।
पुहविहि णर-सारइँ तेण कुमारइँ ताइँ असेसइँ सिक्खियइँ।। 119।।

(14)

अट्ठम-णवम वरिस संपत्तए   बाल-भावइँ सेसि णियत्तए।
हउँ णिय कुकइत्तणु मणे मण्णमि   मयरद्धयहो रूउ किं वण्णमि।
जोव्वण-सिरि छुडु-छुडु जि पयट्ठइ   बालु समरि भरे भिडहु पयट्ठइ।
हरि-करि भड[1] परियरिउ णिरंतरु   वियरइ विज्जाहर भुवणंतरु।
जो संवरहो बाहकट्ठिवि ठिय   भिडिवि रणंगणे तेण विणिज्जिय।
अवर दुट्ठ[2] खल-खुद्ध णिवारिय   केवि धरिय केवि समरे वियारिय।
दिवे-दिवे गुडि उद्धरण सहासहिं   पुरि पइसइ वंदिण णिग्घोसहिं।
णिज्जइज्जहिं णवियइ पढिज्जइ   जुवि ण भित्ति चित्तह ण लिहिज्जइ।
सो ण घरु-पुरु वि पवरु सो ण रावलु   खेडु-मंडबु सो ण वेलाउलु।

घत्ता— इसी प्रकार पृथिवी पर मनुष्यों के लिये सारभूत और भी जो अन्य अनेक अति- विशिष्ट एवं श्रेष्ठ विद्याएँ कही गयी हैं उन सबको भी उस कुमार प्रद्युम्न ने सीख लिया।। 119।।

(14)

कुमार काल में प्रद्युम्न का पराक्रम एवं यश

आठवें एवं नौवें वर्ष की आयु होने पर नियम से बालभाव के शेष हो जाने पर कवि कहता है कि "मैं मन में अपने कुकविपने को मानता हूँ (अर्थात् मैं कविता में अपने को असमर्थ मानता हूँ), अत: मकरध्वज के रूप का मैं क्या वर्णन करूं? यौवनश्री धीरे-धीरे मानों भुजा में पदार्पण करने लगी। उनका बालपना स्मरभार में भिड़कर हटने लगा। हरि, करि और भद्रजनों के परिवार सहित विद्याधर प्रद्युम्न निरन्तर अन्य-अन्य भुवनों में विचरने लगा। जो (काल) संवर को भी बाधक जहाँ कहीं भी स्थित था, प्रद्युम्न ने रणांगण में भिड़कर उसे जीत लिया।

और भी, जो दुष्ट शत्रु थे उनके भी क्षोभ का निवारण किया। किन्हीं को पकड़ा और किन्हीं को समर में विदार दिया। इस प्रकार वह प्रद्युम्न दिन प्रति दिन गुडि उद्धरणों (उत्सव विशेष) तथा सहस्रों बन्दीजनों के निर्घोषों के साथ नगरी में प्रवेश करता था। उस प्रद्युम्न का गुणगान सभी के द्वारा किया जाता था। वह सर्वत्र पूजा जाता था, वह सभी के द्वारा नमस्कृत था, सभी उसके चरणों में पड़ते थे तथा स्तुति अभिनन्दन रूप उसका नाम (सर्वत्र) पढ़ा जाता था। उस नगरी में कोई भी ऐसी भित्ति (भीत) नहीं थी। ऐसा घर, पुर, पौर, राजकुल, खेड, मडम्ब, वेलाकुल (उत्सव-गृह) भी नहीं था, जहाँ उस प्रद्युम्न का चित्र न लिखा गया हो।

---

(14) 1. ब इ। 2. ब. ह।

घत्ता— पज्जुण्णकुमारहो रणे दुव्वारहो संख-कुंद हरहास कसु।
वियरंतु मुणेविणु मणे वि हसेविणु रामइँ णियणंदणहो जसु।। 120।।

(15)

इम चिंतिऊण मणे मंतिऊण।
कया सव्वसंती पंपुछेवि मंती।
सु वारे मुहुत्ते सुलग्गे पहुत्ते।
हयारी महट्टो जुवाराय-पट्टो।
सिरे तस्स वद्धो स पुण्णे णिवद्धो।
सुमित्ताण तोसो अमित्ताण रोसो।
कयाहट्ट-सोहा पुरे मंगलोहा।
पवज्जंति तूरा ककोहास पूरा।
पदट्ठेण एया विहूई अणेया।
सवत्तीहिं वुत्ता असेसा स-पुत्ता।
अणेणं सवाणं णं कस्सेव माणं।
भवाणंपि[1] मज्झे भडाणं असज्झे।
रणे णत्थि वीरो समत्थो सुधीरो।
कहं तासु[2] आ[2]ऊ ण केणावि जाऊ[3]।
जुवाराउ[4] एसो किउ सव्व सेसो।

घत्ता— विचरण करते हुए उस राजा कालसंवर ने मुस्कुरा कर अपने मन में यह मान लिया कि "रण में दुर्निवार अपने नन्दन प्रद्युम्न कुमार के शंख एवं कुन्दहार के समान धवल यश किसे प्राप्त है?"।। 120।।

(15)

प्रद्युम्न को युवराज के रूप में देखकर सौतों को बड़ी ईर्ष्या हुई

ऐसा विचार कर मन में मन्त्र कर (निर्णय कर) मन्त्री से विशेष रूप से पूछकर उस (कालसंवर) ने सर्वत्र शान्ति वार्त्ता की, फिर शुभ दिन, शुभ मुहूर्त्त एवं शुभ लग्न आदि में हतारि का सूचक महत्वपूर्ण युवराज पट्ट पुण्य वाले उस प्रद्युम्न के सिर में बाँध दिया। इस कार्य से सुमित्रों को सन्तोष हुआ और अमित्रों को रोष। हाट-बाजार की शोभा की गयी। पुर में मंगल समूह हुए। बाजे बजने लगे, जिनसे दिशाएँ भर उठीं। इस प्रकार प्रद्युम्न की अनेक विभूतियों को देखकर सपत्नी—सौतों ने अपने सभी पुत्रों से कहा—"इसके समान अन्य किसी दूसरे का सम्मान नहीं है।" भटों के लिए भी असाध्य तुम सभी के सम्मुख अन्य कोई भी सुधीर भट समर्थ वीर नहीं टिक सकता। वह कहाँ से आया है? हम सबमें से किसी से भी वह उत्पन्न नहीं है। वह तो प्रतिपालित पुत्र है। फिर भी उसे सबसे विशेष युवराज-पद दे दिया गया है।

(15) 1. अ र। 2. अ. विं।

(15) (1) युष्मादीनां मध्ये। (2) कुण्णागतः केनापि न जायते। (3) अस्मादीनांराणी मध्ये केनापि न जातः। (4) प्रतिपालितपुत्रः।

घत्ता— किं तुहि जायहिँ अणविक्खायहिँ आयहो लीह ण पावहु।
एवहिँ जिम जिज्जइ एहु हणिज्जइ तं कायउ परिभावहो।। 121।।

(16)

जणणिहि वयणु सुणेवि चिंतेविणु पवि-[1]दसणहो पमुहहिँ चिंतेविणु।
भणिउ कुमार अज्जु णिय-लीलइँ गिरिवेयड्ढु जाहि वण-कीलइँ।
ता पज्जुण्ण समुण्णय माणउँ भाय सयहिँ-पंचहिमि समाणउँ।
अकुडिल-मणु कुडिलहिँ संजुत्तउ ताम सिलोच्चय[2] - सिहरे पहुत्तउ।
णं दिवाउ[3] महि-मंडलें ढुक्कउ अमरहिँ दिव्व-विमाणु पमुक्कउ।
सव्व सुवण्ण-रइउ जगि सुंदरु णं गिरिवरहो उवरे गिरि-मंदिरु।
जं सुर-णरवर-फणि-गण मणहरु वरमणि कलस-विहूसिउ जिणहरु।
जं ति-दुवारु ति-गोउर-जुत्तउ जहिँ जिणवरु धवलउ छत्तत्तउ।
जो भव-सय-रय माण-विवज्जिउ णाय-सुरिंद-णरिंदहिँ पुज्जिउ।

घत्ता— तुम सब विख्यात नहीं हो सके। अतः तुम्हारे जन्म लेने से क्या लाभ? आगे भी तुम लक्ष्मी नहीं पाओगे। इसलिए अब जैसे भी इसको जीता जा सके, इसे मारा जा सके, ऐसे किसी भी उपाय का विचार करो।। 121।।

(16)

कालसंवर के 500 राजकुमार-पुत्रों के साथ कुमार प्रद्युम्न विजयार्द्ध-पर्वत पर क्रीड़ा हेतु पहुँचता है

पविदशन (वज्रदन्त) प्रमुख सभी विद्याधर राजपुत्र जननी के वचन सुनकर मन में चिन्तित होकर उपाय सोचने लगे। (एक दिन अवसर पाकर) सभी कुमारों ने कुमार प्रद्युम्न से कहा—"आज अपनी लीलाओं पूर्वक हम लोग वन-क्रीड़ा के लिये विजयार्द्ध पर्वत पर जायेंगे।" (यह सुनकर) समुन्नत मान एवं अकुटिल मन वाला वह प्रद्युम्न अपने कुटिल मन वाले 500 भाइयों के साथ विजयार्द्ध पर्वत के उच्च शिखर पर पहुँचा। वह पर्वत-शिखर ऐसा प्रतीत होता था मानों वह स्वर्ग से महिमण्डल पर लटका दिया गया हो अथवा देवों द्वारा सर्वांग स्वर्णरचित जग में सुन्दर कोई दिव्य-विमान ही छोड़ा गया हो। अथवा मानों, उस पर्वत श्रेष्ठ के ऊपर मन्दराचल ही ला दिया गया हो। जहाँ सुरों, नरवरों एवं फणिगणों द्वारा सेवित मणि-कलशों द्वारा विभूषित, तीन-तीन, दो-दो दरवाजों तथा तीन गोपुरों से युक्त मनोहर जिनमन्दिर था जिसमें धवल तीन छत्रधारी जिनवर (विराजमान) थे, जो कि सैकड़ों भवरूपी रज एवं मान से रहित और जो नागेन्द्र, सुरेन्द्र एवं नरेन्द्रों द्वारा पूजित थे।

---

(16) 1. अ वा दिउ।

(16) (1) वज्जदंत। (2) विजयार्द्ध शिखरस्य चैत्यालयं। (3) स्वर्गात्।

घत्ता— अहमिंद-पसंसिउ ति-जग णमंसिउ सो तेहिमि दीहर-भुयहिं।
दूरहो अहिणंदिउ सव्वहिं वंदिउ एय कालसंवर सुयहिं।। 122।।

(17)

ता पविदंसण भणिय सभायर जे पज्जुण्णहो णिहण-कयायर।
इह वेयड्ढ-सिहर एहु जिणहरु जो पइसइ दुक्किय कलमलहरु।
सो विज्जाहरवइ संपज्जइ पर ण पइट्ठु कोवि इह अज्जइ।
हउँ पुणु वि[1]हिवसेण[2] पइसेविणु तुम्हइ खणु वि णियहु वइसेविणु।
तो तं(1) णिसुणेवि तेण कुमारें रूविणि गब्भु भवेण कुमारें।
लहु धायवि सहसत्ति फिडेप्पिणु(2) ठिउ गोउरे-पायारे चडेप्पिणु।
ता अलिउल-तमाल-कसणंगइ गुरु-फुक्कार-पमुक्कउ वंगइ।
गुंजारुण-दारुण-चलणयणइँ रोस-फुरंत-फार-फण-वयणइँ।
णिब्भच्छिउ कुमारु सुरसप्पइँ अहि दुव्वयणहिं पुणु कंदप्पइँ।
बेवि सरोस भिडिय तहिं अवसरें पुंछ धरेवि ता जलु सिरोवरि।
फेरवि अप्फालइ किर जामहिं जक्खेण मणे परिभाविउ तामहिं।

घत्ता— अहमिन्द्रों द्वारा प्रशंसित तथा तीनों लोकों द्वारा नमस्कृत उन जिनेन्द्र देव के लिए राजा कालसंवर के दीर्घ-भुजा वाले उन सभी पुत्रों ने दूर से ही अभिनन्दन एवं वन्दन किया।। 122।।

(17)

प्रद्युम्न का सर्पवेशधारी यक्ष से युद्ध

तब पविदशन (वज्रदंष्ट) ने प्रद्युम्न के निधन में आदर (इच्छा) करने वाले अपने सभी भाइयों से कहा— "इस विजयार्ध शिखर पर दुष्कृतों तथा कलिमलों को हरने वाले इस जिनगृह में भी जो प्रवेश करेगा वह विद्याधर-पति हो जायेगा। यद्यपि इसमें आज तक कोई प्रविष्ट नहीं हुआ है, फिर भी तुम्हारे द्वारा सेवित मैं अपने भाग्य की परीक्षा करने की दृष्टि से उसमें प्रवेश करता हूँ। तब तक कुछ क्षणों के लिए तुम सब बैठो।" वज्रदंष्ट्र के ये वचन सुनकर रूपिणी के गर्भ से उत्पन्न वह कुमार प्रद्युम्न शीघ्र दौड़ा और सहसा ही (अपनी शक्ति से) प्राकार पर चढ़कर उसे फोड़कर गोपुर में स्थित हो गया।

तभी वहाँ अलिकुल अथवा भयानक अन्धकार के समान अत्यन्त काले शरीर वाले, अपने उपांगों से डरावनी फुफकार छोड़ते हुए, गुंजा के समान लाल-लाल भयंकर चंचल नेत्र वाले, रोष से स्फुरायमान फूले फण और वदन वाले सर्प रूप देव ने उस कन्दर्प कुमार (प्रद्युम्न) की अधम दुष्ट वचनों द्वारा भर्त्सना की। रुष्ट होकर दोनों भिड़ गये। अवसर पाकर उसी समय कुमार ने सर्प की पूछ पकड़ कर उसे घुमाकर जब पर्वत शिखर पर फेंका तभी उस सर्पवेशधारी यक्ष ने अपने मन में सोचा—

(17) 1-2. अ णिगिछाभि।

(17) (1) वचनं। (2) निघाट्य करणेन।

घत्ता— एहु सो णरु आयउ जो विक्खायउ आसि रिसिंदहिँ सिट्ठउँ।
अहि-रूउ मुएप्पिणु पय पणवेप्पिणु जंपइ जक्खु विसिट्ठउँ।। 123।।

(18)

ताम कुमारें विक्कम सारें।
सो परिपुंछिउ कहि तुहुँ अच्छिउ।
पुणु सो जंपइ जक्खु पयंपइ।
णिसुणहिँ सामिय भो सिव गामिय।
अजय महारणे हउँ तुहु कारणे।
रक्खमि विज्जउ णिरु णिरविज्जउ।
इह जिण-मंदिरे णयणाणंदिरे।
गोउरे अच्छमि कहिँमि ण गच्छमि।
णामि तित्थंतरे गयइँ णिरंतरे।
खयर-पियारउ पुण्णहिँ पेरिउ।
लइ तुहुँ आइउ जग-विक्खायउ।
भो-भो दिढ-भुय णारायण-सुय।

घत्ता— पुणु जंपिउ मयणइँ विहसिय-वयणइँ बहुविहु मंत-समिद्धउ।
एहु जक्खु पयासहिँ(1) फुडु विण्णासहिँ कहि महो विज्जउ सिद्धउ।। 124।।

इय पज्जुण्णकहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइसिद्ध विरइयाए पज्जुण्ण-[1]विज्जालाह वण्णणो णाम[2] सत्तमी संधी परिसम्मत्तो।। संधी: 7।। छ।।

घत्ता— "यही वह नर आया है, जो प्रसिद्ध है और (जिसके विषय में) ऋषीन्द्र ने कहा था।" ऐसा (विचार कर) अपने सर्परूप को छोड़ कर उसके चरणों में प्रणाम कर वह यक्ष विशेष वाणी में बोला।। 123।।

(18)

यक्षराज एवं कुमार प्रद्युम्न का वार्त्तालाप

उसी समय विक्रमसार वाले उस कुमार—प्रद्युम्न से उस (यक्षराज) ने पूछा—"तुम कहाँ रहते हो?" इसका उस कुमार ने उत्तर दे दिया। पुन: वह यक्ष बोला—"हे स्वामिन् शिवगामिन्, सुनिए। हे महारण में अजय, मैं आपके ही कारण निरवद्य विद्याओं की निरन्तर रक्षा करता आ रहा हूँ। नयनानन्ददायक जिनमन्दिर के गोपुर में मैं रहता हूँ, कहीं भी नहीं जाता हूँ। श्री नमिनाथ तीर्थंकर का निरन्तर अन्तर चलते रहने पर हे दृढ़भुज, हे नारायण सुत, विद्याधरों के प्रिय, जगद्विख्यात तुम, हमारे पुण्य की प्रेरणा लेकर (आज) यहाँ आये हो।

घत्ता— (यक्षराज की वाणी सुनकर) विविध मन्त्रों से समृद्ध उस—मदनराज—प्रद्युम्न ने विकसित मुख से कहा—"हे यक्षराज, यह प्रकाशित करो, यह स्पष्ट बताओ कि मुझे विद्याएँ कैसे सिद्ध होंगी?"।। 124।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली सिद्ध कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में प्रद्युम्न द्वारा विद्या-लाभ वर्णन करने वाली सातवीं सन्धि समाप्त हुई।। संधि: 7।। छ।।

---

(18) 1-2. अ.×।

(18) (1) कथय।

अट्ठमी संधी

(1)

पभणइ कुमारहो ताम जक्खु वि पुणु अणुरायइँ।
अलयाउरि वरणयरि णं णिम्मिय सुररायइँ।। छ।।

तहिं आसि कणयणाहु वि णरिंदु अणिलाएविहे रोहिणिहिं चंदु।
सुव बेवि ताम उप्पण्णसार णामेण पसिद्ध हिरण्ण-तार।
वर रज्जु करइ तहिं णिवइ जाम पिहियासउ मुणि संपत्तु ताम।
तहो पायमूले णिसुणेवि धम्मु तउ लयउ णिवण णि[1]वेवि [2]कम्मु।
सुउ करइ रज्जु पच्चक्खु णयरे तावेक्क दिवसि सउहलयउवरे।
णिय कंत सहिउ वरसुह णिसण्णु ता णहु पेच्छइ णह जाण[(1)] छण्णु।
धय-[3]धुव्वमाणु किंकिणि-रणंतु णं जिणहुवि देवागमणु होंतु।
मणि-मउड-कडय-कुंडलधरोवि एह सज्जइ[(2)] गच्छ[4]इ खयरु कोवि।

घत्ता— तहिं अवसर कणएण विज्जावलु सलहिज्जइ।
जहिं ण फुरइ[(3)] तं लोए रज्जइँ किं किर किज्जइ।। 125।।

आठवीं सन्धि

(1)

कुमार प्रद्युम्न द्वारा विद्या-लाभ का उपाय पूछे जाने पर यक्षराज द्वारा पूर्व-कथा वर्णन

तब यक्ष ने भी अनुरागपूर्वक कुमार से कहा—"अलकापुरी नामकी एक नगरी है। वह इतनी श्रेष्ठ (सुन्दर) है मानों उसे सुरराज—इन्द्र ने ही बनाया था। ।। छ।।

पहले वहाँ कनकनाथ नामका राजा राज्य करता था। उसकी चन्द्रमा के लिए रोहिणी के समान अनिला नामकी देवी—रानी थी। उनके सारभूत दो पुत्र उत्पन्न हुए। जो हिरण्य और तार नाम से सुप्रसिद्ध हुए। जब वह राजा उत्तम रीति से वहाँ राज्य कर रहा था तभी वहाँ मुनिराज पिहिताश्रव आये। उनके चरणमूल में धर्मोपदेश सुनकर उस राजा ने उनके चरणों में नमस्कार कर तप ग्रहण कर लिया।

जब पुत्र उस नगरी में प्रत्यक्ष रूप से राज्य कर रहा था। तब एक दिन जब वह अपनी कान्ता के साथ अत्यन्त सुख-सन्तोषपूर्वक अपने भवन की अट्टालिका के ऊपर बैठा था तभी उसने नभोयान से छन्न (ढँके) आकाश को देखा। उस पर ध्वजा उड़ रही थी, किंकिणियाँ शब्द कर रही थीं। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों जिनेन्द्र के सामने देवागमन हो रहा हो अथवा मणि-मुकुट-कटक एवं कुण्डलों का धारी कोई विद्याधर ही सजकर जा रहा हो।

घत्ता— उस अवसर पर उस हिरण्यराजा ने विद्याबल की प्रशंसा करते हुए कहा—"यदि यह विद्याबल मुझे प्रकट नहीं हुआ तो फिर लोक में राज्य कैसे किया जाये अर्थात् राज्य करने का सुख ही क्या?" ।। 125।।

---

(1) 1. अ. णिहणेवि। 2. अ. छ। 3. ब. धु.। 4. अ. ज्ज।

(1) (1) विमाण। (2) सामग्री युक्त:। (3) विद्याबलं।

(2)

इउ चिंतिवि कज्जु वियप्पियउ लहु भायहो रज्जु समप्पियउ।
अप्पु[1]णु गउ सावइ संगहणे जिण-सासणेण[(1)] णं वण गहणे।
तहिं जा[2]एवि मंतु तेण जविउ भुत्तोयणु सउ वीरइ चविउ।
मय-माण-मोह-भय वज्जियहो मच्छर- मयणहिं ण परज्जियहो।
अणु-दिणु वण झाणे अहिट्ठियहो चम्मट्ठि-विसेस परिट्ठियहो।
एम विज्जउ जग-सुपसिद्धयउ वरिसहँ छत्तीसहँ सिद्धियउ।
पुणु अलयाउरि संपत्तु किह महि साहिवि भरहु [3]णरेंद जिह।
ता तारइँ तासु[(2)] महाहियहो पणवप्पिणु जेट्ठहो भाइयहो।
सत्तंगु वि रज्जु पडिट्ठियउ तेण वि सब्भावइँ इच्छियउ।

घत्ता— विज्जाबल [4]गव्विउ रइ-पंकय फुल्लंधुउ।
कणय मयणु अवयरियउ कणउ वि अवरु सु अंधउ।। 126।।

(2)

36 वर्षों में समस्त विद्याएँ प्राप्त कर कनकपुत्र-हिरण्य मदान्ध हो गया

ऐसा चिन्तवन कर उसने (हिरण्य ने) कार्य का विकल्प किया (मन्त्र साधने का विचार किया), और अपने लघु भाई तार को राज्य समर्पित कर दिया। वह स्वयं ही जिनशासन के अनुसार श्रावक-व्रत धारण कर गहन-वन में चला गया। वहाँ वन में जाकर उस वीर हिरण्य ने साहसपूर्वक मन्त्र जपा। स्वयं कांजी का भात बना-खा कर कालक्षेपण किया। वह मद, मान, मोह एवं भय से रहित और मत्सर एवं मदन से पराजित नहीं हुआ। वन में प्रतिदिन ध्यान में अधिष्ठित उस हिरण्य के चर्म तथा अस्थि मात्र शेष रह गये। इस प्रकार जगत् में जितनी सुप्रसिद्ध विद्याएँ थीं वे सब उसे 36 वर्ष में सिद्ध हुईं। फिर वह हिरण्य अलकापुरी में किस प्रकार पहुँचा जिस प्रकार कि भरत नरेन्द्र (चक्री) मही साधकर (अयोध्यापुरी में) पहुँचे थे (अथवा मही साधक भरत जिस प्रकार जिनेन्द्र के पास पहुँचा था)।

तब छोटा भाई तार महाहृदय वाले उस बड़े भाई को प्रणाम कर उससे मिला और उससे उस (हिरण्य) को राज्यपद पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। बड़े ने भी छोटे को युवराज पद पर प्रतिष्ठित किया, जिसे उसने सद्भाव पूर्वक स्वीकार किया।

घत्ता— विद्याबल से गर्वित, रतिरूपी कमल-पुष्प में अन्धे हुए भ्रमर के समान उस कनक (हिरण्य) में मदन का अवतार हो गया और स्वर्णादि समृद्धि बढ़ने के कारण वह हिरण्य और भी मदान्ध हो गया।। 126।।

(2) 1. ब. अप्पु ण। 2. अ. धायवि। 3. ब. जिणिंद। 4. ब. गारविउ।

(2) (1) जिनशासनेन श्रावकानां संग्रहो भवति। (2) लघुभ्राता।

(3)

तहो अलयाउरि सुह-अछंतहो इट्ठ कामभोयइँ भुंजंतहो।
एक्कहिं दिणि वज्जिय संघायइँ अंबरु फुट्टइ तूर-णिणायइ।
तक्खणें कणयइँ णियउ णियच्छिय आलोयणिय-विज्ज आउच्छिय।
ताएँ पयंपिउ णमि-जिणणाहहो णाणुप्पण्णउँ केवलवाहहो।
तहिं सुर-चउणिकाय संपाइय दुंदुहि रसिय अमरकर-वाइय।
तं णिसुणेवि कंचणु आणंदिउ जाएवि समवसरणे जिणु वंदिउ।
माणथंभ पेछेवि गयमाणउँ हुवउ झत्ति परमत्थ वियाणउँ।
णिसुणेवि तच्च[1] तेण तउ लइयउ जाउ विमुक्क-संगु पव्वइयउ।

घत्ता— ता विज्जहिमि पउत्तु भणु अम्हहं पहु किंकरहु[(1)]।
तुहुं भव-रज्जे बइट्ठु कहि एमहिं कहु उवयरहु।। 127।।

(4)

ताम कणाएण जिणणाहु आपुच्छिऊ कवणु पहु देव आयहमि अणुकुच्छउ[(1)]।

---

(3)

राजा हिरण्य की दीक्षा एवं उसके लिए सिद्ध विद्याओं के आश्रय की चिन्ता

इष्ट काम-भोगादि भोगता हुआ वह हिरण्य अलकापुरी में सुख-सन्तोष पूर्वक रह रहा था। एक दिन सामूहिक बाजे बजने लगे और तूरों के निनाद से अम्बर (आकाश) फूटने लगा। उसी समय कनक (हिरण्य) ने निकट से ही उठने वाली आलोचनी नामकी विद्या को देखा। उस विद्या ने उसे बताया कि नमि जिननाथ को केवल स्वभावधारी केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, अत: वहाँ चारों निकाय के देव आ रहे हैं। देवों के हाथों द्वारा बजाये हुए दुन्दुभि बाजे बज रहे हैं। उनको सुनकर कंचन (हिरण्य) आनन्दित हुआ। फिर उसने समवशरण में जाकर जिनेन्द्र की वन्दना की। मानस्तम्भ के दर्शन से उसका मान चला गया। झट से वह परमार्थ का ज्ञाता हो गया। उस कंचन ने तर्क सुनकर तप ग्रहण किया और परिग्रह छोड़ कर प्रव्रजित हो गया।

घत्ता— तब (राजा हिरण्य को प्रव्रजित देखकर उससे) उन विद्याओं ने कहा—"हे प्रभु, अब कहिए कि हम आपकी दासियाँ क्या करें? आप तो भव-राज्य के ऊपर बैठ गये (अर्थात् मोक्ष मार्ग की साधना करने लगे) अब कहिये कि यहाँ हमारा उद्धार कैसे होगा?"।। 127।।

(4)

विजयार्द्ध के दुर्गम जिनभवन में प्रवेश करने पर पवनाशन यक्ष द्वारा कुमार प्रद्युम्न के लिए अमूल्य विद्याएँ एवं मणिशेखर की भेंट

तब कनक (हिरण्य) ने जिननाथ से पूछा—"हे देव, आगे कौन सा समर्थ पुण्य-पुरुष इन विद्याओं का प्रभु

---

(3) 1. ब 'क्क।

(3) (1) मम किं कर्म:।

(4) (1) पुण्यवंत.।

कहइ सव्वगु हरिवंसे तित्थंकरो णेमिणाहोत्ति जो सव्व-सुक्खंकरो।
तस्स तित्थम्मे वारमइ हरिणंदणो णाम पज्जुण्णु मयणोत्ति अरिमद्दणो।
सो वि वेयड्ढ जिण-भवणे आवेसए विविह-विज्जाण-एयाण पहु होसए।
ताउ[(2)] सव्वाउ तहि समइं जा ढुक्किया मज्झु जक्खस्स पासम्मे परिमुक्किय।
जिणइँ मइँ समरे सो चेव महुमह-सुओ [1]पवण असणस्स रूवेण इह अच्छिओ।
गयउ चिरकालु सियवंतु तउ पेच्छिओ[2] एम मुणिउ सिउहु देव णिरु दढ-भुओ।
[3]लेहि विज्जाउ अवरे ज मणिसेहरो[4] तहय जुह तणउहँ चेव वर किंकरो।
मउडु-विज्जाउ गहिऊण जा णिग्गओ दिहु खयरेहिं संमुहुतुं णं दिग्गउ।

घत्ता— ता चित्त चमक्किय [5]रायसुय पुणु कुमारु णिउ तेत्तहिं।
जहिं वसइ णिसायरु कालसमु काल[(3)]-गुहाणणु जेत्तहिं।। 128।।

(5)

ताहिंमि दूरे ठाएवि पवुत्तउ इह पइसइ जो रविण णिरुत्तउ।
सो मणे इंछिय संपय पावइ तं णिसुणेवि मयणु ण चिरावइ।

होगा?" तब भगवान् ने कहा—"सर्वश्रेष्ठ हरिवंश में सभी के लिए सुखकारी तीर्थंकर नेमिनाथ उत्पन्न होंगे। उनके तीर्थ में द्वारावतीपुरी में हरि का, शत्रुओं का मर्दन करने वाला प्रद्युम्न नामका कामदेव पुत्र उत्पन्न होगा जो विजयार्द्ध के जिन-भवन में जाकर प्रवेश करेगा और वही इन विविध विद्याओं का प्रभु होगा।" उसी समय से ये सभी विद्याएँ यहाँ आ घुसीं और मुझ यक्ष के पास में रह रही हैं।" मधुमथन का पुत्र मुझे समर में जीतेगा, इसी आशा से तभी से मैं पवनाशन यक्ष सर्प के रूप में यहाँ स्थित हूँ। शोभा सम्पन्न आपकी राह देखते हुए मुझे चिरकाल बीत गया। ऐसा समझिए। दृढ़ भुजा वाले कल्याणकारी हे देव, आप यहाँ आ पहुँचे हैं। अतः अब इन विद्याओं को ले लीजिए और जो मणिशेखर है उसे भी ले लीजिए। उस यक्ष के कथनानुसार ही प्रद्युम्न ने उन सभी को स्वीकार कर लिया। मणि-मुकुट एवं विद्याओं को ग्रहण करके जब वह निकला और उन विद्याधर कुमारों के सम्मुख पहुँचा, तब ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों दिग्गज ही आ गया हो।

घत्ता— उसे देखकर उन राजकुमारों का चित्त चमत्कृत हो उठा। पुनः वे विद्याधर कुमार प्रद्युम्न को उस कालगुफा के मुख पर ले गये जहाँ यमराज के समान दुष्ट निशाचर रहता था।। 128।।

(5)

कालमुखी गुफा में निशाचर द्वारा कुमार को छत्र, चमर, वसुनन्दक-खड्ग तथा नाग-गुफा के नागदेव ने दो विद्याएँ एवं विभिन्न वस्तुएँ भेंट स्वरूप प्रदान कीं

दूर खड़े होकर उससे तब कहा—"जो इस गुफा में वेग पूर्वक (दौड़कर) प्रवेश करेगा वह मनवांछित सम्पदा को प्राप्त करेगा।" यह सुनकर मदन ने देर नहीं की। वह शीघ्र ही उन सब भाइयों को बीच में ही छोड़ कर

---

(4) 1-2. अ. प्रति में ये दो चरण नहीं हैं। 3-4 अ. प्रति में ये चरण नहीं है। 5. ब. ग।

(4) (2) विद्या। (3) कालगुफा सुखंपत्त।

रउ गरुय धयरु मुअवि ताणंतरे पइसइ णिसियर णिलयब्भंतरे।
ता णिसियरु कोवेण पलित्तउ णं हुव वहु धिय घडहिं पसित्तउ।
गुंजारुण-लोयणु उद्धायउ मरहि मणुय कहिं-कहिं रे परायउ।
भिडइ ण जाम-ताम तहिं जित्तउ मुट्ठि-पहारहिं महिहि णिहित्तउ।
आयछत्तु-चामर-जुवलुल्लउ ढोयउ तेणकुमारहो भल्लउ।
अवरु वि मंडलग्गु वसुणंदउ दिण्णु विपक्ख-पक्ख खय कंदउ।
जाउहाणु सेव वि मण्णाववि पुणु तहिं दुट्ठहँ पासु पराववि।
संठिउ ताम तेहिं णिउ तेत्तहिं तहि वेयड्ढ णाय-गुह जेत्तहिं।
दूराउ वि जो जंपइ पवि'र[1]उ खलु इह पइसइ तहो मणि चिंतिउ फलु।
ता सहसत्ति कुमारु पइट्ठउ फणि-णिज्जिणे वि लद्धु सुह सिट्ठउ।
णायतलप्पु-सेज्ज ससि-विट्ठरु पायट्ठवणु अवरु वीणावरु।
से[2]ण्णकारि-गिहकारणि विज्जउ अण्णु[(1)] किं जाय पज्जुण्णुह विज्जउ।

घत्ता-— इय लाह समल्लिउ णियवि तहिं पुणु दुट्ठहिं असहंतहिं।
णिउ वण[(2)]-सरसिहि सुर-रक्खियहिं संवररायहो पुत्तहिं।। 129।।

वेगपूर्वक गया और निशाचर के निलय (गुहा) के भीतर प्रवेश कर गया। तब निशाचर कोप से प्रदीप्त हो उठा, मानों प्रज्ज्वलित अग्नि घड़ों भर घी से सींच दी गयी हो। गुंजा के समान लाल नेत्र वाला वह निशाचर दौड़ा और बोला—"हे मनुष्य मर, तू क्यों और कहाँ से आ गया?" जब तक वह भिड़ भी न पाया था कि तब तक प्रद्युम्न ने मुष्टि प्रहारों से उसे जीत लिया तथा उसे पृथिवी पर पटक दिया।

उस निशाचर ने कुमार प्रद्युम्न को सुन्दर छत्र एवं चंचल चमर-युगल लाकर प्रदान किये। इनके अतिरिक्त भी विपक्ष के पक्ष का क्षय करने वाला वसुनन्दक नाम का मण्डलाग्र (खड्ग) भी प्रदान किया। इस प्रकार उस यातुधान से सेवा-पूजा कराकर वह कुमार प्रद्युम्न पुनः उन्हीं दुष्ट विद्याधर-पुत्रों के पास लौट आया।

पुनः वे सभी उस प्रद्युम्न को वहाँ ले गये, जहाँ विजयार्द्ध में नागगुफा थी। उनमें जो दुष्ट वज्रदंष्ट्र था, उसने दूर से ही कहा—"जो इस गुफा में प्रवेश करेगा, उसको मनोवांछित फल मिलेगा।" तब शीघ्र ही वह कुमार गुफा में घुस गया। वहाँ के फणी सर्प को जीत कर शुभ फल प्राप्त किया। उस नागराज ने उसे नागतल्प शैया, शशि-विष्टर (सिंहासन), पादस्थापनी पादुका और उत्तम वीणा प्रदान की, साथ ही सैन्यकारिणी और गृहकारिणी विद्याएँ भी प्रदान कीं। इन विद्याओं के आगे अन्य विद्याओं को क्या कहा जाये?

घत्ता— जब इन लाभों सहित आते हुए उस कुमार को देखा तब उन दुष्टों को वह सहन नहीं हुआ। पुनः राजा कालसंवर के वे पुत्र उस कुमार को देवों से सुरक्षित वन-सरसी (बावड़ी) पर ले गये।। 129।।

---

(5) 1. ब. रिखलु। 2. अ °सि।

(5) (1) किं द्वितीयोस्ति अपितु नास्ति द्वितीयः। (2) नीतिवापिकासुररक्षिता।

(6)

पभणिउ इह पइसरि जो मज्जइ तहो पुणु मणे इंछिउ संपज्जइ।
ता पज्जुण्णु पइट्ठु तुरंतउ णिय-विग्गह-कर[1]-णियर फुरंतउ।
अड्डोहिवि जलु-पंकय तोडइ कर-कमलहिँ कमलिणि अच्छोडइँ।
धाइय रक्खवाल ताणंतरे हक्किउ तेहिँ कुमारु खणंतरे।
पभणिउँ पुण्ण-कालु[2] कहिँ आयउ किण्ण मुणहिँ एहु जग विक्खायउ।
सुर-वाविहि पइसेवि किं ण्हायउ ....
किउ अपवित्तु सलिलु देवक्कउ अंतयालु तुह अज्जु पढुक्कउ।
इय णिसुणेवि मयणु अब्भिट्टउ णं कंठीरउ करिहिँ पयट्टउ।

घत्ता— चरिम देहु रणे अज्जउ अण्णु वि विज्जावल-वलियउ।
को तहो जगे पडिमल्लु जिणि तिहुवणु परिकलियउ।। 130।।

(7)

ताव तेण तहिँ जिय महारणे मयर-चिंधु[1] तहो दिण्णु तक्खणे।

---

(6)

कुमार प्रद्युम्न की सुर-वापिका के रक्षपाल से मुठभेड़

उन विद्याधरों पुत्रों ने कुमार प्रद्युम्न से कहा—"जो इस बावड़ी में प्रवेश कर स्नान करेगा उसे मनोवांछित सम्पत्ति मिलेगी। तब अपने तेजस्वी शरीर की किरणों से स्फुरायमान शरीर वाला वह प्रद्युम्न तत्काल ही उसमें प्रविष्ट हो गया। उसने उसके जल को आलोड़ित कर दिया, उसके कमलों को तोड़ने लगा और अपने हस्तकमलों द्वारा कमलिनियों को मरोड़ डाला। इसी बीच में उस सरसी (बावड़ी) का रक्षपाल वहाँ दौड़ा आया और उसने उस कुमार को ललकारा और कहा—"क्या तेरा काल (अर्थात् आयुष्य) पूरा हो गया है? तू यहाँ क्यों आया? क्या तू यह नहीं जानता कि यह बावड़ी जगद्विख्यात देव-बावड़ी है। उसमें तूने क्यों नहाया? तूने इस देवकृत जल को अपवित्र कर दिया है अत: आज (निश्चय) ही तेरा अन्तकाल आ गया है। यह सुनकर वह मदन उस रक्षकदेव से भिड़ गया। मानों सिंह ही हाथी से भिड़ गया हो।।

घत्ता— वह चरमदेह कुमार (प्रद्युम्न) रण में अजेय था ही, साथ ही विद्याबल से भी बली था। जिसने त्रिभुवन को समझ लिया था फिर भला जग में उसका प्रतिमल्ल और कौन हो सकता था?।। 130।।

(7)

कुमार प्रद्युम्न को देव-वापिका के रक्षपाल द्वारा मकरध्वज, अग्निदेव द्वारा दूष्यवस्त्र एवं पर्वतदेव द्वारा कुण्डल-युगल की भेंट

कुमार प्रद्युम्न ने उस रक्षपाल को महारण में जीत लिया। तब रक्षपाल ने भी उसे तत्काल ही मकरचिह्न

---

(6) (1) किरणा। (2) परिपूर्ण कालजाता।

(7) (1) कामस्य।

तंपि लेवि चलिउ मणुब्भउ णियवि खलहिँ महुमह-तणुब्भउ।
पुण हुवास कुंडंपि दावेयं एत्थु मरइ जलिऊण भावियँ।
भणिउ मयण इह जो पईसए सा वि अजउ तिहुवण हो सासीसए।
झंप करिवि ता तहिँ पइट्ठउ ताम अग्गि-सुरवरु तुट्ठउ।
दिण्ण ताम वर-वत्थ-दूसहे मलिण सुब्भ जे हुंति हुयवहे।
लेवि तेवि संचलिउ जामहिँ मेसयारु-गिरि-जुवलु तामहिँ।
दिट्ठु भणिउ इहु बिब्वि जो णरो विसइ अदसु सो होइ सुरवरो।
तं सुणेवि मयणो-महावलो तहिँ पइट्ठु णिव्विहिय कुलत्थ[1]लो।
हुउ झडत्ति-झड देवि जामहिँ हय-सरेण कुहणियहिँ तामहिँ।

घत्ता— ता तूसिवि अमरेहिँ दिण्णु तेहिँ कुंडल-जुवलु।
मणुअहो दइवाहियहो[2] गिरिवि दिंति चिंतियउ फलु।। 131।।

(8)

पुणु कय तमेण[1] तेण जि कमेण।

(ध्वजा) प्रदान की। उसे लेकर आते हुए मधुमथन के पुत्र उस मनोभव (कामदेव) को जब इन दुष्टों ने देखा तो पुनः उसे जलता हुआ अग्निकुण्ड दिखलाया और कहा कि—"जो इसमें जल कर मरता है उसका भविष्य उज्ज्वल होता है। पुनः उन्होंने मदन से कहा कि "जो इसमें प्रवेश करता है, वह त्रिभुवन के सभी समर्थ योद्धाओं में अजय होता है।" यह सुनकर वह कुमार झाँप देकर उस कुण्ड में प्रविष्ट हो गया। तब अग्निदेव भी उससे सन्तुष्ट हुआ। अग्निदेव ने उसे श्रेष्ठ दूष्य वस्त्र प्रदान किये। ठीक ही कहा है कि जो मलिन होते हैं वे अग्नि में शुभ्र हो जाते हैं।

वह कुमार जब उन वस्त्रों को लेकर चला तभी उसने मेषाकार पर्वत-युगल देखा। इन विद्याधर पुत्रों ने उस कुमार से कहा—जो मनुष्य इन दोनों के बीच में प्रवेश करता है वह उत्तम अदृश्य देव होता है।

उसको सुनकर महाबल वाला वह मदनकुमार प्रद्युम्न जब वहाँ कुलाचलों के बीच में निर्विघ्न रूप से प्रविष्ट हुआ, तब देव झड़-झड़ करता हुआ उससे लड़ने लगा। उस समय कुमार ने मारो-मारो स्वर करते हुए कुहनियों से उस देव को मारा।

घत्ता— तब देव ने प्रसन्न होकर उस कुमार को कुण्डल-युगल प्रदान किये। कहा भी गया है कि—"भाग्यशाली पुरुष को पर्वत भी चिन्तित फल देते हैं।"।। 131।।

(8)

कुमार प्रद्युम्न को विशाल पर्वत के आम्रदेव के पास ले जाया जाता है

दुष्टता करने वाला वह वज्रदन्त पुनः उस कुमार प्रद्युम्न को पक्षियों के कलरव वाले विशाल पर्वत पर सारभूत

---

(7) 1. अ. 'छ।

(7) (2) शुभकर्म अधिकस्य।

(8) (1) पपेन।

तहिं गिरि-विसाले खय-रव बमाले।
तरु सार-भूउ जहिं अमयभूउ।
तहिं णिउ-कुमारु किर होउ मारु।
कइ-रूउ अमरु विरएउ समरु।
दंभोलि[2]- रएण सब्भावहएण।
जंपिउ सहासु इह अंवयासु।
फलु एक्कु खाइ तहो जगु जि भाइ।
तं सुणेवि वालु दिढ-भुय-विसालु।
तहिं चडिउ तुरिउ मणि-रयण फुरिउ।
तो कइ[3] वरेण हक्कियउ तेण।
मायंदु एउ सुरहमि अभेउ।
कहु तणउँ पुत्तु कहि तुहुँ पहुत्तु।
जा जाहि भज्जु मा मरहि अज्जु।

घत्ता— ता जंपिउ वालेण मरु साहामय कवणु तुहुं।
महो माइंद ठियासु वहहि णिरारिउ जेण महु[4]।। 132।।

(9)

ता वली समुट्ठिहा महाकलीए[1] धाइओ।
सामरो पराइओ वालओ महावलो विसालओ।

एक आम्र वृक्ष के पास ले गया। "यहाँ कपि वेशधारी देव से समर में वह अवश्य मार खा जायेगा।" इस प्रकार विचार कर सद्भाव रहित उस वज्र-दंष्ट्र ने हँस कर प्रद्युम्न से कहा—"जो भी इस आम का एक भी फल खायगा, वह जगत में सबको अच्छा लगेगा।"

उस वचन को सुनकर भुज विशाल, मणिरत्नों से स्फुरायमान वह बालक तुरन्त ही उस वृक्ष पर चढ़ गया। तब कपिवेशधारी उस देव ने उस कुमार को ललकारा और बोला—"सुगन्धि में अमेय यह देवों का माकन्द (आम) वृक्ष है। तुम किसके पुत्र हो? तुम यहाँ कैसे पहुँचे? जा भाग यहाँ से, आज अपने प्राण मत गवाँ।"

घत्ता— तब वह बालक बोला—"हे शाखामृग देव, तुम कौन हो? जो माकन्द (आमवृक्ष) पर स्थित होकर मुझे निःशंक होकर अपना तेज दिखा रहे हो।। 132।।

(9)

कुमार प्रद्युम्न को वानर वेशधारी देव द्वारा शेखर एवं पुष्पमाला की भेंट

तब बली वानर-देव उठा और महाशाखा लेकर दौड़ा। वह बालक प्रद्युम्न भी विशाल महाबल वाला एवं दुर्धर मृगारि (सिंह) के समान कन्धों वाला था। वह भी समर में दौड़ा और इस प्रकार वानर एवं नर की भिड़न्त

---

(8) (2) वज्रदंष्ट्रेन। (3) देवेन। (4) तेजः।

(9) (1) कंदलगृहः।

दुद्धरो मुएण अरि कंधरो[2] वाणरो भिडंतओ वि वा णरो।
णामिउ पपुंछ लेवि भामिओ झाडए धराहि जाम ताडए कंपिओ।
सुरोह बेवि जंपिओ कुद्धओ तुमं अहंपि सिद्धओ।
सेहरो पयत्थिओ सुसुंदरो सामयं सुअंध समप्पियं पुप्फदामयं[3]
अब्भुअं सुरेह-पाउआ जुवं दिण्णयं सुरेणंत पयण्णयं।
णिग्गउ कविट्ठ-काण णं गओ तुंगो गिरिव्व कज्जलंगओ।
दुद्धरो तहिंपि दिट्ठु सिंधुरो . . . .।

घत्ता— घड-हड-रव गज्जंतु दंतु-मुसल गिरि-दारणु।
सो णिय भुवहँ वलेण कुमरइँ साहिउ वारणु।। 133।।

(10)

जो सो गय-रूवी सुरवर हूउ तासु वसि गुण-पयडण-कणउव[1] णिसएं लग्गु कसि।
संगहिय[2] पसाहणु हुउ वर-वाहणु कामकरी जहिं[3] कहिं तहिं वणियउ अइघण थणियउ रूवपरी[4]।
तहो अग्गे परिट्ठिउ वंधि अहिट्ठिउं संवरहि कर-सिर-रय-सवणहँ पय मुह णयणहँ रय करहि।
तहिं चडिउ कुमारो जो सइ[1] मा[2]रो अवयरियउ कामिणि-जण-मोहणु गुण-गण-भूसणु अइ चलियउ।

में नर ने वानर-देव की पूँछ पकड़कर उसे घुमा डाला और धरा पर ला पटका। जब उसने उस कपि-देव को ताड़ित किया, तो वह काँपने लगा तथा क्रोधित होकर बोला—"तुमने मुझे भी वश में कर लिया है।" फिर प्रसन्न होकर उस देव ने उसे एक सुन्दर शेखर भेंट में दिया और अमृत रूप सुगन्धित पुष्पलता समर्पित की। इसके साथ ही अद्भुत सुरेखा वाली पादुका तथा मधुर शब्द वाली एक वीणा दी। इन सबको लेकर कुमार वहाँ से निकला। फिर वह दुर्धर कपित्थ कानन में गया। वहाँ उसने गिरि समान ऊँचे और कज्जल के समान काले दुर्द्धर सिन्धुर (गज) को देखा।

घत्ता— घडहड शब्दों से गरजते हुए दन्तरूपी मुसलों से गिरि को विदारण करते हुए उस वारण (गज) को भी उस कुमार ने अपने भुजबल से वश में कर लिया।। 133।।

(10)

कुमार प्रद्युम्न को गजदेव ने गज एवं मणिधर सर्प ने उसे असि, नपक, सुरत्न, कवच, कामांगुष्ठिका एवं छुरी भेंट स्वरूप प्रदान की

स्वर्ण के गुणों के प्रकट करने के विषय में निशित लगी कसौटी के समान ही गज के वेश में जो वह देव था, वह कुमार के वश में हो गया। वह काम-करी (कामुक-हाथी) अत्यन्त सघन स्तनों वाली परियों के समान सुन्दर हथिनियों द्वारा जहाँ-तहाँ व्रणित (घायल) हो गया था। हथिनियों के सूँड, सिर, दाँत, कान, पैर, मुख एवं

(10) 1. अ. सइ। 2. अ. सारो।

(9) (2) सिंहवत् कंधरः। (3) सपरिमलं।

(10) (1) सुवर्ण कसौटी। (2) वांछित। (3) यत्र कुत्यत्र।
(4) अप्सर सोभि यत्र तत्रन्वै अंगे वर्णितः कामकरी गजः।

णिउ जहिं सो वामिउ मयणहो दाविउ पविदसणा[3] पुणु जंपिउ एहए पेक्खु णिकेयउ सुणि मयणा।
रह-चडइ जो णरवरु सो संपय धरु होइ खणे तं णिसुणेवि मयणो पहसिय वयणो अजउ रणे।
धाएवि संघडियउ सहसा चडियउ तहिमि खणे तं चलइ ण ताडिउ महिहि णिवाडिउ तें फणिणा।
ढोइय असि णयउ वि सुरयण कवउ वि सिरि मणेण . . . . |
कामंगुच्छलियवि णिरु उज्जलिय वि विप्फुरिया अवरु वि लहलहिम वि णं जम जीह-विवर छुरिया।
इय सयल पयच्छिवि वियणु णियच्छिवि समुह अही भणु महु आससणु हउ तुह पेसणु कुणमि णही।
पुणु [4]सल्लयगिरिवरु कीलिय सुरवरु गयउ तहिं [5]सोमल्लयगिरि वरु कीलिय सुरवरुठियउ जहिं[6]।
ता तहिं णं दिग्गउ मयणु विणिग्गउ गयउ कहिं [7]पज्जुण्णु गयवरु रिपु महासुरु वसइ जहिं[8]।
घत्ता— वज्जदसणु ता तहि चवइ इह गिरिवरहो जु मत्थयं [9]जो चडई[10]।
महारउ जो करइ त होसिय वहुविह संपडइ।। 134।।

नेत्रों से प्रेम करने वाले उस काम-करी के व्रणित अंगों को सँवार कर, बाँधकर तथा उस (काम-करी) को सुसज्जित कर (प्रद्युम्न ने) उसे उत्तम वाहन बनाया और उस पर वह कुमार प्रद्युम्न, जो कि स्वयं ही कामदेव के रूप में अवतरित था तथा जो कामिनियों के मन को मोहित करने वाला और गुण- गणों से भूषित था, चढ़ा और वेगपूर्वक चला (तथा अपने विद्याधर-भाइयों के पास पहुँचा)।

पविदशन (वज्रदंष्ट्र) उस कुमार को वहाँ ले गया, जहाँ वामी थी उसने वह वामी मदन (प्रद्युम्न) को दिखाई और फिर बोला—"हे मदन, सुनो इस निकेतन को देखो। इस वामी पर जो नरवर चढ़ता है, वह क्षण भर में सम्पत्तिधारी हो जाता है। उस वचन को सुनकर रण में अजेय वह मदन प्रहसित वदन हुआ। वह संघटित (तैयार) होकर उसी क्षण दौड़कर सहज ही में उस पर चढ़ गया। उस वामी में सर्प रूप देव था। उसने उसका अपने पैरों से ताडन किया और उसे पृथिवी पर पटक दिया। तब उस श्री मणिधर सर्प देव ने असि, नयक (म्यान), सुरत्न एवं कवच भेंट में दिये। उज्ज्वल स्फुरायमान काम की अँगूठी और लहलहाती, मानों यम की जीभ हो, ऐसी छुरी भी लाकर प्रदान की। इस प्रकार सब देकर, विजन स्थान देखकर वह अहिदेव सम्मुख आया और बोला—"मुझे आश्वासन (आशीष) दो, मैं आपका दास हूँ, मैं सेवा करूँगा।" पुनः गजदेव का रिपु वह प्रद्युम्न देवों के निवास स्थल सुन्दर उस शल्यकगिरि पर गया जो देवों से क्रीडित था तथा जहाँ एक महासुर रहता था। दिग्गज के समान वह मदन (अपने भाइयों के साथ) वहाँ पहुँचा।

घत्ता— वहाँ पहुँचते ही वह वज्रदन्त बोला—"इस गिरिवर के मस्तक पर चढ़कर जो महाशब्द करेगा वह अनेक शुभ-सम्पत्तियों का स्वामी होगा।" ।। 134।।

---

(10) 3. अ. पविरयणा। 4. अ. मंज्साय। 5-6. अ. प्रति में नहीं है।
7-8. अ. प्रति में नहीं है। 9. ब प्रति में नही है। 10. ब. चडिवि।

(11)

इमं सुणेवि सो तहिं चडिण्णिऊ चडेवि तेत्थु बाहु फोडु दिण्णउ।
पुणो[1] महारओ करेवि उट्ठिओ[2] णहम्मि ता पडीरवो समुट्ठिओ।
सुणेवि तं महासुरो पधाइओ जहिं कुमारु झत्ति तं पराइओ।
भिडेवि बाहु जुज्झि तेत्थु खित्तओ झडत्ति रूविणी-सुएण जित्तओ।
भयावि तेण(1) तस्स(2) दिण्ण अंगयं(3) जुवं पुणो वि कंकणाण चंगयं।
सुवत्थ-हारु सार-सारु-(4)संहरो किओ सुरेहिं णिब्भरो महायरो।
सराव-(5)सेलयं मुएवि आविओ पुणो वराहं(6) सेलु तस्स दाविओ।
इमस्स पव्वयस्स(7) ओह सम्मुहा णियत्थु भो कुमार दीसए गुहा।
जहिं गुमगुमंत-मत्त-छप्पया तहिं विसेइ तस्स [3]चारु-संपया।

घत्ता— तक्खणेण पयट्ठउ मयणु तहिं जहिं वराह रूवेण अमरु।
आढत्तु तेण रूविणि सुण्ण समुहँ तेण वि सहुं समरु।। 135।।

---

(11)

कुमार प्रद्युम्न को महासुर ने अंगद, कंकण-युगल, सुवस्त्र, हार एवं मुकुट भेंट स्वरूप दिये

यह सुनकर वह कुमार उस गिरि पर चढ़ गया। वहाँ चढ़कर उसने बाहु के स्फोट किये (अपनी भुजाओं को ठोका)। पुन: महाशब्द करके वहाँ से उठ खड़ा हुआ। आकाश में उस महाशब्द की बड़ी प्रतिध्वनि उठी। उस शब्द को सुनकर वहाँ का रक्षक महासुर उस ओर दौड़ा, जहाँ कुमार था, वह वहाँ शीघ्र ही आया। बाहुओं से युद्ध में भिड़कर उस रूपिणि पुत्र कुमार ने उस महासुर-देव को वहाँ से फेंक दिया और झट से उसको जीत लिया। भयान्वित उस देव ने कुमार को अंगद (गदा) और सुन्दर कंकण युगल भेंट में दिया, साथ ही सुन्दर वस्त्र, हार और सब में सारभूत शेखर भी दिया। इस प्रकार उस देव ने उसका महान् आदर किया।

वह कुमार जब शल्यकगिरि (शराव पर्वत) को छोड़कर आ गया तब उन कुमारों ने पुन: उस प्रद्युम्न को वराह शैल (शूकराकार पर्वत) दिखाया और कहा—"हे कुमार, इस पर्वत के सम्मुख देखो, उसके समीप जहाँ भौंरे गुनगुना रहे हैं, उस गुफा को देखो उसमें जो प्रवेश करता है, उसको सुन्दर सम्पदा मिलती है।

घत्ता:— तत्क्षण वह मदन वहाँ चला, जहाँ वराह वेशधारी देव रहता था। उसने रूपिणी सुत उस कुमार को घेर लिया, तब कुमार ने भी उसके साथ युद्ध किया। ।। 135।।

---

(11) 1-2. अ प्रति में 'रओ करेवि गालु संठिउ'। 3. अ वस।

(11) (1) असुरेण। (2) प्रदिमनस्य। (3) गदं। (4) सामसारी। (5) सरावपर्वतात्। (6) सूकराकार। (7) समंतात प्रत्यक्षीभूत:।

(12)

हर-गल अलि-कज्जल कसण-काउ   पंचाणणु इव घणघोण राउ।
दुव्विसह णिसिय दाढा-करालु   वायर-खर खंधुद्धुसिय वालु।
[1]संकंतु ढुक्कु हरिणंदणासु   फणि-असुर-जक्ख रणे मद्दणासु।
किर संगरि भिडइ ण भिडइ जाम   मयणेण वि चलण-हणेवि ताम।
अच्छोडहु किर आढत्तु सिलहिं पच्चक्खु   जक्खु तहो जाउ इलहिं।
तिणि तूसिवि अप्पिउ पुप्फ-चाउ   पुणु विजय-संखु तिहु वण-णिणाउ।
अवरुवि पडिवण्णउँ किंकरत्तु   पुणरवि कुमारु तहो पासु पत्तु।
खल-खुद्द-पिसुण जे दुट्ठ-सील   जाणंतवि रूविणि-सुयहो लील।
ण मुणंति तो वि स-सहाउ धिट्ठ   ता कहिउ पयोवणु[1] सुणि कणिट्ठ[2]।

घत्ता— उहु दीसइ दूरत्थ तहि पइसेवि जो खणु रहइ।
अमराहिवहु समाणु सो संपय अविचलु लहइ।। 136।।

---

(12)

कुमार प्रद्युम्न को वराह-देव द्वारा पुष्पचाप एवं विजय शंख प्रदान

उस वराह-देव का शरीर महादेव के कण्ठ एवं भ्रमर तथा काजल के समान अत्यन्त काला था। वह सिंह के समान घनघोर गर्जना करने वाला था। दुस्सह, तीक्ष्ण दाढ़वाला था, बादर (मोटे), खर (तीखे रूखे) स्कन्ध तक घुसे बाल वाला था। फणी, असुर एवं यक्षों का रण में मर्दन करने वाले उस हरिनन्दन से शंका करता हुआ वह वराह, उस कुमार के पास आया। पुन: जब वह "युद्ध में इससे भिड़ूँ या नहीं "ऐसा सोच रहा था, तभी मदन ने उसे लात मारी और जब शिला पर ला पटका तभी वह (रूप बदलकर) यक्ष (के रूप में) भूमि पर प्रत्यक्ष हुआ। उस यक्ष ने सन्तोष कर उसे पुष्पचाप अर्पण किया। पुन: त्रिभुवन में निनाद ध्वनि करने वाला विजयशंख देकर उसका किंकरपना भी स्वीकार किया।

वह कुमार वहाँ से लौटकर पुन: वज्रदन्त के पास आ गया। वे सभी पुत्र तो खल, क्षुद्र एवं दुष्ट थे। रूपिणी-सुत की लीला को जानते हुए भी वे अपने धृष्ट स्वभाववश नहीं माने और उन्होंने एक पयोवन की बात उससे कही कि—"हे कनिष्ठ (लघु कुमार) सुनो—

घत्ता— "दूरी पर वह जो दिखायी देता है, उसमें प्रवेश कर जो क्षण भर तक वहाँ ठहरेगा। वह अमराधिप इन्द्र के समान ही अविचल सम्पत्ति प्राप्त करता है।"।। 136।।

---

(12) 1. अ रुंजः ब. रुंकं।

(12) (1) पयोवन नामेदं। (2) हे प्रद्युम्न।

(13)

जहिं मयारि भीसणा मुहोवमुक्क णीसणा।
गिरिंद भित्ति दारणा भमंत मत्त-वारणा।
स-रिंछ-चित्त-आउलं अणेय-कोल-संकुलं।
पवुक्करंत-वाणरं विचित्त कोइला-सरं।
तरुवरेहिं जं घणं कुमारु[1] तं पयोवणं।
पयट्ठु झत्ति जामहिं णिहालएइ तामहिं[2]।
मणोजवाहि[3]हाणओ खगो खगप्पहाणओ।
छलेण केण लद्धउ तरु समाणु वद्धउ।
णिएवि सो कुमारिणा सुतिक्ख-सत्थ धारिणा।
झडत्ति वंध छिण्णओ सो धाइउ पइण्णओ।
खगो-वसंतु जाणिओ पवंधिऊण आणिओ।
घत्ता— पुणु जंपिउ मणवेउ महो एमहि दय किज्जउ।
जण्ण णमिउ[4] सहसत्ति तं [1]पहु सयलु खमिज्जउ।। 137।।

---

(13)

पयोवन का वर्णन, वसन्त नामक विद्याधर मनोजव विद्याधर को बाँध लेता है किन्तु कुमार प्रद्युम्न उसे बन्धन मुक्त कर देता है

उस पयोवन में भीषण मृगारि थे, जो मुख से गर्जना छोड़ रहे थे। वहाँ वन में गिरीन्द्र रूपी भित्ति को विदारने वाले घूमते हुए मत्त गज थे, चित्त को आकुल करने वाले रीछों तथा अनेक कोलों (वराहों) से संकुल (व्याप्त) था, जो वुकरते हुए वानरों तथा कोकिलों के स्वरों से विचित्र था, जो घने वृक्ष-समूह से ढँका था, उस पयोवन में कुमार प्रद्युम्न ने वेगपूर्वक जब प्रवेश किया, तभी वह देखता है कि खगों में प्रधान मनोजव नामके खग को छल से कोई पकड़ लाया है और उसे वृक्ष से बाँध दिया है। सुतीक्ष्ण शस्त्रधारी कुमार ने जब उस खग को देखा, तब झट से उसके बन्धन काट दिये। वह खग भी बड़े वेग से दौड़कर भाग गया। वसन्त नामके खग ने जब जाना कि मनोजव भाग गया है, तब वह उसके पीछे भागा फिर मनोजव उसको बाँध कर ले आया।

घत्ता— इस पर मनोवेग (मनोजव) ने कहा—"मुझ पर अब दया कीजिए, जो मैंने सहसा नमस्कार नहीं किया, हे प्रभो, उन सभी (भूलों) को क्षमा कीजिए।"।। 137।।

---

(13) 1. अ. म.।

(13) (1) प्रद्युम्नः। (2) तावत्कालं। (3) मनोवेग नाम। (4) न नमस्कारकृतं।

(14)

उवयारिहिं जं ण किउ महायरु　　तं हउँ पणय महाभय-कायरु।
एहु वसंतु णाम विज्जाहरु　　मइँ छलेण वंधिवि चल्लिउ घरु।
तुम्हइँ महो भुअ वंध पमुक्कउ　　हउँ पुणु आयहो पुट्ठिहिं ढुक्कउ।
एमहि मइमि धरिउ खलु जाणिउ　　बंधिवि तुम्हहँ पासु पराणिउ।
एण[(1)] कज्जेण हुवउ वडं[1] तरु　　हउँ पुणु देव तुहारउ किंकरु[(2)]।
एउ भणेवि दिण्णउ बे विज्जउ　　जयसारियउ णिरु वि णिरवज्जिउ।
अवरु वि इंदजालु जणमोहणु　　सुरवर-णर-खेयर संखोहणु।
पुणु मयणइँ वसंतु मेल्लाविउ　　दोहिंमि तह खंतव्वु कराविउ।
णव-जोव्वण जं ण णयणाणंदणि　　दिण्ण वसंतेण वि णिय णंदणि।

घत्ता— सा परिणेवि कुमारु छुड्डु वि विणिग्गउ जामहिं।
अज्जुण-वणु णिव-सुवहि [2]पुणु संभाविउ तामहिं।। 138।।

(15)

तहिं अज्जुण-वणे　　संपत्तउ खणे।

---

(14)

कुमार प्रद्युम्न को विद्याधर मनोजव ने जयसारी एवं इन्द्रजाल विद्याएँ एवं विद्याधर वसन्त ने अपनी पुत्री नन्दनी का उसके साथ विवाह कर दिया

—"महाभय से कायर मैं उपकारी का महादर नहीं कर पाया, अब मैं उसे प्रणत होता हूँ। यह वसन्त नामका विद्याधर है जो छल से मुझे बाँधकर घर चला गया था। हे महाभुज आपने मुझे बन्धन से छुड़ाया है पुन: मैं उसके पीछे गया और अब मैंने भी उसे दुष्ट जानकर पकड़ लिया है और बाँध कर आपके पास लाया हूँ। इस कार्य में बहुत अन्तर (विलम्ब) हो गया। हे देव, अब मैं आपका किंकर हो गया हूँ।" ऐसा कहकर उस मनोजव ने उसे दो विद्याएँ दीं। एक तो निर्दोष जयसारी विद्या और दूसरी जन-मन-मोहिनी, सुर, नर एवं खेचरों को क्षुब्ध करने वाली इन्द्रजाल विद्या। पुन: मदन ने वसन्त को छुड़ाया और दोनों में क्षमाभाव करवाया। वसन्त (विद्याधर) ने भी नवयौवना, जगत् के नेत्रों को आनन्दित करनेवाली अपनी नन्दिनी नामकी पुत्री कुमार प्रद्युम्न को सौंप दी।

घत्ता— कुमार ने उस कन्या को परण लिया और वह जब वहाँ से शीघ्र ही चला तब पुन: उन सब राजपुत्रों ने उसे अर्जुन वन बताया।। 138।।

(15)

कुमार प्रद्युम्न को अर्जुनवन के यक्ष द्वारा पंचबाण युक्त पुष्प-धनुष, भीमासुर द्वारा पुष्प-शैया एवं पुष्प-छत्र की भेंट

तब वह कुमार क्षण भर में, उस अर्जुन-वन में पहुँचा तो उसके वन-रक्षक यक्ष ने उसे हलकारा। उन दोनों

---

(14) 1. ब. 'हुँ'। 2. ब तहो।

(14) (1) अंतरपंडित: नमस्कारे। (2) नि:पाप:।

तो वण-रक्खइ हक्किकउ जक्खइँ।
हुउ तहिं संगरु णिरु [1]साहिय करु।
जक्खु वि जित्तउ महियले खित्तउ।
तेण कुमारहो तिहुवण सारहो।
दिण्णु पुप्फ-धणु जिणइ जु तिहुवणु।
सहुं कुसुम-सरहिं कय[(1)] जयं पसरहिं।
तं गेण्हिवि खणे भीम-महावणे।
जहिं भा-भासुरु भीम-महासुरु।
तहो[(2)] विरय विसमु पयडिवि विक्कमु।
पुणु पाविउ लहु कुसुम-सयण सुहु।
आयव-वारणु कुसुम-घणाघणु।
जं चिंतइं खलु किंपि अमंगलु।
तंपि सुमंगलु मणइच्छिउ फलु।
होइ अणंगहो हय-भय-भंगहो[(3)]।

घत्ता— पुणु विउल-वणहो संचालियउ मयणु तेहिं खेयर-सुयहिं।
इह [2]पइसतहो संपय पवर जंपिउ उच्चाइय भुवहिं।। 139।।

में संगर युद्ध हुआ। सधे हुए हाथों वाले कुमार ने यक्ष को जीत लिया और (उठा कर) पृथिवी पर फेंक दिया तब उस यक्ष ने त्रिभुवन में सार उस कुमार को जगत् में जय का प्रसार करने वाले पंचबाणों के साथ पुष्प-धनुष दिया जो त्रिभुवन को जीतने वाला था। उस धनुष को ग्रहण कर वह कुमार भीम नामक महावन में पहुँचा। जहाँ प्रभा से भास्वर भीम नामका महासुर रहता था। उस भीमासुर को हराकर (प्रद्युम्न ने) अपने पराक्रम को प्रकट किया। उस यक्ष से भी शीघ्र ही कुमार ने सुख देने वाली पुष्प शैया प्राप्त की। गर्मी-वर्षा को रोकने वाला पुष्प-छत्र प्राप्त किया (प्रदान करते समय उस यक्ष ने कहा—भय-भंग से रहित यहं अनंगकुमार) उस घनाघन कुसुम-छत्र से मन में जो सोचेगा वही मनवांछित फल पायेगा, यदि अमंगल होगा तो वह सुमंगल में ही बदल जायेगा।

घत्ता— पुन: वे खेचर पुत्र उस कुमार को विपुलवन की ओर ले गये और उन्होने अपने हाथ ऊपर उठाकर कहा—"जो इस वन में प्रवेश करेगा, वह प्रवर सम्पत्ति प्राप्त करेगा।"।। 139।।

---

(15) 1. अ. ज°। 2. अ. ब. °सइतहे।

(15) (1) जगत्रये। (2) भीमस्य। (3) भयभेद।

(16)

तं णिसुणेविणु तहि मि पइट्ठिउ जहिं जियंतु गिरिवरु पसिद्धउ।
जो[1] फणि-गण-खयरामर भणहरु पालिय सवण-संघु णं गणहरु।
णव-पल्लव-घण-दुमहिं समिद्धउ कप्पंघिउ[2] व कुसुम-फल रिद्धउ।
तहो[3] तले कुम्म-मयर-झस संगिणि पवहइ विमल तरंग-तरंगिणि।
तहिं सुणियड[1] तमाल तरुवर तले ससि-किरणुज्जल फलिह-सिलायले।
तहिं उवविट्ठ-दिट्ठ एक्कलिय तरुणि तरुण-जण[2]-मणसर-भल्लिय।
लच्छिव पोमासणे सुपरिट्ठिय अक्खमाल [3]कर-कमला[4]हिट्ठिय।
वर अंगुलि-मणिगणु ढालंतिय फुरियारुण विभाइ णह-पंतिय।
धवलुज्जल वर-वत्थ णियच्छिय कय णासग्ग-दिट्ठि सुविसिट्ठिय।
सा पेच्छवि भयणु विंभउ मणे भणिउ वसंत-खयरु तें तक्खणे।

घत्ता— लायणु-वणु जोव्वणु वि एहु[4] पुहविहि अण्णु ण णारिहि।
णउ दीसइ इहु सरि सग्ग लउ जण-मण-णयण पियारिहि।। 140।।

---

(16)

कुमार प्रद्युम्न विपुलवन में एक लावण्यमती तरुणी को देखता है

विद्याधर भाइयों का कथन सुनकर कुमार ने उस वन में प्रवेश किया, जहाँ का जयन्तगिरि सुप्रसिद्ध है। वह पर्वत फणिगण, खचर एवं अमरों का उसी प्रकार पालन करता है जिस प्रकार गणधर श्रमण-संघ का पालन करता है। वह विपुलवन नव-पल्लवों वाले सघन वृक्षों से समृद्ध एवं पुष्प, फलों से समृद्ध था, ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह वन कल्पवृक्षों से ही युक्त हो।

उस पर्वत के तले कूर्म (कछुवा), मगर एवं झष (मत्स्य) से युक्त विमल तरंग वाली तरंगिणी नदी बहती है। उसी के तट पर तमाल-वृक्ष के नीचे शशि किरण के समान उज्ज्वल एक स्फटिक शिला तल पर अकेली बैठी, तरुण जनों के मन में बाण भेदने वाली लक्ष्मी के समान पद्मासन पर स्थित, अपने कर-कमलों में अक्षमाल धारण किये हुए, उत्तम अंगुली से मणिगण को ढालती हुई (अर्थात् मणिमाला जपती हुई), स्फुरायमान, अरुणाभ नख-पंक्ति से विभूषित धवल, उज्ज्वल, श्रेष्ठ वस्त्रों से वेष्टित विशेष प्रकार से नासाग्र दृष्टि किये हुए एक तरुणी को देखा। उसे देखकर वह मदनकुमार अपने मन में विस्मित हुआ और वसन्त-विद्याधर से तत्काल बोला—

घत्ता— यौवन एवं लावण्य समूह में इस तरुणी के समान पृथिवी पर अन्य नारी नहीं है। लोगों के नेत्र एवं मन को प्रिय लगने वाली इस तरुणी के समान स्वर्ग में भी कोई दिखायी नहीं देता।"।। 140।।

---

(16) 1. ब. ए। 2. अ ×। 3-4. अ ×।

(16) (1) पर्वत। (2) कल्पवृक्षवत्। (3) पर्वतस्य। (4) एष।

अवहट्ट्य

(17)

सुलक्खणा सुंदरि पंकयाणणा कुरंग-डिंभादि ससुक्ख भायणा।
घ-ुव्व [illegible] णियंव-भारेण सुहाइ[1] णामिया।
टसत्ति भज्जंति [1]सुणेवि भाइणा सुणाहि देसम्मि कयं विहाइणा[2]।
सिणद्ध-रोमावलि थंभ-संचयं णिवद्ध णं गुज्झ पवसि संचयं।
तमाल-लीलालि सुणिद्ध-केसिणी णवल्ल-वाला सुणवल्ल-वासिणी।
णवल्ल-झाणम्मि वणे परिट्ठिया णवज्जु-वाणेण सरेण दिट्ठिया।
मयंधलीलालस इब्भ-गामिणी किं अच्छरा रंभ सुरिंद भामिणी।
मणुब्भवो किं भव-चक्खु[3] भीअवो सुविट्ठि रूवें णवइच्छ आइओ।
इमीसु वासस्स संमाण[4] कारणे चरेय-चंदायणयं णहंगणे।
किमंपि वट्ठेइ किमंपि झिज्जए सकालिमा तेण ससि समज्जए।
पहुल्ल-राईव समाणु वत्तउ पपुच्छिंउ तेण खगो-वसंतउ।
ठिया वणंते ललणाअ कंदरी अणोव्वमा पेच्छय णंति सुंदरी।

---

(17)

तरुणी का नख-शिख वर्णन एवं उस पर प्रद्युम्न आकर्षित होकर उसके साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा करता है

अवहट्ट्य — सुलक्षणा, पंकजानना, मृगशिशु के साथ सुखपूर्वक रहने वाली धन के समान कठोर एवं सुपुष्ट स्तनवाली, क्षीण कटि वाली, नितम्ब-भार से नम्र होने के कारण सुन्दर लगने वाली, (कटि भाग के) टस-टस कर टूटती हुई, सुनकर भ्राता, विधाता ने सुन्दरनाभि प्रदेश की रचनाकर उसमें आगे स्निग्ध रोमावलि जटित (दो पैर रूपी) स्तम्भ-संचय किया, मानों गुह्य-प्रदेश का उससे निबन्धन ही कर दिया हो। तमाल वृक्ष की लीला (शोभा) एवं भ्रमर के समान काले केश वाली, नई नवेली सुन्दर नवीन वस्त्र धारिणी, निश्चल ध्यान में मग्न होकर वह (तरुणी) वन में बैठी थी। उसे नवयौवन वाले कामदेव— प्रद्युम्न ने देखा और मन में विचार करने लगा कि "मदोन्मत्त हाथी के समान लीलापूर्वक चलने वाली वह कोई अप्सरा है, या रम्भा अथवा सुरेन्द्र की भामिनी? वह मनुष्य से उत्पन्न है अथवा महादेव के नेत्र से? अथवा शची ही इस नवेली के रूप में यहाँ आ गयी है?

इस सुगन्धिनी (पद्मिनी वर्ण की श्रेष्ठ) तरुणी के सम्मान के लिये ही मानों चन्द्रमा नभरूपी आँगन की परिक्रमा किया करता है। वह (चन्द्रमा) कभी तो (उस तरुणी को देखकर हर्ष अथवा विषाद के कारण) बढ़ता है और कभी क्षीण हो जाता है। (उसके लावण्य से विषाद युक्त होकर) मानों चन्द्रमा ने उसीसे कालिमा अर्जित कर ली है।"

उस तरुणी का मुख पृथुल राजीव के समान था। उसे देखकर उस प्रद्युम्न ने विद्याधर वसन्त से पूछा—"वन के अन्तिम भाग में स्थित अनुपम यह ललना कौन है? जो देखने में स्वर्ग सुन्दरी जैसी लगती है?" (यह सुनकर—)

---

(17) 1. अ. 'त्तु।

(17) (1) शोभते। (2) विधाना। (3) ईश्वरनेत्रा। (4) सन्मानकरणे।

कहइ वसंतु णिसुणि पहु वम्महं सुर-णर-विसहर व रण दुम्महं।
मरगय-मणि-समूह सिहरड्ढहो इह दाहिण-सेढिहि वेयड्ढहो।
सरि-सरवर-उववणे विंभिय सुरु अत्थि रयणसंचउ णामे पुरु।
तहिं विज्जाहरवइ मारुवजउ वाउवय देविहे कय(5) सुहसउ।
इह पुणु ताहे दुहिय णामइ रइ वियसिय कमलाणण पाडलगइ।
वणे पइसिवि णणट्ठिय अच्छइ वरु मयरद्धउ कोवि समिच्छइ।
पुणु पज्जुण्णु वि भणिउ वसंतइं तहिं पिहुलवणे वसंतई(6) संतइं।
इह रइ तुहुं जि देव मयरद्धउ आयइं(7) तव-झाणहो फलु लद्धउ।
पाणिग्गहणु कुणहि म चिरावहि णिय-सामग्गि पुरंधिहि दावहिं।
परिणेसमि भणेवि गउ तेत्तहिं राउ कालसंवरु थिउ जत्तहिं।
ता तक्खणे मंडउ तिणि रइयउ विज्जामउ दिव्वंबरु छइयउ।

घत्ता— रामइं सिरेण णमंतु पेच्छिवि णयणाणंदणु।
वइसारिउ उच्छंगि सिरे चुंबेवि णिय णंदणु।। 141।।

वसन्त ने कहा—"सुर, नर एवं विषधरों के रण में दुर्मथ, काम-प्रभो सुनिए—"मरकत मणि समूह की शिखरों से आढ्य इस विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में नदी सरोवर एवं उपवनों से देवों को विस्मित करने वाला रत्नसंचयपुर नामका एक पुर है।

वहाँ विद्याधरों का पति मारुवजय (मरुद्वेग) नामका राजा राज्य करता था। उसकी सैकड़ों प्रकार के सुख देने वाली देवी का नाम वायुवेगा था। उस रानी की विकसित कमल के समाम मुख वाली तथा पाटल गतिवाली रतिनाम की पुत्री थी। वही इस पृथुलवन में प्रवेश कर तथा यहाँ रहती हुई वह किसी मकरध्वज नामक वर की प्राप्ति की कामना में ध्यान में अवस्थित है। पुन: वसन्त ने प्रद्युम्न से कहा—"हे देव यही वह रति है और आप हैं वही मकरध्वज। आप आ गये हैं, उसने आपके रूप में अपने ध्यान का फल पा लिया है। अत: अब इसके साथ पाणिग्रहण कीजिए, देर मत लगाइए। अपनी (इस कन्या रूपी) सामग्री को पुरन्ध्रियों द्वारा दिलवाता हूँ।" "मैं विवाहूँगा।" इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वह कुमार वहाँ गया जहाँ कालसंवर राजा स्थित था। उसी समय उस विद्याधर वसन्त ने मण्डप की रचना की तथा उसे विद्यामय दिव्याम्बरों से आच्छादित कर दिया।

घत्ता— राजा ने सिर झुकाये हुए नयनानन्दकारी अपने उस नन्दन प्रद्युम्न को देखकर उसका माथा चूम कर उसे गोद में बैठा लिया।। 141।।

---

(17) (5) सुखसत। (6) शिष्ट नमन। (7) अनया।

(18)

करेवि पसंसण मुहुं जोवंतइं पुणु पमणिउं कंचण [1]पह कंतइं।
जाहि भयण णिय जणणिहिं राउले कणय-कलस सउहलयर माउले।
ता संचलिउ तहिमि पिय-वयणइं जायवि-जणणि णमंसिय भयणइं।
सो वि णिहालिवि णयण विसालइं दिण्णासीसइं कंचणमालए।
चिंतिउ इह रज्जइ किं किज्जइ जहि ण कुमारु एहु माणिज्जइ।
णव-जुवाणु बहु लक्खण भरियउ अवरु वि मयरिवउ अवयरियउ।
वरविज्जउ साहिवि संपायउ सरसु अणंगु सल[2]क्खल कायउ।
एहु रमंतहं णवि काइम छलु रममि लेमि हउ-हउ संसारहो फलु।
एउ चिंततहिं भणिउ कुमारइँ पुरिसोत्तम तणयइँ णर सारइँ।
णिय आवास जामि जइ बोल्लहिं दे आएसु अम्मि मोकल्लहिं[(1)]।

घत्ता— ता जंपिउ लज्ज परव्वसए घरु जाएवि लहु आवहि।
णवि फिट्टइ उव्वाहु लहु सुंदर तहिं म चिरावहि।। 142।।

---

(18)

(धर्ममाता) कंचनप्रभा की (धर्मपुत्र) प्रद्युम्न के प्रति प्रबल काम-भावना

राजा कालसंवर ने नन्दन—प्रद्युम्न के स्वर्ण की प्रभा के समान कान्ति वाले मुख की ओर देखते हुए प्रशंसा कर पुनः कहा—"हे मदन, राजकुल (अन्तःपुर) में रमाओं से व्याप्त कनक कलश वाले सौधतल में अपनी माता के पास चले जाओ।" पिता के वचन सुनकर वह उस भवन में चला और वहाँ जाकर उसने जननी को नमस्कार किया। कंचनमाला ने नयनविशाल उस मदन को देखकर आशीष तो दी किन्तु वह मन में विचार करने लगी कि—"इस राज्य का क्या किया जायेगा, यदि यह कुमार (मुझे) स्वीकार न करे? यह कुमार अभी नवयुवक है, अनेक लक्षणों से भरा-पूरा है और भी, कि इसमें मकरवेग (काम का वेग) उतर आया है, विविध विद्याएँ साध कर आया है, यह सरस अनंग श्लक्षण (चिक्कण) काय वाला है, अतः इससे रमते हुए मैं कोई भी छल नहीं करूँगी। मैं इससे रमूँगी और संसार का फल लूँगी।" अपने मन में इस प्रकार के विचार करने वाली उस रानी से पुरुषोत्तम के तनय नरेन्द्र उस कुमार ने पूछा—"यदि आप बोलें तो मैं अपने आवास को चला जाऊँ। हे माता, आदेश देकर मुझे छोड़ दीजिए।"

घत्ता— तब लज्जा से परवश होकर वह (रानी) बोली—"हे सुन्दर, घर जाकर भी शीघ्र चले आना। वहाँ देर मत लगाना। मेरा शीघ्र ही उद्वाह (भोग) करो, अब वह (मेरा राग) छूटेगा नहीं।"।। 142।।

---

(18) 1. अ समप०। 2. अ सभवखण।

(18) (1) हे कुमार तव विद्याबल समृद्धस्य अस्मादृशैः मनुष्यैः किं आदेशदातु ॥ंध्यं भवति अपितु नमसचेष्टान्त्वंकितजानासि।

(19)

गउ णिय णिलउ कुसुमसरु जामहिं　　तल्लोबेल्लि छुट्टि्ट तहे तामहिं।
दरकारहु णिय धाइ पएसिय　　भणिउँ माइ तहे [illegible] गवेसिय।
लहु आणहिं मणसिउ म चिरावहि　　सो कुसुमसरु तुरिउ महु दाविहु।
ता जाइवि धाइएँ बोलिज्जइ　　तुह मइरिहे किंपि ण मुणिज्जइ।
असुहत्थी कलमलउ पयट्टइ　　तल्लोवेल्लि सरीरहो वट्टइ।
तुहुमि अणेय[(1)] पमेय वियक्खणु　　चट्ठ णिहालहि तहिं जाइवि खणु।
मणसिउ-मणे चिंतइ किं कारणु　　जणणिहिं तणउँ सिग्घु हक्कारणु।
एउ चिंतिवि पुणु तहिमि पहुत्तउ　　अम्मि देहि आएसु पवुत्तउ।

घत्ता— जंपइ　कंचणमाल　जोव्वण-रूव-समिद्धहो।
गण्णु कोइ अम्हारिसहिं तुहु विज्जावल सिद्धहो।। 143।।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइ सिद्ध विरइयाए [1]कुमार बहु विज्जालाभ माताभिलाष वंन्नण णाम[2] अट्ठमी संधी परिसमत्तो।। संधी: 8।। छ।।

---

(19)

कामविह्वल होकर कंचनमाला कुमार प्रद्युम्न को दूती द्वारा अपने निवास पर बुलाती है

जब वह कुसुमशर मदन अपने निलय को चला गया तब उस रानी (के मन) में बड़ी तड़फड़ी छूटी। देर करने वाले उस मदन के पास उसने अपनी धाय भेजी। उसे माता—रानी ने आदेश दिया कि—"तू उस मनसिज—मदन को शीघ्र ही ले आ, देर मतकर, उस कुसुमशर को तुरन्त ही मेरे सामने ला दे।"

तब जाकर उस धाय ने (उस मदन से) कहा—"तुम्हारी माता को कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वह अत्यन्त व्याकुल होकर कलमला रही है। उसके शरीर में बड़ी तड़फन हो रही है। तुम अनेक प्रमेयों में (विषयों में) विचक्षण हो।

अत: चट से क्षण भर में पहुँच कर उसे देख लो। "यह सुनकर वह मनसिज अपने मन में विचारने लगा—"क्या कारण है, माता का शीघ्र ही बुलवाने का?"

ऐसा चिन्तन कर वह पुन: माता के पास पहुँचा और बोला—"हे माता मुझे आदेश दीजिए।"

घत्ता— कंचनमाला यौवन एवं रूप से समृद्ध विद्या और बल से सिद्ध उस कुमार से बोली—"तुम्हारे मन में हम जैसी महिलाओं की क्या गिनती?"।। 143।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली सिद्ध कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में कुमार द्वारा बहु-विद्या-लाभ एवं माता की विषयाभिलाषा सम्बन्धी वर्णन करने वाली **आठवीं सन्धि** समाप्त हुई।। सन्धि: 8।। छ।।

---

(19) 1.2. अ.×।

(19) (1) प्रमाण।

णवमी संधी

(1)

पुणु हरि-णंदणेण, [1]अरिमद्दणेण[2] वज्जरिउ माइ अणजुत्तउ।
जं पइँ [3]जंपियउ [4]महो कंपियउ[5] तेण वयणें हियउ णिरुत्तउ।। छ।।

खंडयं—

हउँ तुव अम्मि पेसणो रायसासणो कहहि कहमि भुल्लो।
जइवि पयंपि जणियउ करमि भणियउ तुज्झु भिच्च तुल्लो।। छ।।

तं णिसुणिवि चल-लोयण विसाल विसेविणु पभणइ कणयमाल।
भो-भो सुंदर पुक्खर-दलक्ख भो मयरकेय दक्खाण-दक्ख।
महो मणहं पियारउ कुणहि कज्जु जेम तो भुंजावमि सयलु रज्जु।
तं आयण्णिवि पज्जुण्णु चवइ चिरु-जीवउ पहु संवरु णिवइ।
तुहुँ जणणि भुवणे सो जणणु जासु किं रज्जे महु फलु अहिउ तासु।
इउ जंपिवि पुणु उट्ठिउ तुरंतु गउ सणिहेलणु मणि-गण फुरंतु।

नवमी सन्धि

(1)

रानी कनकमाला (कंचनप्रभा) की कामावस्थाएँ। कुमार प्रद्युम्न किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है

पुन: अरिमर्दन हरिनन्दन ने कहा—"हे माता, आपने जो कहा, वह अनुपयुक्त है। आपके इन वचनों से मेरा हृदय अत्यन्त काँप रहा है।। छ।।

स्कन्धक— हे अम्बे, मैं तो आपका प्रेषण (दास) हूँ। राजशासन (आज्ञा) कहिए (उसे पालूँगा)। मैं आपको भूल कैसे सकता हूँ।" यद्यपि आपने मुझे जन्म दिया है। तो भी मैं आपके वचनों का पालन भृत्य के समान करता हूँ।। छ।।

उसको सुनकर विशाल एवं चंचल लोचनवाली वह रानी कनकमाला हँसकर बोली—"हे सुन्दर, हे कमलदलाक्ष, हे दक्षों के दक्ष, हे मकरकेतु, मेरे मन को प्रिय लगने वाला कार्य करो। जिससे कि मैं तुम्हें समस्त राज्य को भोग करा सकूँ।" यह सुनकर प्रद्युम्न बोला—"प्रभु कालसंवर नृपति चिरकाल तक जिएँ, इस लोक में जिसकी तुम जैसी माता और कालसंवर जैसा पिता है, उसके राज्य में मुझे और अधिक फल क्या हो सकता है?" इस प्रकार कहकर और उस रानी की अवहेलना कर मणिगणों से स्फुरायमान वह कुमार तुरन्त उठा और अपने निवास स्थान पर चला गया।

---

(1) 1-2. अ.× । 3. अ क । 4-5. अ.× ।

ता तहि विरहाणलु तवइ अंगि हुव-झत्ति सरीरहो अवर भंगि।
णियमणे चिंततिहे कुसुमवाणु मुहु सुसइ-खसइ एक्कक्क पाणु।
तणु डाहु-कंपु-णिस्सास-सुवइँ पस्सेउ पवरु परियणहो कुवइँ।
मलयाणिलु-सीयलु कमल-सयणु जलसिंचणु-चामर-चारु पवणु।
घणसारु-हारु-चंदण जलद्दु ण सुहाइ मयच्छिहे किं पि भद्दु।
इसीसि सुहुमु पुणु साव भणइ पज्जुण्णु सरीरहो चेट्ठ मुणइ।

घत्ता— पुणु धाइय तुरिउ विंभिय भरिउ जाएवि पज्जुण्णहो बोल्लिउ।
तुह जणिहिं तणउँ अइ छण-छणिउँ सुणि कुमार तणु डोल्लिउ।। 144।।

(2)

खंडयं—

तं णिसुणेवि सुंदरो जो विहुरम्मि अकंदरो।
जं खयरामर मणहरं पुणु आयउ मायाहरं।। छ।।

तहिं आएवि जाम उवविट्ठउ विज्जाहरइँ कुसुमसरु दिट्ठउ।
हाव-भाव-विब्भम दरिसंतिए वोल्लाविउ विवरे रएं भंतिए।

तब उस रानी के अंगों में विरहानल तपने लगा और शीघ्र ही उसके शरीर का भंग होने लगा (अर्थात् शरीर टूटने लगा)। वह विरहिणी अपने मन में उस कुसुमबाण—प्रद्युम्न का चिन्तन करने लगी। उसका मुख सूखने लगा, प्राणों का एक-एक क्षण खिसकने लगा, शरीर जलने लगा, कम्पन होने लगा, दीर्घ श्वासें चलने लगीं, पसीना चूने लगा और परिजनों से क्रुद्ध रहने लगी। उस मृगाक्षी को शीतल मलयानिल, कमलशैया, जलसिंचन, चामरों की चारु-पवन, घनसार (कपूर), हार और जल से आर्द्र चन्दन जैसी भद्र वस्तुएँ भी नहीं सुहायीं। वह मन्द-मन्द सूक्ष्म बोल बोलने लगी। अपने शरीर की चेष्टाओं से वह प्रद्युम्न को ही मानती रही।

घत्ता— रानी कनकमाला (कंचनप्रभा) की वह धाय विस्मय से भरकर तुरन्त ही प्रद्युम्न के पास जाकर बोली—"हे कुमार, सुनो, तुम्हारी जननी का शरीर अत्यन्त छनछना कर डोल रहा है। ।। 144।।

(2)

काम विह्वल होकर रानी कंचनमाला कुमार प्रद्युम्न से प्रणय-निवेदन करती है

स्कन्धक— उस धाय की बात को सुनकर दुःखियों के दुःख को दूर करने वाला वह सुन्दर प्रद्युम्न खचरों एवं अमरों के मन को हरने वाला माता के घर आया।। छ।।

वह कुसुमशर प्रद्युम्न आकर जब वहाँ बैठा विद्याधरी माता ने उसे घूर कर देखा। वह उसे हाव-भाव विभ्रम दरसाने लगी। लड़खड़ाती एवं भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली बोली बोलने लगी। उस रानी ने अपने पीन उत्तुंग

पयडिवि पीणात्तुंग-पयोहर पच्छाइय ण किंपि ऊरुयंवर।
णाहि-पएसु वि तहय वलित्तउ दरिसइ रोमावलि संजुत्तउ।
जह-जह सा परिहास पमेल्लइ तह-तह पज्जुण्णहो मणु डोल्लइ।
पभणिउ किं किउ तणु विहलंचलु माइ-माइ संवरि चेलंचलु।
ता कयली-कंदल सोमालइँ मयणु पवोच्चइ कंचणमालइँ।
हउँ ण माइ तुहु अवरइँ जणियउ मइ विणु पुत्तु भणेवि मणि गणियउ।
राय कालसंवर सहु लीलएँ हउँ गय आसि जाम वण-कीलएँ।
खयर-महाडवि तक्खय-गिरिवरे तहिं तुहुँ लद्धु वणम्मि सिलोयरे।

घत्ता— पेच्छवि वालु तहिं घण-विडवि[1] जहिं, उयरेवि विमाणहो रायइँ।
पुणु महो अप्पियउ, मण कप्पियउ[2] तं कहमि तुज्झु अणुरायइँ।। 145।।

(3)

खंडयं—

जइयह एहु सयाणउ होसइ वालु जुवाणउ।
तइयह मएँमि रमिव्वउ एक चि[1]रकालु गमिव्वउ।। छ।।

पयोधर प्रकट कर दिये। उरु प्रवरों को जरा भी नहीं ढँका। इसी प्रकार रोमावलि युक्त त्रिवलि वाला नाभि प्रदेश भी खोल दिया। जैसे-जैसे वह रानी हँस-हँस कर श्वास छोड़ती थी वैसे ही वैसे प्रद्युम्न का मन भी डोल जाता। यह देखकर कुमार बोला कि—"हे माता, तूने अपने शरीर को इतना विकल क्यों कर दिया? हे माई, हे माई, अपने अंगों को वस्त्रांचल से ढँक।" तब कदली दल के समान सुकुमार सुन्दर वह कंचनमाला मदन से बोली कि—"मैं तुम्हारी माता नहीं हूँ। तुम्हें तो दूसरी माता ने जन्म दिया है। तुम अपने मन में ऐसा गुनो कि मैं बिना पुत्र की ही हूँ।"

(फिर वह मदन को पूर्व वृत्तान्त सुनाते हुए बोली) —"एक बार जब मैं राजा कालसंवर के साथ लीलापूर्वक वन की क्रीड़ा के लिए गयी थी तब वहाँ खदिरमहाटवी में तक्षकगिरि पर वन में शिला के उदर में तुम्हें पाया था।"

घत्ता— जहाँ घने-घने वृक्ष थे, वहाँ तुम जैसे बालक को देखकर राजा कालसंवर विमान से उतरे और तुम्हें लाकर मेरे लिये अर्पित किया। तब मैंने उसी समय अपने मन में तुमसे अनुराग करने की कल्पना की थी, वही तुम्हें कह रही हूँ।"।। 145।।

(3)

कुमार प्रद्युम्न रानी कंचनप्रभा की भर्त्सना कर उदधिचन्द्र मुनिराज से उसका पूर्व-भव पूछता है

स्कन्धक— "जब यह बालक सयाना होगा और जवान होगा, तब मैं इसके साथ रमूँगी और इस प्रकार चिरकाल व्यतीत करूँगी।। छ।।

---

(2) (1) वृक्ष। (2) विकल्पितं।

(3) 1. अ. कि।

ताम कुमारहो हियवउ कंपिउ　　पभणिउ माइ-माइ किं जंपिउ।
किं गह-गहिय अम्मि किं भुल्लिय　　चवहि अजुत्तु किण्ण मणि सल्लिय।
उत्तमकुल किं एउ भणु वुच्चइ　　जं जिविला[1] इह तणइ ण विच्चइ।
मायइँ सहु परयार-रमंतहँ　　किं कुलधम्मु होइ भणु संतहँ।
कणयमाल पुणु भणइ कयायरि　　संवरु जणणु ण हउँ तुह मायरि।
किम संगत्तणु[2] पइसहु वट्टइ　　चित्ति महारइ एहु जि पयट्टइ।
पुणु मयणइँ पवुत्तुह जाणउँ　　तुहु जि जणणि पिउ संवरु राणउँ।
एउ जंपिवि णिब्भंछिवि णिग्गउ　　पुणु जिणमंदिरे झत्ति समागउ।
मयणें णिज्जिय मयणु णमंसिउ　　थुइ दंडयहिं अरुहुँ सुपसंसिउ।
पुणु जंपिउ कुसुमसरु वियारउ　　उवहिचंदु णामेण भडारउ।
जो मय-माण-मोह-भय चत्तउ　　मुणिम तिणाणु तिगुत्तिहिं-गुत्तउ।
घत्ता— वय-संजम-धरणु, णिज्जिय-करणु परमेसरु पाव-खयंकरु।
जो अदुगुंछियउ सो पुंछियउ[3] कुसुमसरइं सत्त[4] सुहंकरु।। 146।।

तब कुमार का हृदय काँप उठा और बोला—"हे माई, हे माई, यह क्या कह दिया? हे माँ, क्या तुम ग्रह (भूत) से ग्रसित हो गयी हो अथवा क्या तुम मुझे भूल गयी हो?" ऐसा अयुक्त कहते हुए क्या मन में चुभन नहीं होती? उत्तम कुल वाले क्या ऐसे वचन अपने मुख से कहते हैं? इस प्रकार से बोलने वालों की जिह्वा टूट क्यों नहीं जाती? "माता तथा परदारा के साथ रमण करने वाले मनुष्यों का क्या कुल-धर्म सुरक्षित रह सकता है?" यह सुनकर कनकमाला पुनः आदर करती हुई बोली—"न तो कालसंवर तुम्हारा पिता है और न मैं तुम्हारी माता। तुम्हारे साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? (अर्थात् पुत्रपने का कोई सम्बन्ध नहीं)। इसीलिए मेरे चित्त में यह महारति प्रवर्त्त रही है।" यह सुन कर पुनः मदन ने कहा—"किन्तु मैं तो यही जानता हूँ कि तुम मेरी माता हो और कालसंवर राजा मेरे पिता।" ऐसा कहकर और माता की भर्त्सना कर वह प्रद्युम्न वहाँ से निकल गया और तत्काल ही जिनमन्दिर में पहुँचा। उस मदन ने मदन को जीतने वाले जिनेन्द्रदेव को नमस्कार किया। स्तुति और दण्डकों से अर्हन्त की प्रशंसा कर वन्दना की।

पुनः उस कुसुमशर (प्रद्युम्न) ने काम के विदारक मद, मान, मोह और भय से त्यक्त, तीन ज्ञानधारी तथा त्रिगुप्ति से गुप्त उदधिचन्द्र नामके जो भट्टारक थे,

घत्ता— जो व्रत, संयम के धारी हैं, इन्द्रियों के विजेता हैं, पापों के क्षय करने वाले परमेश्वर हैं, जो आनन्दित हैं, सब जीवों के सुख को करने वाले हैं, उन उदधिचन्द्र नामके भट्टारक से कुसुमशर प्रद्युम्न ने पूछा।। 146।।

---

(3) (1) जिह्वाणां। (2) लगाई। (3) पृष्टः। (4) जीवाना।

(4)

खंडयं—

छुडु भव्वयणु समुट्ठिओ जइ एयंति परिट्ठिओ।
ता मयणेण पयासियं जं जणणी विण्णासियं[1]।। छ।।
कुसुमसरु पयंपइ मुणि-पहाण भो णियम-सील-संजम-णिहाण।
महो उवरि जणणि अहिलासु कुणइँ कुल-लंछुण अयसु ण चित्तें मुणइँ।
मं तणय मिसेण जंपइ अजुत्तु पभणइ हउँ जणणि ण तुहु जि पुत्तु।
किं कारणु एउ पयडहि मुणिंदु भव्वयण पवर पोक्खर[2] दिणिंदु।
तं णिसुणेवि सुर-णर-खयर वंदु सुणि मयण पयंपइ मुणि-वरिंदु।
इह अच्छि भरहे-मगहाहिहाणे वर विसए[3] विविह विसयह[4] पहाणे।
साकेयणयरि तुहु आसि राउ महु [5]णाम अवरु तुव अणुउ भाउ।
कइढहु णामें णवि गुणणिहाणु जुवराउ सु तुहुँ पुणु मूल ठाणु।
जा रज्जु करहु अखलिय पयाव अवधीर वीर अरिदलण भाव।
ता वडउरु पहु णिरु अतुल थामु मंडलिउ कोवि कणयरहु णामु।

---

(4)

मुनिराज द्वारा रानी कंचनप्रभा का पूर्वभव-कथन

स्कन्धक— जब सभी भव्यजन उठकर चले गये और यति एकान्त में बैठे थे तभी उस मदन ने वह सब प्रकाशित किया जो माता ने विज्ञापित किया था।। छ।।

कुसुमशर—प्रद्युम्न ने कहा—"हे मुनि प्रधान, हे नियम, शील एवं संयम के निधान, मेरे ऊपर जननी भोगाभिलाषा (प्रकट) करती है। वह अपने चित्त में कुल-लांछन तथा अयश को नहीं समझती। मुझसे पुत्र के बहाने वह अयुक्त बोलती है और कहती है कि "न मैं तेरी माता हूँ और न तुम मेरे पुत्र।" आप भव्यजन रूपी पुष्करों (कमलों) के लिये दिनेन्द्र समान हे मुनीन्द्र, उसका क्या कारण है, उसे प्रकाशित कीजिए उसे सुनकर सुर, नर एवं खचरों से वन्द्य मुनिवरेन्द्र बोले—"हे मदन सुनो।

इस भरतक्षेत्र में विविध देशों में प्रधान मगध नामका एक उत्तम देश है। उसमें एक साकेत नगरी है। तुम अपने पूर्वभव में वहाँ के राजा थे। तुम्हारा नाम मधु था और तुम्हारा छोटा भाई कैटभ नाम से प्रसिद्ध था, जो गुणों का निधान था। तुम्हारे चरणमूल स्थान में वह युवराज था। शत्रु वीरों का तिरस्कार एवं उनके दलन में जब तुम अस्खलित प्रताप युक्त राज्य कर रहे थे। तभी अतुल बलधारी कनकरथ नामका माण्डलिक वडपुर का स्वामी हुआ।"

---

(4) (1) आरोपितं। (2) कमल। (3) देस। (4) देस्तैं। (5) मधुनाम।

घत्ता— तहो णव कणयप्पह इह कणयप्पह णामेण आसि पिय मणहर।
सा पइँ हरिवि णिय तुह पासि ठिय अइवियड-रमण-घण-थणहर।। 147।।

(5)

खंडयं—

कंचणरहं कुल उत्तिया सा चिर भवे पइँ भुत्तिया।
तेण अहिलासहि कारणं तं भय लज्ज णिवारणं।। छ।।

तहिँ कालें णिमित्तु तहेवि कोवि णिय भायहो ढोएवि रज्जु सोवि।
पुणु घोरु वीरु तवचरणु चरेवि आउक्खइँ सण्णासेण मरेवि।
अणु(1) परिवाडए सोलहमें सग्गे कइडिहु वि तुहुँ जि जिण भणिय मग्गे।
हुव पुण्ण-पहावें गुण-णिहाण उप्पण्ण बेवि सुरवर पहाण।
आयइँ(2) तवचरणु कियउ असज्झु णं(3) करि करयारइ वट्टु गेज्झु।
अण्हाणु-अजिंभणु-णिसा करणु सिर-लोंचु दंत-मल-पंक-धरणु।
णिव्वियरु-पक्ख-मासोपवासु काऊण अंते अणसण धयासु।
गय सग्गे सोक्खु भुंजेवि णियत्त कालइँ विज्जाहर सेढि पत्त।
खयर वरिं अणुहुंजिय सिवेण परिणिय वि कालसंवर णिवेण।

घत्ता— "उसकी नवीन कनकप्रभा वाली कनकप्रभा नाम की मनोहर प्रिया थी। तुमने अतिविकट रमण एवं सघन पयोधर वाली उस रमणी का अपहरण कर उसे अपने पास रखा था।"।। 147।।

(5)

कंचनप्रभा का पूर्व-भव। वह वडपुर के माण्डलिक राजा कनकरथ की पत्नी थी

स्कन्धक— कंचनरथ राजा की जो कुलवधु थी उसे पूर्व-भव में तुमने भोगा था। अतः उस की विषयाभिलाषा तथा भय एवं लज्जा के निवारण (अर्थात् तुम्हारे प्रति धृष्ट एवं निर्लज्ज होने) का यही कारण है।। छ।।

उस काल में कोई निमित्त पाकर तुमने अपने छोटे भाई कैटभ को राज्य दे दिया और स्वयं धीर-वीर तपश्चरण कर आयु-क्षय के समय संन्यास से मरण किया और सोलहवें स्वर्ग में जन्म पाया।

कैटभ भी तुम्हारे समान ही जिन कथित मार्ग में चलकर अपने पुण्य प्रभाव से उसी सोलहवें स्वर्ग में गुणनिधान देव हुआ। इस प्रकार वे दोनों ही सुरवरों में प्रधान देव हुए। पूर्व-भव की उस महिला कनकमाला ने भी असाध्य तपश्चरण किया। मानों हाथी की सूँड समान कर वाले देवों की वाट (मार्ग) ही ग्रहण कर ली हो। वह रानी (आर्यिका बन कर घोर तप कर रही थी) अस्नान, उपवास, क्षितिशयन, पंचेन्द्रिय जय, सिर-लोंच, अदन्तधावन, असरस भोजन, पक्ष एवं मासोपवास तप करके अन्त में अनशन धारण करके मरण कर स्वर्ग में गयी। वहाँ के सुख भोगकर वहाँ का आयु-काल पूराकर वह विद्याधर श्रेणी में उत्पन्न हुई। यह कंचनमाला कल्याणपुण्य भोगने वाले राजा कालसंवर के साथ विवाही गयी।

(5) (1) पश्चात्। (2) कनकमालया। (3) तप।

घत्ता— कय पय-णेउरहो अंतेउरहो सयलु वि एह जगसारिय।
अणसिय[4] संवरहो विज्जाहरहो मणवल्लह णयण-पियारय।। 148।।

(6)

खंडयं—

कंचण सगुणहिहाणिय सव्व सुलक्खण राणिय।
राउ अणसियसंवरो जस वित्थरिय धुरंधरो।। छ।।

विण्णिवि गयणे जाणे [1]संचलियइँ एक्क दिवहे वण-कीलइँ चलियइँ।
घण-थण-पणयणइय संजुत्तइँ गिरि-तक्खउ णामइं सँपत्तइँ।
तहिं खयराडवि णाम-पसिद्धी जिणवसइ व सावय-कुल-रि[1]द्धी।
तहिं वणे तुहुमि सिलायले [2]दिट्ठउ कंचणमालइँ रायहे सिट्ठउ।
ता णिय-णंदणु भणेवि वियप्पिउ उच्चाइवि तहे रमणिहे अप्पिउ।
पुणु णियपुरे आणिउ आणंदें गीय-तूर-जय-मंगल सद्दें।
एम विढ्ढिए [2]आयहँ मंदिरे सज्जण-जण-मण णयणाणंदिरे।
एहु ण जणणु ण तुह इह मायरि वज्जदसणु पमुहइ णउ भायरि।
तं णिसुणेविणु मयणु पयंपइ आयहँ वयणहिं महु मणु कंपइ।

घत्ता— इस प्रकार पदों में नुपूर धारण करने वाली, अन्त:पुर में प्रधान, सम्पूर्ण जगत् में श्रेष्ठ, मन-वल्लभा, नयनों को प्यारी वह कालसंवर नामक विद्याधर राजा की रानी हुई।। 148।।

(6)

मुनिराज द्वारा कंचनमाला को प्रद्युम्न-प्राप्ति का वृत्तान्त कथन तथा रूपिणी के भवान्तर

स्कन्धक— विस्तृत यश एवं धुरन्धर वह राजा कालसंवर एवं सद्गुणों की निधान तथा सुलक्षणा वह रानी कंचनमाला— ।। छ।।

दोनों ही किसी एक दिन गगनयान से चलकर वनक्रीड़ा के लिये गये। कंचनमाला घनस्तन वाली प्रणयिनी के साथ वह राजा तक्षक नामके गिरि पर पहुँचा। वहाँ नाम प्रसिद्ध खदिराटवी है। श्रावक-कुलों के लिए जिन-वसति के समान ही वह श्वापदों (वन के जीव) की ऋद्धि-स्थली थी। उस वन की शिलातल में तुम्हें (प्रद्युम्न को) देखा। कंचनमाला से राजा ने बताया। तभी राजा ने "निज नन्दन" कहकर विकल्प किया और तुम्हें उठाकर अपनी रमणी कंचनमाला को अर्पित किया। पुन: आनन्दपूर्वक गीत, वादित्र और मंगल शब्दों के साथ उसे अपने नगर में ले आये। इसके आगे से तू उस माता के सज्जन जनों के मन और नयनों को आनन्ददायक, भवन में बढ़ने लगा।

न यह तुम्हारा पिता है और न यह तुम्हारी माता। वज्रदशन प्रमुख तुम्हारे भाई भी नहीं हैं।

उनका कथन सुनकर मदन बोला कि—"आपके वचनों से मेरा मन काँपने लगा है। भव्यों को भव-समुद्र

---

(5) (4) कालसंवरस्य।

(6) 1. अ गि। 2. अ गउ।

(6) (1) विमान। (2) शिलाउत्परे।

कवण जणणि किर कहहि भडारा भो-भो भव्व भवंवुहि तारा।
ता मुणि भणइ णिसुणि तुहुँ वम्मह णिय मायरिहिं तणिय चिरभव कह।

घत्ता— उववण[(3)]-घण-विसए[(4)] सेविय विसए सर-सरवर [(5)]वि णिरंतरे।
जहिं मगहाविसए जीवण[(6)]-विसए पच्छिमण कोइ भुवणंतरे।। 149।।

(7)

खंडयं-

तहिं भूवालु णरेसरो णिय पय-पंकय णेसरो।
तह महएवि वियक्खणा अहिहाणेण सुलक्खणा।। छ।।
सो णरवइ-सुरवइ सम सरिसु वाय[1]हँ सो[2]यहँ लद्धुकरिसु।
तहो पुरवरे वह घरे सोमु दिउ सुविवेयइँ-वेयहँ कोवि[(1)] ठिउ।
तहो बंभणि थंम णिरूवरइ[(2)] जणि दुल्लहँ-वल्लहँ पिय होसइ।
तणु अमला-कमला णामवरा लायण्णइँ वण्णइँ लच्छि परा।
सिंगारइं सारंग[3] गव्विणिया धण्ण-धण्ण सुवण्णइ सहवि ठिया।
सुकुमालिय बालिय एम घरे जा [4]अच्छइ-पेच्छइ सारयरे।
[5]मण-रंजणु दिट्ठि घरेवि पुरे[6] मउरंदु वि चंदुवि कर-विकरे।

से तारने वाले हे भट्टारक, कहिए कि मेरी माता कौन है?" तब मुनिराज ने कहा—"हे मदन, अपनी माता के भवान्तर सुनो—

घत्ता— अनेक घने-घने उपवनों, देशों तथा नदी-सरोवरों से निरन्तर सेवित मगध नामका देश है। संसार में जिसकी (जीवन्तता—) समृद्धि की तुलना में अन्य कोई देश नहीं।। 149।।

(7)

(रूपिणी के भवान्तर-) मगधदेश के सोम-द्विज की लक्ष्मी नामकी रूप गर्विता पुत्री थी

स्कन्धक— उस मगधदेश में प्रजा रूपी पंकज के लिए सूर्य समान भूपाल नरेश्वर राज्य करता था, जिसकी सुलक्षिणी महादेवी का नाम विचक्षणा था।। छ।।

सुरपति के समान उस नरपति ने पक्षियों में हंसों के समान ही उत्कर्ष प्राप्त किया था। उसी नगर के एक घर में विवेकी वेद विद्या-सम्पन्न सोम नामका कोई द्विज निवास करता था। इसकी लोगों के लिए दुर्लभ, अपने प्रियतम के लिये सदा प्रिय लगने वाली कदली-स्तम्भ के समान उरु वाली कमला नामकी ब्राह्मणी थी, उसकी निर्दोष शरीर वाली लक्ष्मी नामकी एक सुकुमार बालिका थी जो रूप-लावण्य में मानों दूसरी लक्ष्मी ही थी। अपने शृंगार-रंग में वह अत्यन्त गर्ववती थी, धन-धान्य एवं सुवर्ण उसके साथ सदा बने रहते थे। इस प्रकार जब वह सुकुमार बालिका (लक्ष्मी) अपने सारभूत घर में रह रही थी, तभी एक समय मकरन्द रूपी किरण-समूह को विकीर्ण करने वाली वह चन्द्रमुखी अपनी मनरंजन दृष्टि से नगर को देख रही थी, तभी वहाँ पवित्र क्षमा-शील

(6) (3) उपवनविराजमाने। (4) पंचेन्द्रिय विषये। (5) सरोवर-पानीय। (6) जीवितविषये।

(7) 1. अ. आएँ। 2. अ. भोएँ। 3. अ ×। 4. अ. ब.। 5-6. अ.×। (7) (1) विवेकेन वेदेन। (2) बंभण विषये कारणि।

पेछंति वि खंतिवि वयगु जहिं भमकतु वि तंतु रवित्तु तहिं।

घत्ता— अइ मल-मलिण तणु सुविसुद्ध मणु तव-ताव-किलामिय गत्तउ।
मासोवास परु हय-कुसुमसरु पारण-णिमित्तु दयजुत्तउ।। 150।।

(8)

खंधयं—

जा दिय[(1)] मज्जेवि दप्पणं रूउ णिहालइ अप्पणं।
ता घर-बार-पराइउ मुणि - वरिंदु णिज्झाइउ।। छ।।

किर अलय-तिलय संजवइ खणे मुणि पेच्छेवि कमला-कुविय मणे।
चिंतइ इहु कय विलास विलउ कहिँ आयउ हले असव[1]ण-णिलउ।
चिंय कट्ठोवमु[(2)] मल-मलिण[2]-तणु जो णियविमाइ महो तसिउ मणु।
इउ चिंतंतिहिँ मुणि गयउ जाम तणु सयलु ताहि उच्छलिउ ताम।
णीसेसु वि फोडहँ भरिउ केम आयण्णु ण ढुक्कइ णाहु जेम।
पुणु झसिय चम्म गग्गिरिय वाय अंगुलिय सलिय ढुंढुरिय पाय।

मुख वाले सन्त को देखकर वह भयभीत हो गयी।

घत्ता— अत्यन्त मलिन तन, सुविशुद्ध मन, तप-ताप से क्लिन्न गात्र, मासोपवास करने में तत्पर, कुसुमशरों को नष्ट करने वाले, दया-निधान, मुनिराज पारणा के निमित्त उस नगर में पधारे।। 150।।

(8)

(रूपिणी के भवान्तर—) वह रूपगर्विता पुत्री (लक्ष्मी) कुष्ट रोगिणी होकर मरी, विभिन्न योनियों में जन्म लेकर पुनः पूतगन्धा नामकी धीवरी कन्या के रूप में जन्मी

स्कन्धक— जब वह द्विज-पुत्री लक्ष्मी स्नान कर दर्पण में अपना रूप निहार रही थी तभी घर के दरवाज़े पर (उसने) उन मुनिवरेन्द्र को देखा।। छ।।

अलक-तिलक (भौंरे के समान अत्यन्त काले) उन संयत मुनि को देखकर वह कमला (लक्ष्मी) अपने मन में अत्यन्त कुपित हुई। वह अपने मन में सोचने लगी कि—"कहाँ तो यह मेरा विलास-विला (विलास-भवन) और कहाँ यह निन्द्यकालिमा का निलय। यहाँ यह कैसे आ गया? इसका तन चिता की लकड़ियों के समान मल से मलिन है, जिसे देखकर मेरा मन त्रस्त हो उठा है।" इस प्रकार जब वह चिन्तामग्न थी और मुनिराज वहाँ से चले गये तभी उसके सारे शरीर में छाले निकल आये। उसके समस्त फोड़ों (छालों) में कृमि भर गये। जिससे उसके पास कोई फटकता ही न था। उसकी चमड़ी झुलस गयी, वाणी लड़खड़ाने लगी, अँगुलियाँ सड़ गयीं, (चलते समय) पैर ढुंढुरने (घिसटने) लगे, ओंठ डसडसाने लगे (काँपकर एक दूसरे से भिड़ने लगे), कान गल गये, सिर

---

(8) 1. अ 'उ'। 2. अ. कसण।

(8) (1) दंतनिर्म्मल। (2) चिता।

उट्ठउ डसडिय परिगलिय कण्ण सिरि तुडिय-केस कुट्ठेण छण्ण।
सत्तमे दिण सिहि-साहिवि विवण्ण . . . . ।
खरि पुणु वि भुंडि[3] कुक्कुरिय जाय मुणि उवहसणे णिण्णट्ठ काय।
सा साणिवि गामपले वणेण पसविय पुणु मुय डज्झिवि खणेण।
धीवर-घरणिहिं पुणु उवरे हूय अइ णिंद पूय-गंधिणिवि [3]धूव।

घत्ता— तहिं वट्ठिय णिलए धम्महो विलए किर जाम ताम जणु बोल्लइ।
गामि वसंतइ ण गेहइ अणेण भणु को ण दुगंधइ डोल्लइ।। 151।।

(9)

खंडयं—

ता धीवरेण वि चिंतियं णिय-हियएण वियप्पियं।
इय दुहियाए समाणयं लहमि ण कत्थ वि ठाणयं।। छ।।

ता अमर तरंगिणि तडि-विसाले तहे कारणे किउज्झो पडउ माले[1]।
तहिं सा किर णिवसइ पूइगंधि अणुहवइ दुक्खु कय कम्म बुद्धि।
ढुक्कइ ण कोवि सुहि सयणु पासि जं मुणिहिं कियउ विप्पउ वि आसि।
जो संतहँ दंतहँ कुणइँ हासु घरु घरिणि ण संपय होइ तासु।

के बाल झड़ गये और शरीर कुष्ट रोग से भर गया। सातवें दिन वह विवर्ण होकर अग्नि में जल गयी और मर गयी, उसने गधी शूकरी एवं कुतिया का जन्म धारण किया। इसी प्रकार मुनि का उपहास करने के कारण नष्टकाय वही कुतिया पुनः मरकर एक नगरपाल के यहाँ पुनः कुतिया हुई और वहाँ वह जलकर मरी और तत्काल ही एक धीवरी की कोख से अतिनिन्द्य पूतगन्धा नामकी पुत्री के रूप में जन्मी।

घत्ता— उस धीवरी के घर में वह पूतगन्धा बढ़ने लगी, किन्तु धर्म के नष्ट होने पर धाम रूप उस नगर में जहाँ-तहाँ लोग बोलने लगे कि "न तो गाँव में रहने वालों और न किसी अन्य के घर में से (यह दुर्गन्ध) आती है, फिर बोलो, कि इस भयानक दुर्गन्ध से कौन नहीं डोल रहा है?।। 151।।

(9)

पिता द्वारा निष्कासित पूतिगन्धा नदी किनारे रहने लगी। वहाँ एक मुनिराज पधारे

स्कन्धक— उस धीवर ने भी अपने हृदय में विचार किया कि इस पुत्री के रहते हुए मुझे कहीं भी रहने को स्थान नहीं मिलेगा।। छ।।

इसी कारण (निष्कासित कर दिये जाने पर) उसने अमर-तरंगिणी नदी के सुन्दर विशाल तट पर एक झोपड़ा बना दिया। वह पूतिगन्धा वहीं पर रहने लगी और पूर्वकृत कर्मों के दुःखद फल का अनुभव करने लगी। जिसने मुनिराज का इतना तिरस्कार किया था, उसके पास अब परिवार अथवा सम्बन्धी कोई भी व्यक्ति ढूँकता तक न था। जो सन्त एवं दान्त जनों की हँसी उड़ाता है, उसके पास घर, गृहिणी एवं सम्पदा नहीं रहती। नर

---

(8) 3. अ हुअ।

(8) (3) सूकरी।

(9) (1) वनमझे।

णरु-णारि जु मुणिहिं दुगुंछ करइ सो भव सायरि वुड्डुत्तु मरइ।
एत्थंतरे तहिं तरणिहिं तीरे अग्गहण विणिग्गमे हिम-समीरे।
मुणि एक्कु आउ मेइणि भमंतु तव-झाण जोए कय णिय भ[1]मंतु।
दिण-मणि अत्थमिय ण पउ वि देइ तहिं णियमु करेवि सज्झाउ[2] लेइ।
णग्गोहु एक्कु तडे वियडे दिट्ठु अत्थंत सूरे तहो तलि णिविट्ठु।

घत्ता — संठिउ झाण पहु णं गिरि वरु णिसि भरु सिसिरु पडंतउ।
गणइ ण सील धरु णिट्ठ[3] वियसरु अहिवि छिउ देहि चडंतउ।। 152।।

(10)

खंडयं—

ता धीवरिए जइसरो पेच्छेवि हय वम्मीसरो।
तरुदलणियरा[1] वेच्चियं मुणि कमलं अंचियं।। छ।।

जह-जह रयणि समग्गल वट्टइ तह-तह सिसिर-णिवहु सुपयट्टइ।
पुणु धीवरि तिण तरुदल लेविणु जइ सरीरु झंपइ आणेविणु।

अथवा नारी जो भी मुनियों से घृणा करता है, वह संसार समुद्र में डूबकर मरता है।

इसी बीच उस नदी के किनारे अगहन महीना के निकल जाने तथा ठण्डी वायु के चलने पर तप, ध्यान और योग में नियम रखने वाले एक मुनिराज पृथिवी पर भ्रमण करते-करते वहाँ आये। सूर्य के अस्त होने पर वे एक पैर भी आगे नहीं देते थे। सन्ध्या समय वे वहीं पर नियम लेकर ध्यान में लीन हो जाते थे। उन मुनिराज ने विकट तट पर एक न्यग्रोध (वट) वृक्ष देखा तथा सूर्य के अस्त होने पर वे उसके तले बैठ गये और,

घत्ता — ध्यानमग्न होकर वे वहाँ इस प्रकार निश्चल हो गये मानों कोई गिरिवर ही हो। रात्रि भर शिशिर पड़ती रही। (बर्फ गिरती रही) उससे पीड़ित देह पर बर्फ चढ़ते हुए भी, कामबाण के नाशक, शीलव्रतधारी उन मुनिराज ने उसे (उस पीड़ा को) कुछ भी नहीं गिना (समझा)।। 152।।

(10)

धीवर कन्या को अणुव्रत प्रदान कर मुनिराज कोसलपुरी की ओर चले। वह धीवर कन्या भी उनके पीछे-पीछे चल दी

स्कन्धक— तब धीवरी ने कामविनाशक यतीश्वर को देखकर वृक्षों के पत्र-समूह को चुनकर मुनिराज के चरणकमलों की पूजा की।। छ।।

जैसे-जैसे रात्रि समग्रता को प्राप्त होने लगी, वैसे ही वैसे शीत का समूह भी बढ़ने लगा। पुन: वह धीवरी तृण एवं वृक्षों के पत्ते ला-लाकर यति के शरीर को झाँपने लगी।

---

(9) 1. अ. व।

(9) (2) स्वाध्याय। (3) निराकांक्ष:।
(10) (1) समूहगृहीत्वा।

एम-विहाण विहावरि जामहिँ मुणिणा मुणिय सत्ति तहे तामहिँ।
बोल्लाविय कमला[2]-कमलाणणे कुसलु पुत्ति तहु दिय सुपभायणे।
कहिँ सोमहँ वल्लहिँ तुहु आविय कम्म-फलण केण दुहु पाविय।
ता धीमर-सुय चित्त-चमक्कइँ णिय-कर-कमल पिहिवि मुहु थक्कइ।
पुव्व-भवंतर सुमरिवि मुच्छिय सा जइणाहइ पुणु वि पपुच्छिय।
सुमरिय किं पइँ णिय-जम्मंतर कहइ मुणिंदहो पुव्व-भवंतर।
पभणइ हउँ पाविट्ठ अयाणिय उत्तम कुल पाविवि दुहु माणिय।
जं णिंदिउ दयवंतु महारिसि तं खरि-किडिवि-सणि हुव किव्विसि।
एमहि धीमर-तणय दुगंधिणि जायदेव दुह[3]-णरइ-णिबंधिणि।
पहु किं कुणमि कहहि किं गच्छमि जहिँ सुह लेसु खणंतरु[4] पेच्छमि।
ता पंचाणुव्वय मुणिणाहइ तिण्ण-गुणव्वय खंति सणाहइ।
सुहि सयणहो कासु वि णउ रुच्चमि कुच्छिय जोणिहिं केम पवुच्चमि[5]।
ता पंचाणुव्वय मुणि णाहइ तिण्ण-गुणव्वय खंति सणाहइ
चउ-सिक्खावयाइँ तहे दिण्णइँ ताइं पडिच्छियाइँ सुपसण्णइँ।

घत्ता— पुणु कोसलपुरहो णयरहं धुरहो चलिउ मुणीसरु जामहिं।
सा धीमरहो सुअ सुकुमाल भुअ अणुमग्ग लग्ग[1] गय तामहिं।। 153।।

इस विधान से जब रात्रि बीत गयी, तभी मुनिराज ने उसे जाना और कमला नाम लेकर उसे बुलाया और कहा—"हे कमलानने दिशाओं को अपनी प्रभा से प्रभावित करने वाली हे पुत्रि, तेरी कुशल तो है?" हे सोम द्विज की वल्लरी तू यहाँ कहाँ से चली आयी। अवश्य ही किसी कर्म के फल से तू इस दु:ख को प्राप्त हुई है।

तब उस धीवर पुत्री का चित्त चमक उठा। अपने कर कमलों से मुँह ढँक कर बैठ गयी। वह पूर्व-भवान्तरों का स्मरण कर मूर्च्छित हो गयी। उसके सावधान होते ही यतिनाथ ने उससे पूछा—"क्या तूने अपने जन्मान्तरों का स्मरण किया है?" तब उसने मुनिराज से अपना पूर्व भवान्तर कह सुनाया और बोली कि—"मैं पापिष्ठ अज्ञानी हूँ। उत्तम कुल को पाकर भी दु:ख मानती रही। मैंने दयावन्त महाऋषियों की निन्दा की जिससे खरी (गधी), किटि (शूकरी) और सड़ी श्वानी (कुत्ती) हुई। हे देव, अब मैं नरक-दु:ख बाँधने वाली दुर्गन्धिनी पूतिगन्धा नामकी धीवर-कन्या हूँ।

हे प्रभो, अब मैं क्या करूँ? कहिए कहाँ जाऊँ? जहाँ कि मैं एक क्षण के लिए लेशमात्र भी सुख को देख सकूँ। मैं अपने किसी भी स्वजन को नहीं रुचती। इस कुत्सित योनि से कैसे छुटकारा पाऊँ?"

यह सुनकर उन क्षमाशील मुनिनाथ ने उसे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत दिये। उसने भी प्रसन्न चित्तपूर्वक उन्हें स्वीकार किया।

घत्ता— पुन: जब उन मुनिराज ने नगरों में प्रधान (धुर) कोशलपुर की ओर विहार किया। तब सुकुमार भुजावाली वह धीवर-पुत्री भी उनके पीछे-पीछे चली।। 153।।

---

(10) 1. अ × ।

(10) (2) विप्रभवांतरे। (3) नरक सबंधिनी। (4) लेशमात्र। (5) स्वजनैः।

(11)

खंडयं—

तहि गणणी सुपसिद्धिया तव गुण-णियम-समिद्धिया।
मुणिणा सुद्ध वियप्पिया सा कंतियहे समप्पिया।। छ।।

तहिँ वय-णियम-सीलं पालंतिहि छट्ठट्[1]ठम-दह खमण कुणंतिहिं।
पल्ल-विहाण पमुह[2] उववासहिं णिय तणु सोसिवि बहु-विह आयहिं।
5 आयहि लइय कवल-चंदायण कय अणेय-वय सुहय सुपावण[3]।
अंतयाले चउविह आराहण आराहेवि चउसंघहो सोहण।
गिरि-गुह आसंघें वि सण्णासें मुअ सा दुक्किय कम्म-विणासें।
अच्चुव सग्गे सुरिंदहो भामिणि होयवि सुरह-पहाण महाइणि।

घत्ता— कुंडिणपुरे पवरे भीसमहो घरे सग्गहो चएवि उप्पिणिय।
रूविणि णाम वरे वररूव घरे सइ रंभणाइँ अवयण्णिय।। 154।।

---

(11)

व्रत-तप के फलस्वरूप वह धीवरी कन्या स्वर्ग-देवी तथा वहाँ से चयकर राजा भीष्म की राजकुमारी रूपिणी के रूप में जन्मी

स्कन्धक— वहाँ कोसलपुर में तप, गुण-नियम से समृद्ध, सुप्रसिद्ध एक गणिनी (आर्यिका) थी। मुनिराज ने शुद्ध विकल्प कर उस पूतिगन्धा को उसे सौंप दिया।। छ।।

वहाँ (वह उनके साथ) व्रत, नियम एवं शील पालने लगी। छठे, आठवें एवं दसवें उपवास करने लगी (छठा उपवास दो दिन के अन्तर से होता है, उसे वेला कहते हैं। आठवाँ उपवास तीन दिन के अन्तर से होता है उसे तेला कहते हैं। दसवाँ उपवास 4 दिन के अन्तर से होता है उसे चौला कहते हैं। एक दिन की दो-दो वेला गिनी जाती हैं) पल्य विधान प्रमुख बड़े-बड़े उपवास व्रत-तप करने लगी और बहुविध आचारों और आसनों से अपने शरीर को सुखाने लगी।

आगे उसने कवलचन्द्रायण व्रत लिया और भी अनेक पावन सुखद व्रत किये। आयु के अन्तकाल में चतुर्विध संघ की शोभा स्वरूप चतुर्विध आराधनाओं की आराधना कर उस धीवरी ने गिरि गुफा का आश्रय लेकर संन्यास पूर्वक मरण किया। उससे उसके समस्त कर्मों का विनाश हो गया। वह अच्युत स्वर्ग में देवियों में प्रधान नायिका तथा सुरेन्द्र की भामिनी हुई।

घत्ता— फिर वह उस स्वर्ग से चयकर कुंडिनपुर नामके नगर में भीष्म राजा के यहाँ उत्पन्न हुई। उसका नाम रूपिणी था। वह रूप लावण्य की धाम थी। मानों शची अथवा रम्भा ही अवतरी हो।। 154।।

---

(11) (1) उपवास। (2) प्रचुरैः। (3) पवित्र।

(12)

खंडयं—

चेईवइ सुपसिद्धउ वल-चउरंग समिद्धउ।
सिसुपालक्खु महाइउ किर परिणहु वि समाइउ।। छ।।

तिक्खंडावणि परिपालणेण गोवद्धण-गिरि-वर-धारणेण।
जमुद्धी-जल असह सुमंथणेण [1]कालिय-विसहर णिह णत्थणेण[2]।
जमलज्जुण-तरुवर मोडणेण आरिट्ठ कंठ परि तोडणेण।
पूअण-जम करणुप्पायणेण चाणूर-कंस विणिवायरेण।
वसुएव सुदेवइ णंदणेण सिहिगल-तमाल-अलि सण्णिहेण।
सीराउह-पय-पंकय रएण जायवकुल कोडिहिं परिमिएण।
णारयहँ सुवयण णंतरेण किउ गमणु हरिहि णिमिसंतरेण।
गउ-वलेण समउ तहिं ढुक्कवणे थिय रूविणि जहि मणसिय भवणे।
ता हरिय तेण रई[(1)]-लालसेण[(2)] अय-पवले[(3)] मयण परव्वसेण।

घत्ता— ता धाइय साहणु हय-गय वाहणु समउ तेण सिसुपालइँ।
[(4)]तं सीराउहेण-दिव्वाउहेण जोइउ णं खयकालइँ।। 155।।

---

(12)

राजकुमारी रूपिणी से विवाह करने हेतु शिशुपाल एवं हरि—कृष्ण कुंडिनपुर पहुँचते हैं

स्कन्धक— सुप्रसिद्ध चेदिपति महान् राजा शिशुपाल अपनी चतुरंग-बल से समृद्ध होकर रूपिणी को विवाहने के लिये आया।। छ।।

पृथ्वी के तीनों खंडों का पालन करने वाले, उत्तुंग गोवर्द्धन पर्वत को धारण करने वाले, यमुना नदी के अथाह जल का भली-भाँति मन्थन करने वाले कालिया-नाग को बुरी तरह नाथ देने वाले, यमल-अर्जुन तरुवर को मोड़ देने वाले आरिष्ट (राक्षस) के कण्ठ को तोड़ने वाले पूतना—यम को उखाड़ देने वाले, चाणूरमल्ल और कंस का निपात करने वाले वसुदेव और देवकी के पुत्र शिखिगल (मयूर के गले), तमाल वृक्ष एवं अलि के समान कृष्ण वर्ण वाले सीरायुध (हल शस्त्रवाले) बलदेव के चरण कमलों में रति करने वाले करोड़ों यादव-कुलों वाले तथा रतिरस के लालची उस हरि ने नारद के वचन सुनते ही निमिष-मात्र में गमन किया। प्रबल मदन के वशीभूत होकर हरि बलदेव के साथ तत्काल ही (कुंडिनपुर के) उस काम-भवन में जा पहुँचा जहाँ राजकुमारी रूपिणी कामदेव की पूजा के निमित्त उपस्थित हुई थी।

घत्ता— हय-गज, वाहन आदि साधनों के साथ शिशुपाल जब उस हरि के साथ लड़ने को दौड़ा तब दिव्य आयुध वाले सीरायुध ने उसकी ओर क्षयकाल के समान देखा।। 155।।

---

(12) 1-2. ब.×।

(12) (1) बिल्लुना। (2) लंपटेन। (3) बल्वतेनकामेन। (4) महिसी।

(13)

दुवई--- करिमय-कद्दमंपि खुप्पंत महाहय रहवरोहयं।
असि-सव्वल-भुसंढि-धणु करयल णिरु धावंत जोहयं।। छ।।

तं पेक्खिवि हरि अमरिसि चडिउ सरहसु सिसुपालहो रणे भिडिउ।
सिर-कमलु खुडिउ तहो तेण कहा सरे हंसइ णव-कंदोट्टु जहा।
गउ सुंदरि लेविणु णिय भवणु ठिउ सिंहासणे परितुट्ठ मणु।
उप्पण्णउँ तुहुं रुविणिहे केम पुव्वासइँ भासुरु अरुणु जेम।
णिरु सुहड सहासहि रक्खियउ ता असुरइँ णिय मणे लक्खियउ।
छट्ठइँ दिणे जम्म वइरु सरेवि णिउ गरुडइँ पण्णउँ जह हरिवि।
खयराडइँ गज्जिय गय गहिरे मेल्लेवि तहिँ सिल दिण्णिय उवरे।
ता राउ कालसवरु खयरु णिय-पियमुह-इंदीवरु-भमरु।
कीलणहँ णिमित्तइँ जाइ जाम तुहु गिरि तले णिहियउ दिट्ठु ताम।

(13)

शिशुपाल का वध कर हरि-कृष्ण रूपिणी को हर कर ले आये। उससे प्रद्युम्न का जन्म हुआ, जिसका छठे दिन अपहरण कर यक्ष ने उसे खदिराटवी में शिला के नीचे चाँप दिया और वहाँ से कालसंवर उसे उठा कर अपने घर ले आया

द्विपदी--- वहाँ (शिशुपाल के) हाथियों के मदजल से कीचड़ मच रही थी, भयानक अश्व पृथिवी को खोद रहे थे (अर्थात् खुर पटक रहे थे) उत्तम रथवरों का समूह एकत्रित था। असि, सव्वल, भुसुंडि, धनुष आदि करतल में लिये हुए योद्धागण दौड़ रहे थे।। छ।।

उसे देखकर हरि को क्रोध चढ़ा। वह हर्षित होकर शिशुपाल से रण में जा भिड़ा और उसने उसका सिर-कमल किस प्रकार काट डाला? ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि सरोवर में हंस नवीन कमल को तोड़ फेंकता है। फिर हरि उस सुन्दरी (रूपिणी) को लेकर निज भवन को चला गया, परितुष्ट मन से सिंहासन पर बैठा। वहीं उस रूपिणी से तू किस प्रकार उत्पन्न हुआ? उसी प्रकार जिस प्रकार पूर्व दिशा में अरुण भास्कर उत्पन्न होता है। ठीक सहस्रों सुभटों द्वारा तुम भलीभाँति सुरक्षित थे, तो भी असुर ने अपने मन में (उसके जन्म को) जान लिया।

वह असुर जन्म से छठे दिन बैर को स्मरण कर तुमको उसी प्रकार हरकर ले गया जिस प्रकार गरुड़ पन्नग को हरकर ले जाता है। वह यक्षराज गर्जना करता हुआ गहरी खदिराटवी में गया और वहाँ तुमको रखकर ऊपर से शिला दे दी। तभी अपनी प्रियतमा के मुख-कमल के लिए भ्रमर के समान विद्याधर राजा कालसंवर क्रीड़ा के निमित्त वहाँ आया और गिरि के शिलातल में रखा हुआ तुम्हें देखा।

घत्ता— सहसत्ति विमाणहो उयरिवि उवलु[1] णरिंदइ पेल्लिउ।
पोमायवि सिसु अइ-पवलु वलु पुणु करेहिं उच्चल्लिउ।। 156।।

(14)

दुवई— वोल्लाविय स तेण णिय पणइणि लइ परिपालि तुहुँ सुउ।
वड्ढंतउ पयंडु परिहोसइ सुरकरि कढिण-दिढ-भुवो।। छ।।

पुणु णिउ ते णिय पुरवरे पवरे मंगलु-घोसिउ खयराय घरे।
णयरहो सुसोह अइ बहुय किया णं सग्ग सिरी अवयरेवि थिया।
पच्छुण्णु गब्भु णिरु वज्जरिउ महएविहे णंदणु अवयरिउ।
तुहु एयहँ मंदिरे बुद्धिगउ सुर-णर-किण्णरहँ जणंतु भउ।
जुव-भावें[1] चडहि जा विगयमलु पेक्खिवि पयवम्महु अतुल-वलु।
तुव भाइय थिय अइगीढ भया पविदंतहो पमुह वि पंचसया।
रज्जाहिलासु णियमणि धरेवि तुव वह-उवाय बहुविह करेवि।
जहिं-जहिं णिउ तुहुँ सुपयंड-[2]वाहु तहिं-तहिं णिग्गउ वहु लहेवि लाहु।
सुपुण्णु सहेज्जउ संचरई तसु खलयणु कुद्धउ किं करई।

घत्ता—सहसा ही विमान से उतरकर उस राजा ने उस शिला को पेला (ठेला, हटाया) और कमल के समान सुन्दर उस शिशु को अति प्रबल बल वाले राजा (कालसंवर) ने हाथों से ऊपर की ओर उठा लिया।। 156।।

(14)

वज्रदंष्ट्र आदि 500 सौतेले भाई ईर्ष्यावश प्रद्युम्न की हत्या करना चाहते हैं, किन्तु उन्हें असफलता ही मिलती है

द्विपदी— तब उस राजा (कालसंवर) ने अपनी प्रणयिनी को बुलाया और कहा कि—"ले, तू इस सुत का प्रतिपालन कर। बढ़ता हुआ यह प्रचण्ड ऐरावत की सूँड के समान कठिन दृढ़ भुजावाला होगा।"।। छ।।

पुन: वह राजा कालसंवर उस पुत्र को अपने उत्तम नगर में ले गया। विद्याधरों के घर में मंगलघोष होने लगे नगर की विविध प्रकार से शोभा की गयी। ऐसा लगता था मानों स्वर्ग की श्री-शोभा ही उतर कर वहाँ स्थित हो गयी हो।

"महादेवी को प्रच्छन्न गर्भ (गूढ़ गर्भ) था, उसीसे पुत्र उत्पन्न हुआ है।" इस प्रकार (सर्वत्र) घोषणा की गयी। सुर, नर एवं किन्नरों को भय उत्पन्न करते हुए बुद्धिमान तुम इस राजा के महल में गये। विगतमल (निर्दोष) जब तुम युवा-भाव में चढ़े, तब अतुल बल वाले तुम्हारे मदन रूप को देख कर वज्रदन्त आदि प्रमुख पाँच सौ भाई तुम्हारे भय से अत्यन्त भयभीत हो गये। उन भाइयों ने अपने मन में राज्य की अभिलाषा धारण कर नाना प्रकार से तुम्हारे वध के उपाय किये। तुम्हारे भाई (तुम्हारे वध के निमित्त) जहाँ-जहाँ तुम्हें ले गये, वहाँ-वहाँ प्रचण्ड बाहु वाले तुम विविध दिव्य-लाभ लेकर ही निकले। ठीक ही कहा है उत्तम पुण्य सहित जो संचरण करता है, क्रुद्ध खल-जन भी उसका क्या कर सकते हैं?

---

(13) (1) नगाग।
(14) (1) युवक्भावेन। (2) प्रचंड।

घत्ता— रइवरु भासइ सहु मुणिवरइँ पहुम्महिउ हुवउ महु।
जेमणिहि णिय जणणहो मिलमि कहहि किंपि उवएसु लहु।। 157।।

(15)

दुवई— तो जइणा पयंपियं मार-मणपियं सुण सुतणय ताम।
विज्जउ-तिण्णि तुव करे समर धुरवरे चडहि सुहम जाम।। छ।।

ता वच्छहि गच्छहि णियय घरे जणणिहि दुच्चरिउ म चित्ति धरे।
तुह एय माय णउ एहु जणणु तं णिसुणिवि पुलए भिण्ण तणु।
कामइ अकाम जइ णविउ कह परमप्पउ सुर-णाहेण जह।
फिर णिय मंदिरि संपत्तु जाम हक्कारउ जणणिहि [1]तणाउ ताम।
पणविवि पभणिज्जइ मयरकेउ संचल्लहि सुंदर करि म खेउ।
आयण्णिवि सहसा गउ अणंगु जहिँ खयरिहि मणे विलसिउ अणंगु।
वोल्लाविउ किण्णाएसु करहि लइ वर विज्जउ भो तिण्णि धरहि।
तहे अवसर जंपइ कुसुमसरु एउ अच्छमि हउँ तुह आण्णयरु।

घत्ता— रतिवर प्रद्युम्न मुनिवर से बोला—"हे प्रभु आप मुझ पर बड़े प्रसन्न हैं। अब कुछ ऐसा उपदेश कहिए कि जिससे मैं शीघ्र ही अपने माता-पिता से जा मिलूँ। ।। 157।।

(15)

कुमार प्रद्युम्न को रानी कंचनमाला द्वारा तीन विद्याओं की प्राप्ति

द्विपदी— तब यति ने मार (कामदेव प्रद्युम्न) के मन को प्रिय लगने वाला उपदेश कहा—"हे सुन्दर पुत्र, तुम उसे सुनो। जिससे समर में धुरन्धर तुम्हारे हाथ में तीनों सुभग विद्याएँ चढ़ें।" ।। छ।।

"अत: हे वत्स अपने घर जाओ। जननी (कंचनमाला) के दुश्चरित्र को चित्त में मत धरो। क्योंकि यह तुम्हारी (यथार्थ) माता नहीं है और यह पिता भी तुम्हारा (यथार्थ) नहीं है।" मुनिराज का यह कथन सुनकर कुमार पुलकित शरीर वाला हो गया। फिर उस कामदेव कुमार ने कामरहित यति को किस प्रकार नमस्कार किया? ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि सुरनाथ परमात्मा को नमस्कार करता है।

वहाँ से चलकर कुमार जब अपने भवन में पहुँचा तब माता ने एक सेविका के द्वारा उसको तुरन्त बुलवाया। उस (सेविका) ने मकरकेतु को प्रणाम कर कहा—"हे सुन्दर चलो। अब विलम्ब मत करो।"

यह सुनकर वह अनंग प्रद्युम्नकुमार सहसा वहाँ गया, जहाँ खचरी विद्याधरी कंचनमाला के मन में अनंग (काम) विलास कर रहा था। कंचनमाला ने उसे अपने पास बुलाकर कहा—"मेरा आदेश पूरा क्यों नहीं करते? ये तीनों उत्तम विद्याएँ लो और इन्हें धारण करो।" कुसुमशर कुमार ने उसी समय कहा—"आपका आज्ञाकारी मैं यहीं हूँ।"

---

(15) 1. अ पत्तु।

घत्ता— आयण्णिवि तं खग राणियइँ रइरमणु[1] पहरसं [2]दाणियइँ[3]।
जो संवररायहो मण पियउ तं विज्जउ तिण्णि समप्पियउ।। 158।।

(16)

दुवई— तो परियत्तु[1] पुणु वि मयरद्धउ माइए[1] किं रूसज्जसि।
जइ पेसण समाणु[2] महु जाणहि ता सुउ भणिवि दिज्जसि।। छ।।

जाणिवि धुत्तइँ छम्मिय पिय मणे　　अवर पवंचु रइउ ते तक्खणे।
मयण-वसेण तिणु वि णउ गणियउ　　कररूरेहिं णिय तणु वणियउ।
सिहिण-जुवलु सुकढिणु पवियारिवि　　रोसविमीसु चित्तु साहारिवि।
कवडु करिवि पिय अछइ जामहिं　　जमसंवरु संपत्तउ तामहिं।
चवइ राउ हले किं विद्दाणिय　　णियमरणहो सा कहइ कहाणिय।
एउ कम्मु वि रइउत्तु पवुत्तइं　　कुल-कलंकु दुण्णय संजुत्तइँ।
तं आयण्णिवि कोवइँ कंपिउं　　वार-बार णिव एंवि पयंपिउ।
पहणमि भणिवि जाम णीसरियउ　　पविदंतइँ तणयइँ ता धरियउ।

घत्ता— रतिरमण प्रद्युम्न के वचन सुनकर खग रानी कंचनमाला ने हर्षित होकर उस (प्रद्युम्न) के लिए राजा कालसंवर के मन को प्रिय लगने वाली तीनों विद्याएँ समर्पित कर दीं।। 158।।

(16)

त्रिया-चरित्र का उदाहरण, राजा कालसंवर प्रद्युम्न का वध करने के लिए तत्पर हो जाता है

द्विपदी— तब मकरध्वज ने माता से पुन: कहा "हे माई आप मुझसे रुष्ट क्यों हैं? यदि आप मुझे सेवक के समान मानती हैं, तब वे विद्याएँ मुझे अपना पुत्र कहकर प्रदान कीजिए।"

तब उस धूर्त रानी ने अपने मन में छद्म जानकर तत्क्षण अन्य प्रपंच रचे। मदन के वश से उस (रानी) ने कुछ भी नहीं समझा (गिना) और नखों से अपने शरीर को व्रण युक्त कर लिया। कठिन स्तनयुगलों को विदीर्ण कर लिया, रोष विमिश्रित चित्त को धारण कर लिया और कपट करके जब वह प्रिया रानी बैठी थी, तभी राजा यमसंवर वहाँ आ पहुँचा, और बोला—"हे हले, अपने को इस प्रकार विदीर्ण क्यों कर लिया है?" तब उसने अपने पति से वह समस्त कहानी कही कि "इस कामुक को जो रतिपुत्र कहा गया है, वह दुर्नय से युक्त है। वह कुल के लिए कलंक है। रानी के मुख से उसकी कहानी सुनकर राजा क्रोध से काँपने लगा और बार-बार इस प्रकार बोला—"मैं इसका वध किए डालता हूँ।" इस प्रकार कहकर वह राजा निकला तभी वज्रदन्त ने उस (वृद्ध राजा) को पकड़ लिया (और बोला—)

---

(15) 2-3. अ.× ।
(16) 1. अ प' । 2. ब. मत्थु ।

(15) (1) कामबाणेन ।
(16) (1) व्याघुटित. ।

घत्ता— अम्हहँ पंचसयइँ सुवहँ दीहर-भुअहँ दे आएसु राय किं किज्जइ।
जंपइ खयरवइ णिए कुविय मइ हणहु कुमारु जेम ण मुणिज्जइ।। 159।।

(17)

दुवई— आयण्णिवि कुमारय मयण-मारय धाइया तुरंत।
जहिँ भी[1]सम सुवा[2]सुओ दीहरभुओ सयल तहिँ पहुंत।। छ।।

वम्महु जलु-कील करंतु दिट्ठु णं सुर-करि-वरु सरवरे पइट्ठु।
जाइवि छलेण किर धरहिँ जाम [3]आलोयणि विज्जा चवइ ताम।
सुणि देवएँ तिए दुट्ठ-भाव तुह भायर णियमणे कुद्ध पाव।
ता चवइ मयणु महुरूउ धरहि तुहुँ अच्छहि मइ पच्छण्णु करहि।
तं णिसुणिवि विज्जइँ कियउ तेम खयराहिव सुवण मुणंति जेम।
मरु-मरु भणंत ते उच्चडिया णं हरि हे गयंद समावडिया।
जा उक्खय पहरण सयल थिया विज्जइँ अउव्व ता लील किया।
[4]परिवेढिय णाय-वास चवल बंधेवि सरे णिम्मिय ते सयला।

घत्ता "(आपके) दीर्घभुजा वाले हम 500 पुत्र हैं। क्या करना है सो हमें आज्ञा दीजिए? तब अत्यन्त कुपितमति उस खचरपति (कालसंवर) ने कहा- "कुमार प्रद्युम्न को इस तरह वध करो कि उसे पूर्व-जानकारी न मिल सके।। 159।।

(17)

आलोचनी-विद्या का चमत्कारी प्रभाव, कुमार प्रद्युम्न का वध नहीं किया जा सका

द्विपदी— वे वज्रदन्त आदि सभी पुत्र पिता का आदेश सुनकर उस मदन—प्रद्युम्न का वध करने के लिए दौड़े और तुरन्त ही वहाँ पहुँचे जहाँ दीर्घ भुजाओं वाला राजा भीष्म-पुत्री का वह पुत्र (प्रद्युम्न) स्थित था।। छ।।

वहाँ उन्होंने उस मदन को जल-क्रीड़ा करते हुए देखा। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों ऐरावत हाथी ही सरोवर में प्रविष्ट हुआ हो। उन्होंने जाकर जब उसे छलपूर्वक धरा (पकड़ा) तब आलोचनी विद्या ने उस (प्रद्युम्न) से कहा—"सुन, देव — राजा कालसंवर एवं उसकी प्रिय-कंचनप्रभा के मन में दुष्ट भाव (जाग गया) है, तुम्हारे (सौतेले) भाइयों ने अपने मन में क्रुद्ध पाप धारण कर लिया है।" तब मदन उस (आलोचनी विद्या) से बोला—"तुम मेरा रूप धारण करो तथा मुझे प्रच्छन्न रखकर उपस्थित रहो।" यह आदेश सुनकर उस विद्या ने ऐसा किया कि जिसे खचराधिप सुत समझ भी न सके। 'मरे-मरे' कहते हुए वे उछल कूद करने लगे। वे ऐसे प्रतीत होने लगे जैसे हरि— कृष्ण ने गजेन्द्रों को उठा-उठा कर पटक दिया हो। प्रहार करने में असमर्थ होकर जब वे उखड़ गये तब उस विद्या ने एक अपूर्व लीला की (प्रदर्शन किया)। उस चपल (विद्या) ने उन सभी को नाग-पाश से बेढ़ दिया और उन्हें सरोवर में डुबा दिया। किन्तु उनमें से एक कुमार जिस किसी प्रकार वहाँ से

(17) 1. अ म। 2. अ मा। 3. अ. आलोयणि। 4. ब. परिवेढिय।

ता एक्कु कुमरु कह-कहव इक्कु णिविसट्ठइ रायहो पासे ढुक्कु।

घत्ता- जंपइ सो खलियक्खहिं कंपइ [5]पुणु साहारइ।
अजउदेव सो कुमरु रणे पईमि[(1)] वहंतु कवणु किर वारइ।। 160।।

(18)

दुवई— जे अब्भिट्ट्ट सयलंतुव तणुरुह ते सहसत्ति रुद्धया।
भीसण णाय-[1]वास दिव्वत्थइँ तक्खणे समरे वद्धया।। छ।।

ता कुविउ खगेसरु रण पयंडु तहो मच्छइँ पाल[2]मि वज्जदंडु।
रणतूरु दिण्णु कलयलु करेवि संचलिउ सयलु सेण्णु वि मिलेवि।
कत्थइँ मयगल-मय णिज्झरंत णं जंगम [3]गिरिवर पज्झरंत।
कत्थइँ चलंत चलवल-तुरंग णं चवल महोअहि वर तरंग।
कत्थइँ रहवर चिक्कंति विसम कलहोय विणिम्मिय मेरु सुसम।
णह जायहि णह छाइउ सयलु इय संचल्लिउ खगराय-वलु।
जले-थले-णहि-दिसिहि ण माइयउ हरि-तणयहु उवरे पधाइयउ।
पेक्खिवि रिउ साहणु अइपवलु णिम्मिउ मायामउ तेण वलु।

खिसक गया और निमिषार्द्ध में ही राजा कालसंवर के पास जा ढुँका (जा पहुँचा)।

घत्ता— उस विद्या की करतूत से हारा हुआ वह काँपने लगा और लड़खड़ाती वाणी में बोला— "हे देव, रण में वह कुमार (प्रद्युम्न) अजेय है। उसका वध करते समय निश्चय ही कोई (हमें) रोकता है।"।। 160।।

(18)

कालसंवर एवं प्रद्युम्न का युद्ध

द्विपदी— हे देव, जब तुम्हारे सभी पुत्र उस कुमार प्रद्युम्न से जा भिड़े, तभी सहसा ही उन्हें रोक दिया गया तथा समर-काल में तत्काल ही नाग-पाश जैसे भीषण दिव्यास्त्र से बाँध दिया गया।। छ।।

यह सुनकर रण-प्रचण्ड खगेश्वर (कालसंवर) कुपित हो उठा और चिल्ला उठा— "(अब जाकर उस प्रद्युम्न के) माथे पर मैं वज्रदण्ड पटकता हूँ।" (यह कह कर) उसने रणतूर बजवाया और कलकल कर चला। उसकी समस्त सेना भी मिलकर चली। कहीं तो हाथियों का मद बह रहा था, मानों बीहड़ पर्वतों से निर्झर ही प्रवाहित हो रहा हो। कहीं चंचल, प्रबल तुरंग चल रहे थे, मानों महोदधि की चचंल तरंगें ही चल रही हों। कहीं उत्तम रथ, चिक-चिक की विषम चिंघाड़ कर रहे थे। हाथियों के समूह मानों सामानान्तर मेरु पर्वत ही बना रहे थे। नभ-यानों से समस्त नभो-मण्डल आच्छादित था। इस प्रकार खगराज की वह सेना चली। जल-थल एवं नभ तथा दिशाओं विदिशाओं में वह समा नहीं पा रही थी। वह हरितनय—प्रद्युम्न के ऊपर बुरी तरह झपटी। अति-प्रबल रिपु-साधनों को देखकर उस प्रद्युम्न ने भी मायामयी सेना निर्मित की। गजों से गज श्रेष्ठ, रथ श्रेष्ठों

(17) 5. अ णिपमइ.

(17) (1) मत्सम्।

(18) 1. अ °णा°। 2. अ °इ°। 3. अ. मांहे।

रहवर गएहिं रहवरहिं-रउ णरवर-णरेहिं हय-हयहिं तह
इय उहयसेण रण उहे भिडिया पहरंति सुहडु मच्छर चडिया।

घत्ता— इय जाउ महाहउ दुव्विसहु जो तियसिंद-विंद भयकारउ।
हणहिं णरिंद महाउहवि हरिसाविय सुरवहु सय वारउ।। 161।।

(19)

दुवई— कोवि पहरंति सुहड दप्पुब्भड फर-करवाल हत्थया।
केवि पयंड जोहवर जोहहिं आहवे कय णिरत्थया।। छ।।

केणवि कहो रहु एंतु णिवारिउ केणवि कहु करिवरु विणिवारिउ।
केणवि कहो हय-वरु हउ वाणहिं आसीविस-विसहरहिं समाण[1]हिं।
केणवि[2] कासु छत्तु-धउ-धणुहरु केणवि कहो सण्णाहु ससेहरु।
इय संगामु परोप्परु वट्टइ सुहडहँ चित्तें जयासण फिट्टइ।
ता खयरें सहु सेण्णु पढुक्कउ जलहि-जलुव मज्जाय विमुक्कउ।
पल्लिउ तेण बलेण सवाहणु भग्गु परम्मुहुँ मणसिय साहणु।

से रथ, नरों से नरश्रेष्ठ उसी प्रकार अश्वों से अश्व। इस प्रकार वहाँ रण में दोनों सेनाएँ जा भिड़ीं। मात्सर्य से रँगे हुए सुभट एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे।

घत्ता— इस प्रकार वहाँ ऐसा विषम सैन्य संहार हुआ कि जो देवगणों को भी भयकारक हो गया। नरेन्द्र (प्रद्युम्न) ने महान् आयुधों से मार की, जिसने सुरवधुओं को सैकड़ों बार हर्षित किया।। 161।।

(19)

प्रद्युम्न की सैन्यकारिणी विद्या का चमत्कार राजा कालसंवर एवं प्रद्युम्न में तुमुल-युद्ध

द्विपदी— कोई दर्पोद्धत सुभट हाथों में स्फुरायमान करवाल से प्रहार करता था तो कोई प्रचण्ड योद्धा अन्य श्रेष्ठ योद्धा के आक्रमण को निरर्थक कर रहा था।। छ।।

कोई किसी के आते हुए रथ को रोक रहा था, तो कोई किसी के करिवर को रोक रहा था। कोई किसी के श्रेष्ठ घोड़े को आशीविष सर्प-विष के समान भयंकर बाणों से घायल कर रहा था, तो कोई किसी धनुर्धारी के छत्र एवं ध्वजा का अपहरण कर रहा था और किसी के मुकुट को ही उड़ा दे रहा था। इस प्रकार जब परस्पर में युद्ध हो रहा था और सुभटों के चित्त में जब विजय की आशा न रही तब विद्याधर कालसंवर अपनी सेना के साथ सभी मर्यादाएँ छोड़कर उसी प्रकार आगे बढ़ा जिस प्रकार तूफान के समय समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर आगे बढ़ जाता है। जब उसने वाहन सहित अपने बल को पेल दिया तब मनसिज (प्रद्युम्न) के साधन ने उसके उस बल को भंग कर पराजित कर दिया। कोमल विधुर (कुमार) के प्रहार के भय से त्रस्त राजा मकरध्वज कुमार

---

(19) 1. अ. ण्गा। 2. ब. हि।

कोमल[3] वि[4]हुर पहुर भय-तट्ठउ मयरद्धयहो सरणि सुपइट्ठउ।
तं रइ[5]-वल्लहेण साहारिउ भज्जमाणु कह-कहव णिवारिउ।
पुणु रिउ साहणे चलिउ समच्छरु मीण परिट्ठिउ णाइ सणिच्छरु।

घत्ता— दुग्घोट्ट थट्ट रणे विद्दविय हय-हयवर रहवर मुसुमूरिय।
तियसहिमि समत्थइँ वम्महेण णर-णरिंद सयल वि संचूरिय।। 162।।

(20)

दुवई— पुणरवि भिडिउ समरे मयरद्धउ पवलु पयंडु दुद्धरो।
तोडइ सुहड-सिरइँ सररूह इव जह णिरु मत्त-सिंधुरो।। छ।।

तवो हरिस्स णंदणेण दिव्व-अत्थ-संदणेण।
णियमणम्मि कुद्धएण जयसिरी सुलुद्धएण।
पेसियास विज्ज(1) तेण णिम्मियं वलंपि(2) जे[1]ण।
तेण तं [2]सुसाहणंपि चूरियं सवाहणंपि।
पक्खिऊण(3) तण्णिवेण(4) समरे सु अहो णिक्किवेण(5)।
दिव्वु धणहु करे-करेवि [3]मुक्कवाण हुंकरेवि।

की शरण में आकर प्रविष्ट हुआ। यह देखकर रतिवल्लभ (प्रद्युम्न) ने कहा—"भगोड़े को क्यों और कैसे मारूँ? किन्तु मात्सर्यवाला वह रिपु, "साधन सहित पुनः युद्ध के लिए उसीप्रकार चल पड़ा मानों मीन राशि पर शनैश्चर ही चढ़ाई करने आ रहा हो।

घत्ता— उसने दुर्दमनीय गजों के थट्ट (—समूह) को रण में विदीर्ण कर डाला। उत्तम घोड़ों को मार डाला। यह देखकर उस मन्मथ ने भी उस (विद्याधर) के समस्त साधन तथा नर-नरेन्द्रों को चूर-चूर कर दिया।। 162।।

(20)

अवलोकिनी-विद्या का चमत्कार—कालसंवर एवं प्रद्युम्न में भयानक युद्ध

द्विपदी— पुनः समर में प्रबल-प्रचण्ड एवं दुर्धर वह कालसंवर मकरध्वज से आ भिड़ा और वह उसके सुभटों के सिरों को उसी प्रकार तोड़ने लगा, जिस प्रकार कि मत्त-सिन्धुर (गज) सरोवर में कमलों को।। छ।।

तब अपने मन में क्रुद्ध जयश्री के लोभी, दिव्यास्त्र एवं स्यन्दन वाले उस हरि-नन्दन—प्रद्युम्न ने अपनी अवलोकिनी विद्या भेजी। जिसने (अपने प्रभाव से) एक सेना निर्मित कर दी। उस (कुमार) ने अपने वाहन से उसके सभी साधनों को चूर-चूर कर दिया। राजा कालसंवर ने उसे (अपने उस साधन को नष्ट) देखकर पुनः समर में अत्यन्त निर्दय होकर, हाथ में दिव्य-धनुष धारण कर हुँकार के साथ शुक्ल बाण छोड़ा। रतिवर कुमार ने उसे डाँटकर, गर्जकर अमोघ बाण छोड़ा। कालसंवर ने उसे भी व्यर्थ कर दिया और अपनी ओर से

(19) 3. अ. मुक्कल। 4. अ. विं। 5. अ. मयरद्धेण।

(20) 1. ब. एं। 2. अ. पिं। 3. ब. सु।

(20) (1) सुकीय अवलोकिनी विद्या (2) तेन विद्याबलं निर्मापितेन विद्या-योगिता। (3) सइण्णं। (4) कालसंवरेण। (5) कृपारहितेन।

रइवरेण तज्जिऊण अवरु मुक्कु गज्जिऊण।
वंचिया [4]खगेण तेवि पेसिउ गिरिंदु लेवि।
तुरिउ ता मणुब्भवेण हउ गिरीसु राउहेण।

घत्ता— संवरेण विसज्जिउ तम-पसरु दुमणि मुअवि तण्णासिउ।
अग्गेउ पमेलिउ खेयरेण तंबारुणइं विणासिउ।। 163।।

(21)

दुवई— जं-जं खयरराउ आरूसिवि आउहु दिव्वु मेल्लए।
तं-तं मयणु सुहडु चूडामणि अद्धवहंपि पेल्लए।। छ।।

णिएवि कुमारु पयंडु[1] रणंगणे ता जमसंवरु चिंतइ णियमणे।
केणोवायएँ एहु रणे जिज्जइ वइवसपुर-पंथेइ लाइज्जइ।
पुणु पल्लट्टु पासि णिय घरिणिहे करिवरु जेम समीउ स-करिणिहे।
बोल्लाविय महएवि खगिंदें रणरसियइँ कुल-कुवलय चंदें।
विज्जउ तिण्णि देहि अवियप्पइँ जुज्झमि जेम समउ कंदप्पइँ।
ता धुत्तिए पच्चुत्तरु दिज्जइ एमहि सामिय भणु किं किज्जइ।
दिण्णउ थण्णु सिसुत्तणे जइयहु मइमि समप्पियाइ तहिं तइयहो।

गिरीन्द्र को फेंका। तब मन्मथ—प्रद्युम्न ने भी तुरन्त ही अपने दिव्यास्त्र से उस गिरीश को नष्ट कर दिया।

घत्ता— तब राजा कालसंवर ने ऐसा तम-प्रसार किया कि सूर्य भी उसे नष्ट न कर पाया। उस खेचर राजा ने ताम्रारुण सूर्य को विनष्ट कर उस तम-भार को आगे बढ़ाया।। 163।।

(21)

कालसंवर, प्रद्युम्न से पराजित होकर अपनी रानी कनकप्रभा से विद्याएँ माँगने जाता है और नहीं मिलने पर निराश हो जाता है

द्विपदी— खचर-राजा ने रूसकर जिन-जिन दिव्यायुधों को छोड़ा, सुभट चूडामणि मदन ने उन सभी को आधे मार्ग में ही पेल दिया (रोक दिया)।। छ।।

रणांगण में कुमार की प्रचण्डता को देखकर वह राजा यमसंवर अपने मन में विचारने लगा कि "किस उपाय से यह रण में जीता जायेगा? इसे वैवस्वतपुर (यमपुर) के मार्ग में कैसे लगाया जाये?" वह (राजा) अपनी घरिणी रानी के पास उसी प्रकार पलटा—लौटा, जिस प्रकार करीवर अपनी करिणी के समीप जाता है। रण में रसिक कुलकुमुदों के लिए चन्द्र के समान उस खगेन्द्र ने महादेवी को बुलाकर कहा—"बिना विकल्प किये (विचार किये बिना) तीनों विद्याएँ मुझे दे दो, जिससे कन्दर्प कुमार के साथ लड़ सकूँ।" तब उस धूर्ता ने प्रत्युत्तर दिया—"हे स्वामिन्, कहिए कि अब मैं क्या करूँ? जब कुमार ने शिशुकाल में मेरा स्तन अपने मुख में दिया था तभी मेरे द्वारा उसे तीनों विद्याएँ समर्पित कर दी गयीं थीं।" रानी के उस बचन से राजा शंकित हुआ। वह उसी प्रकार

(20) 4. ब. गेण।

(21) 1. ब. कं'।

तें वयणें आसंकिउ राणउ कमलवणुव हिम हउ विद्दाणउ
जाणिवि दुच्चरित्तु विहुणिवि सिरु कंपंतउ मण साहारिवि गिरु।

घत्ता· पुण्णक्खइ होइ परम्मुहउ घरु घरिणि सयणु[1] सय णिज्जउ।
सुहडहो सुहडत्तणु होउ छुडु काइँ करंति वरायउ विज्जउ।। 164।।

(22)

दुवई— सेसुव्वरिय-सेण्ण-संजुत्तउ लहु सण्णहि विणिग्गउ।
णं गयवर सएहि परिवारिउ जह गज्जंतु दिग्गउ।। छ।।

एत्तहिं[1] वि कालु णं कवलु लेवि थिउ साल णवोवरि दिट्ठि देवि।
खयरायविंद-वलु ताम ढुक्कु णं जलणिहि-जलु मज्जाय [1]मुक्कु।
हय-गय-रहवर-भड विप्फुरंतु अब्भिडउ हरि-तणयहो तुरंतु।
पहरंतु जोह दिढ-मग्गणेहिं विंधणसीलें जह दुज्जणेहिं।
कुसुमाउहेण विद्दविउ केम सुरगिरिणा सायरि सलिलु जेम।
आहय हय-गय रण उंहें[2] समत्त चूरिय रह णरवर वर [2]समत्त[3]।

उदास हो गया, जिस प्रकार कमल-वन हिम से विदीर्ण हो जाता है। राजा ने अपना सिर धुन लिया। काँपते मन से वह बोला—

घत्ता— "पुण्य का क्षय होने पर घर, घरिणी, समस्त स्वजन पुत्र आदि सभी परांगमुख हो जाते हैं और सुभट का सुभटपन भी समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में बेचारी विद्याएँ भी क्या करेंगी?"।। 164।।

(22)

प्रज्ञप्ति विद्या का चमत्कार — कालसंवर एवं प्रद्युम्न में तुमुल युद्ध

द्विपदी— शेष बची हुई सेना के साथ वह राजा कालसंवर दिशाओं में गरजन करता हुआ आकाशमार्ग से इस प्रकार चला मानों गजश्रेष्ठ अपने सैकड़ों हाथियों के साथ प्रस्थान कर रहा हो।। छ।।

इसी बीच में जैसे काल अपना कवल ले रहा हो, उसी प्रकार कालसंवर राजा भी नये साधन रूपी कवल पर दृष्टि देकर स्थित हुआ। विद्याधर राजवृन्दों का बल (सैन्य) इस प्रकार समर भूमि की ओर बढ़ा जिस प्रकार तूफान के समय जल अपनी मर्यादा छोड़ देता है। तुरन्त ही हय, गज, रथवर एवं भट फड़कते हुए हरिपुत्र कुमार से जा भिड़े। जिस प्रकार दुर्जन जन चुभने वाले वचनों से प्रहार करते हैं उसी प्रकार वे योद्धागण भी दृढ़ वाणों से प्रहार करने लगे। तब कुसुमायुध (प्रद्युम्न) के द्वारा वे सभी किस प्रकार विद्रावित कर दिये गये? उसी प्रकार जिस प्रकार कि सुरगिरि द्वारा सागर-सलिल। रणरूपी समुद्र में घोड़े आहत हो गये। गज समाप्त हो गये। रथ चूर-चूर हो गये और नर वर भी समाप्त हो गये। शेष सेना ने एक क्षण भी स्थिरता नहीं रखी। "मुझे शरण

(21) (1) सतनुपुत्र।

(22) (1) अत्रस्थाने। (2) रणसमुद्रे।

(22) 1. अ. चु। 2-3. अ. थिचित्तु।

वलु थाहु ण वंधइ एक्कु खणु भगगउ विहडफ्फड सरणु मणु।
पण्णत्ति पहावइ सयलु जिउ ता खगवइ करि कोदंडु किउ।
तं छिण्णिउ समरे विरुद्धएण हउ सारहि-रहु मयरद्धएण।
असिवरु करु वेहा विद्धएण लइयउ खगे[4]ण सणद्धएण।

घत्ता— किर भिडइ कुमारहो रण दुव्वारहो संवरु णियमणे कुद्धउ।
णं गिरि(3) हुववहहो अहि अहिवहहो (4)हरिहि करिंदु मयंधउ।। 165।।

(23)

दुवई— विण्णिवि चम्मरयण असिवर कर विण्णिवि [1]महंत जोइया[2]।
विण्णिवि वद्ध कोह जा पहरहि जह रणे राम-रामवणा।। छ।।

तहिं अवसरे जो जगि कलियारउ छत्तिय-वंसिय कमंडलधारउ।
जो अमरहँ सावणें समत्थउ कविल जडा-जूडहँ किय मत्थउ।
जो रूवणिहिं मणोरहँ-गारउ सो संपत्तु महारिसि णारउ।
अंतरे थाय वि तेण णिवारिय जुज्झमाण णं करि ऊसारिय।
पुणु रइरमणु भणिउ म चिरावहि मा णिय कुले कलंकु सुव लावहि।

दो", "मुझे शरण दो" कहकर, विघटकर भाग गयी। प्रद्युम्न ने अपनी प्रज्ञप्ति विद्या के प्रभाव से जब सबको जीत लिया, तब खगपति राजा ने अपने हाथ में धनुष-धारण किया।

विरुद्ध हुए मकरध्वज ने समर में उसके उस धनुष को भी काट दिया, साथ ही सारथि सहित रथ भी नष्ट कर दिया। तब वेधने में कुशल उस खगपति ने सावधान होकर विशाल असिवर धारण किया।

घत्ता— राजा कालसंवर अपने मन में क्रुद्ध हुआ और रण में दुर्निवार उस कुमार से उसी प्रकार जा भिड़ा जिस प्रकार पर्वत अग्नि से, सर्प गरुड़ से और मदोन्मत्त हाथी सिंह से भिड़कर नष्ट हो जाता है।। 165।।

(23)

कालसंवर एवं प्रद्युम्न का तुमुल युद्ध, महर्षि नारद आकर युद्ध बन्द करा देते हैं

द्विपदी— फिर दोनों ही वे महान् योद्धा (—राजा कालसंवर और प्रद्युम्न कुमार) चर्मरत्न से, स्फुरायमान असिवर से लड़ने लगे। क्रोध के आवेग में आकर जब वे दोनों एक दूसरे पर प्रहार करते थे, तब ऐसे प्रतीत होते थे मानों राम-रावण का ही युद्ध हो रहा हो।। छ।।

उसी समय जो जगत में कलि-कलह कराने वाला, क्षत्रियवंशी, कमण्डलुधारी देवों को भी शाप देने में समर्थ, मस्तक में कपिल वर्ण के जटाजूट रखाये, जो रूपिणी के मनोरथों को श्रेष्ठता प्रदान करने वाला महर्षि नारद था, वह वहाँ आ पहुँचा। युद्ध के मध्य प्रवेश करके उसने उन लड़ते हुओं को इस प्रकार रोका, मानों लड़ते हुए हाथियों को ही हटाया हो। पुन: रतिरमण कामदेव से (नारद ने) कहा—"विलम्ब मत करो। हे सुत, अपने कुल

(22) 4. अ. णे'।

(23) 1-2. ब खमर जय मणा।

(22) (3) कर्ता। (4) गरुडस्य।

उत्तम पुरिसहँ एउ ण जुज्जइ   णिय जणणहो किं अविणउ किज्जइ।
तं णिसुणेवि मणभवेण तुरंतइँ   पणविउ णिय जणेरु विहसंतइँ।
पविदंताइँ पमुह दढयर-भुव   मेल्लवि पिउहे समप्पिय वर सुव।
सह-सेण्णु सयलु जीवाविउ   जो मायामय पहरहिं ताविउ।

घत्ता— पुणु कहइ महारिसि खेयरहो णिसुणि राय तुहु गुज्झु ण रक्खमि।
जें कज्जें हउँ आवियउ सो वित्तंतु समलु फुडु अक्खमि।। 166।।

(24)

दुवई— इह वारमइ णाम पुरि पायड सुरपुरि सम पसिद्धिया।
जा रयणायरेण परिवेढिय धण-कण-जण समिद्धिया।। छ।।

तहिं णरिंदु वसुएव-णंदणो   अइ पयंडु दणुविंद मद्दणो।
जो अराइ-भड-णिवह णासणो   कण्हुणाम वर चक्क सासणो।
सच्च-रूविणी पियउ मंदिरे   संवसंति णयणाहिं णंदिरे।
तहँ पइज्ज हुव सुवह कारणे   णियय-चिहुर किय विहिंभिसारणे।
विहिंमि तणय उप्पण्ण सारया   वहुव मंगलुच्छाह गारया।
भाणुकण्ण णामेण सच्चहे   एउ रूविणिहि पुत्तु वुच्चहे।

में कलंक मत लगाओ। उत्तम पुरुषों को यह उचित नहीं। क्या अपने पिता की अविनय करना चाहिए?" नारद का कथन सुनकर कामदेव ने हँसते हुए तुरन्त ही अपने जनक को प्रणाम किया। दृढ़तर भुजावाले वज्रदन्तादि प्रमुख उत्तम पुत्रों को बन्धन से छोड़कर पिता को सौंप दिये। सैन्य-सहित उन सब वीरों को जीवित कर दिया, जो मायामयी प्रहारों से संतापित थे।

घत्ता— पुनः महर्षि ने खेचर से कहा—"हे राजन, सुनो! मैं तुमसे कुछ भी गुप्त न रखूँगा। जिस कार्य के लिए मैं यहाँ आया हूँ वह समस्त वृत्तान्त स्पष्ट कहता हूँ।"।। 166।।

(24)

नारद के साथ कुमार प्रद्युम्न द्वारावती के लिए प्रस्थान करता है

द्विपदी— "यहाँ (भरतक्षेत्र में) द्वारावती नामकी पुरी है, जो अत्यन्त प्रसिद्ध एवं साक्षात् सुरपुरी के समान है, जो समुद्र द्वारा वेष्टित और धन-धान्य तथा उत्तम जनों से समृद्ध है।। छ।।

वहाँ का नरेन्द्र वसुदेव नन्दन है, जो अतिप्रचण्ड एवं दानवेन्द्रों का मर्दन करने वाला है, जो अराति (शत्रु) के भट-समूह को नष्ट करने वाला तथा उत्तम चक्र से शासन करने वाला है। उसका नाम कृष्ण है। वह अपनी सत्यभामा एवं रूपिणी नाम की प्रियतमाओं के साथ नेत्रों को आनन्दकारी भवनों में निवास करता है। वहाँ पुत्र जन्म के कारण (परस्पर में) प्रतिज्ञा हुई कि अपने केशों पर अभिसारण (गमन) की विधि की जाये।

दोनों रानियों के सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए। अनेक मंगल उत्सव मनाये गये। भानुकर्ण नाम से सत्यभामा का पुत्र कहा गया और यह कुमार रूपिणी का पुत्र कहा गया है। यह पुत्र जब सैकड़ों सुभटों से सुरक्षित था, तब

सुहडु सयहिं थिउ जाम रक्खिउ धूमकेय असुरेण लक्खिउ।
खयरायडवी हरिवि-मुक्कउ [1]ता मयर[2] तुहुं तित्थु ढुक्कउ।
तहिं णिएवि पइँ एहु चालिउ णिय घरम्मे आणेवि पालिउ।
इय मुणेवि कुसुमसर धारउ दिव्व-देहु पुलइउ कुमारउ।

घत्ता— गय ते णिय णयरहो सविय खयरहो हरि आसण्ण वइट्ठ कह।
पउरयणं णियंतहं सिरेण णमंतहं णं गिरि-सिहरहँ सीहु जह।। 167।।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए बुह रल्हण सुव कइ सीह विरइयाए [3]णारय-पज्जुण्ण मेलावय वण्णणं[4] णाम **णवमो संधी** परिसमत्तो।। संधी: 9।। छ।।

पुष्फिया

सारासार-विचार चारु धिषणं(1): [1]सुद्धीमतामग्रणी,
[2]जातः सत्कवि रत्त सर्व्व विदुषा(2) वैदुष्य सम्पादकः!
येनेदं चरितं प्रगल्भ मनसां शान्तः प्रमोद प्रदं,
प्रद्युम्नस्य कृतं कृति(3) कृतवतां जीयात्ससिंहो क्षितौः।। 9।। छ।।

धूमकेतु असुर ने उसे पहचान लिया और हरकर खदिराटवी में छोड़ दिया। हे मकर, तब तू वहाँ पहुँचा और वहाँ उसे देखा, तब उसे लेकर चला और अपने घर में लाकर पाला-पोसा।" यह जानकर दिव्य देहधारी वह कुसुमशर—कुमार पुलकित हो उठा।

घत्ता— इस प्रकार विद्याधरों द्वारा सेवित (नारद, कालसंवर एवं प्रद्युम्न) अपने नगर मेघकूटपुर नगर के लिये चले। वहाँ पौरजनों ने उनकी सेवा की और सिर झुका कर नमस्कार किया। वहाँ सिंहासन पर बैठा हुआ वह कैसा प्रतीत हुआ? वैसा ही जैसा गिरि शिखर पर बैठा हुआ सिंह।। 167।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली बुध रल्हण के पुत्र सिंह कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में नारद-प्रद्युम्न मिलाप वर्णन नामकी **नवमी सन्धि** समाप्त हुई।। सन्धि: 9 ।। छ।।

पुष्पिका—

जो सारासार के विचार में सुन्दर बुद्धि वाला है, जो शुद्ध-बुद्धिमानों में अग्रणी है, जो सत्कविकुल में उत्पन्न हुआ है, जो सत्कवियों का आदर करता है, जो विविध विद्वानों की विद्वत्ता का सम्पादक है और जिसने प्रगल्भों के मन को शान्तिप्रद एवं प्रमोदकारी प्रद्युम्न के चरित सम्बन्धी इस विशिष्ट कृति की रचना की है, वह कवि-सिंह पृथिवी-मण्डल पर जयवन्त रहे।

---

(24) 1-2. अ. तामराय। 3-4. अ.×।

पुष्पिका— 1. अ. स। 2. अ. मा°।

पुष्पिका -(1) बुद्धि। (2) विदुष्विताभाव वै दुषित उत्पादक । (3) पुण्यवन्तः
मध्ये पुण्यवंत.।

दहमी संधी

(1)

ध्रुवकं— वंधव सयणहँ परियणहँ थिउ परियरिउ मणुब्भउ जामहिँ।
पेक्खिवि तव-जम-णियम-विहि चवइ महारिसि णारउ तामहिँ।। छ।।

आरणालं— भो-भो-भो कुमारया भुवणे सारया सुण सुदिण्ण चित्ता।
तुह जणणी पु मुंडणं माणखंडणं करहि विजय जत्ता[1]।। छ।।

णिय जणणिहिँ दुहु असहंतएण मयणेण वि ताम तुरंतएण।
विणविउ णमंसिवि णि मुणिराय आएसु देहि लहु जामिताय।
पणवेवि कणयप्पह मायसइँ पुणु चवइ खमहु अवराह सयइँ।
तुम्हइ हउँ लालिउ-तालियउ[2] अइ-दुक्ख-दुक्ख परिपालियउ।
दिणे-दिणे अणुवमु माणियउ परु अप्पु समलु मइ जाणियउ।
इय थुइ करेवि गग्गिर-गिरेण पुणु-पुणु पणप्पिवेणुण्णय सिरेण।
खम करिवि खमाववि सयण वग्गु परियणु असेसु जो रणे अहंगु।
पुच्छिवि सहयर दुम्मिय-मणेण संभासिवि पुणु गवणम्मणेण[3]।
मुणि पभणिउ ता मणसिए'ण एम विरयहि विमाणु लहु जामि जेम।

दसवीं सन्धि

(1)

(द्वारावती चलने के लिए) महर्षि नारद ने तत्काल विमान का निर्माण किया

ध्रुवक— वह मन्मथ — प्रद्युम्न जहाँ बैठा था वहाँ बन्धु-बान्धवों, स्वजनों एवं परिजनों ने आकर उसे घेर लिया। उसके तप, यम, नियम आदि विधियाँ देख कर महर्षि नारद ने कहा— ।। छ।।

आरणाल— "भो-भो कुमार, भुवन में सार रूप, चित्त देकर सुनो। तुम्हारी माता रूपिणी का मुण्डन और मानखण्डन होने वाला है, इसलिए तुम विजय-यात्रा करो।। छ।।

अपनी माता के दु:ख को न सहते हुए, प्रद्युम्न कामदेव ने भी तुरन्त ही मुनिराज को नमस्कार कर विनती की कि—"हे तात, महाराज, आदेश दीजिए कि मैं वहाँ शीघ्र ही जाऊँ।" कनकप्रभा माता को स्वयं प्रणाम कर पुन: बोला—"मेरे समस्त अपराध क्षमा कर दीजिए। तुमने मेरा लालन-पालन-ताड़न किया है। अति: दु:खों से मुझे पाला है। दिन-दिन सुख रूप अनुपम मुझे माना और मुझे पराये एवं अपने का समस्त ज्ञान कराया है।" इस प्रकार गद्गद् वाणी से स्तुति कर पुन: पुन: अनुनय पूर्वक माथा झुकाकर प्रणाम कर, स्वजन वर्ग को क्षमा कर, तथा क्षमा कराकर और जो रणवास में अभंग सम्पूर्ण परिजन थे, उनको और मित्रों को दु:खी मन से पूछकर गमन के मन वाले उस मनसिज — प्रद्युम्न ने पुन: सम्भाषण कर मुनिराज (नारद) से बोला—"चलिए, विमान बनाइए, जिससे मैं शीघ्र ही जा सकूँ।"

---

(1) 1. अ.× ।

(1) (1) गमनंकुरु। (2) कुमार्गात् तारित । (3) गमनचित्तेन।

घत्ता— सहसत्ति विणिम्मिउ णारएण किंकिणी कुसुमदाम उम्मालिउ।
दिट्ठु विचित्तु मणि-गण-जडिउ रइ वल्लहेण वि झत्ति णिहालिउ।। 168।।

(2)

आरणालं— पेक्खिवि तं विमाण[1]यं पुर-समाणयं करिवि मणे पवंचं।
णियचलणंपि पेल्लियं तेण डोल्लियं मुडिवि हुउ कुसंचं।। छ।।

जंपइ कुसुमाउहु कहो सीसइ एउ विणाणु ण अण्णहो दीसइ।
कहि-कहि ताय-ताय कहिं सिक्खिउ पइँ जे हउ छइल्लु ण णिरिक्खिउ।
ता पडिवयणु देइ रिसि [2]णारउ जो सुर-णर-किण्णरहं पियारउ।
हउँ सुव थेरु कज्ज असमत्थउ किंकारणे उवह[3]सहि णिरुत्तउ।
तुहु जुवाणु सुवियड्ढु[(1)] वियक्खणु [illegible] [4][illegible] ण विले[5]क्खहिं।
किं-किं[6] खेड्डु करंतु ण थक्कइ किं किज्जइ तुरिउ ण सक्कइ।
किं तुहु अवमाणु[7] णउ लक्खहि किं णिय जणणिहिं कज्जु उवेक्खहि[(2)]।
तं णिसुणिवि दिग्गयवर गमणइँ किउ विमाणु अणवमु [8]ता मयणइँ[9]।

घत्ता— तब नारद ने किंकिणियों एवं पुष्पमालाओं से सुशोभित, देखने में विचित्र मणिगणों से जटित विमान निर्मित कर दिया। रतिवल्लभ—प्रद्युम्न ने उसे शीघ्र ही निहारा—देखा।। 168।।

(2)

नारद द्वारा निर्मित विमान प्रद्युम्न के पैर रखते ही सिकुड़ जाता है। अतः नारद के आदेश से प्रद्युम्न दूसरा विमान तैयार करता है

आरणाल— नगर के समान उस सुन्दर विमान को देखकर मन में प्रपंच कर अपने पैर उसमें रखे, उससे विमान डोल गया (हिल गया) और मुड़कर सिकुड़ गया।। छ।।

तब कुसुमायुध प्रद्युम्न (नारद से) बोला—"आपने कहाँ से सीखा है?" ऐसा विज्ञान अन्य किसी को तो नहीं दिखायी देता। हे तात, हे तात, कहो—कहो, आपने कहाँ से इसे सीखा है? मैंने तो आप जैसा छैला — कुशल अन्य किसी को देखा ही नहीं।" तब देव, नर एवं किन्नरों के प्यारे उन ऋषिराज ने प्रत्युत्तर में कहा—"हे पुत्र, मैं तो अब बुड्ढा हो गया हूँ, कार्य करने में असमर्थ हूँ, फिर किस कारण से तुम मेरा उपहास करते हो? तुम अभी युवा हो, सुचतुर हो, विचक्षण हो, तुम स्वयं शुभ लक्षण वाले विमान की संरचना क्यों नहीं करते? तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करते हुए नहीं थकते तब क्या तुम इसे तुरन्त ही नहीं बना सकते हो?" क्या तुम अपने अपमान को नहीं देखते? अपनी माता के कार्य की उपेक्षा क्यों कर रहे हो?"

उसको सुनकर दिग्गजवर मदन ने अपने गमन के लिए एक अनुपम विमान की रचना की।

---

(2) 1. ब. ०लयं। 2. ब [illegible]। 3. ब [illegible]। 4. अ किण्णु। 5. अ. सुहलक्खणु। 6. अ नर। 7. अ माणु। 8-9. अ इक्क मणइँ।

(2) (1) विदग्ध विचक्षण। (2) अवगणयसि।

घत्ता— मणिमय सुथंभ कुंभिग्गहे सहुँ उच्छल्लियहँ अलंकरिउ।
णम्मेरु धरंतहँ सुरवरहँ सुर-विमाणु महि अवयरियउ।। 169।।

(3)

आरणाल— जं तइलोय सारयं हियय हारयं दुमणि-पह-णिरोहं।
अइ दिव्वं विचित्तयं णिरु पवित्तयं विहिय चारु सोहं।। छ।।

रणझणंत किंकिणि व मलोउलं पंचवण्णहिं धयवड समालाउलं।
कणय-कलसेहिं दिप्पंत-दिच्चक्कयं गयण-गमणम्मि [(1)]जं कहिमिणउ-थक्कयँ।
चंद-कंतेहिं जं णिरहि कंतिल्लयं पवर माणिक्क-दित्तीहिं सुविचित्तयं।
जक्खमिहुणाण रूवेहिं परिचित्तयं दिव्व-वत्थाइँ उल्लोवयालंकियं।
धूममा[1]णाहिं कालायरु रूवियं वरदुवारंपि रयणेहिं उद्दीवियं।
पारिजायाइँ-तरु-कुसुम-सोहालियँ मल्लि-वेइल्ल-मालाहि उम्मालियँ।
रुणु-रुणुट्टंत गंधासए-भिंगयं मेरु-सिहरस्स सरिसंपि उच्चंगयं।
घत्ता— इय विविह पयारइँ णिम्मविवि उवरि वलग्ग तुरिय जग सुंदर।
णं णिय कज्जइँ अवयरिवि पुणुच्चलियइँ पडिंद-पुरंदर।। 170।।

घत्ता— मणिमय सुन्दर स्तम्भों तथा गज मोतियों की लड़ियों एवं छल्लों से अलंकृत विमान पृथिवी पर उतरा। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों मर्यादा धारण करने वाले सुरवरों का देव-विमान ही भूमि में अवतरित हो।। 169।।

(3)

प्रद्युम्न अपने नव-निर्मित सुसज्जित नभोयान में बैठकर मेघकूटपुर से द्वारावती की ओर प्रस्थान करता है

आरणाल— जो विमान तीन लोक में सारभूत है, हृदय के हार के समान द्युमणि (सूर्य) के मार्ग को रोकने वाला है, अति दिव्य है, विचित्र है, पूर्ण एवं पवित्र है और जो सुन्दर शोभा सम्पन्न है—

रुण-झुण करती किंकिणियों तथा मालाओं से व्याप्त पंचवर्णों वाले ध्वजपटों से सुशोभित सुवर्ण कलशों से दिक्‌चक्र को दैदीप्यमान करने वाला, गगन-गमन में कभी नहीं थकने वाला, चन्द्रकान्तामणियों से अधिक कान्तिवाले, प्रवर माणिक्यों की दीप्ति से भी अत्यन्त दीप्तिमान, दिव्यमोतियों के झुमकों से शोभायमान, हंस एवं तोतों आदि के चित्रों से सुविचित्रित, यक्ष-मिथुनों के रूपों से परिष्कृत दिव्य-वस्त्र आदि चंदोवों से अलंकृत, धूम्र करते हुए कालागरु से दीप्त, रत्नों से उद्दीप्त उत्तम द्वारवाला, पारिजात आदि वृक्षों के पुष्पों से शोभा सम्पन्न मल्लिका, वेल की मालाओं से सुशोभित, रुण-रुण करते हुए सुगन्ध के लालची भृंगों से युक्त, मेरु शिखर के समान ऊँचा।

घत्ता— इस प्रकार विविध प्रकारों से गगनचुम्बी, जग सुन्दर विमान का तुरन्त ही निर्माण किया और उस पर बैठकर वह चला। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों प्रतीन्द्र पुरन्दर अपने कार्य से विमान से वहाँ उतरा हो और पुनः उसमें बैठकर चल पड़ा हो।। 170।।

---

(3) 1. अ. मयणाहिं।

(3) (1) जतू विमानं।

(4)

आरणालं — ससि-रवि-पह समाणयंता विमाणयं सहइ गयणे लग्गं।
ण कुवल[1]इ भमंतिम्म मयण-कित्तिए वसिकयं सयलं।। छ।।

जह-जह संकमइ णहंगणेण — तह-तह रिसि संकइ णिय-मणेण।
अइ विंभिउ जा चिंततु थिउ — दूरंतरे ताम विमाणु णिउ।
रइरमणइँ णियउ विमाणु जाम — णारय-रिसि रोसइँ चवइ ताम।
भा तणय मज्झु थरहरइ देहु — किं दूरि परिट्ठिउ अचलु एहु।
किं मइ जंपिउ णउ मण धरेहिं — किं णिय-मायहिं दुहु णउ सरेहि।
तं आयण्णिवि दडत्ति मुक्कु — मुणि महिहि पडंतु व कहव चक्कु।
जह-जह विमाणु गयणयले चडइ — तह-तह णारउ थरहरइ पडइ।
करि छत्तिय कडि कोवीणु धुलइ — सिरि कविल जडाजूडोहु लुलइ।
रिसि जंपइ उब्भउ करि विमाणु — परिसक्कमि णउ सुव पइँ समाणु।
तुह पियरहँ हउँ णिरु परमपुज्जु — तुहुं करहि खेडु कहि कवणु कज्जु।

---

(4)

विमान की वेगगति से नारद थरहराने लगता है, अतः प्रद्युम्न मन्द-गति से आगे बढ़ता है

आरणाल— शशि-रवि की प्रभा वाला, गगन में गया हुआ, वह विमान ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों पृथिवी-मण्डल में भ्रमण करती हुई मदन की कीर्ति ने समस्त लोकों को अपने वश में कर लिया हो।। छ।।

जैसे-जैसे वह विमान आकाश रूपी आँगन से खिसकता जा रहा था, वैसे-वैसे नारद ऋषि को अपने मन में शंका होने लगी। जब वे ऋषि अत्यन्त चिन्तित एवं विस्मित होकर बैठे थे, तभी उन्हें वह विमान कुछ और दूरी पर ले आया। इस प्रकार रतिरमण जब विमान को ले जा रहा था, तभी क्रोधपूर्वक नारद ऋषि बोले— "हे पुत्र, मेरी देह काँप रही है। क्या वह विमान कुछ दूरी पर जाकर रुक तो नहीं जायगा?" मेरे वचनों को ध्यान में क्यों नहीं रखते? क्या अपनी माता के दुःखों का स्मरण नहीं कर रहे हो?" ऋषि का कथन सुनकर प्रद्युम्न ने उस विमान की गति को और भी तेज कर दिया, जिससे वे मुनिराज विमान-तल पर चक्कर खाकर गिरने-गिरने को हो गये। जैसे-जैसे विमान आकाश में ऊपर की ओर चढ़ता था, वैसे-वैसे नारद थरहराते गिरते पड़ते से बैठे थे। हवा में उनके हाथ की छत्री एवं कटि की कौपीन फड़फड़ा रही थी। शिर का कपिल जटा-जूट विलुलित हो रहा था। इस स्थिति में ऋषिराज नारद बोले—"विमान खड़ा करो। मैं तुम्हारे समान शक्तिशाली नहीं हूँ पुत्र। (इतनी तेज गति वाले विमान में अब मैं नहीं बैठ सकता, कुमार, तुम जानते हो न कि) मैं तुम्हारे माता-पिता के लिए भी परम पूज्य हूँ, फिर भी तुम किस प्रयोजन से मेरे साथ ऐसा खिलवाड़ कर रहे हो?"

---

(4) 1. अ. कुलेवइ।

घत्ता- मणे मुणिवि विलक्खउ देव-रिसि किउ विमाणु थिरु रूविणि तणयइँ।
संचल्लइ गयणंगणेण संभासिवि वड्ढारइ पणयइँ।। 171।।

(5)

आरणालं-- दुट्ठाराइ मद्दणो कण्ह-णंदणो[1] गमइ [2]मणे पहिट्ठो।
[illegible] महीहरे [illegible] सेहरो सम[1]इ तेण दिट्ठो।। छ।।

पलोइआ महीहरो[3] - महीहरेण भमंतया करेणु जुह दिढ करेण।
सावय-कुलाउलो वि सावयेण रवि-मणीहिं ताविओ परस्स तावएण।
विहंगएहिं सेविउ अहंगएण[4] रय-पय[2]स्स [3]भूसिउ अणंगएण।
दिव्व-वंस संभवोवि[5] दिव्व-वंस संभवेण वरं भएण जुत्तउ मणुब्भवेण।
मयारि-विंद वंतउ[6] वि मयर[4]विंध जुत्तएण वियसियारविंद अरविंद सरिसणेत्तएण।
ससी-मणीहिं सोहिउ ससी सुबिंब वत्तएण णहग्ग-लग्ग सेहरो णहंगणे सरत्तएण।
सुर-पुरंधि मणहरो पुरंधिएहिं मणहरेण विडवि कुसुमालंकिउ कुसुममग्गणा करेण।

घत्ता— देवऋषि की विकलावस्था को मन में समझकर उस रूपिणी-तनय—प्रद्युम्न ने अपना विमान स्थिर किया और स्नेह बढ़ाने वाला सम्भाषण कर वह नभ-मार्ग से आगे बढ़ा।। 171।।

(5)

कुमार प्रद्युम्न ने नभ-मार्ग में जाते हुए रौप्याचल को देखा

आरणाल— दुष्ट आरातियों का मर्दन करने वाले कृष्ण का वह नन्दन—प्रद्युम्न मन में प्रसन्न होता हुआ चला जा रहा था, उसने शीघ्र ही उत्तुंग शिखर वाला श्रेष्ठ रौप्याचल सम्यक् प्रकार से देखा।। छ।।

महीधर (राजा) ने महीधर (पर्वत) को उसी प्रकार देखा, जिस प्रकार भ्रमण करता हुआ हस्तिनी-समूह गजराज द्वारा देखा जाता है। श्रावक (गृहस्थ मदन) द्वारा श्वापदों (सिंह, भालू, व्याघ्र आदि) से व्याकुल, पर (शत्रु) को सन्ताप देने वाले मदन द्वारा सूर्यकान्ति मणियों से तापित वह पर्वत देखा गया। अभंग (अलंघ्यमदन) द्वारा विहंगमों से सेवित वह पर्वत देखा गया। अनंग (काम) द्वारा रजत से भूषित वह रजताचल (विजयार्ध — वैताढ्य) पर्वत देखा गया।

दिव्य वंश में उत्पन्न मदन के द्वारा दिव्य (अद्‌भुत) बाँसों की उत्पत्ति वाला वह पर्वत देखा गया। मनुद्‌भव (-काम) के द्वारा रम्भा (कदली वृक्ष) सहित वह पर्वत देखा गया। मृगवेध (सिंहासन) से युक्त मदन ने सिंह समूह वाला वह पर्वत देखा। अरविन्द (कमल) सदृश नेत्र वाले मदन ने विकसित अरविन्द (युक्त सरोवर) वाला वह पर्वत देखा। चन्द्रबिम्ब समान मुख वाले मदन ने चन्द्रकान्त मणियों से शोभित वह पर्वत देखा। नभ रूपी आँगन में जाते हुए मदन के द्वारा नभ के अग्र-भाग में लगे शेखरवाला (उन्नत शिखर युक्त) वह पर्वत देखा। उस मदनगृह — प्रद्युम्न ने सुर-पुरन्धियों के मन को हरण करने वाले तथा पुरन्धियों से युक्त उस पर्वत को देखा। कुसुम चापधारी उस प्रद्युम्न के द्वारा विटप-पुष्पों से अलंकृत वह पर्वत देखा गया।

(5) 1. अ [illegible]ाम। 2. अ.[illegible]। 3. अ [illegible]धु। 4. ब ×।

(5) (1) प्रद्युम्नेन। (2) गच्छति। (3) वैताढि। (4) अभंगेन। (5) उत्पादिका। (6) संयुक्त।

घत्ता— पंचास वि जामण विउलु पंचवीस उच्चेहिं ण थक्कउ।
तिहि-तिहिं खंडहिं मेइणिहिं सीमंदरु णं विहिणा मुक्कउ।। 172।।

(6)

आरणालं— अवलोएवि पच्चउ पुणु सगव्वउ सरइ गयणे जाम।
अइदीहो विसालओ कुरु[1]ह [2]आलओ गहणु दिट्ठु ताम।। छ।।

कहिमि [3]वक्खु मकरंदंपि[4] कंथारि-करवीर-धाइ-धव-धम्मणं।
कहिमि सुविसालया सग्ग सज्जज्जणा एल-कंकोलया-पिप्पली-उववणं।।
कहिमि पउमक्ख-माला-कलंवम्पि-करवंदिया-जूहवर-चिंचिणी-थाणयं।
कहिमि णारंगि-णालियर-खज्जूरिया जंवु-जंबीरि विज्जउरिया उववणं।।
कहिमि सिरिखंडू-सिरि ताड[5] वउ[6]ल-सिरिम[7]या दाडि[8]मी दक्खयारामयं।
कहिमि वर करुणि-कणियारि-कणवीरिय-कंचणारेहिं अहिरामयं।।
कहिमि पिप्पल-पलासु-वरी-हररई ताम[9] मालेहि[10] आमाडिया-आउलं।
कहिमि णग्गोह-पारोह-झुंवंत सुविसालया लग्ग-खयरावमालाउलं।।

घत्ता— वह विजयार्द्ध पर्वत पचास योजन विपुल (चौड़ा) और पच्चीस योजन उत्सेध (ऊँचाई) के साथ खड़ा था। मेदिनी के उन-उन खण्डों की सीमा को धारण करने वाले मानों ब्रह्मा ने ही वह पर्वत रख छोड़ा हो।। 172।।

(6)
अटवी का विहंगम वर्णन

आरणाल— पुन: गर्वसहित वह मदन उस पर्वत को प्रत्यक्ष देखकर जब आकाश में चलने लगा तब उसने अतिदीर्घ विशाल वृक्षों का स्थान—गहन वन देखा।। छ।।

उस वन में कहीं पर तो उसने कंथारि, करवीर, धाई, धाव एवं धामन जैसे उत्तम वृक्ष देखे। कहीं पर सुविशाल सर्ग, सज्ज, अर्जुन, एला, कंकोल एवं पिप्पली वृक्ष वाले उपवन देखे। कहीं पर पद्म, अक्ष, माला, कदम्ब, करवंदिया के झुण्ड तथा बड़े-बड़े चिंचिणी (इमली) के स्थान देखे तो कहीं पर नारंगी, नारियल, खजूरिया, जम्बू, जंबीर (नीबू वृक्ष) एवं विजौरिया के उपवन देखे। कहीं पर श्रीखण्डों एवं ताड़ की श्री देखी। उसमें भी विविध शोभा वाले अनार एवं द्राक्षा (अंगूर) के बगीचे देखे। कहीं पर श्रेष्ठ करुणि (करौनी), कनेर एवं कचनारों वाला सुन्दर वन देखा।

कहीं पर पीपल, पलाश, बहेड़ा, हर्र, ताम्बूल, आँवला एव आमड़ा (अमरा) से भरा वन देखा। कहीं पर प्ररोह झूमते हुए सुविशाल न्यग्रोध (वट) वृक्ष देखे जो बैठे हुए पक्षियों के शब्दों से आकुल (व्याप्त) थे।

---

(6) 1. अ. कुरु। 2. अ. सा। 3-4. अ 'तरु जिडव कडहंपि'; ब 'वर कुरम करहंगि'। 5. ब. म। 6. ब. हुल'। 7. अ स'। 8. ब नि'। 9 अ ड'। 10. ब मे'।

कहिमि सुरदारु-घण-सीसमी-पिप्पली-फोंफली-जाइ-जूहीहिं सेवत्तिया राइयं।
कहिमि णिरु णिविड-मोग्गरय मचकुंद-कुंदेहिं-चंपय-लया छाइयं।।
कहिमि वर करि-करा-[11]मुक्क सिक्काक्खण[12]-सित्त करडयल-मय-गलिय कद्दमं।
कहिमि सीहस्स अणु[(1)] मग्ग लग्ग भमंत वणे मज्झ[(2)] सरहं पि अइदुद्दमं।।

।। सुतार णाम छंदो।। छ।।

घत्ता— इय एवंविहु तरुवर-वहलु पेक्खइ वणु वणयर गहिरु।
णहजाणइँ हरिसुउ चिक्कमइँ दप्पुब्भड-भड थड गहिरु।। 173।।

(7)

आरणालं — तावग्गइ सुसाहणं विविह वाहणं णिविडयं तुरंतं।
दिव्वाहरण-लंकियं णिरु असंकियं दिट्ठयं सरंतं।। छ।।

कहिंपि दिट्ठ करि-[1]वरा [2]चलंत णाइँ[3] गिरिवरा।
कहिंपि दिट्ठ हयवरा अराइ[(1)] णिवह-हयवरा[(2)]
कहि[4]पि दिट्ठ रहवरा[5] वलग्गसूर-रहवरा।
कहिंपि दिट्ठ जोहया परस्स जोह मोहया।

कहीं पर सघन देवदारु, सीसम, पिप्पल, पोंफली, जातिफल, जूही एवं सेवन्ती से सुशोभित वन थे तो कहीं पर अत्यन्त सघन मोंगरा, मचकुन्द, कुन्द एवं चम्पकलता से आच्छादित वन था। कहीं पर वन का मध्य भाग विशाल उत्तम हाथियों की सूँड़ों द्वारा मुक्त सीत्कार (शीकर) कणों से सींचे तथा करटतलों (गण्डस्थल) से गिरे हुए मद-जलों से कीचड़ युक्त हो रहा था। कहीं पर सिंह के पीछे मार्ग में घूमते हुए शरभों (अष्टापदों) से युक्त वह वन भयानक लग रहा था।

घत्ता— इस प्रकार दर्पोद्भट भट समूह को भी आतंकित कर देने वाले हरिसुत उस प्रद्युम्न ने विविध तरुवरों तथा वनेचरों से युक्त उस गहन वन को नभ-मार्ग से जाते हुए (मार्ग में) देखा।। 173।।

(7)

मार्ग में कुमार प्रद्युम्न ने एक सुसज्जित सैन्य-समुदाय देखा

आरणाल— तब आगे चलकर उसने तुरन्त ही सुन्दर सजे हुए विविध अनेक वाहनों से युक्त, दिव्याभरणों से अलंकृत, पूर्ण निर्भय जाते हुए सैन्य को देखा।। छ।।

कहीं पर बड़े-बड़े हाथी देखे, मानों विशाल पर्वत ही चल रहे हों। कहीं पर उत्तम घोड़े देखे, जो शत्रु समूह को मारने वाले थे। जिनमें शूरवीर चढ़े हुए हैं, ऐसे (अनेक) रथवरों को देखा। कहीं पर सुभट योद्धा देखे जो शत्रुओं को मूर्च्छित करने वाले थे। कहीं पर शिविका (पालकी) एवं यानियाँ (डोलियाँ) देखीं, जो सुरेन्द्र के यानों

---

(6) 11-12. अ. मुक्कारकण।
(7) 1. ब. क। 2-3. अ. [illegible] चलंत। 4-5. ब ×।

(6) (1) पिच्छ लग्गमार्गे। (2) वन मध्ये।
(7) (1) शत्रु। (2) हननशील।

कहिंपि सिविय-जाणिया सुरिंद-जाण माणिया।
कहिंपि दिट्ठ करहया अरोह किसिण-करहया।
कहिंपि आयवत्तया णिरुद्ध दुमणि[3] - वत्तया।
कहिंपि दिट्ठ णरवरा पणासियारि[4] णरवरा।
कहिंपि दिट्ठ वेसरा किउद्ध कंध-केसरा।
कहिं रसंत-तूरयं णिएवि भुवण पूरयं।

घत्ता— इय कुरुणाहहो-सेणु धयदंडचवल उब्भेवि कर।
तूर-रवेण जंपेइ भो-भो[6] कुमार आरासर[5]।। 174।।

(8)

आरणालं— अवलोएवि साहणं किय पसाहणं कुसुमसरु सचित्तो।
पुणु भुवणम्मि सा[1]रउ जग-पियारउ सुरमुणि पउत्तो।। छ।।

भो-भो ताय गुज्झु मा रक्खहि एहु कहो तणउ सेण्णु महो अक्खहि।
हरि-सुउ परिपुंछइ सय वारउ वार-बार अवगण्णइ णारउ।
मणसिउ-पुंछमाणु णउ थक्कइ रिसि णिय[1] - वयणु[2] णिवा[2]रिउ वंकइ।

के समान थीं। कहीं पर ऊँट देखे जो प्ररोहों को अपने कृष्ण करों से (ग्रीवा) से नष्ट कर रहे थे। कहीं पर छत्र थे, जो द्युमणि (सूर्य) के तेज को रोक रहे थे। कहीं पर नरवरों को देखा जो शत्रु नरवरों को नष्ट करने वाले थे। कहीं खच्चर देखे जो प्रशस्त स्कन्धों के केशर (बाल) वाले थे। कहीं बाजे बज रहे थे, जो भुवन को पूर रहे थे। प्रद्युम्न ने उसे चलते हुए देखा।

घत्ता— इस प्रकार कुरुनाथ की सेना चपल ध्वज दण्डों को हाथ में खड़ा कर तूर-बाजे के शब्दों से मानों पुकार-पुकार कर कह रही थी कि—"भो कुमार समीप आओ।"।। 174।।

(8)

कुरुनाथ—दुर्योधन की सेना माता रूपिणी के पराभव का कारण बनेगी, यह जानकर प्रद्युम्न आकाश में ही विमान रोककर शबर के रूप में धरती पर उतरता है

आरणाल— सुसज्जित साधनों को देखकर सुन्दर चित्तवाला भुवन में साररूप, जगत को प्यारा वह कुसुमशर — प्रद्युम्न सुर मुनि — नारद से बोला।। छ।।

"हे हे तात, गुप्त मत रखिए, यह किसकी सेना है मुझसे कहिए। हरिसुत प्रद्युम्न ने सैकड़ों बार पूछा किन्तु नारद ने बार-बार उसकी अवहेलना की। मनसिज—काम, पूछते-पूछते जब नहीं थका (रुका) तब ऋषि ने अपने वचन से उस बाँके (चतुर-वक्र) को रोका और बताया "हे पुत्र, क्या प्रलाप कर रहे हो? मैं नहीं जानता।

(7) 6. अ.×।
(8) 1. ब. भा। 2. अ. रा।

(7) (3) सूर्यप्रभा। (4) शत्रुनाशनशीलाः (5) आगच्छ।
(8) (1) नारद.। (2) निजमुखं।

पुणु भासइ सुंव काइँ पलावइ		हउं ण मुणमि कि मित्था गावइँ।
ता सुहडहं धुत्ताहण धुत्तइँ		किउ विमाणु थिरु रुविणि पुत्तइँ।
चल्लाविउ चिक्कमइँ णणारइँ		खि[3]ल्लिउ जलहरु णं अंगारइँ।
मुणि जंपइ सुणि विरहिउ सामइ[(3)]		अत्थि राउ दुज्जोहणु णामइ।
तहो पुणु धूव उवहि उप्पण्णी		सा पुणु आसि तणय तुह दिण्णी।
एमहि सच्चहि सुउ परिणेसइ		तुह जणणिहिं वहु परिहउ देसइ।[(4)]

घत्ता— इय णिसुणेवि मणोब्भवेण गयणंगणे विमाणु थंभेविणु।
अप्पुणु महिहि समोयरिउ भीसणु सवरहो रूउ धरेविणु।। 175।।

(9)

आरणालं— करे कोवंडु कंडयं किय पयंडयं जयसिरि णिवासं।
रूवं अइ भयाणणं णं जमाणणं गहेवि भड-विणासं।। छ।।

तणु णव-जलहर छवि[(1)] सारिच्छउ		झंपड कविल-केस दुप्पेच्छउ।
पोमराय-मणि सण्णिह णयणउँ		छिव्वर-णासउ दंतुर वयणउँ।
वेल्लीवलय-विहूसिय वरसिरु		गिरि भित्तिहिं समाणु सोहइ उरु[(2)]।

क्या मैं मिथ्या गुणगान करूँ? तब सुभटों के धूर्त एवं सुभटों को मारने में भी धूर्त (—कुशल) उस रूपिणी पुत्र ने अपना विमान स्थिर किया (रोका)। पुनः प्रत्युत्पन्नमति वाले प्रद्युम्न ने (सहसा ही) उस विमान को पुनः तीव्र गति से चला दिया। यह देखकर नारद क्रोधित हो उठे, मानों अंगारे ही मेघ के रूप में बरसने लगे हों। मुनि बोले—"उपशान्त कषाय वालों के स्वामी हे प्रद्युम्न, तुम सुनो—"दुर्योधन नामका एक राजा है। उसकी उदधिकुमारी नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। हे पुत्र, पूर्व में वह तुम्हें दी जाने वाली थी। अब उसे सत्यभामा का पुत्र परणेगा, जो तुम्हारी माता के लिए बहुत परिभव देगा (अर्थात् पराजय एवं तिरस्कार का कारण बनेगा)।

घत्ता— यह सुनकर वह कामदेव गगन रूपी आँगन में अपना विमान खड़ाकर भीषण शबर (भील) का रूप धर कर चुपचाप पृथिवी पर उतरा।। 175।।

(9)

विकराल शबर वेश-धारी प्रद्युम्न कुरु सेना को रोक लेता है

आरणाल— भटों का विनाश करने वाले तथा विजयलक्ष्मी के निवास उस प्रद्युम्न ने प्रचण्ड धनुष बाण को हाथ में लेकर यमराज के समान ही अपना भयानक रूप एवं मुख धारण किया।। छ।।

उस (भील) के शरीर की छवि काले नवीन मेघ के समान थी। झबरे कपिल केश थे, जो दुष्प्रेक्ष्य (न देखे जायें ऐसे) थे। पद्मरागमणि समान लाल-लाल नेत्र थे, छिवरी—चिपटी नाक तथा मुख में निकले हुए बड़े-बड़े दाँत थे। लता-वलय से विभूषित सिर था, पर्वत की भीत के समान विशाल हृदय सुशोभित था, हाथ कठोर थे,

(8) 3. ब 'स।

(8) (3) उपशान्तस्य। (4) दास्यते।

(9) (1) दीप्ति। (2) हृदय।

कठिण पाणि-थूलुद्धुर[(3)] कंधरु पोट्टु पय मोट्टु वि दुद्धरु।
गुंजाहल-मालहिं किउ भूसणु विविहा वक्कल-वत्थ-णियंसणु।
करें तिहकंड[1] धणुरुहु संजोयवि थिउ सेण्ण[2]गइँ उब्भउ होयवि।
ता णरवर कुमरइँ विहसंतहिं भणिउ पुलिंदुवहासु करंतहिं।
भो-सुंदर किं अहिमुहु ढुक्कहि किं किज्जइ अग्गइँ तुहु थक्कहि।

घत्ता— पडिवयणु पयंपइ भडयणहो समरु असंकिउ णियमणे।
हउं वट्ट [3]वहोवमि जणवयहो रत्ति-दिवसु थिउ एह वणे।। 176।।

(10)

आरणालं— पुणु वि पुलिंद जंपिणं किंपि कंपए णियइ चउल चित्तो।
हउमि सुठाण वालउ अडइ-पालउ सुणहु मणि णिरत्तो।। छ।।

किण्हो आएसें हउँ इहि अच्छमि वणि वणियारउ पहिउ[1] णि[2]यच्छमि।
अणु-दिणु एहु मग्गु परिवाहमि रायाएसें सुक्कुग्गाहमि।
मुहि एण विणउ गमणु करिज्जइ जं अहिलसमि किंपि तं दिज्जइ।
ता चवंति भड पहरण-धारा अम्हइ णाउ वणे उववणियारा।

स्थूल उन्नत कन्धे थे, पेट बड़ा और पैर मोटे थे, दुर्द्धर था। गुंजाफल की माला का आभूषण धारण किये था और विविध वल्कलों के वस्त्र कमर में बाँधे था। वह अपने हाथ में धनुषबाण सँजोकर सेना के आगे उठकर खड़ा हो गया। तब मुस्कराते हुए उस नरवर दुर्योधन के कुमारों ने पुलिंद (शबर) का उपहास किया और कहा— "भो सुन्दर, क्यों सन्मुख ढूँकते हो? आगे तुम खड़े हो गये हो अब (तुम्हारा) क्या किया जाये?"

घत्ता— अपने मन में समर से आशंकित उस शबर (प्रद्युम्न) ने भट जनों से प्रत्युत्तर में कहा—"मैं रात-दिन इस वन में रहता हूँ और लोगों के लिए मार्ग दिखाता हूँ।। 176।।

(10)

शबर वेश-धारी प्रद्युम्न कुरुसेना से शुल्क के रूप में राजकुमारी उदधिकुमारी को माँगता है

आरणाल— चपलचित्त उस पुलिन्द (प्रद्युम्न) ने (रोष के कारण) कुछ काँपते हुए देखा और कहा—सावधान होकर सुनो, मैं इस स्थान के अटवी-पालक का बालक हूँ।। छ।।

"—कृष्ण के आदेश से मैं यहाँ रहता हूँ और वन में वनचारी पथिकों का निरीक्षण करता हूँ। प्रतिदिन मैं इस मार्ग को सम्भालता हूँ और राजा के आदेश से शुल्क उगाहता हूँ। मैं जो कुछ चाहता हूँ वह मुझे दे दीजिये, फिर मुझे नमस्कार करके ही आगे गमन करिये।" तब शस्त्रधारी वे भट बोले—"हम लोग इस वन में वनजारे—व्यापारी के रूप में नहीं आये हैं।" फिर भी हे वनचर-पति, आपने जो हरिनाम प्रकट किया है, वह

---

(9) 1. अ. तिकम; 2. अ. गिव। 3. ब. 'च।

(9) (3) उत्कट।

(10) 1. ब. पु'। 2. ब. हि।

पर किं जं हरि[3] णामु पयासिउ तं वणयर-पइ उत्तमु भासिउ।
मग्गि-मग्गि जं तुव मणि रुच्चइ णरवरिंद तिंदहि इम[4] वुच्चइ।
लइ मायंग-मत्तवर-हयवर लेहि पहाण तुंग दिढ रहवर।
लइ हिरण्णु-मणि-रयणु असेसु वि भूसणु-कोसु-देसु सुविसेसु वि।
ता वण-वाहइ उत्तरु भासिउ सुहडहँ वयणु सुट्[5]ठ उवहासिउ।
एयहिँ वहु एहिमि किं किज्जइ जं मणहरु तं एक्कु जि दिज्जइ।

घत्ता— ता विहसिवि एक्कें णरवरेण पुणरवि एम पवुच्चइ।
एहु मग्गइ सुंदर राय सुव अवरु ण चित्तहि रुच्चइ।। 177।।

(11)

आरणालं— आयण्णिवि पुलिंदउ गहिर-सद्दउ चवइ गाह जुत्तं।
मणोहरणाह पुत्तिया गुण णिउत्तिया देहु-लेहु णिरुत्तं।। छ।।

एमहि णउ पुणु वच्चहुं लब्भइ णरवर वि[1]क्कमंत परिरुंभइ।
ता चवंति भड-भिउडि भयंकर ऊसरु दुट्ठ रास दुक्किंकर।
जा धरणीधर तणयहो दिण्णी सा कह पइँ मणेण पडिवण्णी।

उत्तम कहा है। तुम्हारे मन में जो-जो रुचे उसे माँगो, माँगो। पुन: उन नरवरेन्द्रों (भटगणों) ने कहा— "मदोन्मत्त हाथी ले लो, बड़े-बड़े घोड़े ले लो। प्रधान उच्च दृढ़ रथवर ले लो, समस्त सोना, चाँदी एवं मणिरत्न लो। भूषण, कोष, एवं सुविशेष देश ले लो।" तब उस वनवाहक (व्याध) ने उत्तर दिया—तथा उन सुभटों का भली-भाँति उपहास किया और बोला—"इन बहुतों को लेकर मैं क्या करूँगा? मुझे तो जो मनोहर है, वह अकेली एक वस्तु ही दे दीजिए।"

घत्ता— तब उनमें से किसी एक नरवर ने हँसकर पुन: यह कहा—"यह सुन्दर राजसुत इस कन्या (उदधिकुमारी) को माँग रहा है। इसके चित्त में अन्य कोई भी वस्तु नहीं रुच रही है।"।। 177।।

(11)

शबर ने कुरुसेना के छक्के छुड़ा दिये

आरणाल— तब पुलिंद ने नरवर के शब्द सुनकर हठ सहित गम्भीर शब्दों में कहा—"नरनाथ की गुण-निधान मनोहर पुत्री मुझे शीघ्र प्रदान करो।। छ।।

मेरे इतना कहने पर भी यदि मैं उस (कन्या) को प्राप्त नहीं करता, तब हे नरवर, मैं पुन: तुम्हारे विक्रमी भटों को रोकता हूँ।" तब उन भटों ने भयंकर भृकुटियाँ तानकर कहा—"रे मूढ़, हे दुष्ट, हे गधे, हे दुष्ट सेवक, हट। जो राजकुमारी धरणीधर तनय को दे दी गयी है, उसे माँगने की तूने अपने मन में कामना ही कैसे की?"

(10) 3. अ. णाउ। 4. अ. 'हउ'। 5. अ. ड्ठ।

(11) 1. अ. वि।

हउँ हरिणंदणु जंपइ वणयरु कुरवइ-तणयहे तणउ धरमि करु।
आरूसेविणु चल्लिय जामहिँ समरु-विलक्खु चवइ तहिँ तामहिँ।
भो-मइ एक्कु भणेवि मा पेल्लहु मण्णायहु अण्णाउ म[2] बोल्लहु।
महु सएणि जि वसहिँ इह दुद्धर जे संगाम महाभर दुद्धर।
एम चवेवि धणु अग्गइ देविणु णिय भासइ किक्कारु करेविणु।
जह-जह वलु अहिमुहु परिसक्कइ तह-तह धणु वड्ढंतु ण थक्कइ।
एत्तहिँ समरण कत्थइँ माइय करि तिकंडु-धणु सरिस [3]पराइय।
तहो सारिच्छ मिलिय समरंगणे पेक्खइ णारउ ठिउ गयणंगणे।
ताम सेण्णु णियमणि परितट्ठउ अप्पंपरि हुवउ चउदिसि णट्ठउ।

घत्ता— कोवि गयइ कोवि तह हय-वरइँ कोवि रहइँ-संचूरिउ।
कोवि वसहइँ कोवि करहएण एस सुहडु गणु हियइ-विसूरिउ।। 178।।

(12)

आरणालं— इय एहम्मि कालए णिरु भयालए आहवे समत्था।
पडि-पहरंति वीर[1]या पवर धीरया गहिय धणुहँ हत्था।। छ।।

तब वनचर बोला---"मैं हरि का पुत्र हूँ। मैं कुरुपति की पुत्री के हाथ को पकड़ूँगा।" रूसकर जब वे भट चले, तब समर में विचक्षण शबर उनसे बोला---"भो, मुझे अकेला कहकर मत दबाओ। मेरे न्याय को अन्याय मत कहो। मेरे साथ सौ दुस्तर वीर यहाँ रहते हैं, जो संग्राम के महाभार में दुद्धर हैं।" ऐसा कहकर अपने धनुष को आगे देकर तथा उस पर टनकार मारकर बोला—"जैसे-जैसे सेना आगे खिसकती है; वैसे-वैसे धनुष बाणों को आगे बढ़ाने (छोड़ने) में भी वह नहीं थकता। इसी बीच में वहाँ इतना घमासान समर छिड़ गया कि वहाँ वह समाया नहीं। वे धनुषाकार होकर हाथों में धनुष धारण कर टूट पड़े। जब समान शक्ति वाले समर भूमि में जा मिले तभी गगनांगन में स्थित नारद ने देख लिया। वह सेना अपने मन में डर गयी और अपने परायों पर गिरते पड़ते हुए वे चारों दिशाओं में रफूचक्कर हो गये।

घत्ता— कोई गजों से चूरा गया, कोई हयवरों से चूरा गया और कोई रथों से चूरा गया। कोई बैलों से चूरा गया, कोई ऊँटों से चूरा गया। इस प्रकार वे शत्रु सुभट-गण हृदय में विसूरने लगे।। 178।।

(12)

शबर द्वारा उदधिकुमारी का अपहरण

आरणाल— उस समय कुरुसेना के सभी भट भयाकुल एवं आहत हो चुके थे। फिर भी उन वीरों ने प्रचुर धैर्य के साथ हाथों में धनुष लेकर प्रत्युत्तर में पुनः प्रहार किया।। छ।।

---

(11) 2. अ. ण। 3. अ. °ह।

(12) 1. ब. द।

किउ कलयलु पुलिंद भड विंदइ जगु बहिरिउ धणुहर गुण णट्टइँ।
जे भिडमाण सुहडु ते भंजिय हय-गय-रह-साहण वहु गंजिय।
भय भंगालयम्मि तहिँ अवसरि क[illegible] रोप [illegible] भगे बेलारे।
ता महि-मंडलम्मि रायहो सुव पडिय पवर भालइ माला भुव।
पेक्खेविणु सवेरण अहंगइँ णिय अवहरेवि तुरिउ णह-मग्गइँ।
हा-हा ताय-ताय जंपंतिय वणयर रूव भयइँ कंपंतिय।
हा लक्खण आयण्णि सहोयर दूसासण सुणि रिउ जम गोउर।
हा-मद्देय सुकुण्ण विउव्वल हा-रवि-सुव कलसद्द सउव्वल।
मइ मेल्लिवि किम गमणु करेसहु किं रायहो णियमुहु दरिसेसहु।

घत्ता— जइ छलु-कुलु-वलु पउरिसु वि वसइ चित्ते सहुँ खत्तइँ।
तो सयल णहाहिव मिलिवि लहु मइँ रक्खेहु पयत्तइँ।। 179।।

(13)

आरणालं— अइ कलुणु रुवंतिया राय-पुत्तिया खणु वि मणें ण थक्का।
पुणु-पुणु मुच्छि जंतिया णीससंतिया [1]मुणिहे पुरउ मुक्का।। छ।।

पुलिन्द-भट वृन्दों ने कोलाहल किया, जिससे जगत् बधिर हो गया। धनुर्धरों की गुण (डोरी-ज्या) नाचने लगी। जो सुभट भिड़ रहे थे, उन्हें पुलिन्दों ने भाँज दिया तथा उनके हय, गज, रथ जैसे साधनों को गाँज दिया (ढेर बना दिया)। भय से भंग स्थान में उसी समय खच्चरों के कल-कल शब्द से वे सभी भट मन में डर गये। तभी महीमण्डल में उस राजपुत्री के प्रवर भाल से माला भूमि पर गिर पड़ी। शबर ने उसे अभंग देखकर स्वयं उसका अपहरण किया और तुरन्त ही आकाश-मार्ग से चला गया। वह राजपुत्री उस वनचर भील के रूप से काँप रही थी और "हा तात, हा तात, हा लक्ष्मण, हे सहोदर भाई, शत्रुओं के लिए यम के द्वार के समान दुःशासन, हा माद्रेय, हा विपुल बल सुकर्ण, हा रविपुत्र कल-कल शब्दों से बलधारी सुनो-सुनो।" इस प्रकार कह कर चिल्ला रही थी तथा कह रही थी कि—"मुझे छोड़कर कहाँ गमन कर रहे हो? राजा को अपना कैसे मुख दिखाओगे।"

घत्ता— "यदि क्षत्रियपने के साथ-साथ चित्त में छल, बल, कुलीनता एवं पौरुष है, तो हे समस्त विद्याधर नृप आप सभी मिलकर प्रयत्नपूर्वक शीघ्र ही मेरी रक्षा करें।"।। 179।।

(13)

उदधिकुमारी शील-भंग के भय से महर्षि नारद से अपनी सुरक्षा की माँग करती हुई उग्र तप की प्रतिज्ञा करती है

आरणाल— अति करुण स्वर से रोती हुई वह राजपुत्री एक क्षण को भी मन में नहीं रुकी। पुनः मूर्च्छित हो गयी और निश्वास लेती हुई मुनि के सम्मुख पड़ गयी।। छ।।

---

(13) 1. नारदस्य।

वंभेयहो कम-कमल णमंतिय जंपइ वहुउ पलाउ करंतिय।
हा-हा ताय-ताय सुर सारा किं दुक्किउ मइँ कियउ भडारा।
आसि-काले जइ एह उप्पणी हउँ रूविणि-तणयहो पडिवण्णी।
सो ण मुणिउ केणइ अवहरियउ पुणु सच्चहे सुउ पच्छइँ चरियउ।
तेण णिमित्तइँ चल्लिय जामहि वणयरेण हरि आणिय तामहि।
पर वणयरु गयणयले ण सक्कइ तुम्हारि सुणउ णियडइ थक्कइ।
जइ सुरवरु तो किं दुद्धरसिउ खय-कालाणुरूउ अणुसरियउ।
इउ दइच्चु मइँ णियमण जाणिउँ वइर-वसेण हरिवि तुहु आणिउँ।
णिग्घिणु सीलु मज्झु भंजेसइ अइ दुच्चरिउ वि जणु जंपेसइ।

घत्ता— पइँ सक्खि करेविणु देवरिसि मणु जिणवरहो उवरि संजोयमि।
फेडमि कलंक-पंक कुलहो उग्गंतउ अप्पउ विणिवेयमि[(2)]।। 180।।

(14)

आरणालं— ता जंपेइ जइवरो णिहय रइवरो सुणि सुए णिरुत्तं।
एहु सो तुज्झु वल्लहो भुवणे दुल्लहो मरि वएणज्जत्तं।। छ।।

ब्रह्मचारी (नारद) के चरणकमल को नमस्कार कर विविध प्रलाप करती हुई बोली —"हा तात, हा तात, हे देवों में सार, हे भट्टारक ऋषि, मैंने क्या दुष्कृत किया है। अतीत काल में जब मैं उत्पन्न हुई थी तब मुझे रूपिणी के पुत्र को देने के लिये कहा गया था। किन्तु अब मैं नहीं जानती कि किसके द्वारा अपहृत की गयी हूँ। अब सत्यभामा का पुत्र भी पीछे रह गया है। उसी निमित्त से जब मैं (बारात में) चली तब मुझे कोई वनचर हरकर यहाँ ले आया है। पर वनचर आकाश में (चलने में) समर्थ नहीं है। तुम्हारी पुत्री हूँ, तुम्हारे निकट में बैठी हूँ (मेरी प्रार्थना) सुनो—"यदि वह सुरवर है तो क्षयकाल के अनुरूप दुर्धर्ष रूप क्यों धारण किया?" किन्तु यह दैत्य है, ऐसा मैं अपने मन में जानती हूँ। बैर के वश से हरकर वह मुझे तुम्हारे पास ले आया है। वह निर्दय है, मेरा शील-भंग करेगा और तब मैं अतिदुश्चरित्रा हूँ ऐसा लोग कहेंगे। अतः—

घत्ता— हे देव ऋषे, आपको साक्षी कर मैं अपने मन को जिनवर के ऊपर जोड़ती हूँ, कुल के कलंक-पंक को फेडती हूँ और अपने को उग्र तप में लगाती हूँ।। 180।।

(14)

नारद के आदेश से प्रद्युम्न उस उदधिकुमारी को अपना यथार्थ रूप दिखा देता है। वह प्रसन्न मन से उसके साथ द्वारामती पहुँचती है

आरणाल— तब काम-विकार को नष्ट करने वाले यतिवर बोले—"हे पुत्रि, ठीक-ठीक सुन। यही वह तेरा पति है, जो भुवन में दुर्लभ है। मेरे वचन पर विश्वास कर तुम उसे पहिचान लो।"।। छ।।

---

(13) (2) णिग्गतयमि।

भणिउ मणोब्भउ मा भेसावहि   सुंदरि णियय-रूउ दरिसावहि।
ता अप्पउ पयडियउ सव्वंगु वि   किं वण्णिज्जइ अवसु अणंगु वि।
सोलह-आहरणालंकरियउ   णं ससि णिय-कलाहिं लंकरियउ।
णं सुरु णं सुरवरु णं किण्णरु   णं उविंदु[1] वरु[2] णं णव-दिणयरु।
णं सोहग्ग णिवहु रूवहो णिहि   अवलोयं तियाहे तहे हुव दिहि।
इय अउव्व भावेण णियंतइ   परियट्टइँ गयणयले तुरंतइ।
ता पुरि दिट्ठ-दिव्व दारामइ   [1]जहिं जयवर दिण्णी-दारामइ[2]।
जा पर-णरवर गण-दारामइ   जहिं वसंति णर णिय दारामइ।
जहिं णिय-पुरिसोवरि दारामइ   जहिं चउ-पासहिं फल दारामइ।
जहिं जइ-वरणिज्जिय दारामइ   जहिं जिणहर इव चउ दारामइ।
रेहइ जा उद्दामारामइ (दारावइ?)   (तिल्लोयहं मज्झ अपुव्व दारामइ)।

घत्ता— तहिं चउ पासहिं संठियउ उज्जलु जलणिहि सह इव केहउ।
णं पुरवरिहे पुरंधियहे णिवसण-वत्थ णिरारिउ जेहउ।। 181।।

पुन: मदन से कहा—"हे मदन, इस सुन्दरी कन्या को डराओ मत, इसे अपना यथार्थ रूप दिखा दो।" तब उस कुमार ने अपने सर्वांग का ऐसा सुन्दर रूप प्रकट किया कि उस अवश (स्वतन्त्र) अनंग (प्रद्युम्न) का क्या वर्णन किया जाय? अपने रूप को षोडश आभरणों से अलंकृत कर लिया, मानों चन्द्रमा ने अपनी समस्त कलाओं से ही उसे अलंकृत कर दिया हो। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों देव हो, अथवा इन्द्र हो, अथवा किन्नर हो अथवा विष्णु हो अथवा श्रेष्ठ नव-सूर्य हो अथवा मानों सौभाग्य का समूह हो अथवा मानों रूप की निधि हो, ऐसे रूप को देखती हुई उस राजपुत्री को धैर्य हुआ। इस प्रकार अपूर्व भावों से देखती हुई वह गगनतल में (उसके साथ) तुरन्त चल दी। तभी उन्होंने दिव्य द्वारामती नामकी नगरी देखी, जो जगत के लिए प्रधान प्रवेश द्वार के समान है तथा जो पुरी शत्रु-मनुष्य वर्गों के द्वार को रोकने वाली है, (अर्थात् शत्रु-गण को नाश करने वाली है) जहाँ मनुष्य निजदारा से सन्तुष्ट रहते हैं, जहाँ निज पुरुषों के ऊपर ही दाराओं की मति है (अर्थात् स्त्रियाँ पतिव्रता हैं), जो नगरी चारों ओर फल-वृक्ष वाली है। जहाँ यतियों द्वारा स्त्रियों के प्रति अपनी लालसा को निर्जित किया जाता है। जो चतुर्मुखी जिन-भवन के समान ही चतुर्मुखी चार द्वार वाली है। जो पुरी उत्कृष्ट बगीचों से सुशोभित हैं। ऐसी तीन लोक में प्रधान अपूर्व द्वारावती पुरी है।

घत्ता— वहाँ चारों ओर उज्ज्वल, समुद्र के फेन की तरह एक परकोट स्थित है। मानों निश्चय ही पुरी रूपी पुरन्धी के पहिनने का वस्त्र ही हो।। 181।।

---

(14) 1-2. अ प्रति में यह चरण नहीं है।

(14) (1) विष्णु। (2) प्रधानु।

(15)

आरणालं— पुणु वणराइ पेक्खए मणे वियक्खए मणसिउ वि केम।
णं पुरि बहु रमेण्णिया हरिय-वण्णिया वर कंचुलिय जेम।। छ।।

णिरु पंच-वण्ण मणि विष्फुरंतु अणु-दिणु पयंग-ससि पहहरंतु।
बहुविह विहंगकुलरव रसंतु णिय गरिमइँ सुरगिरि उवहसंतु।
पेक्खइ हरिसुउ पायारउव्व णं पुरि महिलहि कडिमेहलव्व।
धवल-हर सुधय-माला विहाइ पुरि-वहु पंगुरणा वत्थु णाइँ।
गोउर-चयारि रेहंति कह णं तहे वयणइँ वियसियइँ जह।
सच्छंभ-सरिस-सर सहहिं केम णं पुरि-पुरंधि लोयणइँ जेम।
मज्झत्थु णरिंदहो गेहु विहाइ पुरि-वहु सिरि-सहरु बद्धु णाइँ।
इय पेक्खमाणु सरु[1] विंभियउ णहजाणु णहंगणे थंभियउ।
आयरेण-पंपुच्छिइ देवरिसि इह कवण णयरि धण-कण-दरिसि।

---

(15)

प्रद्युम्न महर्षि नारद एवं उदधिकुमारी के साथ द्वारामती पहुँचता है

आरणाल— पुनः द्वारामती की वनराजि को देखकर वह मनसिज-प्रद्युम्न मन में विकल्प करता है, कि "वह वनराजि कैसी है?" तब कवि कहता है कि "वह ऐसी प्रतीत होती थी मानों पुरी रूपी सुन्दर वधू की हरित वर्ण की उत्तम चोली ही हो।"।। छ।।

उस पुरी में पाँचों वर्ण की चमकती हुई मणियाँ हैं, जो अपनी प्रभा से प्रतिदिन सूर्य एवं चन्द्र की प्रभा को हरती रहती हैं। वहाँ वनराजि में विविध प्रकार के पक्षीगण कलरव कर रहे हैं, मानों, वह पुरी अपनी गरिमा से सुमेरु का उपहास ही कर रही हो। उस हरिसुत (प्रद्युम्न) ने वहाँ अपूर्व प्राकार देखा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानों उस पुरी रूपी महिला की वह कटि-मेखला ही हो। उस पुरी के धवल गृह सुन्दर ध्वजाओं से सुशोभित थे, मानों वे पुरी रूपी महिला के प्रावरण—पहनने के वस्त्र ही हों। वहाँ उस पुरी में चार गोपुर द्वार किस प्रकार सुशोभित थे? जैसे मानों उस पुरी के चार विकसित मुख ही हों। स्वच्छ जल से भरी हुई नदी एवं सरोवर किस प्रकार सुशोभित थे, जैसे मानों उस पुरी रूपी वनिता के लोचन ही हों। उस पुरी के मध्य स्थित राजा का भवन ऐसा सुशोभित था, जैसे मानों पुरी रूपी वधू के सिर पर शेखर ही बँधा हो। इस प्रकार शोभा को देखता हुआ वह मकरध्वज (प्रद्युम्न) बड़ा विस्मित हुआ और उसने आकाश में ही उस नभोयान को स्तम्भित कर दिया और आदरपूर्वक देवऋषि से पूछा कि—"धन-कण से पूर्ण यह कौन सी नगरी दिखाई दे रही है?"

---

(15) 1. अ सिरि।

घत्ता— आहासइ मुणि मयरद्धयहो णिसुणि सुहड-भड-थड-कय-मद्दण।
पइँ जहिं जाएव्वउ वच्छ णिरुएह सा णयरि चउब्भुवणाणंदण।। 182।।

(16)

आरणालं— तं णिसुणेवि अणंगेणं भुवणचंगेणं पुणु वि एम वुत्तं।
जं-जं जासु मंदिरं सुरमणंदिरं कहहि लहु णिरुत्तं।। छ।।

अक्खेइ देवरिसि मयणस्स ता एम आयण्णि भो तणय हउँ कहमि जं जेम।
खयराहिवो विण्हु गेहे तुज्झ पियरस्स वर चक्क-गय-संख-सारंग धारस्स।
कमलासणा-वसइ वच्छत्थले [1]जस्स णिरु अद्ध-चक्केस सासणेण जुत्तस्स।
सीहद्धयं-मंदिरं दीसए जं जि सीराउहायस्स-आवासयं तंजि।
मेसद्धयं-रहए जस्स मंदिरहो तं तुव पियामहहो अइ-दिव्व सुंदरहो।
विज्जाहरालंकियं केउयं जच्छ जाणिज्जए सच्चहामाहरं तच्छ।
कलसद्धयं गेहयं जंपए सम्मि रेहंतयं णियय-मायाहे सुणि तम्मि।
ता सरेण णहजाणु थंभेवि णहे धरिउ अप्पु[2]णु वि सहसति महिवीढे अवयरिउ।

घत्ता— मकरध्वज के वचन सुन कर मुनि नारद बोले—"शत्रुओं के भट-समूह का मर्दन करने वाले हे सुभट-वत्स, सुनो। जहाँ तुम्हें पहुँचना था, चारों भुवनों को आनन्दित करने वाली यही वह (द्वारामती) नगरी है।"।। 182।।

(16)

नारद एवं उदधिकुमारी युक्त विमान को नभ में ही स्थिर कर वह प्रद्युम्न अकेला ही उतर कर द्वारावती घूमने निकलता है

आरणाल— उसको सुनकर भुवन में सुन्दर स्वस्थ उस अनंग (प्रद्युम्न) ने इस प्रकार निवेदन किया—"देवों के मन को आनन्दित करने वाले जो-जो जिस-जिसके भवन यहाँ बने हुए हैं, उनका शीघ्र ही मुझे परिचय दीजिए।"।। छ।।

तब देवर्षि नारद ने उस मदन से इस प्रकार कहा—"हे पुत्र, मैं जैसा कहता हूँ, उसे सुनो, ये भवन तुम्हारे उत्तम चक्र, गदा, शंख एवं धनुषधारी पिता खगाधिप विष्णु के हैं, जो कि अर्ध चक्र के शासन से युक्त हैं तथा जिसके वक्षस्थल पर लक्ष्मी का निवास है। जो यह सिंह ध्वजा वाला भवन दिखाई दे रहा है, वह सीरायुध बलदेव का आवास है। मेष की ध्वजा जहाँ जिस मन्दिर पर चमक रही है, अति दिव्य सुन्दर वह आवास तुम्हारे पितामह का है। विद्याधरों से अलंकृत ध्वजा जहाँ है वह सत्यभामा का घर जाना जाता है और सुनो, कलश की ध्वजा वाला जो चमकता हुआ भवन है उसे अपनी माता का घर जानो।" तब उस स्मर (प्रद्युम्न) ने अपना नभयान रोककर आकाश में ही खड़ा कर दिया और सहसा ही वह स्वयं अकेला महीपीठ पर उतरा। जब वह नीचे पुरी

---

(16) 1. ब. °स। 2. ब. °णु°।

परिसप्पए पुरिहि अहि[3]मुहउ किर जाम छत्तेहिंच्छण्णं णहं दीसए ताम।

घत्ता— हिलि-हिलि-हिलि हिंसंत हय चंचल-मण-पवणागम[1]।
पेक्खइ अणंगु अइ-पउर वर जे संगाम महाखम।। 183।।

(17)

आरणालं— चउपासेहिं सारया[1] आसवारया णियइ णिरु सुतेया।
फर-करवाल-हत्थया जे समत्थया किंकरा अणेया।। छ।।

पेच्छेवि सच्चहे सुउ रइवरेण पण्णत्तिय पुच्छिय आयरेण।
भणु कवणु एहु कहिं संचलिउ किं कज्जइँ हय-साहणु मिलिउ।
ता चवइ विज्ज आयण्णि देव पर-णरवर विंदहिं विहिय सेव।
किण्णु मुणहि एहु पहु भाणुकण्णु णिय-जणणि-सवत्तिहे तणउ[2] सेण्णु।
आयण्णिवि वयणु णि[1]रुद्धएण चिंतिउ सचित्ते मयरद्धएण।
किम एयहो दुट्ठहो माणु मलमि कुमरहो जि मज्झे सु पयाउ खलमि।
हयवाल[3] - रूउ सहसत्ति लेवि विज्जामउ-हउ-[4]वग्गहिं धरेवि।
कंपंतु-सीसु सजलोल्ल-णयणु सव्वंग-सिढिलु-दंतुरिय-वयणु।

के सम्मुख पहुँचा, तब उसने छत्रों से ढँका आकाश देखा।

घत्ता— वहाँ उस अनंग ने संग्राम में अत्यन्त समर्थ मन एवं पवन के समान तीव्र वेगगति वाले अनेक घोड़ों को देखा जो हिलि-हिलि-हिलि कर हींस रहे थे।। 183।।

(17)

प्रज्ञप्ति-विद्या का चमत्कार — कुमार प्रद्युम्न वृद्ध अश्वपाल के रूप में अपने सौतेले भाई भानुकर्ण के सम्मुख पहुँचता है

आरणाल— (आगे चलकर उसने वहाँ) सारभूत, अत्यन्त तीव्र वेगगामी असवार (घुड़सवार) को, जो कि चारों ओर से स्फुरायमान तलवारों को हाथों में लिये समर्थ अंगरक्षक सेवकों द्वारा घिरा हुआ था, देखा।। छ।।

रतिवर प्रद्युम्न ने उस (उक्त) सत्यभामा के पुत्र को देखकर आदरपूर्वक अपनी प्रज्ञप्ति-विद्या से तीन प्रश्न पूछे—"कहो यह कौन है? कहाँ चला है? और किस कार्य से इसे यह घुड़सवारी मिली है?" तब विद्या बोली—"शत्रु राजाओं द्वारा सेवित हे देव, आप सुनिए। हे प्रभु, यह भानुकर्ण है, क्या आप इसे नहीं जानते? आपकी माता के सौत का यह सूनु (पुत्र) है।" रुके हुए मकरध्वज ने यह सुनकर अपने चित्त में विचार किया—"क्या इस दुष्ट का मान-मर्दन कर डालूँ? अथवा सभी के बीच (सामने) इस कुमार के प्रताप को नष्ट कर डालूँ? इस प्रकार विचार कर उसने शीघ्र ही वृद्ध अश्वपाल का रूप बनाकर विद्यामय घोड़े की वाग (लगाम) पकड़ कर काँपते हुए माथे से आँसुओं से गीले नेत्रों द्वारा सर्वांग शिथिल तन एवं दन्तुर मुख वह (प्रद्युम्न) अपने तुरंग

(16) 3. अ. पु०; ब. 'पु।

(17) 1. अ. 'वि।

(16) (1) पवनवत्गति।

(17) (1) सारतरीभूत। (2) पुत्र। (3) अश्वपालरूप। (4) घोटकं।

पुणु पुरउ परिट्ठिउ साहणासु[2] रंगंत तुरंगम वाहणासु।

घत्ता— पेछेवि विज्जाहर-सुवइँ दीहर-भुवइँ हउ हयवरहँ पहाणउँ।
मणु पवणु व वेयइँ हरिमण तेयइँ तुंगम मेरु समाणउँ।। 184।।

(18)

आरणालं— आउछिउ कुमारेणं वर-वारेणं णियवि गिरुव चोज्जं।
किं विक्किणहिं हयवरो णयण-दिहियरो कहसु थेर कज्जं।। छ।।

आहासइ थेरु खलंत-जीहु णीसास [1]मुअंतु वि सुट्ठु दीहु।
भो-कुमर णिसुणि इह जमण देसु जाणिज्जइ लोयहं णिरवसेसु।
तहिं हुंतउ तुरिउ[(1)] तुरंगु लेवि आयहु वहु देसु अइक्कमेवि।
अइ दीहर-पंथ समेण रीणु णिरु णिद्द-तिसाए-छुहाए खीणु।
तुहुँ हरिसुउ हय[2]वर लेहि ज जि इउ अखमि हउँ आइयउ तं जि।
ता चवइ भाणु भणु किं करेमि जं मग्गहि तं तुह दवि[3]णु देमि।
पभणिउ तं हरि-मंदिरहु[(2)] णेहि महो तुरिउ दिणारहो कोडि देहि।

पर बैठकर रेंगता हुआ उस (सौतेले-भाई) के सम्मुख आया।

घत्ता— दीर्घ-भुजा वाले विद्याधर-पुत्र (प्रद्युम्न) के मन, पवन एवं हरि के मन से भी तेज गति वाले तथा सुमेरु के समान उत्तुंग श्रेष्ठ अश्वों में प्रधान उस अश्व को देख कर वह भानुकर्ण हतप्रभ रह गया।। 184।।

(18)

अहंकारी भानुकर्ण वृद्ध अश्वपाल (प्रद्युम्न) का तुरंग लेकर उस पर सवार हो जाता है

आरणाल— तब उस श्रेष्ठ असवार (घुड़सवार) — भानुकर्ण ने अत्यन्त आश्चर्यकारी नेत्रों को आनन्ददायक उस अश्ववर को देखकर उस वृद्ध (प्रद्युम्न) अश्वपाल से पूछा—"हे स्थविर क्या इस तुरंग को बेचोगे? इस तुरंग के कार्य (गुण) बताओ।"।। छ।।

तब लड़खड़ाती जीभ से उस स्थविर—वृद्ध (प्रद्युम्न) ने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए उत्तर दिया—"भो कुमार, सुनो। जो सम्पूर्ण लोकों द्वारा जाना हुआ है, ऐसा इस संसार में एक यवन-देश है। वहीं से इस तुरंग को लेकर अनेक देशों को लाँघता हुआ तुरन्त ही यहाँ आया हूँ। अति दीर्घपथ के श्रम से यह खिन्न तथा निद्रा, तृषा एवं क्षुधा से अत्यन्त क्षीण है। आप हरि-पुत्र हो, आप यह घोड़ा ले लो। यही मैं कहता हूँ। इसलिए मैं यहाँ आया हूँ।" यह सुनकर उस भानु ने पूछा—"कहो, मैं क्या करूँ? जो मांगो सो उतना द्रव्य मैं दे देता हूँ।" तब उस वृद्ध अश्वपाल ने उत्तर दिया—"तुम इसे हरि मन्दिर (कृष्ण-भवन) की अश्वशाला में लेकर रख लो तथा (उसकी कीमत के रूप में) मुझे एक करोड़ दीनारें दे दो।" तब उस भानु ने घुमा फिरा कर उससे कहा—"घोड़े (की

---

(17) 2. ब पुं°।

(18) 1. ब. मु। 2. अ ह°। 3. अ व्वु।

(18) (1) शीघ्रेण। (2) अश्वसालायां।

ता तेण पयंपिउ वलिवि एम — एत्तिउ हिरण्णु हउ लहइ केम।
पुणु पभणइ हयवइ सुणि कुमार — मग्गमि ण किंपि हउँ भुवणसार।
आरुहेवि तुरंगम वाहि मज्झु — जाणमि हउँ असवारत्तु तुज्झु।

घत्ता — इय वयणु सुणवि सच्चाहि सुउ झत्ति तुरंगहो उवरि विलग्गउ[3]।
तावण मेल्लमि थेर सुणि जावण संधि-असंधिहिं भग्गउ।। 185।।

(19)

आरणालं— दिढ-[1]रज्जुएण वालए वग्ग-चालए कुमरु किर सइत्तो[1]।
पुणु वहियाले वाहए थिरु सुसाहए मुणइँ तुरउ जित्तो[2]।। छ।।

हयवर इमि ताम तुरंतएण — सम-चरण-फाल-मेल्लंतएण।
परिभमेवि भमेवि महिवीढे घित्तु — दुक्कम्मइँ णं जीउ विणिहित्तु।
खल-वयणहिं णं सज्जणहो चित्तु — तह भाणु जीउ संदेह पत्तु।
कंचुइणा उवहसियउ कुमारु — तुव सरिसु णत्थि कु वि आसवारु।
जा-जाहि णियय-मंदिरहो वच्छ — हइवरु वाहि वय-निरुव दच्छ।

कीमत) के बदले में इतना हिरण्य (स्वर्ण-सिक्के) क्यों माँग रहे हो?" पुनः हयपति बोला—"हे कुमार सुनो। यह घोड़ा भुवन में श्रेष्ठ माना जाता है। अतः मैं तो इसकी कीमत कुछ भी नहीं माँग रहा हूँ। अपनी अश्वशाला से निर्दोष मेरे तुरंगम पर सवारी करो, तभी मैं तुम्हें (पक्का) असवार समझूँगा।"

घत्ता— वृद्ध अश्वपाल का कथन सुनकर सत्यभामा का वह पुत्र भानुकर्ण झपट्टे के साथ उस तुरंगम पर चढ़ गया और बोला—"बुड्ढे, सुन ले मेरी बात, मैं इस घोड़े को तब तक नहीं छोड़ूँगा, जब तक कि इसके अंग-प्रत्यंगों के जोड़-जोड़ भग्न न हो जायँ।। 185।।

(19)

भानुकर्ण को वह तुरंग पटक देता है तब वह लज्जित होकर स्वयं उसे उस पर सवार होने की चुनौती देता है

आरणाल— वह कुमार भानुकर्ण आश्चर्यचकित होकर सावधानी से दृढ़ रज्जु से उसे घुमाकर उसे लगाम लगाकर चलाता है और फिर उसे अश्वशाला में ले जाता है। वहाँ उस सवारी को साधकर स्थिर (शान्त) कर देता है और (इसी से) समझने लगता है कि उसने उस तुरंग को जीत (वश में कर) लिया है।। छ।।

जब वह कुमार उस पर सवार होकर चला तब वह तुरंगम तुरन्त ही अपने पैरों को तीव्रतापूर्वक एक साथ फेंकता हुआ दौड़ा और पृथिवी पर घुमा-घुमा कर उसे धरती पर दे पटका मानों कोई जीव दुष्कर्मों से मारा गया हो। खल के वचनों से सज्जन का चित्त जिस प्रकार हो जाता है, उसी प्रकार भानु का जीव भी सन्देह को प्राप्त हुआ। (यह देखकर) उस कंचुकी (हयपति) ने कुमार भानुकर्ण की हँसी उड़ाई और कहा कि—"तुम्हारे समान कोई भी असवार नहीं है। हे वत्स, जाओ-जाओ, अब अपने घर जाओ, आयु पूर्ण कर तथा दक्षता प्राप्त

---

(19) 1. अ ब रज्जेण।

(18) (3) चटित।

(19) (1) रचितं। (2) जितोऽगमति।

हरिणंदणु मण्णवि चवइ फारु[3] इय जं पमाणु पडिवुत्त[4] मारु।
किं करं णिरच्छ उवहसहिं मइँ इउ अच्छु ण मुणियउं कहिमि पइँ।
हय-वाहउ हय हुंतउ पडइ सूरो वि मरइ जो रणे भिडइ।

घत्ता-- पउरिसु वि किंपि जइ वसइ मणे थेर तुरिउ तो आवहि।
तइ तुरिउ विलग्गहि झत्ति तुहुँ णियय गुणु वि दरिसावहि।। 186।।

(20)

आरणालं— तं णिसुणेवि उरायं गउ अजुत्तयं भणियं कुमारा।
हरिकुल-कमल-दिणयरा-पवर-सुहयरा णिसुणि भुवणे सारा।। छ।।

महि मुअवि गमइ गयणयले जइवि[1] णिरु दुद्दमु तुरिउ[2] दमेमि तइवि।
सयमेउ धरहु जण विण्णि जइँ सहसत्ति चडावहि चडमि तइँ।
इय रहमि मज्झु थरहरइ वउ हय-विहिणा किं हउँ थेरुकउ।
आयण्णिवि तं असिवर करेहिं हरि-तणुरुहासु विहि किंकरेहिं।
उट्ठविउ ण उट्ठइ थेरु केम णिद्दवहं लद्धु णिहाण जेम।

करके ही हयवर पर सवारी करना।" उस वृद्ध ने उसे हरि का नन्दन मानकर बहुत समझाया और तभी समझाते हुए उस वृद्ध (मदन—प्रद्युम्न) से वह बोला—"क्यों कर मुझ पर व्यर्थ हँसते हो। मेरी यह स्थिति अक्षुण्ण है, ऐसा आपने कैसे जान लिया? हयवाहक भी घोड़ा से गिर पड़ता है और जो रण में भिड़ता है, वह शूर भी मर जाता है। अत:—

घत्ता— "हे बुड्ढे यदि तेरे मन में कुछ भी पौरुष समाया हुआ हो तो तुरन्त आ। घोड़ा लेकर शीघ्र चढ़ और अपने गुण (चतुराई) को दिखा।। 186।।

(20)

अश्वपाल जर्जर देह होने के कारण सेवकों के साथ भानु से घोड़े पर बैठा देने का आग्रह करता है, किन्तु उस दैवी-शरीर को वे उठा नहीं सके

आरणाल— यह सुनकर वह बुड्ढा (प्रद्युम्न) बोला---"कुमार ने अयुक्त नहीं कहा। प्रवर सुखकर, भुवन में सार, हरिकुलरूपी कमलों के लिए सूर्य सुनो।। छ।।

यद्यपि मैं उस तुरंग का दमन करता हूँ तो भी वह अत्यन्त दुर्दमनीय है। मही छोड़कर वह आकाश में चला जाता है। स्वयं ही इसको पकड़ो। यदि दो जनों के साथ आप मुझे सहसा ही इस पर चढ़ा दो तो मैं चढ़ जाऊँ। यह मैं हूँ। मेरी काय अधिक आयु के कारण थरहरा रही है। दैवमारे ने मुझे बुड्ढा क्यों कर दिया?

उसके वचन सुनकर हरिपुत्र के, हाथों में तलवार धारण किये हुए सेवकों ने उसे तत्काल उठाया, किन्तु वह बुड्ढा किसी भी प्रकार नहीं उठ सका, मानों निधान पाकर वह सो गया हो। तब और भी चार अन्य सेवक

---

(19) (3) प्रचुरः। (4) कामप्रति।

(20) (1) यदि आकाशं गच्छति। (2) दमितो भवति।

तो धाइवि अवर चयारि मिलिय विहलंघल तणु ते विइलहिं घुलिय।
पुणु अट्ठ-सोल-बत्तीस तेम भज्जहिं कं वीरहो करडि जेम।
बत्तीसहो णउ उट्ठिउ अहंगु चिंतवइ माणु सिरि-मउड भंगु।

घत्ता— एत्तडइ तिति णउ मणिसियहो माणभंगु तहिं कियउ जहिं।
सुरगिरि समु णिच्चलु होवि थिउ सइँ कुमार उट्ठवहि [1]मईं।। 187।।

(21)

आरणालं— ता कंचुइ पउत्तयं हो णिरुत्तयं भुव सुव हुव राया।
सुणि सच्चहे तणु [1]रुया सिरिहर-[2]सुया भुवणे कुमर राया।। छ।।

णिय-दीहर-दिढ-पीवर-करेहिं वहु णर-भर-भार-धुरा-धरेहिं।
उद्धरेवि तुरय आरोवि मइँ वाहमि तुरंगु रंजेमि पइँ।
इय आयण्णिवि सो कुमरु जाम उट्ठवइ पहउ चलणेण ताम।
सिरि-सेहरु मणिमउ दल[3]मलेवि वियडुण्णय उरे णिय पउ ठवेवि।
लहु चडिवि पवाहइ मयरकेउ पुलणंग-चलण सम-विसम एउ।

मिल कर दौड़े किन्तु वे भी व्याकुल शरीर वाले विफल हो गये। पुनः आठ, सोलह एवं बत्तीस सेवक मिले। वे भी वैसे व्याकुल हो भागने लगे। किस प्रकार? जैसे वीर (सिंह) से डरकर हाथी भागता है। वह बूढ़ा बत्तीसों सेवकों से नहीं उठा। वह अभंग ही रहा। तब उस कुमार भानु के सिर का मुकुट भंग हुआ, वह मन में चिन्तित हो उठा।

घत्ता— इस प्रकार कुमार भानु का इतना मान भंग कर देने पर भी जब उस मनसिज—प्रद्युम्न के मन में सन्तोष नहीं हुआ, तब पुनः वह सुरगिरि के समान निश्चल होकर स्थित हो गया और अपने में कहा "अब कुमार स्वयं ही मुझे उठा कर देखें।। 187 ।।

(21)

अश्वपाल भानुकर्ण को लतया कर घोड़े पर बैठकर आकाश में उड़ जाता है

आरणाल— तब कंचुकी (अश्वपाल) ने उस भानु से कहा कि "तुम निरुत्तर क्यों हो? तुम तो पृथिवी के राजा बनने वाले हो, हे सत्यभामा के पुत्र, हे हरिसुत, हे भुवन के राजकुमार, सुनो—।। छ।।

दीर्घ दृढ़ एवं स्थूल तथा अनेक मनुष्यों के भार की धुरा के धारक अपने इन हाथों से उठाकर मुझे शीघ्र इस तुरंग पर चढ़ा दो, जिससे मैं तुरंग की सवारी करूँ और तुम्हें रंजायमान करूँ। यह सुनकर जब वह कुमार उसे उठाने लगा तथा वृद्ध ने उसे लात मारी और सिर के मणिमय मुकुट को दलमल (चूर-चूर) कर डाला। पुनः उसके विकट उन्नत वक्षस्थल पर अपना पैर रखकर अत्यन्त विषम वह मकरकेतु (वृद्ध) पुलकित अंग एवं सम चरण हो कर शीघ्र ही तुरंग पर चढ़कर उसे दौड़ाने लगा और वह कुमार भी "सुन्दर-सुन्दर" कहकर

---

(20) 1. अ॰ °ज।

(21) 1. ब॰ °भु। 2. अ॰ °मु। 3. अ॰ र।

अवरो परो वि जंपहि कुमार — सो साहु-साहु तुहुँ आसवारु।
[4]तुहु हइण[5] सरिसु गउ गयणे केम — णं आसि चक्कि-सिरिपालु जेम।
एत्तहिं वि सुहड कंपंत देह — खर-पवणाईं डोलिय णाइँ मेह।
विंभिय णिय मणे णउ किं मुणंति — पुण्णाहिउ हरि-णंदणु भणंति।
णिय णयरि [6]भाणु गउ णट्ठ छाउ — मउलेवि तुंडु विगलिउ पयाउ।

घत्ता— गउ णिय पवंचु उवसंहरेवि रइरमणु वि णिविसेण कह।
भंजेवि मरट्टु दिग्गयवरहो विप्फुरंतु णं सीहु जह।। 188।।

इय पज्जुण्ण-कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए बुह-रल्हण-सुव-कइ-सीह विरइयाए भाणुकण्ण[7] माणभंगो णाम दहमी संधी परिसमत्तो।। संधी: 10।। छ।।

पुष्फिया

विण्हो[(1)] स्तोक चरित्र सृष्टि[1] वसत: कीर्त्ति: कवे: साम्प्रतम्।
श्री सिंहस्य भुवस्तले[(2)] सुभगं ताव भ्रूम्यते ऽहर्न्निशम्।।
ग्रामाराम-मटंब-पत्तन वनक्ष्मा[(3)] भृत्क्षमास: सरित्।
नि:शेषं सममेव[(4)] शुक्लमसकृत्[(5)] संकुर्व्वतीदं जगत्।। छ।।

चिल्लाता हुआ बोला—"साधु-साधु, तुम्हीं (यथार्थ) असवार हो।" तुम घोड़े के साथ आकाश में किस प्रकार पहुँचे? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार भूतकाल में चक्रवर्ती श्रीपाल गया था और इधर, सुभटों सहित उस भानु की देह ऐसे काँप रही थी, जैसे मानों तीक्ष्ण पवन से मेघ ही काँप रहे हों। अपने मन में विस्मित वह हरिनन्दन—भानु कुछ भी सोच नहीं पाया (किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया) अपने मन में बड़बड़ाता हुआ निस्तेज, म्लान मुख एवं विगलित प्रताप अपनी नगरी में गया।

घत्ता— अपने प्रपंच को समेट कर वह रतिरमण (प्रद्युम्न) भी उस विनिवेश (उस स्थान) से चला। किस प्रकार, उसी प्रकार जिस प्रकार कि स्फुरायमान सिंह मानों दिग्गजवरों की भीड़ को भंग कर चला जाता है।। 188।।

इस प्रकार प्रद्युम्न कथा में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करनेवाली बुध-रल्हण के पुत्र कवि सिंह द्वारा विरचित भानु के मानभंग नामकी **दसमी सन्धि** परिसमाप्त हुई।। सन्धि: 10।। छ।।

पुष्पिका — कवि-प्रशंसा

विष्णु के पुत्र प्रद्युम्न के चरित्र की सृष्टि में रहने वाले सिंह कवि की कीर्त्ति अब पृथिवी तल में सुन्दर रूप से रात-दिन भ्रमण करती है। ग्राम, आराम, मटंब, पत्तन, वन, पर्वत, सरोवर, नदी, निर्झर आदि सबको शुक्ल करती हुई बार-बार समान रूप से इस जगत को सफेद करती है।। छ।।

---

(21) 4-5. अ. वाहणेण। 6. ब. मा०। 7. अ.×।
पुष्पिका— 1. अ. सृष्टि।

पुष्पिका— (1) पुत्र प्रद्युम्नचरित्रसृष्टिवसत। (2) पृथिवीमध्ये। (3) पर्वत। (4) समान। (5) पुन: पुन:।

एयादहमी संधी

(1)

ध्रुवकं— मलेवि भाणु रविकण्णहो सरु हरि-पुरिहि पईसरइ।
भीसम-सुयाहे णं सोक्ख-णिहि दुहु अणंतु सच्चहि करइ।। छ।।

गाहा— थोवंतरम्मि पहि जंताएण कलयंठि-कलरव रवण्णं।
पिच्छेइ वणं वर विडवि पउर पत्तेहिं संछण्णं[1] ।। छ।।

अमराहिव उववण सरिसु वणु अवलोयवि विंभिउ रइरमणु
सुरविडवि[2] णायवल्लि रवण्णु बहु तिलय-बउल-णग्गोह-छण्णु।
चंपय-कयंब-साहाललंतु णव-किसलय पवणाहय-चलंतु।
वियसिय कंजय-रय महमहंतु गंधद्ध भमिय महु गुमुगुमंतु।
सुर-णर-विसहर-किण्णरहँ पुज्ज पुंछिय कुमार पण्णत्ति विज्ज।
वणु एहु पवरु कहि तणउ भणु आयण्णिवि सा तहो कहइ पुणु।
खेयर-सुवाहि सुकुमालियाहे वणु एहु सच्चणाममालियाहे।
णिसुणेविणु ता मयरद्धएण हरि बे वि करेवि णिविसिद्धएण।

ग्यारहवीं सन्धि

(1)

प्रज्ञप्ति-विद्या का चमत्कार— प्रद्युम्न मायामय दो घोड़ों के साथ सत्यभामा के उपवन के समीप पहुँचता है

ध्रुवक— हरिनन्दन—भानुकर्ण का मानमर्दन कर उस स्मर (कामदेव-प्रद्युम्न) ने हरि पुरि (—द्वारामती) में प्रवेश क्या किया मानों वह भीष्मसुता—रूपिणी के लिए सुखनिधि एवं सत्यभामा के लिए अनन्त दुख प्रदान करने के लिए ही वहाँ पहुँचा हो।। छ।।

गाथा— मार्ग में थोड़ी दूरी चलकर कोकिलों के मधुर शब्दों से रम्य प्रचुर पत्रों से आच्छादित सघन वृक्षों वाला उत्तम वन देखा।। छ।।

इन्द्र के उपवन (—नन्दन वन) के समान उस वन को देखकर वह रतिरमण (—प्रद्युम्न) विस्मित हुआ, जो (वन) कल्पवृक्ष—पारिजात, रम्य नागवल्ली, अनेक तिलक, वकुल एवं न्यग्रोध वृक्षों से आच्छादित, पवनाहत होने के कारण चलायमान, नव किसलयों वाली चम्पक एवं कदम्ब वृक्षों की चपल शाखाओं से सुशोभित, विकसित कमलों की पराग की गन्ध से महकते हुए पुष्प सुगन्धि के लोभी भ्रमरों से गुंजायमान था। सुर, नर एवं विषधर (नागेन्द्र) किन्नरों द्वारा पूज्य उस कुमार ने अपनी प्रज्ञप्ति विद्या से पूछा—"यह वन प्रवर किसका है? कहो"। यह सुनकर वह विद्या पुन: बोली—"यह वन सत्यभामा नामकी सुकुमारी खेचर पुत्री का है।" यह सुनकर उस मकरध्वज ने आधे निमिष में ही दो घोड़े तैयार किये और

---

(1) (1) आच्छादितं। (2) कल्पवृक्ष।

घत्ता— गउवणहो समीउ वि मणमहणु सहसा कवडु करेविणु।
मायामय हयवर पवर दिढ-रज्जु वहि धरेविणु।। 189।।

(2)

गाहा— हसिऊण भुवण-विजइ जंपइ वण[1]वाल णिसुणि महो वयणं।
एयं चिय बे वि हया लिहंतु तिणं वण-पएसम्मि।। छ।।

तं णिसुणेवि वणवइणा अक्खिउ भो अण्णाण पहियणा लक्खिउ।
एउ उववणु हरि-पियहि-पियारउ भुवणब्भंतरम्मि णिरु सारउ।
जासु वरेण पयट्टहिं सुरवर तहिं जंपहि तुहु चारमि हयवर।
मा किं चवहि माउक्कउ अच्छहि णियय तुरंग लेवि लहु गच्छहि।
विसम-सरेण वुत्तु आयण्णहु भणमि किंपि जइ तुम्हहँ मण्णहु।
चिक्कमंत अणु-दिणु पहि रीणा सुसिय-देह पय-खाण विहीणा।
अंगुलीउ अणु वसु इय भासिवि दिण्णु सरेण सयल संतोसिवि।
हरि जइ पत्तु फुल्लु-फलु भक्खिउ मा कुप्पहु अम्होवरि अक्खिउ।
पभणहिं वणवालय किं अक्खहि णायवेलि किं कर हय भक्खहि।

घत्ता— मायामय उन घोड़ों को दृढ़ रज्जु से बाँधकर उन्हें पकड़े हुए वह मन्मथ प्रद्युम्न सहसा ही छल-कपट करके उस वन के समीप गया।। 189।।

(2)

रिश्वत में अँगूठी लेकर वनपाल ने प्रद्युम्न के घोड़ों को सत्यभामा का उपवन चरा दिया

गाथा— हँसकर भुवन का जयी वह काम बोला—"हे वनपाल, मेरे वचन सुनो। ये दोनों ही घोड़े इस वन प्रदेश में तृण का स्वाद लेना चाहते हैं।"।। छ।।

यह सुनकर वनपति ने कहा—"हे पथिक, तुम अज्ञानी प्रतीत होते हो। (क्या तुम नहीं जानते हो कि—) संसार में सारभूत यह उपवन उस हरिप्रिया—सत्यभामा का प्रिय वन है, जिसकी आज्ञा में (निरन्तर) देवगण रहा करते हैं?" (यह सुनकर मदन ने पुनः निवेदन किया कि—) "जहाँ तुम कहो वहीं मैं अपने घोड़ों को चरा लूँ।" यह कहकर जब मदन रुक गया तभी वह वनपाल बोला—"नहीं, क्या कह रहा है? अपने घोड़े ले और शीघ्र ही यहाँ से चलता बन।" तब विषमशर—पंचबाण काम ने कहा—"सुनो, यदि तुम मानों तो मैं कुछ कहता हूँ—"घोड़े मार्ग में चलते-चलते रात-दिन रीने-झीने हो गये हैं (उदास जैसे हो गये हैं), इनकी देह सूख गयी है, और खान-पान से रहित हैं अतः अन्य (घोड़ों) के वश होकर ही यह अँगूठी (देता हूँ)।" ऐसा कहकर उस स्मर ने उन सबको सन्तुष्ट कर वह अँगूठी (चुपके से) उसे दे दी। घोड़ों ने जब पत्ते फूल एवं फल खा डाले, तब वनपाल से मदन (प्रद्युम्न) ने कहा—क्रोध क्यों करते हो "क्या कह रहे हो? नागवल्लि घोड़े क्यों खायेंगे?" जब सभी

---

(2) 1. ब वे।

गय सयल वणयरेहि किर जामहि   वणहो उव्वभंगि किय तामहिं।

घत्ता— जह-जह सुपयंड णं जम-दंड पइसरंति हवेवि णिरु।
तह-तह मरु-हयहिं कंपइ वणु भय वेविरु।। 190।।

(3)

गाहा— सरसं पि अच्छवंतं सुपय समासं सुभा[1]सवंतम्मि।
विहयं तुरएहि वणं पिसुणेहिव सुकइ-कय-कव्वं।। छ।।

सीयल सुसच्छ सोसिय वरंभ   पोक्खर[(1)]-[(2)]सर थिय णं छिद्द कुंभ।
णिरु वहल कुसुम-रय महमहंत   चूरिय तरुवर-वेल्ली हरंत।
उट्ठिय विहंग [2]गयणयले लग्ग   वणयर[(3)] रसंत चउदिसिहिं भग्ग।
सुद्धउ अवणीयलु ठियउ तहिं   वणचिण्हु ण मुणियउँ केण कहिं।
गउ तं पएसु परिहरिवि सरु   कुसुमसरु इक्खु-कोदंड धरु।
भुवणत्तय माणिणि-मणहरणु   वर विज्जुज्जलु[(4)] णं जलधरणु[(5)]।
णिय लीलए पहि पच्चंतएण   मयणेण विसुद्धु सइत्तणेण[(6)]।
कण[(7)]-हल्ल[(8)]-कोंच[(9)]-कारंड[(10)] हरु   फल भर पणविय बहु भेय तरु।

वनचर चले गये तभी उस वन को उन्होंने नष्ट कर दिया।

घत्ता— जैसे-जैसे यमदण्ड के समान वह प्रद्युम्न उस वन में निर्भीक होकर घूमता रहा तैसे-तैसे उन दिव्यमयी घोड़ों से वन भयभीत होकर काँपता रहा।। 190।।

(3)

कुमार प्रद्युम्न सत्यभामा का उपवन नष्ट कर, दूसरों के लिए वर्जित उसके माकन्दी वन में पहुँचता है

गाथा— दुग्ध के समान शुभ्र एवं स्वच्छ जल से परिपूर्ण सुन्दर सरोवर वाला वह वन उन तुरंगों द्वारा उसी प्रकार नष्ट कर दिया गया, जिस प्रकार दुर्जनों द्वारा सुकविकृत (सुन्दर—) काव्य।। छ।।

उन दिव्य घोड़ों ने शीतल स्वच्छ एवं श्रेष्ठ जल वाली पुष्करिणी-सरोवर को सुखा दिया। वह ऐसा प्रतीत होता था, मानों छिद्र वाला घट ही वहाँ स्थित हो। कुसुम-रज से महकते हुए उत्तम-उत्तम वृक्षों एवं वल्ली-वितानों को उन्होंने नष्ट कर दिया, पक्षी उड़-उड़ कर आकाश में चले गये, वनचर (श्वापद) गण चिल्लाते हुए चारों दिशाओं में भाग खड़े हुए। उस वन की भूमि ऐसी साफ—वनस्पति शून्य हो गई कि वहाँ वन का कोई चिह्न भी था, ऐसा कोई नहीं जान सकता था।

वह कुसुमशर—कामदेव (प्रद्युम्न) इक्षु का कोदण्ड (धनुष) हाथ में धारण किये हुए उस सरोवर को छोड़कर उत्साहपर्वूक अपनी लीलाओं से मार्ग में सभी को प्रभावित करता हुआ उस प्रदेश में जा पहुँचा जहाँ भुवनत्रिक में माननियों के मन का हरण करने वाले विद्युत विद्या से उज्ज्वल मेघों के समान तथा शुक, सारस, क्रौंच एवं

---

(3) 1. अ. चाइ। 2. अ. म।

(3) (1) पुष्करिणी। (2) अ. सरोवर। (3) अ. हरिणादय। (4) अ. विद्याविद्युत्। (5) अ. मेघ। (6) अ. सोत्साहेन। (7) शुक। (8) सारस। (9) आम्रवन। (10) अ. चक्रवाक।

पत्तालवो वि णं णिव पवरु . . . . |
णं पुलइउ महि-महिलाहि तणु अवलोयवि तरु साहा-रवग्गु।

घत्ता— पुच्छइ सविज्ज सरु सा कहइ भो सुंदर णरणाह सुणु।
किण्णहहो पियाए आणंदयरु पउरसहु मायंद-वणु।। 191।।

(4)

गाहा— णाऊण मणसि[1] एणं मणहरदेहं पि मुए तुरिएण।
सहसत्ति विउऊणं मायंग-रूवं[2] रूवं च।। छ।।

मणसिउ मायंग-रूउ करेवि मायामउ मक्कडु करे धरेवि।
उज्जाणहो अहिमुहुँ गयउ केम कइ-जीवहो[3] जमणं दूउ जेम।
जं पइ[4] वणवइ महो तसिय देहु साहामउ छुह-वेविरु वि एहु।
जगे णिंदिउ-णिग्घिणु तणु करेवि संकल-णिवद्धु कह करे धरेवि।
जोयहि वाणरु सुणिवद्ध गलो दिज्जउ एयहो साहार-फलो।
वणरक्खइ ता कुविएण वुत्तु मा[5] णिधहि पाव वच्चहि णिरुत्तु।

कारण्ड (चक्रवाक) के लिए घर के समान तथा फलों के भार से झुके हुए अनेक प्रकार के वृक्ष थे, (श्रीसमृद्धि में वह इतना समृद्ध था कि मानों) पाताल लोक का नृप श्रेष्ठ ही हो। वहाँ वृक्षों की रमणीक शाखा—प्रशाखाएँ देखकर ऐसा लगता था मानों वे पृथिवी रूपी महिला के तन के पुलक—रोमांच ही हों।

घत्ता— उस स्मर (प्रद्युम्न) ने अपनी (प्रज्ञप्ति—) विद्या से उस वन का नाम पूछा तो उसने उत्तर में कहा— "हे सुन्दर, हे नरनाथ, सुनो, कृष्ण की प्रियतमा (सत्यभामा) का यह प्रचुर रसवाले आम्र-फलों का आनन्दकारी माकन्दी वन है। ।। 191।।

(4)

मातंग (प्रद्युम्न) के मायामय वानर ने माकन्द वन में तोड़-फोड़ मचा दी

गाथा— मनसिज ने (उसे सत्यभामा का माकन्द-वन) समझकर अपनी मनोहर देह को तुरन्त छोड़कर शीघ्र ही मायासे मातंग (चण्डाल) का रूप धारण कर लिया! ।। छ।।

वह मनसिज मातंग का रूप धारण कर एक मायामय वानर हाथ में पकड़कर उस उद्यान के सम्मुख गया। कैसे! जैसे विनाश शील जीव के लिए मानों वह यमदूत ही हो। जगत् में निन्दित घृणित शरीर बनाकर तथा साँकल से बँधे हुए उस वानर को हाथ में पकड़कर वह मातंग (वनपति से) बोला—"हे वनपति, मेरी देह थकी हुई है। साथ ही यह बन्दर भी क्षुधा से काँप रहा है। इस बँधे गले वाले (भूखे) वानर की ओर देखो और इसे खाने के लिए फल दे दो।" वनरक्षक के झिड़कने और रोकने पर पुनः उस मातंग (प्रद्युम्न) ने कुपित होकर उस

(4) 1. अ °च।

(4) (1) अ कामेन्। (2) अ चाण्डालरूप। (3) अ विनाशरूपजीवस्य। (4) अ. प्रति। (5) अ. अवलोकय।

हरि एक्कु वि परि इह कील-करइ अवरू वि णियंतु अमरिंदु भरइ।
मायंगेण वि पुणु भासियउ वणवइ मइँ तुज्झु पयासियउ।
पहियहु वि मज्झु हरि-किंकरइँ रूसेविणु भणु किं अवहरइँ।
वणवाल सुणिट्ठुर होंति सइँ अह मग्गिउ जइ णउ दिण्णु पइँ।
पेक्खेसहु जं करिहइ पवंगु मेल्लिवि गउ अवरेत्तहिं अणंगु।

घत्ता— तोडंतु फलइँ भंजंतु तरु वलिमुहु जाम पइट्ठउ।
पवणंगउ णं दहवयण-वणे तहे वणरक्खे दिट्ठउ।। 192।।

(5)

गाहा — हणु-हणु भणंत किंकर समग्ग घणु-पासु-सुपरसु हत्था।
रंभेवि वणं णिरु चउदिसेहिं [(1)]पमयाणु भग्गे लग्गा।। छ।।

किर घिवइ पासु कइ-अंगणासु।
णिविसइ[(2)] करेइ पुणु बुक्करेइ
कुविऊण चलइ वणु सयलु दलइ।

वनरक्षक से कहा—"पापी, देखता नहीं और ऐसे कुवचन बोलता है?" एक भी वानर यदि यहाँ क्रीड़ा करता है, और उसे देखकर यदि अनेक अमरेन्द्र—वानर भी यहाँ भर जाते हैं (तो बाद में मुझे कुछ मत कहना)।" उस मातंग ने पुन: कहा—"हे वनपति (अब) मैंने तुम्हें (सब) प्रकट कर दिया है। हरि-किंकरों (बन्दरों) ने भी मुझ पथिक से रूस कर कहा है कि— बोलो, हमें क्यों तिरस्कृत कर भगाया जा रहा है? वनपाल तो स्वयं निष्ठुर होते हैं, अत: माँगने पर यदि (फल) नहीं देते हैं तो देखोगे कि वानर क्या (लीला) करेगा?" यह कहकर तथा वानर को उस बगीचे में छोड़कर वह अनंग अन्यत्र कहीं चला गया।

घत्ता- बलिमुख—वानर जब बगीचे में घुसा तो वह फल तोड़ने लगा और वृक्ष मोड़ने लगा। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों पवनांगज (हनुमान) दशवदन (रावण) के वन में ही पहुँच गया हो। उसी रूप में वनरक्षकों ने उस वानर को देखा।। 192।।

(5)

माकन्दवन को नष्टकर प्रद्युम्न आगे बढ़ता है और मंगल तरुणियों के झुण्ड को देखता है

गाथा— "मारो-मारो" कहते हुए सभी सेवक धनुष बाण, पाश एवं परशु हाथों में लेकर वन को चारों दिशाओं से भलीभाँति घेरकर बन्दरों के भगाने में लग गये। ।। छ।।

किन्तु वानर के शरीर नाश के लिये पाश कैसे डाला जाता? निमिष मात्र में तो वह फल खा जाता था और बुकरता (गुर्राता) रहता था। कुपित होकर दौड़ जाता था। उसने समस्त वन को रौंद डाला। (इस प्रकार) पूरे

---

(5) (1) अ. वनारा। (2) अ. णिमिषमात्रा हिच्छतिकरि।

भंजिउ असेसु थिउ भूपएसु।
एत्तहि वि कामु वहु सोक्ख-धामु।
किर जाइ जाम रहु दिट्ठु ताम।
कलहोय [1]घडिउ रयणेहिँ जडिउ।
वज्जंत-तूरु भुवणंतु - पूरु।
काहल-सरेण भेरी-रवेण।
वज्जंत-संख पेक्खइ असंख।
अवलायणेहिँ[(3)] झुणि मंगलेहिँ।
करे पूरि-अंभ मंगल सुकुंभ।
णिय-विज्ज सरिसु जण-जणिय हरिसु।
जंपइ किमत्थु इउ तरुणि सत्थु।
पुणु तेण कहिउ णउ किंपि रहिउ।

घत्ता— जलजत्त-णिमित्तइँ जुवइयणु मिलिउ असेसु वि सामिय।
भाणुहि विवाह-विहि कारणइँ सुणि दिग्गय वर गामिय।। 193।।

(6)

गाहा— ता आयण्णेवि इमं सहसा वि[1]रीय सोहया सारं।
विरएविरहं मायामयंपि उड्डुय धयवडा फारं।। छ।।

दोवरि[(1)] करहो तहो धुरि करेवि [2]परगहय सुदिढ णिय-करे धरेवि।

वन को नष्ट कर दिया; केवल भूमि-प्रदेश मात्र बच पाया। तदनन्तर, अनेक सुखों का स्थान वह कामदेव जब आगे गया, तब वह एकान्त में देखता है कि कलधौत के बने हुए रत्नजटित घट स्थापित हैं। तूर बज रहे हैं। काहल के स्वर एवं भेरी की ध्वनि से लोक पूर रहा है, शंख बज रहे हैं। पुनः देखता है कि हाथों में जलपूर्ण मंगल कलश लिये हुए असंख्य नारी जन मंगलगीतों से ध्वनि कर रही हैं। लोगों में हर्ष उत्पन्न करने वाली अपनी सरस-विद्या से पूछा—"तरुणियों का यह समूह यहाँ किस प्रयोजन से उपस्थित है?" तब उस प्रज्ञप्ति-विद्या ने उत्तर में कहा—"कुछ भी (किसी से) छिपा नहीं है।"

घत्ता— दिग्गजगति वाले हे स्वामिन, सुनिए भानुकुमार की विवाह-विधि के कारण ये सभी युवतियाँ जल-यात्रा के निमित्त यहाँ मिल रही हैं।। 193।।

(6)

मंगल तरुणियों की भीड़ तितर-बितर कर वह प्रद्युम्न सत्यभामा की वापी पर पहुँचा

गाथा— (भानुकुमार के विवाह की तैयारी सम्बन्धी वृत्तान्त) सुनकर उस प्रद्युम्न ने सहसा ही उसके विपरीत आगे सारभूत शोभा करके मायामयी विशाल उड़ने वाली ध्वजा-पट बनाई।। छ।।

(5) 1. ब. घरिउ।
(6) 1. अ. रवीय। 2. अ. व.।

(5) (3) अ. स्त्रीजनैः।
(6) (1) द्रौंदिशी।

वाहिउ अहिमुहुँ तुरिएण पुणु   णियचित्ते चमक्किउ जुवइयणु।
विहडप्फड पहि उप्पइ गयउ   कंपइ विवत्थु भय-जर लयउ।
लहु तुरय-पणट्ठ रहेण सहु   गउ सारहि महियले पत्तु दुहु।
मंगल-सुकुंभ-भंजिय धवला   तोडिय उल्लोयय-धय-चवला।
केवि चूरिय लहे णासंतु केवि   केवि हसहिं परोप्परु ताल देवि।
कोऊहलु केवि णियंति जाम   मायामय दंसमसेहिं ताम।
चउदिसहिं भमिय मुहु रुणुरुणंत   खज्जंत विगय णिय तणु धुणंत।
इय पेच्छिऊण पउरयणु चवइ   विवरीयइँ कीलइँ कोवि कर[3]इ।
किं गुरु किं किण्णरु किं सुरिंदु   किं जक्खु-महोरउ [4]रवि णिसिंदु।
विंभिय चवंति किं पुरिसु एहु   हरि णयरि पवेसिवि दिव्व-देहु।

घत्ता— तहिं रमेवि पवंचु सुसंहरिवि पुरिहिं मज्झे पइसरइ किर।
किण्हहो-महएविहि मणहरिणि पेच्छइ कीला-वावि वर।। 194।।

दो ऊँटों के ऊपर उसकी धुरी रखकर उसका पगहा (लम्बा रस्सा) अपने हाथ में पकड़कर उन्हें तत्काल ही उन युवतिजनों के समक्ष हाँक दिया। यह देखकर युवतिजन अपने मन में चमक (आश्चर्यचकित हो) उठीं। भय एवं बुढ़ापे से ग्रस्त वस्त्र-विहीन वह काँपने लगा। विस्तृत स्पष्ट पथ होने पर भी वह अनंग उत्पथ (उन्मार्ग) से चला। रथ में जुते हुए घोड़े शीघ्र ही भाग खड़े हुए। सारथी धरती पर गिरकर दुःख को प्राप्त हो गया (अर्थात् घायल हो गया)। मंगल-कलश भग्न कर दिये गये। फरफराती हुई चपल ध्वजा तोड़ दी गयी। कोई-कोई चूर कर दिये गये, कोई-कोई नष्ट कर दिये गये, और कोई-कोई परस्पर में ताल दे-देकर हँसने लगे। कोई-कोई जब कौतूहल देखने लगे तब उस प्रद्युम्न ने मायामय दंशमशक उत्पन्न कर दिये जो चारों ओर बार-बार रुणझुण-रुणझुण करते हुए घूमने लगे तथा उनके द्वारा डँसे गये वे लोग अपने शरीरों को खुजलाते हुए भाग खड़े हुए। यह सब देखकर पौरजन बतियाने लगे—"यह विपरीत क्रीड़ा कौन कर रहा है? क्या यह गुरु (बृहस्पति) है? क्या यह किन्नर है? क्या यह सुरेन्द्र है? क्या यह यक्ष है? क्या यह महोरग है अथवा क्या यह उत्तम सूर्य अथवा चन्द्र है? विस्मय से कोई व्यक्ति पूछने लगे कि क्या यह कोई दिव्य देहधारी पुरुष है, जिसने हरि-नगरी में प्रवेश किया है?"

घत्ता— "वहाँ रमकर पुनः अपना प्रपंच (मायाजाल) समेटकर वह प्रद्युम्न पुरी के मध्य में घुसा। वहाँ उसने कृष्ण की महादेवी की मनोहारिणी उत्तम क्रीड़ा-वापी देखी।। 194।।

(6) 3. अ. रमइ। 4. ब. सरि।

(7)

गाहा— वियसंत-णलिण-वयणा-लक्खणवंता सुकुंतला बाला।
सुपयोहरा पुरंधि व णियय सरो णाम वर वावी।। छ।।

ता पुंछिय कुमरइ णियय-विज्ज — कहो तणिय वावि इह जण-मोज्ज।
जायव पंडव-कुरु णमिय पाय — किण्ण मुणहिं भाणुहिं तणिय माय।
[1]मा करइ एत्थु[2] जल-कील रंगु — आयलिण्णिवि पुलइउ अणंगु।
परि[3]वत्तिउ मायइँ णियय-रूउ — गिण्हेवि तुरिउ दियवरिम रूउ।
थरहरि[illegible] देह [illegible]पंतु सीसु — [4][illegible] [illegible][5] सिरे सुब्भ-केसु।
छत्तिय-कुंडिय करे जडि करेवि — उरेमुत्तरीउ तियस रूवि धरेवि।
[6]मियवासु दब्भ मयरद्धएण — कोवीणु णियंवे णिवद्दु तेण।
घोसंतु वेय-सद्दत्थ-वयणु — सुइ-रहिय सवणु णिरु णि[7]मिय णयणु[8]।

घत्ता— गउ [9]वाविहिं दियवरु सुसिय कलेवरु आहासइ अवलाहिं सहुँ।
उसरहु सु तणयहो छणससि वयणहो संति करेवइ देहु महु।। 195।।

---

(7)

अन्ध-वधिर ब्राह्मण के वेश में प्रद्युम्न वापिका के पास एकत्रित तरुणियों से वार्तालाप करता है

गाथा— विकसित कमल ही जिसके मुख हैं, पक्षी ही जिसके सुन्दर केश हैं एवं सुन्दर पय ही जिसके पयोधर हैं, ऐसी सुलक्षिणी पुरन्ध्री के समान वह क्रीड़ा-वापी के नाम से प्रसिद्ध थी।। छ।।

तब कुमार ने अपनी विद्या से पूछा—"कहो, जन-मनोज्ञ यह वापी किसकी है?" तब विद्या ने उत्तर में कहा—"पाण्डवों एवं कुरुओं से नमस्कृत चरण वाले हे यादव, क्या तुम नहीं जानते कि यह वापी भानुकुमार की माता (सत्यभामा) की है? तुम यहाँ जलक्रीड़ा की रंगरेली मत करो।" यह सुनकर प्रद्युम्न—अनंग पुलकित हो उठा। माया से उसने अपना रूप पलट लिया और तुरन्त ही द्विजवर का रूप धारण कर लिया। उसकी देह थरहराती थी, मस्तक काँपता था, बुढ़ापे के कारण सिर के केश पक कर सफेद हो गये थे। उस निपट चतुर मकरध्वज ने अपने हाथ में छत्री तथा जड़ी कुण्डी (कमण्डलु) लेकर हृदय पर उत्तरीय रख कर देव जैसा रूप धारण किया तथा नितम्ब पर मृगचर्म दर्भ की कौपीन धारण कर ली और वेद के शब्दार्थों को अपने मुख से घोषित करता हुआ वह वधिर तथा अन्धा बन गया।

घत्ता— वह सूखे शरीर वाला द्विजवर उस वापी के पास जाकर बोलने लगा सुपुत्रवती कमलमुखी तरुणीजनों आगे बढ़ो और मेरी देह को शान्त करो।। 195।।

---

(7) 1-2. अ. स करइ पच्छ। 3. अ. °च। 4-5. अ. पंरिदसग गलिय।
6. अ. °सि। 7-8. अ. नट्ठ वयणु। 9. अ. वाहिवि।

(8)

गाहा— पुणु पइसामि पुरे वरे वेला लंघंपि होउ मा मज्झ।
आहार-कज्ज-अत्थे अब्भच्छमि सुपुरिसो कोवि।। छ।।

तं णिसुणेवि जंपइ जुवइयणु जा-जाहि भट्ट मा किंपि भणु।
अण्णाण ण याणहिं मूढ-मणु अवरेत्तहिं संति करेहिं पुणु।
एह महुमहणहो मणहर-घरिणी तहे तणुरुहु तेयइँ जिय तरणी।
कीलेइ एत्थु णउ अवरु णरु पावइ णियंतु सो जम-णयरु।
जल[1]यर ससंक संचरहिं जहिं ण्हाणेच्छ समिच्छहिं केम तहिं।
पडिवयणु पयंपिउ दियवरेण लहु कहमि किंपि किं वित्थरेण।
कुरुजंगल-पहु-दुज्जोहणेण णिय-तणय सविणयइँ दिण्ण तेण।
भरहद्ध णराहिव णंदणासु बहु चाएण वि पूरिय पयासु।
साणंद ससाहणु एइ[(1)] जाम भिल्लेहिं वणंतरे हरिय ताम[(2)]।
दंसिय णिय-सामिहे[(3)] तेण वुत्तु इउ कम्म सुट्ठु अम्हहं ण जुत्तु।

---

(8)

वह द्विज (प्रद्युम्न) तरुणियों को भिल्लराज द्वारा उदधिकुमारी के अपहरण की सूचना देता है

गाथा— "मुझे आहार करने के लिए उस उत्तम नगर में प्रवेश करना है। कहीं मेरा समय न चूक जाय। मेरी इच्छा है कि कोई सज्जन पुरुष मुझे स्नान करा दे।" ।। छ।।

उसको सुनकर युवतियाँ बोलीं—"हे भट्ट जाओ-जाओ यहाँ पर कुछ भी मत बोलो। हे अज्ञानी मूढ मन, तुम कुछ भी नहीं जानते, अन्यत्र जाकर शान्ति से स्नान करो। यह वापी मधुमथन (कृष्ण) की मनोहर गृहिणी की है। उसका सूर्य को भी जीतने वाला एक तेजस्वी पुत्र है। वही यहाँ क्रीड़ा करता है। अन्य कोई मनुष्य नहीं? यदि कोई यहाँ आता भी है तो उसे मारकर यम-नगर को भेज दिया जाता है? जहाँ जलचर भी शंका सहित क्रीड़ाएँ करते हैं, तब तुम कैसे यहाँ स्नान की इच्छा करते हो?" तब उस द्विजवर ने प्रत्युत्तर में कहा मैं थोड़े में कहता हूँ, विस्तार से क्या प्रयोजन?" —"कुरुजांगल देश के प्रभु दुर्योधन ने अत्यन्त विनयपूर्वक अपनी सुपुत्री भरतक्षेत्र के अर्धचक्री राजा के नन्दन को दी है। अन्य दानों से भी उनकी आशाओं को पूरा किया है। जब वह आनन्द सहित साधन सामग्री के साथ आ रहा था, तभी वन के बीच भीलों ने उसे लूट लिया। पुनः उन्होंने उस कन्या को अपने स्वामी भिल्लराज के पास ले जाकर दिखाया, किन्तु उसने कहा कि—"यह कार्य अच्छा नहीं हुआ। यह हमारे लिये योग्य कार्य नहीं है।"

---

(8) 1. अ. यलर'।

(8) (1) अ. आगच्छति। (2) अ. सा नजरी। (3) अ. भिल्लपतिना।

घत्ता— इय सवर परोप्परु चवहिं किर ताम तहिं जि हउँ पत्तउ।
दीहर-पहेण चिक्कंतु णिरु कंतहीणु संप[2]त्तउ।। 196।।

(9)

गाहा--- ता पेछिवि महु रूवं भिल्ला जंपंति परम भावेण।
आयण्णिं दिय वेसा कण्णारयणं पि गिण्ह लहु एयं।। छ।।

सवराहिउ जंपइ पय लग्गउ मा अवगण्णि णाह तुह जोग्गउ।
लइ-लइ किं बहु अइ असगावे दिण्णी तेण मज्झु गुरु[1]-भावें।
ताहि समाणु जुवइ णउ दीसइ णिय-रूवइँ सुर-तियउ विसेसइ।
मज्झु सरिसु वरु णउ महि-मंडले णिय रूवइँ णिज्जिय आहंडले।
तहो वयणेण भत्ति संजुत्तइँ कुरुवइ-सुव करे धरिय तुरंतइँ।
हरिणंदणु मइं मुणहु पमेल्लहु मा रक्खेहु सलिलु लहु मेल्लहु।
तं णिसुणेवि जुवईयण विंदें हसिउ सविब्भमु कह-कह सद्दें।
कहिं तुहुँ कहिँ कुरुवइ तणुरुह थिय णिच्छउ वयणु जं जि सवरहिं हिय।

घत्ता— "इस प्रकार शबर (भील) परस्पर में कह रहे थे तभी मैं वहाँ पहुँच गया और दीर्घपथ से दौड़ता-भागता हुआ थककर म्लान होकर यहाँ आ पाया हूँ।। 196।।

(9)

उदधिकुमारी को परिणीता-पत्नी घोषित कर द्विज वेशधारी प्रद्युम्न बलपूर्वक वापी में प्रवेश कर जाता है

गाथा— तब मेरे रूप को देखकर वे भील परम भावना पूर्वक मुझ से बोले—"हे द्विज वेशधारण करने वाले, सुनो, इस कन्या रत्न को तुम शीघ्र ही ग्रहण करो।"।। छ।।

वह भीलराजा मेरे चरणों में लगकर बोला—"अस्वीकार मत करो। हे नाथ, यह तुम्हारे योग्य है। इस कन्यारत्न की बहुत अधिक प्रशंसा करने से क्या? इसे ले लो।" यह कहकर उस भील ने मुझे गुरुभाव से वह (कन्या रत्न) प्रदान किया है।" उस कन्या के समान अन्य कोई युवती नहीं दिखायी देती। अपने रूप में वह देवियों से भी विशेषता रखती है और महीमण्डल में मेरे समान भी और कोई वर नहीं। अपने रूप से मैंने आखण्डल (इन्द्र) को भी जीत लिया है। उस (भीलराज) के निवेदन करने पर मैंने भक्ति सहित कुरुपति की पुत्री का तुरन्त ही हाथ पकड़ लिया (अर्थात् हम दोनों का वहीं पाणिग्रहण हो गया)। (अत: अब) मुझे हरिनन्दन मानो और छोड़ो। (मुझसे) जल की रक्षा मत करो, जल्दी ही (मार्ग) छोड़ दो (अर्थात् मुझे रोको मत। जल-मार्ग से तुरन्त जाने दो)।" यह सुनकर वे युवतियाँ विभ्रमों सहित कह-कहे लगा कर हँसने लगीं और कहने लगीं—"कहाँ तू और कहाँ कुरुपति की कन्या? क्या तेरा यह कथन निश्चय (सत्य) हो सकता है कि शबरों के द्वारा यह कन्या अपहृत कर ली गई?" किन्तु,

---

(9) 1. ब. गुरुभावें।

घत्ता— उवहसिउ णिवारिउ थक्कु णवि विज्ज कमंडलु गहिय करु।
वाविहे वरंभ परिपूरियहे झत्ति पइट्ठउ दियवरु।। 197।।

(10)

गाहा— चक्कल-घण-पीण-पयोहरीहिं दिग्गय-गय-गव्व गमणीहिं।
अवलोय विसुद्ध विरुद्धियाहि दियवरहो सय[1]ण रमणीहिं।। छ।।

अणुमग्गइँ तहो पइसरेवि ताम पुणु मुट्ठि-पहारहिं हणहिं जाम।
ता मयणें[2] णिप्पायउ पवंचु विरइयउ ताहँ विरूव संचु।
काहिमि एक्केक्कउ चक्खु हरिउ काहिमि कयरइउ सीसुधरिउ।
काहिमि उररूहहँ ण ठाउँ दिट्ठु काहिमि णासाउट्ठु सउट्ठु-पिट्ठु।
काहिमि बोल्लंतिहि वयणु खलिउ काहिमि वर पिट्ठि सुवंसु दलिउ।
सवणहिं णउ आयण्णंति केवि काहिमि किउ गीवा संगु लेवि।
इय पेक्खंतिहि णिय-णियय देहु वट्टियउ चित्ते अइ गरुव खोहु।
जंपंति परोप्परु णट्ठ-छाय अम्हइंमि कुद्ध दियवरहो पाय।

घत्ता— उपहसित एवं निवारित वह द्विजवर रुका नहीं। विद्या द्वारा निर्मित कमण्डलु अपने हाथ में लेकर उसमें जल भरने के लिए वह झटपट ही उस वापी में प्रविष्ट हो गया।। 197।।

(10)

वह (द्विज) तरुणियों को कुरूप बनाकर जल-मार्ग से आगे बढ़ने लगता है

गाथा— चक्कल (चिकने गोल) घन पीन पयोधरी तथा दिग्गज-गज के समान गर्व से गमन करने वाली उन समस्त रमणियों ने द्विजवर को (नियम के) बिलकुल विरुद्ध जाता हुआ देखकर।। छ।।

उसका अनुसरण करती हुई वे (रमणियाँ भी उस वापी में) प्रवेश कर गयीं और मुष्टि-प्रहारों से उसे मारने लगीं। तब मदन ने एक प्रपंच रचा। उसने उनके उत्तम रूप को विरूप बना दिया। किसी की एक-एक चक्षु हर ली। किसी की आँख माथे पर रच दी। किसी के कुचों का स्थान ही दिखायी नहीं देता था, तो किसी की नासा बहुत अधिक उठी हुई थी, तो किन्हीं का ओठ-पीठ की ओर चला गया था। किन्हीं की बोलते-बोलते वाणी लड़खड़ा जाती थी, किसी की उत्तम पीठ का सुवंश (मेरुदण्ड) ही दलित हो गया था। कोई-कोई अपने कानों से सुन नहीं पाती थी और किन्हीं के कान गर्दन के साथ बन गये। अपनी-अपनी देह को इस प्रकार से देखती हुई उन रमणियों के चित्त में महान् क्षोभ उत्पन्न हुआ (मन में हलचल मच गयी)। नष्ट छवि वाली वे स्त्रियाँ परस्पर में कहने लगीं कि—"हमें क्रुद्ध द्विजवर के चरणों में लगना चाहिए।"

---

(10) 1. अ. लॅ। 2. अ उ।

घत्ता— हले-हले आयण्णहु महो वयणु गुरु भावइँ सिरु धरेवि धरत्तिहे।
जा अवरे तहो जाइ णवि ताव खमावहु सविणय जुत्तिहे।। 198।।

(11)

गाहा— सयलाउँ णियय देहं सहसा णिविऊण कुवलयावीढे।
जंपंति देव दियवर [1]सुय कोहं कु ण सु समचित्तं।। छ।।

तुहु कोवि महंतु ण होहि णरु ण वियाणहि किण्णरु किं अमरु।
अवराहु म णिय-मणे संभरहि सुंदर-सरू[2]उ सयलहँ करहि।
कंपइ सुविसंठुलु अण्ण मणु अवलोयवि माणिणि मण-दमणु।
सहसत्तु [3]समग्गु तोउ भरिवि[4] णीहरिउ कमंडलु करे धरेवि।
णं उवहि अयत्थें आसि जिह सोसिय मणमहणइँ वावि तिह।
पुणु रहिवि विरुउ-सुरूउ किउ तियसिंदु-णरिंदु वि जेण जिउ।
थोवंतरे दियवरु जाइ जाम तियविंदु विलक्खउ चवइ ताम।
अम्हहमि समाणु करेवि छलु गउ दुट्ठु हरेविणु णिहिलु जलु।
कुविऊण ण कच्छइ माइयउ उहु उहु सुभ[5]णंतिउ धाइयउ।

घत्ता— "सखि, हे सखि, मेरे वचन सुनो। गुरुभाव से धरती पर शिर रखकर जब तक जल-स्थान से वह द्विज चला न जाय तब तक विनय युक्तिपर्वूक (हम लोग अपने अपराध उससे) क्षमा करा लें।। 198।।

(11)

सत्यभामा की तरुणियों को कुरूप तथा सुरूप बनाता हुआ वापी का जल शोषित कर वह प्रद्युम्न लीलापूर्वक द्वारावती के बाजार-मार्ग में जा पहुँचता है।

गाथा— समस्त रमणियाँ सहसा ही अपनी-अपनी देह झुकाकर पृथिवी पर लेट गयीं और गिड़गिड़ाने लगीं कि हे देव, हे द्विजवर सुत, समचित्त बनिए, क्रोध मत कीजिए। ।। छ।।

"तुम्हारे समान महान् कोई भी पुरुष नहीं है। किन्नरों अथवा देवों में भी आपसे महान् कोई होगा, ऐसा हम नहीं जानतीं। अपने मन में हमारे अपराधों का स्मरण मत करो और हम सभी का (पूर्ववत् ही) सुन्दर स्वरूप बना दो। हमारा मन विसंस्थुल (घबड़ाया हुआ) एवं अनमना होकर काँप रहा है।" मन को दमन करने वाले उस मदन ने उन समस्त मानिनियों को देख कर सहसा ही (अपने कमण्डलु में वापी का) समग्र जल भरकर कमण्डलु को हाथ में लेकर निकल गया। पूर्वकाल में जिस प्रकार अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को सुखा दिया था, उसी प्रकार उस मन्मथ ने भी उस वापी को सुखा दिया। पुन: तत्काल ही उन विरूप तरुणियों को ऐसा सुन्दर स्वरूप बना दिया कि जिसने त्रिदशेन्द्र, नरेन्द्र को भी जीत लिया। जब थोड़े अन्तर से वह द्विजवर जा रहा था, तभी वे तरुणियाँ बिलखती हुई बोलीं—"हमारे साथ छल करके तथा सम्पूर्ण जल हरकर वह दुष्ट चला गया।" कुपित होकर वे नारी कहीं नहीं समायीं (ठहरीं) और अरे वह, अरे वह, इसप्रकार संकेत करती हुई दौड़ने लगीं।

(11) 1. अ. सु। 2. अ. सुरूअ। 3-4. अ. तोउ अग्गुगु भरिवि। 5. ब. भ।

घत्ता— एत्तहि रइ-रमणु विवणिय-वहो खेड्डु करंतु पढुक्कउ।
पउर-जणहँ मणे अच्चरिउ उप्पायंतु गुरुक्कउ।। 199।।

(12)

गाहा— विविहा वणम्मि कय-विक्कणाय मणि-रमण-भंड-लोहम्मि।
संजाय[1] [2]दविण पउरं हय-गय-वसहाइँ सव्व वत्थेहिं।। छ।।

सइच्छइँ गच्छइ जाम कुमारु पयंडु सुदुद्धरु तिहुअणि सारु।
तिएहिं तुरंतिहिं ताव समग्गु खणंतरे रोहिउ सव्वहं मग्गु।
धरेविणु दोण्णिउ दुट्ठ-दुरास कहिंतु समागउ पाव-हयास।
णिरंभ करेप्पिणु वावि सगव्व कहिं जलु लेप्पिणु चालिउ पाव।
सो णिट्ठुर वयणहिं दोत्थिउ जाम धरत्तिहिं पडउ कमंडलु ताम।
दोहाइउ धाइउ णीरु महंतु हिरण्ण-पवालय ऊह वहंतु।
भयाउए लोउ सुविंभिय चित्तु पयंपइ हूवउ किंपि जुवंतु।
महाणव णिय-मज्जायहिं [3]मुक्क असेस वि एक्कवि होयइ ढुक्क।

घत्ता— और इधर वह रतिरमण पौरजनों के मन में महान् आश्चर्य प्रकट करता हुआ तथा विविध क्रीड़ाओं को करता हुआ (द्वारावती के) विपणि (बाजार-हाट) के मार्ग में घुस गया।। 199।।

(12)

तरुणियों के पीछा करने पर द्विज (प्रद्युम्न) का कमण्डल गिरकर फूट जाता है और उसके जल से समुद्र का दृश्य उपस्थित हो जाता है। आगे चलकर वह मालियों के यहाँ पहुँचता है

गाथा— (उस नगर के) विविध प्रकार के हाट-बाजारों में क्रय-विक्रय योग्य मणि, रत्न, स्वर्ण, लौह आदि अनेक प्रकार की व्यापारिक सामग्रियों की दुकानें थीं और घोड़े, हाथी, बैल एवं वस्त्र आदि सभी प्रकार की वस्तुओं से नागरिक जन प्रचुर धनार्जन कर रहे थे।। छ।।

जब प्रचण्ड सुदुर्धर एवं त्रिभुवन में सार वह कुमार स्वेच्छापूर्वक जा रहा था, तभी सभी तरुणियों ने तुरन्त ही वहाँ पहुँच कर क्षण भर में उसका मार्ग रोक लिया (घिराव कर दिया)। और बोलीं—"दोनों (छत्री-कुण्डी) वस्तुएँ धारण कर हे दुष्ट, हे दुराशय, हे पापी, हे हताश, तू यहाँ कहाँ से आ गया? समग्र वापी को जलरहित कर हे पापी, उसका जल लेकर कहाँ चल दिया?" जब वह (प्रद्युम्न) उन तरुणियों के निष्ठुर वचनों से दुश्चित्त हो गया, तभी धरती में उसका कमण्डलु गिर पड़ा और उसके दो टुकड़े हो गये। उसका जल बड़े भारी प्रवाह रूप में हिरण्य-प्रवाल समूह को प्रवाहित करता हुआ बहने लगा। विस्मित चित्त होकर लोग भय से व्याकुल हो उठे और कहने लगे कि—"यह क्या हो गया?" क्या महार्णव ने अपनी मर्यादा छोड़ दी है? और सिमट कर क्या यहीं आ गया है?" यह सब देखकर तथा सुबुद्धि से जिसने तीनों लोकों को जान लिया है, वह (द्विज—प्रद्युम्न)

---

(12) 1-2. अ. आय दविण। 3. अ. °त्तु।

णिएविणु एम सु तेत्थहो चलिउ सुबुद्धिएँ जेण जगत्तउ कलिउ।
पढंतु महागम-वेय-पुराण गउ-दिउ मालियअस्स घराण।
जराइम कंपइ णिवडइ जट्ठि करेणुच्चाइय णमिवि पिट्ठि।
पुण्णोउए दुक्खहँ उब्भउ थाइ खलंतु पहम्मि ससंतु वि जाइ।

घत्ता— मंदार-कुंद-कुवलय-वउल-मालइ रइरस लंपडु
अवलोइवि अलिउलु चउदिसहिं धावंतउ विहडेप्फडु।। 200।।

(13)

गाहा— आहासेइ सो इमं मालायारेण संजुवो विप्पो।
विज्जाहरस्स तणया पच्छामो भोयणत्थेण।। छ।।

इय कज्जइँ एत्थ समागमणु किउ मइँ णिसुणहिं अवरु वि वयणु।
दे देहि सुअंध-कुसुम-विविहा णिरु सरसु भोज्जु हउँ लहमि जहा।
ता जंपइ मालिउ विप्पक्खणि अग्गइँ परिसक्कि म किंपि भणि।
सच्चहिं सुवासु परिणयण-विही हरि-हलहराहँ संजणिय दिही।
आरक्खिय इय कज्जेण जइ मग्गहिं दल-[1]पत्तु ण लहहि तइ।
ता हुवउ विलक्खउ अडइ सुउ कोवाउरु मणे कंपंतु थिउ।

वहाँ से चल दिया। महान् आगम, वेद, पुराण पढ़ता हुआ वह द्विज मालियों के घर गया। बुढ़ाई देह काँपती थी। लकड़ी गिर पड़ती थी। उस लकड़ी को हाथ से उठाता था। झुकी हुई कमर से बड़ी कठिनाई पूर्वक खड़ा होता तथा बैठता था। मार्ग में स्खलित हुआ, श्वास लेता हुआ जाता था।

घत्ता— चारों दिशाओं से मन्दार, कुन्द, कुवलय (कमल), वकुल, मालती पुष्पों की मालाओं पर गिरते पड़ते भ्रमर-कुल को देखकर रतिरस लम्पट वह (द्विज—प्रद्युम्न) वहीं रम गया।। 200।।

(13)

मालियों द्वारा पुष्प न दिये जाने पर वह पुष्पों की सुगन्धि का अपहरण कर बाजार की सभी व्यापारिक सामग्रियों के रूप को बदल देता है

गाथा— मालाकार के समीप जाकर वह विप्र (प्रद्युम्न) उससे बोला—"विद्याधर पुत्री—सत्यभामा से मैं भोजन के लिए प्रार्थना करूँगा।" ।। छ।।

"इसी कारण मैंने यहाँ समागमन किया है, और भी मेरा वचन सुनो। मुझे विविध सुगन्धि दे दो, जिससे मैं अत्यन्त सरस-भोजन प्राप्त कर सकूँ।" तत्क्षण ही माली ने उत्तर दिया— आगे खिसको (जाओ), यहाँ मत कुछ बोलो। हरि-हलधरों को धैर्य-आनन्द देने वाली सत्यभामा के पुत्र की विवाह-विधि है, इसी कारण हे यति, ये सभी पुष्प आरक्षित हैं, माँगने पर तुम एक दल-पत्र मात्र भी प्राप्त नहीं कर पाओगे।" तब वह अटवी सुत (प्रद्युम्न) विलखा (व्याकुल हो गया)। कोप से आतुर होकर मन में काँपता हुआ खड़ा रहा। पुन्नाग, नागर, दिव्य

---

(13) 1. अ. मि°।

पुण्णाय-णाय-वेइल्ल-दिव्व मचकुंद-कुंद जे-जे भुवणे भव्व।
एय वि अवरेइ वि तक्खणेण अक्कमय विणिम्मिय तुरिउ तेण।
पल्लट्टु पडीवउ आवणइँ तर विविह धण्ण-धण-दावणहँ।

घत्ता— गंधहँ गंधत्तणु अवहरइ करइ तुप्पु सम तेल्लहो।
दीणारु [2]सुलोहइँ सम[3] सरिसु अइ-पवंचु जग मल्लहो।। 201।।

(14)

गाहा— जं किंपि भव्व वत्थ विवरीयं तं कुणेइ तं संयलं।
[1]भमइ व[2] कीलाए विप्पो णयरस्स मज्झम्मि।। छ।।

णियइ ताम वसुएवहो राउलु जहिं वरविविह सुगीय व माउलु।
करि-करडयल गलिय मय-धारहिं किउ कद्दमु हय-मुह-जलफारहिं।
वारि रसइ[(1)] जयवडहु सुसारउ आहासइ उच्छु[3]डणु धारउ।
कहहि विज्जि एउ कस्स सुहावणु रायदुवारु सुट्ठु मण-रावणु।
कहहि तासु सा पहु आयण्णहिं णियय पियामह केरउ मण्णहिं।
मेस-जुज्झु एक्कु जि परिभावइ एयहो लीह भुवणे को पावइ।

वेला, मचकुन्द कुन्द आदि लोक में जो-जो भी भव्य पुष्प थे उन सभी को तथा अन्य दूसरे पुष्पों को भी तत्क्षण ही उसने एक साथ सुगन्धरहित कर दिया। बाजार की विविध श्रेष्ठ धन-धान्य वस्तुओं के रूप को पलट दिया।

घत्ता— उसने सुगन्धित पदार्थों की सुगन्ध हर ली। घी को तेल के समान कर दिया (स्वर्ण-) दीनारों को लोहे के समान कर दिया। इस प्रकार जगह में मल्ल उस (प्रद्युम्न) का अत्यधिक प्रपंच वहाँ होने लगा।। 201।।

(14)

मायामय मेष लिए प्रद्युम्न को देखकर वसुदेव उसे राजभवन में बुलवाते हैं

गाथा— जो कोई भी भव्य वस्तु थी, उस सबको वह विपरीत कर देता था, और इसी प्रकार वह विप्र नगर के मध्य क्रीड़ा पूर्वक भ्रमण कर रहा था।। छ।।

तभी उसने वसुदेव का राजकुल देखा जो विविध सरस सुगीतों से भरपूर था। (नगर में) कहीं तो हाथियों के गण्डस्थल से गलित मद जल की धारा से और कहीं पर घोड़ों के मुख की जल की विशाल धारा (फेन) से कीचड़ मची हुई थी। सामर्थ्य की द्योतक (फहराती हुई) विजय-पताकाएँ जल-प्रवाह की तरह शब्द कर रही थीं। इक्षु-दण्ड-धारी उस विप्र ने अपनी प्रज्ञप्ति-विद्या से पूछा कि—"हे विद्ये, कहो, कि यह सुहावना, सुन्दर एवं मन को रमाने वाला राजद्वार किसका है?" तब वह विद्या बोली—"हे प्रभो, सुनो, यह राजद्वार अपने पितामह का मानो। उन्हें केवल मेष युद्ध ही अच्छा लगता है। इनकी बराबरी जगत में कौन कर सकता है? तब मकरध्वज

---

(13) 2-3. अ. उवल।

(14) 1-2. अ. भमइं वइय। 3. अ. "ध"।

(14) (1) ब. शब्दं करोति।

ता[4] मयरद्धएण चिंतेवि दुद्धर विज्जए मेसु करेविणु[5] ।
[6]मेसइ एक्कु तहिं तेण करेप्पिणु[7] गलि णिबद्धु दिढु डोरु धरेविणु ।
तसिय चित्तु दह-दिहहिं णिहालइ थिरु होएवि पुणुरवि संचालइ ।
सीह-दुवारहो सम्मुहुं सो[8] इउ[9] अत्थाणत्थइ पहुणा जोइउ ।

घत्ता— [10]बोलाविउ चित्ते पहिट्ठएण को तुहुं किं किउ आगमणु ।
कुण तणउँ मेसु अइ-दुद्धरिसु किं बहुणा णिय कज्जु भणु ।। 202 ।।

(15)

गाहा--- एयंचिय अयवालो जंपइ भो देव अयहिं वहुएहिं ।
ण कलिज्जइ ए सवलं तं आयउ तुम्ह गेहम्मि ।। छ ।।

तुहुँ मेसहँ परिक्ख णिरु जाणहिँ लइ एयहो पउरिसु परियाणहिं ।
ता जंपइ पहु किंपि म बोल्लहि रे अयवाल तुरिउ अवि मेल्लहि ।
महो जण्हुहि समाणु ण पहुच्चइ अइ पयंडु [1]भुवि पाणहि मुज्जइ ।
ता तिणि सयल सक्खि कय राणा अत्थाण छेक्केक्क पहाणा ।
दइव-वसेण जण्हु अइकोमले गरुवज्झडेण वि णिवडइ महियले ।

ने (पुन: विद्या का) चिन्तवन किया और दुर्धर विद्या के प्रभाव से एक (मायामय) मेष बना लिया। फिर गले में बँधी हुई उस मेष की डोरी को दृढ़तापूर्वक पकड़ा और चित्त में डरते हुए दशों दिशाओं में देखने लगा। स्थिर होकर पुन: मेष को चलाने लगा। इस प्रकार वह सिंहद्वार के सम्मुख जा पहुँचा तभी आस्थान (राज दरबार) में स्थित प्रभु ने (वहीं से) उसे देखा।

घत्ता--- वसुदेव ने चित्त में हर्षित होकर उस मेष वाले को बुलवाया और पूछा—"तुम कौन हो? आने का क्या कारण है? अति दुर्धर्ष यह मेष कहाँ का है? बहुत कहने से क्या? अपने (आने का) प्रयोजन कहो।" ।। 202 ।।

(15)

मायावी मेष से वसुदेव को मूर्च्छित करा कर प्रद्युम्न आगे बढ़ जाता है

गाथा— वसुदेव के पूछने पर मेषपाल बोला—"हे देव, मेष तो बहुत हैं, किन्तु इसकी सबलता के आगे दूसरे कुछ भी नहीं हैं। अत: इसे लेकर आपके घर आया हूँ ।। छ ।।

"तुम मेष की परीक्षा ठीक जानते हो अत: इसे लो और इसके पौरुष को जानो।" तब प्रभु ने कहा—"बोल कुछ भी मत, रे अजपाल, शीघ्र ही इसे छोड़। प्रभुत्व (सामर्थ्य) में मेरी जंघा के समान यहाँ किसी की जंघा में सामर्थ्य नहीं है। वह अति प्रचण्ड है और लोक में (दूसरों को) प्राणों से छुड़ा देती है। पुन: उस प्रधान राणा (वसुदेव) ने तीन साक्षी (नियुक्त) किये और उन्हें एक-एक आस्थान में नियुक्त कर दिया। (उस अश्वपाल ने वसुदेव से कहा—) "दैव वश आपकी जंघा अति कोमल है अत: महान् आघात से (यदि आप) महीतल में गिर

(14) 4-5. अ. × । 6-7. अ. × । 8-9 अ. संचोइउ । 10. अ. अ° ।

(15) 1. अ. °थु ।

तो महो दोसु णत्थियइ बोल्लिउ गयरयंतु[2] अविहत्थहो मेल्लिउ।
भो णरिंद णिय-पुरउ णियच्छहि सिर-पहारु णिय सत्तिए इच्छहि।
धाइउ[3] माया-मेसु तुरंतउ अत्थाणहो मणे खोहु करंतउ।
णिट्ठुर-घाय[4]इं णरवइ घाइउ सव्वंगहंमि कंपु उप्पाइउ।
णिवडइ किर महियले पहु मुच्छिउ जाम-ताम णरवइहिं पडिच्छिउ।

घत्ता— अवलोएवि एम पियामहु मुच्छ परव्वस अण्ण मणु।
साणंदु सु तेत्थहो णी[5]सरिउ गउ अणेत्तहिं रइ-रमणु।। 203।।

(16)

गाहा· गहिऊण वटुव वेसं कविलंगं तहय दीहरच्छि[(1)]ल्लं।
गहिर-गिराएं पढंतो सच्चहरं वच्चए तुरियं।। छ।।

दिउ जंपइ जायवकुल-सामिणि णिसुणि देवि दिग्गय-गय-गामिणि।
णिय सेयंस[(2)] - विडवि फल भाइणि[(3)] उहय-वंस सुविसुद्ध महाइणि।
सत्थ-महोवहि पारे पराइउ भोयणत्थे हउं तु[1]व घरे आइउ[2(4)]

पड़ें, तो मुझे कोई दोष मत दीजिएगा।" इस प्रकार कहकर उसने तुरन्त ही अपने हाथ से उस मेष को छोड़ दिया। पुन: उस (मेषपाल) ने कहा—"हे राजन्, आप सामने देखिए और उसके सिर के प्रहार से अपनी शक्ति का विचार कीजिए।" वह माया-मेष तुरन्त दौड़ा। उसने आस्थान में बैठे राजा (वसुदेव) के मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न कर दिया। निष्ठुर घात से उस (मेष) ने नरपति को घायल कर दिया और उसके सर्वांग में कम्पन उत्पन्न कर दिया। जब वह (वसुदेव) भूमि पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया तब राजाओं ने उसकी मूर्च्छा दूर की।

घत्ता— इस प्रकार पितामह को मूर्च्छित, परवश एवं विवर्ण मुख देखकर वह रतिरस प्रद्युम्न आनन्दित होकर वहाँ से अन्यत्र चल दिया।। 203।।

(16)

वह प्रद्युम्न कपिलांग वटुक-द्विज के वेश में सत्यभामा के यहाँ पहुँच कर उससे भोजन माँगता है

गाथा-· दीर्घ नेत्र वाला वह प्रद्युम्न कपिलांग वटुक द्विज का वेश धारण कर गम्भीर वाणी से (कुछ-कुछ) पढ़ता हुआ तुरन्त ही सत्यभामा के घर पहुँचा।। छ।।

वह वटुक द्विज बोला—"यादव कुल की स्वामिनी, दिग्गज गजगामिनी, अपने श्रेयांस (पुण्य) रूपी वृक्ष के फलों को भोगने वाली, उभय वंश की सुविशुद्ध महास्वामिनी, हे देवि, सुनिए, शास्त्ररूपी महासमुद्र में पारंगत मैं आपके यहाँ भोजन के लिए आया हूँ। अन्यत्र मैं पाली नहीं लगाता (क्रम को नहीं बाँधता) किन्तु आज मैं धन्य हूँ, जो

---

(15) 2. अ. रयरंतुं। 3. अ. आगउ। 4. अ. घाएँ। 5. ब. 'ह'।

(16) 1-2. अ. इत्थ पराइउ।

(16) (1) ब. दीर्घनेत्रं। (2) ब. पुण्यवृक्षस्य। (3) ब. शुभंकरी। (4) ब. आगत।

अवरेत्तहिंमि पालि णउ लावमि तुव हत्थेण अज्जु धणि पावमि।
इय अइदीणु वयणु णिसुणिवि णिरु जणु[5] गरहंतु चवइ विहुणिवि सिरु।
रे दियवर सुहकम्म-विवज्जिउ भोयणु मग्गंतउ किंण लज्जिउ।
जं समदिट्ठिउ देवि णिहालइ तहो दालिद्दु सयलु पक्खालइ।
पइँ समाणु सुपसणइँ वोल्लिउ परि किं णिय हय[6] दइ अइ[3] पेल्लिउ।
तुहुँ हय-गय-रह-कंचण-रयणइँ मग्गहि गाम-णयर वरसयणइँ।
कण्णा-दाणइँ गोहण-भवणइँ पुण्ण समाइँ होंति णिरु वयणइँ।

घत्ता— पच्चुत्तरु वडुअ समुल्लवइ हय-गय लेवि ण अम्हहं जुज्जइं।
णिय तणयहो मंगल कज्जे फुडु देहि भोज्ज किं अवरइँ किज्जइँ।। 204।।

(17)

गाहा— सुणिऊण विप्प वयणं सहसा साणंद किण्ह महएवी।
[1]महाणसम्मिमग्गम्मि[2] गया जच्छ थिया विविह-भक्खा[3]इँ।। छ।।

अइ विणएण सरिस आहासइ तुव समाणु दिउ कोवि ण दीसइ।
सरसु सुमहुरु सुअंधु सुमिट्ठउ भुंजहि भोयणु जं तुह इट्ठउ।

तुम्हारे हाथ से भोजन पाऊँगा।" इस प्रकार के अतिदीन वचन सुनकर लोकों की निन्दा करती हुई अपने सिर को धुनकर बोली—"रे शुभकर्म से विवर्जित द्विजवर (केवल) भोजन (मात्र) माँगते हुए क्या तुझे लज्जा नहीं लगती?" (यह सुनकर उसने उत्तर दिया) —"हे देवि, जो समदृष्टि से देखता है, उसका समस्त दारिद्रय पखर (धुल) जाता है। आपके समान सुप्रसन्न (वचन) कोई नहीं बोलता, पर क्या कहूँ, मैं भाग्य का मारा हुआ ही यहाँ आया हूँ।" (तब देवी ने कहा) "तुम हाथी, घोड़ा, रथ, रत्न, कंचन, ग्राम, नगर एवं उत्तम शैया आदि माँगो। कन्यादान माँगो, गोधन माँगो, भवन माँगो। आपके मुख से वचन निकलते ही वे पूरे किये जायेंगे।"

घत्ता— तब वटुक ने प्रत्युत्तर में कहा—"हय, गज लेना हमें युक्त नहीं। आप अपने पुत्र के मंगलकार्य में हमें केवल भोजन दे दीजिए। अन्य कार्यों से हमें क्या प्रयोजन?"।। 204।।

(17)

सत्यभामा एवं कपिलांग वटुक का वार्त्तालाप, कपिलांग प्रशंसा करता है

गाथा— सहसा ही विप्र के वचन सुनकर आनन्द से भरी हुई कृष्ण की महादेवी (सत्यभामा उस) महानस (भोजनशाला) में गयी, जहाँ विविध भक्ष्य रखे थे। ।। छ।।

(पुन: वह सत्यभामा उस कपिलांग वटुक द्विज से) अतिविनय पूर्वक सरस शब्दों में बोली, "तुम्हारे समान अन्य कोई द्विज नहीं दीखता। (अब इन पकवानों में से) तुम्हें जो इष्ट हो वही सरस, सुमधुर, सुगन्धित एवं सुमिष्ट भोजन करो। पहले मैं तुम्हें जिमाऊँगी और बाद में अपने अन्य घनिष्ठ परिजनों को। (यह सुनकर वह)

---

(16) 3. ब. अ. च।

(17) 1-2. अ. भग समज्झंमि। 3. अ अण्णइँ।

(16) (5) लोकं। (6) ब हतकर्मणकपेलित.।

पहिलारउ तुज्झु जि णउ अणहो पुणु परियणहो देमि वहु घ[4]णहो।
दियवरु चवइ देवि आयण्णहि ए सयल वि कुसील अवगण्णहि।
अहम-अयाण-अपत्त-अलक्खण पासंडिय डिंभिय पल-भक्खण।
संझा-चरण वेय-गुण-वज्जिय अप्पउ विप्प भणंति ण लज्जिय।
हउमि पुराण-सत्थ बहु जाणउँ वेय-सहिउ अइउण्णय माणउँ।
णिल्लोहु वि णि-कोहु-दमवंतउ विज्जायंतु गुणेहिं महंतउ।
जगे पवित्तु किं [5]थयरइ किज्जइ सयलहँ अगगा सासणु महो दिज्जइ।

घत्ता— मइ एक्कइँ जिमिएण जिमिय होंति सयल वि किं अणहँ।
णिहिलद्ध[6]वि पत्तस्स दिज्जइ [7]णच्च वि सउ णय मणहँ[8]।। 205।।

(18)

गाहा— अवहारिऊण विप्पस्स सामिथं दिण्ण सलिल आएस।
चरणाण धोवणत्थ सहसत्ति समुट्ठिया देवी।। छ।।

सयलहं दियवरहि पहिलारउ उट्ठिउ वडुउ सदुट्ठ णिवराउ।
णियय चलण लहु धोआएवि गउ पुणु पढमासणम्मि वइसिवि थिउ।
अवलोएवि विलक्ख [1]वइट्ठाहर वसेवि परोप्परु जंपहि दियवर।

द्विजवर बोला—"देवि सुनो, इन सभी को कुशील समझो। ये अधम हैं, अज्ञानी, अपात्र हैं, लक्षणहीन हैं, पाखंडी हैं, कपटी हैं। माँस-भक्षी हैं। सन्ध्याचरण, तर्पण आदि वेद के गुणों से रहित हैं, फिर भी अपने को विप्र कहते नहीं लजाते और मैं, पुराण-शास्त्र बहुत जानता हूँ, वैदिक संहिताओं के ज्ञान में अति उन्नत माना जाता हूँ। तीन लोकों में भी मुझ जैसा क्रोध रहित एवं दयावान और विद्यावन्त गुणों से महान् अन्य कोई नहीं है। मैं (ही) जगत् में पवित्र हूँ, अन्यों में क्यों रति की जाय?. गयल (प्रमाद) को हल (नष्ट) कर अपना भोजन मुझे दीजिए।

घत्ता— मुझ एक को जिमाने मात्र से ही अन्य सब जिमाये जैसे हो जाते हैं, तब अन्यों (को जिमाने) से क्या लाभ? निधि प्राप्त करके स्वयं अपने मन में समझ-बूझकर सुपात्रों को दीजिए (भोजन-दान दीजिए)।। 205।।

(18)

कपिलांग वटुक-द्विज के उच्चासन पर बैठ जाने से अन्य ब्राह्मण क्रुद्ध हो उठते हैं

गाथा— विप्र का कथन सुनकर उस देवी सत्यभामा ने अपने भृत्यों को जल लाने का आदेश दिया और उसके चरणों का स्वयं प्रक्षालन करने हेतु उठी।। छ।।

समस्त द्विजवरों में प्रथम एवं दुर्निवार तथा मधुर वाणी में स्वागत-प्राप्त वह वटुक द्विज शीघ्र ही सत्यभामा से अपने पैर धुलवा कर गया और प्रथम आसन पर बैठकर स्थित हो गया। इसको देखकर अन्य सब द्विजवर बिलख कर नीचे बैठ गये और परस्पर में बोलने लगे—"अपने गोत्र, जाति, कुल एवं शाखा को समझे बिना ही

(17) 4. अ. ज। 5. अ. अवरें। 6. अ. च्छ'। 7-8. अ. णउ विसउन्नह।

(18) 1. अ. द।

अमुणिय गोत्त-जाइ-कुल सीलउ अग्गासणे बइट्ठु को एहउ।
मुद्धु मुक्खु कुकलहु वि किं किज्जइ अवरेँ तहिँ णि गंपि लइ सिज्जइ।
को वि मुव विणिविट्ठ फिर जामहि माया-बडुउ समुट्ठिउ तामहिं।
तहिँ उवविट्ठउ उवरि महंतहँ दियवराह मणे रोसु वहंतहँ।
महुमह-महएवीहिं समाणउँ चवहिं देवि लहु धारि अयाणउँ।
कुलसीलेण वत्तु कलियारउ बुहयणाहँ णिरु अविणय-गारउ।

घत्ता— मायारउ पहु एहु णिहणसहु णिरु दुट्ठ मणु।
अम्हहँ ण दोसु फुडु अत्थि णिह मा जंपणउ करेउ जणउ।। 206।।

(19)

गाहा— आयण्णिऊण विप्पाण भासियं णिच्छिऊण सव्वाणं।
विप्फुरिय अहर-जुवलं जंपइ बडु किं पलावेणं।। छ।।

भो-भो-भो अमुणंत म तूसहु-रूसहु वयणइँ मज्झु चरिउ मा दूसहु।
सयल छडंग-वेय जो धारउ आयमीउ-मंतत्थ-वियारउ।
बंभणु णय-पमाण-गुण जुज्जइ सहियेँ सुकवि महँ जुज्जइ।

अग्र-आसन पर बैठा हुआ यह कौन है? (प्रतीत होता है कि यह) कोई मूर्ख एवं दरिद्र कुलवाला है। (अब) क्या किया जाय? (यह कहकर) अन्य कुछ तो शीघ्र ही वहाँ से चले गये और कोई-कोई अब चुप लगा कर वहीं (अधर में) बैठ गये तभी वह मायावी बटुक धम से उठा और मन में रोस धारण करने वाले उन बड़े-बड़े द्विजवरों के ऊपर जा बैठा। तब उन्होंने कृष्ण की उस महादेवी के सम्मुख जा कर कहा "हे देवि, इस अज्ञानी को (यहाँ से) शीघ्र ही हटाओ क्योंकि यह कुल एवं शील से कलहकारी है तथा बुधजनों की निरन्तर अविनय करने वाला घमण्डी है।

घत्ता — "साथ ही वह मायावियों में प्रमुख तथा निर्धन एवं दुष्टमन है। निश्चित रूप से (हम लोगों ने बता दिया है अत:) लोग हमें दोष न दें।। 206।।

(19)

कपिलांग बटुक-द्विज द्वारा यथार्थ ब्राह्मण की परिभाषा

गाथा — फड़कते हुए ओष्ठ-युगल वाले उस बटुक ने उन विप्रों का कथन सुनकर तथा सबकी ओर देखकर कहा—"बहुत प्रलाप से क्या?"।। छ।।

"भो-भो-भो द्विजवरो, बिना समझे-बूझे रोष-तोष मत करो, और अपने वचनों से मेरे चरित्र को दूषण मत दो। मैं सकल षडंग (वैद्यक, ज्योतिष, छन्द, व्याकरण, कला, संगीत और वेद) का धारक तथा आगमोक्त मन्त्र छवि का करने वाला ब्राह्मण हूँ। नय-प्रमाण-गुणों से युक्त हूँ और साहित्यकारों में महान् कवि की योग्यता वाला हूँ। तुम लोगों में जो अनेक ग्रन्थों का जानकार हो, वही बोले कि उससे मेरी क्या समानता है? शरीर

जो तुम्हहँमि मज्झे बहु जाणउ सो बोल्लउ किं मइमि समाणउ।
जाइ सरीरु जीउ णउ गम्मु वि वंभणु[1] त्ति लक्खणु णउ वण्णु वि।
वेयहो-आगम को [2]सद्धारउ जासु सोज्जि तइलोइहो सारउ।
अय-हय-गय-ण [3]गाइँ-गो-सत्थ[4]इँ पहणिय जणे जेत्थु परमत्थइँ।
संति भणेवि असंति रइज्जइ जणणि-बहिणि-सुय जेच्छु रमिज्जइ।
वारुणि-महु-मं[5]गलु भक्खिज्जइ जगहो विरुद्ध जं जि तं किज्जइ।

घत्ता— इय अणुमग्गइ संवरहिं वेय-पमाणु केम पसणिज्जइ।
जे पंचेंदिय रस-रसिय ते णिरु विप्प ण अज्जु भणिज्जइ।। 207।।

(20)

गाहा— इय वयणेण सु जंपिएण सयलाण दियवरिंदाणं।
कोवाणलेण पज्जलियं माणसं तक्खणेण सव्वाणं।। छ।।

कोलाहलु करंत उद्धाइय रोसारुण णउ कत्थइँ माइय।
पंचेंदिगु ... विज्जा णामें अप्प-सरूव सरस किय कामें।
सयल वि णिय-णिय मणे अमुणंता एक्कमेक अब्भिडिय तुरंता।

तो नष्ट हो जाता है, गुण नष्ट नहीं होता। वस्तुतः गुण ही ब्राह्मण अथवा मुनि का लक्षण है न कि वर्ण। कोई वेदों की आगम रूप में श्रद्धा करता है और उसे ही वह तीनों लोकों में सारभूत मानता है। अज, हय, गज, नग, गो, शास्त्र और अन्य प्रचलित शास्त्रों में ही जिसकी परमार्थ मति रहती है। सत् कह कर जो असत् में रम जाता है, जो माता, बहिन एवं पुत्री से रमण करता रहता है, जहाँ मदिरा, मधु, माँस खाया जाता है और जो-जो (मान्यताएँ) जगत व्यवहार के विरुद्ध है, वही-वही किया जाता है।

घत्ता— इस प्रकार जिनके द्वारा प्रतिक्षण ऐसा (दूषित) आचरण किया जाता है, उनके द्वारा वेदों का प्रमाण कैसे प्रकट किया जा सकता है? जो पंचेन्द्रियों के रस में रसिक हैं, वे यथार्थ विप्र नहीं है।। 207।।

(20)

कपिलांग वटुक-द्विज के कथन से अन्य सभी ब्राह्मण आपस में कलह करने लगे, सत्यभामा कपिलांग की प्रशंसा करती है

गाथा— इस प्रकार कपिलांग वटुक द्वारा कहे हुए वचनों से सभी द्विज-वरेन्द्रों का मानस तत्क्षण ही कोपानल से प्रज्ज्वलित हो उठा।। छ।।

कोलाहल करते हुए वे दौड़े। रोष से लाल-लाल होकर वे अपने में ही नहीं समाये। अपनी विद्या का स्तम्भन रूप प्रपंच करके उस (कपिलांग वटुक रूपी) कामदेव ने अपना स्वरूप यथावत् सरस बना लिया। इधर, सभी द्विजवर अपने-अपने मन में विवेक से काम न लेकर एक-दूसरे से तुरन्त आ भिड़े। एक-दूसरे के केश-कलाप

---

(19) 1. ब. वंभमुनि। 2. अ. भल्लारउ। 3-4. अ. राइमासत्थे। 5. अ. जं।

केस-कलाउ धरिवि अच्छोडहिँ चलणइँ-चलण करइँ-करु मोडहिँ।
णासा-वंस-सवण धरि तोडहिँ सिर-सिरेण अप्फाले वि फोडहिँ।
पहणहिँ णिट्ठुर-मुट्ठि पहारहिँ वियलहि देहि रत्त-जलधारहिँ।
एव खलंत-लुडंत-पडंतवि रोवंता बवंत-णासंतवि।
णीससंति तणु वण दुक्खाउर थिय भग्ग-दुम्मिय-मण दियवर।

घत्ता— इय पेक्खिवि विप्पहँ विलसियउ हँसेवि सच्च आहासइ।
गुणवंतु महंतु संतु वडुअ तुज्झु समाणु ण दीसइ।। 208।।

(21)

गाहा— दिण्णासणे वइट्ठो महुरालावेण भत्तिवंतेण।
वर रयणेहिमि खइयं कणयमयं ढोइयं थालं।। छ।।

कर-पक्खालणु घेविवि तुरंतइँ दिण्णइँ सालणाइँ रसवंतइँ।
धवलु सुअंधु सुकोमलु सरलउ परसिउ कूलु अमलु अइ विरलउ।
दालिवि णव-दीणार समाणिवि सज्जु सुगंधु तुप्पु लहु आणिवि।
सूवारुचि वि सवेउ सु समप्पइ आहारेइ वडुउ णउ तिप्पइ।

पकड़कर खींचने लगे। एक-दूसरे को लातें मारने लगे और एक-दूसरे के हाथ मरोड़ने लगे। नासावंश को पकड़कर तोड़ने लगे, कान पकड़कर ऐंठने लगे। सिर को सिर से मारकर फोड़ने लगे। परस्पर में निष्ठुर मुष्टि-प्रहारों से मारने लगे। देह से रक्त रूप जलधारा गिरने लगी। इस प्रकार कोई रिपटे, कोई लुढ़के, कोई गिर पड़े, कोई रोते, कोई बड़-बड़ बोलते कोई छिप-छिप कर भागने लगे। शरीर के व्रणों के दुःख से पीड़ित होकर श्वास छोड़ने लगे। सभी द्विजवर भग्न-हृदय एवं उदास मन वाले हो गये।

घत्ता— इस प्रकार विप्रों की चेष्टा देखकर देवी सत्यभामा हँस कर बोली—"हे वटुक, तुम जैसा गुणवान् महान् सन्त विप्र अन्य कोई नहीं दिखायी देता।"।। 208।।

(21)

कपिलांग वटुक एक वर्ष में खाने योग्य सामग्री निमिष मात्र में ही खाकर सबको आश्चर्यचकित कर देता है

गाथा— इस प्रकार मधुरालाप करके भक्तिपूर्वक दिये हुए आसन पर वह कपिलांग वटुक बैठ गया। पुनः वह सत्यभामा उत्तम रत्नों से खचित-जड़ित कनकमय थाल उस (वटुक) के सम्मुख ले आयी।। छ।।

तुरन्त ही हाथों का प्रक्षालन करा के उसने नमकीन रसोई परोसी। धवल, सुगन्धित, सुकोमल, सरल, अमल और अतिविरल (फैला हुआ) कूलु (भात) परोसा। तत्काल ही ताजे सुगन्धित घी से छौंकी हुई नव-दीनारों के समान मीठी दाल लाकर तथा शाक-तरकारी आदि वेगपूर्वक देने लगी। इस प्रकार वह सत्यभामा आहार करा रही थी तो भी वह वटुक तृप्त नहीं हो रहा था, यह देख कर लोगों के मन विस्मय से भर उठे। उसी समय

णियहिं लोयणिय चित्ते चमक्किय तहिं अवसरे आहरणालंकिय।
धावेविणु वि देवि पुणरवि तहिं गय अवलोयणम्मि वडुवउ जहिं।
मंडव-मोयय-दहि-खीरेहिमि सक्कर-गुल[1]-खज्जय खंडेहिमि।
संवच्छरेण जंजि उवरियउ तण्णिविसंतरेण संहरियउ।

घत्ता— तो वि ण दिहि उप्पण्ण आणि-आणि इय भासइ।
णं भुक्खियउ गयंदु तह भक्खंतु वि दीसइ।। 209।।

(22)

गाहा— हय-गय-करहाणत्थं खाणे पउरं पि णिम्मियं जंपि।
दिण्णं तं तहो [1]तुरियं सच्चाएसेण सयल भिच्चेहिं।। छ।।

जह-जह सयलु अण्णु ढोइज्जइ तह-तह तहो कवलु वि णउ पुज्जइ।
विंभिउ-जगु अवलोइवि तहो मुहु जंपइ कहिं होसइ एयहो सुहु।
णियमंदिरहो गंपि ण पहुच्चइ उट्ठंतउ जीविएण पमुच्चइ।
कोऊहल-रसेण रंजिय-मणु पीण-पउहरीहिं णाविय तणु।
अवलोइय सयलु वि अंतेउरु तहिं अवसरे आहासइ दियवरु।

आभरणों से अलंकृत देवी (सत्यभामा रसोई घर से) दौड़कर पुनः वहाँ आयी जहाँ से वटुक दिखायी दे रहा था। उसने माँड, मोच (इमली का पानी), दही, खीर, शर्करा से युक्त खाजा, श्रीखण्ड आदि जितनी खाद्य-सामग्री थी वह सब परोस दी। इस प्रकार एक वर्ष में जो आहार-सामग्री जोड़ी थी और जो एक वर्ष में खायी जा सकती थी, वह सब निमिष मात्र में ही खा गया।

घत्ता— तो भी उस (वटुक) को धैर्य-तृप्ति नहीं हुई। "लाओ-लाओ" इस प्रकार चिल्ला रहा था। (उस समय) वह ऐसा दिखायी दे रहा था, मानों भूखा हाथी ही खा रहा हो।। 209।।

(22)

भोज्य पदार्थों से तृप्त न होकर कपिलांग-द्विज सत्यभामा की भर्त्सना कर वहीं पर वमन कर देता है

गाथा— घोड़ा हाथी एवं ऊँटों के खाने के लिये जो प्रचुर सामग्री का निर्माण किया गया था, वह सब सत्यभामा के आदेश से सभी भृत्यों ने उस वटुक के लिए तुरन्त ही परोस दिया।। छ।।

जैसे-जैसे सेवक समस्त अन्नों को ढोकर लाते थे, वैसे-वैसे वे उसे एक ग्रास के लिए भी नहीं पूजते थे। उसका मुख देखकर समस्त लोक आश्चर्य करने लगे और कहने लगे, "इसको कैसे सुख होगा (तृप्ति होगी)? यह द्विजवर जाकर भी अपने घर तक न पहुँच पायगा उठते ही कहीं इसके प्राण न छूट जाय?"

कौतूहल रस से रंजित मन वाले उस द्विज का शरीर पीनस्तनी दासियों द्वारा उठाया गया। समस्त अन्तःपुर को देखकर वह द्विजवर अवसर पाकर बोला—"(हे देवि), तुझे कौन सा दोष देना उचित होगा। तुझे दरिद्रनी

---

(21) 1. अ गं।

(22) 1. ब. °दु।

कवणु दोसु किर तुज्झु जि जुज्जइँ दालिद्दिणि किं किविणि भणिज्जइँ।
भाणु कुमारु तणउँ हरिवल्लहु पियरु वि विज्जाहरु जगे दुल्लहु।
सामिणि अबलायणहो असेसहो तुज्झु लोहु सुण सयलहु [2]एसहो।
[3]सुहए ण दिण्णु भोज्जु दिहि गारउ धिद्धिगच्छु एउ चित्तु तुहारउ।
हउँ ण तित्तु किं एणाहारइँ पडउ वज्जु खले सीसे तुहारइँ।

घत्ता— परिवारिउ णिय अण्णु पावि पडिच्छहिँ तुरिउ तुहुँ।
इय जंपेविणु तेण कियउ व[4]मणु वडुएण लहु।। 210।।

(23)

गाहा— पिच्छेविणु वित्ततं माणुस मज्झे वि पंगणं तहय।
णियचित्ते सुवि तसिया देवी दियविंद सयल लोयावि।। छ।।

लच्छीहर पियाहे अंगुब्भउ एम जणस्स करंतु वियंभउ।
[1]गउ [illegible] [2]सुहुँ णिय माइरि [illegible] गेहहो खुल्लय-रूउ करिवि णिय देहहो।
खीण-सरीरु दुगंधु विरूवउ वीहत्थु वि किंकालु सरूवउ।
वंकंगुलियउ दंतुर वयणउँ कर-चरणोह दीह किस-णयणउँ।

कहा जाय या कंजूसिनी? जगत् में दुर्लभ तेरा भानुकुमार जैसा पुत्र, हरिवल्लभ जैसा पति और विद्याधर जैसा पिता है, तू समस्त अबलाजनों की स्वामिनी कही जाती है, फिर भी तेरा यह समस्त लोभ देखा-सुना। तूने भूखे को भोजन नहीं दिया, उसके धैर्य और गौरव को महत्व नहीं दिया। तुम्हारे ऐसे क्षुद्र चित्त को धिक्कार हो, धिक्कार हो। जब मैं तृप्त ही नहीं हुआ, तब तुम्हारे इस आहार कराने से क्या लाभ? — हे दुष्टे, तेरे इस शीर्ष पर वज्र पड़ जाय तो उत्तम।"

घत्ता— "हे पापिनी, अन्य अपने परिवार के जनों के साथ उसके फल-भोग की तुरन्त प्रतीक्षा कर।" ऐसा कहकर उस वटुक ने शीघ्र ही वहीं पर वमन कर दिया।। 210।।

(23)

मायावी वटुक क्षीण एवं विकृत-काय क्षुल्लक वेष बनाकर रुक्मिणी के निवास-स्थल पर पहुँचता है।

गाथा— मनुष्यों के मध्य में तथा प्रांगण में उस प्रकार की घटना को देखकर सत्यभामा देवी अपने चित्त में बड़ी दुखी हुई। साथ ही द्विजवृन्द तथा समस्त लोक त्रस्त हो उठे।। छ।।

लक्ष्मीधर (कृष्ण) की प्रिया के अंग से उत्पन्न वह मदन (मायावी वटुक) इस प्रकार जनों के मन में विस्मय करता हुआ अपने शरीर का क्षुल्लक रूप बनाकर अपनी माता के घर के सम्मुख गया। उसका शरीर क्षीण-दुर्बल, दुर्गन्धित, विरूप, वीभत्स (भयावना), कंकाल स्वरूप टेढ़ी अँगुलियों वाला, उखड़े हुए दाँतों वाला, लम्बे-लम्बे हाथ-पैर वाला, छोटी-छोटी आँखों वाला, टूटी हुई माँस रहित पीठ वाला था। पद-पद पर उसके

(22) 2. ब. °दे। 3. ब. °च्छु। 4. ब. °उ।

(23) 1. अ. °म। 2. अ. °मु।

भग्गु सु[3]पुट्ठि वंसु[4] णिम्मंसउ[5]   पए-पए जीवियस्स गुरु संसउ।
जहिं रूविणि वि पत्तु तम्मंदिरु   सुर-किण्णर-णर णयणाणंदिरु।
भेरि-मुअंग करड-कंसालहिं   वीणा-वंसालावणि तालहिं।
ढक्कहु डुक्कह रउ णिसुणिज्जइ   कण्णो वडिउ किंपि ण सुणिज्जइ।
कालाउरु कच्छूरिय परिमलु   चंदण-रस रुणुरुंटिउ अलिउलु।

घत्ता— सच्चहे मुहु मइलेविणु वंभयारि संचरइ कह।
णं भंजेवि मरट्टु सीहु वि दिक्करणीहि जह।। 211।।

इय पज्जुण्णकहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए बुह रल्हण सुव कइसीह विरइयाए सच्चहामादेवी-माण-भंगो णाम **एयादहमी संधी** परिसमत्तो।। संधी: 11।। छ।।

पुष्फिया

[1]जेणेदं संसार सहजं णिच्छिदं जाणिऊणं,
रज्जेणं सहसयणविंदं सिंहं अवमाणिऊणं।
गहिऊणं णि[2]ग्गंथचरियं साधिदं सिद्धि-ठाणं।
तं देवं देवेंद णमिदं देउ कइ-सीह णाणं।। 1।।

जीवित रहने में संशय हो जाता था।

जहाँ रुक्मिणी रहती थी, उसी सुर, किन्नर एवं मनुष्यों के लिये नयनाभिराम भवन में वह क्षुल्लक जा पहुँचा।

भेरी, मृदंग, करट, कंसाल, वीणा, बाँसुरी, आलापनी, ताल, ढक्का, डुक्का आदि वादित्रों के शब्द किये जा रहे थे। उनके कानों में पड़ने के कारण और कुछ भी सुनाई नहीं देता था। कालागर, कचूर आदि सुगन्धित चन्दन रस से भ्रमरगण रुण-झुण ध्वनि कर रहे थे।

घत्ता— सत्यभामा के मुख को मलिन कर ब्रह्मचारी क्षुल्लक ने संचरण किया। कैसे? वैसे ही जैसे दिग्गजों की भीड़ को भगाकर सिंह संचार करता है।। 211।।

इस प्रकार रल्हण-सुत कवि सिंह द्वारा विरचित धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली प्रद्युम्न-कथा में सत्यभामा-महादेवी के मानभंग नामकी ग्यारहवीं सन्धि समाप्त हुई।। सन्धि: 11।। छ।।

पुष्पिका— कवि सिंह द्वारा आराध्य-स्मरण

जिसने सिंह वृत्ति वाले इस संसार को भी सहज रूप में ही अन्तिम जानकर तथा जिसने अपने साथी स्वजन रूपी सिंहों का भी अपमान कर निर्ग्रन्थ चरित्र ग्रहण कर लिया और उसका साधन कर सिद्धि-मुक्ति स्थान का अभ्यास किया, उस सिंह कवि को देवेन्द्रों से नमित वह सिंहदेव—महावीर ज्ञान-दान प्रदान करें।। 1।।

---

(23) 3-4. अ 'पुट्ठि वंसु' नहीं है। 5. अ अदीपउ।

पुष्पिका- 1. अ भणिदं। 2. अ णिगंथ।

पुष्फिया

या साश्वेत विभूषणांग रुचिरा श्वेतांशुकैः शोभिता,
या पद्मासन-संस्थिता शुभ्रतमा जान प्रमोद प्रदा।
या वृन्दारुकवृन्दवन्दितपदा विद्वज्जनानां प्रिया।
सा मे काव्य-कथा-पथाश्रितवतो वाणी प्रसन्ना भवेत्।। 2।।

पुष्पिका— कवि द्वारा सरस्वती वंदन

जो सरस्वती श्वेताभूषण वाली है, जो महान् श्वेत वस्त्रों से सुशोभित है, जो पद्मासन से विराजमान है, शुभत्तमा है, शुभयान वाली है, जो समस्त जनों को हर्ष देने वाली है, जो याचक वृन्दों से वन्दित चरण वाली है, जो विद्वज्जनों की प्यारी है, वह सरस्वती काव्यकथा रूपी आश्रय करने वाले मुझ कवि सिंह की वाणी पर प्रसन्न होवे।।

बारहमी संधी

(1)

धुवकं— वरविविहाहरणालंकियइँ दिट्ठु विलासिणि सत्थें।
जइ मिसइ णाइँ रूविणिहे घरे सिय पइसइ परमत्थें।। छ।।

णीलुप्पल-दल-देह-समुज्जल सिहिगल-अलि-तमाल सम कुंतल।
छण-ससि-सम-मुह मुणि-मण-मोहण उडुगण-पह-दसणोह सुसोहण।
तं वहर-विंवीहल-सण्णिह सहहिं सवण सर हिंदोलय जह।
गल-कंदले रेहत्तउ केहउ रेहइ णं अवलगनहु(1) जेहउ।
पीणुण्णय-वक्खोज अणोवम कुंकुम-लित्त-कणय-कलसोवम।
दीसहिं णं णवमालइ मालउ वाहउ वेल्लह लउ [1]कुसुमालउ।
तिवली-वलउ ताहे किं सीसइ मयणरइउ-मग्गु तहिं दीसइ।
गंभीर णाहिहे को पावइ रइ-रमणइ आवासिउ णावइ।
खामोयरि कडि-पिहुल रवण्णिय अमरविलासिणि णं अवयण्णिय।
जणु वाहं अइ-करि-कर कारइ रंभा-थंभ-चलण सम सारइं।

बारहवीं सन्धि

(1)

रूपिणी-सौन्दर्य-वर्णन

धुवक— उस वटुक ने विविध श्रेष्ठ आभूषणों से अलंकृत तथा अन्य विलासिनियों के साथ रूपिणी को देखा और क्षुल्लक यति—के मायावी वेश में उसने परमार्थ से उस (रूपिणी) के भवन में प्रवेश किया।। छ।।

उस रूपिणी की देह नील-कमल के समान उज्ज्वल थी, कुन्तल मयूरकण्ठ, भ्रमर अथवा तमालवृक्ष के समान काले थे। उसका मुख मुनियों के भी मन को मोहने वाले पूर्णचन्द्र के समान था। उसकी दन्तावली तारागणों की प्रभा के समान सुशोभित थी। उसके अधर बिम्बाफल के समान रक्तवर्ण के थे। कान ऐसे शोभते थे जैसे सरोवर में हिंडोला ही पड़ा हो। ग्रीवा में रेखात्रय सुशोभित हो रही थी, मानों शंख का मुख ही शोभ रहा हो। कुमकुम से लिप्त कनककलश के समान उसके स्तन अत्यंत पीन, उन्नत एवं अनुपम थे। उसका वक्षस्थल नवीन मोतियों की माला से सुशोभित था। ऐसा प्रतीत होता था मानों उन्हें (उन मोतियों को) कामलता से ही लाया गया हो। त्रिवलि मण्डल उसके पेट में शोभता था। क्या बतावें वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों मदन द्वारा विरचित मार्ग की दिखा रहा हो? उसकी नाभि गम्भीर थी, उसके पार को कौन पा सकता था? वह ऐसी प्रतीत होती थी मानों वह कामदेव का आवास स्थान ही हो। उसका उदर एवं कटि-भाग अत्यन्त कृश थे तथा नितम्ब भाग अत्यन्त पृथुल। वह ऐसी लगती थी मानों स्वर्ग से अमर विलासिनी देवी ही अवतरी हो। उसके बाहु-युगल ऐरावत हाथी की सूँड के समान थे। केले के थम्भ के समान उसकी सुन्दर सारभूत जंघाएँ थीं। उसकी गुल्फें

---

(1) 1. अ सुकुमालउ। (1) (1) संखवत्।

गुंफहँ णरवइ मत्तायारहँ णह-दप्पणहँ ढिलि णिरु धारहँ।
कणय मयम्मि वरासणि ठंविय पज्जुण्णें णिय मायरि दिट्ठिय।

घत्ता - अवलोएवि सुट्ठु पहिट्ठउ चित्तें णवंतु पईसरइ।
जो पुज्जणीउ जसु सोवि तहो अवसु पणामु ण को करइ।। 212।।

(2)

सुर-किण्णर-णर णयणा-णंदिरे हिमहर-हास सरिस जिणमंदिरे।
अग्गासणे अवलाहिमि परिमिय रेहइ णं सासण-देवइ थिय।
वंभयारि अवलोएवि अहिमुहु जिणधम्माणंदइ उट्ठिवि लहु।
इच्छाकारु करिवि गुरु-भावइँ रयणत्तयहो-सुद्धि सब्भावइँ।
आउच्छिउ अण्णेण्णु पयंपिउ तुम्हहँ कुसलु विहिमि इय जंपिउ।
महुरालावणु किउ संभासणु रयण विणिम्मिउँ दिण्णु वरासणु।
उववइट्ठउ खुल्लय-वय-धारउ सच्चहे णाइँ अमंगल-गारउ।
आहासइ णिसुणिहि खामोयरि तित्थसयइँ वंदाविय मायरि।
तुम्हहँ धम्म-पसिद्धि सुणंतउ आविउ बहु-विह देस भमंतउ।

राजा को उन्मत्त बना देने वाली थीं। उसके नख दर्पण के समान अत्यन्त निर्मल धारा वाले थे। ऐसी अपनी माता—रूपिणी को उस क्षुल्लक वेशधारी प्रद्युम्न ने कनकमय उत्तम आसन पर बैठी देखा।

घत्ता— उस माता (रूपिणी) का भली-भाँति दर्शन कर वह (प्रद्युम्न) अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने अपने मन में उसे विनयपूर्वक नमस्कार कर उसके चरणों का (भावाभिभूत होकर) स्मरण किया। यथार्थतः ही जिसका यश शोभा-सम्पन्न (निष्कलंक) है, और जो पूजनीय है, अवश होकर उसे कौन प्रणाम नहीं करता?।। 212।।

(2)

व्रतधारी क्षुल्लक रूपिणी से उष्ण पेय-पदार्थ की याचना करता है।

देव, किन्नर एवं नरों के नयनों को आनन्दित करने वाले तथा हिमालय-निवासी—महादेव के हास के समान धवल जिनमन्दिर में अग्र आसन पर अबलाओं से घिरी हुई वह रूपिणी इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानों शासन देवी ही स्थित हो। सम्मुख आये हुए क्षुल्लक—ब्रह्मचारी को देखकर वह रूपिणी जिनधर्म के अनुराग से शीघ्र ही उठी। गुरुभाव से उसने उन्हें "इच्छाकार" किया, सद्भावनापूर्वक रत्नत्रय की शुद्धि पूछी। परस्पर में वार्त्तालाप किया और बोली—"तुम्हारी कुशल चाहती हूँ।" पुनः उसने मधुर वचनों से सम्भाषण किया और रत्नों से बना उत्तम आसन दिया। सत्यभामा द्वारा होने वाले अमंगल को दूर करने वाला व्रतधारी वह क्षुल्लक उस पर बैठ गया और बोला—"हे कृशोदरी मातः, सुनो, मैं सैकड़ों तीर्थों की वन्दना करता हुआ तुम्हारी धर्म की प्रसिद्धि सुनकर अनेक देशों में घूमता हुआ यहाँ आया हूँ।

घत्ता— दीहर-पह रीणउँ देवि सुणि छुहइ किलामिउ देहु महु।
वहुदव्व विमीसिय [1]पेयवर उण्ह सुअंध सुदेहि लहु।। 213।।

(3)

जेम होइ वउ मज्झु सइत्तउ — एम भणेवि हुववहु वि णिरुत्तउ।
थंभिउ सरेण [1]विसज्जा थावइँ — लच्छीहर-पियाइँ गुरु-भावइँ।
णिय लंजियहँ सत्थु आएसिउ — करहु रसोइ तुरिउ इय भासिउ।
सइँ पेरंति देवि सुवि [(1)]संठुल — जलइ-जलणु सिज्झंति ण तंदुल।
चवइ मयणु पुणु-पुणु सयवारउ — जाव ण वच्चइ जीउ महारउ।
देहि भोज्जु किर काइँ चिरावहि — किं कज्जेण ण वेउ करावहि।
इय णिसुणिवि भीसम-सुव कंपिय — मोयय वर अणेय तहो अप्पिय।
किण्हहो कारणेण जे रक्खिय — खुल्लएण ते वहुविह भक्खिय।
एक्कु जि दुज्जरु जो णिरु किण्हहो — खंडु वि सो परिणवइ ण अण्णहो।
अइआरु सेविण हुंकारइ — छुहइ ण मज्झु देहु साहारइ।

घत्ता— हे देवि, सुनो। मैं लम्बी यात्रा के कारण अत्यन्त थक गया हूँ। भूख के कारण मेरा शरीर किलमिला गया है। अतः (सर्वप्रथम) अनेक द्रव्यों से मिश्रित उत्तम, उष्ण एवं सुगन्धित कोई पेय-पदार्थ मुझे शीघ्र ही प्रदान करो—।। 213।।

(3)

कृष्ण के लिए सुरक्षित दुष्पाच्य विविध-मोदकों को क्षुल्लक खा जाता है, फिर भी उसकी भूख शान्त नहीं होती

"जो महौषधि के समान चित्त को प्रसन्न करने वाला हो।" इस प्रकार कहकर उसने अपनी तृषाग्नि को प्रकट किया। जब उस कामदेव—क्षुल्लक ने अपना कथन समाप्त किया। लक्ष्मीधर की प्रिया ने गुरुभाव से उसे उस विशिष्ट शैया पर बैठने को कहा तथा अपनी दासियों को तत्काल ही आदेश दिया कि तुरन्त ही रसोई तैयार करो।" इस प्रकार आदेश देकर भी वह देवी रूपिणी स्वयं भी व्याकुल होकर उन्हें प्रेरणा देने लगी। अग्नि तो जलने लगी, किन्तु तन्दुल सीझ ही नहीं रहे थे। इधर वह मदन सौ-सौ बार चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा कि "भूख के कारण प्राण निकले जा रहे हैं, अतः शीघ्र ही भोजन दो, देरी क्यों हो रही है? क्या कारण है कि शीघ्रता पूर्वक काम नहीं हो रहा है?" यह सुनकर भीष्म पुत्री वह रूपिणी काँप उठी। अतः उसने कृष्ण के लिए सुरक्षित अनेक प्रकार के ऐसे मोदक खाने के लिये दिये जिनमें से एक मोदक भी कृष्ण के लिए पचा पाना दुष्कर था। अन्य दूसरे को तो उसका एक कण भी पचा पाना असम्भव था। क्षुल्लक ने उन सभी मोदकों का भी भक्षण कर डाला और पुनः अत्यन्त क्रोधित होकर हुँकारता हुआ बोला—"मैं भूखा हूँ, मुझे स्वादिष्ट आहार क्यों नहीं देती हो?

---

(2) 1. ब 'सी।

(3) 1. अ. 'सविसज्जा'।

(3) (1) आकुलव्याकुल।

घत्ता— इय धम्म-परिक्ख करंतु थिउ जाम कुमरु णिय-मायहे।
भासिय सीमंधर-जिणवरइँ ताम ज भीसम-जायहे।। 214।।

(4)

ते सिरिहर समग्ग संजाया णं देविहे वद्धावउ जाया।
पूय-सत्थ जंपंतु णियच्छइ कुसुमि-फलिउ असोय-तरु पेच्छइ।
सुक्क वावि जल-भरिय सुहावण सिहि-कोइलहँ सद्द [1]वण रा[2]वण।
णव-वसंत सिय सरिसु सुरेहइ उववणु सवणु सविब्भमु सोहइ।
इय णिएवि जायवकुल-सामिणि चिंतइ सिसु-पहु लवइ गामिणि।
महो सुय आगमे जे मुणि अक्खिय चिण्ह सयल मइ-णिय-मणे लक्खिय।
संजाया संतोसुप्पायण.......... जे महंत वरसोक्खहँ भायण।
णियणंदणु पेछिमि पउ कत्थइँ किं खुल्लउ ण होइ परमत्थइँ।

घत्ता— खणे-खणे पुलइज्जइ मज्झु तणु खीरसवंति पयोहर।
दहदिम्मुहाइँ णिरु णिम्मलइँ मणे वट्टंति मणोहर।। 215।।

घत्ता— इस प्रकार धर्म की परीक्षा करता हुआ जब कुमार अपनी माता के पास बैठा था, तभी भीष्म पुत्री के मन में सीमन्धर जिनवर की बात प्रतिभाषित हुई।। 214।।

(4)

क्षुल्लक के आते ही प्राकृतिक आश्चर्य होने से रूपिणी को अपने पुत्र विषयक मुनिराज की भविष्यवाणी का स्मरण आ जाता है

श्रीधर (सीमन्धर) स्वामी ने जो कुछ भविष्यवाणी की थी वह सभी पूर्ण हो रही है। क्षुल्लक का आगमन मानों उस देवी रूपिणी के लिए वर्धापन ही था। पवित्र शास्त्र सम्बन्धी वार्त्ता करने की वह इच्छा कर ही रही थी कि उसी समय उसने कुसुमित अशोक वृक्ष देखा। सूखी वापी जल से भरकर सुहावनी देखी गयी। मयूर एवं कोयलों के शब्दों के माध्यम से वन को गाते हुए सुना।

नव-वसन्त श्री-शोभा के सदृश सुशोभित होने लगा। वन एवं उपवन विभ्रम सहित शोभने लगे। इन (आश्चर्यों) को देखकर यादवकुल की स्वामिनी, गजगामिनी रूपिणी अपने पुत्र के विषय में चिन्तन करने लगी कि "मेरे पुत्र के आने के जो-जो चिह्न मुनिराज ने कहे थे, मैंने अपने मन में वे समस्त चिह्न देख लिये हैं। वे चिह्न सन्तोष उत्पन्न करने वाले (सिद्ध) हुए हैं, जो महान् सुख के भाजन हैं। किन्तु, फिर भी, मैं अपने पुत्र को (यहाँ) कहीं भी नहीं देख रही हूँ। क्या कहीं यह क्षुल्लक ही तो परमार्थ से मेरा पुत्र नहीं है?"

घत्ता— "क्षण-क्षण में मेरा शरीर रोमाँचित हो जाता है, स्तनों से दूध चूने लगता है, दशों-दिशाओं के मुख अत्यन्त निर्मल एवं मुझे अपने मन में वे मनोरम लग रहे हैं। ।। 215।।

(4) 1. अ °न। 2. ब °ग।

(5)

अंगुब्भउ एउ मज्झु जे हूवउ विहिवसेण वीहत्थु वि रूवउ।
तो हरि हलहर मणु कह रंजमि सच्चहे मुहु पेछंति ण लज्जमि।
जो महुसूअणेण संजायउ सो संभवइ भुवणे विक्खायउ।
रूववंतु-बल-बुद्धि समिद्धउ पडु[1] पंडिउ सुकित्ति गुणरिद्धउ।
कित्तिउ किर वियप्पु मणि किज्जइ पुण्ण समाणु रूउ पाविज्जइ।
खेत्त गुणेण जंतु[2] जुइ मणहरु भोय-भूमि णउ एणउ[3] हरि खरु।
हवइ तित्थु किडि करिहु ण करिवरु लोयहे कहिउ मज्झु रणे दुद्धरु।
मेहकूडू णामें तहिं पुरवरु राणउ जमसंवरु विज्जाहरु।
कणयमाल णामेण वि तहो पिय रंभ-तिलोत्तम रूवइ णं सिय।
ताह भवणे वड्ढिउ णिट्ठिय दुहु विज्जाहिवइँ सामि छणससि सुहु।
पाविय सोलह-लब्भ सुहावण धीमंतहिं-णिभंत जे दावण।

घत्ता— रइवि विरूवउ णियय तणु चित्त सुद्धि मज्झु जि सुपरीक्खणु।
अवलोएवि किं सो जि मुहुं बुद्धिमंतु सुछइल्लु वियक्खणु।। 216।।

---

(5)

रूपिणी सोचती है कि क्या यह क्षुल्लक ही उसका पुत्र है जो अपना वेश बदल कर उसकी परीक्षा ले रहा है?

—"यदि यह मेरा पुत्र है तो भाग्यवश इसका ऐसा वीभत्स रूप कैसे हो गया और इसी कारण हरि, हलधर के मन को मैं कैसे प्रसन्न कर पाऊँगी? सत्यभामा के मुख को देखकर मैं लजाऊँगी नहीं? जो मधुसूदन से उत्पन्न हुआ है, उसकी भुवन में प्रसिद्धि निश्चित है। वह रूपवान होना चाहिए। बल-बुद्धि से समृद्ध होना चाहिए, चतुर पण्डित होना चाहिए और सुकीर्ति एवं गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए कितने ही विकल्प अपने मन में कीजिए किन्तु रूप तो पुण्य के समान ही मिलता है।"

"क्षेत्र के गुण से भोग-भूमि में यह जीव शरीर की कान्ति से मनोहर होता है। वहाँ रण में दुर्धर कहे जाने वाले मृग, सिंह एवं गधे नहीं होते। वहाँ किटि (शूकर), करि नहीं होते, करिवर भी नहीं होते।"

लोक के मध्य में मेघकूट नामका उत्तम पुर कहा गया है। वहाँ यमसंवर (कालसंवर) नामका विद्याधर राजा राज्य करता है। कनकमाला नामकी उसकी प्रिया है। मानों वह रूप में रम्भा, तिलोत्तमा से भी बढ़कर है। पूर्णचन्द्र के समान मुख वाला तथा दुःखों का नाश करने वाला मेरा वह पुत्र उस विद्याधिपों के स्वामी (कालसंवर) के घर में बढ़ा है। वहाँ उसने धीमानों द्वारा निर्भ्रान्त रूप से दिये जाने योग्य 16 सुहावने लाभ (उपलब्धियाँ) प्राप्त किये।

घत्ता— अपना शरीर विरूप बनाकर मेरी चित्तशुद्धि का भलीभाँति परीक्षण कर बुद्धिमान, सुचतुर, विद्वान् रूप क्या यही वह मेरा पुत्र है, जो मेरा मुख देख रहा है।"।। 216।।

---

(5) (1) पटुतः। (2) जीव। (3) हरिणादि अन्य प्रकार भवति।

(6)

इय चिंतिवि चिरु जंपइ राणिय पुत्त-विउय-सोय विद्दाणिय।
सुणि खुल्लय अचिरेण पयासहि जइ महु मणु विसुट्टु आहासहि।
कहहि कवणु कुलु जेत्थुप्पण्णउँ जणणि-जणणु तुं किं तउ कि[1]ण्णउँ।
इय णिसुणेवि जंपइ वइ-धारउ वयणु ण भासहि अविणय गारउ।
साहु-वयत्थ-सील गुण सहियहँ गुत्तित्तय-गुत्तहँ सुह महियहँ।
ताहँ गोत्तु-कुलु केण ण पुंछिउ पइँ कह एहु वयणु मणे इंछिउ।
जे संलग्ग मग्ग जिणसासणे णिट्ठुर अट्ठकम्म णिण्णासणे।
तेहिँ[2] हुंति कुल-गोत्त विवज्जिय इय जंपंति देवि किण लज्जिय।

घत्ता–– जइ किर गोत्तु विहीणु ता रूसेविणु किं करहि।
अइ जइ उत्तम वंसु ता तूसेविणु किं करहि।। 217।।

(7)

जइ अण्णाणइ पुच्छिउ एउ मइँ दुक्खाउरइ अहव तो तं पइँ।
खमियव्वउ असेसु णिम्मलमइ ता विहसेप्पिणु सो त्ति पयंपइ।

---

(6)

रूपिणी क्षुल्लक का परिचय पूछती है

इस प्रकार पुत्र-वियोग के शोक से व्याकुल वह रानी रूपिणी चिरकाल तक विचार करती हुई बोली—"हे क्षुल्लक, सुनो। यदि मेरे मन को भी अच्छा कहते हो तो शीघ्र ही प्रकट करो और कहो कि—कहाँ से आये हो, कौन सा तुम्हारा कुल है, जहाँ तुम उत्पन्न हुए हो। तुम्हारे माता-पिता कौन हैं और तुमने क्या तप किया है?"

ऐसा सुनकर वह व्रतधारी (क्षुल्लक) बोला—"अविनय एवं अहंकार भरे वचन मत बोलो। जो साधु-व्रत में स्थित हैं, जो शील-गुण सहित हैं, गुप्तित्रय से गुप्त एवं आत्म-सुख से महान् हैं, उनका गोत्र-कुल किसी से नहीं पूछा जाता। (आखिर) आपने ये वचन अपने मन में चाहे कैसे? जो जिनशासन में लगे हैं, उसी में मग्न हैं तथा अष्टकर्मों के नष्ट करने में कठोर हैं। वे कुल और गोत्र से रहित होते हैं। हे देवि, इस प्रकार पूछती हुई तुम लजाती क्यों नहीं?"

घत्ता— "यदि मैं गोत्र-विहीन हूँ तो रूसकर (मेरा) क्या (अनर्थ) करोगी अथवा यदि उत्तम वंश का भी होऊँ तो भी तुम सन्तुष्ट होकर क्या करोगी।" ।। 217।।

(7)

रूपिणी क्षुल्लक को अपना परिचय देती है

क्षुल्लक का कथन सुनकर वह रूपिणी बोली—"यदि अज्ञानता से दुखातुर हो मैंने आपसे इस प्रकार पूछ भी लिया है तो आप मुझे क्षमाकर दीजिए। आप तो पूर्ण रूप से निर्मल-मति वाले हैं। तब वह भिक्षु क्षुल्लक हँसकर

---

(6) 1. अ. ब. 'हिं। 2. अ 'कि"।

कहहि माइ किं दुक्खहो कारणु सज्जणाहँ जं हि[1]यय वियारणु।
एत्थंतरे सुकेय-सुय सरहस सा[2]चंदाणण जग पसरियस।
पुव्व पइज्ज सरेवि तुरंतिए मोक्कल्लिउ परियण विहसंतिए।
सो एंतउ अवलोयइउ सव्वहँ अवलायणहमि वियलिय गव्वहँ।
देविहिँ अंसु-पवाहु पमेल्लिउ भग्गु-च्छाह [3]मुट्ठु मणु डोल्लिउ।
णियवि चवइ जइ सुमहुर वयणइँ के कारणि णेण-जलोल्लिय नयणइँ।
कहइ चउब्भु पिय सुणि जइवर सील सहिय अइ दुद्धर वयधर।
गुरुहुं पुरउ णउ किंपि रहिज्जइ णिव्वेइय दुहु सयलु दलिज्जइ।
सच्चहाम णामें विज्जाहरि मज्झु जिरहिँ पिय पढम किसोयरि।

घत्ता— कुंडिलु भीसमु णाम पहु रिद्धिय सक्क समाणउ।
तहो तणिय धीय हउँ सुंदरहो जेः जगि उण्णय माणउ।। 218।।

(8)

णव-[(1)]परिणीय सच्च वण-भंतरे कण्हु वि कीला-वावि तडंतरे।

बोला—"हे माता, तुम्हारे दुःख का क्या कारण है? हृदय में विचार कर सज्जनों को कहना चाहिए।"

इसी बीच चन्द्रमा के समान मुख वाली तथा जगत् में यशस्विनी सुकेतुसुता (सत्यभामा) को उसी समय अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा का स्मरण कराया गया और हँसती हुई उसे परिजनों के साथ (रूपिणी के यहाँ) भेजा गया। उस (सत्यभामा) अहंकारिणी को अबलाजनों के साथ आती हुई देखकर रूपिणी देवी ने अश्रु-प्रवाह को छोड़ा, उसका उत्साह भंग हो गया, वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गयी। उसका मन डोल उठा। उसकी स्थिति देखकर वह यति (क्षुल्लक) सुमधुर वचनों से बोला—"क्या कारण है, जिससे नेत्र जल से आर्द्र हो रहे हैं? यह सुनकर चतुर्भुज-प्रिया बोली—"हे सुशील, अतिदुर्धर व्रतधारी, हे यतिवर, सुनो—गुरु के सामने कुछ भी छिपा नहीं रहना चाहिए। निर्वेद (वैराग्यसहित) होकर (मन की सभी व्यथा कहकर उस) दुख को दूर कर देना चाहिए। अतः सुनिए — (सम्मुख आ रही) यह सुकेतु-सुता—सत्यभामा नामकी विद्याधरी मेरे पति की प्रथम कृशोदरी पत्नी (अर्थात् मेरी सौत) है।"

घत्ता— और कुण्डलपुर में जगत में श्रेष्ठ, उन्नत, प्रतिष्ठित एवं रिद्धि में इन्द्र के समान भीष्म नामका राजा राज्य करता है। मैं उसी सुन्दर (भीष्म राजा) की रूपिणी नामकी पुत्री हूँ।"।। 218।।

(8)

(रूपिणी अपना परिचय देती है—) एक दिन कृष्ण ने रूपिणी को वनदेवी की तरह बैठाकर सत्यभामा को उसके दर्शन करने की प्रेरणा दी

—"कृष्ण ने भी वन के भीतर क्रीड़ा-वापी के तट के समीप नव-परिणीता रूपिणी और सत्यभामा के साथ क्रीड़ा-हेतु गमन किया। वहाँ मुझे वनदेवी के समान स्थापित कर स्वयं वे (कृष्ण) सघन, लता-मण्डप में लुक

---

(7) 1. ब पि। 2. ब. णं। 3. अ. सु। (8) (1) रुप्पिणि।

मइँ वणदेवयव्व परिमंडवि[2]	अप्पुणुल्हिक्कु वहल लय-मंडवि।
ता भमंति महएवि पराइय	विविहाहरण-वत्थ पविराइय[3]।
पेक्खिवि [4]ताएं वुत्तु हय देवय	महोपच्चक्ख हूव वर संपय।
णविवि-पयंपिउ महो परमेसरि	करहि [1]झत्ति सो अणुरत्तउ हरि।
पारंभिय वहु गत्त पवित्तिहिं	करहि विरत्तु णवल्ल सवत्तिहिं।
हरि हसंतु ता कह-कह सद्दइँ	वोल्लइ किं-किं ताल विमद्दइँ।
सच्चएँ बोल्लिउ कुवि[5]यएँ तामहि	एहु पवंचु करहि तुहुँ जामहि।

घत्ता— इह किं वोल्लमि धिट्ठ [2]कवडु-कूड दुवियड्ढमई।
गोवहु कहि किर बुद्धि जं उवहसहि सयाइँ [6]सइँ[3]।। 219।।

(9)

विण्णिवि इट्ठ भोय भुंजंतहि	जा वत्थहिं णिय पहु रंजंतहिं।
एक्कहिं दिणे सगव्व वर वयणहँ	किय पयज्ज पेछंतहँ मयणहँ।
जा[1]सु पुत्तु पढमु जि परिणेसइ	सो चलणइँ तहे चिहुर मलेसइ।
तो संजाय विहिमि सुव मणहर	णियकुल णह-मंडण ससि-दिणयर।

(छिप) गये। उसी समय विविध आभरणों एवं वस्त्रों से विराजित वह महादेवी—सत्यभामा घूमती-घामती हुई वहाँ आयी और (वनदेवी के रूप में विराजित) मुझे देखकर बोली—"हे सम्पत्ति शालिनी देवी, प्रत्यक्ष होकर मेरे लिये दर्शन दो। पुन: नमस्कार कर बोली, हे परमेश्वरी मुझ पर शीघ्र ही कृपा करो। जिससे हरि—कृष्ण मुझ पर अनुरक्त हो जावें, प्रारम्भ में तो वे अति पवित्र गात्र वाली मुझ से प्रेम करते थे किन्तु अब नवेली सौत (रूपिणी) ने मुझसे उन्हें विरक्त कर दिया है।" (सत्यभामा की यह मनौती सुनकर पास में ही छिपे हुए) कृष्ण बुरी तरह कह-कहे लगा कर तथा कभी-कभी ताल पीटते हुए "क्या-कहा", क्या-कहा, कह कर बोल उठे। तभी सत्यभामा कुपित होकर बोली, "तुम ऐसा भी प्रपंच करते हो?"

घत्ता— "हे धृष्ट, हे कपट कूट, हे दुर्विदग्धमते, मैं यहाँ क्या बोलूँ? तेरी बुद्धि गोप के समान है, जो सदा ही सत्पुरुषों का उपहास करती रहती है।" ।। 219।।

(9)

रूपिणी क्षुल्लक से कहती है कि भानुकर्ण के विवाह के समय मेरा सिर-मुण्डन होने वाला है

दोनों ही रानियाँ इष्ट भोग-भोगती हुई अपनी जितनी भी अवस्थाएँ हो सकती हैं उनसे प्रभु को आनन्दित कर रही थीं। एक दिन मदन—कृष्ण को देखते-देखते उन दोनों ने अहंकार भरी वाणी में प्रतिज्ञा की कि "जिसका पुत्र पहिले परिणय करेगा वह अपने चरणों से दूसरी के केशों को मलेगी (रौंदेगी)।" (इस प्रतिज्ञा के कुछ समय बाद) उन दोनों रानियों के मनोहर एक-एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दोनों ही पुत्र अपने कुल रूपी आकाश

(8) 1. अ. निरहि। 2-3. अ. सातवें घत्ते के ही तीन चरण यहाँ दे दिये हैं।

(8) (2) स्थापयित्वा। (3) संयुक्तं। (4) सत्यभामया। (5) कोपवतया। (6) सत्पुरुषाणां।

(9) (1) यस्य:

भाणु-कण्णु वड्ढइ णिय-मंदिरे पुण्णाहिए जण णयणाणंदिरे।
मज्झु तणउ केणवि अवहरियउ ण वियाणउ खलविहिँ कहि धरियउ।
एवहि सच्चंगउ परिणेसइ दुज्जोहणु णिय सुय तहो देसइ।
उअहिमाल णामें विक्खाइय साणु[1]राय सा एत्थु पराइय।
महो सिरु भद्दु णत्थि सुविसेसु वि एत्थ पलोयहि-लोउ असेसु वि।

घत्ता— इय अहिमाणउ मज्झु जिउ जाइ सउछ होवि किर जामहिँ।
संवोहिय जं णारएण पुत्तासाएँ सुक्खि[2]य तामहिँ।। 220।।

(10)

तहो आगमणे चिण्ह जे भासिय सीमंधर-जिणेण उवएसिय।
ते संजाय सयल जग दुल्लह णिसुणि भिक्ख वुहयण जण-वल्लह।
अज्जु सिसो वासरु दिहि गारउ जेण मिलेसइ पुत्तु महारउ।
भंति ण होइ जिणेसर वयणहँ हउँ णिद्दइव सुणिय मणे-णयणहँ।
इय जंपिवि सोयाउर वयणइँ सजलोल्लिइँ थिय मउलेवि णयणइँ।

के मण्डन के लिए चन्द्र-सूर्य के समान थे। पुण्य का प्रतापी भानुकर्ण (सत्यभामा का पुत्र तो) लोगों के नेत्रों को आनन्दित करने वाले अपने राजमहल में बढ़ने लगा। किन्तु मेरे (रूपिणी के) पुत्र को किसी ने अपहृत कर लिया। न जाने, खल-विधि ने उसे कैसे धर पकड़ा?" अब सत्यभामा का पुत्र—भानुकर्ण परणेगा। दुर्योधन उसे अपनी पुत्री देगा, जो उदधिमाला के नाम से विख्यात है। वह अनुराग सहित यहाँ पहुँचने ही वाली है। विशेष रूप से अब मेरे सिर का कल्याण नहीं है। अर्थात् अब मेरे सिर का मुण्डन होगा और सभी लोग उसे देखेंगे।

घत्ता— "इस प्रकार उस सौत (सत्यभामा) के अभिमान से (ग्रसित) मेरा जीवन व्यतीत हो रहा था। उसी समय नारद ने आकर मुझे सम्बोधित किया और तभी से मैं पुत्र मिलन की आशा से सुरक्षित बची हुई हूँ (और किसी भी क्षण अपने पुत्र के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी हुई हूँ)।" ।। 220।।

(10)

शोकातुर रूपिणी को आश्वस्त कर क्षुल्लक उसकी मायामयी प्रतिमूर्ति बनवाता है

—"सीमन्धर जिन ने अपने उपदेश में उस पुत्र के आगमन सम्बन्धी जो-जो चिह्न बतलाये थे, वे सभी चिह्न पूरे हो गये हैं। जग-दुर्लभ तथा बुधजनों के वल्लभ हे भिक्षु, सुनो---आज पुत्र-मिलन का दिन है, जिसके अनुसार धृतिवाला गुरु (महान्) एवं वीर्यवान् पुत्र मिलेगा। जिनेश्वर के वचनों में भ्रान्ति (सन्देह) नहीं है, और तभी से नींद मेरे मन एवं नेत्रों के अधीन हो गयी है, अर्थात् मैं तभी से सो नहीं पायी हूँ।" इसप्रकार शोकातुर वचन कहकर वह अपने सजल नेत्रों को मुकुलित कर चुप हो गयी। उसे देखकर वह भिक्षु अति सुमधुर वचनों

(9) 1. ज ण। 2. अ सुक्खिय।

चवइ भिक्खु अइ सुमहुर-वयणइँ　　　मा रोवहि सुमाइ लुहि णयणइँ।
लेहि सलिलु पक्खालहि सिरि[(1)]मुहु　　　किं तुज्झु जि हउँ होमि ण तणुरुहु।
इय साहारवि विज्जा-थामइँ　　　मायारूविणि णिम्मिय कामइँ।
दिव्वासणे उववेसिय तोसइ　　　थिउ णियडिउ सइँ कंचुइ वेसइ।

घत्ता— ताम परायउ सयलु जणु णवण करंतु संतु आहासइ।
　　सामिणि सरहि[(2)] पइज्ज तुहु मायारूविणि ताहँ पयासइ।। 221।।

(11)

अलिउल सरिस हेलु अलयाउलि　　　संतहँ वयणु चलेइ ण महियलि।
इय णिसुणेवि चित्त [1]साणंदइँ　　　जंपइ णाविउ सुमहुर सद्दइँ।
मज्झु दोसु एक्कुवि णउ सामिणि　　　णिसुणहि किण्ह णरसेर भामिणि।
अलयावलि णिय कर संजोइवि　　　मणिमउ-थालु तुरिउ तहिँ ढोइवि।
छेयइ केसंगुलि णिय लेयइँ　　　णासा-वंसु लुणिउँ अण्णाणइँ।
अवलायणु असेसु लहु भद्दिउ　　　सच्चहि णाहँ मडप्फरु मद्दिउ।

से बोला—"हे माता, रोओ मत, अपने आँसू पोंछ डालो, जल लेकर अपना मुख धो लो, क्या मैं ही तुम्हारा पुत्र नहीं हूँ।"

इस प्रकार कहकर उस भिक्षु ने अपनी विद्या को बुलाकर इच्छानुसार रूपिणी की एक मायामयी प्रतिमूर्ति बनवाई, सन्तोषपूर्वक उसे दिव्यासन पर बैठाया और स्वयं कंचुकी के वेश में उसके निकट बैठ गया।

घत्ता— उसी समय (सत्यभामा के) सभी लोग रूपिणी के यहाँ पहुँचे और नमस्कार कर बोले—"हे स्वामिनी, आप अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कीजिए।" तब उस मायामयी रूपिणी ने उन्हें कहा"।। 221।।

(11)

सत्यभामा का नापित रानी रूपिणी के केश-कर्त्तन के स्थान पर अपनी तथा साथ में आयी हुई समस्त महिलाओं की नाक, अँगुलियाँ एवं केश काट लेता है

—"मेरे अलिकुल समान काले केश ले लो। महीतल में सज्जनों के वचनों का कोई मूल्य नहीं। यह सुनकर चित्त में आनन्दित होकर नापित सुमधुर शब्दों में बोला—"कृष्ण नरेश्वर की भामिनी, हे स्वामिनी, सुनो, इसमें मेरा एक भी दोष नहीं।" (यह कहकर उसने उस रूपिणी की) अलकावलि (—केशकलाप) को अपने हाथ से सँजोकर तुरन्त ही उसके नीचे एक मणिमय थाल वहाँ रख दिया। पुनः जब वह नापित केशों को छेदने (काटने) के लिए तत्पर हुआ तभी उसने अज्ञानतावश स्वयं अपने केश, अँगुली एवं नाक ही काट डाली (इतना ही नहीं सत्यभामा की ओर से आया हुआ) सम्पूर्ण अबलाजन भी तत्काल ही नापित के समान भद्दे शरीर वाली हो गयी। ऐसा प्रतीत होता था, मानों इस रूप में सत्यभामा का मान ही मर्दित कर दिया गया हो। तभी क्षुल्लक के प्रपंच

---

(10) (1) श्रीमुखम्। (2) स्मरि।

(11) 1. अ 'अ।

परियत्तियउ सयलु ता परियणु अमुणंतउ पवंचु विंभिय मणु।
जंपइ अण्णोण्णु जि किं सीसइँ भीसम-सुय पयाउ कहो दीसइँ।
सुमहुर-वयण सुरूव वि एहिय णिम्मच्छर रूविणि तिय जेहिय।
दीसइ भुवणे ण एम चवंतिहिं सच्चहरसु गयहँ विहसंतिहिं।

घत्ता— आहासहिं सुणि देवि सच्चवयणि रूविणि सम।
जगे एहउ माहप्पु दीसइ णउ एही खम।। 222।।

(12)

लेहि अलय अचिरेण समप्पिय ताव सच्च कोवेण प[1]कंपिय।
विगुत्तउ केणवि जुवईयणु केसंगुलिय सवण-घाणि[(1)] वि भणु।
रे णाविय तुज्झु जि किं छय[(2)]हउ ता सयलहंमि पहप्प[(3)]रु जोइउ।
णिय सिरु सकरग्गइ परिमट्ठउ[(4)] लज्जाउरु अवलायणु णट्ठउ।
णाविउ वि णिय तणु पच्छायवि चवइ विलक्खउ णियडउ आय[2]वि।
सुणि सामिणि संतोसइँ आयउ एउ वित्तंतु ण अम्हहँ णायउ।

को जाने बिना ही आश्चर्यचकित मन होकर सत्यभामा के सभी परिजन (रूपी के भवन से) वापिस लौटने लगे। वे लोग परस्पर में कहने लगे कि भीष्म-सुता (—रूपिणी) के शीश का कैसा प्रताप दिखायी देता है? वह रूपिणी जिस प्रकार सुमधुर-वाणी बोलती है, इस संसार में जैसी सुन्दर है तथा जैसी निर्मत्सरा है, वैसी पृथिवी-मण्डल पर अन्य महिला दिखायी नहीं देती।" इस प्रकार कहकर हँसते हुए वे सत्यभामा के भवन में जा पहुँचे।

घत्ता— और उससे बोले—"हे देवि, सत्यवादिनी उस रूपिणी के समान जगत् में अन्य दूसरी कोई समर्थ महिषी दिखाई नहीं देती।" ।। 222।।

(12)

सत्यभामा विरूपाकृति वाले अपने सभी परिजनों को कृष्ण के सम्मुख भेजकर रूपिणी की शिकायत करती है

पुनः बोले—"ये केश लो।" यह कहकर उन्हें शीघ्र ही उसे समर्पित कर दिया। तब सत्यभामा क्रोध से काँपती हुई बोली—"कहो कि युवतिजनों को किसने विरूप कर दिया है? उनके केश अँगुलियाँ, कान एवं नाक किसने काटे हैं? और रे नापित, तुझे किसने छेद दिया? यह सुनकर सभी ने परस्पर में एक-दूसरे को देखा तथा सभी ने अपने-अपने सिर को अपनी अँगुलियों से छुआ। (और सभी को अपनी सही दशा का ज्ञान होते ही) लज्जा से दुःखी होकर अबलाजन वहाँ से अदृश्य हो गयीं। नापित भी अपने शरीर को ढाँक कर बिलखता हुआ सत्यभामा के निकट आकर बोला—"हे स्वामिनी, सुनो। हम लोग तो (अपनी विरूप स्थिति को जाने बिना ही) यहाँ सन्तोषपूर्वक आये हैं। यह वृत्तान्त (इस दशा को) हमने रूपिणी-भवन में नहीं जाना था।" सत्यभामा के मन

---

(12) 1. ब. पं। 2. अ. पा।

(12) (1) नासिका। (2) छेदित। (3) परस्पर। (4) परिमत।

पुणु सच्चहे मच्छरु उप्पण्णउ तासु वराय[3]हि मणु कोवण्णउ।
जेत्थु सक्खि हलहर-वसुएउ वि दस-दसार बहु जायव लोउ वि।
पेसिय णिय महल्ल अत्थाणहो विविह-णरिंदहिं रइय पमाणहो।

घत्ता — ते जंपहिं पणवे[4]वि पय चाणूरारिणि सुणि सब्भावइँ।
णिरु विविच्छ किय सच्चहिमि णउ मण्णइँ रूविणि तुह गावइँ।। 223।।

(13)

जइ णिय अलय ण देइ णरेसर तो लंजियहँ सत्थु परमेसर।
काइँ विडं[1]विउ णिरु आहासहि पुव्व-वयणु किं अलिउ पयासहि।
तं णिसुणेवि सीराउह जंपिउ मरु हउ पत्तुव कोवइँ कंपिउ।
इय एहउ वित्तंतु विलक्खिउ केण[(1)]वि भीसम-तणयहि अक्खिउ।
जिंव तियसिंदु सयलु संताविउ विविहावत्थु पत्तु जह णाविउ।
जिम सच्चएँ आहासिउ कण्हहो हलि मच्छरहो चडिउ अइमण्णहो।
णिय अंगुब्भउ पेक्खिवि तुट्ठिय अइसय आणंदेण पहिट्ठिय।

में पुन: मत्सर (ईर्ष्या भाव) उत्पन्न हो गया। अत: मन में क्रोध से भरकर उसने उस वराक (दीन) नापित को, विरूप की गयी अबलाजनों के साथ वहाँ भेजा, जहाँ साक्षी रूप हलधर एवं वासुदेव बैठे थे। साथ ही दश-दशार राजा तथा अनेक यादव लोग उपस्थित थे। ऐसे अनेक राजाओं द्वारा रचित अपने प्रामाणिक महान् आस्थान (राजसभा) में भेजा।

घत्ता— उन समस्त अबलाजनों ने कृष्ण के चरणों में प्रणाम कर कहा—"हे चाणूरारि कृष्ण, सद्भाव पूर्वक सुनिए। रूपिणी ने हमें सचमुच ही वीभत्स बना दिया है। वह आपकी आज्ञा नहीं मानती।" ।। 223।।

(13)

रूपिणी को प्रतिभासित होता है कि क्षुल्लक के वेश में उसका पुत्र उसके सम्मुख उपस्थित हो गया है

(पुन: सत्यभामा ने उन्हें अपने सन्देश में कहलाया कि) —"हे नरेश्वर यदि वह रूपिणी अपने केश न देती तो न देती किन्तु हे परमेश्वर, इन दासियों (अबलाजनों) के साथ ऐसा भण्डन (भद्दापन) क्यों किया? अब आप ही कहिए—कि क्या मेरे पूर्व वचन झूठे थे?"

उनकी बातों को सुनकर वायु-प्रेरित पत्ते के समान काँपता हुआ सीरायुध (बलदेव-हलधर) अपने में कुछ-कुछ बड़बड़ाने लगा। इस प्रकार यह वृत्तान्त देखकर किसी ने भीष्म-पुत्री—रूपिणी को जाकर (चुपके से वह सब कुछ) कह दिया कि किस प्रकार रूपिणी ने सत्यभामा की समस्त अबलाजनों को सन्ताप दिया था, किस प्रकार नापित विविध दु:स्थिति को प्राप्त हुआ था तथा किस प्रकार सत्यभामा ने श्रीकृष्ण को यह सब सुनाया था और तब हलधर को किस प्रकार मत्सर सहित अतिक्रोध चढ़ गया था।

और इधर रूपिणी निज पुत्र को देखकर सन्तुष्ट हुई वह अत्यधिक आनन्द से हर्षित हो उठी। जो कंचनमाला

(12) 3. ब. पइज्जहे। 4. अ. वंत।

(13) 1. ब. विभंडिउ।

(13) (1) कंन्पुल्पेग।

वड्ढिउ जो कंचणमालहे घरे जे सिसुत्तें णिज्जिय णिहिलवि अरि।
सोलह-लब्भ जेण णिरु पाविय विज्जाहर-पहु सेव कराविय।

घत्ता— सो एहु जु[2] सुअणाणंदयरु किर णारेण समउ आवेसइ।
अइ पुण्णाहिउ भुवणयले जो महो देहहो पुलउ जणेसइ।। 224।।

(14)

कहिं-कहिं अण्णु होहि णउ तुहुं [1]सुव सुरकरि-कर परिहग्गल सम भुव।
खेडहो किम अवसरु एउ जुज्जइँ परिहउ णिय-जणणिहि केडिज्जइँ।
इय णिसुणेवि कयंज हत्थइँ चविउ तुज्झु सुउ हउं परमत्थइँ।
मेहकूडे पुरवरे णिवसंतउ आविउ जइणा समउ तुरंतउ।
मायामउ सुरूउ छंडेविणु सहज रूउ तणु पयडु करेविणु।
छण-दिण-ससि समाण वर वयणइँ किउ पणामु णिय-जणणिहे मयणइँ।
इलहे सउत्तमंगु आरोविवि जणणिए णिय सुव रूउ पलोइवि।
सिरु चुंबिवि अवरुंडिउ सुहयरु भणु णिय सुउ कहो होइ ण दिहियरु।
पुणु संवरहो घरिणि पपोसि[2]य धण्ण सत्तुव[3]सि सुकील पलोइय।

के घर में वृद्धि को प्राप्त हुआ था, जिस पुत्र ने अपने तेज से समस्त शत्रुओं को जीत लिया है, जिसने विधिवत् 16 प्रकार के लाभ प्राप्त किये हैं, तथा विद्याधर प्रभु जिसकी निरन्तर सेवा करते रहते हैं।

घत्ता— और जिसे नारद के साथ आना था, सो सुजनों के नेत्रों को आनन्दित यही वह मेरा पुत्र प्रतीत होता है। भुवनतल में यही वह पुण्यात्मा है, जो मेरी देह को पुलकित कर रहा है। ।। 224।।

(14)

क्षुल्लक अपनी चिर-वियोगिनी माता रूपिणी के दुःख से व्यथित होकर अपना यथार्थ रूप प्रकट कर देता है और उसे माँ कहकर साष्टांग प्रणाम करता है

ऐरावत की सूँड के समान अथवा परिघ (अर्गल) के समान, भुजा वाले हे सुत, तुम (मेरे पुत्र के सिवाय) अन्य नहीं हो सकते। क्या खेट (माया-जाल) के लिए यही एक उपयुक्त अवसर है? तब अपनी माता का परिभव-तिरस्कार दूर करो।" यह सुनकर कमल के समान हाथों वाले उस क्षुल्लक ने कहा—"मैं परमार्थ से आपका ही पुत्र हूँ। मेघकूटपुर में निवास करता हुआ मैं यति नारद के साथ तुरन्त ही आया हूँ।" (यह कहकर उसने अपने) मायामयी रूप को छोड़कर स्वाभाविक रूपवाला शरीर प्रकट किया और पूर्ण सूर्य एवं चन्द्र के समान उस मदन ने उत्तम वचनों से अपनी माता को प्रणाम किया। पुनः भूमि में (माता के चरणों में) अपने उत्तमांग को टेक दिया। तब माता ने अपने पुत्र का रूप देखा। उसका सिर-चूमकर स्पर्श आलिंगन किया। कहिए कि शुभकारी अपना पुत्र किसको धृतिकर (आनन्ददायक) नहीं होता (सहज स्नेह सिक्त माता के मुख से निकल गया कि) —"मैं धन्य हूँ, जिसने राजा कालसंवर की पत्नी द्वारा पोषित तथा शत्रु को वश में करने वाले अपने पुत्र को उत्तम क्रीड़ा करते हुए देखा।"

(13) 2. अ ×।
(14) 1. अ सु। 2. ब पोमाइय। 3. अ. अ।

घत्ता— मइंमि उवरे णवमास धरिउ पुत्त गुरु दुक्खइँ।
बालत्तु वि णउ दिट्ठु णयणहँ हुवइ ण सोक्खइँ।। 225।।

(15)

णिय मायरिहिं वयणु णिसुणेविणु पडिजंपइ मणसिउ विहसेविणु।
सुणि सुमाइ जइणिय मणे इंच्छिहि दक्खालमि सिसु-कील णियच्छहि।
एउ वित्तंतु वि किं तुव दुल्लहु आहासेवि एम जग वल्लहु।
थिउ दिणमेक्क मेत्तु विरयवि तणु णं उवयायलत्थु मय-लंछणु।
पुणु मासद्धमास कय संखइँ भीसम सुय पहिट्ठ-मण पेक्खइँ।
संवच्छरहँ सु अद्ध पमाणिउँ णिम्मिउ वउ कलहो समाणिउँ।
णियलीलइँ रंगेविणु थक्कइ ईसीसु विहसेवि मुहुँ वंकइ।
संवच्छरेण खलंतु पवोल्लइ उट्ठइ पडइ सुकंपइ चल्लइ।
जणणिहि-करि अवलंबिवि धावइ जह-जह मयणु सिसुत्तणु दावइ।
तह-तह खणे मणे रोमंचिज्जइ रूविणि णं अमियइँ सिंचिज्जइ।

घत्ता— (पुन: वह बोली) —"मैंने तो तुझे बड़े दु:खों के साथ नव मास तक अपने उदर में रखा। फिर भी हे पुत्र, मैंने तेरा बालपना नहीं देखा और मेरे नेत्रों को सुख नहीं हो पाया।"।। 225।।

(15)

माता रूपिणी की इच्छापूर्त्ति हेतु वह अपने विद्या-बल से शिशुरूप धारण कर विविध बाल्य-लीलाओं से उसका मनोरंजन करता है

अपनी माता के वचन सुनकर मनसिज—प्रद्युम्न हँस कर बोला—"हे माता, सुनो। यदि आपके मन में इच्छा है तो मैं आपकी इच्छानुसार ही शिशु-क्रीड़ाएँ दिखा दूँगा। क्या ये सब आपके लिए दुर्लभ हैं? इस प्रकार कहकर जग-दुर्लभ वह प्रद्युम्न मात्र एक दिन का (तत्काल का) शरीर बनाकर ठहरा। उस समय वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों चन्द्रमा ही उदयाचल से उदित हो गया हो। पुन: उसने 15 दिन का, फिर 1 मास का, इस प्रकार संख्यात रूप बनाये और भीष्मसुता — रूपिणी उन्हें देख-देख कर मन में हर्षित होती रही। फिर उसने छह महीना का, फिर 12 महीने प्रमाण वाला कलधौत (सुवर्ण) के समान रूप बनाया। अपनी बाल्य-लीलाओं से रेंगते-रेंगते रंजायमान करते-करते वह थकता नहीं था। ईषत्-ईषत् हँसता हुआ वह अपना मुख बाँका (टेढ़ा) कर लेता था। वर्ष भर का होकर तोतली बोली बोलने लगा और (बार-बार) उठता, पड़ता था, काँपता था, चलता था। कभी माता का हाथ पकड़ कर दौड़ता था और इस प्रकार जैसा-जैसा शिशुपना होता है वैसा-वैसा ही उस मदन ने भी कर दिखाया। जैसे-जैसे वह क्रीड़ाएँ— करता था वैसे-वैसे ही क्षण-क्षण में वह रूपिणी भी अपने में ऐसी रोमांचित होती रहती थी, मानों अमृत से सींची जा रही हो।

घत्ता— धाविवि रच्छहे जाइ वलइ धूलि-धूसर तणु।
कं[1]पेवि ज[2]मे वि थाइ उल्हावइ मायहे मणु।। 226।।

(16)

आहासइ आहारु समप्पहिं दिंतु ण लेइ चवइ पुणु अप्पहि।
मम्मण-वयण अणेय पयासइ सुमहुर सवण सुहावण भासइ।
इयविंभिउ पयडंतु अउव्वु वि हुउ जुवाणु मणहरु गुण[1] भव्वु वि।
वड्ढइ बीय मयंकुव जेहउ विविहाहरण-विहूसिय देहउ।
जो अणंगु महियले जाणिज्जइ तहो उवमाणु कउणु किर दिज्जइ।
अइ अच्चरिउ सुवहो पेक्खेविणु गुरु आणंदें अवरुंडेविणु।
उववेसिउ आणे मयरद्धउ तासु सरह भुवणतउ विद्धउ।
सुह-दुह संभासणु वि परोप्परु दिट्ठ[(1)]उ सुवउ जुण्णु हुतउ चिरु।
णि[(2)]च्चेयंतइँ इय वच्छहिं ता किंकर-गणु एंतु णियच्छहिं।

घत्ता— मुक्क विरुद्धइँ हलहरेण उक्खयर वग्ग समग्ग णिएविणु।
णिय जणणिए समाणु रइरमणु वि जंपइ विहसेविणु।। 227।।

घत्ता— (कभी-कभी वह) रथ्या (गली) में भाग जाता था और वहाँ से धूलि-धूसरित शरीर होकर लौटता था। काँपता हुआ पैर जमा-जमा कर खड़ा रहता था और अपनी माता के मन को उल्लसित करता रहता था।। 226।।

(16)

हलधर क्रुद्ध होकर क्षुल्लक के विरोध में अपने खेचर-सेवक भेजता है

(वह शिशु कभी—) बोलता था —"खाने को दे।" किन्तु जब वह देती तब लेता नहीं था और पुन: माँगता था। अनेक विध मधुर श्रवण-सुखद एवं मार्मिक वचन बोलता था। इस प्रकार अपूर्व विस्मयकारी रूप प्रकट करता हुआ वह गुणवान भव्य मनोहर युवक हो गया। विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित देह वाला वह युवक (प्रद्युम्न) उसी प्रकार वृद्धिंगत होने लगा, जिस प्रकार द्वितीया का चन्द्रमा। जो युवक महीतल में अनंग के नाम से जाना जाता था, अब उसकी उपमा और (उससे भी श्रेष्ठ) किस वस्तु से दी जाय? —पुत्र के ऐसे आश्चर्यजनक कार्यों को देखकर वह आनन्दातिरेक से भर उठी। जिसकी शोभा से भुवनत्रय बिंधा हुआ था ऐसे उस मकरध्वज — पुत्र को गले से लगाकर उसने उसे आसन पर बैठाया तथा जो कुछ चिरकाल से देखा, सुना एवं अनुभव किया था उन सुखों-दुखों का परस्पर में सम्भाषण करने लगे। इस प्रकार वत्स से वार्तालाप कर जब वह निश्चिन्त हो रही थी तभी उसने (हलधर के) किंकरगणों को आते हुए देखा।

घत्ता— हलधर ने उस रूपिणी के विरोध में समग्र खचर वर्ग के सेवकों को छोड़ा। उनको देखकर अपनी माता के साथ वह रतिरमण (प्रद्युम्न) हँस कर बोला। ।। 227।।

---

(15) 1. अ. कंठे। 2. अ लग्गे।

(16) 1. अ लगु।

(16) (1) दृष्टं श्रुतं अनुभूतं। (2) परस्पर कथयन्ती पूर्व वृत्तान्तं।

(17)

माइ-माइ मा किं जंपहि तुहुँ खणु एक्कुवि पवंचु पेच्छिहि महु।
इय भासेवि सविज्ज आएसिय जा संवरहो सेण्णेचिरु पेसिय।
तेण वि दियहो रूउ लहु लेविणु भुव जुवलु वि किस चलण करेप्पिणु।
थूलोयरु सिरु चिहुर विहीणउँ कंपंतु वि सव्वंगहँ खीणउँ।
दुक्खहँ अवणीयले पउ दिंतउ उवरह पब्भारेण समंतउ।
सच्चहरम्मि होंतु णीसरियउ वेवंतु वि खलंतु किं तुरियउ।
रूविणि धवलहरम्मि दुव्वारइ पडिउ दडत्ति ण तणु साहारइ।
थंभेविणु वि धरिउ किंकरगणु एक्कु पणट्ठु[1] तेण[(1)] णिविसें पुणु।
कहइ देव दिउ दुव्वल-कायउ वारे पडिउच्छइ सुट्ठु वरायउ।
घत्ता— सो पइसारु ण देइ सामिय भणु किं किज्जइ।
जो तुम्हहँ मणे जुत्तु सो आएसु पहु दिज्जइ।। 228।।

(18)

भिच्चु वयणु सुणि कुविउ हलहरो देह दित्ति जिय सरय जलहरो।

---

(17)

क्षुल्लक अपनी विद्या के बल से क्षीणकाय द्विज का रूप धारणकर रूपिणी के दरवाजे पर गिर पड़ता है

—"माँ-माँ तू कुछ मत बोल। क्षण भर में मेरा प्रपंच तो देख।" यह कहकर उसने अपनी उस विद्या को आदेश दिया, जो कि चिरकाल पूर्व कालसंवर की सेना को (पराजित करने हेतु) भेजी थी। उसने भी शीघ्र ही द्विज का रूप धारण कर लिया। उसने अपनी भुजायुगल एवं चरणों को अत्यन्त कृश बनाया, पेट को मोटा बना लिया, सिर को केश रहित बनाया, इस प्रकार समस्त अंगों से क्षीण होने के कारण वह द्विज काँप रहा था। वह बड़े ही दु:ख के साथ पृथिवी पर पैर रख पाता था। उदर के भार से वह सभी प्रकार से दु:खी था। वह (क्षीण काय द्विज) काँपता हुआ, लड़खड़ाता हुआ, तुरन्त ही सत्यभामा के घर से निकला और रूपिणी के धवल गृह के द्वार पर अपने शरीर को न संभाल पाने के कारण धम्म से गिर पड़ा। किंकरगणों ने थाँभ करके उस द्विज को पकड़ा पुन: एक किंकर निमिष मात्र में वहाँ से भागकर गया और कहने लगा—"दुर्बल काय वाला दीन-हीन बेचारा कोई द्विज द्वार पर गिरा पड़ा है।"

घत्ता— "वह (किंकरों को) प्रवेश नहीं करने देता है। अत: हे स्वामिन्, कहिए क्या किया जाय? हे प्रभु, आपके मन में जो युक्ति हो उसी के अनुसार हमें आदेश दीजिए। ।। 228।।

(18)

हलधर क्षीणकाय विप्र (प्रद्युम्न) पर क्रोधित हो उठता है

अपनी देह की कान्ति से शरद ऋतु के मेघ को जीत लेने वाला हलधर भृत्य के वचन सुनकर अत्यन्त

---

(17) 1. अ. खणद्धु।

(17) (1) ब. नअटतेन।

गउ सवेउ अवलोइउ दिउ भणहि विप्प तुहुँ एक्कु किं थिउ।
मुवहि मग्गु णिसुणहिं तुरंतउ महुमि कज्जु छइ इह महंतउ।
भणइ ताव मायामउ दिउ अज्जु भोज्जु णिय इच्छए किउ।
सच्च-सुवहे परिणयण कारणं जिमिउ तत्थ णाणा पयारणं।
णिय सुहेण हउँ एत्थु [1]सुत्तउ जाहि ताय वलि मइँ पउत्तउ।
विप्प-वयणु सुणि कोह जुत्तउ चवइ रामु ता णीससंतउ।
एरिसं पि जिमियं पि दुहयरं होइ कस्स कहि विप्प सुहयरं।

घत्ता — [1]लउलिमत्तु गुण अत्थि जाइ सहावइँ दियवरहँ।
जइ-तह णउ दीसेइ अण्ण गिद्धि[2] इयरहँ णरहँ।। 229।।

(19)

इय चिंता[1]ए कज्जु किं अम्हहु देहि मग्गु उट्ठहि दियवर लहु।
णिसुणंतु वि महो वयणु ण मण्णहिं रे पाविट्ठ काइँ अवगण्णहिं।
महोमि कज्जु छइ किं इह मंदिरे गच्छमि केम धिट्ठ तुज्झोवरे।

क्रोधित हो उठा। वह शीघ्र ही चला और उस द्विज को देखा और बोला—"हे विप्र, तू अकेला क्यों पड़ा है? मेरी बात सुन और तुरन्त ही मार्ग छोड़। यहाँ मेरा बहुत बड़ा कार्य है।"

तब मायामयी वह द्विज बोला—"आज मैंने सत्यभामा के पुत्र (भानुकर्ण) के परिणयण के कारण उसके यहाँ अपनी इच्छानुसार नाना प्रकार का भोजन जीमा है और इसी कारण अब हे तात, अपने सुख-विश्राम के लिये वहाँ से चलकर आया हूँ और सो रहा हूँ। विप्र के ये वचन सुनकर वह राम—हलधर क्रोधित हो उठा और निश्वास छोड़ता हुआ बोला—"ऐसा जिमाया हुआ भी (यदि किसी को) दुःखकर होता है, तो हे विप्र कहो कि सुखकर (भोजन) कौन सा होता है?" (पुनः गरजकर बोला—)

घत्ता — मात्र लोलुपता ही तो द्विजवरों का स्वाभाविक गुण होता है। उनमें जिस प्रकार की गृद्धि होती है, वैसी अन्य मनुष्यों में दिखायी नहीं देती।" ।। 229।।

(19)

हलधर उस द्विज के पैर पकड़कर खींच ले जाता है, किन्तु नगर के बाहर पहुँचकर वह आश्चर्यचकित हो जाता है क्योंकि उसके हाथों में द्विज के केवल पैर मात्र ही थे, शरीर के अन्य अंग नहीं

—"किन्तु इस भव-भोजन की चिन्ता से हमें क्या प्रयोजन? हे द्विजवर जल्दी उठो और मार्ग दो।" (—अरे यह क्या—) सुनता हुआ भी मेरा आदेश नहीं मानता? रे पापिष्ठ, तिरस्कार क्यों कर रहा है? इस भवन में मेरा एक बड़ा महत्वपूर्ण कार्य है, किन्तु हे धृष्ट, तेरे ऊपर से मैं कैसे जाऊँ?" तब वह द्विज जग-निष्ठुर उस

---

(18) 1. अ. सुत्तउ।

(18) (1) लोलित (2) लम्पट-गुण

(19) (1) भवभोजन चिंतया।

ता दिउ चवइ राम जग णिट्ठुरु तुह सण्णिह के केण वि गय चिरु।
जाणंतु वि गव्विउ णिय-रिद्धिएँ देक्कारहि दिउ गहिउ कुबुद्धिएँ।
मुहिएण वि आरूसहि किं तुहुँ अत्थि समत्थु किंपि देवें[2] महु।
सुणिवि एम सीराउहु कुद्धउ णं दिक्करिए[3] णयहो[4] विरुद्धउ।
कड्ढिउ चलणें धरेवि समत्थइँ जाइ पाउ सरिसउ हल स[1]त्थइँ।
णिउ[2] पुरवाहिरम्मि णिविसिद्धइँ वलिवि पलोइउ पुणु रोसद्धइँ।

घत्ता— अवलोइवि तणु ठाइँ णियवि चलणु णिय करयले।
मुक्कु दडत्ति करेवि विंभिउ अइ णियमणे हलि।। 230।।

(20)

जाणेवि कौ वि एहु मायारउ एत्तहिं चवइ उच्छु-धणु धारउ।
कहहि माइ भुवणयले वरंगउ कवणु एहु अइरोस-वसंगउ।
संतोसेण रूव[1] तहो अक्खइ णिय वलेण जइ[2] किंपि ण लेक्खइ।
पंचाणण सिंहु समरु समिच्छइ अवरु किंपि अणुदिणु णउ वंछइ।

राम (बलदेव) से बोला—"चिरकाल से ही तेरे समान अन्य कौन-कौन इस संसार से नहीं चले गये। यह जानते हुए भी तुम अपनी ऋद्धि पर गर्व करते हो और एक द्विज को अपनी कुबुद्धि से "ललकारा" देकर सम्बोधित करते हो? तुम मुझ पर इस प्रकार रुष्ट क्यों हो रहे हो? क्या तुमने मेरी कोई सामर्थ्य देखी है? द्विज का यह कथन सुनकर हलायुध (और भी) क्रुद्ध हुआ मानों दिक्करी (हाथी) ही मृग के विरुद्ध हो गया हो। उसने (उस द्विज के) चरणों को पकड़कर पूर्ण शक्ति के साथ काढ़ा—खींचा। तब उस द्विज के केवल पैर ही हलधर के हाथों से खिंचते हुए चले जाते हैं। जब वह (हलधर) नगर के बाहर जाकर घूमकर रोषपूर्वक उसकी ओर देखता है तो—

घत्ता— उस (द्विज) के शरीर को वहीं (रूपिणी के द्वार पर) स्थिर देखकर पुनः अपने हाथ में (उसके केवल) चरण देखकर, तब हलधर अपने मन में अत्यन्त विस्मित हुआ और धड़ाम से उन्हें वहीं पटक दिया। क्योंकि—।। 230।।

(20)

प्रद्युम्न पंचानन — सिंह का रूप धारणकर हलधर को पुनः विस्मित कर देता है

हलधर ने जान लिया कि "यह तो कोई मायाचारी प्राणी है।" और इधर, इक्षु-धनुषधारी वह मदन बोलने लगा। उसने अपनी माता से पूछा कि हे मातः, भुवनतल में उत्तम शरीर वाला, अतिरोष वंशगत यह कौन है, जो अपने बल के कारण जगत् में किसी को कुछ भी नहीं समझता?" (पुत्र का कथन सुनकर—) रूपिणी ने सन्तोषपूर्वक उसे बलदेव का स्वरूप बताते हुए कहा—"यह हलधर पंचानन—सिंह से प्रतिदिन युद्ध की कामना किया करता है; अन्य कुछ नहीं चाहता।

---

(19) 1. अ. ह : 2. ब. णि।

(19) (2) दत्तं समर्थं। (3) त्रिषये। (4) पण वधकः सिंहः।

(20) (1) बलभद्रस्य स्वरूपं। (2) जगत्रये।

महुमहणहो एउ जेट्ठु सहोयरु तुव पित्तियउ वि मा मण्णहिं परु।
जणणि-वयणु सुणि रोमंचिउ सरु पल्लट्टिउ खणेण णिय वउ वरु।
थिउ पंचाणणु होवि वलुद्धरु दिग्गय जणियउ [1]भउ अइ दुद्धरु।
वाल-मयंक वंक दाढालउ कविल-केस कंधरु जडिलालउ।
लोयण सिहि-फुलिंग इव दारुणु दीह-जीह णिरु णह-रुहिरारुणु।
सिरु वलइय सपुंछ रुजंतउ चवुल चलणु [2]दह दिहिहिं[3] णियंतउ।
घत्ता— [4]हलि अवलोइय तत्थ पंचाणणु दारुण णयणु।
कमु विरएविणु थक्कु भासुरु विप्फारिय वयणु।। 231।।

(21)

णिएवि मयारि पयंडु खणेण वलेण विचिंतिय-चित्त[(1)] रणेण।
तुरंतु पढुक्कु अहीमुहु तस्स टलंति गिरीवर रुंजइ जस्स।
वरीय सुहत्थु[(2)] करग्गु वि लेवि असिव्व सुवा[(3)]सहु जाम मिलेवि।
हलीपहणेइ महीयले चंडु विरुद्धु मयारि[(4)]वि ताम पयंडु।

मधुमथन कृष्ण का यह ज्येष्ठ सहोदर बन्धु है। तुम्हारा भी यह पितृव्य (चाचा) लगता है। इसे पर (दूसरा) मत समझो। जब माता के ये वचन सुने तो वह स्मर (प्रद्युम्न) रोमांचित हो उठा। उसने क्षण भर में ही अपना उत्तम रूप पलट लिया और विद्या-बल से वह महान् सिंह बनकर स्थिर हो गया। अति दुर्धर वह दिग्गजों को भी भय उत्पन्न करने लगा।

वह पंचानन बालचन्द्र के समान वक्र दाढ़ों वाला था, उसके केश कपिल तथा कन्धर, जटिल जटाओं से युक्त था। उसके लोचन अग्नि के स्फुलिंग के समान दारुण थे। जिह्वा दीर्घ तथा नख रुधिर के समान अत्यन्त लाल थे। सिर को घुमा-घुमा कर विशाल पूँछ वाला वह सिंह चपल-चरणों से दशों दिशाओं की ओर देखता हुआ जा रहा था।

घत्ता— हलधर ने दारुणनेत्र वाले, भास्वर एवं विशालकाय पंचानन सिंह को देखा कि वह चलते-चलते रुक गया है।। 231।।

(21)

पंचानन हलधर को परास्त कर राजमहल में फेंक देता है

बलदेव ने उसी क्षण प्रचण्ड सिंह को देख अपने मन में उसके रण का विचार किया। जिसकी रूंज (गर्जना) से पहाड़ भी टलटला जाते हैं, ऐसा वह (बलदेव) तुरन्त ही उस पंचानन—सिंह के सन्मुख जा पहुँचा। उत्तम श्रेष्ठ वस्त्र को कमर में लपेट कर महीतल में प्रचण्ड वह हलधर असि की तरह छुरिका को जब उस सिंह पर छोड़ता है और प्रहार करता है तब वह मृगारि भी उसके विरुद्ध प्रचण्ड रूप से बिगड़ जाता है। दोनों ही चलते

---

(20) 1. अ. ब 'भए'। 2-3. अ दहदिहिं। 4. अ. 'हअलत्नोइय'।

(21) (1) रैसवसेण पठे। (2) वरीउत्तरासणेण। (3) छुरिका। (4) सिंहअपि।

चलंति वलंति खलंति वि बेवि पवच्चहिं गच्छहिं धाय मुएवि।
विरुद्ध भिडंति दडंति पडंति ससंति रसंति पुणो वि भिडंति।
रएवि महाहउ एम रउद्दु किउ वलएवहो माण विमद्दु
हणेवि तलप्फइ पाडिउ तत्थ वरासणे संठिउ महुमहु जत्थ।

घत्ता— अत्थाणंतरे थक्कु[5] वलु सुकिलामिय[6] गत्तउ।
णिय मायरिहे समीउ रइरमणु वि संपत्तउ[7]।। 232।।

(22)

इय सीरिहे किउ माण-विमद्दणु वल[1]-विक्कमेण सरिसु णिय णंदणु।
अवलोएवि देवि आहासइ मज्झु सहोयरु काइँ ण दीसइ।
णिसुणि तणय महो मण साहारउ सो भणु कहिं अच्छइ रिसि णारउ।
कहइ मयणु मइ सरिसु पराइउ खेयरपुर होंतउ इह आयउ।
तुव सुण्णहंए समाणु गयणंगणे मइमि धरिउ मा मुज्झ[1]हि णियमणे।
भीसम-सुव पुणरवि आहासइ तुव विवाहु कहि हुउ इय भासइ।

हैं, हटते हैं, स्खलित होते हैं। धाड़ मारकर पुकारते हैं, पीछे जाते हैं। एक-दूसरे के विरुद्ध क्रुद्ध होकर भिड़ते हैं, डाँटते हैं, पड़ जाते हैं, दीर्घ श्वास लेते हैं, गर्जना करते हैं और फिर भिड़ जाते हैं। इस प्रकार पंचानन ने रौद्र महायुद्ध किया और बलदेव का मान-मर्दन कर डाला। पंचानन ने उस तड़फते हुए बलदेव को वहाँ फेंक दिया जहाँ मधुमथन—कृष्ण वरासन पर विराजमान थे।

घत्ता— उधर, आस्थान (राजभवन) में पहुँचे हुए बलदेव का शरीर किलबिला रहा था और इधर, (पंचानन वेशधारी—) वह रतिरमण—प्रद्युम्न अपनी माता के पास पहुँचा।। 232।।

(22)

रूपिणी के पूछने पर प्रद्युम्न ने बताया कि नारद एवं पुत्र-वधू ऊपर नभोयान में रुके हुए हैं

इस प्रकार सीरपाणि—बलदेव के मान-मर्दन किये जाने पर अपने पुत्र-प्रद्युम्न को बलदेव के समान पराक्रमी देखकर माता—देवी रूपिणी बोली—"मेरा सहोदर भाई नारद क्यों नहीं दिखाई दे रहा है?" हे पुत्र, सुनो, मेरा मन सम्हालो और बताओ कि ऋषि नारद कहाँ है? तब मदन ने कहा—"मेरे साथ ही ऋषि नारद यहाँ पधारे हैं। वे विद्याधरपुर होते हुए यहाँ आये हैं। तुम्हारी स्नुषा (बहू) के साथ गगनांगण में ही उन्हें रोक दिया है। तुम अपने मन को मूर्च्छित मत करो। यह सुनकर भीष्मपुत्री पुन: बोली—"बोल, तेरा विवाह कहाँ, कब हुआ है?" तब स्मर बोला—"हे परमेश्वरि सुनो, दुर्योधन की पुत्री उदधिकुमारी के साथ, जिसका विवाह भानुकर्ण

---

(21) (5) प्राप्तः। (6) खेदखिन्नगात्र। (7) संप्राप्तः।

(22) 1. अ र।

(22) (1) निज्मानसे मामूर्छिता।

ता जंपइ सरु सुणि परमेसरि जा लग्गिहइ ण किर भाणुहि-करि।
दुज्जोहण-सुय एंति[(2)] वणंतरे हणेवि सेण्णु अवहरिय खणंतरे।

घत्ता— ता रूविणिएँ पवुत्तु अइ सउच्छु[(3)] मज्झु वि मणु।
दावहि तुरिउ अणंग कहिं ससुण्ह कहिं भाइ मणु।। 233।।

(23)

ता पडिवयणु पयंपिउ मयणइँ कि लविएण माइ इय वयणइँ।
दुद्धर-सर-घोरणि संघट्टहिं जा ण भिडिउ हय-गय-रह-थट्टहिं।
णिय-वलेण भड विंदु वि जगडमि पुणु पच्छइ अप्पाणउँ पयडमि।
णं तो किं जंपंतु पवुच्चमि पिउ-पियरहँ [1]सयलहँ वि [2]ण परुच्चमि।
चवइ रूवि[(1)] करि जं तुह जुज्जइ पर रणउह-रहर कोवि ण पुज्जइ।
वसुएवहो हरि-वलहँ दसारहँ पंडव-भोयइँ रणे अणिवारहँ।
आहासिउ मुणि मणहमि सल्लइँ[(2)] को पहरइ समाणु जगे मल्लइँ।
मा सलहहि अइ दुद्धमु भडयणु मज्झु मणहो णावइँ महिलायणु।
णेमिकुमारु एक्कु मिल्लेविणु एंतु समग्गइँ पर चल्लेविणु।

(सत्यभामा पुत्र) के साथ निश्चय ही अब कभी भी नहीं हो सकेगा। क्योंकि विवाहार्थ वह उदधिकुमारी जब वन में लायी जा रही थी, उसी समय मैंने दुर्योधन की सेना को मारकर उस कन्या का अपहरण कर लिया था।
घत्ता— तब रूपिणी ने कहा — "मेरा मन अत्यन्त उत्साहित हो गया है। अतः हे अनंग, अब तुम तुरन्त ही मुझे दिखाओ कि कहाँ है वह मेरी पुत्रवधू एवं कहाँ है मेरा वह भाई (नारद)?"।। 233।।

(23)

प्रद्युम्न के पराक्रम से रूपिणी अत्यन्त प्रभावित होकर प्रमुदित मन से आशीर्वाद देती है

तब मदन ने प्रत्युत्तर में कहा—"हे मातः, इस प्रकार के कथन से क्या प्रयोजन? भले ही मेरे पास हय, गज, रथों का समूह नहीं, फिर भी यह दुर्धर-स्मर (प्रद्युम्न) अकेला ही घनघोर रण में टकराता हुआ जा भिड़ता है। अपने बल से (पहले) भट वृन्दों को उजाड़ डालूँ तब पीछे अपने को प्रकट करूँ। नहीं तो, पिता, पितामह एवं स्वजनों आदि से मैं क्या कह कर, परिचय देकर बोलूँगा? तब रूपिणी बोली—"बस बेटा, जो तुझे रुचे वही कर (मैं आगे नहीं बोलूँगी), परन्तु (इतना कह देती हूँ कि) यादव बल (सेना) किसी के द्वारा नहीं पूजा जायगा (अर्थात् वह तेरे बराबर नहीं होगा) चाहे वे रण में अनिवार वसुदेव हों, हरि हों, बलदेव हों, दशार राजा हों, पाण्डव हों या भोजक राजा। यह सुनकर मुनियों के मन में भी शल्य उत्पन्न कर देने वाले उस प्रद्युम्न ने कहा—"जगत में पराक्रमी मुझ पर कौन प्रहार कर सकता है? अत्यन्त दुर्दम समझे जाने वाले भटों की भी मेरे सामने प्रशंसा मत करो। मेरी दृष्टि में तो वे सभी मानों महिला जनों के समान ही हैं। एकमात्र नेमिकुमार को छोड़कर अन्य सभी आकर मुझे पीठ दिखाकर चलते बनते हैं।

---

(23) 1-2. अ. सयणहिँमि।

(22) (2) आगच्छन्ती। (3) उत्कंठि।
(23) (1) रुक्मिणी। (2) कामेन।

घत्ता— आवहि मइंमि समाणु करि पसाउ परमेसरि।
जहिं स-सुण्ह तुव भाइ दावमि तुरिउ णहंतरे।। 234।।

(24)

एम भणेवि कर-कमलि धरेविणु　　णिग्गउ सरु णिय भवणु मुएविणु।
गउ सुपंडु चंडु तेत्थु वि लहु　　जहिं अत्थाणे परिट्ठिउ महुमहु।
आहासइ सुणि किण्ह-हलाउह　　जायव-भोयय[1] पयंड सुवहो सह।
अवर वि जे दुद्धर बलवंतवि　　मंडलीय वर-भड सामंतवि।
पच्चारिय असेस आयण्णहुँ　　जइ छलु कुलु बलु णियमणे मण्णहुँ।
ता किं ण सयल तुरिउ कुढि लग्गहो　　णिय-णिय पहरण लेविणु वग्गहो।
मइँ अवहरिय णियहु भीसम-सुय　　अइ-सुसील वेल्लहल-सरल भुव।
चेईवइ[2] वराउ णिहणेविणु　　छले णवेवि थिय घरे आवेविणु।
सव्वहँ रणे भोयण धणि[3] देविणु　　पुणु पच्छइँ परिसक्कमि लेविणु।
हउँ खगेंदु एत्थहो णउ चल्लमि　　जा ण सयल तुम्हइँ रणे पेल्लमि।

घत्ता— हे परमेश्वरि, कृपाकर मेरे साथ वहाँ आइये, जहाँ आपकी पुत्र-वधू के साथ आपका भाई स्थित है। आकाश के मध्य मैं तुरन्त ही उन्हें दिखाता हूँ। ।। 234।।

(24)

मायामयी रूपिणी को हथेली पर रखकर प्रद्युम्न, कृष्ण एवं उनके दरबारियों को चुनौती देता है, कि यदि वे पराक्रमी हों तो उस अपहृत महिला को उससे वापिस लें

ऐसा कहकर वह स्मर (प्रद्युम्न) उस (मायामयी कृत्रिम) रूपिणी को अपने कर-कमलों पर धरकर अपने भवन से निकला और शीघ्र ही वहाँ गया जहाँ राजसभा में मधुमथन के साथ प्रचण्ड पाण्डव बैठे थे। उन्हें देखकर वह स्मर बोला--"सुनो, हे कृष्ण, हे हलायुध, हे यादवगण, प्रचण्ड पुत्रों के साथ उपस्थित हे भोजक गण, और भी जो दुर्धर बलवान माण्डलिक उत्तम भट सामन्त यहाँ बैठे हों, मैं उन सभी को पुकार-पुकार कर कहता हूँ कि यदि आप लोग अपने मन में मेरे छल अथवा कुल का बल मानते हों तो क्यों नहीं आप सभी लोग तुरन्त ही अपने-अपने प्रहरणास्त्रों को लेकर मेरे पीछे लग जाते हैं? क्योंकि मैंने अति सुशील, सुकुमार एवं सरल भुजाओं वाली भीष्म-पुत्री रूपिणी का स्वयं अपहरण कर लिया है। जब रूपिणी के यहाँ उसका मंगेतर चेदिपति नरेश स्थित था, तब आपने छल से उस (रूपिणी) के घर जाकर उस बेचारे (चेदिपति) का छलपूर्वक वध कर दिया था। उस समय रण में सबको भोजन-धन देकर तत्पश्चात् बड़ी कठिनाई से आप उसका अपहरण कर भाग पाये थे। किन्तु, मैं तो खगेन्द्र हूँ। मैं यहाँ से तब तक नहीं टलूँगा, जब तक कि मैं तुम सबको रण में नहीं पेल डालूँगा।

---

(24) (1) भोजवंशजादि। (2) शिशुपाल। (3) ऋद्धि।

घत्ता— इय आयण्णिवि सयल वाडवग्गि जिह पज्जलिय।
णं जुवं ते (4)पक्खुहियवि सव्वत्थ वि सयलवि चलिम।। 235।।

(25)

हलहरु कोवाणले पज्जलियउ पलय-पयंग समुव संचल्लियउ।
ता गंडस्स[1] जीय संजुत्तउ उट्ठिउ सुट्ठु पच्छु गज्जंतउ।
भीमु भयंकरु लउडि विहत्थउ धम्मु-सुवहो णिय णाविय मत्थउ।
सहएउ वि असिफर संजुत्तउ णउलु वि कोंतु कलंतु तुरंतउ।
अवसर समग्ग सुहड सुपयंडवि णिग्गय णं पमत्त वेयंडवि।
को वि णियइ णिय भुव-भीसावण जे रिउ णरवर-मण भेसावण।
कुवि आयरिसइ णिय धणु-हर गुणु रेहइ णं सेंदाउहु णव-घणु।
कोविर णर सवस कुंचउ ण गिण्हइ पुलइय-वउ पहिरिउ रणे मण्णइँ।
कोवि आरुहिउ झत्ति करि-कंधरे णिय-मणु दिंतु महाहवे दुद्धरे।
केणवि णिय तणु ताणु लएविणु मुक्कु पईवउ मणि चिंतेविणु।
एहु पुणु अंगरक्खु लोहिट्ठुवि मइं पहु कज्जे दिण्णु वउ सट्ठुवि।

घत्ता— यह सुनकर (राज्यसभा में स्थित) सभी की क्रोधाग्नि उसी प्रकार भड़क उठी, जिस प्रकार कि वाडवाग्नि। अथवा मानों (ग्रीष्मकालीन) मध्याह्न का सूर्य क्षुब्ध हो उठा हो और (उससे प्रभावित होकर) समस्त (चल-अचल) पदार्थ चंचल हो उठे हों। ।। 235।।

(25)

रणभूमि के लिये प्रयाण की तैयारी

हलधर कोपानल से प्रज्ज्वलित हो उठा और प्रलयकालीन सूर्य के समान वहाँ से उठकर चल पड़ा। उसके पीछे गर्जना करता हुआ गाण्डीव-धनुष की ज्या सहित अर्जुन तैयार होकर उठा, लकुटि (गदा) हाथ में लेकर भयंकर भीम ने धर्मराज युधिष्ठिर को माथा नवाया। सहदेव भी स्फुरायमान असि लेकर और कल-कल करते हुए कौन्त को लेकर नकुल भी तुरन्त ही वहाँ से निकला। उस समय सभी प्रचण्ड भट इस प्रकार निकल पड़े मानों प्रमत्त हस्ति-समूह ही निकल पड़ा हो। किसी ने अपनी भीषण डरावनी भुजाओं की ओर देखा जो कि पराक्रमी शत्रुजनों के मन को भी डरा देने वाली थीं। कोई धनुर्धर अपने धनुष की डोरी को खींच रहा था। वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों इन्द्र-धनुष वाला नवीन मेघ ही हो। कोई भी (नरश्रेष्ठ) अपने वश में न था। यद्यपि किसी ने कवच धारण नहीं किया था, फिर भी पुलकित वदन होने के कारण वे अपने को कवच धारण किया हुआ जैसा मान रहे थे। कोई दुर्धर महायुद्ध में अपने मन को लगाये हुए तत्काल ही हाथी के कन्धे पर सवार हुआ और किसी ने अपने शरीर पर त्राण (ढाल) लेकर मन में यह विचार कर प्रतीप (उल्टा) छोड़ा कि—"लौह का बना हुआ यह अंगरक्षक मेरे प्रभु के प्रयोजन को भलीभाँति पूर्ण करेगा।"

---

(24) (4) क्षोभित।

(25) 1. अ.ब. 'स्स।

घत्ता— इय एक्केक्केण पहाण परिधावहिं भड समरे किर।
तो तहिं केव चवंति मा वच्चहु भो थाहु किर।। 236।।

(26)

कोवि अजउ भडुयउ समरंगणे परियाणहुँ मा मुज्झहो णियमणे।
इयरु हरइ किं किण्हहो भामिणि रूविणि-सिसु पहल गइ-गामिणि।
ता रणभेरि तुरिउ अप्फालिय णं सुहडहँ भवित्ति संचालिय।
अइरोसद्ध [1]वीर परि सक्किय जे संगाम-साएहिं आसंकिय।
अद्धक्किय सकज्ज मेल्लेविणु गयरायंगणम्मि वच्चेविणु।
धीर-पयंड-चयंड रण-[2]भर धर[3] सेल्ल-भुसंढि-खग्ग-पहरण किर।
केवि कुमार कुद्ध संचल्लिय पग-भारेण वसुंधर डोल्लिय।
केहिमि कवउ भडहिं णियउरे किउ अहिणव-रण-रसेण कुद्दिवि गउ।
हणु-हणु-हणु णरवर जपंतिवि णिग्गय पुरहँ पउलि पेल्लंतिवि।

घत्ता— सव्वर तूर सय दिण्ण सज्जिय रहवर गय तुरया।
मिलिय णरिंद असेस पवणुद्धय महाधया।। 237।।

घत्ता— इस प्रकार निश्चयपूर्वक एक-एक करके जब प्रधान भट समर की ओर दौड़ने लगे, तभी वहाँ कोई-कोई कहने लगे "मत जाओ हे भाई, रुक जाओ? ।। 236।।

(26)

रणभूमि के लिये प्रयाण की तैयारी, हवा में महाध्वज अँगड़ाइयाँ लेने लगा

कोई अजय भट समरांगण में (प्रतिपक्ष से) बोला— "(अपने को) पहिचान। अपने मन में मोहित मत हो। कृष्ण की पहिली भामिनी गजगामिनी रूपिणी का अपहरण रूपिणी-शिशु (प्रद्युम्न) को छोड़कर अन्य कोई कैसे कर सकता है?" तभी तुरन्त ही रणभेरी बज उठी। उसने मानों सुभटों की भावनाओं को ही संचालित (चंचल) कर दिया।

अनेक वीर शक्तिशाली तथा जो संग्राम के स्वाद में शंका रहित थे वे अत्यन्त रोष से भरकर अपने-अपने निजी कार्यों को अधूरा ही छोड़कर (उलटे भड़काने वालों से) रणांगण में बचकर चल दिये। रण में दुर्द्धर प्रतापी, धीर, प्रचण्ड कोई कुमार सेल, भुसुण्डि, खड्ग, प्रहरण, धारण कर क्रोधपूर्वक चले, जिनके पद-भार से पृथिवी डोल उठी। किन्हीं भटों ने निज वक्ष पर कवच धारण किया और वे अभिनव-रण के रस से कूदते, उछलते चले। वे नरवर "हनो, हनो, हनो" चिल्लाते हुए तथा प्रतोली (द्वार) को पेलते हुए नगर के बाहर निकले।

घत्ता— सैकड़ों प्रकार के सभी बाजे बज उठे, श्रेष्ठ, रथ, हाथी, घोड़े सजाये गये। सभी नरेन्द्र परस्पर में मिले और पवन में महाध्वज अँगड़ाइयाँ लेने लगा।। 237।।

---

(26) 1. अ. °धी। 2-3. अ. दुद्धर।

(27)

मय-जलेण रेल्लाविउ महियलु   उवरि वलग्ग जोह कय कलयलु।
[1]धंधुवंत[2] पवणइँ पेल्लिय घण   संचल्लिय गय घड जुज्झण मण।
हरि खुर खोणि खणंत पधाइय   हिलिहिलंत भुवणयले ण माइय।
पंच-वण्ण वर-धयहिं पसाहिय(1)   दिव्व-महारह रहियहि(2) वाहिय।
ता रउद्दु रणवरु पवज्जिउ   णं अयक्कुइ(3) जलणिहिं गज्जिउ।
विज्जाहर सविमाणु सुणहयले   चल्लिउ चाउरंगु-बलु महियले।
ता दुनिमित्त समुट्ठिय अंतरे   णं चवंति मालग्गहु रणभरे।
रसइ-रिट्ठु सिव फिक्कारइ गिरु   णडइ कवंधु वि विक्खोलइ करु।
कुहिणि छेउ पयडइ फण जंतहँ   गिद्ध-पंति थिय णरवइ छत्तहँ।

घत्ता— इय अणिमित्त महंत हरि विरुद्ध अवगण्णइं।
अइ वेहविय चित्तु भणु जयम्मि को मण्णइँ।। 238।।

(27)

रण-प्रयाण के समय होने वाले अपशकुनों से हरि-कृष्ण का चित्त विह्वल हो उठा

हाथियों ने मदजल से पृथ्वीतल में रेला (प्रवाह) कर दिया। योद्धागण कल-कल करके ऊपर उछलने लगे। जूझने की मन वाली, हाथियों की घटा इस प्रकार चली मानों प्रलयकारी झंझावात के द्वारा पेले गये काले मेघ ही हों। खुरों से पृथ्वी को खोदते हुए तथा हिलहिलाते हुए घोड़े इस प्रकार चले कि वे भुवनतल में समा नहीं रहे थे। रथवाहकों द्वारा उत्तम पंचरंगी ध्वजाओं से मण्डित दिव्य महारथ तैयार किया गया। रौद्र रणतूर बजा, मानों अकस्मात् ही समुद्र गरज उठा हो। विद्याधरगण आकाशमार्ग से अपनी चतुरंग सेना सहित महीतल की ओर चल पड़े। उस आकाश एवं महीतल के मध्य वह विद्याधर-समूह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों द्युमणि-सूर्य ही हो और जो मानों उन्हें कह रहा हो कि रण के झमेले में क्या पड़ रहे हो? कौवे काँव-काँव शब्द कर रहे थे, शिवा (शृगाली) लगातार फिक्कार रही थी और कबन्ध (धड़) हाथ फैला-फैला कर नाच रहे थे। जाते हुए कुहनी के छेदों से व्रण प्रकट होने लगे और नरपतियों के छत्रों पर गृद्ध पंक्ति बैठने लगी।

घत्ता— इस प्रकार हरि—कृष्ण के विरुद्ध अनेक अनिमित्त—अपशकुन माने गये। जिनसे चित्त अत्यन्त विह्वल हो उठे। कहिए, कि संसार में कौन किसको क्या समझता है?।। 238।।

(27) 1-2. अ. गं जुमंत।

(27) (1) मंडिय। (2) रथवाहैः। (3) अकस्मात्।

(28)

एत्तहिँ कुसुम-सरेण तुरंतइँ   रयणंगणे जाएवि विहसंतइँ।
मुणिप्पय पुरइं-मुक्कलहु मायरि   पणवइ [1]सा रुविणय णिय भायरि।
सुण्हइं अहिवायणु सासुहे किउ   ताम मयणु रण महि मंडेवि थिउ।
कण्हहो-बलु णिएवि सण्णद्धउ   गंजोल्लि मणेण मयरद्धउ।
हरिसेण दोसम्मु णिम्मिउ साहणु   विज्ज-पहावइँ हय-गय-वाहणु।
ते जि चिण्ह सिंगार जि तेवर   पडिणरिंद इव णरवर किंकर।
भड-भडहिमि समाण णिरु णिम्मिय   समर सज्ज होएवि सयल थिय।
केवि धावंति वीर जय लालस   पुणु वलंति पहु आण परव्वस।
णिय-णिय मंदिर वरि जुवईयणु   अवलोयंतु चवइ दुम्मिय मणु।
हा-हा-हा पयंड जग सुंदर   मरिहींमंति अकारणे णरवर।
इय णिसुणंत वयणु तिय-विंदहो   परिधाइय चमु रणे गोविंदहो।

घत्ता— भिडिय परोप्परु बेवि सेण्ण समरे रेहंति कह।
विप्फुरंत गज्जंत वा वरमड सीहु जह।। 239।।

(28)

अपने नभोयान में, विद्या के प्रभाव से प्रद्युम्न रूपिणी को छोड़कर गोविन्द—कृष्ण से दुगुनी सेना एवं साधन निर्मित कर युद्ध-भूमि में कृष्ण-सेना से जा भिड़ता है

इसी बीच कुसुमशर (प्रद्युम्न) ने तुरन्त ही गगनांगण में जाकर हँसते हुए अपनी माता (रूपिणी) को मुनि (नारद) के चरणों के सामने छोड़ दिया। उसने भी अपने भाई को विनय सहित प्रणाम किया। बहू ने सास का अभिवादन किया। तत्पश्चात् मदन (लौटकर) रणभूमि को माँड कर स्थिर हो गया। कृष्ण की सेना को सन्नद्ध देखकर उस मकरध्वज का मन गूँज उठा। विद्या के प्रभाव से उस प्रद्युम्न ने कृष्ण की सेना से द्विगुणित सेना एवं हय, गय, वाहन आदि साधन तैयार कर लिये। इतना ही नहीं उसने कृष्ण की सेना के समान वैसे ही चिह्न, शृंगार-सजावट, नरवरों के समान प्रतिनरेन्द्र, किंकर भी कर लिये। भटों के समान भट बना लिये जो सुसज्जित होकर समर में खड़े हो गये। (उनमें से) कोई-कोई वीर जय की लालसा से दौड़ने लगे। किन्तु प्रभु की आज्ञा के परवश होकर उन्हें लौटना पड़ा। अपने-अपने महलों पर युवतिजन उन्हें देखती हुई दु:खी मन होकर कहने लगीं—"हा-हा-हा, प्रचण्ड एवं जगत में सुन्दर (अनेक) नरवर अकारण ही इस (युद्ध) में मरेंगे।" महिलाजनों के इस प्रकार के वचन सुनकर भी गोविन्द—कृष्ण की सेना युद्धक्षेत्र की ओर झपटी।

घत्ता— रणभूमि में परस्पर में भिड़ी हुई दोनों सेनाएँ किस प्रकार सुशोभित हो रही थीं? उसी प्रकार जिस प्रकार कि स्फुरायमान एवं गरजता हुआ तथा (गजों को—) विदारता हुआ भट—सिंह सुशोभित होता है।।239।।

(28) 1. ब ण।

इय पज्जुण्ण-कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए बुह रल्हण सुवे कइ सीह विरइयाए पज्जुण्ण-वसुएव-संगाम-वण्णणो णाम **बारहमी संधी** परिसमत्तो।।। संधी: 12 ।। छ।।

पुष्फिया

जात: श्री जिनधर्म्मकर्म्मनिरत: शास्त्रार्थे सर्व्वप्रियो,
भाषाभि: प्रवणश्चतुर्भिरभवत् श्रीसिंहनामा कवि:।
पुत्रो रल्हण पण्डितश्च मतिमान् श्री गुर्ज्जरागोमिह,
दृष्टिर्ज्ञानचरित्रभूषिततनुर्वंशे विशाले वनौ।। छ।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली बुधरल्हण के पुत्र कवि सिंह द्वारा विरचित (प्रस्तुत) प्रद्युम्न-कथा में "प्रद्युम्न-वासुदेव का संग्राम वर्णन" नामकी **बारहवीं सन्धि** समाप्त हुई।। सन्धि: 12।। छ।।

पुष्पिका— कवि-परिचय

श्री जिनधर्म-कर्म निरत, शास्त्रार्थ में सर्वप्रिय चतुर्विधभाषाप्रवण, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र से विभूषित शरीर वाला तथा गुर्जर प्रदेश की विशाल भूमि के गुर्जरवंश में उत्पन्न सिंह नामक (सुप्रसिद्ध) कवि हुआ जो पण्डित रल्हण का मतिमान् पुत्र था।। छ।।

तेरहमी संधी

(1)

धुवकं— किण्हहो कुसुमसरो बलहँ रणआढत्तु घोरु सुपयंडहँ।
हय-खुरहँ रहँ गय णर पयहँ उच्छलिउ[1] लग्गु बंभंडहँ।। छ।।

रेहइ थिउ अंतरेविहि सेण्णहँ जयलुद्धहँ अइ-उण्णय[2] मण्णहँ।
णउ सारइँ मा रणु मडहो मुवहु कोहु पहरणइ मिछंडहो।
रण-डिंडिम-रवेण[3] आहासइ 'रयहो[4] अयाणु कण्हु[5] इय भासइ।
महो वयणेण चवहि कइ-मद्दणु अवरुंडेहिँ झत्ति णिय-णंदणु।
तुज्झु जि किं अवसरु एउ समरहो सुर-विसहर-णर दरसिय डमरहो।
इय जंपंतु विरउ रणे पेल्लिउ करि कवोल मय सल्लिइं रेल्लिउ।
सुहडहँ अहिणव-वण रुहिरेण वि हय-मुह-गलिय पउर फेणेण वि।
चप्पिउ एउ महारउ चक्कइँ अवरु वि जो रिउ रण उहे थक्कइँ।
वारइ कहिमि कोवि मज्झत्थउ सो पावइ इय विविहावत्थउ।

तेरहवीं सन्धि

(1)

रण-वर्णन — समरभूमि में दोनों शत्रु-सेनाओं के बीच की अन्तर्भूमि की दुखद अवस्था का कवि द्वारा मार्मिक-चित्रण

धुवक— कृष्ण की सेना और कुसुमसर—प्रद्युम्न की सेना ने घोर प्रचण्ड रण आरम्भ किया। घोड़े खुरधरों (घोड़ों) से, गज गजों से, नरप्रवर नरप्रवरों से और पदाति पदातियों से ब्रह्माण्ड तक उछल-उछल कर लड़ने लगे।। छ।।

जयलुब्ध अति उन्नत मनवाले दोनों सैन्यों के बीच में स्थित अन्तर सुशोभित हो रहा था। वह (अन्तर ही) मानों कृष्ण से कह रहा था कि क्रोध का त्याग करो, प्रहरणास्त्रों को छोड़ो, लड़ने मरने-मारने में कोई सार नहीं। अथवा रण में डिण्डिम-रव के माध्यम से ही मानों वह कह रहा था कि हे कृष्ण, तुम अपनी विजय में अजान ही हो (अर्थात् तुम विजेता नहीं बन पाओगे)। अथवा वह अपने महान् (उच्च) स्वर (वचन) से कह रहा था कि हे कंस-मर्दन, तुम युद्ध का त्यागकर शीघ्र ही अपने (प्रतिपक्ष रूपी) नन्दन का आलिंगन करो। देवेन्द्रों, नागेन्द्रों एवं नरेन्द्रों को भयंकर रूप दिखाने वाले हे कृष्ण, क्या यही अवसर तुम्हारे लिये युद्ध करने का है? इस प्रकार कहते हुए तथा रण से विरत रहते हुए भी उस (अन्तर) को रण में पेल दिया गया। हाथियों के कपोल मद जल से भीग गये। सुभटों के अभिनव व्रण, रुधिरों से भर गये, घोड़ों के मुख से गलित प्रचुर फेन से भूमि भर गयी। महारथों के चक्रों तथा और भी जो रिपु रण-भूमि में खडे थे, उनसे यह पृथिवी चँप गयी। जो कोई कभी मध्यस्थ बनकर किसी को रोकता है, वह इसी प्रकार की विविध अवस्थाओं को प्राप्त करता है।

---

(1) 1. अ. ब. ज०

(1) (1) धूलीरउ। (2) दोपर्वतानाम। (3) मध्वेन। (4) रज: जातप्रय कथयति। (5) एष कृष्ण-अजान।

घत्ता— मिलियइँ विण्णिवि साहणइँ किय कलयलइँ पवड्ढिय कोहइँ।
वाहिय णिय-णिय वाहणइँ दट्ठोट्ठ पडिवल संखोहइँ।। 240।।

(2)

चउप्पदी— इय पहरंत रणंतरे णरवइ कुद्धमणा[1]
णियहि णहंगणे रण-रस विहंसिय अमरगणा[2]।
पढम भिडम्मि भिडंतहिं आहवे दुव्विसहिं
सघर धराधर समुद[3] वि कंपियसयलमहिं।। छ।।

कहिं जोहेहिं - जोह णारायहिं दलवट्टिय फणिंद-सम कायहिं।
कहिंमि रहेण-रहु वि मुसुमूरिउ स-हउ[4] स-सरहि स-धउ वि चूरिउ।
कहि धाणुक्कु रुद्धु धाणुक्कइँ फारुक्कु वि कहि रिउ फारुक्कइँ।
आस[5]वारु घर पडिय सवारइँ मयगलु-मयगलेण अणिवारइँ।
खलिउ कोंत करु-कोंत सहायइँ पहणिउ कोवि केण गय-घायइँ।
केसइँ लेवि कोवि अच्छोडिउ केणवि कहो सिर-कमलु वि तोडिउ।

घत्ता— दोनों के साधन (सेनाएँ) मिले, दोनों पक्षों के भट कल-कल करने लगे, उनका परस्पर में क्रोध बढ़ा। दोनों पक्षों ने अपने-अपने वाहन तैयार किये तथा प्रतिपक्षों ने क्षुब्ध होकर अपने ओठों को काट लिया।। 240।।

(2)

प्रतिपक्षी सेनाओं का तुमुल-युद्ध। कबन्धों का पराक्रम

चतुष्पदी—इस प्रकार राजागण क्रुद्धमन होकर रण में प्रहार कर रहे थे। आकाश में रण-रस से हँसते हुए देव-गण उन्हें देख रहे थे। प्रथम भिड़न्त में भिड़ते ही दुर्विषास्त्रों से वे आहत हो रहे थे और इस प्रकार भवन, पर्वत, समुद्र सहित समस्त पृथिवी कम्पित हो रही थी।। छ।।

कहीं फणीन्द्र समान काय वाले तथा अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों द्वारा योद्धागण योद्धाओं के दल को रौंद रहे थे, कहीं रथ ने रथ को चूर कर दिया। कहीं घुड़सवारों ने घुड़सवारों को घोड़े एवं ध्वजा सहित चूर-चूर कर डाला। कहीं धानुष्कों ने धानुष्कों को रोक दिया। कहीं पदाति फारुकों (तीक्ष्ण फरसा चलाने वालों) ने शत्रु-फारुकों को रोक दिया। असवार असवारों पर टूट पड़े। हाथी अनिवार हाथियों से जा भिड़े। हाथों में कुन्त रखने वाले कुन्त के आश्रितों पर छूट पड़े। कोई किसी के गज के आघात के द्वारा हना गया। किसी ने किसी के केश पकड़कर उसे पछाड़ दिया। किसी ने किसी का सर-कमल तोड़ दिया, कोई वज्रमुष्टि के प्रहारों से ढुक गया। कोई सारभूत असिधेनु (छुरी) लेकर लड़े। किसी ने किसी सुभट को ऊपर झुला दिया और लात मारकर उसे आकाश में घुमा दिया। कोई भट व्रणों की वेदना से पीड़ित होकर रोने लगे। कटे हुए सिर इस प्रकार गिर रहे

---

(2) (1) क्रोधवसान्। (2) देवसमूह। (3) समुद्रासकल पृथिवीकम्पित। (4) सघोटकं. (5) असवार रजुगत रू।

केवि ढुक्कु परिमुट्ठि[6] पहारहिं — असिधेणु वहि केवि णिरु सारहिं
केणवि कोवि सुहडु आयामिउ — चलण हणेवि णहंगणे भामिउँ।
वावरंति केवि वण-वेय[1]णउर[7] — पडियहँ सिरे कुसुम इमि पिवहिं सुर।

घत्ता - कासुवि सिरु महियले पडिउ अवगण्णिवि धडु संचलिउ।
महो भुवदंड सहाइँ किं एण[8] वि जो रिउ मिलिउ।। 241।।

(3)

चउप्पदी— केणवि सत्तिवि सज्जि[illegible] रिउ [illegible],
केणवि दसणुप्पाडिय मय मत्तहो गयहो।
केणवि ससरु-सरासणु कासु विहंजियउ[1]
केणवि णियरहु लेविणु पडिरहु भंजियउ।। छ।।

वेहंडवि[2] धयदंड विहंडिय — मुडिय छत्त-चमरहिं महि मंडिय।
गय-घय घुलिय ढुलिय महि णिवडिय — भड-थड भिडिय दडिय णिरु दवडि[3]य।
कडयड खेण पलोट्टिय रहवर — ता सिउ [1]संकुस्सु सेसु कंपिय धर।
रसिय सुतसिय खसिय कायर-णर — भमिय-दमिय हय-थट्ट सुखरखुर[4]।

थे मानों देवगण आकाश से पुष्प-वर्षा कर रहे हों।

घत्ता — किसी का सिर (कट कर) महीतल में पड़ गया तो भी उसकी अवगणना कर उस का धड़ (यह सोचकर) आगे चलता रहा कि "मेरी सहायक मेरी महान् भुजाएँ ही हैं (सिर नहीं), अतः आगे जो भी रिपु मुझे मिलेगा, उसी का वध इनके द्वारा करूँगा।" ।। 241।।

(3)

तुमुल-युद्ध

चतुष्पदी—किसी ने रिपु को जीतने के लिए शक्ति सुसज्जित की। किसी ने मदोन्मत्त गज के दशन (दाँत) उखाड़ लिये। किसी ने बाण सहित धनुष ले लिया, किसी ने किसी को भग्न कर दिया। किसी ने अपना रथ लेकर प्रतिरथ को तोड़ दिया।। छ।।

ध्वज खण्डों को खण्ड-खण्ड कर नष्ट कर दिया गया। टूटे हुए छत्रों एवं चमरों से मही मण्डित हो गयी। गजों की घटा घूमने लगी, लुढक कर पृथिवी पर गिरने लगी। भटों के समूह डट कर भिड़ने लगे और पड़ने लगे। कट-कट शब्द करने वाले अस्त्र द्वारा रथवर उलट दिए गए। उससे शिव एवं शेषनाग सशंकित हो उठे। पृथिवी काँप उठी। रसिक जन त्रस्त हो उठे। कायर जन खिसया गये। तीक्ष्ण खुर वाले घोड़ों के समूहों को घुमा-घुमा कर दमित कर डाला गया। जिन नरवरों के सिर, पैर एवं हाथ नष्ट हो गये, उनके कबन्ध नाचने लगे और घूम फिर कर परस्पर में टकराने लगे। उन प्रचण्डों के शरीर के कवच टूट-टूट कर (भूमि पर) पड़ने लगे। और (बिना कवच के) मिल-मिलकर एक दूसरे के शरीर के खण्ड-खण्ड करके चूर करने लगे।

---

(2) 1. अ ब. 'णा'।
(3) 1. अ ससंकु।

(2) (6) वज्रमुष्टि। (7) वेदना आतुर। (8) शिरेण = सिर।
(3) (1) देशीहीकृतम्। (2) अंडीकृतम्। (3) दवित ना। (4) तीव्र।

णडिय कवंध खुडिय सिर पयकर　　चलिय-वलिय अण्णोण्णु वि णरवर।
तुडिय[5]-पडिय तणु-ताण पयंडहँ　　मिलिय खलिय तणु-खंड विहंडहँ।
खुत्त-गुल रस वसमइ कद्दमे　　रेल्लिय रुहिर जलइँ रणे-दुद्दमे।
वणिय धुणिय णिहणिय असि-घायहिँ　　दलिय-मलिय वियलिय वे भायहिँ।

घत्ता— हय-हिंसइँ मयगल गज्जियइँ सुहडहँ कलयल सद्दइँ।
णं रसिउ क[2]यंतए भुक्खिएण विसरिसु तूरइँ सद्दइँ।। 242।।

(4)

चउप्पदी— इय अप्पंपरि थिय रणे किण्हहो किंकरह,
सेल्ल-भल्ल वा वल्लहँ आऊरिउ सरहँ।
भग्गु-लग्गु उम्मग्गहँ मणसिय सेण्णु कह अमरह,
महिउ महंतउ सायर सलिलु-जह।। छ।।

णवणिसिय णिविड वाणासणे　　रिउ पव्वयहँ णाइँ वज्जासणे।
परिपेसंति जोह जग दुद्धर　　उट्ठिय मंथवंत कायर-णर।
मुक्क-हक्क-लल्लक्क भयंकर　　णिहणिय वणिय चउब्भुव किंकर।

उस दुर्दम रण में कटे हुए गुप्त रस-वसा-मेद रूपी कर्दम आदि रुधिर रूपी जल में बह रहे थे। असि के घातों से दोनों ही दलों के योद्धा घायल हो रहे थे, धुने जा रहे थे, मारे जा रहे थे, दले जा रहे थे, मले जा रहे थे एवं विकल किये जा रहे थे।

घत्ता— घोड़े हींसते थे, मदोन्मत्त हाथी गरजते थे, सुभटों के कल-कल शब्द हो रहे थे। मानों रसलोलुपी भूखे कृतान्त (यमराज) ने विसदृश (प्राण-लेवा) तूर-निनाद ही कर दिया हो।। 242।।

(4)

तुमुल-युद्ध। कृष्ण अपने भटों को सावधान कर स्वयं अपना रण-कौशल दिखलाते हैं

चतुष्पदी—इस प्रकार कृष्ण के किंकरों ने रण में अपने को स्थिर करके उसे सेल, भाला, बल्लम एवं बाणों से आपूरित कर दिया। इस कारण मनसिज-प्रद्युम्न की सेना उन्मार्ग में भागने लगी। भागते समय वह कैसी लग रही थी? उसी प्रकार जिस प्रकार की अमरों से पूजित महान् सागर का जल बहकर उन्मार्ग की ओर जाने लगता है।। छ।।

तब कृष्ण किंकरों ने शत्रु सेना को नवीन तीक्ष्ण सघन बाणों के आसन पर पटक दिया। ऐसा प्रतीत होता था मानों पर्वतों पर वज्रासन ही गिर पड़ा हो। जगत में दुर्द्धर (कृष्ण) के योद्धागण धक्कम-धुक्की कर रहे थे। जिस कारण शस्त्रधारी कायर-मनुष्य (गिर-गिरकर) उठ रहे थे। चतुर्भुज (कृष्ण) के भयंकर किंकर हॉक छोड़ते शत्रु-सैन्य को ललकारते थे, मारते थे और (उन्हें दूर) हटा देते थे। मारकर ही खिसकते थे। सैकड़ों को जर्जर

---

(3) 2. ब 'ए'।　　(3) (5) त्रुटित

हणेवि पसक्कहिं किय सय जज्जर — चक्केहिमि कप्पिय उर-सिर-कर।
जुण्ण तिणहो समाणु तणु मण्णिवि — पहरहिं पिय जीवउ अवगण्णिवि।
पच्चारंति कण्ह किं सेरउ — हणु-हणु पउरि सुदेक्खहिं सेरउ।
सीराउह उवडिय भड गोंदले — किं वावरहि ण वड्ढिए कंदले।
भीम-भयंकर गय दरिसावहि — पहणहिं पच्छ तुरंतउ आवहि।
सुणि सहएव वीररस-रंजिय — पयडहिं असिफरु जे रिउ गंजिय।
णउल णिहालहिं कोंतम करयले — अवर वि जे णरवइ किण्हहो वले।
ते एक्केक्कमेक्क दुव्वोलिय — असरिस सत्थ-पहारहिं पेल्लिय।

घत्ता— अद्धइंद पहरेहिँ छिण्ण छत्त किं सीसहिं।
णहे भमंत णिवडंत चंदविंद इव दीसहिं।। 243।।

(5)

चउप्पदी— केणवि कोवि णिवारिउ खंचहि णिययकरु,
मा णिट्ठुर स पहारइएँ हणहि एहु णरु।
कपंतु वि अवलोयहि पहरण वज्जियउ,
कायरु-मणे विणु मणे वरभडु वज्जियउ।। छ।।

कर देते थे। चक्राकार अस्त्रों द्वारा हृदय, सिर और हाथ काट डाले। अपने शरीर को जीर्ण तृण के समान समझकर तथा प्राणों की अवगणना करके वे (शत्रु-सैन्य) पर प्रहार करते थे। कृष्ण अपने सेवकों को चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे—कि शिथिल क्यों हो रहे हो, मारो, मारो। आगे के शत्रुओं को भलीभाँति देखो। "हे सीरायुध, तुम भटों के यूथ में उतरो। यदि कन्दल में वृद्धि न हो तो व्याकुल होने से क्या लाभ? हे भीम, भयंकर गदा दिखाओ। प्रहार बाद में करना, अभी यहाँ तत्काल आओ वीर रसरंजित हे सहदेव, सुनो, जो रिपु को गाँज देने वाला है, उस असिफर (छुरी) से (शत्रु-सैन्य पर) प्रहार करो। हे नकुल, अपने हाथ के कुन्त की ओर देखो। (इसी प्रकार) कृष्ण की सेना में और भी जो-जो नरपति हैं वे भी तैयार रहें। इसी प्रकार दुष्ट बोली वाले मिलकर एक दूसरे को कठोर वचन बोलने लगे कि असदृश शस्त्रों के प्रहारों से पिल पड़ो।

घत्ता— अर्धचन्द्र (कृष्ण) के प्रहारों से छत्रों की क्या कहें (असंख्य) शीर्ष भी कट-कट कर गिरने लगे। वे ऐसे दिखायी देते थे, मानों आकाश में घूमते हुए चन्द्र-वृन्द ही गिर रहे हों।। 243।।

(5)

कृष्ण की चतुरंग सेना नष्ट होने लगी

चतुष्पदी—किसी (भट) के द्वारा कोई दूसरा (भट) दूर हटाया गया और उसके द्वारा उसे कहा गया कि "उस बेचारे की ओर से अपना हाथी खींच, इतना निष्ठुर मत बन, अपने प्रहार से उस नरभट को मत मार, देख वह अस्त्ररहित होने से काँप रहा है।" पुन: अपने मन में उसे कायर मानकर उसने (अन्य) वर भटों को भी डाँटा।। छ।।

इय कोवग्गि[1] जलिय णरणाहहँ रइउ महा[(1)]हउ वाहिय वाहहँ।
मग्गु ण लद्धु पडिय गय-गत्तहँ कप्पिय[(2)] कुंभयलहँ कर-दंतहँ।
भग्ग-रहेहिँ मग्गु संचारु वि वड्ढिउ रुहिर-महण्णउ फारु वि।
किलिकिलंत वेयाल पणच्चिय जोइणि-गण वस-कद्दम चच्चिय।
पलया लद्धुवि सिव पुक्कारइ हुव रसोइ णं जमु हक्कारइ।
दुद्धर-सर धोरणिहिँ समाहय कहिवि मयंग महुव कप्पिय हय।
चूरिउ-चाउरंगु-वलु कण्हहो भुवणेकल्ल मल्ल जय-तण्हहो।
मोहिय-मोहणेण दिव्वत्थइँ मुणिउ पवंचु ण णरवइ सत्थइँ।
णिव णिवडिय भीमज्जुण महि-मंडले हा-हा रउ उट्ठिउ णह-मंडले।
पडिय जमल[(3)] णं जम गोयरि [2]किय वियलिउ सी[(4)]रि पणट्ठिय हरि सिय[(5)]।
सुडहहो उवरि सुहडु हयवरि हउ रहहो उवरि रहु गयहो महागउ।
णरवइ वरि णरिंद सर-सल्लिय थिय जीविय विमुक्क णाउ चल्लिय।

घत्ता— किंकर सयण सहोरहँ णिहयहँ रेहइ किण्हु कह।
णं असहाउ भमंतु एक्कल्लउ भवे जीउ जह।। 244।।

इस प्रकार कोपाग्नि में जल कर नरनाथ—राजाओं ने अपने-अपने घोड़ों को सुसज्जित कर महासंग्राम प्रारम्भ किया। रणभूमि में आये हुए गजों के शरीरों से मार्ग अवरुद्ध था। शत्रुओं ने उनकी सूँड एवं दाँत तोड़ डाले। टूटे रथों से मार्ग संचार भी भग्न हो गया। रुधिर का विशाल समुद्र बढ़ गया। किलकिलाते हुए बेताल नाचने लगे। योगिनी-गण वसा रूपी कर्दम से चर्चित होकर नाचने लगे। माँस की लोलुपी शृगाली पुकार रही थी। मानों यमराज को बुला-बुलाकर कह रही हो कि रसोई तैयार हो गयी है। आओ—आओ। "कहीं तो दुर्द्धर बाणों की नोकों से मारे हुए हाथी पड़े थे और कहीं कटे हुए घोड़े पड़े थे। जय की तृष्णा वाला जो कृष्ण भुवन में अकेला मल्ल समझा जाता था। उसी कृष्ण का चतुरंग दल-बल चूर दिया गया। प्रद्युम्न के मोहन नामके दिव्य अस्त्र ने सबको मोहित कर दिया। कृष्ण के नरपतियों ने प्रद्युम्न के इस शस्त्र के प्रपंच को समझा ही नहीं। महीमण्डल में जब भीम, अर्जुन राजा भी गिर पड़े, तब नभमण्डल में हाहाकार मच उठा। नकुल-सहदेव जुगल मल्ल भी पड़ गये, मानों वे यम के गोचर ही हो गये हों। सीरी (बलदेव) भी जा गिरा। मानों हरि—कृष्ण की शोभा ही नष्ट हो गयी। सुभट के ऊपर सुभट, घोडों के ऊपर घोड़े, रथ के ऊपर रथ एवं गज के ऊपर महागज चढ़ गये। नरपति एवं नरेन्द्र बाणों से विंद्ध गये और प्राण छोड़कर वहीं निश्चल हो गये।

घत्ता— किंकर, स्वजन एवं सहोदरों के नष्ट हो जाने पर कृष्ण कैसा सुशोभित हो रहा था? उसी प्रकार जिस प्रकार कि असहाय यह जीव भव में अकेला घूमता-भटकता रहता है।। 244।।

---

(5) 1. ब °ग्गि। 2. ब °रि।

(5) (1) संग्राम। (2) छे दलित। (3) छे नकुल-सहदेवौ। (4) अ बालि बलदेव। (5) शोभा।

(6)

चउप्पदी— अवलोयइ चउपासहि महु-महु जहिं जि जहिं,
णर करंक उक्कुरडइ पेच्छइ तहिं जि तहिं।
अइ-परिहउ असहंतु करिंदहो उयरि वि,
झत्ति वलग्गु महारहि धणुहरु करे करेवि।। छ।।

पंडवाइ जं णिहिय वर भडा णिएवि गहिर अइ-रुहिर रणे छडा।
तासु रोसु महुमहु प[1]राइउ कहिमि पाव वच्चहिं अघाइउ।
फण कडप्पु फणिवइहिं ताडए सुर-करिस्स को दसण मोडए।
पलय-पवणु पवहंतु वालए णिय वलेण महिवीढु टालए।
कवणु जलहिं चुलुएण सोसए हुववहोब इंधणेण तोसए।
को पयंडु जमदंडु खंडए मए समाणु रणु कवणु मंडए।
इय भणेवि धणु झत्ति सज्जिउ गुण-रवेण णं उवहि गज्जिउ।
पूरियं पि जल-थल सुणहयलं कंबु-सरेण किय अमर कलयलं।
सर-सएहिं सछण्णु मणमहो साउहो ससेण्णो विसहरहो।

(6)

तुमुल-युद्ध-पराजित बल, हरि महागज-छोड़कर महारथ पर सवार होते हैं

चतुष्पदी—मधुमथन (कृष्ण) चारों पार्श्वों से जहाँ-जहाँ भी देखता था वहाँ-वहाँ नर करंकों को उत्कट रूप से रोते हुए ही देखता था। अपने अत्यधिक परिभव को सहन न कर वह हाथी से उतरा और धनुष-बाण हाथ में लेकर झट से झपट कर रथ पर जा चढ़ा।। छ।।

रण-क्षेत्र में पाण्डवादि जो महाभट मरे (जैसे) पड़े थे, उनको भी अत्यन्त गहरे रुधिर से लथपथ देखकर रोष सहित दौड़ कर मधुमथन वहाँ जा पहुँचा। वह पाप वचनों से नहीं अघा रहा था। (अर्थात् अधिक पापवचन बोलते हुए वह तृप्त नहीं हो रहा था)। (वह गरज-गरज कर कह रहा था कि) मुझ फणपति के कड़कड़ाते फण को कोई तोड़ सकता है? ऐरावत हाथी के दाँतों को कोई मोड़ सकता है? (उस कृष्ण के वेग में आने के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों उस रणभूमि को) प्रवहमान प्रलयकालीन (प्रचण्ड) वायु जला डालना चाहती हो। उस (कृष्ण) ने अपने बल से पृथिवी तल को टलटला दिया। समुद्र को चुल्लू से कौन सुखा सकता है? ईंधन से अग्नि को कौन सन्तुष्ट कर सकता है? प्रचण्ड यमदण्ड को कौन खण्डित कर सकता है? रणभूमि को मेरे समान कौन माँड (रच) सकता है? ऐसा कह कर (उस कृष्ण ने) धनुष को तत्काल ही सज्जित किया। उसकी ज्या के शब्द से ऐसा प्रतीत हुआ मानों समुद्र ही गरज उठा हो। उस ध्वनि ने जल, थल एवं आकाश को भर दिया। (यह देखकर) अमरों ने शंख के स्वर से कोलाहल किया और सैकड़ों बाणों से प्रद्युम्न के सैन्य को ढँक

(6) 1. अ. 'धा'।

णिएवि ताउ सकसाउ दुद्धरे भुवण डमरु विरयंतु रण भरे।
घत्ता— ता मेल्लेवि महाकरि वल णिज्जिय हरि लहु आरूढु महारहि।
अंवरे सुर-रमणिहिं जिय णह दुमणिहिं चवइ व किं होसइ सहि।। 245।।

(7)

चउप्पदी— पुणु पभणिज्जइ सरेण स सारहि।
आयावसि हरि सरहु स सारहि।।
कायरहो वि म रहवरु वाहहि।
थिरु विक्कमहि तेण हय-सारहि।। छ।।

जह सरेण रहु अहि मुहु किज्जइ तह केसव-सरीरु पुलइज्जइ।
फंदइ दाहिणु णयणु सवाहु वि णं कहंति तुव णंदणु एहु वि।
ता सिरिहरेण वि सुउ पभणिज्जइ भोय णउ तुज्झु गुज्झु रक्खिज्जइ।
हणिय सुहड णिहणिय भड-रह-गय कवलिय-दलिय सयण सहयर सय।
समर सज्जु थिउ अइरिउ दुम्महु इय मंगलु किं जंपइ महु महु।

दिया। यह देख कर उस मन्मथ (प्रद्युम्न) ने भी विषघ्न आयुधों से ससैन्य उस कृष्ण सेना को ढँक दिया। उस दुर्धर रण-भार को क्रोध-कषाय पूर्वक देखकर उस कृष्ण ने भुवन को कम्पित कर देने वाला डमरु (रणभेरी) बजाया।

घत्ता— निर्जित बल (सेना) वाला हरि (कृष्ण) महागज छोड़कर तत्काल ही महारथ पर सवार हुआ। (अपने सौन्दर्य-तेज से) नभ-सूर्य को भी जीत लेने वाली सुर-रमणियाँ आकाश में कहने लगीं कि "अब क्या होगा, अब क्या होगा?"।। 245।।

(7)

समर-भूमि में दाएँ अंगों के फरकने से कृष्ण को किसी मंगल-प्राप्ति की भावना जागृत होती है

चतुष्पदी—पुनः स्मर (प्रद्युम्न) ने अपने सारथी से कहा—"सुशिक्षित घोड़े जुते हुए अपने सारभूत रथ को चलाओ।" कायर होकर रथ मत हाँकना। (यह सुनकर) उस सारथी ने भी धैर्यपूर्वक एवं अवसरानुकूल उस हय-रथ को हाँका। ।। छ।।

जैसे ही स्मर ने रथ को कृष्ण के सम्मुख किया, वैसे ही केशव का शरीर पुलकित हो उठा। दाहिना नेत्र फड़कने लगा। साथ में दाहिनी भुजा भी फड़कने लगी। मानों वे कह रहे हों कि यही तो (सम्मुख आया हुआ) तुम्हारा नन्दन है। तब उस श्रीधर (कृष्ण) ने भी उस पुत्र (प्रद्युम्न) से कहा—हे जन, तुम अपने को गुप्त ही रखे रहे, इस कारण अपने सुभट मारे गये, भट मारे गये, रथ एवं गज नष्ट हो गये। सैकड़ों हजारों स्वजन कवलित एवं दलित कर दिये गये। भयानक शत्रुओं के लिये भी दुर्दमनीय समर की रचना की। ये मंगल बार-बार क्या सूचना दे रहे हैं? मेरा दायाँ नेत्र एवं भुजा फरक रही है एव देह भी बार-बार पुलकित हो रही है। यह

जं फंदइ महो णयणु सबाहु[1] वि   वार-वार पुलइज्जइ देहु वि।
ता मारुवि[2] पडिवयणु पयंपइ   तुज्झ पयावें को णउ कंपइ।
रिउ णिहणेसहिं जित्त महाहव   रूविणि तुज्झ मिलेसइ माहवि।
इय अण्णोण्णु सुमहुरालावहिं   आहासंति वेवि [1]सुहभावहिं।
ता तइलोक्क दमणु सुमहंतउ   तो णा भुव दिढु वद्ध तुरंतउ।
थिउ सव इम्मुहु रण-महि-मंडवि   चवइ कण्हु मच्छरु भणे छंडवि।

घत्ता— हियय कलत्तहो पाणपिय णिय सयण भड-हय-गय-रहवर।
तो णउ तुववरि कोहु महो हवइ ण किं जाणमि पर।। 246।।

(8)

चउप्पदी— [1]लहु समप्पि महो पियमय मणहरि।
णेहंधुवि आहासइ इय हरि।।
जे मुअ ते मुव किं करणिज्जइ।
जाहि म तुव [2]वलु रणउहे[1] झिज्जइ।।

सुणेवि हसंतु पयंपइ मारु   वलुद्धरु-दुद्धरु जो जयसारु।

सुनकर मार (मदन) ने भी प्रत्युत्तर में कहा—"आपके प्रताप से कौन नहीं काँपता? महायुद्ध को जीतकर (जैसे ही) आप शत्रु को मारेंगे। वैसे ही हे माधव, आपको रूपिणी मिल जायगी।" इस प्रकार शुभ-भावना पूर्वक वे दोनों ही परस्पर में मधुरालाप करने लगे। तभी, त्रैलोक्य-दमन करने वाला तथा दृढ भुजबन्ध वाला वह महान् कृष्ण तुरन्त ही सभी के सम्मुख रण में आसन माँडकर स्थित हो गया और (प्रद्युम्न) से बोला — अपने मन के मत्सर को छोड़ो।

घत्ता— प्राणों से भी प्रिय मेरी कलत्र का अपहरण कर दिया, अपने स्वजन, भट, हय, गज एवं रथवरों को भी नष्ट कर दिया, तो भी तुम्हारे ऊपर मुझे क्रोध नहीं हुआ, क्योंकि मैं तुम्हें कोई दूसरा नहीं मान रहा हूँ।" ।। 246।।

(8)

प्रद्युम्न कृष्ण को पराजित कर उसे आत्म-समर्पण की सलाह देता है, किन्तु उसकी अस्वीकृति पर वह (प्रद्युम्न) अपना धनुष खींच लेता है

चतुष्पदी—पुन: स्नेहान्ध उस कृष्ण ने (प्रद्युम्न से) कहा—"अब तुम मेरी मनोहरी प्रियतमा (रूपिणी) मुझे शीघ्र ही सौंप दो। जो (किंकर) मर गये सो मर गये (अब उनके लिए) क्या किया जाय? (अच्छा, अब) जाओ तुम्हारी सेना को रणभूमि में जूझने की आवश्यकता नहीं।" ।। छ।।

कृष्ण का यह कथन सुनकर दुर्धर बलधारी एवं जो जगत में सारभूत है वह मार (प्रद्युम्न) हँसता हुआ

---

(7) 1. ब. भुं।
(8) 1. ब तं: 2. ब चं।

(7) (1) भुजा। (2) प्रद्युम्न।
(8) (1) रणसमूहे।

कहिंपि ण दीसइ एत्थु सणेहु   चवंतहँ हासउ लोयहँ एहु।
विहंजिय भंजिय दिव्व-हयोह   णिहोडिय मोडिय-रहवर जोह।
दिसिव्वल दिण्ण णरिंद करिंद   जमाणणु पत्त सहोयरविंद।
महा-भड वीर रणम्मि समत्त[(2)]   [3]मणोहर इट्ठ सुहित्त कलत्त[4]।
परं जुव बंधुहो एरिस लील   कहेहि वि[5]वक्खुहु केहिय कील।
ण सक्कहि-थक्कहि छंडहि चाउ[(3)]   म बोल्लहि-मेल्लहि एहु पलाउ।
चएहि महाहउ दूसहु अज्जु   तुमंपि सभज्ज छलेण ण कज्जु।
तउ रिउ वयण विलक्खिवउ चित्तु   हरिव्वहु आसणु जेम पलित्तु।
चडाविवि-चाउ पिसक्क सएहिं   पिहंतु णहंगणु वज्ज मएहिं।
जलंपि थलंपि णहंगणु तंपि   सो मग्गु-अमग्गु ण पूरिउ जंपि।

घत्ता— ता मयणेण णिएविणु णं सावण-घणु हरिसरेहिं वरिसंतउ।
आयइढेवि धणुहरु परिहग्गल करु थिउ अहिमु[6]हुं वि तुरंतउ।। 247।।

बोला—"यहाँ (इस समरभूमि में) तो मुझे स्नेह कहीं भी दिखायी नहीं दे रहा है।" इस प्रकार कहकर उस (प्रद्युम्न) ने लोगों को हँसाया। पुन: उसने कहा—"जिसने दिव्य हय-समूह विभक्त कर भग्न कर दिये, दिव्य रथ-समूह निहोड़ (तोड़) डाले, योद्धागणों को मरोड़ डाला, नरेन्द्रों को (अज्ञात) दिशाओं में ठेल दिया। करीन्द्र भी नष्ट कर दिये, सहोदर वृन्द, यम के मुख को प्राप्त करा दिये। महाभट वीर रण में समाप्त हो गये। मनोहर एवं इष्ट कलत्र जनों के हृदय भग्न कर दिये। किन्तु (एक दूसरे के लिए अनजान) इन बन्धुओं की ऐसी लीला है, तब कहो कि शत्रुओं की कैसी क्रीड़ा होती होगी? यदि तुममें सामर्थ्य नहीं हो तो ठहरो, जाओ चाप छोड़ दो, (बढ़-चढ़कर) बोलो मत, यह प्रलाप बकवास भी छोड़ दो। इस दूषित महासंग्राम को भी आज ही छोड़ दो और तुम भी भार्या सहित हो जाओ। अर्थात् तुम मेरे सामने आत्म-समर्पण कर दो तो मैं तुम्हारी भार्या को तुम्हें सौंप दूँगा। इसमें छल प्रपंच का काम नहीं है। रिपु (प्रद्युम्न) के वचन सुनकर हरि व्याकुल-चित्त हो गया जिस तरह अग्नि भभकती है, उसी तरह हरि अपने आसन पर ही भड़क उठा, उसने चाप को चढ़ाकर वज्रमय सैकड़ों शरों के द्वारा नभ रूपी अंगण को ढँक दिया। जल, स्थल एवं नभांगण का ऐसा कोई भी मार्ग-अमार्ग नहीं बचा, जिसको उन शरों ने न पूर दिया हो।

घत्ता— तभी मदन (प्रद्युम्न) ने देखा कि हरि कृष्ण श्रावण-मास की घन-वर्षा के समान ही बाण-वर्षा कर रहा है। तभी ऐरावत हाथी की सूँड के समान बाहु वाला वह मदन तुरन्त ही अपना धनुष खींचकर उसके सम्मुख हो गया। ।। 247।।

---

(8) 3-4. अ. ×। 5. अ. प', ब' पि। 6. ब' सु'।   (8) (2) समाप्ता। (3) धनुष।

(9)

चउप्पदी— अद्धइंद लहु लेवि पमुक्कउ।
चंचलु-विज्जु-दंडु इव ढुक्कउ।।
छिण्णु-सरासणु कण्हहो करि थिउ।
णं णिद्दइ वहं धणु दइव हउ।।

रोसंधएँ विंभिय माणसेण धणुहरुवि गहिउ जा अवरु तेण।
ता छिण्णउ रूविणि तणुरुहेण पुणु हसिउ विछण्ण-ससि सम मुहेण।
भणु-भणु पइँ एउ विणाणुवरु कहिं सिक्खिउ को किर तुज्झ गुरु।
तुहुँ एहु जायवहिमि पंडवहँ कुरुहिमि किय रिउ सर मंडवहँ।
थिरु अत्थ-सत्थ संगरि णिउणु जगे विरइय कित्तिहि तणउ गुणु।
णिय धणुहु वि रक्खहु ण उत्तरही अस भद्दु चित्तो मा वावरही[1]।
जो रण भड-थड-कड णउ सहइ सो किं जीवहुँ जगे णउ लहइ।
तुव कंजु ण भज्ज सहोयरहँ किं करहि णरिंदह सहयरहँ।
जा जाइवि जीवहि भुंजि सुहु इय उवहसियउ असहंतु दुहु।
हरिमणे कोवाणलु पज्जलिउ दिक्करि-करि अहिमुहु जि चवलिउ।

---

(9)

प्रद्युम्न कृष्ण के धनुष को छिन्न-भिन्न कर उन्हें ललकारता है। कृष्ण भी पुन: प्रद्युम्न पर आक्रमण करते हैं

चतुष्पदी—अर्धचन्द्र (धनुष) शीघ्र ही लेकर, क्रोधित वह चचंल (मदन) विद्युदण्ड की तरह घुसा और कृष्ण के हाथ में स्थित धनुष को छिन्न कर स्थित हो गया, मानों निर्दय दुर्दैव ने ही उसे नष्ट कर दिया हो।। छ।।

रोषान्ध उस कृष्ण ने विस्मित मन होकर दूसरा धनुष-बाण ले लिया। तब पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान उस रूपिणी पुत्र ने हँसकर उसे भी काट डाला और बोला—"हे विज्ञान प्रवर (कृष्ण), तुम यह तो कहो कि यह धनुष चलाना तुमने कहाँ सीखा है? कौन तुम्हारा गुरु है, तुम यादवों के एवं पाण्डवों के स्वामी हो, तुमने कुरुभूमि में रिपु को शर-मण्डपों से आच्छादित किया था। तुम शास्त्रार्थ एवं संग्राम (दोनों) में ही निपुण हो। तुमने अपने कीर्तिमान गुणों से जगत को प्रकाशित किया है। किन्तु अब अपने धनुष की रक्षा करो। तुम्हारे उत्तर की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार भद्र चित्त होकर चुपचाप मत बैठो। जो भट समूह रण में सुशोभित नहीं होता वह इस संसार में जीवित रह कर क्या करेगा? तुम्हें अपनी भार्या, सहोदर, सेवकों, नरेन्द्रों एवं सहचरों के जीवित रहने से क्या प्रयोजन? अब तू अकेला ही जा और जीवित रहकर सुखों का भोगकर।" इस प्रकार कहकर उस प्रद्युम्न ने कृष्ण का उपहास किया। कृष्ण प्रद्युम्न के उस उपहास का दु:ख सहन न कर सके। वह अपने मन में कोपानल से प्रज्ज्वलित हो उठा और दिक्करी की सूँड के समान तथा अहिमुख के समान चपल भुजाओं वाला

---

(9) (1) प्रवर्त्त।

आयामिउ मणमहु महुमहेण भिउडच्छि करालहँ जम णिहेण[(2)]।
णव णिसिय सुणिच्छिडहँ सरसएहिँ हउँ वम्म-पएसहु दुज्जएहिँ।
अवरेद्धउ अवरे आयवत्तु रहु सहउ ससारहि महि समत्तु।
परियणु पहि राउ रुव णिय गत्तु वेवंतु[(3)] वलंतु वि जीव चुतु।

घत्ता— वेढिउ चउ पासहिँ वाण सहासहिँ रइवरु रेहइ समरे कह।
विसहरहँ असेसहँ सव्व पएसहँ णं कालायरु रुक्खु जह।। 248।।

(10)

चउप्पदी— ता अवरहि रहे चडेविणु।
णियवउ[(1)] किण्ह समउ पयडेविणु।।
पेछिवि हरिणा णिय रहु खंचिउ।
माया-विहणं को जइ[(2)] वंचिउ।। छ।।

ता मुणिऊण पवंचु वि कण्हइँ रण रसिएण सु जयवहु तण्हइँ।
[1]सुइ विइयरु-रहु दिव्व-महारहि चडेवि तुरंतइँ वुत्तु स[2]सारहि।
रहवरु वाहि-वाहि लहु तेत्तहिँ मायारउ-रिपु दीसइ जेत्तहिँ।

वह कृष्ण उसके सम्मुख चल दिया। उस मधुमथन—कृष्ण ने यमराज के समान भृकुटि तानकर, विकराल आँखों से उस मन्मथ—प्रद्युम्न (की शक्ति) को तौला और नवीन तीक्ष्ण सैकड़ों दुर्जय बाण प्रद्युम्न की ओर मारे। किसी के ध्वज, किसी के छत्र और किसी के साथी सहित रथ पृथिवी में समा गये। मार्ग में परिजनों एवं राजाओं के रूप बदल गये और काँपते, लड़खड़ाते हुए उन्होंने प्राण छोड़ दिये।

घत्ता— समर में चारों ओर से (कृष्ण के द्वारा छोड़े गये) सहस्रों बाणों द्वारा वेष्टित वह रतिवर—प्रद्युम्न किस प्रकार सुशोभित हो रहा था? उसी प्रकार, जिस प्रकार कि समस्त प्रदेशों में व्याप्त विषधरों वाला कालागरु-वृक्ष सुशोभित होता है।। 248।।

(10)

कृष्ण ने आग्नेयास्त्र छोड़ा तब प्रद्युम्न ने भी उसके विरुद्ध तैयारी की

चतुष्पदी—तब उस प्रद्युम्न ने अपने रूप को कृष्ण के समान प्रकट किया और शीघ्र ही वह दूसरे रथ पर चढ़ा। माया-विधान द्वारा किसी के द्वारा ठगा जा रहा हूँ, यह देखकर कृष्ण ने भी अपना रथ खींचा।। छ।।

तब जय रूपी वधू के प्यासे रणरसिक दिव्य महारथी कृष्ण ने प्रपंच जानकर अपना पूर्व रूप छोड़ा और तुरन्त ही दूसरे रथ पर चढ़कर अपने सारथी से बोला—"रथवर को वेग पूर्वक वहाँ हाँको—हाँको जहाँ मायारिपु दिखायी दे रहा है।" ऐसा कहकर उसने धनुष पर डोरी चढ़ाई और शंख ध्वनि की। वह (शंख ध्वनि) ऐसी प्रतीत हुई मानों समुद्र ही गरज उठा हो। भट-वृन्दों ने कोलाहल किया। आकाश को फोड़कर झुका देने वाला तूर-निनाद

---

(9) (2) मङ्क्षीन। (3) कम्पयनन।

(10) 1. अ° मु°। (2) ब. न°।

(10) (1) शरीरं। (2) एष: मृत:।

एम भणेविणु धणु गुण सज्जिउ कंबु-रवेण उवहि णं गज्जिउ।
किउ कलयलु वर भडयण विंदें फुट्टण मणु णहु तूर-णिणद्दें।
सुमरिउ हुव व हत्थु ता ढुक्कउ पंकयणाहें लेवि पमुक्कउ।
हुंकारेण पत्तु तं साहणु वेढेविणु हय-गय-रह-वाहणु।
पुणु पज्जलिउ जलणु गुरु जालहिं उड्ढिर णिविड फुलिंगो मालहिं।
णह-धूमेण अमर संदाणिय[3] गय काय रणउ केणवि जाणिय।
फुट्ट लडत्ति वंस धय-छत्तहँ लग्गु जलणु हय-णर-गय-गत्तहँ।
काहमि जलइ णरिंदहँ णि वसणु तुट्टिवि पडइ काहं वर-भूसणु।
सिहिणा संताविउ सयलु-वियलु णियंवि ताम मयणु वि कयरण छलु।

घत्ता— दप्पब्भडु थिउ विहडप्फडु भमइ सेणु उव्वेविरु।
वड्ढिय सुपहावइँ धणुह सहायइँ कामइँ साहारिउ थिरु[3]।। 249।।

(11)

चउप्पदी— वारुणत्थु[1] पुणु मुक्कु पयत्तइँ।
रत्तुप्पल-दल दीहर-णेत्तइँ।।
महुसूअणहो[2] सेण्णवरि चल्लिउ।
पलय-समुद्दु णाइँ उच्छल्लिउ।। छ।।

किया गया। तब कृष्ण ने आग्नेयास्त्र का स्मरण किया। उसके प्राप्त होते ही (हाथ में) लेकर छोड़ा। वह आग्नेयास्त्र हुँकार भरता हुआ प्रद्युम्न के साधनों के पास पहुँचा और उसके हय, गज, रथ-वाहनों को घेर लिया। पुन: उसकी बड़ी-बड़ी ज्वालाओं से अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। उससे निविड़ फुलिंगों की मालाएँ उठीं। आकाश धूम से भर गया। देवगण सन्तप्त हो उठे। रण में कितने लोग गतकाय हो गये (मारे गये) यह कौन जानता है? ध्वजा-छत्रों के बाँस तड़ से टूटने-फूटने लगे। हयों, मनुष्यों एवं गजों के शरीर जलने लगे। कृष्ण की ओर से युद्ध करने वाले राजाओं के वस्त्र जलने लगे। कृष्ण के श्रेष्ठ आभूषण टूटकर गिरने लगे। इस प्रकार जब भयानक अग्नि से सन्तप्त होकर सभी जन विकल हो उठे, तब उसे देखकर मदन ने भी रण-पद्धति में छल से कार्य किया।

घत्ता— दर्भ से उद्भट, विकट एवं दूसरों को उद्विग्न करने वाली (प्रद्युम्न की) सेना वहाँ भ्रमण करने लगी। बढ़े हुए सुप्रभाव वाला तथा धनुष की सहायता से वह कामदेव (प्रद्युम्न) भी वहाँ सम्भल कर स्थित हो गया।। 249।।

(11)

प्रद्युम्न ने वारुणास्त्र छोड़ा, उसके विरुद्ध कृष्ण ने अपना पवनास्त्र छोड़ा

चतुष्पदी— तब लालकमल-पत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले उस मदन ने प्रयत्नपूर्वक वारुण (जल) अस्त्र छोड़ा, जो मधुसूदन की सेना की ओर चला। वारुणास्त्र का वह जल प्रलयकालीन समुद्र के समान उछालें भरने लगा।। छ।।

(10) 3. अ° थिरु।

(10) (3) पीडिता:।

(11) (1) मेघबाणं। (2) नारायणस्य।

सो होएवि महाघण सण्णिहु भुवणोयरु पूरंतु णिहिलु णहु।
गज्जइ गडयड-रउरव णद्दइँ तडयडंत तडिवि सरिस सद्दइँ।
पंचवण्णु उत्तुंगु सुसोहणु वलय वि सक्क-चाउ[1] मणमोहणु।
मुसलायारहँ-धारहँ वरिसइ णं हुववहहो पाण आयरिसइ।
दिम्मुह-मलिण पयंड तमोहु वि रेल्लिउ हरबलु वड्ढि [2]कोहुवि।
महिहिँ चहुट्ट चक्क थिय रहवर वुड्डु जलोहेँ णरवर हयवर।
[3]खुत्त कलहि भड मत्त महागय[4] . . . .
जा केसवेण मुक्क वायत्थु वि वारुणत्थु किउ तेण णिरत्थुवि।
णं जुवंत पवहो हइ पेल्लिउ सबलु सचिण्णु ससाहणु डोल्लिउ।
उद्दाविय धय छत्तायासहो पत्तणिव(3) होइव चमु(4) रइ तोसहो।
णहे णिवडंत विमाण णिएविणु भीसम-सुअ-सुएण चिंतेविणु।

घत्ता— आमेल्लिउ गिरिवरु भीसण दुद्धरु पवणु ते णउ सारिउ।
चूरंतु वि पक्खुवि रणंउहे(5) दक्खु वि णउ पवणेण णिवारिउ।। 250।।

महाघन के तुल्य वह वारुणास्त्र भुवन के मध्य को पूरता हुआ सम्पूर्ण आकाश में भर गया। वह वारुणास्त्र गरजने लगा। गड़गड़ाकर रौरव नाद करने लगा, बिजली के समान तड़तड़ा कर शब्द भरने लगा। आकाश में पंचवर्णी उत्तुंग अत्यन्त सुन्दर एवं मनमोहक गोलाकार इन्द्रधनुष बन गया। उसी समय मूसलाधार वर्षा होने लगी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह वारुणास्त्र अग्नि के प्राणों को ही खींच रहा हो। दिशाओं के मुख समूह को मलिन करता हुआ प्रचण्ड अन्धकार समूह रेलमठेल कर रहा था, जिस कारण हरि के सैन्य का क्रोध और भी बढ़ने लगा। मही में रथों के चक्र चहुड कर (धँसकर) जल के प्रवाह में नरवर और हयवर डूबने लगे। भट क्षुब्ध हो उठे, मत्त महागज चिंघाड़ने लगे।

तब केशव ने (अपना) पवनास्त्र छोड़ा जिसने वारुणास्त्र को निरर्थक कर दिया। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह पवनास्त्र युगान्तकालीन आँधी द्वारा पेला गया हो। उस पवनास्त्र से प्रद्युम्न की सेना अपने ध्वजा आदि चिह्नों एवं अन्य साधनों सहित डोल उठी। उस रतिवर—प्रद्युम्न की सेना, ध्वजा-छत्र, पत्र-समूह के समान आकाश में उड़ने के कारण त्रस्त हो उठी। पुन: आकाश से गिरते हुए विमानों को देखकर भीषम-सुता रूपिणी का वह पुत्र-प्रद्युम्न चिन्तित हो उठा।

घत्ता— भीषण दुर्द्धर उस पवनास्त्र के छोड़े जाने पर श्रेष्ठ पर्वत उखड़ गये। रणभूमि में उन पर्वतों को प्रत्यक्ष ही चूर-चूर होते हुए देखकर भी कोई उस (पवनास्त्र) को रोक न सका।। 250।।

---

(11) 1. अ. चु। 2. अ. को। 3-4. अ ×।

(11) (3) पत्रसमूहवत्। (4) नारायण लक्ष्यं उत्पादकः। (5) संग्राम मार्गे।

(12)

चउप्पदी— ता सहसक्खहो पहरणु मेल्लिउ।
माहवेण गिरिवरु परिपेल्लिउ।।
पुणु पईसिउ सरेण सामत्थइँ।
अरियणु मोहिउ मोहण अत्थइँ।। छ।।

इय एक्केण एक्कु णउ जिज्जइ एक्कें एक्कुणें सत्थें भिज्जइ।
एक्के-एक्कहो बलु ण कलिज्जइ एक्कें-एक्कहे माणु [1]मलिज्जइ।
एक्कें-एक्कु ण रणेउ हट्टइ पहरें-पहरें अवणीयलु फुट्टइ।
[2]पहरें-पहरें ण मम्मु वियट्टइ[3] पहरे-पहरे बंभुडु वि तुट्टइ।
पहरें-पहरें विंभिउ अमरहँ मणे पहरें-पहरें संसिउ विहि रिउ-जणे।
जं दिवत्थु सिरीहरु पेसइ तं लीलएँ रइरमणु विसेसइ।
ता कंसारि चित्तें चिंतविउ केणत्थेण एहु णउ पाविउ।
अइ अच्चरिउ वि किण्णउ लक्खिउ णिय कुलु दिव्व सरहँ जं रक्खिउ।
गय अकियत्थ सत्थ जाणेविणु अइ-कुविएण किवाणु लएविणु।
धाराधरु-सजलु वि णं जलहरु असणि समुज्जलु दिढु जय सिरिहरु।

---

(12)

माधव ने सहस्राक्ष बाण छोड़ा, उसके उत्तर में प्रद्युम्न ने मोहनास्त्र एवं दिव्यास्त्र छोड़े। उनके भी विफल होने पर कृष्ण ने चर्म-रत्न धारण कर कृपाण से युद्ध किया

चतुष्पदी—पुनः माधव ने अपना सहस्राक्ष नामक प्रहरणास्त्र छोड़ा जिससे पर्वत पिल पड़े। तब उस स्मर—प्रद्युम्न ने अपना शक्तिशाली मोहनास्त्र फेंका जिससे अरिजन मोहित हो गये।

इस प्रकार एक से एक नहीं जीत पाते थे। एक के शस्त्र से दूसरे का शस्त्र भग्न हो जाता था। एक से दूसरे का बल नहीं जाना जा रहा था। एक के द्वारा दूसरे का मान-मर्दन किया जा रहा था। एक के द्वारा दूसरा रण से नहीं हटाया जा पा रहा था। उन अस्त्रों के कारण क्षण-क्षण में अवनीतल फूट रहा था। प्रहारों से प्रहर-प्रहर में भवन ध्वस्त हो रहे थे। ब्रह्माण्ड भी टूटता सा प्रतीत हो रहा था। प्रहर-प्रहर में देवों का मन विस्मय से भर उठता था। प्रहर-प्रहर में रिपुजन भी उस युद्ध विधि की प्रशंसा कर रहे थे। जो-जो दिव्यास्त्र श्रीधर—कृष्ण ने भेजे, रतिरमण—प्रद्युम्न उनको लीला पूर्वक निरर्थक कर देता था। तब कंसारी (कृष्ण) ने अपने चित्त में चिन्ता की कि अब किस अस्त्र से इसे पाया जाय? यह देखकर कृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिस दिव्य-बाण से अपने कुल की रक्षा की जाती थी वह भी व्यर्थ सिद्ध हो गया। फिर अति कुपित होकर कृष्ण ने कृपाण हाथ में लिया। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों धराधर सजल मेघ ही हो, अथवा श्रीधर—कृष्ण की दृढ़ रूप से जय का समुज्ज्वल प्रतीक ही हो। किंकिणी तथा सैकड़ों चमरों से सुशोभित घरघर शब्दों से भरा हुआ

---

(12) 1. अ. °ण। 2-3. अ. ×।

किंकिणि-चमर समहँ सोहिल्लउ घग्घरोलि धव घेविरु सुभल्लउ।
अद्धइंद सम[4]रइ रेहंतउ जिगि जिगंतु दिणमणि सोहंतउ।
एरिसु चम्मरयणु उरे चप्पिवि ढुक्क तुरंतउ रणउहे कुप्पिवि।

घत्ता— मिल्लेविणु रहवरु स धउ स चामरु देविणु झंप खणद्धइँ।
इय भारइँ णामिय महि णिरु खामिय हरिणावेहाविद्धइँ।। 251।।

(13)

चउप्पदी— थरहरंतु पायालु वि कंपिउ।
गिरि टलटलिय अमरजणु जंपिउ।।
हा-हा-हा भणंत गउ रइवरु।
पुणु रूविणिहँ पइट्ठिउ दुहभरु।। छ।।

धाविवि रिउ रहउ[1]रे पउ मेल्लिवि हणइँ जाम असिवरु उच्चलिवि।
ता णिएवि णारएण णहच्छइँ सुर-किण्णर-णर-साव समच्छइँ।
सुंदरयरु विमाणु णहे छंडिवि लहु उयरिवि कण्हु अवरुंडिवि।
जंपइ चारु-चारु जसु लद्धउ णियणंदणु मारहुँ पारद्धउ।
तो हरि रोसाणलु उवसंतउ मुणिणा वयण सलिल संसि[2]त्तउ।

अति उत्तम, भद्र अर्धचन्द्र के समान कान्ति से शोभायमान् सूर्य समान जगमगाता हुआ सुन्दर चर्मरत्न अपने हृदय में चिपकाकर कृष्ण क्रोधित होकर तुरन्त ही रणभूमि में आ ढुका।

घत्ता— ध्वजा एवं चामर सहित रथवर को छोड़कर आधे क्षण में ही झाँप (उछाल) देकर तथा अपने पद-भार से क्षमाशील पृथिवी को उस हरि ने कृपाण के वेध से बींधना प्रारम्भ किया।। 251।।

(13)

कृष्ण का क्रोधावेग देखकर नारद चिन्तित हो उठते हैं और नभोयान से उतर कर पिता-पुत्र का परिचय कराते हैं

चतुष्पदी—(क्रोधित कृष्ण के कृपाण से—) पाताल भी थरथराता हुआ काँपने लगा। पर्वत टलटलाने (हिलने) लगे। देवगण बड़बड़ाने लगे। तब हो-हो-हो करता हुआ रतिवर चला और इससे रूपिणी दुख के भार से भर उठी।। छ।।

वह कृष्ण झपट कर जब रिपु—प्रद्युम्न के रथ पर पैर रख कर उसे मारने के लिए अपना कृपाण उछालता है तभी नभ स्थित नारद ने (यह सब) देखकर देवों, किन्नरों मनुष्यों एवं नागेन्द्रों के समक्ष ही अपना सुन्दरतर विमान आकाश में ही छोड़कर, तत्काल ही उससे उतरकर कृष्ण को आलिंगन में भर लिया और बोले—"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, जो अपने ही पुत्र को मारने का प्रयास कर यश प्राप्त करने जा रहे हो।" मुनि नारद के इन वचन रूपी जल से संसिक्त होकर हरि—कृष्ण की रोषाग्नि जब शान्त हो गई तब नारद ने उसका

---

(12) 4. अ. 'प'।

(13) 1. अ. 'धु'। 2. ब. 'चि'।

जाण सुवड्ढिउ जो संवर-घरे विज्जउ तिण्णि वलग्गउ जसु करे।
सोलह [3]भव्व-लब्भ[4] जें पाविय खगवइ-सुव पयंड रणे णाविय।
भुवणे डमरु[(1)] अहिहाणु[(2)] वि वलियउ पंचदसम संवच्छरे मिलियउ।
तुहुमि मयण किं रणु मंडवि थिउ छंडहि रहु साउहु पेक्खहिं पिउ।
सो असेस णरवरहिं णमंसिउ जसु पयाउ तइलोएँ [5]पसंसिउ।
दुव्विलसिउ परिसेसि मणोब्भुव पणवहि चलण-कमल सुह संभव।

घत्ता— इय आयण्णिवि मुणि-वयणु आणंदिउ पंकयणाहु खणे।
णिएवि सबंधु सेण्ण मरणु पुणु वि पवड्ढिउ सोउ मणे।। 252।।

(14)

चउप्पदी— वियसिय वयणइँ कुवलय णयणइँ।
णियसिर पुहइहिं लायवि मयणइँ।।
चलण जुवलु काण्हहो पणविउ कह।
कुस भडेण णं रामु आसि जह।। छ।।

(प्रद्युम्न) परिचय देते हुए पुन: कहा—हे कृष्ण यह जानो कि वियोग को प्राप्त यह तुम्हारा वह रुपिणी पुत्र प्रद्युम्न है, जो अपहरण के बाद यह कालसंवर नामके विद्याधर के घर में बढ़ा है, जिसके हाथ में तीन (दिव्य) विद्याएँ उपस्थित रहती हैं। जिसने सोलह भव्य लाभ प्राप्त किये हैं, जिसने प्रचण्ड रण में खगपतियों के पुत्रों को भी झुका दिया है, जिसने लोक में बलशाली भयंकर कन्दर्प जैसा नाम भी पाया है, और जो पन्द्रहवें वर्ष में आज तुम्हें मिल रहा है।" (फिर नारद मुनि ने प्रद्युम्न की ओर मुड़कर उससे कहा—) हे मदन, तुम भी रण माँड़कर क्यों खड़े हो? आयुध सहित रथ को छोड़ो, (सम्मुख आये अपने) पिता को देखो, जिन्हें सम्पूर्ण नरवर नमस्कार किया करते हैं, जिनका प्रताप त्रैलोक्य द्वारा प्रशंसित है, हे मनोद्भव (मदन) अब इस दुर्विलसित को छोड़कर और कमलमुख सम्भव—कृष्ण के चरणों में प्रणाम करो।"

घत्ता— इस प्रकार के मुनि वचनों को सुनकर पंकजनाभ—कृष्ण तत्काल तो आनन्द से भर आनन्दित हो उठे, किन्तु बन्धु-बान्धवों सहित अपनी सेना का मरण देखकर उनके मन में पुन: शोक बढ़ने लगा।। 252।।

(14)

पिता-पुत्र मिलाप। प्रद्युम्न अपनी दिव्य-विद्या से कृष्ण के मृत बन्धु-बान्धवों को जीवित कर कृतार्थ कर देता है

चतुष्पदी—कुवलय नेत्र वाले उस मदन ने विकसित मुख होकर अपना सिर पृथिवी पर लगा कर कृष्ण के चरण-युगल में प्रणाम किया। किस प्रकार प्रणाम किया, उसी प्रकार जिस प्रकार अतीत काल में कुश-भट ने राम को प्रणाम किया था।। छ।।

---

(13) 3. अ. लब्भ। 4. अ. लाहें। 5. ब पसं'

(13) (1) भयकर (2) कंदर्पनाम।

सुव सरीरु अइ रूविणि वसु वि   तेयड्ढु वि णं सूर सहासु वि।
अवलोयवि दिक्करि वर कर-करु   अविरल पुलयहिँ पुलइउ सिरिहरु।
सिरि चुंबिवि उच्चाइउ णेहइँ   वार-वार अवरुंडिवि मोहइँ।
रूवएँ दिहि उप्पाइय णयणहँ   आलावेण सोक्खु किउ सवणहँ।
ता णारएण वुत्तु म चिरावहि   णिय णंदणु पुर-वरि पइसारहि।
हरि जंपइ सडंगु वलु मारिउ   ससहोयर वइवसपुरि पेसिउ।
किं सोहमि हय-गय-रह हीणु वि   पुरि पइसमि णरु जेम सुदीणवि।
ता मुणिवरेण चउब्भुव वयणइँ   विहसेप्पिणु जंपिउ सहु मयणइँ।
उवसंहरि पवंचहुहो णंदण   समर-सूर जय णयणाणंदण।
कुसुम-सरेण जइहि आएसें   आणंदेण पवड्ढिय तोसें।
मोहिय जे मोहणेण वरत्थइँ[1(1)]   उज्जीविय-विज्जा सामत्थइँ।
हय-गय-रहवर उवरि सलग्गवि   हलहर पमुह णरिंद सभग्गवि।
सारणु[(2)]-सव्वसाइ-सेविउय[(3)]रु   जमल[(4)]-दसार कुंभ[(5)]-कुंभोयरु।
उम्मुच्छिय हय-गयवर[2]-वाहण   अण्णोण्णु वि णियंत विंभियमण।

अप्रतिम-सौन्दर्य के निवास-स्थल, सहस्रों सूर्यों के समान तेजस्वी तथा दिग्गज की सूँड समान भुजाओं वाले अपने उस प्रद्युम्न को देखकर श्रीधर —कृष्ण अविरल पुलकों से पुलकित हो उठे। उसका सिर चूमकर उसे स्नेह से भर उठा लिया, मोहित होकर बार-बार उसे गले से लगाया। उसका रूप देखकर अपने नेत्रों में धैर्य उत्पन्न किया और उसके साथ किये गये वार्त्तालाप से कानों को सुखी किया। उसी समय नारद ने (कृष्ण से) कहा— "अब मत देर करो। अपने नन्दन को नगरी में प्रवेश कराओ।" तब हरि ने कहा— "(इस प्रद्युम्न ने) हमारी षडंग-सेना को मार डाला है। भाई सहित स्वजनों को वैवस्वतपुरी (यमपुरी) को भेज दिया है, अतः हय, गज एवं रथों से हीन रहकर मैं क्या शोभा पाऊँगा? जिस प्रकार दीन-हीन मनुष्य नगर में प्रवेश करता है, उसी प्रकार मैं भी अपने नगर में प्रवेश करूँगा।" चतुर्भुज कृष्ण के वचनों को सुनकर मदन के साथ हँसते हुए मुनिवर ने कहा—"हे समरशूर, हे जयवीर, हे नयनानन्दन, हे नन्दन—प्रद्युम्न, अब तुम इस प्रपंच का उपसंहार (समाप्त) करो।" नारद-यति के आदेश से वह कुसुम-शर (प्रद्युम्न) आनन्द से भरकर सन्तुष्ट हुआ तथा उसने अपने मोहनास्त्र से जो (कृष्ण के भट) मोहित हुए थे, उन सभी को अपनी विद्या की सामर्थ्य से जीवित कर दिया। हय, गज एवं रथवरों के ऊपर लगकर हलधर प्रमुख सभी राजा तथा सारण (युधिष्ठिर), सव्यसाची (अर्जुन), वृकोदर (भीम), यमल (नकुल, सहदेव), दशार राज, कुम्भ (द्रोण), कुम्भोदर राजा, मूर्च्छारहित हो गये और हय, गजवर एवं वाहनों (रथों) के साथ परस्पर में एक-दूसरे को देखकर आश्चर्य-चकित मन वाले हो गये।

(14) 1. अ. वरअत्थें। 2. अ. रह

(14) (1) अर्जुन (2) युधिष्ठिर। (3) भीम। (4) नकुल-सहदेव। (5) द्रोण।

घत्ता— णिय सुव आगमणे णिरु तुट्ठ मणे आणंदिउ सारंगधरु।
परिपुण्ण मणोरहु वलेण सहुँ दूरुज्झिय णिरु दुह-पसरु।। 253।।

(15)

चउप्पदी— ता गयणंगणे सुरवर विंदइँ।
साहु वाउ किउ णव घण णदइँ।
पुण्णाहिउ वि तुहुँमि पुहईसर।
जसु एहउ तणुरुहु वि सिरिहर।। छ।।

आणंदाणणेण विहसंतइँ बोल्लिवि तलवरु रूविणि कंतइँ।
कारविय पुरिसोह तुरंतइँ सम्मज्जाविउ मग्गु पयत्तइँ।
सिंचिउ चंदणरसेण पवित्तइँ विक्खित्तइँ वर रयण विचित्तइँ।
पडिपट्टेहिँ माल विरएविणु घरे-घरे गुडि उद्धरणु करेविणु।
कुंकुमेण घरे-घरे छडउल्लउ मोत्तिय रंगावलिउ सुभल्लउ।
तोरण पारियाय पल्लव मय घरे-घरे पुण्ण-कलस पंगणि कय।
दहि-दोवक्खय थालु भरेविणु घरे-घरे जुवइयणु थिउ लेविणु।
घरे-घरे महुरु तूर वाइज्जइ घरे-घरे कण्ह पुत्तु गाइज्जइ।

घत्ता— अपने पुत्र के आगमन से सन्तुष्ट मन वाला वह शारंगधर (कृष्ण) अत्यन्त आनन्दित हुआ और सेना के साथ महान् दुःख को दूर फेंककर पूर्ण मनोरथ वाला हो गया।। 253।।

(15)

कृष्ण के आदेश से प्रद्युम्न के स्वागत के लिए सारा नगर सजाया गया। कृष्ण, रूपिणी, प्रद्युम्न, उदधिकुमारी आदि सभी मिलकर बड़े प्रसन्न होते हैं

चतुष्पदी—तब गगनांगण में सुरवरेन्द्रों ने नवीन धनों के नादों द्वारा साधुवाद किया और कहा—"हे पृथिवीश्वर श्रीधर, तुम अतिशय पुण्य वाले हो, जिसका इस प्रकार का यशस्वी पुत्र है।। छ।।

आनन्दित मुख से हँसते हुए रूपिणी के कान्त (पति कृष्ण) ने अपने तलवर (कोतवाल) से कह कर तुरन्त ही नगरी को प्रयत्नपूर्वक सुशोभित करवाया, मार्गों को साफ करवाया, पवित्र चन्दन-सा सिंचित कराया। चित्र-विचित्र श्रेष्ठ रत्नों को पूर दिया गया। प्रति पट्टों से (कपड़ों की) मालाएँ बनवाकर घर-घर में गुडिका उद्धरण कराया गया। प्रत्येक घर कुंकुम से छिड़कवा दिया गया। मोतियों की भद्र रंगावली पुराई गयी। पल्लवमय तोरण लटकवाये गये। घर-घर के प्रांगण में पूर्ण कलश रखाये गये। घर-घर में दधि, दूर्वा एवं अक्षतों से भराये गये थाल लेकर युवतिजन खड़ी की गयीं। घर-घर में मधुर तूर बजवाये गये। घर-घर में कृष्ण के पुत्र के गीत गवाये गये। त्रैलोक्य में महान् वाटिकाओं से परिपूर्ण विविध परिधियों से विभूषित जो कृष्ण का एक राजकुल था,

जो तइलोय महंतु रमाउलु विविह परिहिं भूसिउ हरि राउलु।
दुमदल मालेहिमि उम्मालिउ रंभा-थंभ सयहँ सोहालिउ।
ठाइँ-ठाइँ दिव्वंबर छाइउ ठाइँ-ठाइँ जणु कहिँमि ण मायउ।
ठाइँ-ठाइँ वेसहिँमि विसेसइं णव रसु-णट्ट-णडंति संतोसइँ।

घत्ता— एत्तहिँ स सुण्ह भीसमहो सुव हरि-बलहद्द-दसार ससेण्हं।
दम्भहँ मेलावइ जं जि सुहु तं तइलोए ण दीसइ अण्णहं।। 254।।

(16)

चउप्पदी— चल्लिउ चाउरंगु-बलु सहरिसु।
हय-गय-घडहं णिरोहिउ दसदिसु।।
छिहिउ णहंगणु छत्त धउयहिँ।
दिव्व महारह वाहिय जोयहिँ।। छ।।

सीराउहु महुमहु एक्क रहे रूविणि ससुण्ह अण्णेक्क रहे।
तणु तेयइँ रंजिय दिसि-णिवहू[1] रेहइ करि-कंधरे उवहि महू।
णं पंचाणणु हिमगिरि सिहरे सिरि संठिउ सिविया जाणवरे।

वह भी वृक्षों के पत्तों एवं मालाओं से अलंकृत केले के सैकड़ों खम्भों से सुशोभित था। प्रत्येक स्थान दिव्य-वस्त्रों से आच्छादित था। प्रत्येक स्थान पर इतने जन इकट्ठे हो गये कि वे कहीं समा नहीं पा रहे थे। स्थान-स्थान पर देशों से विशिष्ट (बनी-ठनी) नारियाँ सन्तुष्ट मन से नवों रस का नृत्य नाच रही थीं।

घत्ता— इतने में ही बहू सहित भीष्म-सुता—रूपिणी, हरि, बलभद्र एवं सेना सहित दशार राजा का मन (प्रद्युम्न) से मिलाप हो गया। उससे (उन सभी को) जैसा सुख हुआ, वह त्रैलोक्य में अन्य किसी को हुआ हो, ऐसा दिखाई नहीं देता।। 254।।

(16)

प्रद्युम्न एवं रूपिणी सहित कृष्ण गाजे-बाजे के साथ नगर में प्रवेश करते हैं

चतुष्पदी—हर्ष सहित चतुरंग सेना चल पड़ी। हय, गज के समूहों ने दशों दिशाएँ रोक लीं और योद्धाओं द्वारा हाँके गये दिव्य महारथों के छत्रों एवं ध्वजाओं से आकाशरूपी आँगन ढँक गया।। छ।।

एक रथ में हलधर और श्रीकृष्ण बैठे तथा अन्य दूसरे रथ में बहू सहित रूपिणी बैठी। अपने शरीर के तेज से दशों दिशा समूह को प्रकाशित करनेवाला उदधिमाला (दुर्योधन-पुत्री) का प्रभु वह कामदेव (प्रद्युम्न) हाथी के कन्धे पर बैठकर सुशोभित हुआ। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों हिमालय के शिखर पर सिंह ही बैठा हो। शोभा-सम्पन्न शिविका (पालकी) में पाण्डव एवं दशारों के प्रमुख राजा बैठे और सुख उत्पन्न करते हुए चले।

---

(16) (1) दिशासमूह।

पंडवहं-दसारहं पमुह णिव स चल्लिय णिरु उप्पण्ण सिव।
गायणहँ-संगीयहँ गिज्जमाण कामिणि कर चमरहिँ विज्जमाण।
वेयालिय गणहिं पढंतएहिं खुज्जय वामणहिं णडंतएहिं।
मंगल-तूरहिं रह-सद्दलेहिं वज्जंतहिं पडहहिं मद्दलेहिं।
गज्जिउ करडहँ कडयड रवेहिं हू-हू हूवतु कंबु व सरेहिं।
रणझण-झणंत झुणि तालएहिं रस कसमसंत कंसालएहिं।
भमंत-भेरि डम-डमिय डक्क खुखुदेक्खु रत्तु करि सज्जियहु डुक्क
वीणासु वंस आलावणीहिं बहु भेय-गीय-रस दावणीहिं।

घत्ता— इय पइसंति स पुरवरे रयणंचिय घरे वरिवलग्गु(2) जुवईयणु।
वोल्लंतहिं हलेसहि माअग्गए रहि वम्महु किम पेच्छमि भणु।। 255।।

(17)

चउप्पदी— काहिमि कुमरु णियंतहिं वड्ढिउ काम जरु।
केणवि कावि भणिज्जइ जेत्तहि मज्झु करु।।
अवलोयहि हे हलेसहि जाणग्गइं सरहि।
सा सक्किय थिय निय जा एयहो मणु हरइ।। छ।।

गाने वाले सुन्दर गीत गाते हुए, कामिनीजन हाथों से चमर ढुराती हुई, वैतालिकगण स्तुति पाठ पढ़ते हुए, कुब्जक वामन नाचते हुए तथा रहस-बधावा (हर्ष-बधाइयाँ) देने वाले दल, मंगल, तूर, पडह तथा मर्दल बाजे बजाते हुए चल रहे थे। करट (ऊँट) कट-कट शब्दों द्वारा गरज रहे थे। कम्ब (शंख) धू-धू धूतु स्वर कर रहे थे। तालों से रण-झण-झणन्त ध्वनि हो रही थी, कंसाल (वाद्य) रस-कस-मसन्त की ध्वनि कर रहे थे। भेरी भम-भम तथा डक्क डमडम शब्द कर रहे थे। सजे सजाये हाथियों पर खुरबुद के खुर (पैर) के समान बाजे हुडुक रहे थे। विविध भेद वाले गीतों तथा रसोद्रेक करने वाली उत्तम बाँस की बनायी गयी वीणाओं के आलाप हो रहे थे।

घत्ता— इस प्रकार जब वे सभी लोग अपने नगर में प्रवेश कर रहे थे, तब (उन्हें देखने के लिये) युवतिजन अपने-अपने रत्नजटित घरों के ऊपर चढ़ गयीं और परस्पर में बोलने लगीं कि—"हे हले, हे सखि, आगे मत रह, मैं मदन को कैसे देख पाऊँगी?"।। 255।।

(17)

नागरिक जनों द्वारा कृष्ण, रूपिणी एवं प्रद्युम्न की प्रशंसा तथा प्रद्युम्न का युवराज पट्टाभिषेक

चतुष्पदी—कुमार को देखते ही किसी कामिनी को काम-ज्वर बढ़ गया। किसी कामिनी ने दूसरी कामिनी से कहा कि—"हे सखि, जहाँ तुम हो वहीं से देखो, मेरे आगे मत सरको।" यह कहकर वह युवती सिसकती (दीर्घ श्वास लेती) हुई जिस ओर से वह मनोहर प्रद्युम्न आ रहा था, उसी ओर जा बैठी।। छ।।

---

(16) (2) अट्टालिका।

इय पउर जणु परोप्परु भालइँ भुविए वइदु महा[1]उ ण दीसइ।
किर उप्पण्णु हरिउ ता असुरें पुव्ववइ रमणे वड्ढिय पसरें।
लेविणु तक्खय गिरितले णिहियउ तहि खगवइ कहि णिय पिय सहियउ।
[2]वण कीलएं गए वालु विलक्खिउ[3] दिण्णु सकंतहे सुंदरु अक्खिउ।
धण्ण सुवण्ण-माल संवर पहु वड्ढिउ जाहि मंदिरे णाणाहु।
पुण्णाहिउ वि छइल्लु वलुद्धरु चिरभवे चिण्णु सु तउ किं दुद्धरु।
तहो माहप्पएण सं[4]जायउ दप्पोब्भड थड विहु णिय कायउ।
जो पच्चक्खु होवि धणु धारउ भुवणत्तय सु पवड्ढिय गारउ।
अइ-सकियत्थ अज्जु भीसम-सुव पउमण ण मालइ माला भुव।
किं वण्णमि हरि उण्णय मण्णउ जसु एहउ णंदणु उप्पण्णउ।
थुव्वंतुवि जणेण जय घोसइँ णिय मंदिरे पइट्ठ संतोसइँ।
अहिसिंचिवि आहरणहिँ अंचिउ सयणोहु वि सभिच्चु रोमंचिउ।

घत्ता— जुवराय पट्टु सिरें बद्धु तहो रेहइ रूविणि तणउ कह।
कणयासणे आसीणु कणयगिरिहि णं सीहु जह।। 256।।

इसी प्रकार पौरजन भी परस्पर में कह रहे थे कि भुवन में ऐसा प्रताप वाला अन्य कोई दिखायी नहीं देता। इसके उत्पन्न होते ही मन में पूर्व-बैर के बढ़ते हुए प्रसार के कारण असुर ने इसका अपहरण कर लिया था और उसे लेकर तक्षकगिरि के नीचे रख दिया था। तभी कहीं से एक खगपति वनक्रीड़ा के लिये अपनी प्रिया सहित वहाँ आया, और उसने उस बालक को देखा तथा उस सुन्दर बालक को (उठाकर) अपनी कान्ता को दे दिया। कालसंवर राजा की वह रानी स्वर्णमाला (कचनमाला) धन्य है, जिसके भवन में रहकर यह मन्मथ बड़ा हुआ था। वह मन्मथ महान् पुण्यवाला चतुर एवं बल से उत्कृष्ट है। पूर्वभव में इसने दुर्धर तप किया होगा, उसीके माहात्म्य से अत्यन्त रूपवान तथा दर्पोद्भट-समूह को धुन देने वाला हुआ। उसीके प्रभाव से वह प्रत्यक्ष ही धनुर्धारी भी हुआ, जिसका गौरव तीनों लोकों में बढ़ गया है। भीष्मपुत्री कमलमुखी रूपिणी भी आज अत्यन्त कृतार्थ है, जो कृष्ण के लिए मालती की माला के समान बन गयी है। और (कवि कहता है कि—) हरि-कृष्ण के उन्नत मान का क्या वर्णन करूँ? जिसका प्रद्युम्न जैसा (सुन्दर) पुत्र उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार लोगों द्वारा संस्तुत जयघोष पूर्वक वह कृष्ण प्रद्युम्न के साथ सन्तोष पूर्वक अपने भवन में प्रविष्ट हुआ।

स्वजनों एवं सेवकों को रोमांचित करने वाले आभूषणों से अंचित कर उसका अभिषेक किया गया तथा—

घत्ता— उसके सिर पर युवराज-पट्ट बाँधा गया। तब सुवर्णासन पर बैठा हुआ रूपिणी का वह पुत्र किस प्रकार सुशोभित हुआ? उसी प्रकार जिस प्रकार सुवर्णगिरि (सुमेरु) पर बैठा हुआ सिंह सुशोभित होता है।। 256।।

(17) 1. ब. 'थ'। 2-3. अ. कीलएँहिं णिरतेहिं पेक्खिउ। 4. ब. 'सु'।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम मोक्खाए बुह रल्हण सुव कइसीह विरइयाए। पज्जुण्ण-वासुएव-बलहद्द मेलावउ णाम तेरसमी संधी परिसमत्तो।। संधी: 13।। छ।।

पुष्फिया

छंदोऽलंकृति लक्षणं न पठितं नाश्राविसक्कागमो।
जातं हंत न कर्ण-गोचर-चरं साहित्य-नामापि च।।
सिंह: सत्कविरग्रणी: सम्भवत्प्राप्यं प्रसादं परं।
वाग्देव्या: सुकवित्व जातथ जभा मान्यो मनस्वि प्रिय:।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्रकट करने वाली बुध रल्हण के पुत्र कवि सिंह द्वारा विरचित प्रद्युम्न-कथा में प्रद्युम्न, वसुदेव एवं बलभद्र के मिलन का वर्णन करने वाली **तेरहवीं सन्धि** समाप्त हुई।। सन्धि: 13।। छ।।

पुष्पिका — कवि-परिचय

न तो मैंने छन्द, अलंकार सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ ही पढ़े हैं और न तर्क एवं आगम ग्रन्थ ही सुने हैं। मुझे अत्यन्त दु:ख है कि साहित्य नामकी भी कोई वस्तु है, यह भी मुझे कर्णगोचर नहीं हुआ; किन्तु वाग्देवी के श्रेष्ठ प्रसाद (वरदान) को प्राप्त करके ही यह कवि-—सिंह कवियों में अग्रणी बन सका है तथा सुकवियों में मनस्वी प्रिय एवं सभी के मध्य सम्मान को प्राप्त हुआ।

चउदहमी संधी

(1)

ध्रुवकं— कुसुमसर कित्ति आयट्ठियउ[1] कणयमाल संवरेण समाणउँ।
आयउ सभज्ज सुव रइ सहिउ मारुववेउ णामु खगरणिउ।। छ।।

ते स-तणय[2] स-वंध स-सहोयर स-वल स-वाहण सयलुज्जोयर।
पइसारिय णिय मंदिरे कण्हइँ सुवण-वयण-दंसण णिरु तण्हइँ।
दिण्णासण-णिवसण-भूसण सय पाहुण यह पाविति सयल वि किय।
हय-गय-कोसु-देसु तहो ढोयउ वार-वार संवर पोमाइउ।
तुहु-महु परम वंधु तुहुँ सहयरु सुव-विउय-दुह महणसु सुहयरु।
सुव णत्तणे तुहु थिउ एक्कल्लउ पइँ मुएवि को तिहुवणे भल्लउ।
कणयमाल-भीस[3]म पहु जायहिँ मिलिय स सुव दंसणे सुच्छायहिँ।
पणमिय चलण-कमल रूवए[4] कह वण देवियइमि वणदेवय जह।
ताम पयंपइ महुमह पणइणि मज्झु जि तुहुमि भाइ चिंतामणि।

चौदहवीं सन्धि

(1)

प्रद्युम्न का यश सुनकर कनकमाला अपने पति के साथ उसे देखने पहुँची। कृष्ण एवं रूपिणी ने उनका बड़ा सम्मान किया

ध्रुवक— कुसुमशर की कीर्ति से आकर्षित होकर कनकमाला भी कालसंवर के साथ आ गयी। मरुद्वेग नामक खगराज भी अपनी पत्नी एवं रति नाम की पुत्री के साथ वहाँ आ गया।। छ।।

सुन्दर गात्र वाले अपने पुत्र—प्रद्युम्न के दर्शनों के लिए अत्यन्त उत्सुक उस कृष्ण ने भी पुत्रों, बान्धवों, सहोदरों, सेना, वाहनों तथा समस्त उद्योतक सेवकों सहित उन सबको अपने भवन में प्रवेश कराया तथा उन्हें स्वयं ही आसन एवं सैकड़ों प्रकार के वस्त्राभूषण प्रदान किये। (आगत—) सभी लोगों ने पाहुन जैसी प्रवृत्ति की (अर्थात् भेंट के लिए आते समय अनेक प्रकार के उपहार साथ में लाये) राजा कालसंवर (विद्याधर) भी घोड़ा, हाथी, कोष (उपहार स्वरूप) लेकर आया और प्रदान कर बार-बार प्रमुदित हुआ। (यह सब देखकर कृष्ण ने भावाभिवेश में भरकर उस कालसंवर से कहा—) "तुम ही मेरे परम बन्धु हो, तुम्हीं मेरे सहचर हो, पुत्र-वियोग के महान् दुख का अनुभव करने वाले तुम ही मेरे शुभकारी हो। पुत्र के नर्तन में (बाल-लीला) में अकेले तुम ही (उसके रक्षक) थे। तुम्हें छोड़कर त्रिभुवन में और कौन इतना भला हो सकता है? कनकमाला पुत्र-दर्शन के उत्साह से युक्त भीष्म-पुत्री — रूपिणी से मिली और उसने रूपिणी के चरण कमलों में प्रणाम किया। किस प्रकार? जिस प्रकार कि वनदेव, वनदेवी के चरण कमलों में प्रणाम करता है। यह देखकर मधुमथन की प्रणयिनी

---

(1) (1) आकर्षित। (2) पुत्र पुण्यासह। (3) रुक्मिण्या। (4) [illegible]।

हउँ णिद्दइव वि सुव-सिसु कीलइँ दिट्ठु ण रंगमाणु णिय-लीलइँ।
तुहुँ पुण्णाहि संवर वल्लहि परिपालिउ पइँ अमरहँ दुल्लहि।
तुहु महु आसावेल्लिहि वइ[(5)] थिय तुहु महो दालिद्दि णियहिँ सइसिय।
विहु रण्ण[(6)] वेअ पारि णिवडंतहेँ तुहुँ जि तरंडउ हुउ वुड्डंतिहेँ।

घत्ता— इय सुललिय महु रक्खहँ खेयर मिहुणु थुणेवि गय गावइँ।
रूविणि-वसुएवहो सुएण पीणियाइँ णिरु सविणय भावइँ।। 257।।

(2)

ता संवरेण कज्ज गइ जोइय चिरु वित्तंतु वत्त सुणि वेइय[(1)]।
[1]जहिँ-जहिँ तुव णंदणु तहिँ हय-गय जहिँ-जहिँ तुव णंदणु महिँ रह-धय[2]।
जहिँ तुव णंदणु तहं मणि रयणइँ जहिँतुव णंदणु तहिँ वर-सयणइँ।
जहिँ तुव णंदणु तहिँ महि-रिद्धी जयलच्छि[(2)] जि लच्छि वसइँ सिद्धी।

रूपिणी ने कहा—"मुझे तो तुम चिन्तामणि-रत्न जैसी भासती हो, मैं तो भाग्यहीना एवं निर्दया हूँ, जो अपने पुत्र की शिशु-क्रीड़ाएँ देखने से वंचित रही। मैं उसकी अपनी लीलाओं से उसे रेंगते हुए भी नहीं देख सकी। मैं उसे अपनी लीलाओं में रंगा हुआ भी नहीं देख सकी। हे संवरवल्लभे, तुम अतिशय पुण्यशालिनी हो, जो तुमने देवों के लिये भी दुर्लभ इस प्रद्युम्न को पाला। तुम निःसन्देह ही मेरी आशा रूपी लता के लिए बाड़ी के समान हो, तुम ही मुझ दरिद्रिनी के लिये लक्ष्मी के समान हो। अपार दुःख रूपी समुद्र में पड़ी हुई मुझे डूबते से बचाने के लिये तुम ही नौका सिद्ध हुई हो।

घत्ता— इस प्रकार (कृष्ण एवं रूपिणी द्वारा) सुललित मधुर अक्षरों से संस्तुत होकर खेचर-मिथुन अपने-अपने गाँव को जाने के लिए तैयार हुए। रूपिणी वासुदेव के पुत्र ने भी अत्यन्त भावनापूर्वक उस मिथुन को प्रणाम किया।। 257।।

(2)

प्रद्युम्न का विद्याधर-पुत्री रति के साथ विवाह

तभी कालसंवर ने कार्य की गति देखकर प्रद्युम्न सम्बन्धी चिरकालीन वृत्तान्त वार्ता (कृष्ण आदि उपस्थित सभी के लिये) इस प्रकार निवेदित की—"जहाँ-जहाँ तुम्हारा नन्दन गया वहाँ-वहाँ घोड़े, हाथी पाये। जहाँ-जहाँ तुम्हारा नन्दन गया, वहाँ-वहाँ पृथिवी पर ध्वजा सहित रथ उपस्थित रहे। जहाँ-जहाँ तुम्हारा नन्दन गया, वहाँ-वहाँ उसने मणि-रत्न पाये। जहाँ-जहाँ तुम्हारा नन्दन गया, वहाँ-वहाँ उसने उत्तम शय्या, आसन प्राप्त किये। पृथिवी पर जहाँ-जहाँ तुम्हारा नन्दन गया, वहाँ-वहाँ उसने ऋद्धि पायी। जहाँ तुम्हारा नन्दन है, वहाँ निस्सन्देह ही जयलक्ष्मी एवं सिद्धि निवास करती है। इसकी बार-बार कितनी स्तुति की जावे? जो कुछ इसे सम्भव

---

(2) 1-2. अ. ×।

(1) (5) वाडि। (6) समुद्रे।

(2) (1) कथिता। (2) जयति लक्ष्मी।

केत्तिउ पुणु थणिज्जइ एयहो जं संभवइ ण सुरवर लोयहो।
एव पयंपिवि रइ तहो दंसिय देव-देव णरवरहँ णमंसिय।
मयरद्धयहो एह कुल उत्ती होउ सइव सुरवइहि णिवत्ती।
किज्जउ पाणिग्गहणुमि एयहो णिज्जिय चंदक्कवि तणु तेयहो।
महुमहेण तं वयणु समिच्छिउ सहसा जोइसिंदु आउच्छिउ।
लगुग्गमि वासरे णिरु सोहणे रिक्खे सुहावणे असुह णिरोहणे।

घत्ता— विरइउ विवाहु रइ-मणमहहो महुमहेण संवरेण सु तोसइँ।
सिद्धत्थय दहीदूवंकुरहिँ जुवईयणु मंगल णिग्घोसइँ।। 258।।

(3)

ताम गव्व-पव्वयमारूढइँ रुवइँ मणे मच्छर णिव्वूढइँ।
जंपिउ सच्चहाम आयण्णहिँ मइमि ण तुहुँ तिणसम कहिँ मण्णहिँ।
धिट्टिठ पिसुणि स-केस रक्खि लहु जीवंति ण छुट्टहि एवहिँ महु।
जइवि धरेइ सुसरुव सुएउ वि दसदसार संजुउ बलएउ वि।
अह पइसरहि सरणु णियणाहहो अहव सुवहो भाणुहि दिढि-बाहहो।
विज्जाहरवइ भुवणे सुसारउ जइ हले रक्खइ जणणु तुहारउ।

है वह उत्तम देव लोकों को भी नहीं।" इस प्रकार कहकर कालसंवर ने देवेन्द्रों एवं नरेन्द्रों द्वारा नमस्कृत उस कृष्ण के लिए विद्याधर पुत्री रति को दिखाया और कहा कि—"यह रति नामक कन्या मकरध्वज के योग्य कुलीन कन्या है। उसके लिए सदैव ही सुख की कारण बनेगी। चन्द्र एवं सूर्य के तेज को भी निर्जित कर लेने वाले मकरध्वज का इस कन्या के साथ पाणिग्रहण कीजिए। मधुमथन ने कालसंवर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और तत्काल ही ज्योतिषीन्द्र से मुहूर्त्त पूछा। उसने लग्नोदय का अगला दिन अत्यन्त शुभ्र, सुहावना तथा अशुभ निरोधक नक्षत्र वाला बतलाया।

घत्ता— मधुमथन एवं कालसंवर ने शुभ-सिद्धि-सूचक दही, दूब एवं अंकुरों के द्वारा तथा युवतिजनों के मंगल-घोष पूर्वक सन्तुष्ट मन से उस मन्मथ का रति के साथ विवाह करा दिया।। 258।।

(3)

वसुदेव, मधुमथन एवं बलदेव आदि की मध्यस्थता से रूपिणी एवं सत्यभामा का बैर-भाव दूर हो जाता है

प्रद्युम्न का रति के साथ पाणिग्रहण होते ही रूपिणी गर्व रूपी पर्वत पर सवार हो गयी। तब अपने मन में रूपिणी के प्रति मत्सर में डूबी हुई सत्यभामा ने कहा—"सुनो रूपिणी, मेरे समान तुम क्या हो? मैं तुम्हें तृण के बराबर भी नहीं मानती। हे धृष्टे, हे पिशुने, तूने अपने केशों की सुरक्षा इतनी जल्दी ही कर ली? मेरे जीते जी वे इस प्रकार छूट नहीं पायेंगे? यद्यपि बलदेव एवं दस हजार राजाओं के साथ तुम्हारा सुन्दर पुत्र तुम्हारी रक्षा करने वाला है, तो भी या तो तुम्हें अपने नाथ कृष्ण की शरण में जाना पड़ेगा अथवा दृढ़ भुजा वाले मेरे पुत्र भानु को मानना पड़ेगा। भुवन में सारभूत विद्याधर-पति तुम्हारा पिता भी यदि तुम्हारी रक्षा करना चाहे तो भी हे सखि, (वह असमर्थ ही रहेगा क्योंकि) मैं तुम्हारे खल्वाट का भद्रपना दिखाऊँगी ही तथा अपने पैरों

तइ खलि भद्दावणु दंसेसमि णिय-चलणहँ तुह चिहुर मलेसमि।
दुच्छिय इम वयणहिं किर जामहिं आहासइ सुकेय-सुय तामहिं।
काइँ वहिणि किर मइँ पच्चारहि दुत्तयणेण कहहिं किं खारहि।
कहिं तुहुं कहिं तुव सुउ कहि आयउ भणु मरद्दु सुहियए तुव जायउ।
णारएण एहु णरु मायारउ मेल्लिउ तुहु वहहि किं गारउ।
एम चवंति सच्च वसुएवहिं वारिय महुमहेण बलएवहिं।
धरि कर कमले सच्च भीसम सुव सीलायर सवणय-गुण-जुव।
सुमहुर-वयण सुइड्ढु संजोएवि विणिवि महयर णरहिं पमोयवि।
काराविउ खंतव्वु पयत्तइँ महएविउ थियाउ समचित्तइँ।

घत्ता— ताम असेसइं णरवरइं विज्जाहरवइ पुरइँ तुरंतइँ।
पेसिय हक्कारा णियय णर मयण-विवाह कज्जें सिरिकंतइँ।। 259।।

(4)

णिम्मिउ मंडउ विविह पयारहिं कणय-घडिय घण खंभ सुसारहिं।
मरगय-मणि कुंभियहिमि पयडउ पोमराय उच्छलय णिविडउ।
जरढ पयंग-पयाउ वहंतिय पुव्व भित्तिवर रवि-[1]मणि मयकिय।

से तुम्हारे सिर के केशों को रौंदूँगी ही।" इस प्रकार दुर्वचन बोलकर जब वह सत्यभामा दुःख से स्थित हुई, तभी रूपिणी सुकेत-सुता से बोली—"क्या है बहिन? दुर्वचनों से मुझे क्यों फटकार रही हो? तीखे वचन क्यों कह रही हो?" तब वह सत्यभामा बोली—"तू ही कह कि तेरा जाया पुत्र कहाँ से आया? अरी मरी कलमुही बोल, तेरा पुत्र कहाँ से आ गया? नारद ने यह मायारत नर (तेरे पास) छोड़ दिया है, जिससे तुम इतना गर्व धारण कर रही हो।" जब वह सत्यभामा इस प्रकार बकझक कर रही थी तभी वसुदेव, मधुमथन एवं बलदेव ने उसे निवारा (रोका) तब सत्यभामा ने भी शीलाचार तथा विनय गुणसम्पन्न उस भीष्म पुत्री रूपिणी के हस्तकमल थामकर, सुमधुर वचनों को भली प्रकार सँजोकर उससे विनय की। इससे महत्तर नरों ने प्रमुदित होकर प्रयत्नपूर्वक उन्हें परस्पर में क्षमा कराया। महादेवी सत्यभामा भी समचित्त होकर स्थित हो गयी।

घत्ता— तब सम्पूर्ण नर प्रधानों एवं विद्याधर-पतियों के नगरों को तुरन्त ही श्रीकान्त (कृष्ण) ने मदन के विवाह की सूचना हेतु अपने विश्वस्त हलकारे (सन्देशवाहक) भेजे।। 259।।

(4)

प्रद्युम्न के विवाह-हेतु विशिष्ट मण्डप का निर्माण किया गया

विविध प्रकार के सुवर्ण-घटित सारभूत ठोस खम्भों से मण्डप का निर्माण कराया गया, जिसमें मरकत-मणि के कलशों एवं पद्मराग मणियों से अत्यन्त भरे हुए थालों को स्थापित किया गया। जरठ (प्रलयकालीन) सूर्य के समान प्रताप को धारण करने वाले उस मण्डप के पूर्व-भाग की दीवार सूर्यकान्त-मणियों द्वारा निर्मित की गयी।

---

(4) (1) सूर्यकान्तमणि।

अवरासा[(2)] ससि-मणिहिमि णिम्मिय णं छणइंद सो हसइ तहिं थिय।
णील-महाणीलहँ रुइ रिद्धउ उत्तर-दाहिण भित्तिउ सिद्धउ।
चउदुवार अमियासा झरण जहिं वर दिव्व वि लंबिय तोरण।
कयली-दंड पउर सोहावणु णिरु विचित्त चित्तहँ मण गवणु।
मोतिय-[1]झंवुक्कहिं रेहंतउ मणि-मऊह दित्तिए मोहतउ।
छत्त-कलस-धय-दप्पण चमरहिं कुसुम-रस[2]सिएँ मंडिउ भमरहिं।
दि[3]व्वाणंबरेहिं पछाइउ तहिं सुर-णर-खेयर-जणु आयउ।
अइ सुविसालु महंतु महाकरु तं सलहेइ कवणु अवहु वि णरु।

घत्ता— जहिं सरहिं भाव णव-णट्ट-रसु गथ डिज्जइ सुह-भामिणिहिं।
गमसरि सर भेयहिं गीउवरु गिज्जइ अमर-विलासिणिहिं।। 260।।

(5)

एरिसे सुरेंद गेहयारए णिविट्ठा णरिंद सोहए तारए।
जहिट्ठिराइँ पंडवा सकउरवा महा भडोह भंडणं णिरउरवा।
कलिंग-वंग-गंग-णाड-कीरिया तु[1]रुक्क-ढक्क-मगह-कस्समीरिया।

पश्चिम भाग की दीवार चन्द्रकान्त मणियों द्वारा निर्मित कराई गयी। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों पूर्णचन्द्र ही वहाँ स्थित हो कर हँस रहा हो। उत्तर एवं दक्षिण दिशा की भीतें सुरुचि नील एवं महानील नामक मणियों द्वारा सिद्ध की गयीं। उस मण्डप के चारों दरवाजों पर अमृत झरने वाले दिव्य तोरण लटक रहे थे। कदली-दण्डों से वह मण्डप-भवन, चित्र-विचित्र रूप से अत्यन्त सुशोभित हो रहा था। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों कामदेव का उपवन ही हो। वह मण्डप मोतियों के झुमकों (गुच्छों) से सुशोभित, मणि-किरणों की दीप्ति से मोहक छत्र, कलश, ध्वज, दर्पण, चमर, भ्रमरावलि युक्त पुष्प-मालाओं एवं दिव्य-वस्त्रों से आच्छादित था। उसमें सुर, नर तथा खेचर जन आने लगे। वह मण्डप अत्यन्त विशाल, उन्नत एवं शोभा-सम्पन्न था, उसकी संरचना क्या किसी बुद्धि-हीन व्यक्ति के लिये सम्भव थी?

घत्ता— जहाँ (जिस मण्डप में) मंगलमुखी भामनियों द्वारा नव-नाट्य-रसों के भावयुक्त स्वरों से गम्मतें की जा रही थीं और कहीं अमर-विलासिनियों द्वारा ग, म, स, रे, स आदि स्वर भेद वाले श्रेष्ठ गीत गाये जा रहे थे।। 260।।

(5)

प्रद्युम्न का 500 कन्याओं के साथ विवाह कार्य आरम्भ। इस अवसर पर लगभग 31 देशों के नरेश उपस्थित हुए

इस प्रकार अतीव सुन्दर इन्द्र-विमान की आकृति वाले उस मण्डप में नरेन्द्र-जन बैठे। युधिष्ठिर आदि पाण्डव, भयानक कौरवों सहित महाभटों की भीड़ में बैठे। उनमें से कलिंग, बंग, गंग, णाट (कर्णाटक), कीर, तुरुष्क, टक्क, मगध, काश्मीर, निर्दोष ऋद्धि वाला मालवा, सुप्रसिद्ध वराट (विदर्भ), वोट एवं लाड, आभीर,

(4) 1. ब. माणु। 2. ब. मा। 3. अ. गि। (4) (2) पश्चिमदिशा।

(5) 1. ब. कु।

तहिंपि अमल-मालवी-सरिद्धिया वराड-वोड-लाडया पसिद्धया।
अहीर-गउड-गज्जणा णराहिवा फुरंत-हार कोंकणा महाहिवा।
अहंगयाल-[2]चंग-कण्ह डेसरा सकच्छयास-सोरट्ठ गुज्जरेसरा।
तिलंग-तिउर-सिंधुआ वलुद्धरा वेलाउला महाहवम्मि दुद्धरा।
ससंभरे-सकेरला समिद्धया महेसरे समुब्भिया सचिंधया।
जोजाहु [3]वास भत्तिवंत सा उहा कण्णउज्ज उत्तराहिवा हयादुहा[(1)]।
सदक्खिणे ससेणि सयल खेयरा समागया कया विवाह आयरा।

घत्ता— इयए णरणाहहँ सुललिय वाहहँ कण्हहँ पंचसयहँ वरहँ।
रई[(2)] कुरु[(3)] सुव सरिसहँ वड्ढिय हरिसहँ कणय-मउड-कंकण करहँ।। 261।।

(6)

मंगलु वि पुरंधिहिं घोसियउ जायव-वलु मणे संतोसियउ।
पुलइयउ सीरि सिरहिरइँ सहु रूविणि परिउसिय णिहय-दुहु।
वज्जंत भेरि पडुपडह वरा कंसाल-ताल-सरि विलि सुसरा।
धु[1]मु धु[2]मिय मुयंग बलास सया वज्जंतिहु-डक्कंगुलि पहया।

गौड एवं गजना (गजनी) के नराधिप, स्फुरायमान हारधारी कोंकण के महाधिप, अहंगयल, चंग, कण्ह, डेसर, कच्छ, आस, सोरट्ठ एवं गुर्ज्जर के ईश्वर—स्वामी दुर्धर एवं महासंग्राम के लिए व्याकुल तिलंग, त्रिपुर एवं सिन्धुक तथा समृद्ध सांभर एवं केरल के महेश्वर अपनी-अपनी ध्वजाओं के साथ उपस्थित हुए। कृष्ण के पुत्र-वियोग से अत्यन्त दु:खी एवं कृष्ण-भक्त कन्नौज के उत्तरवर्त्ती जोजाकभत्ति (जैजाकभुक्ति) नरेश आयुध लेकर आये। प्रद्युम्न के विवाह के प्रति आदर-भावना रखकर दक्षिण-श्रेणी के समस्त विद्याधर राजा भी उपस्थित हो गये।

घत्ता— इस प्रकार स्वर्णमुकुट एवं कंगन-धारी उस नरनाथ प्रद्युम्न का प्रवर्धित हर्षोल्लासपूर्वक विद्याधर पुत्री रतिकुमारी एवं कुरु (दुर्योधन) पुत्री उदधिकुमारी जैसी सुललित भुजाओं वाली 500 श्रेष्ठ कन्याओं के साथ वैवाहिक-कार्य प्रारम्भ हुआ।। 261।।

(6)

प्रद्युम्न का वैवाहिक-कार्य प्रारम्भ (विवाह-विधि)

पुरन्ध्रियों के द्वारा मंगल-गान घोषित किये गये। यादवों की सेना (इससे) मन में अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। श्रीधर (कृष्ण) के साथ सीरी (बलदेव) भी पुलकित हो उठे। रूपिणी का दु:ख भाग खड़ा हुआ। भेरी बजने लगी। श्रेष्ठ पटु-पटह बजने लगे। सटि-सटि, विलि-विलि के मधुर स्वरों के साथ कंसाल, ताल एवं ढिविल बजने लगे। धुम-धुमि-धुम धुमिय स्वर के साथ मृदंगम तथा अंगुलि के प्रहत होकर सैकड़ों लासों के साथ डक्क बाजे बजने

(5) 2. अ. वं°। 3. अ. आ°।

(6) 1. अ. धु°। 2. अ. धु°।

(5) (1) स्फोटित दु:खा। (2) रतिनाम विद्याधर पुत्री। (3) उदधिमाला दासा सह 500 कन्या विवाहिता।

णच्चंति मणोहरु कामिणिहिँ गयवाल-मरालइँ गामिणिहिँ।
उब्भिय पवणाहय विविह धया ³घूलिय अणेय मय-मत्त-गया।
मंडिय सवेय रहवर-तुरया सुपसाइय भिच्च स सामरिया।
गयणंगणु छत्तहँ छाइयउ सिगिरि उच्चवणु इव राइयउ।
अहिसिंचेविणु इय वहू करइँ सुपसाइयाइँ रइ-रस धरइँ।
लग्गुग्गमे आसण्णइँ कियइँ णिय पय पिह मुह दंसण थियइँ।
फेडिउ पडु पाणिग्गहणु किउ साणंदागणु सयणोहु थिउ।

घत्ता— आगय रसग्गि जि तेत्थु जिय वहुएँ जलोग महुमहणइँ।
परिपुण्ण मणोरह सत्थ हुव कुसुमसरहो परिणयणइँ।। 262।।

(7)

पउमिणिहिमि [1]जह पच्छइ सरु[2(1)] वर-वेल्लिहिँ णं वेढियउ तरु।
ताराहिमि छण-ससि-दिंवु जहा दिक्करिणिहिँ गउ परियरिउ तहा।
णीहरियउ वरु माइहिँ घरहो[(2)] अइ विविह महासोहा हरहो।
पंचमु सए सुवहु संजुयउ चउरियहिँ गंपि वइसिवि थियउ।

लगे। गज-गामिनी अथवा हंसगामिनी मनोहर कामिनियों के द्वारा नाच किये जा रहे थे। पवन से आहत होकर विविध ध्वजाएँ फहरा रही थीं। अनेक मदमत्त गज भूषित किये गये। तीव्रगति वाले घोड़े एवं रथवर सजाये गये। प्रसन्न चित्त होकर भृत्यगण अपने स्वामी के कार्यों में लीन होकर कार्यरत थे। गगनांगन छत्रों से आच्छादित था। जो मेरुपर्वत के उपवन के समान सुशोभित हो रहा था। इस प्रकार सुप्रसादित तथा रति-रस-धारी उन दोनों—वर-वधू का अभिषेक किया गया। लग्नोदय पर दोनों को साथ-साथ कर दिया गया। प्रिया अपने पति के मुख-दर्शन हेतु सम्मुख खड़ी कर दी गयी। अन्तर्पट फेरा गया, पाणिग्रहण किया गया और स्वजन समूह प्रसन्न मुख हो उठे।

घत्ता— उस कुसुमशर — प्रद्युम्न के विवाह के अवसर पर विवाह-रस में मग्न जो-जो लोग वहाँ आये, वे सभी वसुदेव के घर — मधुमथन के द्वारा परिपूर्ण मनोरथ वाले हुए।। 262।।

(7)
प्रद्युम्न के वैवाहिक कार्यक्रम

जिस प्रकार सरोवर कमलनियों से ढँका हुआ रहता है, वृक्ष जिस प्रकार उत्तम लताओं से वेष्टित रहता है, पूर्णमासी का चन्द्रबिम्ब जिस प्रकार तारागणों से घिरा हुआ रहता है और जिस प्रकार श्रेष्ठ हथिनी को गज घेरे रहता है, उसी प्रकार वह वर — प्रद्युम्न विविध प्रकार की महाशोभाओं वाले माता के घर से अपनी पाँच सौ बहुओं के साथ बाहर निकला और चौरी (विवाह-वेदी) पर जाकर स्थित हो गया। उसी समय वहाँ प्रेक्षण—

(6) 3. अ. भू।
(7) 1-2. अ. जिह पिहेव्यिउ सरु।

(7) (1) सरोवर (2) तस्मान्गृहात्।

पारंभिउ तहिं पेच्छणउ वरु पयडिय णवरसु णडु सत्त सरु।
गाइज्जइ-गेउ मणोहरउ हरि-सर-सीरिहिं णामाहरउ।
काणीण दीण दालिद्दियहँ मग्गण-गण वेयालिय सयहँ।
दालिद्द-छुहाणल-तविय-तणु उण्हाविउ कणय-जलेण पुणु।
पीणिय णह तोसिउ पउरजणु[3] सम्माणिउ णिहुलु [3]सुवण्ण जणु।
इय एसु पयारहिं विहिय ताम आसंधिय दिवस चयारि जाम।

घत्ता— तइलोय पियामहु णाणहरु काम-मोह-भय-वज्जिउ।
सो सिव-सरि सह इव हंसु जह सो जिण भत्तिएँ पुज्जिउ।। 263।।

(8)

इय संजाए विवाहे णरेसर आउच्छिवि हरि-वल परमेसर।
गयणिय-णिय णयरहो आणंदइँ कुमुव णाइँ वियसाविय चंदइँ।
दुक्खु-दुक्खु वि संवरपुर राणउँ सपसायवि सलहेवि अइणाणउँ।
सपिउ ससेण्णु सवाहणु जामहिं मोक्कलिउ गउ खगवइ तामहिं।

(दृश्य-नाटक) प्रारम्भ हो गया। नव-रसों का संचार करने वाले नाटक एवं सप्तस्वर वाला संगीत सुनाई पड़ने लगा। हरि, स्मर (प्रद्युम्न), सीर (बलदेव) के नाम ले लेकर के मनोहर गीत गाये जाने लगे। दरिद्रता रूपी क्षुधा की भूख की अग्नि से सन्तप्त शरीर वाले कानीन (कुमारी कन्याओं से उत्पन्न पुत्र), दीन, दरिद्री, माँगने वाले भिखारियों के समूह तथा सैकड़ों वैतालिकों को स्वर्ण-रूपी जल से स्नान कराया गया। पौर-जनों को खिला-पिला कर खूब सन्तुष्ट किया, समस्त स्वजनों को सम्मानित किया। इस प्रकार लगातार चार दिनों तक वैवाहिक विधियाँ भली-भाँति होती रहीं।

घत्ता— त्रैलोक्य के पितामह (के समान), सम्यग्ज्ञानधारी, काम, क्रोध एवं अहंकार से रहित, शिवश्री— मोक्षलक्ष्मी की सभा के लिए हंस के समान जिनेन्द्र (नेमिनाथ) की भक्तिपूर्वक पूजा की।। 263।।

(8)

सत्यभामा प्रद्युम्न-विवाह से पराभव अनुभव कर अपने पुत्र भानु का विवाह रत्नचूल की विद्याधर-पुत्री स्वयंप्रभा से कर देती है

इस प्रकार विवाह के सम्पन्न हो जाने पर इसी नरेश्वर, परमेश्वर कृष्ण एवं बलदेव से आज्ञा लेकर चन्द्रमा द्वारा विकसित कुमुदों के समान आनन्दित होकर अपने-अपने नगर को चल दिये। मेघकूटपुर के अतिज्ञानी राजा कालसंवर प्रद्युम्न का विवाह देख-देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा प्रशंसा करने लगे और जब वह खगपति अपनी प्रियतमा, सेना और यान-वाहनों के साथ उस नगर को छोड़कर चला गया, तब उस कुसुमशर—प्रद्युम्न के

---

(7) 3. अ. सुरुण।

(7) (3) नागरीलोकः।

कुसुमसरहो परिणयणु णिएप्पिणु सच्चहिं दुह-जलणइँ तप्पइ तणु।
परिहउ असहंतिएँ सुमहंतउ विज्जवेउ णामेण तुरंतउ।
पेसिउ रयणसंचपुरे मणहरे गओ सो रयणचूल खगवइ घरे।
सम्माणिउ साणंदु पयंपइ णिसुणि देवपहु पिय[1] इय जंपइ।
रविकंतहें जा धूव सयंपह दिज्जउ महो तणमहो मुणि-मण मह।
महुयर [1]वयण-पंति आयण्णिय लहु णिय सुय तें भाणुहे दिण्णिय।
किउ पाणिग्गहु तुट्ठ पहिट्ठइँ सम्माणिय असेस सयणट्ठइँ।

घत्ता— ता तिहुअण खोहणु जण-मण-मोहणु सुह-जणंतु णियसयणहँ।
महुमह पिय घरिणिहिं पह जिय तरणिहिं तितिदिंतु विहिंणयणइँ।। 264।।

(9)

अणुदियहु वि माणंतउ सु[1]हुसरु जुवइ वयण कंजय-रस-महुयरु।
किंतिलया छाइय भुवणोयरु पालिय दहविह-धम्म महातरु।
सेविज्जंतु संतु बुह-विंदहिं सलहमाणु वंदारय[2] विंदहिं।

परिणय संस्कार से सत्यभामा दुःखाग्नि में तपकर क्षीण होने लगी। अपने महान् पराभव को सहन न कर पाने के कारण उस सत्यभामा ने तुरन्त ही विद्युद्वेग नामक विद्याधर को मनोहर रत्नसंचयपुर भेजा। वह रत्नचूल नामके खगपति के यहाँ पहुँचा। सम्मान प्राप्त उस विद्युद्वेग ने रत्नचूल से हर्षपूर्वक कहा—"हे देव, हे प्रभु, कृष्णप्रिया—सत्यभामा ने कहा है कि—"रविकान्ता (रत्नचूल की पत्नी) की स्वयंप्रभा नामकी जो पुत्री है, उसे महामुनि के समान मन वाले मेरे पुत्र (भानुकर्ण) को दे दीजिए।" उस महत्तर की वचन-पंक्ति सुनकर उस रत्नचूल खगपति ने तत्काल ही उस सत्यभामा के पुत्र भानुकर्ण को अपनी पुत्री स्वयंप्रभा दे दी। तुष्ट, प्रहृष्ट होकर उसने पाणिग्रहण कराया और सभी आये हुए स्वजनों को सम्मानित किया।

घत्ता— तब त्रिभुवन को भी क्षुब्ध करने वाले, जन-मन को मोहित करने वाले तथा स्वजनों में सुख उत्पन्न करते हुए कृष्ण एवं अपनी प्रभा से सूर्य किरणों को जीतने वाली रानियों के नेत्रों को उन दोनों वर-वधू रूप कर्ण एवं स्वयंप्रभा ने सन्तोष प्रदान किया।। 264।।

(9)

प्रद्युम्न भोगैश्वर्य का जीवन व्यतीत करने लगता है। सुरेश्वर कैटभ पुण्डरीकिणी नगरी में विराजमान सीमन्धर स्वामी के समवशरण में पहुँच कर प्रवचन सुनता है

वह स्मर (प्रद्युम्न) युवतियों के मुख रूपी कमल-रस का मधुकर बनकर प्रतिदिन सुख भोगने लगा। दशविध धर्म रूपी महावृक्ष का पालन करने वाले उस प्रद्युम्न की कीर्ति समस्त संसार में छा गयी। बुध-वृन्दों द्वारा सेवित, वृन्दारक वृन्दों द्वारा प्रशंसित वह मदन विविध क्रीडा-विनोदों को करते समय बीते हुए काल को नहीं जान पाया

(8) 1. अ. घ"।

(8) (1) कृष्णस्य।

(9) (1) प्रद्युम्न। (2) देवतावृंदे :

विविह-विणोय-कील विरयंतउ मयणु ण मुणइँ कालु इय जंतउ।
ता तेत्थु जि अणेक्कु कहाणउँ संजायउ बहु सोक्ख णिहाणउँ।
अक्कव कइडिहु णाम सुरेसरु सूर सएहिं सेविउ परमेसरु।
लवणोयहि पमुहेहिं रमंतउ सिरि[(3)]सयंभु जलणिहि पयलंत[1]उ।
गिरि-गुह-वण-उववण विचरंतउ अकिय-जिणेसर-बिंब णमंतउ।
दीवस-पुर वर णयर णियंतउ पुव्वविदेह पढम संपत्तउ।
विसइ पुक्खलावइ सुपसिद्धी णयरि पुंडरिंकिणि जण-रिद्धी।
तहिं सीमंधरु सामि जिणेसरु समवसरण सहियउ ति जगेसरु।
दिट्ठउ णाण-पिंडु अमरिंदइँ संथुउ सविणय सुमहुर-सद्दइँ।
उवविट्ठउ णिय कोट्ठइँ गंपिणु सुणिउ कहंतु अलोउ-लोउ वि जिणु।

घत्ता— बंध-मोक्ख-दव्वाइँ गइ सुहुम पयत्थ थूल णिद्देसइँ।
णव-पय णय[(4)] धम्माहम्म कह णाण-भेय संहाण सलेसइँ।। 265।।

(10)

विविहाहरण-किरण-विप्फुरियउ चवइ सुरिंदु विणय-जल-भरियउ।
गय भव मज्झु पयासहि सामिय जग णे[1]सर उत्तम-गइ-गामिय।

उसी समय वहाँ विविध सुखों की खान स्वरूप अनेक घटनाएँ (कहाणउँ) घटीं।

सैकड़ों देवों द्वारा सेवित, परमेश्वर पदधारी तथा सूर्य के समान (तेजस्वी) कैटभ नामका सुरेश्वर लवण आदि प्रमुख समुद्रों में रमण करता हुआ श्री स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त पर्वतों, गुफाओं एवं वनों एवं उपवनों में विचरण करता हुआ अकृत्रिम जिनेश्वरों के बिम्बों को नमस्कार करता हुआ, द्वीपों, उत्तमपुरों एवं नगरों को देखता हुआ पूर्व विदेह के प्रथम भाग में आया। वहाँ पुष्कलावती नामके प्रसिद्ध देश में जनों से समृद्ध पुण्डरीकिणी नामकी नगरी थी। वहाँ तीनों लोकों के ईश्वर सीमन्धर स्वामी जिनेश्वर समवसरण में विराजमान थे। उस अमरेन्द्र ने उन ज्ञानपिण्ड प्रभु के दर्शन किये और विनयपूर्वक सुमधुर शब्दों से स्तुति की। फिर वह अमरेन्द्र कैटभ जाकर अपने कोठे में बैठ गया और उन जिनेन्द्र से अलोक-लोक का कथन (उपदेश) सुनने लगा।

घत्ता— बन्ध, मोक्ष, द्रव्य, गतियाँ, सूक्ष्म एवं स्थूल पदार्थों का निर्देश, नव पदार्थ, नव नय, धर्म-अधर्म की कथाएँ, ज्ञान के भेद, संस्थान एवं लेश्याएँ (आदि विषयक प्रवचन) सुने।। 265।।

(10)

सीमन्धर स्वामी द्वारा मधु एवं कैटभ के पूर्वभव वृत्तान्त कथन

विविध आभरणों की किरणों से स्फुरायमान तथा विनयजल से भरे हुए उस सुरेन्द्र ने कहा—"हे स्वामिन्, उत्तम गति में ले जाने वाले हे जगतसूर्य, मेरे पूर्वभवों को प्रकाशित कीजिए।" तब कन्दर्प रूपी सर्प के दर्प को

---

(9) 1. ब. 'ज्जत'।

(10) 1. ब. जणे॰।

(9) (3) स्वयम्भूरमण। (4) नैगमादि-नव नय.

ता कंदप्प-सप्प दप्पाहरु कहइ जिणेसरु णिसुणइँ सुरवरु।
तुम्हइँ वेवि हुंत णिरु गोमय[1] असरिस सलिल णिवाय वसइ [2]सय।
पुणु संजाय वेवि दियवर सुव अग्गिभूइ-मरुभूइ विणय जुव।
मुव तहिं सावय-वय पालेविणु [3]हुव सोहम्मि-तियस जाएवि पुणु[4]।
खयकालइँ अमरत्तु मुवाविय उज्झाउरि मणुव तणु पाविय।
पुण्णभद्द मणिभद्द वणीवर दिढ चारित्त दयालुव वयधर।
गय जीविए णरदेहु पमेल्लिवि थिय सहसारेक्क हुव पेल्लिवि।
तहिं विण्णि वि हय दइवें चालिय इंदवित्ति इंदवयहो टालिय।
णिय माहप्पु अवरु किं लेक्खइ आउक्खइँ जयम्मि को रक्खइँ।
कोसलपुरे सुवण्णणाहहो घरे धारिणि उवरे णइँ सयदलु सरे।
उप्पण्णा महु कयडिहु णामइँ दुद्धररिउ रणे रइ असमाणइ।

घत्ता— उग्गय कराल करवाल कर महि समग्ग साहेविणु।
पसइं असज्झु किउ तवयरणु सल्लेहण मरणेण मरेप्पिणु।। 266।।

हरने वाले जिनेश्वर ने कहा—"हे सुरवर, सुनो— तुम दोनों (अर्थात् कैटभ एवं मधु) पूर्व भव में शृगाल शिशु थे और सदा असदृश जल वाले झरने के पास रहा करते थे। पुनः वे दोनों (शृगाल-शिशु) एक द्विजवर के विनय-गुण सम्पन्न अग्निभूति एवं वायुभूति नामके पुत्र हुए। वहाँ वे श्रावकव्रतों का पालन करते हुए मरे और पुनः सौधर्म स्वर्ग में देव हुए। आयु पूरी होने पर अमर-पद छोड़ा ओर अयोध्यापुरी में मनुष्य शरीर पाकर दृढ़ चारित्रधारी, दयालु एवं व्रतधारी पूर्णभद्र, मणिभद्र नामके दो वणिग्वर हुए। आयु पूरी होने पर नर देह छोड़ी और वे दोनों सहस्रार-स्वर्ग में जन्म लेकर स्थित हुए। वहाँ से भी भाग्य के मारे इन्द्रवृत्ति वाले इन्द्र-पद को छोड़कर वे दोनों चले। अपने माहात्म्य का दूसरा कौन लेखा करेगा? आयु के क्षय होने पर जगत् में कोई किसी की रक्षा कर सकता है?

कोशलपुर में सुवर्णनाभ नामके राजा के घर में धारिणी माता के उदर से मधु-कैटभ नाम से उत्पन्न हुए। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों सरोवर में सहस्रदल कमल ही उत्पन्न हुए हैं। वे रण में दुर्धर रिपु के लिए रतिपति के समान थे।

घत्ता— उग्र कराल तलवार को हाथ में लेकर समग्र मही को वश में कर तत्पश्चात् तुमने असाध्य तपश्चरण किया और सल्लेखना मरण-विधि से मरण कर—।। 266।।

(10) 2. अ. पु०। 3-4. अ. हुअइ सग्गि तियस आएविणु।

(10) (1) शृगाली।

(11)

अच्चुव सग्गोवरि संजाया सुरवरिंद दिट्ठ वरकाया।
अण्णुहुँजेविणु अमयासा सिरि जंबूदीवे भरहखेत्तंतरि।
अत्थि विसउ सोरट्ठु रवण्णउँ सरवर-सरि-वण उववणछण्णउँ।
तहिँ बारमइ-णाम पुरि पायड पयडिय रयण णाइँ सा गयघड।
तहिँ पहु वसइ अद्ध-चक्केसरु किण्हु णामु रुवणिपहिँ पिउवरु।
ताहँ मणोहरु सुउ विक्खायउ सग्गहो तुव भायरु तहिँ आयउ।
मुणिवि वयणु जग गुरुहिँ णमंतउ अमरु पयोहर-वहेण तुरंतउ।
गउ अचिरेण जेत्थु ससहोयरु सरिवि सत्त-भवणेह महाभरु।
दिणयर-कोडि-किरण इव पहयरु मणिमउ दारु करेवि करे सुरु।
सो लहु महुमह थणे पइट्ठउ णिहिल णरेसर लोयहँ दिट्ठउ।

घत्ता— जंपइ फुरियारु पहु लइ णरिंद हउँ पइँ संतोसमि।
णिय पियवत्थुच्छले जाहि तुहुँ घल्लेसहि तहे तणुरुहु होसमि।। 267।।

---

(11)

अच्युत देव एक मणिमय हार कृष्ण को भेंट करता है

—वे दोनों अच्युत स्वर्ग में उत्पन्न हुए, जहाँ उन सुरवरेन्द्रों को उत्तम काय वाला देखा गया। अमृताशन देव की श्री को भोगता रहा।

जम्बूद्वीप स्थित भरतक्षेत्र में सौराष्ट्र नामका एक सुन्दर देश है। जो सरोवर, नदी, वन एवं उपवनों से आच्छादित है। वहाँ द्वारावती नामकी सुप्रसिद्ध पुरी है, जहाँ (निरन्तर) रत्न प्रकट होते रहते हैं। वह ऐसी प्रतीत होती है मानों वह स्वागत-घट ही हो। वहाँ अर्धचक्रेश्वर प्रभु रहते हैं, जिनका नाम कृष्ण है और जो रूपिणी के पतिवर हैं। उनका प्रसिद्ध पुत्र अत्यंन्त मनोहर है। उन्हीं के यहाँ स्वर्ग के मार्ग से तुम्हारा भाई भी आया है।" त्रिजगत के वचनों को समझकर तथा उन्हें नमस्कार कर वह देव मेघमार्ग से तुरन्त ही चला। वह तत्काल ही वहाँ पहुँचा जहाँ उसका सहोदर भाई था। वह महान् स्नेह से भर उठा तथा उसके सात पूर्वभवों का स्मरणकर वह देव करोड़ों सूर्यों की किरणों समान प्रभा करने वाला मणिमय हार हाथों में लेकर शीघ्र ही कृष्ण के राजभवन में प्रविष्ट हुआ जिसे वहाँ उपस्थित समस्त राजा लोगों ने देखा।

घत्ता— फड़कते हुए अधरों वाले उस प्रभु-देव ने कहा—"हे नरेन्द्र, मैं आपको सन्तुष्ट करता हूँ। अपनी प्रियवस्तु के छल से वह तुम जिसे दोगे, मैं उसी का पुत्र होऊँगा।"।। 267।।

(12)

मा वियप्पु धरि राय णियमणे अवयरेमि इह दहमे वार दिणे।
इय कहेवि गउ सुरु स-वासहे हार [1]ससहर-जोण्ह-भासहे।
ता विसज्जि अत्थाणु राइणा हार चोज्ज अणुराय गाइणा।
कइवयस्स सेवयहँ सह खणे चक्कपाणि [2]वितंलु णियमणे।
पढम पियहे अप्पमि णिओयरो[3] पच्छुणिय घर ताम रइवरो[4]।
चवइ णियय जणणिहिं णमंतउ पुव्व बंधु महो विहि-विहित्तउ।
तुज्झु उवरे अवयरइ तह अहं करमि माइ णउ मुणहिं धीमहं।
ता चवेइ भीसमहो पहु सुवा णलिण वेल्लहल पवर वर भुवा।
णरु कहिं त चक्कवइ माणउ अमरु कहिमि सुरवइ समाणउ।
जिणवरोव्व सरु समु किज्जज्जए तणउं अवरु किं तुज्झु पुज्जए।
होउ मज्झु जंववइ पियसही विणयवंत गुण-गण महाणिही।
हुवउ एहि सुउ तुहुँ [5]पसाएणं णिसुणिऊण जंपिउ समाइणं।

---

(12)

जाम्बवती को कामरूप अँगूठी देकर प्रद्युम्न उसे सत्यभामा के रूप के समान बना देता है

(वह देव पुन: बोला—) "हे राय, अपने मन में विकल्प धारण मत करो। मैं दसवें दिन यहाँ जन्म लूँगा।" यह कहकर चन्द्रमा की चाँदनी के समान प्रतिभासित होने वाले हार का धारक वह देव अपने निवास स्थान में चला गया। अनुराग-गति वाले उस राजा (कृष्ण) ने हार से आश्चर्य-चकित होकर अपनी सभा विसर्जित कर दी और तत्काल ही अपने कतिपय सेवकों के साथ उस चक्रपाणि ने अपने मन में विचार किया कि—"क्यों न मैं इस हार को अपनी प्रथम पत्नी (सत्यभामा) को भेंट स्वरूप दे दूँ और बाद में अपने घर चलूँ?"

इसी बीच में रतिवर—प्रद्युम्न ने आकर अपनी माता को नमस्कार किया और बोला—"विधि के विधान से मेरा पूर्वजन्म का एक बन्धु (भाई) है, जो तुम्हारे उदर से जन्म लेना चाहता है। उसके लिए हे माता, मैं ऐसा उपाय कर दूँगा कि उस गर्भ की स्थिति को कोई भी बुद्धिमान नहीं समझ पावे।" तब कमल-लता के समान उत्तम दीर्घ भुजाओं वाली भीष्म प्रभु की पुत्री—रूपिणी ने कहा—"तुम जैसा नर-पुत्र कहाँ होगा, जिसे चक्रवर्ती भी मानता हो। अमर और देवेन्द्र भी क्या तुम्हारी बराबरी कर सकते हैं? जो स्मर कामदेव (प्रद्युम्न) जिनवरों को भी सावधान किये रहता है, ऐसा तू अकेला ही मेरे लिए पर्याप्त है, मुझे अब अन्य पुत्र की आवश्यकता नहीं। हाँ, मेरी एक प्रिय सखी जाम्बवती है, जो विनयशीला एवं गुण समूह की महानिधि है। यदि तुम उससे प्रसन्न हो, तो यह देव-पुत्र उसी से उत्पन्न हो (तो अच्छा)।" रूपिणी का कथन सुनकर रतिवर (प्रद्युम्न) ने कहा—"ऐसा ही होगा।"

---

(12) 1. ब. हण्ण'। 2. अ. धि'। 3. ब. 'णो। 4. ब. 'णे। 5. ब. समाइणं।

घत्ता— वर कामरूव अंगुच्छलिय ता दिण्णीसरेण सिक्खाविय।
णियदेहहो तेण तुरंतिएए सच्चहि रूव रिद्धि मणे भाविय।। 268।।

(13)

करेवि सुकेय सुवहे समुणिय तणु तह सिंगारु [1]विण्हु परियण जणु।
ण्हाएवि सुह सलिलेण चउत्थइँ तीय भणंत जुवईयण सत्थइँ।
संचल्लिय रेवयगि[(1)]रि वर वणे कुसुमरसोव[2] सुरहि सालिवि वणे।
सरल-तमाल-ताल तरु दाविणि चंदण तरु[3]-चुवरस करि हय वणि।
इय णियंति गय तहिं जहिं हरि थिउ पढम पियए समु संकेउ वि किउ।
ता दिट्ठी सुंदरि सवडम्मुह सुह जल सरे सरुरुह वियसिय मुह।
अमुणंतेण वि तेण पवंचइँ पियदंसणे वड्ढिय रोमंचइँ।
घित्त स रयणमाल गलकंदले णं सिसु-ससि णिएवि उडुगण [(2)]चले।
दिण्ण वेल साय[(3)]रइं णहंगणे पुणु कीलेवि अणुरत्तइँ णियमणे।

घत्ता— फिर उस स्मर-प्रद्युम्न ने उत्तम कामरूप अँगूठी का छल्ला उस जाम्बवती को देकर उसे सिखा-पढ़ा दिया। उस जाम्बवती ने भी अपने शरीर से तुरन्त ही सत्यभामा के रूप की ऋद्धि का अपने मन में विचार किया।। 268।।

(13)

कृष्ण ऊर्जयन्तगिरि पर मुद्रिका के प्रभाव से सत्यभामा दिखाई देने वाली जाम्बवती को देव-प्रदत्त हार पहिना देते हैं

(जाम्बवती ने उस अँगूठी के प्रभाव से) सुकेत-पुत्री — सत्यभामा के समान शरीर बनाकर विष्णु के परिवार-जनों के योग्य शृंगार-चिह्न धारण कर लिया। पुन: चौथे दिन शुभ-जल से स्नान किया। इस कारण युवतिजनों ने उसे स्वच्छ घोषित कर दिया।

वह जाम्बवती कुसुम रसों से सुरभित, शालवृक्षों से सुशोभित, सरल देवदारु, तमाल एवं ताल वृक्षों से युक्त तथा चन्दन वृक्ष से चूते हुए रसों से आहत हाथियों से व्याप्त रैवंतगिरि (गिरनार) पर्वत की ओर चल पड़ी। वह खोज-बीन करती हुई वहाँ पहुँची, जहाँ हरि—कृष्ण विराजमान थे उस (जाम्बवती) ने उन्हें अपनी प्रथम प्रिया (सत्यभामा) के समान ही संकेत किया। तभी हरि ने अपने सम्मुख विकसित मुख वाली उस सुन्दरी को देखा मानों शुभ्र जल से भरे हुए सरोवर में विकसित कमल ही हो। कृष्ण ने (जाम्बवती के) प्रपंच को नहीं समझा। उस प्रिया को देखते ही उनका मन रोमांचित हो उठा। उन्होंने अपनी रत्नमाला उस (प्रपंचनी जाम्बवती) के गले में डाल दी। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों बालचन्द्र के निकट चंचल उडुगण ही एकत्रित हो गये हों। अथवा मानों समुद्र ने आकाशरूपी आँगन को अपनी लहरों से ही तरंगित कर दिया हो। पुन: अपने मन में अनुरक्त होकर उन दोनों ने क्रीड़ाएँ की।

---

(13) 1. अ. चि°। 2. अ. ल्ल°। 3. अ. ॰°।

(13) (1) गिरिनाम्नो। (2) आकाशे। (3) समुद्रेण।

ता अच्चुव चइ दहब्भंतरे थिउ अवयरेवि णाइँ समदलु सरे।
अविरल पुलयइँ [4]फुल्लिय देहइँ रइ विरामि जिय रइ तणु सोहइँ।
फेडिवि अंगुलीउ[(4)] करसाहहो णिरु णिम्मल णह-मणि रुइराहहो।
दरिसाविउ सरूउ णिय-णाहहो रिउ-एणयहँ रणांगणे वाहहो।
अक्खिउ [5]णिसुणि देव सुहसारहो विलसिउ एहु दुक्खु धणुधारहो।

घत्ता— जंववइ णियवि कर णिहिवि मुहुँ मणेवि भिउ णारायणु।
एउ कहिंमि पवंचु ण दिट्ठु मइं तिहुवण चोज्जुप्पायणु।। 269।।

(14)

सुर-असुरहँ किण्णरगण दीसइ असरिसु सर पवंचु किं सीसइ।
पिए जंत[(1)]हो माहप्पु पसंसमि णं पयंगु हउँ दीवं दंसमि[(2)]।
किर णव-णलिण दीहदलणेत्तहे मयणुप्पाइय परिहव तेत्तहिं।

उसी समय अच्युत-स्वर्ग से चयकर वह (कैटभ का जीव) देव उस जाम्बवती के गर्भ में अवतरित हुआ। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों सरोवर में सहस्रदल—कमल ही अवतरित हुआ हो। प्रफुल्लित देह वाली उस जाम्बवती का शरीर अविरल पुलकों से भर गया। रति से विरमित होने पर उसकी देह कामदेव की पत्नी — रति के समान सुशोभित होने लगी। उस जाम्बवती ने अत्यन्त निर्मल प्रभावाली तथा मणियों से जटित उस सुन्दर अँगूठी को अँगुली से निकाल कर रणांगण में शत्रुरूपी मृगों के लिए व्याध (बहेलिया) के समान अपने नाथ कृष्ण को अपना वास्तविक रूप दिखा दिया और कहा — सुख के सारभूत हे धनुर्धारी, सुनो—"लो तुम अब इस दुख को भोगते रहो।"

घत्ता— जाम्बवती को निकट में देखकर नारायण — कृष्ण ने विस्मित होकर हाथों से अपना मुँह ढँक लिया और कहा—"त्रिभुवन में चोज (आश्चर्य) उत्पन्न करने वाला ऐसा प्रपंच मैंने कहीं भी नहीं देखा।" ।। 269 ।।

(14)
प्रपंच का रहस्य खुलने पर नारायण — कृष्ण आश्चर्यचकित हो उठते हैं। सत्यभामा के साथ वह अपने घर वापिस लौट आते हैं

"...उस कामदेव — प्रद्युम्न के असाधारण प्रपंच के विषय में क्या कहा जाय? (सामान्य व्यक्ति की तो बात ही क्या) वह सुर, असुर एवं किन्नरों को भी दिखायी नहीं देता। हे प्रिये, यदि मैं नवीन नलिन के दीर्घ दल के समान नेत्र वाले उस प्रद्युम्न के माहात्म्य की प्रशंसा करूँ तो उसी प्रकार होगा, जैसे मैं सूर्य को दीपक दिखाऊँ। उस मदन—कामदेव के द्वारा किया गया पराभव भी वैसा ही आश्चर्यकारक है। सत्यभामा को वह माला भेंट

---

(13) 4. अ. पुंछिय। 5. ब णि।

(13) (4) मुद्रिका।

(14) (1) प्रद्युम्नस्य। (2) सूर्यस्य दीपे भउ उद्योत।

सच्चहिँ देमि ताम सो टालिय तुहुं णिय द[3]इवें महु इह मेलिय।
जाहि सभवणहो पुण्ण-मणोरहे अणुहुंजहि सुहु अइ अणुवमु सहे।
गयसाता[4] विलुलंत महाधय रइ-रस-वस मुकेउ खगवइ[5]-सुय।
संपत्तिय समीउ हयरिट्ठहो[6] णं सुरसरि पवाहु ससिइट्[7]ठहो।
थियइँ वेवि किसलय सयणायले कुसुमरस धवलिय अलि णहयले।
मित्तइँ बिहिमि परोप्परु णेत्तइँ मिलियइँ णिरु सराइं कय चित्तइँ।
ता सउहम्महो मणिगण फुरियउ सच्चहे गब्भवासि अवयरियउ।
मेल्लेविणु विमाणु ससि पहयरु ससिसेहरु णामें सो सुरवरु।

घत्ता— गउ सरहसु सारंगधरु णियमंदिरहो स-पिउ[8] संतोसइँ।
विज्जिज्जमाणु चल-चामरहिं वंदीयण थुणंत जय घोसइँ।। 270।।

(15)

ता सोहग्ग-गव्व णिव्वूढउ विण्णिवि माण-[1]करिंदारूढउ।
बिहि उप्पण्ण तणय सुमणोहर एक्कहिँ दिणे अणेय लक्खणधर।
संवु-सुभाणु णाम णिम्मल मण जग-जीविय णावइँ सावण-घण।

करनी थी उसे तो उस प्रद्युम्न ने टाल दिया और भाग्य से तुम्हें यहाँ मेरे पास भेज दिया। हे सखि, अब पूर्ण मनोरथ होकर अपने निवास पर जाओ और अत्यन्त अनुपम सुखों का अनुभव करो।" यह सुनकर वह जाम्बवती अपनी महाध्वजा फहराती हुई अपने भवन को चली गयी। इधर, खगपति सुकेतु की पुत्री वह सत्यभामा रतिरस के वशीभूत होकर नारायण के पास पहुँची। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों गंगानदी का प्रवाह ही समुद्र के पास पहुँच गया हो। वे दोनों आकाश में स्थित भ्रमरों से युक्त कुसुमरस से धवलित शैयातल पर स्थित हो गये। परस्पर में दोनों के नेत्र मिले। फिर हृदय से हृदय मिल कर एक दूसरे की श्वासें मिलने लगीं। तभी मणिगणों से स्फुरायमान शशिशेखर नामका वह सौधर्म देव शशिप्रभा वाले विमान से चयकर सत्यभामा के गर्भ में अवतरित हुआ।

घत्ता— ढुराए जाते हुए चंचल चमरों से सम्मानित तथा जयघोष करते हुए बन्दीजनों से युक्त वह शारंगधर — कृष्ण हर्षित होकर सन्तुष्ट प्रियतमा — सत्यभामा के साथ रथ में बैठकर अपने भवन में जा पहुँचा।। 270।।

(15)

जाम्बवती का पुत्र शम्बुकुमार सत्यभामा के पुत्र सुभानकुमार को द्यूत-विधि में बुरी तरह पराजित कर देता है

तब सौभाग्य के गर्व से परिपूर्ण सत्यभामा एवं जाम्बवती दोनों ही मान रूपी हाथी पर आरूढ़ हो गयी। एक दिन उन दोनों ने अनेक लक्षणधारी सुन्दर पुत्र उत्पन्न किये।

निर्मल मन वाले उन दोनों पुत्रों के नाम शम्बु एवं सुभानु रखे गये। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों जगत् को प्राण देने वाले सावन के मेघ ही हों, अथवा मानों यादव कुल रूपी आकाश के सूर्य-चन्द्र ही हों, अथवा मानों

---

(15) 1. अ. गइंदा।

(14) (3) भाग्य योग। (4) जंबुवती। (5) सत्यभामा। (6) नारायणस्य। (7) शशिइट्ठ=समुद्रस्य। (8) प्रियासह।

णं जायवकुल णह-ससि-दिणयर णं पच्चक्ख वे वि मयणहो सर।
णं णिय जणणिहिँ आसा-तरुवर णं केसव कित्तिहे विण्णि वि कर।
मेल्लेविणु सिसु-वउ सुह-सायर हुव-जुवाण विण्णाण कलायर[1]।
मउड कुंडल वरहिँ विहूसिय कडिसुत्तय कंकणहिँमि भूसिय।
विण्णिवि जुवइयण मणमोहण विण्णिवि पडिभड भंड-णिरोहण।
रहवर-हय-गइंद वाहंतिवि विण्णिवि सह हिंडंति भडंतिवि।
ता एक्कहिं आणंदिय पियरहँ पारंभियउ जूउ-विहि कुमरहँ।
स धण छोह णिवडण दुह-तत्तउ संबु कोडि सोवण्णहँ जित्तउ।
परियत्तिउ सु दुम्मिय मणु मउला वेवि वयणु कुंचेवि तणु।

घत्ता— गउ संबुकुमारु पहिट्ठमणु णिय जणणिहें आवासहो।
सहयर सएहिं परिवारियउ छणउडुवइ णह भासहो।। 271।।

(16)

एवहिं विलक्ख गय सच्चहाम अत्थाणे विण्हु-वल पुरइ ताम।

वे दोनों प्रत्यक्षतः मदन के बाण ही हों अथवा मानों अपनी-अपनी माता के आशा-रूपी वृक्ष ही हों। अथवा मानों वे दोनों ही केशव की कीर्त्ति रूपी दो हाथ ही हों। सुख के सागर वे दोनों ही अपना शैशव व्यतीत कर विज्ञान एवं कलाओं के धारी युवक हो गये। मुकुट एवं कुण्डलों से विभूषित तथा कटिसूत्र और कंकणों से सुशोभित वे दोनों ही युवतिजनों के मन को मोहने वाले और शत्रुभटों के भंड (कलह) को रोकने वाले थे। वे रथवर को जोतते घोड़ों पर सवारी करते और गजेन्द्रों पर आरूढ़ होते थे। इस प्रकार वे दोनों साथ ही साथ घूमते-भटकते थे। तभी एक दिन माता-पिता को आनन्दित करने वाले उन दोनों कुमारों ने द्यूत-विधि आरम्भ कर दी। अपने धन के विछोह (जुए में पराजय के कारण सुभानु कुमार) दुःख से सन्तप्त हो उठा। शम्बुकुमार ने उससे एक कोटि सुवर्ण-मुद्राएँ जीत लीं। इस कारण सुभानु का मन भीतर ही भीतर घुटने लगा। अपना माथा नीचाकर तथा शरीर को संकुचित कर रहने लगा।

घत्ता— तारा-नक्षत्रों के बीच में सुशोभित पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान वह शम्बुकुमार अपने सैकड़ों सहचरों के साथ प्रहृष्टमन होकर अपनी माता के आवास पर गया।। 271।।

(16)

मुर्गे की लड़ाई में पराजित कर शम्बु, सुभानु के सुगन्धित द्रव्य को भी अपने विशिष्ट सुगन्धित द्रव्य से नष्ट कर देता है

सुभानु कुमार की पराजय के कारण सत्यभामा बिलखती हुई आस्थान (राज्यसभा) में बैठे हुए विष्णु एवं बलदेव के सम्मुख गयी और (जाम्बवती के मायावी सुपुत्र की) गर्हा करती हुई बोली—"जाम्बवती के मायावी

---

(15) (1) चंद्र।

गरहंति चवइ मायाविएण कय कवडइ जंववइहि सुएण।
जुएण वि हाराविउ सुभाणु लिय कणय-कोडि णिम्महि विमाणु।
एवहिँ तुम्हहँ णरवर णियंतु कुव तंवचूल[1] पणए रमंतु।
भज्जइ भिडंतु रत्तच्छु जस्स कणयहो बे-कोडिउ सो जितस्स।
देसइ जंपिवि मेल्लिय विहंग ते चलिर खलिर उद्दिर अहंग।
कयउद्ध कंठ केसर रउद्द जुज्झंति मुक्क अइ-गहिर-णद्द।
चल पक्ख घाय घुम्मंत तट्ठ णह-चंचू पहरहिं व्रणिउँ णट्ठ।
णिय पक्खि-पेक्खि सच्चंगएण भज्जंतु वि रोस वसंग[1]एण।
वसु अग्ग तेउ दोच्छियउ संवु किं एत्तिएण भणे वहहिं गव्वु।
मेल्लहु इह विण्णवि विविह दव्व मयणाहि पमुह जे भुवणि भव्व।
जिज्जइ गंधेण वि गंधु जइवि[2] कोडिउ-सुवण्ण चत्तारि तइवि।
अप्पइ इय मण्णिउ विहिमि झत्ति मयणाणु एण कय बुद्धि-सत्ति।
घत्ता— तिल डहेवि पउर किउ [2]चुण्णु लहु परिमल बहल सुवंधहँ[3]।
परिसेसिउ णिय गंधेण णिरु गंधु असेसहँ[4] गंधहँ।। 272।।

पुत्र—शम्बु ने मेरे सुपुत्र —सुभानु के साथ छल-कपट कर उसे जुए में हरा दिया है और उस निर्भय एवं अहंकारी ने उस (सुभानु) से एक करोड़ स्वर्ण (-मुद्राएँ) ले लिया है। अतः अब, हे नरवर, तुम्हारी देखरेख में (शम्बु एवं सुभानु में से) जिसका रक्त-वर्ण की आँखों वाला ताम्रचूड़ (मुर्गा) मुर्गी के साथ प्रेमपूर्वक रमण करता हुआ एवं भिडन्त करता हुआ पराजित हो जायगा वह विजेता को दो कोटि सोना देगा।" ऐसा कह कर उन्होंने अपने-अपने स्वस्थ पक्षी छोड़े। वे लड़खड़ाते हुए, उछलते हुए कण्ठ ऊँचा उठाये हुए केशर —अयालों को रौद्र बनाये हुए अत्यन्त गम्भीर नाद करते हुए जूझने लगे। चंचल पंखों से घातकर घूमते हुए नखों एवं चोंच के प्रहारों से एक-दूसरे को घायल कर भाग खड़े होते थे। (इसी बीच में) सत्यभामा के पुत्र ने अपने पक्षी को भागता हुआ देखकर वसुदेव के आगे ही रुष्ट होकर शम्बु को दोषी ठहराते हुए कहा—"मात्र इतनी विजय से ही तुम अपने मन में अहंकारी बन गये हो? भुवन में भव्य मदन—कामदेव आदि प्रमुखों के सम्मुख अब यहाँ हम दोनों ही विविध (बहुमूल्य) द्रव्य को दाँव पर लगावें और जिसका सुगन्धित द्रव्य दूसरे के सुगन्धित द्रव्य को जीत लेगा वही (विजेता) चार कोटि स्वर्ण को प्राप्त करेगा।" इसे भी उसने अपने मन में मान लिया और इस प्रसंग में भी मदन — कामदेव के अनुज शम्बु ने झट से अपनी बुद्धि की शक्ति से विचार कर लिया और उसने—

घत्ता— तत्काल ही तिलों को जलाकर प्रचुर मात्रा में चूर्ण बनाया और उसे इतना सुगन्धित बना दिया कि उसने अपनी गन्ध से सुभानु के सुगन्धित द्रव्य की समस्त सुगन्धि को नष्ट कर दिया।। 272।।

(16) 1. ब °ह°। 2. ब °ण्ण°।

(16) (1) कुक्कुट युग्मेन। (2) यद्यपि। (3) लेप्यां गन्धाना। (4) तिल चूर्णेन।

(17)

स सच्चहाम ताम कोव जुत्तिया चवेइ होउ[1] [1]एणयवहि णिउत्तिया।
वरं वरप्पुहाए[2] जस्स अंवरं णिहिप्पए वि तेण तस्स कव्वुरं।
सुवण्ण अट्ठ-कोडि ए रत्नमए रुयंशिला दिव्वंवल जिज्जए।
पदंसिया पसंस विज्ज थामिणं सुसंवुणा सिणिद्ध दिति कामिणं।
फुरंतया सुवत्थ विविह सुद्धया सुभाणु वत्थरइ खणे णिसिद्धिया।
विणिज्जियं धणंपि तत्थ तेण जं गहेवि दीण लोयविंद वंदिणाण जं।
पमाण माय दिव्व-कणय-कोडिहिं पया[3] असेस पूरियाः कया दिहिं।
थुउ जएण कित्ति-वेल्लि कंदउ स अम्मिया[4]स अंधिवस्स कंदउ।
सविक्कमो गुणट्ठ [2]वायवंतउ इलाइ लोउ होइ तह णिरुत्तउ।
थिउ सुभाणु मलिय माणु असि[3]य आणणो भणेइ सच्चहा महोउ कउतुकं पुणो।
विचित्तयं गहेवि लहु पसाहणं करेहु तुरिउ बे वि तुरिय वाहणं।
जिणेइ जस्स अस्सु[5] जो ण हरइ जणमणं सोढेइ तस्स सुप्पयासु एक्क कोडि वर धणं।

(17)

शम्बुकुमार दिव्य-वस्त्रों की प्रतियोगिता में भी सुभानु को पराजित कर देता है

तब निरन्तर कोप से युक्त रहने वाली उस सत्यभामा ने कहा—"अब यह विधि अपनायी जाय कि—"जिस श्रेष्ठ (व्यक्ति) की उत्तम प्रभा से उसका वस्त्र (अम्बर) कर्वुर नामक रत्न की प्रभा को जीत लेगा उसे आठ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ समर्पित की जायेंगी।" यह कहकर उसने जगत को जीतने वाले दिव्य-वस्त्र उस (शम्बु) को दिखाये। तब उस कामदेव — प्रद्युम्न ने भी अपनी प्रशंसनीय विद्या का चमत्कार कर दिखाया। उसने शम्बु को अत्यन्त स्नेहपूर्वक दैदीप्यमान काम्य (अभिलषित) सुन्दर एवं विविध प्रकार के सुन्दर वस्त्र प्रदान किये। शम्बु के उन स्फुरायमान वस्त्रों ने सुभानु के वस्त्रों की रुचिरता को क्षण भर में समाप्त कर दिया। इस प्रकार उस शम्बु ने आठ करोड़ स्वर्ण मुद्रा वाले उस दिव्य धन को भी जीत लिया और उसे लेकर धैर्यशाली ने दीन-हीन एवं बन्दीगणों को दान कर दिया, जिससे समस्त प्रजाजनों की इच्छाएँ पूर्ण हो गयीं। कीर्त्ति रूपी बेल के कन्द के समान वह शम्बु अपनी माता तथा अन्धकवृष्टियों की आशाओं का पुंज था। उसकी जगत में स्तुति की गयी। वह विक्रमशाली अष्टगुणों से युक्त तथा निरन्तर दानवीर था। उसके कारण पृथिवी के लोग धन्य हो उठे। धवलानन उस सुभानु का मुख अपनी पराजय के कारण मलिन हो गया। यह देखकर सत्यभामा बोली—"मेरा एक और कौतुक हो।" विचित्र शरीर वाले दो घोड़ों को तुरन्त तैयार करो। जिसका घोड़ा जन-मन का हरण नहीं कर पायेगा। (वह एक कोटि मुद्रा हार जायगा) और जिसका घोड़ा जीतेगा, वह उससे एक कोटिवर धन प्राप्त करेगा।

(17) 1. अ. °त्था°। 2. अ. °या°। 3. अ. °मि°।

(17) (1) पूर्वक। (2) प्रभया। (3) प्रजा। (4) मातस वृष्णस्य। (5) अश्व।

घत्ता— वरवत्थहार सिंगारधर कुंडल-मउडालंकरिय।
तुरया वलग्ग रेहंति कह णं सुर सग्गहो अवयरिय।। 273।।

(18)

पुलण-खलण-उल्ललणचलणं भमण-दमण-दिढ वग्गु [1]चालणं।
वग्ग-लग्ग-मग्गे पयट्टणं उब्भ-खुब्भ-खुर-खोणि घट्टणं।
एम संबुणा वाह-वाहणं किउ सुभाणुणा तह ण साहणं।
ताम णायरीयणु पयंपए सर-सहोयरस्सम् ण को जए।
रूव-पवर सेणंपि अहियरो समु हवेइ किं भाणु भायरो।
णिय विह राणिय सुवहो हरि-पिया हिम-हयाहे पोमि-णिहि णिह थिया।
चवइ सच्च सकसाय एरिसं रे हयास तुव कत्थ पउरिसं।
मयण रइव विण्णाण केण तणउ मज्झु णउ तुज्झु हाण।
अहव किंतु मित्था पलावणं करहु वेवि णिय सेण्ण दावणं।
होइ हीणु चमु जस्स सो तहो देह पुव्व धणइ ण इयरहो।

घत्ता— उत्तम वस्त्र एवं हार का शृंगार कर, कुण्डलों एवं मुकुटों से अलंकृत होकर वे दोनों घोड़ों पर चढ़े हुए किस प्रकार सुशोभित हो रहे थे? उसी प्रकार, मानों देव ही स्वर्ग से उतर आये हों।। 273।।

(18)

घुड़सवारी एवं सैन्य प्रदर्शन में भी शम्बु, सुभानु को पराजित कर देता है

पुलण (पुलक-पुलक कर चलाना), खलण (लड़खड़ा कर चलाना), उल्लवण (कुछ उचक-उचक कर चलाना), चलण (कुछ वेग गति से चलाना), भमण (कुछ घूम-घूमकर चलाना), दमण (रुक-रुक कर चलाना), जोर से लगाम खींच कर चलाना, लगाम खींचकर मार्ग में ले आना, लगाम खींच कर (घोड़े को) उछाल देना, लगाम खींच कर घोड़े को कुदा देना, भूमि पर खुर रगड़कर चलाना आदि क्रियाओं के साथ शम्बु कुमार ने घोड़े की सवारी की। किन्तु सुभानु घोड़े की सवारी शम्बु के समान नहीं साध सका। यह देखकर नारीसमूह कहने लगा कि "संसार में स्मर—प्रद्युम्न के भाई—शम्बु के समान कोई भी नहीं है। वह कामदेव की प्रवर सेना से भी अधिकतर ही है, भानु का भाई—सुभानु उसके समान कैसे हो सकता है? हरिप्रिया (सत्यभामा) अपने पुत्र को पराजित देखकर हिमाहत कमलिनी के समान शिथिल पड़ गयी। तब सत्यभामा ने कषाय-सहित पुनः ऐसा कहा —"रे हताश, इसमें तेरा पुरुषार्थ कहाँ? (अर्थात् तुझे अपना पुरुषार्थ दिखाने का अवसर कहाँ मिला?) यह तो मदन द्वारा रचित विज्ञान के द्वारा ही हो रहा है। इससे मेरी या तेरी हार नहीं मानी जा सकती। अथवा, इस मिथ्या प्रलाप से क्या लाभ? अब तुम दोनों अपनी-अपनी सेनाओं का प्रदर्शन करो। जिसकी सेना हीन होगी वह विशाल सेना वाले को अपूर्व धन देगा, इतर को नहीं।" सत्यभामा के इस कथन को उन दोनों ने अपने

(18) 1. ब. चा'।

मण्णियइँ मंतेहिं तक्खणे   णिग्गयं बलं सहरिसं मणे।
तुरय-दुरय-रह-सुहड असरिसं   छत्त-चमर-धय-कय णहं(1) किसं।
संवु सेणु वड्ढिसु सविक्कमं   ता सुभाणु णिम्महि वि उज्जमं।
गउ मुएवि छलु णिय णिहेलणं   दित्त-चित्त सोहा णिहेलणं।

घत्ता— अहि णिंदिवि आलिंगिउ हरि वलेइ जं चवइ सुउ।
उच्छंगे णिवेसिउ सहरिसहिं वहु विण्णाण-कला-जुउ।। 274।।

(19)

इय सच्चांगउ परिहव दुहेण   णं तरुव झुलुक्किकउ हुव वहेण।
कमलु व हिम-हउ परियलिय(1) छाउ   थिउ तह विवणम्मणु कसण काउ।
णउ ण्हाणु-विलेवणु एक्कु भोउ   ण हसइ ण रम¹इ ण करइ विणोउ।
तं णियवि सुकेसुयाएँ चविउ   सुउ सुट्ठु माण-कुंजरेण ²खविउ।
परिहव हुवासु उल्हाइ जेम   णिय तणयहो मणे तं करमि तेम।

मन में तत्काल ही स्वीकार कर लिया और सहर्ष अपनी-अपनी सेना निकाली। असाधारण तुरंगों (घोड़े), द्विरदों (हाथियों), रथों, सुभटों, छत्रों, चमरों एवं ध्वजाओं से नभ को भी कृश कर दिया गया। इस प्रकार शम्बु की सेना विक्रम पूर्वक बढ़ती रही। तब सुभानु ने भी अपने उद्यम का मन्थन किया और अपनी अवमानना देखकर तथा अपनी पराजय का अनुभव कर छल-कपट त्यागकर भाग खड़ा हुआ।

घत्ता— यह देखकर हरि कृष्ण ने अपने उस पुत्र — शम्बु का अभिनन्दन किया, आलिंगन कर बलैयाँ लीं और चुम्बन किया, फिर विविध विज्ञान एवं कलाओं से युक्त उसे हर्षपूर्वक अपनी गोद में बैठा लिया।। 274।।

(19)

पुत्र सुभानु की पराजय से निराश होकर सत्यभामा उसका मनोबल बढ़ाने के लिए दूसरा उपाय खोजती है

इस प्रकार पुत्र के परिभव के दुःख से वह सत्यभामा उसी प्रकार झुलस गयी जिस प्रकार अग्नि से वृक्ष। उसके शरीर की कान्ति हिमाहत कमल के समान हो गयी। वह विवर्ण-मन (उदास-चित्त) एवं कृशकाय हो गयी। न तो वह स्नान ही करती थी और न विलेपन और न कोई भोग ही भोगती थी; वह न हँसती थी, न बोलती थी और न विनोद ही करती थी। उस अपने (उदास) पुत्र को देखकर वह सुकेत-सुता (सत्यभामा) अपने मन में बोली—"मेरा पुत्र (सुभानु) शम्बु के मान रूपी कुंजर से नष्ट हो रहा है। जिस प्रकार (हवा से) अग्नि बढ़ती है उसी प्रकार परिभव से मेरे पुत्र का सन्ताप भी बढ़ता जा रहा है। अतः अपने पुत्र के मनोबल को बढ़ाने के लिये मैं कोई उपाय करूँ।" इस प्रकार विचार कर उसने एक महान् पत्र लिखकर तड़िल्वेग नामक विद्याधर को

---

(19) 1. अ. 'मे'; ब 'स'। 2. अ 'ठ'।

(18) (1) आकाश।
(19) (1) शोभा रहित।

ले हत्थु वि मोक्कलिउ [3]महंतु तडिवेउ णाम गउ णहु तुरंतु।
पत्तउ रहणेउर-चक्कवालु जहिं पहु अगइ णर णियर कालु।
चंदोयरु खगवइ तासु घरिणि आसत्त करिंदहो णाइँ करिणि।
[4]ससिलेहा णामें णिरु सुरूव[5] णामेणाणुद्धरि तासु धूव।
मंडलिय-मउड संघडिय पाउ उवविट्ठउ खगवइ रायराउ।
अत्थाणे णमंतु वि सो पइट्ठु अब्भागउ पयडु तहँ वइट्ठु।

घत्ता— अप्पियउ लेहु विणयायरेण लेवि तेण लहु वायउ।
परियाणिवि भेउ पहिट्ठएण सच्च दूउ पोमाइउ।। 275।।

(20)

भो महो मणे णिवसइ एहु कज्जु आएसु ससहि संपत्तु अज्जु।
जसु जीउ वि दिंतु ण करमि संक तहो कज्जो धीय रहम्मि एक्क।
इय जंपिवि दूउ विसज्जिऊण मणिमय-आहरणहिं पुज्जिऊण।
पुणु दिण्णु पयाणउ झत्ति तेण सपिएण सदुहियइँ सहरिसेण।

भेजा। वह विद्याधर भी तुरन्त ही आकाश मार्ग से चला और वह रथनूपुर चक्रवाल में पहुँचा। वहाँ चन्द्रोदर नामक खगपति राज्य करता था जो अपने पराक्रम के कारण शत्रु-मनुष्यों के लिए काल के समान था। उसकी गृहिणी का नाम शशिलेखा था, जो अत्यन्त सुन्दर थी। वह उसमें उसी प्रकार आसक्त रहता था, जिस प्रकार हाथी अपनी हथिनी में। उन दोनों के अनुन्धरी नामकी एक पुत्री उत्पन्न हुई। माण्डलिक राजाओं के मुकुटों से संघटित चरण वाले राजराजा खगपति जहाँ बैठे थे, उस आस्थान (राजसभा) में जाकर उस तड़ित्वेग ने नमस्कार करते हुए प्रवेश किया तथा वह अभ्यागत प्रकट रूप में वहाँ बैठ गया।

घत्ता— उस (सन्देशवाह तडित्वेग) ने विनय एवं आदरपूर्वक सत्यभामा का वह लेख-पत्र उस खगपति चन्द्रोदर को अर्पित कर दिया। उसने भी उस पत्र को तत्काल ही पढ़ा। प्रहृष्टमन उस खगपति ने पत्र के रहस्य को समझ लिया। इस कारण सत्यभामा का वह दूत भी प्रमुदित हो उठा।। 275।।

(20)
अनुन्धरी एवं सुभानु का पाणिसस्कार

(वह खगपति चन्द्रोदर बोला) —"हे दूतराज तडित्वेग, यह कार्य मेरे मन में बैठ गया है। अब आज मुझे अपनी बहिन का आदेश भी प्राप्त हो गया है, जिसके लिये कि प्राण देने में भी मुझे शंका नहीं। उसी के निमित्त मेरे घर में यह कन्या सुरक्षित है।" यह कहकर हर्षित होकर उसने उस दूत को मणिमय आभरणों से सम्मानित एवं विसर्जित कर तत्काल ही प्रयाण भेरी बजवा दी। सामन्त, मन्त्री, भट, श्रेष्ठ रथ, हय, यान, विमान एवं

---

(19) 3. अ. तुरंतु। 4-5. अ ससिलेह स परिल्लिय चरणु णिएलछ।

सामंत-मंति भडरहवरेहिं हइ जाण-विमाणहँ कुंजरेहिं।
परियरिउ(1) जंतु दि¹यहेहिं पत्तु धय-छत्तहिं छाइउ दह-दियंतु।
पइसारिउ चंदोयरु पुरम्मि बहु उच्छवेण णिय सिरेहरम्मि।
हरि-वलह णेहरस-णिब्भरेहिं सुपसंसिवि सम्माणियउ तेहिं।
विरइय सुभाणुहे मण-मणोज्जु खगवइ-सुव सहुँ परिणयण कज्जु।
मणि-गण विप्फुरियइँ मंडवेण णच्चंत ल्हासरस-तंडवेण।
वज्जिय तूरहिं गिय-मंगलेहिं धय-दप्पण सिय चमरहिं चलेहिं।
इय विविहा²हर-पुरंधियाहँ पयडिय किउ पाणिग्गहणु ताहँ।
तोसेवि सयण पीणिय वराय पुज्जिय खगणाहइँ सहु सहाय।

घत्ता— थिय गव्वुव्वूढ सुकेयसुव पुलइउ वउ वेल्लहल कर।
गउ चंदोयरु णिय पुरवरहो पणवेप्पिणु हरि-हलहर।। 276।।

(21)

एत्थंतरे रइरमणहो जणणिए णिय दूवउ दिग्गय गइ-गमणिए।
संपेसिउ गउ सो कुंडिणपुरे पंचवण्ण मणिगण स खंचिय घरे।

कुंजरों से घिरा हुआ द्विजवरों, अपनी प्रियतमा एवं पुत्री -— अनुन्धरी के साथ चला। उसकी ध्वजाओं एवं छत्रों से दशों-दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। "जब चन्द्रोदर सत्यभामा के नगर में आया तब स्वयं नारायण ने अनेक उत्सवों के साथ उसका नगर प्रवेश कराया और हरि-बलभद्र के स्नेह-रस में पगे हुए उस चन्द्रोदर की प्रशंसा कर नारायण आदि ने सपरिवार चन्द्रोदर को सम्मानित किया। खगपति-पुत्री—अनुन्धरी के साथ परिणय-कार्य हेतु सुभानु के मन को मनोज्ञ बनाकर वह सत्यभामा मणिगणों से स्फुरायमान ताण्डव नृत्य एवं रास-लीलाओं से युक्त मण्डप में गयी और बजे हुए तूरों, मंगल-गानों, फहराती हुई ध्वजाओं, दर्पणों, शुभ्र चंचल चामरों के बीच तथा विविध आकृतियाँ धारण करने वाली पुरन्ध्रियों के सम्मुख उन दोनों वर-वधू का पाणिग्रहण-संस्कार करा दिया गया। स्वजनों को सन्तुष्ट कर सहायकों सहित खगनाथ का सम्मान किया गया।

घत्ता— विवाहोपरान्त सुकेस-सुता (सत्यभामा) गर्व से फूल उठी। बेला (लता के) समान उसका शरीर पुलकित हो गया। चन्द्रोदर भी हरि-हलधर को प्रणाम कर अपने नगर को वापिस लौट आया। ।। 276।।

(21)

राजा रूपकुमार अपनी बहिन रूपिणी द्वारा प्रेषित विवाह-प्रस्ताव को ठुकरा देता है

इसी बीच दिग्गज-गति गामिनी रतिरमण की माता रूपिणी ने अपने दूत को कुण्डिनपुर भेजा। वह दूत विशाल एवं उन्नत सुन्दर कोट वाले, दुर्गम, प्रचुर भवनों से युक्त, नागरिक-जनों से भरे हुए हाटों एवं मार्गों वाले कुण्डिनपुर में पहुँचा। वहाँ पंचवर्ण के मणि-समूह से खचित घर (राज-भवन) के अनिन्द्य दरवाजे में प्रवेश

---

(20) 1. ब. हिं। 2. अ 'ध'।

(20) (1) वेष्टित।

साल[1] सुरुदं पउर हरि दुग्गमे हट्ट-मग्गे णायर-जण संगमे।
पइसेविणु थिउ वारि अणिंदहो पडिहारइँ दक्खविउ णरिंदहो।
अवलोइउ सह-मंडवे राणउ भीसम तणय रूउ णामाणउ।
परिमिउ णरवरहँ पियरह दुहहरु णावइ उडु-गणेहिं छण-ससहरु।
पणवंतेण तेण आहासिउ देव-देव तुव भइणिएँ पेसिउ।
करि महग्घ-मइँ जायवलोयहो दरिसिय सयणत्तणु वहु भोयहो।
माहवियाहँ देहे उप्पण्णउ वइयंभी विचित्त वे कण्णउ।
देहि पढम मयणहो महो तणयहो संवुहि तहव दुइज्ज सविणयहो।
तं णिसुणेविणु हसिउ समच्छरु थिउ रउद्द णं मीण सणिच्छरु।
जंपइ अइ विरुद्ध रोसारुणु भो रूवणिहि णामु मा चवि पुणु।
वंधव पियर सयण अवमाणिणि जा अहिलसिय[2] पियहो थिय माणिणि।
कवणु कण्हु हलहरु को भण्णइँ मयणु स संवु कवणु पहु मण्णइँ।
वीर चंडाल सुवहँ णिय दुहियउ देमि ण ताहँ जाहि मइँ कहियउ।

घत्ता -- इय विरस वयण नेहाविियउ दूउ णियत्तु पत्तु णिय पुरवरु।
विण्णविउ तेण तं रूविणिहिं जइ भायरहँ वुत्तु[1] णेहब्भरु।। 277 ।।

किया। वहाँ उसे नरेन्द्र के प्रतिहारी ने देखकर सभा-मण्डप में भिजवा दिया, जहाँ उस दूत ने भीष्म राजा के पुत्र "रूपकुमार" इस नाम से प्रसिद्ध राजा के दर्शन किये। दुखहारी वह राजा अपने आसपास अनेक राजाओं से उसी प्रकार घिरा हुआ बैठा था, मानों उडुगणों से पूर्णमासी का चन्द्रमा ही घिरा बैठा हो। उसे प्रणामकर उस दूत ने कहा—"हे देवाधिदेव, मुझे आपकी बहिन ने यहाँ भेजा है और कहलवाया है कि - "महार्घ मति, विविध भोगैश्वर्य वाले यादव लोगों के प्रति अपनी घनिष्ठता दिखाइये। आपकी देह से माधवी एवं वैदर्भी नामकी दो विचित्र (सुन्दर) कन्याएँ उत्पन्न हुई हैं। उनमें से प्रथम पुत्री मेरे मदन — प्रद्युम्न को तथा दूसरी पुत्री मेरे विनयशील शम्बु को दे दीजिए।" दूत का वचन सुनकर रूपकुमार मत्सर भाव से हँसा और फिर उसी प्रकार रौद्र रूप धारण कर लिया, जिस प्रकार मीन राशि का शनीचर रौद्र रूप धारण किये रहता है। पुनः क्रोध से तमतमाकर वह अत्यन्त विरुद्ध स्वर में बोला—"हे दूत, उस अहंकारिणी रूपिणी का नाम मत लो, जिसने अपने बन्धु-बान्धवों एवं स्वजनों को अपमानित कर स्वयं अपने ही अभिलषित प्रेमी का हाथ पकड़ा। कौन है वह कृष्ण, और हलधर किसे कहा जाता है? ये मदन एवं शम्बु भी कौन माने गये हैं? हमारी दोनों पुत्रियों के लिये चाण्डाल अच्छे माने जा सकते हैं किन्तु जहाँ तुमने मुझे देने को कहा है वहाँ नहीं दूँगा।"

घत्ता— इस प्रकार रूपकुमार के विरस वचन सुनकर वह दूत अपने नगर वापिस लौट आया और उसने रूपिणी को वह समस्त वृत्तान्त कह सुनाया जो उसे उसके स्नेही भाई ने कहा था।। 277।।

---

(21) 1. अ. मुक्कु।

(21) (1) कोट। (2) अभिलषित।

(22)

जं जि सहोयरेण अवमाणिय तं हरि-भज्ज सुट्ठु विद्दाणिय।
ता मयरद्धएण आहासिउ को वलुवंतु अम्मिमहो पासिउ।
णियमणेण धरि विसाउ पमेल्लहि दे आएसु अम्मि मोक्कल्लहि।
इय जंपिवि कम-कमल णवेविणु णिग्गउ संबु-समउ विहसेविणु।
गल-गज्जंत वेवि संचल्लिय पलय समुद्द णाइँ उच्छल्लिय।
पुणु थोवंतरम्मि जाएविणु विहि मायंग-रूउ लहु लेविणु।
कुंडिणपुरवरें ते पइसेविणु दिट्ठु वियड्ढु राउ पणवेप्पिणु।
ते जंपंति देव आयण्णहिं सइँ उल्लविउ वयणु जइ मण्णहिं
एरिसु चवइ लोउ हरि-पट्टणे दुट्ठाराइ-सेण्ण-दल वट्टणे।
णिय दुहियउ भीसम णिव तणुरुहु सवएँहिमि देसइ सररुह मुहु।
णिसुणेविणु अम्हइँ हरि-गायण विविह गीय-रस चोज्जुप्पायण।
सुकुल सुरूव सधणु सवियक्खण आविय तुव पुरवरे गोरक्खण।
देहि सकण्ण स जुवलु परिणेसहु मणिहारुव वच्छयले घुलेसहु।

---

(22)

माता — रूपिणी के अपमान से क्रोधित होकर प्रद्युम्न एवं शम्बु डोम का रूप धारण कर कुण्डिनपुर जाते हैं और राजा रूपकुमार से उनकी पुत्रियों के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव रखते हैं

चूंकि सहोदर ने ही अपमानित किया था, अतः वह हरि-भार्या (रूपिणी) अत्यन्त दुःखी एवं निराश हो गयी तब मकरध्वज — प्रद्युम्न ने उससे पूछा—"मेरे सामने हे मात, कौन अधिक बलवान है? अपने मन में विषाद मत धारण करो, उसे छोड़ो। हे माँ, मुझे — हमें आदेश देकर उसे छोड़ो। "यह कहकर तथा उसके चरण कमलों में नमस्कार कर, हँसकर शम्बु के साथ निकल गया। वे दोनों ही गल-गर्जना करते (गाल गजाते) हुए चले। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों प्रलय समुद्र ही उछालें भर रहा हो। थोड़े ही समय में जाकर उन दोनों ने शीघ्र ही मातंग (डोम) का रूप धारण कर लिया। वे कुण्डिनपुर में प्रविष्ट हुए और उस विदग्ध राजा रूपकुमार को देखा। उसे प्रणामकर उन दोनों ने कहा—आपने जो वचन कहे थे, उन्हें मानिए, दुष्ट शत्रुओं के सैन्य-दल का मन्थन कर देने वाले हरि-कृष्ण के पट्टन — द्वारावती में लोग ऐसा कह रहे हैं कि "भीष्म राजा का पुत्र — राजा रूपकुमार अपनी कमलमुखी दोनों पुत्रियाँ चाण्डाल-पुत्रों को देगा।" इस कथन को सुनकर ही हम आपके नगर में आये हैं। हम लोग हरि का गान करते हैं, गीतों में आश्चर्यजनक रीति से विविध रसों को उत्पन्न करते हैं। हम लोग अच्छे कुलवाले हैं, अच्छे रूपवाले हैं, धनी हैं, विचक्षण हैं, गोरक्षण करनेवाले हैं अर्थात् ग्वाला हैं। अतः अपनी दोनों कन्याओं का हम दोनों के साथ परिणय कर दो और मणिहार के समान ही हमारे वक्षस्थलों पर लगकर हमसे घुल-मिल जाओ।

घत्ता-- आयण्णेवि वियड्ढु वाड[1]वग्गि इव पज्जलिउ।
हणु-हणु-हणु पभणंतु विज्जुज्जलु असिकरे कलिउ।। 278।।

(23)

चवंति महंत[(1)] पमुक्कलेव — तुमंपि सचरि[(2)]यहँ पाविउ देव।
णिवारिउ राय म एरिसु कज्जु — करेहि पवड्ढइ विग्गहु अज्जु।
हरी-बलहद्द-पयाव समुद्दें — व वुड्डहि सेण्ण समाणु रउद्दें।
ण थक्कु विरुद्धु वियड्ढु भणेण — स भिच्च असेस पवोल्लिय तेण।
हणेउ रउद्दु वि डिंडिमु ताम — भवाडहु पट्टण पासहिं जाम।
पबंधहु रासहरोहेविणोहु[(3)] — जियंतवि सूलिहिं वेवि मरहु।
इय णिसुणेविणु संवु पलित्तु — हुवासणु णाइँ घिए[1]ण वसित्तु।
भणेइ हयास अहमुहु थाहि — वलेण समाणु ण एत्थहो जाहि।
अहं तुव गोत्तहो पत्तु कयंतु — ण चुक्कइ एक्कु जि मज्झु जियंतु।
सरेण सविज्ज पयावइ देसु — णिरुंभिउ डोंवहं-सव्वु पएसु।
सो मग्गु-अमग्गु ण आवणु तत्थ — सुरालउ मंदिरु सवधण जत्थ।

घत्ता— उन दोनों का प्रस्ताव सुनकर विदग्ध राजा — रूपकुमार वाडवानल की तरह प्रज्ज्वलित हो गया और हनो, हनो, हनो कहते हुए उसने बिजली के समान उज्ज्वल तलवार हाथ में ले ली।। 278।।

(23)

असह्य अपमान के कारण डोम वेशी प्रद्युम्न अपनी विद्या के चमत्कार से कुण्डिनपुर को उजाड़ देता है

(विषम परिस्थिति देखकर) मद रहित महामन्त्रीगण कहने लगे कि, "हे देव, (इस राज्य को) आपने अपने चरित्र-पुरुषार्थ से प्राप्त किया है। अतः हे राजन, इसे सुलझाइए। हे आर्य ऐसा कार्य मत कीजिए, जिससे विग्रह बढ़े। हरि एवं बलभद्र का प्रताप रौद्र समुद्र के समान है, अपनी सेना के साथ उसमें मत डूबिए। वह विदग्ध राजा रूपकुमार अपने मन से उनका विरोध करने से नहीं रुका और अपने समस्त भृत्य — सेवकों को आदेश दे दिया कि — भयानक रूप से डिंडिम नाद कर दो और समस्त पट्टन में एवं उसके पार्श्व भागों में घुमा दो। इन अविनीतों को बाँधकर गधे पर बैठा दो और जीते जी शूली पर चढ़ा दो जिससे वे मर जायें।" विदग्ध राजा रूपकुमार का यह कथन सुनकर शम्बुकुमार प्रज्ज्वलित हो उठा। ऐसा प्रतीत होता था मानों अग्नि ही घृत पा कर प्रदीप्त हो उठी हो। वह बोला—"हे हताश, अधोमुह होकर रह। इस संसार में बलदेव के समान कोई भी बली नहीं है। तेरे गोत्र के कृतान्त के रूप में मैं यहाँ पहुँच गया हूँ। मेरे जीते जी अब एक भी शत्रु नहीं बचेगा।" उस स्मर—कामदेव ने भी अपनी विद्या को आदेश दिया, जिसने इन दोनों डोमों की सुरक्षा के लिए समस्त प्रदेश घेर लिया। वहाँ मार्ग, अमार्ग में बदल गये, बाजार नष्ट हो गये, देवालय एवं भवन भी न रहे।

(22) 1. अ. ल'।

(23) 1. ब. णि'।

(23) (1) मन्त्रिणः। (2) निजचरणेप्राप्त। (3) चढापितः।

घत्ता— चंडाली हूयउ सयलपुरु अइविंभियउ लोउ जूरइ मणे।
कोलाहलु गहिरु समुच्छलिउ भिडिउ वियड्ढु वि मायंगहो रणे।। 279।।

(24)

सहुँ सेण्ण-सण्णहिवि तुरंतउ दुद्धर-सर-धोरणि पेसंतउ।
फिर उच्छालिउ रूउ समरंगणे ता रइरमणइँ चिंतिउ णियमणे।
मुक्क सविज्ज पवंचें धाइय हुववह[1] वेसइँ कहिंमि णमाइय।
जालावलि-जलंत गय-कत्तहँ फुट्ट-तडत्ति वंस धय-छत्तहँ।
कय इंगालि-पुंज रह-वरसय पक्खर पज्जलंत लोट्टिय हय।
णर-णरिंद तण्हइँ ऊणल्लिय जीय विमुक्क थक्क णउ चल्लिय।
पय[2] पणट्ठ विहडफ्फड कंपइ पुक्कारइ कहिं गच्छहु जंपइ।
धूमा[1]उल समाण परिरक्खइ णिय-णिय दविणहो कारणे कंखइ।
अइ आरिट्ठु भणेवि विहुणेवि सरु होसइ किंपि चवहिं बुहयण णिरु।
रणे वियड्ढु [3]सवएहिं णिरुद्धउ उरे चप्पेवि चोरु इव बद्धउ।
झूरंतहँ परियण सूसयणहँ माण-विमुक्कहँ मउलिय वयणहँ।

घत्ता— नगर के समस्त जन चाण्डाल हो गये। लोग अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गये और मन में झूरने लगे। वहाँ बड़ा भारी कोलाहल उठा तथा विदग्ध रूप राजा भी रण में उन मातंगों से भिड़ गया।। 279।।

(24)

विदग्ध राजा रूपकुमार एवं उसकी दोनों पुत्रियों का प्रद्युम्न एवं शम्बु द्वारा अपहरण

विदग्ध राजा रूपकुमार अपनी सेना के साथ तैयार हो गया और तुरन्त ही दुर्धर बाणों की पंक्तियाँ छोड़ने लगा। इस प्रकार उसने समरांगण को ऊपर उछाल दिया। यह देखकर रतिरमण अपने मन में चिन्तित हो उठा। उसने अपनी विद्याशक्ति छोड़ी और प्रपंचपूर्वक दौड़ा। उसने ऐसा अग्निवेष धारण किया कि वह कहीं भी समाया नहीं। गजों के गात्र ज्वालावलि से जलने लगे। ध्वजाओं एवं छत्रों के बाँस तड़तड़ा कर फूटने लगे। अंगारों के समूह बनकर रथों पर बरसने लगे। घोड़ो के पलान-वस्त्र जलने लगे और घोड़े लोटने लगे। नर एवं नरेन्द्र प्यास से तड़फने लगे। वे प्राण छोड़ कर निश्चेष्ट निश्चल हो गये। प्रजा हड़बड़ा कर, काँपती हुई नष्ट होने लगी और पुकारने लगी कि- "कहो कहाँ जायँ? धुएँ से व्याकुल होकर भी अपने-अपने द्रव्य की सुरक्षा की आकांक्षा से अपनी सुरक्षा का प्रयत्न करने लगे। किन्तु स्मर-- प्रद्युम्न ने अति अरिष्ट कहकर सभी को विधुनित कर डाला। तब बुधजन कहने लगे कि अब क्या होगा? उन चाण्डाल रूप सखाओं ने रण में उस विदग्ध राजा को घेर लिया तथा उसकी छाती को चाँप कर उसे चोर की तरह बाँध लिया। तब उसके परिजन झूरने लगे। स्वजन मान से विमुक्त हो गये तथा उनके मुख बन्द हो गये। फिर दोनों पुत्रियों को हरकर तत्क्षण ही वे दोनों

(24) 1. ब चु।

(24) (1) अग्निवेषेण। (2) प्रजा। (3) चाण्डाल-रूपसखा।

दुहिएहि[4] मि सद हरेवि खणंतरे   पत्तु जवेण चउब्भुव पुरवरे[5]।

घत्ता-- विप्फुरिय वयणु उद्धसिय तणुसरु णयरिहिं पइसरइ कह।
णिहणेविणु गयजूह णिय मंदिरे णं सीहु जह।। 280।।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए बुहरल्हण सुव कइसीह विरइयाए रूवे कण्णाहरणं णाम चउदहमी संधी परिसमत्तो।। संधी: 14।। छ।।

पुष्पिया

यत्काव्यं साहाय्य समवाप्य नात्र सुकवेर्प्रद्युम्नकाव्यस्य यः,
कर्ताभूद्भवभेदनैक चतुरः श्री सिंह नामाशमी।
साम्यं तस्य कवित्व गर्व्व रहितः सहितः को नाम जातौ वनौ।
श्रीमज्जैनमते प्रणीत सुपथे सार्थः प्रवृत्तिर्क्षमः।। ध्रुवकं।।

वेगपूर्वक चतुर्भुज के नगर द्वारावती में आ पहुँचे।

घत्ता— स्फुरायमान मुख तथा ओजस्वी शरीरवाला वह स्मर — प्रद्युम्न उस द्वारावती नगरी में किस प्रकार प्रविष्ट हुआ? उसी प्रकार जिस प्रकार गजयूथों को मारकर सिंह अपने निवास-स्थान पर लौटता है। ।। 280।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली बुध रल्हण के पुत्र कवि सिंह द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में "राजा रूप और उसकी कन्या के अपहरण" नामकी चौदहवीं सन्धि समाप्त हुई।। सन्धि: 14।। छ।।

पुष्पिका—कवि-परिचय

काव्य-शास्त्र की सहायता पाकर सुकवि कहलाने वाला भी कवि जिस प्रद्युम्न-कथा को न लिख पाया, उसी प्रद्युम्न-कथा का कर्त्ता संसार के ज्ञान में चतुर सिंह नामक एक शमी कवि हुआ। इस पृथिवी पर उस गर्वीले कवि सिंह के समान सुप्रसिद्ध अन्य कौन सा ऐसा कवि हुआ, जो श्रीमज्जैनमत द्वारा निर्दिष्ट सुपथ में सार्थक रूप से प्रवृत्ति करने में सक्षम हो?।। ध्रुवक।।

---

(24) (4) दुःखाण्या सह रूपगता वद्धो भग्नी गृहे यत्र-तत्र आगत
(5) द्वारावती नगरे।

पण्णरहमी संधी

(1)

दुवई — जह रावण-तणएण[1] पवणंगउ बंधेविणु।
तह वियब्भु[2] मयणेण दंसिउ हरि पणवेप्पिणु।। छ।।

ता सिरिहरेण सहत्थइँ मेल्लिवि — उववेसिउ आसणे उच्चलिलवि।
पुणु सुमहुर-वयणहिं सम्माणिउ — मा सुमणें जं अवमाणिउ।
तं णियय सस-सुवासु खम किज्जइ — आहासइ वियब्भु पहु पुज्जइ[3]।
णियय सहोयरि मइँ णिब्भंछिय — अवरु रि तुज्झु केर णउ इँछिय।
फलु संपत्तु मइंमि दुव्वयणहो — एत्थु ण दोसु देव किं मयणहो।
विणउ चवंतु पसंसिउ रामें — सज्ज सभुवण विणिग्गिय णामें।
दिण्ण सरयण-कोस-गय-रहवर — हय-भूसण-सुवत्थ वहु पुरवर।
दुद्दम सुहड-णिवह रणे दवणहो — लहु विरइउ विवाहु रइरमणहो।
वइसंभी सहु सुट्ठु सुसोहणु — संवुहे तह[4] किउ असुह-णिरोहणु।
पाणिग्गहणु वि समउ विचित्तिएँ — णिज्जिय छण-ससि णिय-मुह दित्तिएँ।

पन्द्रहवीं सन्धि

(1)

कृष्ण से क्षमा-याचना कर रूपकुमार अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह प्रद्युम्न एवं शम्बु के साथ कर देता है

द्विपदी— जिस प्रकार रावण-पुत्र इन्द्रजीत ने पवनांगज हनुमान को बाँधा था, उसी प्रकार मदन-प्रद्युम्न विदग्ध राजा को बाँधकर ले आया और हरि को प्रणामकर उन्हें दिखाया।। छ।।

तब श्रीधर ने स्वयं अपने हाथों से उसके बन्धन छोड़कर तथा उसे लेकर उच्च आसन पर बैठाया। पुन: सुमधुर वचनों से उसका सम्मान किया और कहा कि--"सुमन–पुत्र प्रद्युम्न ने जो अपमान किया है, उससे उस पर क्रोध मत करना, वह आपकी बहिन का ही पुत्र है अत: उसे क्षमा कीजिएगा।" तब विदग्ध रूप राजा उन प्रभु—कृष्ण से बोला—"हे प्रभु मेरी आशा पूर्ण कीजिए। मैंने अपनी सहोदरी बहिन की भर्त्सना की है और आपके किसी सम्बन्धी को भी मैंने नहीं चाहा। अब मैंने अपने उन्हीं दुर्वचनों का फल पा लिया है। हे देव, इसमें मदन का कोई दोष नहीं। राम --- कृष्ण द्वारा प्रशंसित वह रूपकुमार विनयपूर्वक अपने मन ही मन में कहने लगा कि—(अपनी इस उदारता के कारण ही) यह कृष्ण भुवन की शोभा स्वरूप एवं इनका नाम विश्व में विख्यात हो गया है।" उस (रूपकुमार) ने रत्न, कोष, गज, उत्तमरथ, घोड़े, आभूषण, सुन्दर वस्त्र, अनेक समृद्ध नगर रण में दुर्दम सुभट-समूह एवं सुवर्णादि दहेज में देकर शीघ्र ही रतिरमण — प्रद्युम्न के साथ (अपनी प्रथम कन्या का) विवाह कर दिया। विषम एवं विचित्र परिस्थितियों में भी अशुभ निरोधक सुशोभन नक्षत्र में अपनी अत्यन्त सुन्दरी तथा अपनी मुख-कान्ति से पूर्णमासी के चन्द्रमा को भी निर्जित कर देने वाली वैदर्भी नामकी दूसरी कन्या

---

(1) (1) इन्द्रजित। (2) राजा रूपकुमार। (3) ममपूर्णताम् (4) विवाहे।

अइ उच्छवइ सयण परिओसइँ पडह-सद्द-मंगल णिग्घोसइँ।

घत्ता— रूवेण विवाहाणंतरइँ णिय बहिणिहिँ कम-कमल णवेविणु।
जं अविणउ किउ माइ मए तं खमेहि जंपिउ विहसेविणु।। 281।।

(2)

दुवई— मंति महंत सुहड सेणावइ सरयण-कोस-सय समं।
महु रज्जं समप्पि मयणस्स अहं सेवेमि तुव कमं[1]।। छ।।

ता जंपिउ भीसम णिव दुहियइँ सत्तावीसउ[2]जोयण मुहियइँ।
मयणु-संवु जे तुव आणाधर णंद-वड्ढणिय पुरवरे भायर।
सीराउहइँ रूउ मोक्कल्लिउ गउ ससेण्णु णव-णेह-रसोल्लिउ।
णिय-मंदिरे साणंदु पइट्ठउ उर पमाणे हरिवीढे णिविट्ठउ।
एत्तहे जुवईयण-मण-सल्लहो को वण्णइँ विलासु जगमल्लहो।
कामिणि कर-चालिय सिय-चमरहिँ थुव्वंतउँ णर-खेयर-अमरहिँ।
गिज्जंतउ णारय तुंबु रहमि कीलावसु वियरंतउ पुरहिमि।

का पाणिग्रहण अनेक उत्सवों (नेग-दस्तूरों) के मध्य स्वजनों के मंगल-घोष तथा पटह — वाद्यों की ध्वनियों सहित शम्बु के साथ भलीभाँति कर दिया।

घत्ता— विवाहोपरान्त उस रूपकुमार नामक विदग्ध राजा ने अपनी बहिन के चरण-कमलों में नमस्कार कर हँसते हुए कहा — हे माई, मैंने जो तुम्हारी अविनय की है, उसे क्षमा करो।" ।। 281।।

(2)

राजा रूपकुमार प्रसन्नचित्त होकर वापिस लौट जाता है। प्रद्युम्न अपने विमान से सदल-बल क्रीड़ा हेतु निकलता है

द्विपदी— "मन्त्री, महान् सुभट, सेनापति, सैकड़ों रत्न युक्त कोष के साथ-साथ अपना राज्य मदन को सौंप कर मैं तुम्हारे चरणकमलों की सेवा करूँगा।" ।। छ।।

तब 27 नक्षत्रों के स्वामी — चन्द्रमा के समान मुखवाली भीष्म राजा की पुत्री — रूपिणी उससे बोली— "नगर में आनन्दवर्धक मदन और शम्बु ये दोनों ही भाई तुम्हारे आज्ञाकारी हैं।" सीरी (बलभद्र) आदि ने उस रूपकुमार को विदाई दी। नवीन स्नेह के रस में सराबोर वह रूपकुमार भी सेना सहित वहाँ से चला और अपने भवन में सानन्द प्रवेश कर उर प्रमाण सिंहासन पर बैठ गया और इधर युवतिजनों के मन में सालने वाले उस जगत के मल्ल —प्रद्युम्न के विलासों का वर्णन कौन कर सकता है? कामिनियों के हाथों द्वारा चालित शुभ्र-चमरों से युक्त, मनुष्यों, खेचरों एवं देवेन्द्रों द्वारा स्तुत तथा नारद की तुम्बुरु (वीणा) द्वारा गीयमान वह प्रद्युम्न क्रीड़ावश नगर में भ्रमण करता हुआ सरोवरों, नदियों, वनों, उपवनों, ग्रामों, मनोहर सीमाओं वाली उभय

---

(2) (1) पदकमिल : (2) चंद।

सरवर-सरिवण-उववण गमहिं उहयसेढि सुमणोहर सीमहिं।
विसवहे[3] दीव[4] असेस णियच्छइ गिव्वाणु वि सविमाणहिं गच्छइ।

घत्ता— आलाव णिउरे संजोइयइँ सवरिहिं[5] कंदर-वासिणिहिं।
सलहिज्जइ जसु हरिणंदणहो णच्चंतिहि सुविलासिणिहिं।। 282।।

(3)

दुवई— जं जं णिय मणम्मि पवियप्पइ तं-तं लहइ रइवरो।
भणु भुवणयले तस्स किं दुल्लहु जस्स स पुण्णु सहयरो।। छ।।

चंदणेण थोवेण[1] लेवणं विविह कुसुम-रय दिण्णु दियमणं।
अद्धवरिस[2] मोत्तियहँ सारउ अइ-पलंबु कंठयले हारउ।
दोलायाणं लीलइँ रमंतउ [1]पंचमोससाला वियंतउ।
किसलयोह[3] अहिणव णियंतउ जुवइ सिहि णउरे पेल्लयंतउ[2]।
तिविहिँ[4] पवणु कलियंठि कलुवरो[5] महु[6] समागमे तासु सुहयरो।
जक्खयं सियं [3]धोय अंबरं चंद कि[4]रण कमलायरं वरं।

(विद्याधर) श्रेणियों, समुद्रों, समस्त सुन्दर द्वीपों एवं स्वर्ग की अपने ही विमान से यात्रा करता है।

घत्ता— कन्दराओं में निवास करने वाली भिल्लनियाँ उसके आलाप अपने हृदयों में संजोने लगीं तथा नाचती हुई सुविलासनियाँ हरिनन्दन — प्रद्युम्न के यश की प्रशंसा करने लगीं।। 282।।

(3)

कामदेव प्रद्युम्न की वसन्त एवं ग्रीष्म-कालीन क्रीड़ाएँ, वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु-वर्णन

द्विपदी— "वह रतिवर प्रद्युम्न—अपने मन में जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, वह उसे स्वत: प्राप्त हो जाती है। कहो, कि जिसका मित्र (स्वयं) पुण्य हो, भुवनतल में उसे क्या दुर्लभ रहता है?"।। छ।।

वह सोने-चाँदी के स्तवक-मिश्रित चन्दन का लेप करता था। प्रतिदिन विविध कुसुम-रज का सेवन करता था और सूर्यकान्तमणि प्रदत्त अर्धतोला प्रमाण मुक्तासार (मोतियों की भस्म) का सेवन करता था। पर्याप्त लम्बा कण्ठहार धारण करता था। हिन्दोले में लीलापूर्वक रमण करता था, उसी समय कोकिलों में पंचमस्वर का संचार करता हुआ, अभिनव किसलय समूह को दिखाता हुआ, युवतिजनों में कामाग्नि जगाता हुआ, वामांग, दक्षिणांग एवं पृष्ठांग रूप त्रिविध पवन का संचार करता हुआ, कोकिलाओं के कण्ठ को मधुर बनाता हुआ उस कामदेव—प्रद्युम्न को सुख देने वाला मधुकाल—वसन्त ऋतु का समय आ गया। आकाश, यक्ष द्वारा धोए गये शुभ्र वस्त्र के समान हो गया, कमल-समूह चन्द्रकिरणों के समान सुशोभित होने लगा, सरोवर स्वच्छ एवं शीतल जल से सुन्दर दिखायी देने लगे, मल्लिकापुष्प सरस लगने लगे, उनकी सुगन्धि कस्तूरी की परिमल से मिश्रित हो उठी। कामरस में

---

(3) 1-2. अ. ×। 3. अ. सें। 4. अ. 'चलण'।

(2) (3) समुद्र। (4) द्वीपानि। (5) भिल्लणीभिः।

(3) (1) समूहेनस्तवकेन। (2) छहनसे मात्र मुक्ताफलैः = अर्द्ध तोला प्रमाण मुक्तानि। (3) कन्दलपत्र। (4) वामांग: दक्षिणांगपृष्ठी-मद सीता स्निग्ध सुगंधव (5) कोकिला। (6) वसंत।

सच्छ सीय णिरु सरस मल्लि[7]यं   एण-णा[8]हि परिमल-समल्लियं।
रमण दक्ख रमणी समल्लियं   रइय सट्ट-णट्टय रसुल्लयं।
गमइँ वासरं वर लयाहरे   दोलमाण चमराण समाहरे।
णालिएर दक्ख रसायणं   सक्कराय-केलाण-पाणयं[9]।
घड्ढ-दहिय कप्पूरे वाणियं   गिंभयम्मि ते णेय माणयं।
छूह[10] - पंकय तुंग मंदिरं   अक्खजूव[11] विरइय रइ चिरं।
रसिय जलय णच्चंत वरहिणं   मेहडंबराणं सुपरिहिणं।
केलि-कील सीमंतिणी सहं   गयण वडिय धावंतवि सवहं[12]।
ललिय-गीय कव्वंति पाइयं[13]   इट्ठ-गोट्ठि जणवय विणोइयं।

घत्ता— धारा कयंब केयइ पवर मालइ स कुसुमरयालइँ।
विज्जुज्जलु सुरधणु मंडियए सुहु एरिसु वरिसालइँ।। 283।।

(4)

दुवई— भुवणत्तय जणस्स सुमणोहरु सविलासेण सक्कउ[1]।
दाणालीढ करुव रयणं सुज्जोइउ सहइ णं गउ।। छ।।

उल्लसित रमण-दक्ष वह प्रद्युम्न रमणियों के साथ मिलकर सट्टक एवं नृत्य रास रचाने लगा।

ग्रीष्म काल में दोलायमान चामरों से युक्त विमान सदृश उत्तम लतागृहों में दिन व्यतीत करने लगा। नारियल एवं द्राक्षा के रसायन, शर्करा एवं केला के पानक, कर्पूर मिश्रित गाढ़े जमे हुए दही का पानी (लस्सी) खूब छक कर पीता था।

चूना पुते हुए उन्नत भवन में दीर्घकाल तक वह रतिवर अक्ष-जुआ (चौपड़) खेलता रहता था। फव्वारों की रिमझिम-रिमझिम वर्षा में मेघाडम्बर के समान दिखायी देने वाले मयूरों के नृत्य देखता था। सीमन्तिनियों के साथ केलि-क्रीड़ाएँ करता था, आकाश-मार्ग में दौड़ते हुए (विसवह—) मेघ देखता था, ललित-गीत प्राकृत-काव्य एवं जनपद का विनोद करने वाली इष्ट-गोष्ठियाँ किया करता था।

घत्ता— (इसी बीच में) जलधारा के साथ कदम्ब, केतकी, मालती, आदि प्रवर पुष्प-रज- समूह से मुक्त तथा स्फुरायमान विद्युत एवं इन्द्रधनुष से मण्डित सुखद वर्षाकाल आ गया।। 283।।

(4)

प्रद्युम्न की शरद एवं हेमन्त ऋतु कालीन विविध-क्रीड़ाएँ

द्विपदी— भुवन-त्रय के लिए अत्यन्त मनोहर, विलासों में इन्द्र के समान तथा रत्नों से विभूषित वह अनंग मदजल से युक्त हाथी के समान सुशोभित हो रहा था।। छ।।

महानील मणि के समान नील पथ वाले आकाश में मनोरम उज्ज्वल शुभ्र दिशा में कम्पायमान चंचल पत्तों वाली लताओं एवं वृक्षों से युक्त एक स्निग्ध भूमि प्रदेश को देखता है। शम्बु का वह उत्तम ज्येष्ठ भाई प्रद्युम्न

---

(3) (7) जातीपुष्प। (8) कस्तूरी। (9) पानकं। (10) चूर्ने। (11) शारिपासे। (12) मेघः। (13) प्राकृतं।

(4) (1) इन्द्रवत्।

महामणि णील-पहम्मि णहम्मि मणोरम-उज्जल-आस-[1]मुहम्मि।
णिएइ सिणिद्ध पएसइ[(2)]लाहे लयातरु-पत्त चलंत चलाहै।
पगज्जिय संभु तणू[(3)] तम-मेहिँ थिवेवरि चित्त पवित्तिए गेहि।
पयं[2] पिवि सक्कर पउर विसीसु[3] सुसायइ[(4)] सीउ[(5)] - सरंतु रईसु।
सुचंपय-पउम-अंतय-वउल विमुद्दिय[(6)] रुणिय भमर-उल।
सुहसरयम्मि रमेइ समाणु लहेइ सुइच्छइ ताह पमाणु।
हिमेण विमद्दिय सयल वणाइँ पलोयइ सालि विसा[4]ले वणाइँ।
सेवत्तिय-कुंद-कुमुअ-मचकुंद णीलोप्पल-वंधुअ[(7)]-वियसिय रुंद।
[5]सिरोवडि णेसइ वण्ण विचित्त रसेइ रसायण सुट्ठु पवित्त।
अहणिसु अयरु डहिज्जइ दिव्वु हिमागमे सेवइ एरिसु सव्वु।
णिवंधइ वेणिय-दंडु सिरम्मे वसेइ सिरम्मे णिरंध[(8)] घरम्मे।
ण छोल्लइ दंत ण सेल्लइ कंत वरुंचइ मंचइ सेज्ज महंत।
समोढइ रत्तउ कंवलु चारु विलेवणु कुंकुम सीयवु हारु।
सुउण्हउ भोज्जु सुअ सुगंधु[6] मलिद्धिउ माणइँ संबुहे वंधु।

घत्ता— जइ होउ त होउ अणंग समु णरु सयणासा पूरणु।
णिद्दइउ गलिज्जउ गब्भे थिउ जणणि सिहिण उल्लूरणु[(9)]।। 284।।

उसे परिमार्जित कर चित्त की प्रवृत्ति के अनुसार घर बनाकर उसमें रहने लगता है। वह रतीश (प्रद्युम्न) मिश्रित दुग्ध पानकर उसका आस्वादन लेता था। सीता-सरोवर के किनारे रमण करता था। रुण-झुण-रुण-झुण करते हुए भ्रमरकुलों से व्याप्त विकसित सुन्दर चम्पक, पद्म तमाल एवं बकुल-पुष्पों से सुशोभित शरद-काल में रमणियों को साथ में लेकर इच्छानुसार भोग-भोगता था, समस्त वन हिम से विमर्दित था। वह विशाल, शाल वृक्षों वाले वनों को देखता था। सेवन्ती, कुन्द, कुमुद, मचकुन्द, नीलकमल, बन्धूक (जपाकुसुम) जाति के विशाल विकसित विचित्र पुष्पों को देखता था। भली-भाँति तैयार किये गये पवित्र रसायनों का स्वाद लेता था। अहर्निश दिव्य-अगुरु जलाया जाता था। हेमन्तु ऋतु के आगमन पर यह सब सेवन किया जाता था। सिर में वेणी-दण्ड (मफलर) बाँधता था, भवन-शिखर को निरन्ध्र (छिद्र रहित) कर उसमें बसता था। न (ज्यादा देर तक) दाँत रगड़ता था, न अपनी कान्ति को सजाता था। महार्घ शैया के मंच में अधिक रुचि रखता था। शम्बु का वह भाई प्रद्युम्न भली-भाँति लाल सुन्दर कम्बल ओढ़ता था, विलेपन करता था, शीतल कुंकुम लगाता था और हार धारण करता था। सुन्दर उष्ण एवं सुगन्धित भोजन, घी को इच्छानुसार ग्रहण करता था।

घत्ता— यदि मनुष्य होना हो तो स्वजनों की आशा पूरी करने वाले अनंग—प्रद्युम्न के समान बनना चाहिए। माता के गर्भ में आकर निर्दयता पूर्वक उसके गर्भ को गलाने वाले तथा उसके स्तनों को शिथिल करके (प्रद्युम्न के विपरीत काम कर) माता को लजाने वाला मनुष्य नहीं बनना चाहिए।। 284।।

---

(4) 1. ब. मु। 2-3. अ. पिवेइ पयंणि सुसक्कर मीसु। 4. अ. ×। 5. अ. णपोलवि। 6. अ. भु।

(4) (2) पृथिव्यां। (3) पुत्रगाटले। (4) आस्वादयति। (5) शीतसरोवर। (6) विकसित पुष्पे। (7) जपा-कुसुम। (8) छिद्ररहित। (9) माता स्तनौशिथलीकरण।

(5)

दुवई— चित्त[1]-पयंगु णाइँ तेयड्ढुवि छण-ससि मंडलाणणो।
भोयासत्तु गवइ णिसि वासरु अरि-उरे-वंस-दारणो।। छ।।

इय जा वछइ पुरि वम्मीसरु संपत्तउ फग्गुण णंदीसरु।
ता चिंतइ पसण्णु-मणु रइवरु इज्झउ धम्म विहणउँ जो णरु।
ण मुणइँ किं पि हियाहिउ गावइ खज्जइ रवणवि पडुल्लउ पावइ।
दिज्जइ जमहो विहँ जे विणु वलि फिट्टइ णउ कयावि पुणु भव सलि।
करमि किंपि हउँ धम्महो कारणु सिव-सुहयरु दुग्गइहे णिवारणु।
भरहवि णिम्मियाइँ तिजगेसहँ कइलासोवरि जिण चउवीसहँ।
अट्ठाहियउ वियंभिवि भावइँ ण्हवण तण दीवय थुइ रावइँ।
चल्लिउ हय-गय-रह-जंपाणहिं छत्त-महाधय दिव्व-विमाणहिं।
हिमहर-हास सरिस चमरोहइँ विज्जिज्जंतु मयणु बहु सोहइँ।
गउ संवुहि समाणु तहि णरहरि दिट्ठु तरंग-भंग गंगासरि।

---

(5)

फाल्गुन मास के अठाई-पर्व के आते ही प्रद्युम्न में धर्म-प्रवृत्ति जागृत होती है और वह कैलाश-पर्वत के जिनगृहों की वन्दना हेतु वहाँ पहुँचता है

द्विपदी— चित्र (चैत्रमास) के सूर्य के समान तेजस्वी, पूर्णमासी के चन्द्रमण्डल के समान भद्र मुख वाला, अरिसमूह के वंश के हृदय को विदीर्ण करने वाला वह प्रद्युम्न भोगासक्त रहता हुआ अपने दिन-रात व्यतीत कर रहा था।। छ।।

इस प्रकार विलास-क्रीड़ाएँ कर जब वह कामदेव-प्रद्युम्न अपनी नगरी में वापिस लौटा तभी फाल्गुन-मास का नन्दीश्वर पर्व आकर उपस्थित हो गया। तब वह रतिवर प्रसन्नचित्त होकर विचार करने लगा—"जो मनुष्य धर्म-विहीन है, उसका जीवन व्यर्थ है। वह कुछ भी नहीं समझता, केवल अपने स्वार्थ की बातें ही गाता रहता है, जो रमण-भोगों में आसक्त रहता है, वह (निःसन्देह) ही संसार-पटल प्राप्त करता है।

जो बिना बलि के ही यम को अपनी बलि देते रहते हैं, उनका भव-शल्य (कभी) नहीं कटता। अतः अब मैं कुछ धर्म-कार्य करूँ, जो दुर्गति का निवारण कर सुखकारी शिवगति प्रदान करा सके। अतः भरत (चक्रवर्ती) द्वारा निर्मापित कैलाशपर्वत के ऊपर त्रिजगदीश्वर जिनेन्द्रों की चौबीसी में जाकर इस अठाई पर्व में विशेष श्रद्धा-भावना पूर्वक उन (जिनेन्द्रों) का अभिषेक कर स्तुति पूर्वक दीपक जलाना चाहिए।" यह विचारकर हय, गज, रथ, पालकी के साथ छत्र, महाध्वजा एवं अन्य शोभाओं से युक्त दिव्य-विमान में बैठकर वह प्रद्युम्न हिमगृह के हासोल्लास के समान चामर-समूहों की ढुरानों से युक्त होकर शम्बु एवं अन्य प्रधान पुरुषों के साथ चला। वहाँ (मार्ग में) उसने तरंग-भंगियों से युक्त गंगा नदी देखी। वहाँ आनन्द से भरकर गिरिवर (हिमालय) को

---

(5) (1) चित्तसूर्येन।

अवलोइउ साणंदइ गिरिवरु णं महि-महिलाए उब्भिउ णियकरु।
सावएहिँ सेविउ णं मुणिवरु मोक्खु व सिद्ध सहिउ णं दुहहरु।
विविह-रयण रइयइँ जिण गेहइँ घंटा-धय-तोरण कय सोहइँ।
पेच्छेविणु सविमाणहो तुरियउ जय-जय-जय भणंतु ऊयरियउ।

घत्ता— भुवणत्तय णाहहँ केवलवाहहँ भव्वंवुरुह दिणेसरहँ।
कम्मट्ठ-विणासहँ तच्च पयासहँ थुइ आढत्त जिणेसरहँ।। 285।।

(6)

दुवई--- असि-मसि-किसि सुपमुह पसु-पालणु पइँ परमेस ईरियं।
कप्पद्दुमहं - छेइ छुह वेविरु भुवण जणंपि-धीरयं।। छ।।

पणवेइ सुरिंद-[1]णरिंद णुवं रिसहंपि रिसीसर[(1)] संघ थुवं।
अजियं जिय अंगय मोह डरं जं इह परलोयहो सोक्खवरं।
संभव भवोह कय णिह विरमं संभव देवं वंदे परमं।
अहिणंदण णंदिउ तुव चरियं जं हरिहर-वंभह णाउ धरियं।
सुमयं सुमय[(2)] सुपयासिरियं वंदेसु पहुं समए सुरयं।

देखा। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों मही रूपी महिला को सहारा देने के लिए ही वह अपना हाथ फैलाये हुए खड़ा हो। श्वापदों से सेवित वह (गिरवर) ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह मोक्ष-सिद्धि से युक्त दुखहारी मुनिश्रेष्ठ ही हो। विविध रत्नों से रचित, घण्टा, ध्वजा, तोरणों से सुशोभित जिनगृहों को देखकर वह जय-जय-जय करता हुआ अपने विमान से उतर पड़ा।

घत्ता— उसने (उस चौबीसी में जाकर) भुवनत्रय के नाथ, केवलज्ञान के वाहक, भव्य-कमलों के लिए दिनेश्वर (सूर्य), अष्टकर्मों के विनाशक, तत्त्व प्रकाशक उन जिनेश्वरों की स्तुति करना प्रारम्भ की।। 285।।

(6)
प्रद्युम्न कैलाश-पर्वत पर चतुर्विंशति जिनेन्द्रों की स्तुति करता है

द्विपदी--- "हे परमेश, कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने तथा क्षुधा से कम्पित भुवन के लोगों को धैर्य धारण कराकर उन्हें असि, मसि, कृषि, प्रमुख पशुपालन आदि की प्रेरणा आपने ही की है।। छ।।

ऋषीश्वरों गणधरों के संघ द्वारा स्तुत ऋषभदेव को सुरेन्द्र एवं नरेन्द्र झुककर प्रणाम करते हैं। जो इस लोक एवं परलोक के लिए सुखकारी हैं, ऐसे अजितनाथ, कामदेव एवं मोह के डर को जीतने वाले हैं। जन्म-मरण से मुक्त भवों का सर्वथा विनाश करने वाले परमश्रेष्ठ सम्भवनाथ की वन्दना करता हूँ। हे अभिनन्दन, तुम्हारा चरित्र नन्दित होता रहे, जिसे हरि, हर एवं ब्रह्मा भी धारण नहीं कर सके। आगम में स्मृत श्रेष्ठ प्रभु तथा सुमति के प्रकाशक सुमतिनाथ की वन्दना करता हूँ। पद्म से आलिंगित पद्मप्रभ भगवान हैं, जिन्होंने भुवन को अपनी

---

(6) 1. अ. × ।

(6) (1) गणधरदेवैः। (2) नति।

पउमप्पह पउमालिंगियपयं जं भुवणं णिय मुद्दं कियपयं।
वंदेइ सुपासं पासहरं[3] सुद्धं सिद्धत्थं मुक्खहरं[4]।
चंदप्पहदेवं विमल तणु जं अमिउ[5] वम णिम्मविय अणु।
अणहं[6] अरुहं सुकुसुम दसणं किउ जेण चउगइँ गमणसणं।
सीयलणाहं वर सील धरं पणवेइ पंचकल्लाण करं।
सेयं संसेय किरण फुरियं वंदेइ जिणिंदं हय दुरियं।
अण्णाण तमोह-महण सुज्जं वासव[7] णमियं-वासवपुज्जं।
विमलं विमलें दिय सुह हरणं तिजगोत्तम जं तिलोय सरणं।
पणवेइ अणंत अणंतवलं जे णिहयं पर समयं सवलं।
धम्मं सुधम्म रह-धुर-धवलं मुसुमूरिय अट्ठकम्म णियलं[8]।
संतिं णवेइ जय संतियर चक्कहरं कामं तित्थयरं।
कुंथु-कुंथु पमुहं सदयं सुमणंपि कसाय वहे अदयं।
वंदेइ अरंतिहुवण पियरं कमजुवलेण विय सुर णियरं।
मल्लिं मलयाणिल गंध समं उक्खित्तं जेण पमाय दुमं।

जिन मुद्रा से अंकित किया है। कर्म-पाश के हरने वाले शुद्ध, सिद्धार्थ (कृतकृत्य) एवं मुक्ति के गृह के समान सुपार्श्वनाथ की वन्दना करता हूँ। निर्मल शरीर वाले चन्द्रप्रभ देव की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने अणु-अणु को भी अमृतोपम बना दिया। सुन्दर पुष्प के समान दाँतों वाले अनघ, अरुह (निर्दोष) उन पुष्पदन्त की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने चतुर्गति-गमन का नाश किया है। पंचकल्याणक-धारी एवं उत्तमशील के धारी शीतलनाथ को प्रणाम करता हूँ। श्रेय किरणों से स्फुरायमान तथा पाप को नष्ट करने वाले श्रेयांस जिनेन्द्र की वन्दना करता हूँ। अज्ञान रूपी तम-समूह का नाश करने के लिए सूर्य के समान तथा इन्द्र द्वारा नमित वासुपूज्य को नमन करता हूँ। निर्मल इन्द्रियदुःख के हरने वाले, तीनों लोकों में उत्तम तथा तीनों लोकों के लिए शरणभूत विमलनाथ को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने सबल रूप से परमतों का खण्डन किया है। ऐसे अनन्तनाथ स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ, जो उत्तम धर्म रूपी रथ की धुरा के बैल हैं और जिन्होंने आठ कर्मों की बेड़ी को नष्ट किया है ऐसे धर्मनाथ की वन्दना करता हूँ।

जगत में शान्ति के कर्त्ता शान्तिनाथ को नमस्कार करता हूँ, जो चक्रधारी चक्रवर्ती हैं, कामदेव तथा तीर्थंकर हैं। जो कुन्थु प्रमुख जीवों पर दया युक्त एवं सुन्दर मन वाले होने पर भी कषायों के वध में दयारहित हैं, उन कुन्थुनाथ को प्रणाम करता हूँ। उन श्री अरहनाथ की वंदना हूँ जो त्रिभुवन के पिता हैं तथा जिनके चरणकमलों में देव-समूह भी नमस्कार करते हैं। मलयानिल की गन्ध के समान गन्ध वाले मल्लिनाथ को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने प्रमाद रूपी वृक्ष को उखाड़ दिया है। सुव्रतों के भार को धारण करने वाले मुनिसुव्रत को प्रणाम करता

---

(6) (3) कर्मपाशहारकः। (4) करणीयरहितं। (5) अमृतप्रायः निर्मितं। (6) निष्पाप। (7) इन्द्र। (8) शृंखला।

मुणिसुव्वय-सुव्वय भार धरं णवणीरदु सण्णिह गहिर गिरं।
णमिणाहं णवइ णिरावर[9]णं जे णिहयं णिय णाणावरणं।
वंदे णेमिं जिय महुमहणं किउ जेण परीसह सय हरणं।
पासं पसरिय भुवणयले जसं किय सिद्ध वरंगण अप्पवसं।
वंदेइ सुवड्ढमाण परमं सिवपुरसामी धीरं चर[2]मं।

घत्ता— इय णविवि जिणेसर दुरियहर पारंभिउ एहवणुच्छिउ।
जगु वहिरिउ हय दुंदुहि रवेण वड्ढिउ सुर विसहरहं भउ।। 286।।

(7)

दुवई— वज्जा[1]उहु हुवासु[2] जमु णेरिउ वरणु वि पवणु णिहिवई[3]।
संभु फणीसु सोम आवाहिय जिण कम-कमल कई रई।। छ।।

जण्ण भाय दीवावलि लेविणु कुसुमक्खय जलेण पीणेविणु।
पुणु मणे फलिह विणिम्मिय सव्वहं पाडिहेर सहियहँ जिणबिंबहं।

हूँ जिनकी वाणी नवीन मेघ के समान गम्भीर है। जो आवरण रहित हैं, जिन्होंने अपने ज्ञानावरण कर्म को नष्ट किया है, उन नमिनाथ को मैं प्रणाम करता हूँ। काम को जीतने वाले नेमिनाथ को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने सैकड़ों परीषहों को सहन किया है। जिनका भुवनतल में यश फैला है और सिद्धि रूपी वरांगना को अपने वश में किया है, ऐसे पार्श्वनाथ को प्रणाम करता हूँ। शिवपुर के स्वामी, धीर वीर श्रेष्ठ एवं अन्तिम तीर्थंकर सुवर्धमान महावीर की वन्दना करता हूँ।

घत्ता— (इस प्रकार उस प्रद्युम्न ने) दुरितहरों जिनेश्वरों को नमस्कार कर उनका न्हवन, उत्सव प्रारम्भ किया। जगत को वधिर करने वाले बजाये गये। दुन्दुभि के शब्दों से देवों एवं नागेन्द्रों को भी भय बढ़ने लगा।। 286।।

(7)

कैलाश-पर्वत पर स्थित चौबीसी मन्दिर में प्रद्युम्न द्वारा दशदिक्पालों का स्मरण एवं जिनेन्द्र का अभिषेक तथा पूजन

द्विपदी— पुनः उस प्रद्युम्न ने वज्रायुध (इन्द्र), हुताश (अग्नि), यम, नैऋत्य, वरुण, पवन (वायव्य), निधिपति (कुबेर), शम्भु (ईशान), फणीश (नागेन्द्रअधः), सोम (उर्ध्व) इस प्रकार दश-दिशाधिपतियों (दिक्पालों) का आवाहन कर जिन-भगवान के चरण-कमलों में रति की।। छ।।

प्रद्युम्न दीपावलि लेकर पुष्प, अक्षत एवं जल से पूजाकर पुनः मन में स्फटिक के बने समस्त प्रातिहार्यों सहित जिन-बिम्बों को नालिकेर प्रमुख उत्कृष्ट द्रव्यों से माकन्द (आम्र) द्राक्षा आदि के रसों से भव्य अत्यन्त

---

(6) 2. अ. "म्रं"।

(6) (9) आवरणरहितं।

(7) (1) इन्द्र। (2) अग्नि। (3) कुबेर।

णालिएर पमुहहिँ वरदव्वहिँ मायंदिक्खु[4] - दक्खरस भव्वहिँ।
अइ सुवंधु णिम्मलु मणु रंजणु कणय छवि वहंतु हय अंजणु।
थिउ पुण्णघिवाह[5] पल्हच्छिउ णं दुक्कम्म समूहु गलच्छिउ।
हास-ससंक कंति कंतिल्लइँ मुणिवर मइ समेण हय सल्लइँ।
ण्हाविय जिणवरिंद वर दुद्धइँ चउ दह गामइँ णाइ णिरुद्धइँ।
घित्तदहदुदहिउ[6] णिम्महियउ पयडि णिवहु तिविहु वि णं महियउ।
लेवि सुअंधु सलिलु पक्खालिवि णं भव-दुमहो मूलु उक्खालेवि।
अट्ठोत्तरु-सउ कलसहिं सिंचिय णं कसाय मिच्छत्त वि वंचिय।
किउ गंधोव्वउ धुव कलि पंकहं णिह-णिय भव-भव वोह कलंकहं।
कमहस कमल मुक्क कुसुमंजलि णं सल्लत्तय दिण्ण जलंजलि[7]।

घत्ता— भिंगारु लएविणु रइरमणु जलरेहत्तउ भुव इव केहउ।
उप्पत्ति जरा मरणत्तयहो विरइउ सेउबंधु णं जेहउ।। 287।।

सुगन्धित निर्मल तथा मनोरंजक कनक-कान्ति को धारण करते हुए अंजन (पाप) रहित होकर भव-बाधाओं को नष्ट करने वाला पूर्णार्घ्य चढ़ाया, मानों दुष्कर्म-समूह को ही गलित कर दिया हो। चन्द्र के हास की कान्ति से सुशोभित मुनिवरों की सुमति के समान शल्य रहित होकर उस प्रद्युम्न ने जिन-वरेन्द्र का उत्तम दुग्ध से न्हवन कराया मानों चारों गतियों को दहा देने (नष्ट करने) के विरुद्ध कार्य किया हो घृत, दुग्ध, दही से अभिषेक किया। मानों त्रिविध (मोह, राग, द्वेष) प्रकृति-समूह को ही मथित कर दिया हो। फिर सुगन्धित जल लेकर प्रक्षालन किया। मानों संसार रूपी वृक्ष के मूल को उखाड़ दिया हो। फिर 108 कलशों से सिंचन (अभिषेक) किया, मानों अपने को कषाय-मिथ्यात्व से ही बचा लिया हो, फिर उसने कलि-काल के पंक (पापों) को धोने वाला गन्धोदक बनाकर लगाया, जो भव-भय रूपी व्याधि एवं ज्ञान के कलंक को नष्ट करने वाला है। पुन: उनके चरण-कमलों में उसने पुष्पांजलि छोड़ी मानों शल्यत्रय को जलांजलि ही दे दी हो।

घत्ता— रतिरमण ने भृंगार (मंगल-कलश) लेकर त्रिभुवन की प्रतीक जल की तीन रेखाएँ छोड़ीं। वे कैसी लग रही थी? वैसी ही, मानों उत्पत्ति, जरा एवं मरण को नष्ट करने के लिए सेतुबन्ध ही हों।। 287।।

---

(7) (4) अत्र। (5) पुण्यपादन: (6) घृतदधिदही। (7) सल्याजलंजलि।

(8)

दुवई— सुर-विसहर-खगेस-किण्णर-णर-गंधव्वेहिं संथुवा।
पुज्जरएइ अउइ अंगुब्भउ[1] जा तइलोय अब्भुया।। छ।।

अइ गंधड्ढणाइँ कुरु[2]भूमिव — अक्खयवंत सहइ सिवगइ इव।
महुसिरिव्व[3] पावइ कुसुमाउल — दियभत्ति[4] वणं आगउ राउल।
दीवा[1]लिव्व[5] जंबुदीवोवम — धूवावर वरगंधव्वहो सम।
सुपहु सेव णावइ फल दंसिर — सिसु कीलव सोहइ सालिव कर।
इय उच्छवइ महा जय धोसइ — णच्चिय सुर-णर वर परिओसइ।
वासर-अट्ठ तहिं जि णिवसेविणु — भत्तिएँ जिनबिंबइँ अच्चेविणु।
मिच्छमलु असेसु लुंचेविणु — सुहयरु सेय विडवि सिंचेविणु।
आगउ णियपुरि धम्माणंदिउ — सावय-णियरहिं अहिणंदिउ।

घत्ता-- थिउ मंदिरे सरु अणुदियहो सिरिणयणुप्पल पेरंति ण थक्कइ।
रिद्धिए जंभारि परि जिणइ तहो माहप्पु को वण्णहु सक्कइ।। 288।।

---

(8)

सुगन्धि, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल एवं शालि द्रव्यों द्वारा पूजा

द्विपदी— सुरों, नागेन्द्रों, विद्याधरों, किन्नरों, नरेन्द्रों एवं गन्धर्वों द्वारा स्तुत, प्रद्युम्न ने त्रैलोक्य के लिए अद्भुत जिनेन्द्र की पूजा रचायी।। छ।।

कुरुभूमि की सुगन्धि के समान सुगन्धित द्रव्य, शिवगति के समान सुशोभित अक्षत द्रव्य, बसन्तश्री के समान पुष्प-समूह तथा भक्तिपूर्वक नैवेद्य को लेकर उस राजकुमार ने जिनेन्द्र के आगे चढ़ाया। जम्बू-द्वीप के समान दीपावलि लेकर, गन्धर्व देवों के सदृश उत्तम धूप लेकर एवं उत्तम फल लेकर प्रभु की सेवा में सिर झुकाया। पुनः हाथों में शालि (अक्षत मिश्रित अर्घ) शिशु-क्रीड़ा के समान सुशोभित होने लगा। इस प्रकार सुर एवं नरवरों से घिरे हुए उस प्रद्युम्न ने नृत्य कर महान् जय घोष पूर्वक उत्सव मनाया और वहाँ आठ दिनों तक जिनेन्द्र की सेवा कर, भक्तिपूर्वक जिन-बिम्बों की अर्चना कर, समस्त मिथ्यात्व रूपी मल को धोकर, सुखकारी श्रेयस रूपी वृक्ष का सिंचन कर धर्म कार्य से आनन्दित होकर अपने नगर को लौट आया। तब वहाँ के श्रावक समूह ने उसका अभिनन्दन किया।

घत्ता— स्मर अपने महल में ठहरा। प्रतिदिन अपने नेत्र रूपी कमलों से श्री-सौन्दर्य को प्रेरणा देता हुआ थकता नहीं था। अपनी ऋद्धियों से जृम्भारि (कुबेर) को भी जीतता था। उस (प्रद्युम्न) के माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है?।। 288।।

---

(8) 1. अ दीवावलि।

(8) (1) प्रद्युम्न। (2) भोगभूमिवा कुरुभूमिवा इव। (3) वसंत। (4) अग्राहारयुक्तापक्वैनैवेद्य आगर सहित च। (5) अनेकादीविवेष्टितः।

(9)

दुवई— ता अवहत्थिऊण सयणोहु [1]सही-वहु सोक्ख कारणं।
संचल्लिउ तवस्स पहु णेमि कयं सवियारि वारणं।। छ।।

कुरु-पंडवहं महा[(1)]भारहे हुए गिहणिय सेण्णण्णोण्णु रणुज्जए।
सुर-किण्णर-[2]खगवूहहिं[(2)] रक्खिए भिडि भंडणे भडणिवह अलक्खिए।
दुद्धरे मगहाहए दोहाविए[(3)] अद्ध-चक्किपइ हरिणा पाविए।
किउ विसिसयणे[(4)] सयणु सुमहंतइँ णासा-सास वसेण तुरंतइँ।
पंचयण्णु अवलासुर डाविउ चरणंगुट्ठइँ चाउ चडाविउ।
करसाहए[(5)] तोलेवि लच्छीहरु णं महि भायइँ कलिउ महीहरु।
पुणु वणयर-वह[(6)] करुणएँ कंपिउ णउ पाणिग्गहु करमि पयंपिउ।
इंदिय-सुहु असेसु जा वंचिवि थिउ णिव्वेइउ रहवरु खंचिवि।

घत्ता — तावागय तहिं अमर[(7)] झुणि कुसुमंजलि कर-जुवले धिवेप्पिणु।
भो देव-देव जं चिंतवहि तं करेहि जंपंति णवेविणु।। 289।।

---

(9)

नेमिकुमार को संसार से वैराग्य हो जाता है

द्विपदी— तब मही—पृथिवी रूपी बहुत के लिए सुख का कारण वह प्रद्युम्न स्वजनों की अवहेलना कर तपस्या के स्वामी एवं विकारों के निवारक नेमिप्रभु के समीप तपस्या हेतु चला।। छ।।

कौरवों एवं पाण्डवों का महाभारत (महासंग्राम) हुआ, रण में उद्यत परस्पर की सेनाओं को नष्ट किया गया। सुर, किन्नर तथा विद्याधर-समूह द्वारा रक्षित तथा (विपक्षियों के) भट-समूह को देखे बिना ही द्रोही दुर्धर मगधाधिप—जरासन्ध युद्ध में कृष्ण से भिड़ गया। कृष्ण ने उसे मारकर अर्धचक्री पद प्राप्त कर लिया, किन्तु स्वजनों के लिए महान् उसी कृष्ण को नागशैया पर शयन करना पड़ा। श्री नेमिप्रभु ने नासा की श्वास से तुरन्त ही पांचजन्य शंख बजा दिया जिससे असुर भी घबड़ा उठे। पुनः अपने पैर के अँगूठे से (गांडीव) धनुष को चढ़ा दिया। इसी प्रकार हाथ की कनिष्ठांगुली से लक्ष्मीधर को तौल डाला। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानों पृथिवी के एक भाग से पर्वत ही जुड़ गया हो। ऐसे (महान् बलशाली) नेमिप्रभु भी वनचर-पशुओं के वध के कारण करुणा से भरकर काँप उठे। "मैं पाणिग्रहण नहीं करूँगा।" इस प्रकार प्रतिज्ञाकर जो समस्त इन्द्रिय-सुख छोड़कर तथा रथवरादि वैभव का त्यागकर वैराग्य में स्थित हो गये।

घत्ता— तभी वहाँ (लौकान्तिक—) देव आ गये और वे कर-युगल में कुसुमांजलि लेकर तथा नमस्कार कर कहने लगे—हे देव, हे देव, आप जो विचार कर रहे हैं, उसे कीजिए।" ।। 289 ।।

---

(9) 1. अ. °ध°। 2. अ. °गर।

(9) (1) महाभारतसंग्रामे। (2) समूह। (3) जरासिंधेहतेसति। (4) नागशैयायां। (5) करेण कनिष्ठांगुल्या। (6) वध। (7) लौकांतिकः।

(10)

दुवई— अब्भुद्धरि तिलोउ परमेसर कलिमल-पंक-खुत्तउ।
गय सग्गहो भणेवि लोयंतिय जिणु जिणगुणहिं जुत्तउ।। छ।।

सइँ बुद्धउ ता मदि भणि तहु असहंतु चउगइ गमण दुहु।
अवगण्णिय दूरेहिं रायमइ [1]संगहिय पयत्तइं रायमइ।
मणे धरिय ण जेण सरायमइ भाविय भावेण सरायमइ[2]।
विरहाउर मेल्लिय रायमइ हुवव[3] हुहे तवोवरि रायमइ।
संजायउ सुरवर आगमणु अंतिमु विलासु तहो करिवि पुणु।
जयकारे वि जाणइँ जलयवहे[(1)] णिउ अमरहिं परिभमंत भरहे।
रेवयगिरिवरे [4]भंजंति हरि ठवियउ जिणु सिद्ध-सिलाहि वरि।
असरीर णवेवि सहसंववणे सम भावइँ भाविवि तिजगु मणे।
उम्मूलिउ सकुडि[5]लु केस-पासु णं घाइ-चउक्कहँ वल-पणासु।
भूसण सकोस महि पवर धया छत्तोह-चमर-रह मत्त गया।
परिहरिवि सणेहु सहोयरहँ अवहेरि करेवि सेवायरहँ।

---

(10)

चतुर्विध ज्ञानधारी नेमिप्रभु द्वारावती के राजा वरदत्त के यहाँ जाकर आहार ग्रहण करते हैं

द्विपदी— कलिमल रूपी पंक को खोदकर फेंक देने वाले तथा जिनेन्द्र गुणों से युक्त परमेश्वर जिनेन्द्र नेमिप्रभु का उद्धारकर तथा समझाकर वह लौकान्तिक देव वापिस स्वर्ग को लौट गया।। छ।।

तुम स्वयं बुद्ध हो, मति, श्रुत एवं अवधि रूप तीन ज्ञानों के धारी हो, चतुर्गति के दुःख को सहन नहीं करने वाले हो, श्रमण-धर्म के प्रति तो प्रयत्न पूर्वक राग-मति संग्रहीत की, किन्तु जिसने मन में राजीमती के प्रति सरागमति धारण नहीं की और जिसने मोक्ष-लक्ष्मी के प्रति रागमति को धारण किया, जिसने विरहातुर राजमति को भी छोड़ दिया। प्रभु के लिए राजीमती से भी बढ़कर तपोलक्ष्मी हो गयी। वहाँ स्वर्ग से देवों का आगमन हुआ और अन्ततः उनका तपकल्याणक किया गया। जय-जयकार करते हुए उन देवों ने यानों से जलपथ (आकाश-मार्ग) में होकर भरतक्षेत्र में घुमाते हुए, कर्मशत्रु का भंजन करने वाले उन नेमिप्रभु को रैवतगिरि (गिरनार-पर्वत) की सिद्धशिला पर स्थापित किया। त्रिजगदीश उन नेमिप्रभु ने सहस्राम्रवन स्थित सिद्धशिला पर से सिद्धों को नमस्कार कर अपने में सम-भावना पूर्वक द्वादशानुप्रेक्षाओं का चिन्तन किया। उन्होंने सुन्दर घुँघराले केश-पाश को उखाड़ फेंका (केशलुंच किया)। मानों चार घातिया कर्मों के बल को ही नष्ट कर डाला हो। आभूषणों सहित कोष, राज्य, प्रवरध्वजा, छत्रसमूह, चमर, रथ, मदोन्मत्त गजों का परित्याग कर निरन्तर सेवा में संलग्न स्नेह सहचरों को उपेक्षित कर भव-भ्रमण से भयभीत होकर 1000 (दस सौ) राजाओं के साथ

---

(10) 1-2. अ ×। 3. अ. °प°। 4. अ. गुं°। 5. अ. °लि°।

(10) (1) आकाशे।

भव-भमण-भयहो भावइँ लयहँ दिक्खंकियाइँ दस-सय णिवहँ।
छट्ठोववास-विहि उच्चरिवि णु डिंभु कुमग्गहो संचरिवि।
थिउ पडिमा-जोएँ अरुहु जाम उप्पण्णउ णाणु चउत्थु ताम।

घत्ता— अण्णहिं दिणे णिट्ठा णिट्ठियउ दारामइहे पईसरेवि।
बरदत्त णरिंदहो तणइं घरि गउ उंजि त भोयणु करिवि।। 290।।

(11)

दुवई— एत्तहिं रयणविट्ठि कुसुमंजलि गंधोएण संजुवा।
जंपिउ साहु-साहु इय दुंदुहि पंचच्छरिय वर हुवा।। छ।।

दिण्ण छप्पण्ण गमिय छम्मत्थइँ सहवि परीसह कय मउणत्थइँ।
लेसा सेस अहम मेल्लंतइँ कम्म महागिरिवरु पेल्लंतइँ।
तव किवाण सर सीसु खुडंतइँ तेरहमइं गुण-ठाणि चडंतइँ।
वेणु[1] मही[1]रुह तले आसीणउँ अप्पा-अप्प-भेय संलीणउँ।
वज्जंकासणु करेवि तुरंतइँ पूरिउ सुक्क-झाणु अरहंतइँ।
उप्पाइयउ णा[2]णु णिरु केवलु णेयाणेय सरिस सयलामलु।

उन्होंने दीक्षा धारण कर ली।

षष्ठोपवास की विधि का उच्चारण कर कुमार्ग से हटकर जब वे योग्य प्रतिमायोग से स्थिर हुए, तब उन्हें चौथा मन:पर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ।

घत्ता— अन्य दिन निष्ठा से निष्ठित उन नेमिप्रभु ने द्वारामती (द्वारिकापुरी) में प्रवेश किया। वरदत्त राजा के भवन में पहुँचे और वहीं आहार ग्रहण किया।। 290।।

(11)

नेमिप्रभु को कैवल्य प्राप्ति एवं धनद द्वारा समवसरण की रचना

द्विपदी— इतने में ही रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि, गन्धोदकवृष्टि सहित साधु-साधु शब्दोच्चार एवं दुन्दुभि वाद्यवादन रूप उत्तम पंचाश्चर्य हुए।। छ।।

छद्मस्थावस्था में छप्पन दिन गमाये। मौनपूर्वक स्थित होकर समस्त परीषहें सहीं। समस्त अधम लेश्याएँ एवं अहंकार को छोड़ा। कर्मरूपी महापर्वतों को पेला (नाश किया)। काम-मोह के शिर को तपरूपी कृपाण से फोड़कर तेरहवें गुणस्थान में चढ़े। बाँसवृक्ष के तले बैठे हुए आत्मा को आत्मभेद में लीन किया। पुन: तुरन्त ही पर्यंकासन कर उन अरहन्त ने शुक्लध्यान को पूर्ण किया। तभी उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे पृथिवीलोक के समस्त सूक्ष्म-स्थूल पदार्थों को निर्मल रूप से जाना। उसी से जीव की 14 गति आदि मार्गणाओं

---

(11) 1. अ. "ए"। 2. अ. "भा"। (11) (1) वसंवेडे।

अवलोइउ जिउ गइयण[2] मग्गण अहम उवरि मज्झिम महि महिजण।
कालत्तय[3] जिय अजिय सरूवइँ पज्जत्तापज्जत्तय भूयइँ।
देस-सरूव-काल-अंतरियइँ सुपयत्थइं-अत्थइं विप्फुरियइँ।
ता सुर भुवणहँ णं घण-गज्जिय घंटा-संख-पडह सय वज्जिय।
आरूढउ अइरावइ सुरवइँ चल्लिउ णिसिवइ फणिवइ दिणवइँ।

घत्ता— धणएण वि खणें वेउव्वियउ समवसरणु अरुहहो कह।
उप्पण्णइं भुवणुज्जोयरि णाणइं आइ-जिणेंदु जह।। 291।।

(12)

दुवई— वल्लीवण-असोय परिहा धय गोउर णट्ट सालयं।
वर पायार-थंम जिणमंदिर पोक्खर वियसि[1] सालयं।। छ।।

अंजण-तमाल अलि सरिसरुई सिवगइ णिवासि अइ जासु रुई[2]।
अवलोइउ अहिमुहु पुरिस हरि जय जय भासंतु [1]थुणेइ हरि।
पइणिय कर-साहहिं तुलिउ हरि परिहरिय पुहवि गय रहस हरि।

का अवलोकन किया। अधम, उर्ध्व एवं मध्य लोक के प्राणियों को जाना। कालत्रय को जाना, पर्याप्त-अपर्याप्त रूप जीवों-अजीवों के अनेक स्वरूपों को जाना। देश का स्वरूप जाना, अन्तरित काल को जाना। सुपदार्थों को जाना, उनके अर्थ को विस्फुरित किया। तभी सुर भवनों से मेघनाद हुआ मानों मेघ ही गरजा हो। घंटा, शंख, पटह बिना बजाये स्वयं ही बजने लगे। सुरपति ऐरावत गज पर आरूढ़ होकर चला। निशिपति (चन्द्र), फणिपति (नागेन्द्र) एवं दिनपति (सूर्य) भी चला।

घत्ता— अपनी विक्रिया ऋद्धि से धनपति ने क्षण भर में ही उन अरहन्त का समवसरण रच दिया। कैसे? जिस प्रकार भुवन को उद्योतित करने वाले केवलज्ञान के उत्पन्न होते ही आदि जिनेश के लिये किया गया था। ।। 291।।

(12)

कृष्ण नेमिप्रभु के समवशरण में जाकर उनका धर्म-प्रवचन सुनते हैं

द्विपदी— वल्लीसमूह, अशोकवृक्ष, परिखा, ध्वज, गोपुर, नाट्यशाला, सुन्दर प्राकार, मान-स्तम्भ, जिनमन्दिर, पुष्कर और शालाएँ।। छ।।

तथा भ्रमर सदृश कान्ति वाले अंजन एवं तमाल वृक्ष विकसित किये गये। शिवगति में रहने की जिनकी रुचि है, ऐसे प्रधान पुरुष नेमिप्रभु के समवसरण को आया हुआ जानकर इन्द्र ने जय-जय बोल कर स्तुति की और अपनी-कर-शाखा (अंगुलि) से हरि को भी तौल लेने वाले नेमिप्रभु को नमस्कार कर वह इन्द्र हर्षित होकर तथा अपना आसन छोड़कर पृथिवी पर गया। उस समय वनों में विचरण करते हुए वे सिंह भी नियमत: स्थिर हो

---

(11) 3. अ. °च।
(12) 1. अ. तु°

(11) (2) गुण।
(12) (1) शोभायमान। (2) रुचि।

थिउ णियमे वि वणे वियरंत हरि णिय पयहँ णवाविय विविह हरि।
णंदउ तुव सासणु वूढ हरि भामंडलेण णिज्जिणिय हरि।
छत्तत्तएण उवहसिय हरि महो होउ समाहि तिलोय हरि।
तावायउ तिक्खंडाहिवइ भायर णाणेण पहिट्ठमइ।
सेण्णेण पक्ख-विपक्ख महइ सहुँ दसहि-दसारहि मणमहइँ[3]।
वंदिवि जणु णिंदिवि णियचरिउ आसीणउँ कोट्ठइँ गुण भरिउ।
वरदत्तइँ चिंतिय णियय-मणे पहु पुच्छेवि तउ संगहिउ खणे।
एयारह गणरंतेण[4] सहुँ हुव णसिय वाहित्तयहुँ[5] दुहुँ।

घत्ता— णिसुणेवि धम्मु देवइहे सुऊ सहुँ परियणइँ समागउ णियपुरे।
उद्धुय धयमालालंकियए रज्जु करंतु थक्कु मणहर घरे।। 292।।

(13)

दुवई— एत्तहिं परमजोइ परमेसरु परउवयार कारउ।
वियरइ महि असेस सहुँ संघइँ केवलणाण धारउ।। छ।।

गए, जिन्होंने विविध प्रकार से दूसरे सिंहों को अपने चरणों में झुकाया था। (इन्द्र ने स्तुति करते हुए कहा) हे नेमिप्रभु, आप अपने भामण्डल से हरि—सूर्य की प्रभा को भी जीत लेने वाले हो। हरि—कृष्ण को जीतने वाले है नेमि प्रभु, तुम्हारा शासन नन्दित रहे। आपके छत्र-त्रय से हरि—सूर्य भी तिरस्कृत हो जाता है। हे त्रैलोक्य हरि, मुझे समाधि की प्राप्ति हो।" तभी भाई की कैवल्य-प्राप्ति से हर्षित बुद्धि त्रिखण्डाधिपति तथा अपनी सेना द्वारा विपक्ष—शत्रु के भी पक्ष को मथित कर देने वाला वह कृष्ण दश-दशार राजाओं एवं प्रद्युम्न के साथ वहाँ आया तथा जिनेन्द्र की बन्दना करके और अपने भूतकाल की निन्दा कर, गुणों से युक्त वह (कृष्ण) अपने कोठे में बैठ गया। वरदत्त राजा ने अपने मन में विचारकर तथा नेमिप्रभु से पूछकर तत्काल ही उनसे तप ग्रहण कर लिया और वरदत्त राजा के साथ अन्य ग्यारह गणनायकों ने भी तप ग्रहण किया और इस प्रकार उनके व्याधित्रय (जन्म, जरा, मरण) के दुःख नष्ट हो गये।

घत्ता— देवकी के सुत (कृष्ण) धर्म सुनकर अपने परिजनों के साथ अपने नगर में आया। वह मनहर उड़ती हुई ध्वजमाला से अलंकृत अपने घर (द्वारिका) में रह कर राज्य करने लगा।। 292।।

(13)

नेमिप्रभु का संघ सहित विहार। उनके आगे-आगे धर्म-चक्र चलता था

द्विपदी— इसी बीच में परमयोगी, परमेश्वर, परोपकारी, केवलज्ञानधारी, वे नेमिप्रभु अपने संघ सहित समस्त पृथिवी-मण्डल पर विचरण करने लगे।। छ।।

---

(12) (3) प्रद्युम्न। (4) वरदत्तसह। (5) जन्मजरादि।

साहुहुँ किरिया जमवइ रयाइँ   पुव्वंगवि अट्ठइँ चउसयाइँ।
भिक्खासणाहँ णव सिक्खुयाहँ   एयारह सहसइँ भिक्खुयाहँ।
अहियइँ अडसय संजमधराहँ   पण्णारह-सय अवहीसराहँ।
केवलिहिं कलिय भुवणत्तयाहँ   एकाहिय दस सय संख ताहँ।
तेत्तिय वेउव्वण रिद्धिवंत   पडिवाइय वायाह्वर महंत।
सय अट्ठ सुवाइहि दिढ वयाइँ   मण-पज्जय णाणिय णव सयाइँ।
चालीस-सहासइँ संजईहिं   वरु एक्कु लक्खु मंदिर जईहिं।[1]
गुणवंतेहिं जीव दयावईहिं   लक्खाइँ तिण्णि तहँ सावईहिं।
संखाइँ तिरिय सुर संख रहिय   अच्छंति जंति सव्वण्हु सहिय।
अग्गइँ सुपट्टइँ धम्म-चक्कु   जहिं जाइ ण तहिं कहिं मोह-चक्कु।
जहिं जाइ तहिं जि जण जणिय सोक्खु   जहिं जाइ तहिं जि वट्टइ सुहिक्खु।
घत्ता— जहिं कहिं तहिं जिणवर अइसयइँ जम्म वइर रोसारुणइँ।
[illegible] तिरिय सह रमंति पसमिय मयणइँ।। 293।।

साधु की क्रिया करने वाली जाम्बवती आदि आर्यिकाओं के साथ-साथ 400 पूर्वांगविज्ञानी थे। नवशिक्षित भिक्षुओं सहित कुलसंयमधारी मुनियों की संख्या 800 अधिक 11000 (अर्थात् 11800) थी। 1500 अवधिज्ञानधारी साधु थे। भुवनत्रय में प्रसिद्ध केवलज्ञानी एक अधिक दस सौ अर्थात् 1100 थे और उतने ही (अर्थात् 1100) विक्रिया ऋद्धिधारी भी थे। प्रतिवादी से वाद करने वाले दृढ़ एवं महान् वादी साधु 800 थे। मनः पर्ययज्ञानी 900 थे। 40000 आर्यिकाएँ थीं। (प्रतिदिन) मन्दिर में जाकर देव-दर्शन करने वाले एक लाख गुणवान एवं दयावान श्रावक थे। श्राविकाएँ तीन लाख थीं। संख्यात तिर्यंच थे। देव संख्या रहित (असंख्यात) थे। जो सर्वज्ञ के विहार के समय साथ-साथ रुकते एवं चलते रहते थे। आगे-आगे मार्ग नगरों में धर्मचक्र चलता था। वे जहाँ-जहाँ भी जाते वहाँ कहीं भी मोह-चक्र उन्हें प्रभावित नहीं करता था। वे जहाँ भी जाते वहाँ सभी के मन में सुख उत्पन्न होता था। वे जहाँ भी जाते वहाँ सुभिक्ष हो जाता था।

घत्ता— वे जिनेन्द्र जहाँ कहीं भी जाते, उनके अतिशय से जन्म-जन्म के बैरी, क्रोध से एक दूसरे को लाल-लाल आँखों से देखने वाले सिंह एवं हाथी, सर्प एवं नेवला आदि तिर्यंच भी प्रशान्तमन से एक साथ रमण (किलोलें) करने लगे।। 293।।

---

(13) (1) श्रावक।

(14)

दुवई— संबोहेवि भव्व-पुंडरियइं हंसुव[(1)] हय तमोहयं।
णरय पडंत धरइ णिय-धम्म करेण लुणेइ मोहइ।। छ।।

जंभारिवि सइँ दासत्तु करइ जहिं पउ मेल्लइ तहिं कमलु धरइ।
णिवडइ णहाउ कुसुमोह णिरु तहँ सुरहि-सलिलु णउ थाइ थिरु।
णिम्मल महिधरइ कणोह भरु उग्घोसइ दुंदुहिं धम्म सरु।
सीयलु अणुकूलु वहइ सिसिरु दीसइ चउराणणु तिजग-गुरु।
तोडिय दिढ-कम्म महा णियलु [1]इय हिंडेविणु महियलु सयलु[2]।
आगउ पुणु रेवयगिरिवरहो सिंगग्ग णिरुद्धय हिमकरहो[(2)]।
णिक्खवण वणंतरे भुवणहिउ सुरवरहँ णमंतहँ जाम थिउ।
ता वणवालइँ वर कुसुमफल उडु रिउहिं जे उपज्जहिं विमल।
हेलइ गहेवि परमेसरहो णेविणु दंसिय चक्केसरहो।
पणवंतु पयंपइ अच्चरिउ पहु जेण कुमारइँ वउ धरिउ।
संजायउ जिणवर आगमणु फल कुसुमाउलु संपण्णु वणु।

---

(14)

वनपाल द्वारा सूचना पाते ही कृष्ण सदल-बल रैवतगिरि पर नेमिप्रभु के दर्शनार्थ चल पड़े

द्विपदी— संसार में अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए ज्ञानरूपी सूर्य के समान वे नेमिप्रभु भव्य-पुण्डरीकों को सम्बोधित कर उनके मोह का लुंचन करते थे तथा अपने धर्मरूपी हाथ से नरक में गिरते हुओं की रक्षा करते थे।। छ।।

(उनके विहार के समय) जृम्भारि—इन्द्र स्वयं दास (सेवक) का कार्य करता था। वे प्रभु जहाँ-जहाँ चरण रखते थे, वहाँ-वहाँ वह कमलों की रचना कर देता था। आकाश से निरन्तर पुष्पवृष्टि गिरती रहती थी। सुगन्धित जल (गन्धोदक) बरसता रहता था, वह स्थिर नहीं होता था, पृथिवी निर्मल रहती थी तथा वह धान्य की बालों को धारण करती थी। दुन्दुभि बाजे धर्म-स्वर का उद्घोष करते थे। शीतल अनुकूल शिशिर वायु बहती थी। त्रिजगद्गुरु नेमिप्रभु के चार मुख दिखाई देते थे। उन्होंने कर्मरूपी विशाल भवन को तोड़ डाला था। इस प्रकार समस्त पृथिवीतल पर भ्रमण (विहार) कर वे उस रैवतगिरि पर आये जिसके शिखराग्रों से चन्द्र किरणें भी रुक जाती थीं। भुवन के हितकारी तथा सुरवरों द्वारा स्तुत वे नेमिप्रभु जब निष्क्रमण कर वन के मध्य में विराजे थे तभी वनपाल ने षड्ऋतुओं के उत्पन्न निर्मल उत्तम पुष्प-फल लेकर विलास-क्रीड़ा पूर्वक परमेश्वर—चक्रेश्वर—कृष्ण को दिखाये और उन्हें भेंट देते हुए प्रणाम कर बोला—"हे प्रभु, आश्चर्य है, जिनसे कुमार प्रद्युम्न ने व्रत धारण किये थे, उन्हीं जिनवर का आगमन हुआ है। फल-पुष्पों से समस्त वन भर गया

---

(14) 1-2. ब. ×।

(14) (1) सूर्यश्च। (2) चन्द्रकिरणा।

ता मेल्लिवि आसणु हरिबलहँ पयसत्त पलट्टिवि अइबलहँ ।
भावइं णवेवि जिणु धरवि मणे पुरि धम्म-भेरि संदिण्ण खणे ।

घत्ता— भयर णेहाउलु महुमहणु सहुँ बलेण पसरिय आणंदइँ ।
णिय पुत्त-कलत्तइँ गुरुयणहँ चलिउ समाणु सु जय-जय सद्दइँ ।। 294 ।।

(15)

दुवई— पत्तो समवसरणे लच्छीहरु णिय सिरे कय कयंजली ।
पय पणवंतु थुणइ परमेसर णासिय जम्म दुह सली ।[1] ।। छ ।।

भो तुहुँ वीर कुसुमसर तासणु देव-देवि विसयारि विणासणु ।
पइँ मेल्लिवि भुवणत्तय सामिउ अवरु कवणु उत्तम-गइ-गामिउँ ।
पइँ बालइँ अबाल-मइँ[2] भाविय दुल्लह-णाण-महाणिहि पाविय ।
पइँ रूवइँ सकलुसइँ सइत्तइँ कयइँ अहिंसा-धम्म णिउत्तइँ[3] ।
तुम्हहँ पय-रय सम जइ जुज्जहिं मइँ जेह कुसील कहिँ पुज्जहिं ।
दुल्लह णउ लब्भहिं तुम्हारिस दीसहिं अइ अणेइ अम्हारिस ।

है।" तब अत्यन्त बली हरि एवं बलभद्र ने अपने-अपने आसनों को छोड़कर सात पद आगे जा कर भावपूर्वक जिनेन्द्र को मन में धारणकर नमस्कार किया और उसी क्षण नगर में धर्म भेरी बजवाई।

घत्ता— भाई (नेमिप्रभु) के प्रति स्नेह से भरकर वह मधुमथन—कृष्ण आनन्दित मन से बलदेव, अपने पुत्रों, कलत्रों एवं गुरु जनों के साथ जय-जय शब्दों का उच्चारण करता हुआ चला।। 294।।

(15)

कृष्ण द्वारा स्तुति। नेमिप्रभु का प्रवचन—जीव-स्वरूप

द्विपदी— वह लक्ष्मीधर (कृष्ण) समवशरण में पहुँचा। अपना सिर झुकाकर दोनों हाथ जोड़ कर परमेश्वर—नेमिप्रभु के चरणों में प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की—"जन्म-मरण रूप संसार के दुःख समूह को आपने नष्ट कर दिया है"।। छ।।

"......हे प्रभु, आप काम-बाण को नष्ट करने में पराक्रमी हैं। हे देव, आप विषय-शत्रु के नाश करने वाले हैं। आपने त्रिभुवन के स्वामीपने को छोड़ दिया। आपके सम्मुख उत्तमगति का गामी और कौन हो सकता है? आपने बालपन में भी अबाल (वृद्ध) मति की भावना की थी। इसी प्रकार आपने दुर्लभ ज्ञान रूप महानिधि प्राप्त की। आप के रूप को देखने मात्र से ही समस्त कलुष—पाप स्वतः शान्त हो जाते हैं। आप अहिंसा धर्म का निरूपण करते हैं। आपकी चरण रज की पूजा यतिगण भी करते हैं। जिनकी मति—बुद्धि कुशील युक्त है, उनकी पूजा कैसे की जाय? हमारे जैसे तो अनेक दिखायी पड़ते हैं किन्तु हे देव, आप दुर्लभ हैं। आप जैसे (महापुरुष) उपलब्ध नहीं होते। हे जगद्गुरु, सब जीवों को आपसे जैसा सुख मिला है, दुःखभार के निवारने वाला वही सुख

(15) (1) समूह। (2) वृद्धमति। (3) धर्मसंयुक्त।

जं तुह सुहु संजायउ जग गुरु तं महो होउ णिवारिय दुह भरु।
इय वंदिवि जिणु वंदिउ गणहरु आसीणउ णिय-कोट्ठइँ सिरिहरु।
जंपइ संधाहिव अहासहि जीव सहाउ वि सरुउ पयासहिं।
किं जड़ किं खणे अण्णुप्पज्जइँ किं गब्भा[4]इ-मरणे संपज्जइँ।
किं कत्ता लेवेण ण लिप्पइ देहे वसंतु ण देहइं छिप्पइ।
किं एक्कु जि वियरइ भुवणोयरे एरिस भेय पयं पिज्जहिं परे।

घत्ता— ता भासइ गणहरु गहिर-झुणि आयण्णहिं गोवद्धण धारण।
जइ जडु जिउ सइव[1]इँ कहिउ ता किं करइ परत्तहो कारण।। 295।।

(16)

दुवई— अह जल वुब्बुउव्व उप्पजइ विणसइ[1] अवरु खणे-खणे।
जगु भंतिल्लु केम परियाणिउं वुद्धहं भंति णउमणे।। छ।।

जइ उप्पज्जइ विणसइ णउ थिरु ता किं मुणइँ णिहाणु णिहि[2]उ चिरु।
पंकइं [3]पंकुलु हिउ किं फिट्टइ भंतिएँ भंति जणहो णउ तुट्टइ।

मुझे भी मिले।" इस प्रकार उस श्रीधर ने जिनेन्द्र की वन्दना की, फिर गणधरों की वन्दना की, और फिर मनुष्यों के कोठे में जा बैठा और बोला—हे "संघाधिप गणधर कहिए और प्रकाशित कीजिए कि—"जीव का स्वभाव और स्वरूप क्या है? क्या यह जीव जड़ है, क्या वह क्षण-क्षण में उत्पन्न होता चलता है? अथवा क्या वह गर्भकाल से लेकर मरण-पर्यन्त (निरन्तर) बना रहता है? क्या जीव कर्त्ता है? क्या वह कर्म-लेप से लिप्त नहीं होता? क्या वह देह में रहता हुआ भी देह से छुआ हुआ नहीं रहता? क्या वह एक ही है? क्या वह भुवन में अकेला ही विचरण करता है? इसी भेद को सूक्ष्म रीति से समझाइए।

घत्ता— तब गणधर ने गम्भीर ध्वनि पूर्वक कहा—"हे गोवर्धनधारी, सुनो। यदि जीव जड़ हो और स्वयं ही अपने विषय में कहे तो उसके दूसरे कारण क्या करेंगे?।। 295।।

(16)

बौद्ध, सांख्य एवं मीमांसकों के जीव-स्वरूप का खण्डन

द्विपदी— यदि यह कहो कि जीव जल के बुलबुले की तरह क्षण-क्षण में उपजता है और विनष्ट होता है तो यह जगत ही भ्रान्ति युक्त हो जायगा, इसे कौन जानेगा? इस विचारधारा के पोषक बौद्ध निस्सन्देह ही भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं। यह विचारधारा मन में जमती नहीं।। छ।।

यदि (वह जीव) उत्पन्न हो, नष्ट हो तथा स्थिर न हो तब वह चिर-काल तक सुरक्षित रखे हुए निधान (धन) को कैसे स्मरण रखता है? पंक को फाड़कर पंकज कैसे निकलता है? मनुष्यों की भ्रान्ति इससे नहीं टूटती।

(15) 1. अ सइवें।

(15) (4) गर्भमृत्युपर्यन्त।

(16) (1) बुद्धि इच्छादि गुण गते सति ईश्वरवादीसे। (2) व्यापितं। (3) कर्दमेन।

किं रत्तंवरु जाहो विहिण्णउँ इय उत्तरु जं लोयहँ दिण्णउँ।
कउलइ[(4)] भूव सरूवइँ कलियउँ भोजइ यहु णिय भावें मिलियउ।
तहि सें भूव पुणवि के आणिय जइ उवरंतरम्मि णिरु जाणिय।
तो किं सिहि विज्झइ णउ सलिलइँ सलिलु वि केम[1] सोसिज्ज पव[2]णइँ।
सुण्णु-गयणु महिजड किं चल्लइ एहिय जीव सिद्धि किं वोल्लइ।
णहवइ संखहँ वयणु णियत्तउँ क[3]साणउ[(5)] मण्णेइ अजुत्तउ।
ता किंपिय दंसणे पुलइज्जइ पुणरवि तासु वियऊयइ झिज्जइ।
वह णिवसंतु वएण ण छिप्पइ कहसु काइँ अरि पेक्खिवि कुप्पइ।
वेयणाईं गहियउ आसंकइ रक्खहु मुयउ भणेविणु कंखइ।
सइ अणु हवइ करेवि णिरुत्तउ अवरु वि जं भीमंसए वुत्तउ।
अइ असच्चु देही एक्कु जि किउ लोयालोउ सयलु पूरिवि थिउ।
भणु किं कीरइ वण्ण वियारइ सूर-णर-णारय-तिरिय पयारइ।
गुरु-सीसु ण कोइ पहु सेवायरु णाणा भेइ जिणइ भासिउ परु।
जाणसु मगहाहिव वलदूसण णिसुणि अवरु महिवलय विहूसण।

क्या रक्ताम्बर ने जगत् को बनाया है? इसका जो उत्तर लोगों को दिया जाता है, वह भी भ्रान्तियुक्त है। सांख्य सम्प्रदायवादियों ने पंचमहाभूत को जीव का स्वरूप बताया है। अत: हे सांख्यजनों, यदि यह भूत अपने ही स्वरूप में मिल जाता है तब फिर वह पुन: शरीर में कैसे लाया जाता है? और वह उदर-- गर्भ के भीतर आया है यह कैसे जाना जाता है? क्या अग्नि पानी से नहीं बुझायी जाती? पवन से पानी का शोषण कैसे हो जाता है? शून्य गगन में जड़ पृथिवी कैसे चलती है। इन प्रक्रियाओं से ही जीव की सिद्धि होती है। अधिक क्या बोलें? अत: जीव सम्बन्धी सांख्यों का कथन भी निरर्थक है। कौन ऐसा है जो सांख्यों के कथन को निरर्थक एवं अयुक्त नहीं मानेगा। प्रिय—इष्ट दर्शन से क्यों पुलकित हो जाता है? उसी प्रकार इष्टजन के वियोग से दु:खी क्यों हो जाता है? वदन (तन) में रहते हुए भी वह (जीव) वदन से स्पर्शित नहीं रहता। कहो कि शत्रु को देखकर उस पर क्रोध क्यों करता है? वेदना से ग्रस्त होकर आशंका क्यों करने लगता है और बचाओ-बचाओ, मरा-मरा चिल्ला कर सुरक्षित रहने की आकांक्षा क्यों करता है? इस प्रकार यह जीव स्वयं ही इन बातों का निरन्तर अनुभव करता है (कि जीव ही अपने कर्मों का कर्त्ता एवं भोक्ता है)। और भी कि, मीमांसक सम्प्रदाय वाले जो ये कहते हैं कि आत्मा एवं शरीर एक ही है और वह समस्त लोकालोक में व्याप्त है, यह भी असत्य ही है।

कहो कि यह जीव क्या करता है, उसका क्या वर्ण है, इस पर विचार करो? देव, नर, नारक एवं तिर्यंच ये जीव के चार वर्ण या गतियाँ हैं। न तो कोई किसी का शिष्य है और न गुरु और न कोई प्रभु या सेवक ही। इस प्रकार जिनेन्द्र ने जीवों के नाना-भेद बतलाये हैं। मगधाधिप (जरासन्ध) के सैन्य-बल को दूषित करने वाले हे कृष्ण, उन्हें जानो और हे महिवलय के विभूषण, उन्हें सुनो।

---

(16) 1. अ. किन्न। 2. अ. अनिलें। 3. अ. भोसाणउ।

(16) (4) कुत्रस्थानात्। (5) भोसाकोनिन।

घत्ता-- जइ णिच्चु जि तइ णिविकिरिउ[6] णउ संभवइ अणिच्चहो सिव सुहु।
पज्जाएण अणिच्चु थिउ दव्वइँ णिच्चु राय जाणहिँ तुहु।। 296।।

(17)

दुवई— णिच्चाणिच्चु एम आहिंडइ चउगइ गहण णिस्समो।
खय भय तसिउ सुसिउ पुणु णिवडइ जमहरेणाहिवक्कमो।। छ।।

चउरासी लक्खहँ जोणि-वासु वियरंतहो वड्ढइ कम्मपासु।
इल-जल-सिहि-सिमिर वण[1]च्चकाए चउदस सु भूव गामंतराए।
लक्खिज्जइ जिउ मग्गण गुणेण चउसण्णा-चउविह-दंसणेण।
चउगइ-कसाय चउविह-विहाणे भव्वेण दुविह-संजम पहाणे।
पंचेंदिएहिं सम्मत्त-तिविहि णाणट्ठइँ-लेसा भेएँ छविहि।
जोएण तिविह भे[2]एण-सहिय आहारइँ छह-भेएण कहिय।
चर-अचर-सयल-भासंति णाणि पोग्गलउदुमाणइँ किण्ह जाणि।
अवरु वि अगेय-अविणास-दव्व थिय पूरिवि लोयालोउ सव्व।
जह णइ पवाहु मीणहो हवेइ[1] रुंभइ ण जंत थिउ णइ[2] वणेइ।

घत्ता— यदि वह जीव-आत्मा नित्य हो तब वह निष्क्रिय हो जायगी। यदि उसे अनित्य मानों तब शिव--मोक्ष-सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं होगी। हाँ, हे राजन, वह पर्याय से अनित्य है एवं द्रव्य से नित्य ऐसा जानो।। 296।।

(17)

जीव-स्वरूप एवं प्रकार-वर्णन

द्विपदी— इसप्रकार द्रव्य एवं पर्याय की दृष्टि से नित्य एवं अनित्य यह जीव चारों गतियों में निरन्तर भटकता रहता है और अपने नाश के भय से दुःखी होता है, सूखता रहता है और पुनः यमराज के पंजों में पड़ जाता है। ।। छ।।

84 लाख योनियों में निवास करते हुए तथा उनमें विचरते हुए इस जीव का कर्मपाश बढ़ जाता है। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति जीवों के 14 जीवसमास होते हैं। यह जीव 14 मार्गणाओं, 14 गुणस्थानों, 4 संज्ञाओं, चार दर्शन, चार गतियों, 4 प्रकार की कषायों से जाने जाते हैं। प्रधान भव्य जीव दो प्रकार के संयम से जाने जाते हैं। साथ ही वे 5 इन्द्रियों, 3 प्रकार के सम्यक्त्वों, 8 प्रकार के ज्ञानों, 6 प्रकार की लेश्याओं, तीन प्रकार के योगों सहित 6 प्रकार के कहे गये आहारों द्वारा देखे-जाने जाते हैं। ज्ञानी-जीव के ज्ञान में समस्त चर-अचर द्रव्य भासते हैं। हे कृष्ण, पुद्गल दो भेद वाला जानो, और भी अनेक अविनाशी द्रव्य हैं। उनसे समस्त लोकालोक पूरा भरा हुआ है। जिस प्रकार नदी का जल-प्रवाह मीन के चलने में सहायक होता है, जाते हुए को रोकता नहीं, ठहरे हुए को चलाता नहीं, जो गमन करने में सहायक होता है वह धर्म द्रव्य कहलाता है। इसी प्रकार (जीवों

---

(16) (6) क्रियारहित।

(17) 1. ब. वणच्छियउँ: 2. ब. वे°।

(17) (1) गतिषु। (2) प्रसादकर्त्ता।

गमणहो सहाउ तहो होइ धम्मु अवया[3]सहो णाहु ठाणहो अहम्मु।
खीरहो जलु जेम हवेइ जुत्तु[4] देहु वि आहारु जि भो णिरुत्तु।
उप्पज्जइ विणसइ परिणवेइ किउ कम्मु[5] कोवि कालइँ सहेइ।
पर-अहिय जे रोसारुण अयाण पावंति बहुव माणावमाण।
रुच्चंति ण सयणहँ परियणाहँ संताउ ण फिट्टइ केम ताहँ।
आरंभहिं तं विहडइ खणेण मोहिज्जहिं सइ जूरहिं मणेण।
सिज्जहिं खणे-खणे णिद्दइव एम सुहु णउ लहंति जम्मेण केम।

घत्ता— इय जाणेविणु वप्प किज्जइ जीव दयालु मणु।
सुहियए पुण्णु अणंतु तुट्टइ आवागमणु पुणु।। 297।।

(18)

दुवई— जिण सासणु मग्गे संलीणउँ पावइ परम उण्णई
अणुवम उद[1]रि उवरि अमरावइ बड्ढइ सोक्ख सतई।। छ।।

गणणाहइ तच्चु असेसु कहिउ भुवणोयरत्थु णउ किंपि रहिउ।

एवं पुद्गलों को) ठहरने में अधर्म द्रव्य, स्थान दान देने में आकाश द्रव्य सहायता देता है। दूध में पानी जिस प्रकार मिश्रित रहता है, उसी प्रकार हे कृष्ण, देह एवं जीव भी मिला हुआ है ऐसा कहा गया है। अपने कर्मों के अनुसार ही यह जीव उत्पन्न होता है, विनष्ट होता है और परिवर्तित होता है। अपने किये हुए कर्मों के फल को कितने ही समय तक सहता रहता है। जो पर-जीवों का अहित करते हैं, जो दूसरे के अहित में क्रोध से लाल बने रहते हैं, वे अज्ञानी अनेक प्रकार के मान-अपमान को पाते रहते हैं, ऐसे अज्ञानी लोग स्वजनों एवं परिजनों के लिए रुचिकर नहीं लगते। उनका सन्ताप किसी भी प्रकार से समाप्त नहीं होता। ऐसे लोग जो भी आरम्भ करते हैं वह क्षण भर में विघटित हो जाता है। दूसरों के द्वारा मोहित किये जाते हैं, अतः मन में झूरते रहते हैं। ऐसे भाग्यहीन, निर्दयी लोग क्षण-क्षण में सीजते (दुःखी होते) रहते हैं। वे किसी भी जन्म में सुख नहीं पाते।

घत्ता— ऐसा जान कर हे वप्प, जीवों के प्रति अपना मन दयालु करो। क्योंकि ऐसे शुभभावों से अनन्त पुण्य होता है और आवागमन छूट जाता है।। 297।।

(18)

तत्त्व-वर्णन एवं पूर्वभवावलि वर्णन

द्विपदी— जो जिन-मत में मग्न हैं, उसमें लगे हुए हैं, वे परम उन्नति पाते हैं, तथा मध्य-लोक के ऊपर, उदार और सैकड़ों प्रकार के सुखों वाले स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। ।। छ।।

गणनाथ ने उन कृष्ण के लिए भुवन में स्थित समस्त तत्त्वों का कथन किया। शेष कुछ भी न रहा। जिस

---

(17) (3) अवकाशस्य। (4) संयुक्त। (5) कर्म।

(18) 1. अ. 'च'।

जह बज्झइ सिज्झइ जीव दव्वु संभवइ पाउ जिह पुण्णु सव्वु।
जं सुहुमु थूलु णाणहँ णिउत्तु मणुसोत्तर गिरि वलइय विचित्तु।
णर दीवड्ढाइय मेरु पंच पण्णारह-कम्म महीहिं संच।
गिरि तीस स सरवर कमल तीस तेत्तियउ भोय-भूमिउँ महीस।
ताउ जि छण्णवइ कुभेइ णीउ सत्तरि सुमहाजल-वाहिणीउ।
खेत्तंतर खेयर-माणवाहँ णिद्देसिय संख करेवि ताहँ।
ईरिय ससमुद्द वि दीव ताम छेइल्लु सयंभू-रमणु जाम।
णारय-सुर खयउ छेउ आउ सुहु-दुहु अणंतु भावाणुभाउ।
पुणु भासिय भव सयलहं सभेय हरि-हलि दसार पमुहहँ अणेय।
ता पणवेवि गुरु-पय पंकयाहँ सयलहँ गहियाइँ अणुव्वयाइँ।
विमलइँ गुणवय-सिक्खावयाहँ भोगोपभोगमाणइँ[1] कयाहँ।

घत्ता— विहसिवि सविणय वयणइ वलेण[2] पपंपिउ परम मुणि।
संसार महाविसि[3] वसहरेण विसयकट्ठ सिहि समणि सुणि।। 298।।

प्रकार सभी जीव द्रव्य बँधते कर्मों से बँधते और सिद्ध होते है, जिस प्रकार पुण्य और पाप को प्राप्त होते हैं। ज्ञानियों ने जो स्थूल एवं सूक्ष्म जीवों का कथन किया है, जो कि विचित्र मानुषोत्तर पर्वत वलय में रहते हैं। हे नरेन्द्र, अढाई द्वीप, पंचमेरु, पन्द्रह कर्म-भूमि और तीस पर्वत, कमल सहित सरोवर तीस एवं हे महीश, उतनी ही भोगभूमियाँ हैं। उसी प्रकार 96 कुभोगभूमियाँ, 70 महाजलवाली नदियाँ, क्षेत्रान्तर के खेचर मनुष्यों की भी निर्दिष्ट संख्या जानो। ऐसे द्वीप, समुद्र असंख्यात जानना चाहिये। अन्त में स्वयम्भूरमण समुद्र है। नारकी और देवों की आयु का छेद नहीं है (आयु का अन्त आता है)। अनन्त दुःख-सुख भावों के अनुसार होते हैं। पुनः उस नेमिप्रभु ने हरि, हलधर तथा दसार आदि अनेक प्रमुख राजाओं के सभी जन्म-जन्मान्तरों के भवों को कह सुनाया। तत्पश्चात् गुरुवर (नेमिप्रभु) के चरण-कमलों में प्रणाम कर उन्होंने अणुव्रत, निर्मल गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत धारण कर लिये तथा उसी समय से भोगोपभोगों की सीमाएँ निश्चित कर लीं।

घत्ता— बलभद्र ने भी हँसकर विनम्र वाणी में परममुनि (नेमिप्रभु) से प्रश्न किये। तब गणधर ने उत्तर में कहा—"हे श्रमण सुनो। यह संसार महाघने जंगल के समान है, जिसमें पंचेन्द्रिय रूपी महासर्प निवास करते हैं, और जहाँ विषय-वासना रूपी काष्ठ की ज्वाला जलती रहती है।। 298।।

(18) (1) प्रमाणाइँ। (2) बलभद्रेन। (3) सर्प।

(19)

दुवई— पुरिवारमइ पवर-सुर-वल्लह [1]रही रिद्धि कण्हहो।
णं देसइ अविग्घ आहासहि जयसिरि समरे तण्हहो।। छ।।

भो तिक्खंडा हिव सामि साल भासइ जिणु णिसुणहि कामपाल।
दह-अट्ठकोडि कुल जायवाहँ सुकुमालहँ णं णव-पल्लवाहँ।
मह[(1)]राएँ पावेसहिं विणासु दीवायणंगि णयरी-विणासु।
उव्वरिसहुँ तुम्हहँ वेवि राय चुक्कइ णमहारी दिव्व-वाय।
अवरु वि हरिणिय असिधेणु वाइँ खउ होसइ आउ पमाणु जाइँ।
हत्थेण जरयकुमरहो तणेण एहउ जगु मा मुज्झहि मणेण।
दीसंति ण थिर दिणयर मयंक सुर-फणिवइ मणे मरण संक।
कुलयर-जिणवर-चक्केसराहँ हरि-पडिहरि-हलहिं-खगेसराहँ।
उप्पण्ण जे गय इह अइवलाहँ को सक्कइ संख करेवि ताहँ।
ता जाणिवि चल संसार गइ वइराए पइट्ठिय मयणमइ[(2)]।
पवियप्पइ सुह-दुह दोर-खद्ध आसा वस कालइँ केण खद्ध।
किं रज्जइँ सुहयविउउ जेत्थु पाविज्जइ सोउ महंतु तेत्थु।

(19)

द्वारिका-विनाश सम्बन्धी भविष्यवाणी तथा प्रद्युम्न का वैराग्य

द्विपदी— देवों के लिए अत्यन्त प्रिय कृष्ण की उत्तमपुरी द्वारिका ऋद्धि-सिद्धि से समृद्ध थी। मानों कह रही हो कि तृष्णा के साथ किये गये युद्ध में जयश्री निर्विघ्न रूप से मिलेगी।। छ।।

हे महान् त्रिखंडाधिपते, हे स्वामिन, हे कामपाल सुनो। जिनेन्द्र कहते हैं कि, नव-पत्रों के समान सुकुमार यादवों के 18 करोड़ कुल मदिरा-पान से विनाश को प्राप्त होंगे। (मुनि-··) द्वीपायन द्वारा नगरी का विनाश होगा। हे राजन, तुम सब में से तुम दो ही बचोगे। हमारी यह दिव्य-वाणी (भविष्यवाणी) नहीं चूकेगी। और भी सुनो कि हरि के अपने असि, धेनु आदि भी नष्ट हो जायेंगे। हरि का आयु प्रमाण भी जरदकुमार के हाथ से क्षय को प्राप्त होगा। अतः इस जगत में मोहित मन मत बनो। यहाँ सूर्य-चन्द्र भी स्थिर नहीं दीखते हैं। सुरपति एवं फणिपति भी अपने मन में मरण की शंका करते रहते हैं। कुलकर, जिनवर, चक्रेश्वर, हरि, प्रतिहरि, बलभद्र, खगेश्वर आदि जितने भी महाबली उत्पन्न हुए, उनकी गिनती कौन कर सकता है? वे भी इस संसार में नहीं रहे।" संसार की गति को चचंल—अस्थिर समझकर मदन—प्रद्युम्न की मति वैराग्य से भर उठी। (और विचार करने लगा कि—) —"सुख-दुःख की रस्सी से बँधा हुआ यह प्राणी आशावश अनेक (संकल्प—) विकल्प करता रहता है, किन्तु काल के द्वारा कौन नहीं खा डाला गया? जहाँ सुभगों का वियोग है, वहाँ क्या राग करें? क्योंकि वहाँ तो महान् शोक प्राप्त होता है। शोक से आर्त्त-ध्यान उत्पन्न होता है, उससे मनुष्य का निर्मल ज्ञान हट

---

(19) 1. अ. 'ण'।

(19) (1) मद्य। (2) प्रद्युम्नस्यमतिः।

सोएण पयट्टइ अट्टझाणु उहट्टइ मणुवहो विमलणाणु।
विणु णाणें णउ सिवगइ लहेइ संसार महण्णवे दुहु सहेइ।

घत्ता–– इय चिंतिवि णिच्छउ करेंवि मणे पणवेवि पंकय[3]णाहु खणे।
वलएवएँ सहुं भीसम-सुयइँ जंपइ जामि तवोवणे।। 299।।

(20)

दुवई— किज्जउ महो पसाउ आमेल्लहु एमहिं सल्ल संगहँ।
संघारमि असेस कम्मारिसु माणमि सिवउरे सुहँ।। छ।।

दुल्लहु भुवणे जं जि तं लद्धउ तुम्हँ पयहँ पसाएँ सिद्धउ।
संसारिउ सुहु विलसिउ सुंदरु जं पावइ सदरु ण पुरंदरु।
ताय-ताय अब्भच्छिउ किज्जइ देवा एस दाणु लहु दिज्जइ।
किय अवराह अणेय अयारणे तोहं पसण्ण भाव-भाव हो मणे।
खमहु सयलु मइँ खमिउँ तिलोयहो गहियउ णियमु परिग्गहु भोयहो।
ता णिय-तणय दुहइँ अइरीणा खणे रूविणि ससिलेह व झीणा।
णंदण-णेहाउलउ सवच्छलु वाह पवाहइँ धुवइ उरत्थलु।

जाता है। बिना ज्ञान के शिवगति नहीं मिलती और संसार-समुद्र में दुःख पाता रहता है।

घत्ता— ऐसा विचारकर क्षण भर में ही अपने मन में निश्चयकर तथा पद्मनाभ को प्रणाम कर बलदेव सहित रूपिणी से उस प्रद्युम्न ने कहा कि—"मैं तो तपोवन को जाता हूँ।"।। 299।।

(20)

प्रद्युम्न नेमिप्रभु से दीक्षा ले लेता है

द्विपदी— प्रद्युम्न ने नेमिप्रभु से कहा—"मुझ पर कृपा कीजिए और इस प्रकार मेरे शल्य को दूर कीजिए। अब मैं समस्त कर्मशत्रुओं का संहार करूँगा तथा शिवपुर के सुखों को मानूँगा (भोगूँगा)।"।। छ।।

—"भुवन में जो कुछ भी दुर्लभ है, वे सब मैंने प्राप्त किये हैं और आपके चरणों की कृपा से वे सभी सिद्ध हुए हैं। ऐसे-ऐसे सुन्दर सांसारिक सुखों को भोग लिया है जो अप्सराओं वाले इन्द्रों को भी उपलब्ध नहीं है। हे तात, हे तात, मेरे इच्छित को कीजिए, हे देव, शीघ्र ही आदेश-दान दीजिए। अज्ञान के कारण यद्यपि मैंने अनेक अपराध किये हैं, तो भी प्रशान्त भाव से (वैराग्य का) विचारकर मैं मन में प्रसन्न हूँ। सभी प्राणी मुझे क्षमा करें। मैंने भी त्रैलोक्य के प्राणियों को क्षमा कर दिया है। और (अब) परिग्रह-भोग का नियम ग्रहण कर लिया है।

अपने पुत्र के दुःख से अत्यन्त खिन्न हुई रूपिणी क्षण भर में ही चन्द्रकला के समान अत्यन्त क्षीण हो गयी। पुत्र के स्नेह से आकुल, वात्सल्य-भाव से युक्त, वह (रूपिणी) वाष्प (अश्रु) प्रवाह से उर-स्थल को धोने लगी।

---

(19) (3) नारायणस्य बलिभद्रेण।

जंपइ वच्छ-वच्छ कुडिलालय किह उम्मूलय सहिसा आलय।
सुवहि हंस तूलेसु सकोमले कह णिसि-वासरु गमि सियलायले।
तुव रुच्चहिं सुवच्छ वरभूसण कहवि सहीसि परीसह भीसण।
थिउ मलिणाणणु बलु चिंतवउ विवरीयउ जि दइउ संपत्तउ।
सजलोल्लिय-णयणइँ गग्गिर-गिरु सुव विउय भई वसु कंपउ गिरु।
चवइ पुणु वि पुणु पउम कयग्गहु तुह आणायरु सयलु परिग्गहु।
हय-गय-रह-सकोस कण दाइणि लइ परपालि सयल वरमेइणि।
करहि रज्जु वारवइ परिट्ठिउ हउं अछमि अंतेउर संठिउ।
जूरहिं णीससंति जायव-वहु रेहहिं णं ससि विरहिउ णिसिणहु।

घत्ता— इय सोय महारसु पसरिउ अंगे ण माइउ मणसिय सयणहँ।
वलि मं[1]डधरं वरं[2] ताहँ झत्ति त्रि णि[3]गाउ पयलवि णयणहँ।। 300।।

(21)

दुवई— अवलोएवि एम विम णम्मणु रामु[(1)] – मुरारि[(2)] परियण[(3)]।
सुक्कलया [(4)]सरूव भीसम-सुव जंपिउ वज्जहिय[(5)]इणं।। छ।।

वह (रोकर) चिल्लाने लगी कि हे वत्स, कुटिल केश हे वत्स, तू सहसा ही अपने अलक कैसे उखाड़ेगा? यहाँ तो तू हंस के समान शुभ्र एवं सुकोमल गद्दों पर सोता है, अब तू शिलाओं पर अपने दिन-रात कैसे व्यतीत करेगा? हे सुवत्स, तुझे तो उत्तम-उत्तम आभूषण रुचते हैं, तब भीषण परीषह कैसे सहेगा? म्लान मुख बलदेव चिन्तित हो उठे और सोचने लगे कि अब भाग्य विपरीत हो गया है। उनके नेत्र जल से चंचल हो उठे, कण्ठ रुँध गया। पुत्र-वियोग से वासुदेव (कृष्ण) भी काँपने लगे। वे पुनः-पुनः बोलने लगे— "तुम सुकृती जनों में अग्रणी हो, समस्त परिवार तुम्हारा आज्ञाकारी है। अतः घोड़ा, हाथी, रथ, कोष सहित अन्नकण देने वाली समस्त पृथिवी का पालन करो। द्वारिकापुरी में रह कर राज्य करो। मैं अन्तःपुर में स्थित रहूँगा। यादव वधुएँ (प्रद्युम्न की रानियाँ) झूरने लगीं, दीर्घ निश्वासें लेने लगीं। वे उसी प्रकार निष्प्रभ हो गयीं, जिस प्रकार चन्द्रविहीन रात्रियाँ।

घत्ता— इस प्रकार शोक रूपी महारस ऐसा फैला कि वह मनसिज के स्वजनों के अंगों में नहीं समाया। बलवान् भट-श्रेष्ठों का भी तत्काल दमन करने वाले कृष्ण-बलदेव के नेत्रों से अश्रु-प्रवाहित होने लगा।। 300।।

(21)

शम्बु, अनिरुद्ध, भानु, सुभानु के साथ-साथ सत्यभामा एवं रूपिणी आदि भी अपनी बहुओं के साथ दीक्षित हो जाती हैं

द्विपदी— इस प्रकार विवर्ण (उदास चित्त) बलभद्र, मुरारी (कृष्ण) तथा परिजनों एवं सूखी हुई लता के समान भीषम-पुत्री—रूपिणी को देखकर वज्र-हृदय —इन्द्र ने कहा।। छ।।

---

(20) 1-2. अ. मंडधरंतवरंत। 3. अ. णि'।

(21) (1) बलिभद्रेन। (2) रामाविष्णु। (3) परिवार रूपिणीसह। (4) स्वकररहित मननंता। (5) वज्र पुत्रेन इन्द्रेण।

भो-भो चक्कपाणि लहु मेल्लहिं आउ-जाहु परिवयणु म बोल्लहिं।
धण्ण ते जे तवयरणइँ मंडिय इयर कसाय-पिसायहिं खंडिय।
एहु केवलि अंतिम वउसारउ अवसु हवेसइ तव-धुर धारउ।।
एमहि णउ वारिउ थक्कइँ पइँ पिउ[6]-पुत्तक्कमु सुउ भासिउ मइँ।
संबोहेवि सयल हरिणासहु रुविणि मंडए मोयाविय दुहु।
सहसक्खेण[7] पयंपिउ एही अण्ण ण तिय दीसइ पइँ जेही।
भणु[8] संभवइ कासु एहउ सुउ दिक्करि-कर-परिह[1]ग्गल-सम भुउ।
कवणु एम कुल-लच्छि चएविणु साहइ णियमणु चवलु धरेविणु।
एत्तहँ कय जीवय कारुण्णउ भयणइँ मुणि-चरित्तु पडिवण्णउ।
सहुं संबुए-अणिरुद्ध कुमारइँ भाणु-सुभाणु पह हय-मारइँ।
हरि सुव अणुगामिय ससिवयणहँ दिक्खिय सत्तसयइँ णिव तणयहँ।
णिय-णिय अंगुब्भवहँ सणेहें परिसेसिय पिय घरणि ण मोहें।
सच्चहाम-रूविणि सिय सेविहिं सुण्हहँ समउ अट्ठ-महएविहिं।
णहियउ वउ रायमइ णवेविणु भिण्णु सरीरु जीउ मण्णेविणु।
करमि अलिउ जिण वयण सरंतउ दीवायणु पव्वइउ तुरंतउ।
विहुणंतउ णिय-भुव-जुव तणु-सिरु जयकुमारहँ किउ देसंतरु।

भो चक्रपाणि, (इस प्रद्युम्न को—) शीघ्र (ही) छोड़ो। (यहाँ) आओ-जाओ किन्तु (प्रद्युम्न को रोकने सम्बन्धी) वचन मत बोलो। वे धन्य हैं, जो तपश्चरण से मण्डित हैं। अन्य जो तप रहित हैं वे कषाय-पिशाच से खण्डित हैं। तप धुरा का धारक तथा व्रतसार यह प्रद्युम्न अन्तिम केवली अवश्य होगा। अब आप इसको रोक नहीं सकते। मैं ठीक ही कहता हूँ कि अब पिता-पुत्र के क्रम को छोड़ो। हरि के साथ सभी को सम्बोधित कर रूपिणी का दुःख मिटाकर इन्द्र ने इस प्रकार कहा—"आप जैसी महिला अन्य नहीं दिखायी देती। बोलो—"ऐसा पुत्र किसका हो सकता है? जिसकी दिग्गज की सूँड के समान भुजाएँ हों। (इस संसार में) कौन ऐसा है जो कुल-लक्ष्मी को त्याग कर अपने चंचल मन को रोककर साधना करेगा? इसी समय उस प्रद्युम्न ने जीवों पर करुणा-भाव धारण कर शम्बुकुमार, अनिरुद्धकुमार, भानुकुमार एवं अपनी प्रभा से कामदेव को तिरस्कृत करने वाले सुभानुकुमार आदि तथा हरिपुत्र उस प्रद्युम्न के अनुगामी एवं चन्द्रमा के समान मुख वाले अन्य 700 नृप-पुत्रों के साथ उसने दीक्षा ले ली और मुनि-चरित स्वीकार कर लिया। अपनी लक्ष्मी सेवी बहुओं के साथ सत्यभामा एवं रूपिणी आदि आठ महादेवियों ने भी राजीमती को नमस्कार कर तथा आत्मा एवं शरीर को भिन्न मानकर व्रत ग्रहण कर लिये। द्वीपायन ने भी जिन-वचनों का स्मरण कर कि "मैं जिन वचनों को मिथ्या सिद्ध करूँगा।" तुरन्त दीक्षित हो गया। अपने भुजायुगल, शरीर और सिर को धुनते हुए जयकुमार ने भी देशान्तर को प्रयाण किया।

---

(21) 1 अ. 'हि'।

(21) (6) पितापुत्रक्रम। (7) इन्द्रेण। (8) कथय।

घत्ता— ताम विणास भएण कंसारहिँ[9] पणवेप्पिणु।
गय जे जहिं जीवंति सयण कुडंवइँ लेविणु।। 301।।

(22)

दुवई— दिक्खावच्छ णियवि णिय तणयहँ चेलंचल-विवज्जिया।
महएवीहिं सेय-वत्थाइँ वि थण वट्टेहिं सज्जिया।। छ।।

सल्लिउ दुक्खइँ सारंगपाणि सिढिलिय तणु मुह णिग्गइ ण वाणि।
किर पावेसइ पंचत्तु सरिउ मुच्छाए चउब्भुव जीउ धरिउ।
विज्जिउ चमरहिं सिंचिउ जलेण कह कहव सइत्तउ[1] किउ वलेण।
वंदिवि जिणु [1]मणहरु दुरिय हारि पज्जुण्णु पमु[2]ह जइ णियम धारि।
णीहरियउ लेविणु पुहइ पालु वारमइ-पराइउ कामपालु।
धय-छत्त-च[3]मर सिंगिरि सणाहु पेरिय रह-हय-गय चक्कणाहु।
सोलह-सहसाहँ महाणिवाहँ पणमंतहँ पहु विरइय सिवाहँ[2]।
उवविट्ठउ-रयणुज्जोय दीढे मणिमय सु जच्च कलहोयलीढे[3]।
सहसत्तइँ रयणहँ सुहु अणेउ अणुहवइ पिहिमि सिरि वासुएउ।

घत्ता— तब विनाश के भय से कंसारि (कृष्ण) उन नेमिप्रभु को प्रणामकर अपने स्वजनों एवं कुटुम्बी जनों को लेकर वहाँ चले गये जहाँ जीवित रह सकें।। 301।।

(22)

दीक्षा के बाद अपने संघ सहित वह प्रद्युम्न द्वारावती पहुँचा

द्विपदी— दीक्षावस्था में अपने वस्त्र-विवर्जित पुत्रों को देखकर वे (सत्य-भामा आदि) महादेवियाँ भी श्वेत वस्त्र से सज्जित होकर वहीं (प्रद्युम्न के पास) रहने लगीं। ।। छ।।

शारंगपाणि (कृष्ण) को दुःख साल गया। उनका शरीर शिथिल हो गया। उनके मुख से वाणी ही नहीं निकलती थी। (उस प्रद्युम्न का स्मरण कर) अब (कृष्ण) निश्चय ही मरण पावेंगे, ऐसा प्रतीत होता था। जब चतुर्भुज मूर्च्छित हो गये, तब बलदेव ने चमर डुला कर जल के छींटें देकर जिस किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से उन्हें सचेत किया। पापों का हरण करने वाले मनोहर यति—नियमधारियों में प्रमुख नेमिप्रभु को प्रणाम कर वह पृथिवीपाल—कामपाल—प्रद्युम्न वहाँ से निकला और संघ को लेकर द्वारामती पहुँचा। उस समय वहाँ ध्वजा, छत्र, चमर तथा सिंहासन सहित रथ, घोड़े, हाथी लेकर तथा सोलह हजार प्रणाम करने वाले महानृपतियों का प्रभु और सभी प्रजाजनों को सुख देने वाला वह चक्रनाभ मणि खचित उत्तम जाति के स्वर्ण से निर्मित दैदीप्यमान सिंहासन पर बैठा था। सप्त रत्नों से युक्त वह श्री वासुदेव पृथिवी मण्डल पर अनेक सुखों का अनुभव कर रहा था।

---

(22) 1. अ. ?। 2. अ. पवर। 3. अ. विविह।

(21) (9) नारायणस्य।

(22) (1) सचेत:। (2) सौख्यं। (3) जातिस्वर्ण।

गणबद्ध सुरह रक्खिज्जमाणु   को पावइ तहो रज्जाहिहाणु।

घत्ता— एत्तहिं ते पंच णवल्ल मुणि सत्तसएहिं जइहिं सहविसरिसु[(4)]।
वारहविहु-तउ दुद्धरु चरहिं करहिं देउ तह कम्म किसु।। 302।।

(23)

दुवई— वरिसद्धद्ध मास पक्खेसु व छट्ठट्ठम णिऊपणं।
णव-कोडिहिं विसुद्धु मल-वज्जिउ विरसु[1] असंति भोयणं।। छ।।

लाहालाह सुहेसु-दुहेसु वि   कच्च-कणय जीविय-मरणेसु वि।
सम मण-वयणइँ-काएँ संजय   चवहिं धम्मु अहमउ णइँ जिय भय।
पिहियास[(1)]व-जोगत्तय-गारव   समिय कसाय सु मारहो मारव।
छह अणायतण संग-विवज्जिय   मय मूढत्तय सहुं ण समज्जिय।
संकाइय अठ-दोस ण पावण   दंसणु विमलु करेविणु भावण।
णिण्णासिय सण्णा सल्लत्तय   [2]मुणिय समिदिवि णिवि आसाहय।
पंचायार गामि महिमा मह   मुक्क पमाय इंदिय विसयं सह।

गणबद्ध देवों द्वारा रक्षित उस वासुदेव की समृद्धि को कौन पा सकता है?

घत्ता— वे पांचों नवीन मुनि 700 असाधारण मुनियों के साथ दुर्द्धर बारह प्रकार के तप करने लगे और वे देवोपम यति-गण भी कर्मों को कृश करने लगे।। 302।।

(23)

प्रद्युम्न को ज्ञानत्रय की प्राप्ति

द्विपदी— वर्ष, अर्द्ध-वर्ष, मास, अर्ध-मास तथा पर्वों में छठा (षष्ठ), अष्टम तप धारणकर नवकोटि से विशुद्ध, निर्दोष, नीरस भोजन (आहार) लेते थे।। छ।।

लाभ अथवा अलाभ में, सुख अथवा दुःख में, काच अथवा कंचन की प्राप्ति में और जीवन अथवा मरण के समय वह निर्भीक प्रद्युम्न मन, वचन तथा काय से समभाव पूर्वक या तो धर्म का उपदेश करते थे अथवा मौन पूर्वक रहते थे। योगत्रय तथा त्रिविध गारव (ऋद्धि रस सात) से होने वाले आश्रव का निरोध करते थे, कषायों का उपशम तथा कामबाण को नष्ट करने वाले थे। छह अनायतनों तथा परिग्रह से रहित थे। 8 मद और 3 मूढ़ताओं का साथ नहीं करते थे। उनमें शंकादि आठ दोष नहीं पाये जाते थे। दर्शन को निर्मल कर भावना भाते थे। चार संज्ञाओं तथा तीन शल्यों को नष्ट कर तथा आशा-तृष्णा से रहित होकर अपनी समिति का मनन करते थे। महिमायुक्त पाँच आचार पालते थे, 15 प्रकार के प्रमादों तथा पंचेन्द्रिय विषयों से मुक्त थे। सात भयों

---

(22) (4) असदृश।

(23) 1. अ. सरसु। 2. ब सु°।

(23) (1) औ॥कषायआश्रवरहित।

वज्जिय घर पुरवर आवासहँ विरइय गिरि-म[3]साण-गि[4]रिवासहँ।
णिट्ठाणिट्ठिय सील सहायउ सेवहिँ पंचवीस[2] धम्म भाइउ।
दंसिय सोय[3] - महातरु भंगहँ जल्ल-मलावलित्त सव्वंगहँ।
दीहर[4]तर मंसुहु णह केसहँ उवर[5] पयोहरद्ध णिद्देसहँ।
कडयडंत वद्धट्ठि करालहं णिय रुवएं भेसिय कंकाल[6]हं।
विरइय जीवहँ अभय पदाणइँ णिवसहि गोदुह[7] कय गो थाणइँ।
मड[8]य पउम[9] चाव[10]हिं गय सोंडहिं वज्जासण[11] पिंडीकय पिंडहिं।
लंबिय-कर आत्तावण-जोयइँ मेणं ण धरंति भुत्त चिरु भोयइँ।
गिंभयाले गिरि-सिर-रवियक्खर[12] विसहहिं अचल[13] वएण दिअंवर।
वरिसालेसु विडवि तले संठिया सासयपुरहो सुट्ठु उक्कंठिया।
गडयडंत जलयर जल-धारहिं कट्ठोवम कय तणु अविचारहिं।
विज्जु-दंडु चमक्कु न लेक्खहि सिसिरे चउप्पहे थिय चउ पक्खहि।
देहि पडावंतहिं हिम-पडलहिं फेडिय मोह महा-घण पडलहिँ।

से रहित पाँच महाव्रतों की 25 भावनाएँ भाते रहते थे। घरों तथा नगरों के उत्तम आवासों को छोड़कर पर्वत, श्मशान एवं पर्वतों की गुफा-कंदराओं आदि में वास करते थे। निष्टानिष्ट में सदाशील गुण के सहायक थे। महाव्रतों की 25 धर्म भावनाओं का सेवन करते थे। सम्यग्दर्शन द्वारा शोक रूपी महावृक्ष का भंग करते थे। उनका सर्वांग शरीर जल्ल (पसीना) मल (धूल, मिट्टी) से अवलिप्त रहता था, दाढ़ी, मूँछ, नख एवं केश दीर्घतर हो गये थे। उदर और छाती का आधा भाग संकुचित हो गया था। शरीर की बँधी हुई हड्डियाँ (शीत के कारण) कटकटाती रहती थीं और इस प्रकार वे अपने भयानक रूप से कंकालों को भी डराते रहते थे। समस्त जीवों को अभय प्रदान करते थे, गो-दोहन के आसन से गोरथान में बैठते थे (निवास करते थे)। हाथी सूँड के समान भुजाओं तथा पिण्डीकृत शरीर से वे मृतकासन, पद्मासन, धनुषासन एवं वज्रासन लगाकर ध्यान करते थे। हाथ-लम्बे कर आतापन योग से अतीत कालीन भोगों का स्मरण छोड़कर मन से मन को वश में करते थे (मन में चिरकाल से भोगे हुए भोगों का ध्यान नहीं करते थे)।

ग्रीष्म-काल में दिगम्बर रूप से अचल रहते हुए वे यति-गण पर्वत-शिखर पर सूर्य की प्रखर किरणों को सहते रहते थे। वर्षाकाल में शाश्वतपुरी—मोक्षनगरी के लिए उत्कण्ठित वे यति-गण विटप (वृक्ष) तल में संस्थित होते थे। गड़गड़ाते हुए मेघों की जलधारा का विचार किये बिना ही अपने शरीर को काष्ठ के समान बनाये रहते थे। बिजली दण्ड की चमक को भी कुछ नहीं गिनते थे। शिशिर-काल के चारों पखवारों में वे (खुली) चौमुहानी पर बैठते थे। वह अपनी देह पर हिम-पटल गिरवाते रहते थे और इस प्रकार वे अपने मोह रूपी महान् घने-पटल को नष्ट करते थे। वे श्रद्धावान अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करते थे। वे रत्नत्रय से सुशोभित ऐसे प्रतीत होते थे

(23) 3. अ. मासण। 4. अ. वणाीसहि।

(23) (2) एक-एक व्रतस्य पंच-पंचभावना पंच महाव्रतस्य। (3) शौक्यशयः। (4) कूर्चनखकेशावृद्धिता। (5) हृदय। (6) मृतकं। (7) गोआसन। (8) मडयासन। (9) पद्मासन। (10) धनुषासन। (11) वज्रासन। (12) सूर्यकिरणा। (13) शरीरेण।

अणुविक्खउ चिंतंति कयायर रयणालय रेहिहिं णं सायर।
तिय-गुत्तिहिंमि सुत्त सुमहुरझुणि थिय उवसमपए एम महामुणि।
घत्ता— अक्खीण महाणस सिद्धियर सव्वंगहँ सव्वोसहि।
णाणत्तय मंडिउ मयणु मुणि तव जम-नियमालद्धहि।। 303।।

(24)

दुवई— चउविहु धम्म-झाणु झाएवि अणंताणंत वंधणा।
तोडेवि कोहु-लोहु-माणु वि हय माया-पास मियंमणं।। छ।।
सम्मत्तेण तहव मिच्छत्तैं सम्मा-मिच्छत्तेण बहुत्तैं।
एयहं पयडिहिं सत्तहिं जामहिं कयउ विसोहणु सहसा तामहिं।
चडिउ अउव्व करणि संजम धरु चउदह-पुव्वहं वारंगहं हरु।
उवसम पहु आसंघिवि दुहहरु खवय-सेणि आरूढउ जइवरु।
थिउ अब्भंतरम्मि वावारए लग्गउ सुक्क-झाणि पहिलारए।
पिहियंक्क विवियक्क अहिहाणइँ नारय-सुर-तिरियाउ पमाणइँ।
खविवि तित्थ अणियट्टि पराइउ तहिं छत्तीस-कम्म वलु घाइउ।
कर विभाय णव लं गुणथाणु वि पहिलाए सोलह पयडिय पवाणु वि।

मानों रत्नाकर समुद्र ही हों। तीन गुप्तियों से युक्त थे। सुमधुर ध्वनि से सूत्र-पाठ करते थे। इस प्रकार वे महामुनि उपदेश पद में स्थित थे।

घत्ता— अक्षीण महानस तथा सर्वौषधियों से सर्वांग को सिद्ध करने वाले एवं तप-यम-नियमों को प्राप्त वे मदन-महामुनि ज्ञानत्रय से मण्डित हो गये।। 303।।

(24)

घोर तपश्चरणकर प्रद्युम्न ने कर्म-प्रकृतियों को नष्ट कर दिया

द्विपदी— चतुर्विध धर्मध्यानों का ध्यानकर अनन्तानन्त बन्धनों को तोड़कर क्रोध, लोभ एवं मान को नष्ट कर मायापाश का नियमन कर दिया।। छ।।

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व प्रकृतियों का जब उदय हुआ तभी सहसा ही उनका विशोधन भी कर दिया। उसी समय चौदह पूर्वों एवं 12 अंगों का धारी वह प्रद्युम्न अपूर्वकरण गुणस्थान में चढ़ा। पुन: वह दु:खहारी यतिवर प्रभु उपशम श्रेणी में चढ़कर क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हुआ। आभ्यन्तर-काल में वह बारहवें गुणस्थान में रुका तथा प्रथम पृथक्त्ववितर्क नामक शुक्ल ध्यान में लग गया। वह नरक, देव एवं तिर्यंचगति को खपा कर वहाँ से अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में जा पहुँचा और वहाँ उसने बलवान 36 कर्मप्रकृतियों का घात किया। पुन: प्रकृतियों का विभाग कर नौवें गुणस्थान में जाकर 16 कर्म प्रकृतियों को नष्ट किया। पुन: निद्रा, निद्रा-निद्रा,

निद्दा-निद्दा-निद्द पयल-पयलाइय थाण गिद्धि संजु असंछेइय।
णरय-तिरिय गइवे पुव्विहिं खउ एइंदिय वे इंदिय सह कउ।
आतउ उज्जोउ वि थावरु थिउ साहारणु सुहु भेण समउ जिउ।
भाइ दुइज्जए सुअउमाणउँ पच्चक्खाणु अपच्चक्खाणउँ।
कोहु-लोहु माणु वि माया निरु खविउ नउं सयवेउ तइए णिरु।
थी-वेउ वि चउत्थि संघारेवि पुणु पंचमे मणु झाणें पेरवि।
हास-रइ अरइ भउ सोउ वि जुगुपुंसा उडु पयडिहिं छेउ वि।
किउ छट्ठए पुंवेउ णिरंसउ सत्तमे सुभाएसु असंसउ।
मुक्क कोहु संजलणु मुणिंदें अट्ठमेसु बंदारय वंदें।
णिग्गासिध्उ माणु अइणिट्ठुरु सोसिउ नवमेण वि भायासरु।
इयाए कम्म-पयडि विणिवायवि सुहुम-संपराय तणु पाविवि।
सुहुमु लोहु चूरिव किउ चुण्णुवि णिविसें जोईसरु पज्जण्णु वि।
उवसमपए आवासु करेविणु हरि संगाइमि दूरि चएविणु।
उवसमेण उवसमिउँ कसायउ कयय हलेण जलुव जिह जायउ।
भवा-भाव असेस हरेविणु किर अच्छइ खीण महिसरे विणु।
ताम झाणु संभविउ दुइज्जउ एकत्त वियक्कु वि निरवज्जउ।

घत्ता--- खवयइँ तह थाणद्धि णिंद पयल संथट्टिय।
चउदह पयडिउ झत्ति वीए भाए आवट्टिय।। 304।।

प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, संज्वलन कषाय, असवेदनीय, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय गति के साथ नरक, तिर्यंच, गतियाँ पूर्व में ही क्षयकर, आतप, उद्योत, स्थावर के साथ साधारण एवं सूक्ष्म को स्थिर कर दूसरे भाग में भटककर प्रत्याख्यान एवं अप्रत्याख्यान क्रोध, लोभ, मान एवं माया कषायों का क्षयकर तीसरे में सातावेदनीय तथा चौथे में स्त्रीवेद का संहार कर पांचवें में मन में ध्यान की प्रेरणा से हास्य, रति-अरति, भय, शोक, जुगुप्सा नामकी प्रकृतियों को छेदकर, छठवें में पुंवेद का निरसन कर सातवें भाग में अप्रशस्त प्रकृति को नष्टकर भव्यों द्वारा वन्दनीय उस मुनीन्द्र ने संज्वलन क्रोध को नष्ट किया, आठवें में अत्यन्त निष्ठुर मान-कषाय का निरसन कर नौवें में मायाशर को शुष्क बनाया। इन कर्म-प्रकृतियों को विनष्ट करके सूक्ष्म साम्पराय नामक गुणस्थान को प्राप्त किया। वहाँ योगीश्वर प्रद्युम्न ने निमिषमात्र में सूक्ष्म लोभ कषाय को चूर-चूर कर दिया। उपशान्तपद में निवास कर इन्द्रिय-वासनाओं को दूर से ही छोड़कर उपशान्त मन से गन्दे जल में कतक-फल के समान ही कषाय का उपशमन किया। अशेष भवावलि को दूरकर वह महीश्वर प्रद्युम्न क्षीण-कषाय हो गया। तभी उसे दूसरा निर्दोष एकत्व-वितर्क नामक शुक्ल ध्यान उत्पन्न हो गया।

घत्ता— स्त्यानगृद्धि का क्षयकर निद्रा एवं प्रचला को रोककर उसने दूसरे भाग में 14 प्रकृतियों को नष्ट कर डाला।। 304।।

(25)

दुवई— णाणावरण पंच चउ दंसणवरणाणंतराययया।
पंच वि अंतराय झाणाणले विहुणिय भप्फ जायया।। छ।।

दह छत्तीस एक्क तह सोलवि	एय तिसट्ठि पयडि उम्मूलवि।
थिउ अप्पा सत्तवे संलीणउ	धाउ णिवहु देहुत्थु वि झीणउ।
थक्क उवड्ढि म गुण णह-केसहँ	पुव्व सहाएँ णास-पएसहँ।
कम्म घिडेवि झडंति खणें किह	वालु व हयउ वलहँ भित्तिहि जिह।
पुण्ण-पाव भूमिउ परिसेसिवि	तुरिउ सजोइ ठाणें आवासिवि।
अमणु अणिंदिउ मुणि संपण्णिउँ	केवल-णाणु विमलु उप्पण्णउँ।
ता धाइय सुर कहिंमि ण माइय	जय-जय-जय पभणंति पराइय।
घणएँ गुरु-भत्तिए वेउव्विउ	जोयण माणु सहा-मंडउ किउ।
कमलासणु मणि-गण विप्फुरियउ	एक छत्तु ससि-समु उद्धरियउ।
चमर जमलु णीहारुहो सण्णिहु	मुंड केवलीहो एवंविहु।
हुअउ पहुत्तणु किं अक्खिज्जइ	जडमइणा मइ किह लक्खिज्जइ।

---

(25)

प्रद्युम्न को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इन्द्र ने भाव-विभोर होकर उनकी स्तुति की

द्विपदी— ज्ञानावरण की 5 (पांच), दर्शनावरण की 4 (चार), अन्तराय की 5 (पांच), इन्हें तथा अन्तराय को ध्यानाग्नि में विधुनित कर (यह जीव) शुद्धान्त बन जाता है। ।। छ।।

10 (दस), 36 (छत्तीस), 1 (एक) तथा 16 (सोलह) — इन 63 (त्रेषठ) प्रकृतियों का उन्मूलन कर अपने को आत्मा में सल्लीन न कर देह के धातु-समूह को कृश कर दिया। उर्ध्वगामी गुणों में स्थिर रहे, नख एवं केश की वृद्धि रुक गयी, पूर्व भेदों के आश्रित रहकर कर्मप्रदेशों को नष्ट किया। कर्म-समूह क्षण-क्षण में किस प्रकार झड़ते रहे? उसी प्रकार जिस प्रकार बालु की भित्ति जल-प्रवाह में बहती रहती है। वह प्रद्युम्न पुण्य-पाप की भूमि को सुखा कर तुरन्त ही सयोग केवली गुणस्थान में चला गया। पुन: उसे मनरहित अनिन्द्य (अयोगकेवली) गुणस्थान में विमल केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

तभी जय-जयकार करते हुए देवगण वहाँ दौड़े आये। (उनकी इतनी) अधिक संख्या थी (कि) वे वहाँ कहीं भी समाये नहीं। वे गुरु-भक्ति से भर उठे। उन्होंने एक योजन-प्रमाण सभा-मण्डप (समवशरण) की रचना की। मणि-समूह से स्फुरायमान कमलासन बनाया, उस पर चन्द्रमा के समान एक छत्र बनाया, उसके समीप ही केवलि प्रभु के मस्तक के आगे नीहारिका के समान चंवर-युगल ढुराये। उसके प्रभुत्व को कैसे कहा जाये? मुझ जड़मति के द्वारा उसे कैसे लिखा जाये?

चउभासहिंमि थुइ विरयंतउ थुणइँ सुरेसरु पय पणवंतउ।
तुहु कम्मारि हत्थि कंठीरउ देव देउ तव भर धरु धीरउ।
तुहुँ जि कामु पइँ कामु णिसुंभिउ माणु विसयग्गि पडंतु णिरुंभिउ।
सल्ल समुवि सल्लत्तउ मोडिउ सिव-णयरिहे कवाडु पइँ फेडिउ।

घत्ता— तुहुँ णाण-दिवायरु धुणेवि तमु उज्जोइउ भुवणत्तउ।
विविसाविय भव्व-कमल-णिवहु धम्म-महारह-जुत्तउ।। 305।।

(26)

दुवई— सुर-असुरेहि खयर-णर णियरहिँ पणमिय भत्ति भारेणं।
णाणुप्पत्ति पुज्ज कय णाणिहिँ अइ बहुविह पयारिणं।। छ।।

सद्द-फरिस बहुत्त वायारउ गंध-वण्ण भेसहि सवियारउ।
पवणत्तय वलएहिंमि धरियउ दव्व-जीव पुग्गलहिंमि भरियउ।
पविमलेण सयलामल णाणइँ तिहुवणु एक्कु खंधु फुडु जाणइँ।
पिंडत्थु वि पयत्थु णउत्तउ वि भेउ न तासु वि किंपि अत्तउवि।
सुहुम किरिउ णामेण णिरंजणु तइयउ सुक्क वि झायइ पुणु।

चतुर्निकाय देवों ने उनकी स्तुति की। सुरेश्वर ने प्रभु के चरणों में प्रणाम कर स्तुति प्रारम्भ की—"हे देव, आप कर्मरूपी हाथी के लिए कंठीरव हैं। आप हमें तप का भार धारण करने का धैर्य प्रदान करें। हे देव, यद्यपि आप कामदेव हैं तो भी आपने काम-वासना का दमन किया है और अपने विषयाग्नि में पड़े हुए मन को उससे दूर किया है। शल्य के समान होने पर भी तीनों शल्यों को तोड़-मरोड़ डाला है और इस प्रकार आपने शिव-नगरी के कपाटों को खोल लिया है।

घत्ता— आप ज्ञान दिवाकर हैं, अज्ञानरूपी अन्धकार को धुनकर आपने भुवनत्रय को उद्योतित किया है। धर्मरूपी महारथ से युक्त आपने हे प्रभु, भव्य कमलों को विकसित किया है।। 305।।

(26)

कैवल्य-प्राप्ति के बाद प्रद्युम्न की अवस्था

द्विपदी— सुरों, असुरों, विद्याधरों एवं मनुष्यों ने अत्यन्त भक्ति-भावपूर्वक प्रद्युम्न के केवलज्ञान-कल्याणक की पूजा की और विविध प्रकार से उस ज्ञानी प्रद्युम्न के प्रति आदर व्यक्त किया।। छ।।

यह संसार शब्द, स्पर्श, विविध वातारत्त गन्ध विविध भेद वाले वर्णों से युक्त तथा त्रिविध पवनों के वलयों पर आधारित है। उसमें द्रव्यजीव एवं पुद्गल भरे हुए हैं। अत्यन्त विमल —केवलज्ञान के द्वारा (केवली) समस्त संसार के पदार्थों को यथावत् जानता है। यह त्रिभुवन के एक-एक स्कन्ध को स्पष्ट रूप से जानता है। पिण्डस्थ एवं पदस्थ जो ध्यान कहे गये हैं, उनके द्वारा भी पदार्थों के जानने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता पुन: निरंजन सूक्ष्म क्रिया नामक तीसरे शुक्लध्यान का ध्यान किया। उस ज्ञानी ने विषम कर्मों को भी सम करके

विसम कम्म सम करिवि पयत्तइँ णाणिउ णाण-सरूवइँ चिंतइँ।
इय वोलीणु कालु किर जावहिं आउ पमाणु मुणिवि मुणि तामहिं।
रेवयसिहरिहे सिहरि चडेप्पिणु वज्जंकासणु लहु वंधेविणु।
देहलो देहिउ दंडायारें णीसारिउ इसिणाहय मारें।
एक्कें समएँ सुट्ठु तुरंतउ चउदह-रज्जु पमाणु महंतउ।
निरु-निम्मलयरु सहइव केहउ भुवणत्तय आहारुव जेहउ।
वीय समइँ जे भायहँ भिण्णउँ जग-मंदिर कवाडु णं दिण्णउँ।
तइयइँ समयइँ पयरु करेविणु थिउ चउत्थे समलु वि पूरेविणु।
होइ सव्वंगउएणा वत्थें एक्कु समउ अप्पा परमत्थें।
पर समएहिं सव्व गउ अक्खिउ एरिसु अण्णाणेहिं ण लक्खिउ।
झाडेवि कम्म-असेस-पएसहँ जाणइ कवण सत्ति जोईसहँ।
दो पंचसु उडु मासिय जे थिय आउ पमाणइ ते तिण्णि वि किय।
नाम गोत्तु वेयाणिउ दुहायरु तें महियउ कय भव मल सायरु।
घत्ता— जग पुरणु परिहरिवि वल वि पयरु किउ अइगुणु।
करेवि कवाडायारु दंडायारें थिउ पुणु।। 306।।

प्रयत्नपूर्वक ज्ञान-स्वरूप का चिन्तन किया।

इस प्रकार काल व्यतीत कर तथा उसी समय अपनी आयु का प्रमाण जानकर वह मुनि रैवतक पर्वत के शिखर पर चढ़ गया तथा शीघ्र ही पर्यंकासन बाँधकर काम-विनाशक उस ऋषिनाथ प्रद्युम्न ने देह को दण्डाकार बनाकर काम-बाधा को भी निकाल बाहर किया। एक ही समय में (उसके आत्म प्रदेश) तुरन्त ही चौदह राजू प्रमाण फैल गये। उस समय वह निर्मलतर प्रद्युम्न किस प्रकार सुशोभित हुआ? उसी प्रकार जिस प्रकार भुवन-त्रय का रूप (मानचित्र) सुशोभित होता है। दूसरे समय में उसके आत्म-प्रदेश दो भागों में विभक्त हो गये। तब वह ऐसा प्रतीत होने लगा मानों जगरूपी मन्दिर में कपाट ही दे दिये गये हों। तीसरे समय में उन्हें प्रवर बनाकर तथा चौथे समय में उन्हें पूर्ण कर स्थिर हो गया। इस अवस्था में तथा आत्मा के परमार्थ का विचार का वह एक समय में ही सर्वांगपूर्ण हो गया। पर-समय में उसे सर्वगत कहा गया है, किन्तु यह अज्ञानी जनों द्वारा नहीं देखा जा सकता। उसने समस्त कर्म-प्रदेशों को झाड़ डाला (सचमुच ही), योगीश्वरों की इस प्रकार की शक्ति को कौन जान सकता है? दसमास तक जो भी स्थिर होकर तप करता है वह आयु के प्रमाण को तृण के समान तुच्छ कर सकता है। दु:खदायी एवं भव-मल रूपी समुद्र के समान नाम, गोत्र एवं वेदनीय कर्म का उसने मथन कर डाला।

घत्ता— जग को पूरे रूप में छोड़कर उसने अपने आत्मबल को कई गुना बढ़ाया और दण्ड- कपाटावस्था को प्राप्त हो कर स्थिर हो गया।। 306।।

(27)

दुवई— चउ समएहिँ एम संवरेवि सु अप्पा-अप्प भावेणं।
होइ वि देह मित्तु देहंतरे रहियउ निय सहावेणं।। छ।।

गउ केवलि अजोइ ठाणंतरि लग्गु चउत्थइ झाणे सुहंकरि।
छिण्ण किउ णामें संभवियउ पंचासी पयडीउ वि खवियउ।
तह ठाणेसु पढम भायंतरे विहुणिय कम्म खणें बाहत्तरि।
देवगई वि देव पुव्वीसह पंच सरीर णाम णासिय तह।
उरालियउ विक्किरियाहारउ तेउ कम्मु सयलहं सहारउ।
एयहँ देहहँ बंधण णामइँ पंच वि तोडियाइ मुणि कामइँ।
ताहँ वयहँ संघाय विधाइय पंच वि छह संठाण सुछेइय।
तिण्णि वि अंगोवंग पणासिय छह संहणाण खणद्धें णासिय।
पंच-वण्ण रस-पंच अणिट्ठिय सुरहि दुरहि दोगंध परिट्ठिय।
संघट्टिय अट्ठहँ फासहँ सहु मोख महापुरवर लद्धइँ लहु।
अगुरम लहु उवघाउ वि पेल्लिउ परघाउवि उस्सासु पमेल्लिउ।
अविहाय-विविहाय गइ मोडिवि अथिरसु वि थिरत्ति सहु फेडिवि।
सुहु-दुह दुस्सरम्मि सुमराइउ पत्तेउ वि दुभगत्तु विभेइणु।
अजस-अण्णादिज्जउ मुसुमूरिय णिमिण अपज्जत्तवि संचूरिय।

---

(27)

प्रद्युम्न सिद्धगति को प्राप्त हो गया

द्विपदी— इस प्रकार (वह प्रद्युम्न) चारों समयों में संवर कर अपनी ही आत्मा में आत्म-भाव से लीन रहा और स्वभावतः ही देह को आत्मा से भिन्न समझ कर देह में रहता रहा। ।। छ।।

वह केवलि — प्रद्युम्न अयोगि गुणस्थान में पहुँचा और सुखकारी चतुर्थ शुक्ल ध्यान (व्युपरत क्रियानिवृत्ति) में जा लगा। वहाँ नामकर्म की सम्भावना को छिन्न किया तथा (उस कर्म की) 85 प्रकृतियों को खपा दिया। पुनः उसी गुणस्थान के प्रथम भाग में क्षण मात्र में ही 72 कर्म प्रकृतियों को नष्ट किया। देवानुपूर्वी के साथ देवगति तथा शरीर नाम-कर्म की 5 प्रकृतियों — औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस एवं कार्माण शरीर को आधारों सहित तथा इन शरीरों के 5 बन्धनों (यथा औदारिक बन्धन आदि) को उन कामदेव मुनिराज—प्रद्युम्न ने तोड़ डाला। उन शरीरों के 5 प्रकार के संघात के साथ 8 प्रकार के (कर्कश, मृदु आदि) स्पर्श को नष्ट कर शीघ्र ही मोक्ष रूपी महानगर की ओर उन्मुख हुआ।

अगुरु लघु एवं उपघात को भी पेल डाला, परघात तथा उच्छ्वास नाम कर्म से भी अपना पिण्ड छुड़ा डाला। प्रशस्त एवं अप्रशस्त, विहायोगतियों को मोड़कर अस्थिर एवं स्थिर नाम-कर्म को नष्ट कर सुख (शुभ), दुख (अशुभ), दुस्वर, सुस्वर, प्रत्येक शरीर, दुर्भग शरीर, सुभग शरीर, अयशकीर्त्ति एवं अनादेय-नामकर्म को नष्ट कर पर्याप्ति एवं अपर्याप्ति नामकर्म को चूर-चूर कर दिया। नीच-गोत्र तथा असातावेदनीय की 9 प्रकृतियाँ हैं।

णिच्च-गोत्तु वेयाणिउ असाउ वि दोसत्तरि पयडिउ एयाउ वि।
दुचरिम समए अजोएँ घायवि पुणरवि भाइ दुइज्जइ ठाइवि।
तहिं तेरह कम्महँ हए भाउवि साया-वेयणीउ मणु आउवि।
मणुय गइवि मणुय पुव्वी विय अचिरें पंचिंदय जाएवि जिय।
तस सुहगादेज्ज वि पज्जत्तउ बायर-जस कित्ती वणियत्तउ।
तित्थयरत्त णाम गुरु गोत्तुवि चरम समय कालेण णिहित्तुवि।
तेरहगुण ठाणहँ सविराइय तेसट्ठि वि पंचासी आयउ।
इय अडयाल सयहँ कम्मोहहँ खउ करेवि जग जण संदोहहँ।
णह-केस मउ सरीरु चएविणु पाण विमुच्चा गइएँ गमेविणु।
ठिउ अदेह पंतिउ अवगाहेवि दीवहँ दीउ मिलिउ णं जायवि।

घत्ता— णिविसें सिद्ध सरूउ अट्ठ महागुण वंतउ।
संजायउ पज्जुण्णु सासय-पउ संपत्तउ।। 307।।

(28)

दुवई— भाणु जईसु संवु अनिरुद्ध वि णिग्गेवि कम्मपासहो।
गय तहिं जहिं ण वलिवि आविज्जइ अणुवम सुह णिवासहो।। छ।।

णिद्दालसु परवसु कोवि णत्थि सुहु-दुहु ण इक्कु आरंभु अत्थि।
धाउमउ देहु जहिं णउ हवेइ पीडंति ण वाहिउ जमु ण णेइ।

अन्तिम समय में अयोग को घातकर पुन: आतप एवं उद्योग नामकर्म प्रकृति को नष्ट किया। वहाँ 13 कर्म प्रकृतियों का हननकर साता वेदनीय में मन:स्थिति रहती है।

मनुष्य गति एवं मनुष्यगत्यानुपूर्वी में तत्काल पंचेन्द्रिय विषयों को जीतकर त्रस, सुभग, आदेय, पर्याप्तक, बादर एवं यश:कीर्त्ति से छुटकारा पाया। तीर्थंकरत्व, नामकर्म एवं महान् गोत्र-कर्म को अन्त समय में नष्ट कर तेरहवें गुणस्थान में सुशोभित हुआ। इस प्रकार 63 एवं 85 कर्म-प्रकृतियाँ अर्थात् संसार को तप्त करने वाली 148 कर्मप्रकृति-समूह का क्षय किया। शरीर के नख, केश, दाढ़ी-मूँछ त्यागकर प्राणों का उच्चगति से गमनकर तथा अवगाहन कर वह अदेह (सिद्धों) की पंक्ति में जा बैठा। ऐसा प्रतीत हुआ मानों दीपक से दीपक जा मिला हो।

घत्ता— निमिष मात्र में अष्ट महागुणधारी वह प्रद्युम्न सिद्ध स्वरूपी होकर शाश्वत पद को प्राप्त हो गया।। 307।।

(28)

प्रद्युम्न के साथ भानु, शम्बु एवं अनिरुद्ध को मोक्ष-प्राप्ति

द्विपदी— भानु, यतीश्वर, शम्बु एवं अनिरुद्ध भी कर्मपाश से मुक्त हो गये और वहाँ पहुँचे जहाँ से अनुपम सुख के निवास-स्थल से कोई लौटकर नहीं आता।। छ।।

उस भानु, शम्बु एवं अनिरुद्ध में से कोई भी निद्रा एवं आलस्य के वश में न था। जहाँ सुख-दु:ख भी न था और न एक भी आरम्भ। धातुमय देह जहाँ नहीं होती, जहाँ किसी भी प्रकार की बाधा नहीं होती, जहाँ यमराज भी किसी को (उठा कर) नहीं ले जाता, जहाँ अनिष्टकारी क्षुधा और तृष्णा भी नहीं लगती। जहाँ

लग्गइ णउच्छुह तण्हवि अणिट्ठ जहिं पियर सहोयर णउ मणिट्ठ।
अणुदिणु उप्पाइय विसम मयणु जहिं कहिंमि ण दीसइ जुवइ वयणु।
जहि चिंत ण कावि ण कोवि सत्तु आणंदु ण जहिं कुइ कासु मित्तु।
पसरइ ण सोउ जहिं अप्पसत्थु छइ इक्क सरुवें जीउ तेत्थु।
गय ए चत्तारि वि जहिं अविग्घु महु दिंतु णाणि तहिं गमणु सिग्घु।
कम्मक्खउ जिण कम-कमल भत्ति विहडउ म धम्म दहविह पवित्ति।
सण्णास-मरणु संभवउ ताम सासय-पुरवरे पइसरमि जाम।
पालिय जिणवर वय-णियम सयल सयसत्त महामुणि सील-विमल।
समभावि भाविवि भूय वग्गु णियमणे धरिवि परलोय मग्गु।
कालावहि पाविवि अभयभव्व चउविह आराहण सरेवि सव्व।
परिहरिवि सरीरु सुभाणु सहु सव्वत्थ-सिद्धि थिय केवि लहु।

घत्ता— सउहम्म पमुह सुर-मंदिरहँ गय सयल वि रेहंति किह।
णिय कम्म महा करि वर हणेवि अइ सहरिस णं सीह जिह।। 308।।

मोह-ममता (जगाने) वाले प्रिय सहोदर भी नहीं होते। जहाँ प्रतिदिन मन में विषम काम-वासना उत्पन्न करने वाली युवतियों के मुख भी कहीं दिखायी नहीं पड़ते। जहाँ न तो कोई चिन्ता है न कोई शत्रु। जहाँ न तो कोई भौतिक आनन्द है और न कोई किसी का मित्र। जहाँ अप्रशस्त शोक का प्रसार नहीं है, वहाँ जीव एक ही स्वरूप में रहता है। इन चारों (प्रद्युम्न, भानु, शम्बु एवं अनिरुद्ध) ने शीघ्र ही उस गति में गमन किया। जहाँ ज्ञानी जन अविघ्न रूप से अत्यन्त द्योतित होते रहते हैं।

(ग्रन्थकार कहता है कि—) जिनेन्द्र के चरण कमलों की भक्ति से हमारे कर्मों का भी क्षय होवे, हमारे दशधर्मों की प्रवृत्ति का विघटन न होवे। दश-धर्म भावना पूर्वक संन्यासमरण प्राप्त होवे और उसीमें मैं भी शाश्वत नगरी—मोक्ष नगरी में प्रवेश करूँ।

जिनवर द्वारा प्रतिपादित समस्त व्रत नियमों का पालनकर निर्मल शीलव्रत धारण करने वाले 700 महामुनि समस्त प्राणियों के प्रति समता की भावना भाकर अपने मन में परलोक-मार्ग को धारण कर कालावधि प्राप्त कर समस्त निरहंकारी एवं भव्य, वे चतुर्विध आराधनाओं का स्मरणकर शरीर छोड़कर निर्वाण-सुख को प्राप्त हुए। सुभानु के साथ कोई-कोई तत्काल ही सर्वार्थसिद्धि में जाकर स्थिर हो गये।

घत्ता— और अन्य कुछ सौधर्म प्रमुख देवालयों को प्राप्त हुए। वे सभी किस प्रकार सुशोभित हुए? उसी प्रकार, जिस प्रकार कि अपने कर्मरूपी महागज को मारकर अत्यन्त हर्षित मुक्त जीव रूपी सिंह सुशोभित होता है।। 308।।

इय पज्जुण्ण-कहाए पयडिय-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए वुह रल्हण-सुअ कइ सीह-विरइयाए पज्जुण्ण-संवु-भाणु-अणिरुद्ध णिव्वाण-गमणं णाम पण्णारहमी संधी परिसमत्तो।। संधीः।। 15।। छ।।

अन्त्य प्रशस्ति 'अ' प्रति

कृत्तं कल्मषवृक्षस्याशा अंश अंसु धीमता।
सिंहेन सिंहभूतेन पाप-सामल भंजनं।। 1।।

कामस्य कामं कमनीयवृत्तेर्वृत्तं कृतं कीर्त्तिमतां कवीनां।
भव्येन सिंहेन कवित्वभाजं लाभाय तस्यात्र संचैव कीर्तेः।। 2।।

सव्वभू सव्वदस्सी भववणदहणो सव्व मारस्स मारो,
सव्वाणं भव्वयाणं समयमणगहो सव्वलोयाण सामी।
सव्वेसुं वत्थुरूवं पयडण-कुसलो सव्वणाणावलोइ,
सव्वेहिं भूअयाणं करुणचिरघणो सव्वयालं जएसो।। 3।।

जं देवं देव देवं अइसय-सहिदं अंगदारातिहंतं,
सुद्धं सिद्धीहरत्थं कलिमलरहिदं ताव भावाणुमुक्कं।
णाणायारं अणंत वसु-गुण-गुणिणं अंसहीणं सुणिच्चं,

इस प्रकार बुध रल्हण के सुत कवि सिंह द्वारा विरचित धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली प्रद्युम्न, शम्बु, भानु एवं अनिरुद्ध के निर्वाण गमन से सम्बन्ध रखने वाली पन्द्रहवीं सन्धि समाप्त हुई।। सन्धिः 15।। छ।।

अन्त्य-प्रशस्ति 'अ०' प्रति

सूर्य के समान तेजस्वी एवं बृहस्पति के समान प्रखर प्रतिभावान् तथा सिंह वृत्ति वाले (महाकवि—) सिंह ने (प्रद्युम्न-चरित) की रचना कर कल्मष रूपी वृक्ष का कर्त्तन कर पाप की श्यामता का भंजन किया है।। 1।।

काव्य-प्रणयन की क्षमता-शक्ति वाले भव्य कवि सिंह ने रुचिर-काव्य शैली में उस प्रद्युम्न के सुन्दर चरित की रचना, कीर्त्तिलब्ध कवियों के हितार्थ, उस (चरित) की कीर्त्ति के प्रसार हेतु, की है।। 2।।

पृथ्वी के समस्त प्राणियों का हितकारी, भव-वन का दाहक, सभी प्रकार की विषय-वासनाओं को नष्ट करने वाला, समस्त भव्य-जनों के मन को शास्त्रों में लगाने वाला, समस्त लोगों का स्वामी, सभी प्राणियों में वस्तु-स्वरूप को प्रकट कर सकने में कुशल, अपने ज्ञान से सभी का अवलोकन करने वाला समस्त प्राणियों पर सभी कालों में सदैव अत्यन्त करुणा करने वाला वह प्रद्युम्न जगत में जयवन्त रहे।। 3।।

जो देव देवत्व प्रदान करता है, जो अतिशयों से युक्त है, जो अंगद्वार (द्वादशांग-वाणी) का स्वामी है, अष्टकर्मों का हन्ता है, शुद्धात्म है, सिद्धियों का गृह है, कलिकाल के मल से रहित है, संसार के भव रूपी ताप से मुक्त है, ज्ञान की मूर्त्ति है, अनन्तवीर्य वाला है, अष्टगुणों से युक्त है, नित्य है, ऐसा वह (प्रद्युम्न) देव हमारे लिए संसार

अम्हाणं तं अणिंदं पविमल-सुहदं देउ संसार-पारं।। 4।।
जादं मोहाणुबंध सारुह-णिलये किं तवत्थं अणत्थं,
संतं संदेहयारं विवुह-विरमणं खिज्जदे दीयमाणं।
वाएसीए पवित्तं विजयदु भुअणे कव्व वित्तं पवित्तं,
दिज्जंतं जं अणंतं चिरयदि सुइरं णाण लाहं वदंतं।। 5।।

घत्ता— जं इह हीणाहिउ काइंमि साहिउ अमुणिय सत्थ परंपरइं
तं खमउ भडारी तिहुअणसारी वाईसरि सद्दायरहं।। 6।।

दुवई— जा णिरु सत्तहंग जिण-वयण-विणिग्गय दुह-विणासणी।
होउ पसण्ण मज्झु सा सुहयरि इयर ण कुमइ नासणी।। छ।।

परवाइय वायाहरु अछंमु सुअ-केवलि जो पच्चक्ख धम्मु।
सो जयउ महामुणि अमियचंदु जो भव्व-णिवहँ कइरवहँ चंदु।
मलधारि देव पय-पोमि भसलु जंगम सरसइ सव्वत्थ कुसलु।
तह पयरउ-निरु उवमहि पमाणु णिउ-कुल-णह उज्जोय-भाणु।

से पार उतारने वाला अनिन्द्य एवं निर्मल सुख प्रदान करे।। 4।।

मोह से अनुबन्धित होकर भी यदि कोई अरिहन्तदेव के मन्दिर में तप (काव्य-साधना) के निमित्त जाता है, तो उसमें अनर्थ ही क्या है? काव्य-रचना करने वाले के प्रति सन्देह में पड़कर विद्वान्-कवि की जो कोई उपेक्षा करता है, उससे मेरा (कवि सिंह का) मन खिन्न हो जाता है। वाणी से पवित्र यह पवित्र वृत्तकाव्य (—पज्जुण्ण-चरिउ) जिसका कि कथन, चिरकाल तक अनन्त-सुख का कारण बनकर ज्ञान-लाभ प्रदान करता है, भुवन में विजयशील बना रहे।। 5।।

घत्ता— शास्त्र-परम्परा का विचार किये बिना ही मैंने प्रस्तुत काव्य में यदि कुछ हीनाधिक तथ्य प्रस्तुत कर दिये हों, तो सभी के द्वारा आदर-प्राप्त हे भट्टारिके, त्रिभुवन में सारभूत, हे वागेश्वरी देवी, उन सभी त्रुटियों के लिए तुम मुझे क्षमा कर देना।। 6।।

द्विपदी— जो निश्चय ही जिनेन्द्र-मुख से विनिर्गत है, सप्तभंग स्वरूपा तथा दुख विनाशनी है, ऐसी वह सुखकारी सरस्वती देवी मुझ पर प्रसन्न रहे। उसके सम्मुख अन्य कोई कुमति का नाश करने वाली (देवी) हो ही नहीं सकती।। छ।।

परवादियों के वादों का हरण करने वाले, छद्म रहित, श्रुत-केवली की परम्परा को प्राप्त तथा धर्म की प्रत्यक्ष-मूर्ति रूप वे महामुनि अमियचंदु (अमृतचन्द्र) जयवन्त रहें, जो भव्य समूह रूपी कमलों के लिये चन्द्रमा के समान, सरस्वती के अनन्य भक्त तथा समस्त शास्त्रों एवं उनके अर्थों में कुशल, मलधारीदेव-माधवचन्द्र के चरण-कमलों के लिए भ्रमर के समान थे—

उन्हीं अमियचंद (अमृतचन्द्र) के चरणों में निरन्तर रत रहने वाले, अपने कुल रूपी आकाश को उद्योतित करने वाले प्रखर सूर्य के समान अनुपम, स्वाभिमानी तथा जो वाणी-विलास में श्रेष्ठ एवं पारंगत था, जो

जो उहय पवर वाणी-विलासु　　एवंविह विउसहो रतासु।
....　　...................... ....
तहो पणइणि जिणमइ सुद्धसील　　सम्मत्तवंत णं धम्मसील।
कइ सीहु तहि गब्भंतरम्मि　　संभविउ कमलु जिह सुरसरम्मि।
जण-वच्छलु सज्जणउ णिय-हरिसु　　सुइ संतु तिविह-वइराय सरिसु।
उप्पण्णु सहोयरु तासु अवरु　　णामेण सुहंकरु गुणहं पवरु।
साहारणु लहुवउ तासु जाउ　　धम्माणुरत्तु अइ दिट्ठ काउ।
तहो अणुवउ महएउ वि सुसारु　　सविणोउ विणंकु सुसमरधारु।
जा वच्छहिं चत्तारिवि सुभाय　　परउवयारिय जण-जणियराय।
एक्कहिं दिणे गुरुणा भणिउ वच्छ　　णिसुणहिं छप्पय कइराय दच्छ।
भो वाल-सरासइ गुण-समीह　　किं अविणोएँ दिण गमहि सीह।
चउविह-पुरिसत्थरसोह-भरिउ　　णिव्वाहहिं इहु पज्जुण्ण-चरिउ।
कइसिद्धहो विरयंतहो विणासु　　संपण्णउ कम्मवसेण तासु।
महु वयणु करहि किं तुअ गुणेण　　संतेण हूअ छाया समेण।
घत्ता— किं तेण पहूअई बहु धणई जं विहलियहँ ण उवयरइ।
कव्वेण तेण किं कइणहो जं ण छइल्लहँ मणुहरइ।। 7।।

भलीभाँति विद्वानों की सेवा में रत था — (ऐसा बुध रल्हण नामक विद्वान् पुरुष हुआ?) उसकी प्रियतमा का नाम जिनमति था, जो शुद्धशीला, सम्यक्त्व-सम्पन्ना एवं धर्मशीला थी। जिस प्रकार सुरसरि—गंगा से कमल का जन्म होता है, उसी प्रकार जिनमति की कोख से ही कवि सिंह का जन्म हुआ, जो जन-वत्सल, सज्जनों के मन में हर्ष उत्पन्न करने वाला तथा श्रुति-शास्त्रों में वर्णित त्रिविध-वैराग्य के समान था। उस कवि सिंह का दूसरा सहोदर भाई भी उत्पन्न हुआ, जो शुभंकर, इस नाम से प्रसिद्ध तथा जो प्रवर गुणों से युक्त था। उसके लहुरे (छोटे) भाई का नाम साधारण था, जो धर्म में अनुरक्त तथा शरीर से भारी दिखाई देता था। उससे छोटा भाई महादेव था, जो सार्थक नाम वाला, तथा विनोदी, विनयशील तथा समर को भलीभाँति धारण करने वाला (अर्थात् योद्धा) था। परोपकारी एवं लोगों के मन को आनन्दित करने वाले वे चारों सुन्दर भाई जब वहाँ समय व्यतीत कर रहे थे, तभी एक दिन गुरु अमियचन्द ने कहा—"हे वत्स, हे साहित्य-भ्रमर, हे दक्ष कविराज, सुनो। हे बाल-सारस्वत, हे गुणग्राहक कवि सिंह, काव्य-रचना-विनोद किये बिना ही क्यों अपने दिन गँवा रहे हो? चतुर्विध पुरुषार्थ रूपी रसों से पूरित कवि सिद्ध द्वारा विरचित, किन्तु कर्मवश विनष्ट हुए इस प्रद्युम्न-चरित का निर्वाह कर उसे सम्पन्न कर दो। मेरे कथन से तुम इस कार्य को करो। तुम्हारी गुण रूपी छाया एवं परिश्रम से क्या यह कार्य पूर्ण नहीं होगा?"

घत्ता— "उस प्रभुता से क्या लाभ और धन की अधिकता से क्या लाभ, यदि दुखियों एवं साधन-विहीनों का उपकार नहीं किया जाय? उस काव्य से भी क्या लाभ, और उन कवि-जनों से भी क्या लाभ, यदि उनके द्वारा काव्य-रसिकों के मन का हरण न किया जाय?"।। 7।।

गुरु णर पुणो पउत्तं पवियप्पं धरसि पुत्त मा चित्ते।
गुणिणो गुणं लहेविणु जइ लोउ दूसणं पवइ।। 8।।
को वारइ सविसेसं खुद्धो खुद्धत्तणंमि सिव-वंभो।
सुधणो छुडुमब्भत्थो असुलं वो णिय सहावं च।। 9।।
संभवइ बहुअ विग्घमणु आणं सेय-मग्गि लग्गाणं।
मा होहि कज्जु सिढिला विरयहि कव्वं तुरंतो वि।। 10।।
सुह-असुहं ण वियप्पहि चित्तं धीरेवि ते जए धण्णा।
परकज्जें परकज्जं विहडंतं जेहिं उद्धरियं।। 11।।
अमियमइंद गुरूणं आएसं लहिवि झत्ति इय कव्वं।
णियमइणा णिम्मवियं णंदउ ससि दिणमणी जाम।। 12।।
को लेक्खईं सछम्म दुज्जीहँ दुज्जणं पि असुहयरं।
सुयणं सुद्ध सहावं करमउलं रयवि पत्थामि।। 13।।
जं किंपि हीण-अहियं विउसा सोहंतु तं पि इय कव्वो।
धिट्ठत्तणेण रइयं खमंतु सव्वेहि मह गुरुणो।। 14।।

"हे पुत्र, गुरुजनों एवं महापुरुषों ने बार-बार यह कहकर प्रेरणा दी है कि चित्त में किसी भी प्रकार का विकल्प धारण मत करो। यदि लोग दूषण भी दें, तो भी गुणीजनों से गुणों को ही ग्रहण करो।"।। 8।।

"बौने शिव एवं ब्रह्मा के विशेष बौने रूप को कौन रोक सकता है? धनियों को छोड़कर दरिद्रों की अभ्यर्थना के स्वभाव को क्या कहा जाय?"।। 9।।

"श्रेयो मार्ग में लगे हुए मनुष्यों के लिये अनेक विघ्नों के आने की सम्भावना है!। अत: (हे कविवर, मेरे द्वारा बतलाए हुए) कार्य में शिथिल मत होना। अब तुरन्त ही निर्दिष्ट-काव्य की रचना करो।" ।। 10।।

"संसार में वे धीर-वीर धन्य हैं, जो अपने चित्त में (कार्यारम्भ के समय किसी भी प्रकार के) शुभ-अशुभ का विकल्प नहीं रखते तथा जिनके द्वारा परोपकार के निमित्त दूसरों के बिगड़ते हुए कार्यों का उद्धार किया जाता है।"।। 11।।

गुरु अमियचंद का आदेश प्राप्त करके तत्काल ही मैंने इस काव्य का अपनी बुद्धि-पूर्वक निर्माण किया। यह (काव्य) चन्द्र-सूर्य के अस्तित्व-काल तक नन्दित होता रहे।। 12।।

अशुभकारी, द्विजिह्व एवं छली-कपटी दुर्जनों का लेखा-जोखा कौन करे? शुद्ध स्वभाव वाले सज्जनों को हाथ जोड़ कर पज्जुण्ण-चरिउ की रचना करता हूँ।। 13।।

गुरु के आदेश से मुझ धृष्ट द्वारा रचित इस काव्य में जो कुछ भी हीनाधिक (लिखा गया) हो, विद्वान् लोग उसमें शोधन कर लें तथा (उन त्रुटियों के लिए) सभी जन मुझे क्षमा प्रदान करें।। 14।।

प्रतिलिपिकार प्रशस्ति

प्रद्युम्नचरितं समाप्तमिति। संवत् 1553वर्षे भाद्रपदमासे शुक्ल-पक्षे पूर्णमास्यां तिथौ बुधवासरे शतिभिषा नक्षत्र वरियानन त्रियोगे। श्रीमूलसंघे बलात्कार-गणे, सरस्वतीगच्छे, कुंदकुंदाचार्यान्वये, भट्टारक श्री पद्मनंदिदेव: तत्पट्टे भट्टारक श्रीशुभचन्द्रदेवस्तत्पट्टे भट्टारक श्रीजिनचंद्रदेव: आचार्य श्रीकीर्तिदेव: तत्शिष्य ब्रह्मचारि लाखा देव गुरुभक्तवंत ।। गोत्र चोर मंडग सवाईराजा तस्य भार्या फोदी तस्य पुत्र साहमहलु तस्य भार्या पूरी तस्य पुत्र साह नाथू हम्फराज सुय ताल्हण श्रेष्ठि पुत्र तस्य भार्या अणभू सास्त्र परवचन - व्रत दसलाक्षणकी ब्रह्मचारि लाखाहे कर्मक्षयनिमित्त घटायौ।। रत्तंदिनौ शुभं भवतु ।। श्री।। श्रीकृष्णदास लिखितं श्रियार्थे।।

प्रतिलिपिकार प्रशस्ति

संवत् 1553 वर्ष के भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की पूर्णमासी तिथि, बुधवार, शतभिषा नक्षत्र, वरियानत त्रियोग काल में प्रस्तुत प्रद्युम्नचरित (की प्रतिलिपि का कार्य) समाप्त हुआ।

श्री मूलसंघ बलात्कारगण, सरस्वती गच्छ कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा में भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेव हुए, उनके पट्ट में भट्टारक श्रीजिनचन्द्रदेव एवं आचार्य श्रीकीर्तिदेव हुए। उनके शिष्य एवं देव, गुरु के भक्त ब्रह्मचारी लाखा हुए।

उन लाखा का गोत्र चोरमण्डन था। उनके काल में सवाई राजा (सवईराज) का राज्य था। उनकी पत्नी का नाम फोदी था, जिसका पुत्र शाह महलू था। महलू की भार्या का नाम पूरी था। उसके पुत्रों के नाम थे— शाह नाथू एवं हम्फराज। इन दोनों में से श्रेष्ठ-पुत्र शाह नाथू का पुत्र ताल्हण हुआ, जिसकी भार्या का नाम अणभू था। उस अणभू ने दशलक्षणव्रत में शास्त्र-प्रवचन हेतु तथा अपने कर्मों को क्षय करने हेतु ब्रह्मचारी लाखा से इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराई। रात्रि-दिन शुभ हो। श्री। उसी प्रतिलिपि के आधार पर सभी के कल्याणार्थ श्रीकृष्णदास ने इस ग्रन्थ की (पुन:) प्रतिलिपि की।

❑❑❑

विशिष्ट शब्दों की शब्दानुक्रमणिका

(अकारादि क्रम से)

ध्यातव्य—क्रमांकों के सन्दर्भों में प्रथम अंक सन्धि सूचक, दूसरा अंक उसके कड़वक-छन्द का सूचक तथा तीसरा अंक उस कड़वक की पंक्ति संख्या का सूचक है।

अइआरु - अत्यन्त क्रोधित 12/3/10
अइतुंग - अत्यन्त उत्तुंग 3/12/3
अइनिट्ठुर - अतिनिष्ठुर 15/24/20
अइदीण - अत्यन्त दुखी 15/23/8
अउज्झहिं - अयोध्या नगरी 5/11/5
अंगद - गदा नामका अस्त्र 8/11/5
अंगुलीउ - मुद्रिका 11/2/9
अंगुब्भव - प्रद्युम्न 15/8/2
अंचल - आँचल 2/15/1
अंजण - अंजन 15/12/2
अंजिय - आँजना 3/2/10
अंतावलि - अँतड़ियाँ 2/18/11
अंतिमुविलासु - (तप कल्याणक) 15/10/7
अंतेउर - अन्तःपुर 1/13/5
अंधिवंस - अन्धिकवृष्टि वंश 14/17/8
अंब - आम्र 3/7/5
अंबरु - अम्बर (आकाश) 8/3/2
अंसु - वस्त्र 3/8/2
अकियजिणेसर - अकृत्रिमजिनेश्वर 14/9/9
अक्खइ - अक्षत; चावल 3/3/1
अक्खउ - अक्षत 6/11/7
अक्खिज्ज - कहना 15/25/13
अक्खीण - अक्षीण 15/23/25
अक्खूव - अक्ष-जुआ अर्थात् चौपड़ 15/3/13
अगहण - अगहन मास 9/9/8
अग्गहारु - अग्निहोत्री, अग्नि में होम देने वाले 4/14/12
अग्गिभूइ - अग्निभूति नामक व्यक्ति 4/14/14
अग्गिल - अग्गिला नामकी स्त्री 4/14/13
अग्घु - अर्घ 2/10/9
अचल - पर्वत 4/9/14
अच्चुव - अच्युत स्वर्ग 7/7/10
अच्चुवकप्प - अच्युत स्वर्ग 9/11/8
अच्चेव - अर्चना 15/8/8
अच्छइ - है 4/12/2
अच्छोह - अक्षोह, सेना 3/2/5
अछमि - कहना 10/18/7
अजिंमण - उपवास 9//5/8
अजिय - अजितनाथ तीर्थंकर 15/6/6
अज्जण - अर्जुन नामका पाण्डव 13/5/11
अज्जुणवण - अर्जुनवन 8/14/11
अट्ठ - आठ 12/10/9
अट्ठ - आठ मूलगुण 5/10/3
अट्ठ - आठ 9/11/13
अट्ठाहिय - अठाई पर्व, अष्टाह्निका पर्व 15/5/9
अडइ - चला 15/8/2
अडसय - अड़सठ 15/12/5
अडूरो - एक वाद्य 2/1/2
अणंत - अनन्तनाथ तीर्थंकर 15/6/16
अणहंत - अरहंत परमेष्ठि 2/12/2
अणियट्टि - अनिवृत्तिकरण गुणस्थान 15/24/9
अणिरुद्ध - अनिरुद्ध नामका पुत्र 15/21/12
अणिलाणवि अणिलादेवी नामकी महिला 8/13
अणुद्धरि - अनुद्धरि नामक स्त्री 14/9/9
अणुवमु - अनुपम 9/2/10
अणुव्वय - अणुव्रत 6/1/6
अणुहुँ - अनुभव 14/11/2
अण्णमणा अनमना 11/11/5
अद्धक्किय - अर्धकृत; अधूरा 12/26/5
अद्धचंद - कृष्ण 13/3/4
अद्धचक्केस - अर्ध चक्रेश अर्थात् कृष्ण 3/3/4
अद्धमियंक - अर्धचन्द्र 4/5/11
अद्धवरिसु - आधावर्ष, आधा तोला 15/3/4

अद्धवह - अर्धपथ 9/21/2
अद्धुव - अध्रुव भावना 7/3/11
अनसितसंवर कालसंवर राजा 9/5/13
अपच्चक्खाण - अप्रत्याख्यान 15/24/14
अप्पुण - अपने 12/9/2
अब्भुद्धरि उद्धार करके 15/10/1
अमयचंदु · अमृतचन्द्र मुनि 1/4/6
अमराउरि - अमरपुरि, स्वर्ग 1/9/10
अमला - निर्दोष 9/7/6
अमाच्च - अमात्य 6/13/4
अमिउवम - अमृतोपम 15/6/10
अमियमुणिंद - अमृत मुनीन्द्र 1/4/6
अम्मि - माँ 8/18/10
अम्मियास - माता की आशा 14/17/8
अयक्कुइ - अकस्मात् 12/27/5
अयत्थ - अगस्त मुनि 11/11/7
अरिंजय - अरिंजय नामक राजा 5/11/6
अरिदमणु - अरिंदमन नामका सारथी 2/13/9
अरिराज - अर्णोराज 6/9/5
अरुहं - निर्दोष 9/3/11
अरुह - निर्दोष 15/6
अरुहमग्गे - अरहन्त मार्ग 7/8/1
अलयाउरे - अलकापुरी नगरी 8/1/2
अवरेत्त - अन्यत्र 11/6/6
अवसु - अवश्य 15/21/5
अवहत्थि - अवहेलना 15/8
अब्भुय - अद्भुत 15/8/2
असंवेइय - असंवेदनीय 15/24/11
असगाव - असंगत 11/9/4
असण्णु - असंज्ञ 5/13/6
असवार - सवारी करनेवाला 10/18/12
असि - तलवार 2/14/10
असिकुंत - तलवार और कुन्त नामका अस्त्र 6/10/7
असिदुहिय - छुरी 4/17/7
असिवरु - श्रेष्ठ तलवार 13/13/3
असुर - दैत्य, राक्षस 1/12/10
असोय - अशोक वृक्ष 3/7/8

अहंग - अभंग 14/5/6
अहमिंद - अहमिन्द्र देव 7/16/10
अहर - अधर; होंठ 7/1/2
अहि - सर्प 2/17/3
अहिणंदिउ - अभिनन्दन 7/6/11
अहिणंदिउ - अभिनन्दन तीर्थंकर 15/6/16
अहिण्ण - अजगर 2/18/2
अहिमुह - सर्पमुख 10/11/11
अहिय - अहित 15/17/15
अहिवइ - गरुड़ 9/22/14
अहिसिंच - अभिषिंच 14/6/7
अहिहाणु - कन्दर्प, प्रद्युम्न 13/13/10
आउ - आयु 7/7/10
आउच्छिय · आपुच्छिउ, पूछा 12/2/5
आतउ - आतप, धूप 15/24/13
आमलय - आमलक वृक्ष 3/2/9
आयइं - आर्यिका 9/5/7
आयउ - आये 14/4/10
आयमवेय - आगम वेद 4/17/14
आयवत्त - छाता; छत्र 10/7/9
आयहमि - भविष्य में 8/4/1
आरिट्ठ - राक्षस 9/12/5
आलोयणि - आलोचनी विद्या 8/3/3
आसरिय - आश्रय 7/7/7
आससणु - आश्वासन 8/10/10
आसिकाल - भूतकाल 10/13/5
आसीवाउ - आशीर्वाद 2/7/11
आसीस - आशीष, आशीर्वाद 2/7/5
इउ - आयउ, आया 11/14/12
इंगाल - अंगार 14/24/5
इंद - इन्द्र 1/14/8
इंद्रजाल - इन्द्रजाल 8/14/7
इंदबिंब - चन्द्रबिम्ब 1/13/3
इंदाणी - इन्द्राणी 1/13/9
इक्खुकोवंड - इक्षु का धनुष 11/3/7
इत्थ - अत्र, यहाँ 1/23/5
इल पृथिवी 2/9/11

इलयल - पृथ्वीतल 6/2/10
इला - जमीन 12/14/6
इल्ल - सारस पक्षी 11/3/10
इह - इस 3/13/10
ईरियं - प्रेरणा 15/16/1
ईसा - ईर्ष्या 1/14/4
ईसीसि - ईषत्, थोड़ा 3/12/2
उग्गाल - उगाल 3/5/4
उग्गाहमि - उगाहना 10/10/4
उच्चं - ऊँचा 10/3/9
उच्चाल - उछालना 13/13/3
उच्छाल - उछालना 14/24/2
उच्छ - इक्षु 1/7/7
उच्छंगे - गोदी 8/20/13
उच्छलिउ - उछाला 13/1/2
उच्छुदण्ड - इक्षुदण्ड 11/4/2
उज्जाण - उद्यान 11/4/4
उज्जिलगिरि - गिरनार पर्वत 1/1/13
उज्जोयर - उद्योतक (मार्गदर्शक) 14/1/3
उज्झ - अयोध्या 2/5/1
उज्झ - व्यर्थ 15/5/4
उज्झाउरि - अयोध्यापुरी 5/14/7
उडय - उड़ना 11/6/2
उडु - तारा 1/11/8
उडुपहु - तारा-कान्ति 7/6/7
उड्डिढर - उठी 13/10/10
उण्हाविय - स्नापित 14/7/8
उत्तरीउ - चादर 11/7/8
उदधिदत्त - समुद्रदत्त राजा 8/13/12
उदयगिरि - उदयगिरि 6/22/7
उद्धरणु - चित्रण, उदाहरण 2/12/11
उप्पह - उत्पथ 5/12/4
उम्माल - अलंकृत 13/15/12
उयरियउ - उत्तर पड़ा 15/5/8
उरु - जंघा 9/2/5
उल्लूरण - शिथिल 15/4/18
उल्लोय - फहराना 11/6/7
उल्लोवया - चन्दोवा 10/2/8
उवरि - उर्ध्व 15/11/9
उवसम - उपशान्त 15/24/3
उवहि - उदधिकुमारी 10/8/10
उवहिचंद - उदधिचन्द्र भट्टारक 9/3/12
उवहिदत्त - उदधिदत्त राजा 5/16/1
उवास - उपवास 7/6/2
उव्वाहु - उद्वाह भोग 8/21/12
उसरहु - आगे बढ़ो 11/7/12
उसीसो - तकिया 3/12/11
उहट्ट - हटना 13/12/5
उहामिर - उच्च पर्वत 2/2/11
उहु-उहु - अरे वह, अरे वह 11/11/11
ऊणल्ल - तड़फना 14/24/6
ऊसर - परती जमीन 10/11/4
एंतु · आते हुए 9/19/3
एकल्लउ - अकेला 13/5/9
एक्कु - एक 11/4/9
एण - मृग 14/13/13
एणणाहि - मृग की नाभि, कस्तूरी 15/3/9
एत्तडइ - इतना, इस प्रकार 10/20/11
एयहो - इसके लिये 11/4/7
एयारह - ग्यारह 15/12/13
एयारहसहस - ग्यारह सहस्र 15/12/4
ओअरा - भवन 4/16/18
एल - इलायची 10/6/4
कइ - कपि, बन्दर 11/4/6
कइ - कवि 1/3/2
कइडिहु - कैटभ नामक राजकुमार 6/5/11
कइलास - कैलाश पर्वत 15/5/8
कंकण - कंगन, हाथ का आभूषण 1/13/4
कंकणाण - कंकणयुगल 8/11/5
कंकेलि - अशोक वृक्ष 6/17/2
कंचण - सोना, स्वर्ण 11/6/11
कंचणमाला - कंचनमाला नामकी रानी 14/1/11
कंचणार - कचनार वृक्ष 10/6/8
कंचुइ - कंचुकी, अश्वपाल 10/19/6

कंचुली - चोली 10/15/2
कंठीरउ - कोयल 15/25/15
कंडयं - बाण 10/9/11
कंथारि - कन्थारि वृक्ष 10/6/3
कंदब - कदम्ब नामक वृक्ष 15/3/18
कंदल - युद्ध समूह 13/4/9
कंदोट्ट - कमलदल 1/7/1
कंधर - गुफा 2/18/2
कंबु - शंख 13/6/12
कंस - कृष्ण का मामा 1/12/1
कंसारि कृष्ण 13/12/9
कंसाल - एक वाद्य 14/6/3
ककोहास - दिशाओं को भर देना 7/15/8
कक्कड - कर्कट, केंकड़ा 1/11/7
कचउ - कवच 12/25/8
कच्छ - कच्छ देश 14/5/6
कच्छूरिय - कचूर नामक सुगन्धित द्रव्य 11/23/11
कज्ज - काजल 8/9/10
कडउ - कटक, सेना 2/14/6
कडयड - कड़कड़ की ध्वनि 15/13/14
कडिसुत - कटिसूत्र, करधनी 14/15/7
कड्ढिउ - निकाला 12/19/8
कण - शुक, तोता 11/3/10
कणउ - कनक, स्वर्ण 1/9/10
कणं - कण — कन-कन की झंकार 6/3/6
कणखल - कनखल देश 5/16/9
कणयणाहु - कनकनाथ राजा 8/1/3
कणयप्पह - कनकप्रभ राजा 6/11/6
कणयरहु - कनकरथ राजा 6/11/1
कणयवरिसु - कनकवर्षा, स्वर्णदान 3/3/8
कणयीरि - कनवीर पुष्प 10/6/8
कणियबाण - कनिकबाण 2/20/6
कण्ण - कर्ण, कान 1/11/10
कण्णाड - कर्नाटक देश 6/3/12
कण्णत्तुल - स्वर्णतुला 1/15/2
कण्णिय - कणिकि बाण 2/17/9
कण्ह - कण्ह देश 14/5/6
कत्तरिकरण - कृषि करना, काटना 7/13/9
कप्पंधिव - कल्पवृक्ष 1/10/6
कप्पि - कल्प 1/9/6
कप्पूर - कर्पूर 1/10/6
कबंध - सिर कटा धड़ 12/27/9
कम - क्रम, चरण 15/7/2
कमंडल - कमण्डल 9/23/3
कमल - कमल का पुष्प 9/10/6
कमलसर - कमलसरोवर 3/10/5
कम्मारि - कर्म रूपी शत्रु 15/25/15
कय - कइ 15/7/2
कयय - कृतक 15/24/24
कर - टैक्स 4/14/11
करंति - करती 10/13/3
करवंद - करौंदा फल 3/7/5
करवीर - करवीर नामका वृक्ष 10/6/3
करहया - ऊँट 10/7/8
करहाट - कर्णाटक 6/3/12
करिकरडयल - हाथी का गण्डस्थल 11/14/4
करिकुंभ - हाथी का मस्तिष्क 2/2/5
करुणि - करौनी वृक्ष 10/6/8
कलकेलि - अशोक वृक्ष 3/7/4
कलति - करना 6/10/2
कलमसालि - कलमसालि नामक धान 1/7/4
कलयंठि - कलकंठि; कोयल 3/1/10
कलयलु - कल-कल ध्वनि 12/27/1
कलस - कलश; घड़ा 10/16/6
कलह - झगड़ा 1/14/9
कलहोय - कलधौत; स्वर्ण 11/5/9
कलिकुमरु - कलिकुमार 6/9/1
कलिमल - कलियुग के पाप 6/12/8
कलुण - करुण 10/13/1
कल्लोल - तरंग 6/14/1
कवणु - कौन 10/17/14
कवलचंदायण - कवलचंद्रायणव्रत 4/11/5
कविट्ठ - कपिष्ठ; कपित्य; कैंथा वृक्ष 8/9/9
कव्वड - पर्वतीय प्रदेश 4/19/14

कव्वुरं - चित्रित 14/17/2
कसमसंत - कसमसाना 13/16/11
कसवट्ट - कसौटी 3/9/5
कसि - कसना 8/10/1
कस्मीर - काश्मीर देश 14/5/3
कह-कह - कह-कहा लगाना 3/6/3
कहाणिय - कहानी, कथानक 9/16/7
काणण - वन 8/9/9
कानीन - कुमारी कन्या से उत्पन्न 14/7/7
कापिट्ठकानन - कपित्थ कानन 8/9/8
कामंगुल्छिलय - काम की अँगूठी 8/10/9
कामकरी - कामुक हाथी 8/10/2
कामपाल - प्रद्युम्न 15/22/7
कामु - कामदेव 15/25/16
कारंड - पक्षी 11/3/10
कालउ - काला 6/16/14
कालगुहा - कालगुफा 8/4/11
कालत्तय - त्रिकाल 15/11/10
कालसंवरु - कालसंवर नामका राजा 4/2/3
कालाउरु - कालागरु, काला अगरु 11/23/11
कालिंदि - जमुना नदी 2/10/6
कालिय - नाग 2/10/6
कावित्थ - कपित्थ, कैंथा 8/9/9
किं - क्यों 10/19/9
किक्कार - किलकार 10/11/10
किटि - शूकर 2/2/3
किडि - किटि, शूकरी 9/10/12
किण्ह - कृष्ण 13/14/10
किरडि - शूकर 3/14/8
किवाण - कृपाण 13/12/10
किविण - कृपण, कंजूस 11/22/8
किसलय - नवीन पत्ते 14/14/8
किसाणु - किसान 4/16/9
किसि - कृषि 15/5/3
कीर - कीर नामका देश 14/5/3
कीर - तोता 1/8/1
कील - कीड़ा 11/4/9

कुंकुम - कुंकुम, केशर 6/17/9
कुंच - सिकोड़ना 14/15/12
कुंजर - हाथी 14/20/5
कुंडल - कान का आभूषण 8/7/11
कुंडिणपुर - कुण्डिनपुर नगर 9/11/9
कुंडिय - कुण्डी, कमण्डल 11/7/8
कुंतय - कुन्त नामक अस्त्र 2/16/5
कुंतल - केश 1/9/6
कुंद - कुन्द पुष्प 6/17/8
कुंभ - घड़ा 13/14/15
कुंभोयरु - द्रोण 13/14/15
कुक्कुरि - कुतिया 9/8/11
कुट्ठ - कुष्ठ रोग 9/8/9
कुद्दिवि - कूदना; उछलना 12/26/8
कुम्म - कूर्म, कछुवा 8/16/4
कुरंग - हिरण 2/2/8
कुरंगी - हिरणी 2/2/8
कुरर - पक्षियों की आवाज 4/1/8
कुरलइं - पक्षियों की आवाज 4/1/8
कुरुखेत - कुरुक्षेत्र 5/16/9
कुरुजांगल - कुरुजंगल देश 11/8/9
कुरुवइ - कुरुपति, (दुर्योधन) 10/11/6
कुवलय - कमल 4/5/10
कुवलयदल - कमल दल 1/13/3
कुसंच - संकोच, सिकुड़ना 10/2/2
कुसुमघणाघणु - घनाघन पुष्प छत्र 8/15/12
कुसुमसयण - पुष्पशैया 8/15/11
कुसुमसरु - पुष्पबाण 11/3/7
कुहिणि - कुहिनी 8/7/10
कूलु - भात 11/21/4
केऊर - केयूर नामक आभूषण 1/13/4
केम - कृमि 9/8/7
केयार - केदार, हिमालय 6/16/14
केयारहि - क्यारी, खेत 1/13/4
केरउ - परसर्ग 11/14/7
केरल - केरल देश 14/5/8
केरलवइ - केरलपति 6/3/12

केसपासु - केशलौंच 15/10/11
केसु - पलाश वृक्ष 6/16/13
कोइल - कोयल 1/8/7
कोंच - क्रौंच पक्षी 11/3/10
कोंत - कोन्त नामका अस्त्र 2/16/4
कोट्ठ - कोठा 15/12/17
कोडि - करोड़ 9/12/8
कोदंड - धनुष 9/22/10
कोलाहल - कोलाहल 6/10/2
कोलिक - कौलिक सम्प्रदाय 15/16/6
कोवि - कोई 12/25/8
कोवीणजुउ - कौपीनयुत अर्थात् नारद मुनि 1/16/9
कोसल - कोशलदेश 6/11/3
कोसलवइ - कोशलपति, कोशल नरेश 6/11/3
खइराडवण - खदिराटवन, खदिराटवी 4/13/8
खइरायउ - खदिराटवी 4/2/12
खंगइ - चक्रवाक पक्षी 2/20/2
खंड - श्रीखण्ड नामकी मिठाई 11/21/9
खंडुक्खलि - शर्करामिश्रित पानक या जलक्रीड़ा 6/17/9
खंचिउ - खींचना 13/10/2
खंथरयखंडु - कथरी का टुकड़ा 7/2/2
खंभ - स्तम्भ अस्त्र 2/16/4
खज्जय - खाजा (खाद्य पदार्थ) 11/21/9
खणि - क्षण 1/10/12
खम - क्षमा 5/7/10
खचर - खेचर 1/13/1
खर - प्रखर 10/21/10
खरदंडु - तीक्ष्ण दण्ड 1/9/1
खरि - गधा नामका जानवर 9/10/12
खल - दुष्ट 2/3/6
खलंत - तुतलाना 10/18/3
खलि - खल्वाट 14/3/7
खलिक्खर - स्खलित अक्षर 9/17/12
खान - खाना 11/21/1
खीर - खीर 11/21/9
खील - काँटी 5/7/6
खुखुद - खुरखुद 13/16/14
खुडंत - खुरचना, फोड़ना 15/11/5
खुडहि - काटना 2/16/12
खुरप्प - क्षुरपा 2/16/12
खुल्लयरूउ - क्षुल्लकरूप 11/23/4
खेड्ड - क्रीड़ा 9/2/8
खेड - खेट 1/15/6
खेद - विलम्ब 9/15/7
खेलणउ - खिलौना 7/12/10
खोलइ - हँसी 1/10/12
गउड - गौड़ देश 14/5/5
गंगसलिल - गंगाजल 5/17/8
गंगासरि गंगानदी 15/5/12
गंजिय - गाँज देना, ढेरकर देना 13/4/11
गंजोल्ल - गूँजना; प्रसन्न होना 12/28/4
गंजोल्लिय - हँसना 3/1/1
गंठि - गाँठ 3/5/10
गंडय - गैंडा नामक जानवर 4/1/1
गंधोएण - गन्धोदक 15/11/1
गग्गिरिय - लड़खड़ाना 9/8/8
गज्जण - गजनीदेश 14/5/5
गडयड - ध्वन्यात्मक शब्द 5/3/20
गणण - गणक, ज्योतिषी 3/14/1
गणरउ - ज्योतिषी 7/12/2
गणहर - गणधर 8/16/2
गणिय - गणित 7/13/8
गय - गदा 10/16/4
गय - हाथी 11/16/11
गयणयल - गगनतल 1/8/10
गयदंत - हाथी के दाँत 1/11/2
गयरहु - गजरथ नामक राजा 6/3/2
गयरूव - गज के रूप में 8/10/1
गयल - प्रमाद 11/17/11
गरुड - गरुड़ पक्षी 2/10/6
गल - गला 11/4/7
गह - ग्रह 7/13/8
गह - गहगहाकर 14/7/9
गाइ - गीत गाना 13/15/10

गाम	-	ग्राम 11/16/11
गारउ	-	गर्व 14/3/11
गाव	-	गाँव 14/1/16
गिंभ	-	ग्रीष्म 15/3/13
गिद्ध	-	एक पक्षी 12/27/9
गिरिंदु	-	गिरीन्द्र नामक अस्त्र 9/20/9
गिरिजुयल	-	एक साथ दो पर्वत 8/7/7
गिरिमंदिरु	-	मंदराचल पर्वत 7/16/6
गिरिविसाल	-	विशाल पर्वत 8/8/2
गिरुव	-	अत्यन्त गौरवशाली 10/18/1
गिहकारणि	-	एकविद्या का नाम 8/5/14
गीय	-	गीत 14/22/11
गुंजाहल	-	गुंजाफल 10/9/7
गुज्जर	-	गुर्जर, गुजरात देश 14/5/6
गुट्ठ	-	समूह (बुन्देली) 5/13/7
गुडिउद्धहरण	-	गुडिका उद्धरण 13/15/6
गुण	-	गुड़ 11/21/9
गुणठाण	-	गुणस्थान 15/11/5
गुत्ति	-	गुप्ति 7/5/7
गुमगुमंत	-	गुमगुमाना 8/11/9
गुहर	-	सुघड़ 2/14/7
गुहिल	-	एक क्षत्रियराजा 1/4/10
गोउर	-	गोपुर 1/10/8
गोंदल	-	समूह 13/4/9
गोत्त	-	गोत्र 14/23/9
गोदिउ	-	ग्वालिन 1/7/9
गोमय	-	श्रृगाल 14/10/4
गोरस	-	दही, दूध 1/7/9
गोरक्खण	-	गोरक्षण (ग्वाला) 14/22/12
गोवद्धणगिरि	-	गोवर्द्धन पर्वत 9/12/3
गोविंद	-	गोविन्द (कृष्ण) 12/28/11
गोवियण	-	गोपीजन 2/10/6
गोसीरुह	-	चन्दन 4/5/7
गोहण	-	गोधन, गाय रूपीधन 11/16/12
घंटा	-	घन्टा 15/11/13
घघर	-	घर-घर की आवाज 13/12/13
घग्घरोलि	-	घर-घर शब्दों से 13/12/15
घडहड	-	ध्वन्यात्मक शब्द 8/9/11
घण	-	घना 8/12/1
घणकूट	-	मेघकूट नगर 7/9/1
घणघोण	-	घनघोर 8/12/1
घणसार	-	कर्पूर 2/11/10
घिउ	-	घी 6/14/4
घिण	-	घृणा 5/1/20
घित्त	-	घृत 15/7/10
घुट्ठ	-	घुमाना 2/19/16
घुरुघुरिय	-	आगे बढ़ाना 5/13/5
घुलिय	-	घुल-मिलकर 10/20/8
घुसिण	-	चन्दन 3/13/7
चइत	-	चैत्रमास 15/5/1
चउक्क		चौक 3/3/3
चउप्पदी	-	चतुष्पदी छन्द 13/6; 13/17
चउब्भव	-	चतुर्भुज, कृष्ण 13/14/10
चउरि	-	वेदी 14/7/4
चउरी		चबूतरा, विवाह की वेदी 14/7/9
चउवेय	-	चतुर्वेद 6/1/1
चंग	-	चंगदेश 15/5/6
चंचू	-	चोंच 6/21/5
चंडाल	-	चण्डाल जाति का व्यक्ति 5/16/15
चंडु	-	प्रचण्ड 12/24/2
चंदकांत	-	चन्द्रकान्त मणि 10/2/5
चंदण	-	चन्दन 3/1/13
चंदणरस	-	चन्दन का रस 11/23/11
चंदुज्जाण	-	चन्द्र नामक उद्यान 3/4/11
चंदोयरु	-	चन्द्रोदर विद्याधर 14/19/8
चंपय	-	चम्पा वृक्ष 3/7/5
चक्क	-	चक्र 10/16/14
चक्कणाह	-	चक्रनाभ अर्थात् कृष्ण 15/22/8
चक्कवाल	-	चक्रवाल नगर 2/3/7
चक्कि	-	चक्रवाक अस्त्र 6/21/4
चक्किवइ	-	चक्रवर्ती 4/9/3
चडंत	-	चढ़ना 15/11/5
चडावि	-	चढ़ाना 15/9/7
चडेवि	-	चढ़कर 15/26/10

चप्पिउ - चाँपना, दबाना 13/1/10
चमक्क - चमकना 15/23/21
चमर - चँवर 15/3/11
चमु - सेना 14/18/10
चम्मरयणु - चर्मरत्न 13/12/5
चयारि - चार दिन 10/20/8
चरण - चरण 15/9/7
चलण - चरण 12/19/8
चल्ल - चलना 14/24/6
चवलिउ - चल दिया 13/9/12
चवहि - कहना 11/2/6
चहुट्ट - धँस जाना 13/11/8
चाउ - चाप, धनुष 15/9/7
चाउरंग - चतुरंग सेना 13/5/9
चाणूर - चाणूर नामक योद्धा 9/12/6
चामीकर - स्वर्ण 6/3/4
चारमि - चरा लूँ, 11/2/5
चिंधु - चिण्ह 2/18/9
चिक्कंत - चीत्कार 11/8/14
चिक्कमइ - प्रत्युत्पन्नमतित्व 10/8/8
चिक्कमंत - चलते-चलते 11/2/8
चिहुर - चिकुर, केश 14/3/7
चीण - चीन देश 6/3/12
चुक्क - चूकना 15/19/6
चूर - चूर-चूर 13/5/9
चेइवइ - चेदिपति अर्थात् शिशुपाल राजा 2/12/7
चोज्ज - चौज, (बुन्देली) आश्चर्य 14/12/3
चोड - चोड़ देश 6/3/12
चोरासी - चौरासी 4/10/16
छइ - अच्छि, अत्थि, है 12/6/3
छइल्ल - छैला, चतुर 10/2/4
छंद - छन्द 5/12/3
छंदोलंकति - छन्दोलंकृति 13/17/22
छट्ठ - छठा 9/11/3
छट्ठि - जन्म के छठवें दिन होने वाला उत्सव 3/13/11
छट्ठोववास - छठवाँ उपवास 15/10/15
छड - सींचना 3/13/7
छडल्ल - छिड़कना 13/15/7
छडा - लथपथ 13/6/5
छण - पूर्णमासी का चन्द्रमा 14/15/14
छणइंद - पूर्णमासी का चन्द्र 14/4/4
छत्तिय - क्षत्रिय 11/7/8
छत्त - छत्र 8/5/7
छप्पण्ण - छप्पन 15/11/1
छप्पय - छप्पय छन्द 3/4/8
छम्मच्छ - छद्मस्थ तप 15/11/3
छल्ला - अँगूठी 10/2/11
छव - शव 4/17/9
छहरिउ - षड्ऋतु 7/1/6
छाइउ - आच्छादित 13/15/13
छिवरी - चिपटी 10/9/4
छुट्टिठ - छूटी 8/19/11
छुड-छुड - धीरे-धीरे 6/3/6
छुरिया - छुरिका-छुरी 8/10/9
छूहपंकय - चूना 15/3/14
छोल्लइदन्त - दाँत रगड़ना 15/4/14
जंतु - जन्तु, कीड़ा 6/10/10
जंपाण - पालकी 15/5/10
जंभारि - कुबेर 15/8/12
जंभारी - इन्द्र 14/14/3
जंबइ - जाम्बवती (कृष्ण की एक रानी) 7/9/7
जंबु - जामुन वृक्ष 3/7/4
जक्ख - यक्ष 11/6/12
जडाजूड - जटाजूट 9/23/4
जडि - जड़ी 11/7/8
जणद्दण - जनार्दन (कृष्ण) 1/14/8
जण्हु - जाँघ 11/15/5
जम - यम 11/4/4
जममुह - यममुख 2/18/1
जमल - पाण्डव पुत्र नकुल-सहदेव 13/14/15
जमु - यम 15/7/1
जमुणी - जमुना नदी 9/12/4
जम्बूदीउ - जम्बूद्वीप 1/6/6
जयसारि - जयसारी नामकी विद्या 8/14/6

जरठ - प्रलयकालीन गर्मी 14/4/3
जरसिंघु - जरासन्ध राजा 2/10/7
जलधारा वर्षायोग 7/5/9
जलपए - प्याऊ 1/7/10
जलयवह - जलपथ 15/10/7
जलरेह - जलरेख, जलधारा 15/7/15
जलहर - जलधर, बादल 4/16/21
जहिट्ठिलराइ - युधिष्ठिर राजा 14/15/2
जा - उत्पन्न 14/5/9
जाइफल - जायफल 3/5/11
जाउहाण - यातुधान यक्ष 8/5/9
जाम - जब तक
जायरणु - जागरण 3/13/11
जायवकुल - यादवकुल 1/14/11
जिगजिगंत - चक-चक चमकना 13/12/14
जिणमंदिर - जिनमन्दिर 9/3/10
जिणसासण - जिनशासन 12/6/7
जिणइ - जिनेन्द्र 15/8/12
जियंतुगिरि - जयन्तपर्वत 8/16/1
जीहु - जीभ 10/18/3
जुण्ण - जीर्ण 13/4/7
जुवरायपट्ट - युवराज पट्ट 13/17/15
जुवाणु - जवान 10/2/7
जूउविहि - द्यूतविधि 14/15/10
जूही - जुही पुष्प 10/6/11
जेहउ - जितना 10/2/7
जोयण - योजन 1/9/9
झंप - झाँपना 13/12/16
झंपड - झबरे 10/9/3
झडंत - ध्वन्यात्मक शब्द 15/25/6
झसिय - झुलसना 9/8/8
झाड - झाड़ना 15/26/18
झाणु - ध्यान 7/5/8
झीण - झीण, झीना 15/20/8
झुणि - ध्वनि 15/9/11
झुमुक्क - झुमका 10/2/6
झुलुक्क - झुलसना 14/9/1
झुवंत - झूमते हुए 10/6/10
झोपड़ - झोपड़ी 9/9/3
टंकारु - टंकार 2/17/3
टलंलि - टलटंलाना 12/21/2
टलटल - टलटलाना 13/13/1
टसत्ति - टूटती हुई 8/17/3
डउडिउ - बलबलाना 2/14/9
डक्क - ढक्का नामका वाद्य 11/23/10
डक्क - अंगुलि प्रहत वाद्य 14/6/4
डमडम - डम-डम की ध्वनि 13/16/12
डमर - भय 12/20/7
डसडिय - काँप कर एक दूसरे से भिड़ जाना 9/8/9
डाविउ - डर गये 15/9/7
डिंडिय - कपटी 11/17/7
डिंभु - बालक 3/2/11
डुक्क - डुक्का नामका वाद्य 11/23/10
डेसर - डेसर देश 14/5/6
डोर - डोरी 15/19/13
डोल्ल - डोलना 13/11/11
ढक्क - ढक्क नामका वाद्य 6/10/1
ढक्क - ढक्क नामका देश 14/5/3
ढालिय - छोड़कर 14/10/10
ढुंढुरना - घिसटना 9/8/8
ढुक्क - ढुका, घुसा 13/12/15
ढोइय - ढोना 11/21/12
णं - मानों 12/23/4
णंदणवण - नन्दनवन 1/8/7
णंदिवद्धण - नन्दिवर्धन गुरु 5/5/2
णंदिवट्ठि - नन्दो-वृद्धो, वर्धापन 1/16/13
णंदीसर - नन्दीश्वर देव 6/2/9
णंदीसरु - नन्दीश्वर व्रत 15/5/3
णग्गोह - न्यग्रोध, वटवृक्ष 9/9/11
णच्च - नृत्य 2/1/2
णच्चंति - नृत्य करती हुई 14/6/5
णट्ट - नृत्य 13/15/14
णट्ठ - नष्ट होना; रफूचक्कर 10/11/14
णड - नट 14/7/5

णणंद - ननद 4/8/8
णमि - नमिनाथ तीर्थंकर 15/6/23
णयउ - नपक, म्यान 8/10/8
णयर - नगर 1/9/10
णव - नवीन 11/21/5
णवजुवाण नवयुवक 8/21/7
णवणय - नवनय 14/9/15
णवपय - नवपदार्थ 14/9/15
णवमास - नवमास 12/14/10
णवमेहु - नवीन मेघ 2/13/2
णवयार - णमोकार मंत्र 5/3/1
णवरस - नवरस 14/7/5
णवल - नवल 2/2/4
णवल्ल - नवेली, नई वधू 12/8/6
णहंगण - नभांगन 10/4/3
णहचारि - नभचारी 4/12/10
णहमग्ग - आकाशमार्ग 10/12/7
णहमणि - आकाशमणि 14/13/12
णाड - कर्णाटक देश 14/5/3
णाडयसिरि - चर्मरस्सी 4/16/22
णापित - नाई 12/11/2
णायगुह - नागगुफा 8/5/10
णायतलप्पु - नागशैया 8/5/13
णायरगिर - नागरवाणी 2/2/12
णारउ - नारद ऋषि 4/7/9
णारए - नारद ऋषि 1/14/9
णारायण - नारायण (कृष्ण) 1/14/12
णाविउ - नापित (नाई) 12/12/5
णासग्गदिट्ठि - नासाग्रदृष्टि 8/16/9
णिकेय - निकेत, भवन 8/10/6
णिज्झर - निर्झर 1/8/8
णिट्ठाणिट्ठ - निष्ट-अनिष्ट 15/23/11
णिणाउ - निनाद 8/12/6
णिम्महि - निर्मम 14/16/3
णियल - सांकल, बेडी 15/6/17
णियलु - निलय, भवन 15/14/7
णियाण - निधान (जलाशय) 5/12/4
णिरंभ - जलरहित 11/12/6
णिरच्छ निरर्थक 10/19/9
णिवत्ती निवृत्ति 14/2/7
णिवाहिउ - पटक दिया 8/10/7
णिवाय - निपात, झरना 14/10/4
णिव्वेइ - निर्वेद, वैराग्य 15/9/10
णिसायर - निशाचर 6/19/10
णिहंडु - निघण्टु 1/3/5
णिहिवइ - निधिपति (कुबेर) 15/17/1
णीलमणि - नीलमणि 14/4/5
णीहरंत - निकलता 4/15/13
णेऊर - नूपुर 1/13/5
णेत्तपट्ट - रेशमीवस्त्र 4/4/10
णेमि - नेमिनाथ (तीर्थंकर) 15/6/24
णेरिउ - नैऋत्य दिशा 15/7/1
णेसप्प - नैसर्प निधि 4/10/15
णेसर - सूर्य 14/10/2
णेहंध - स्नेहान्ध 13/8/2
णेहाउल - स्नेह से भरकर 15/14/16
ण्हवणु - स्नान 15/6/27
तंडव - ताण्डव नृत्य 14/20/10
तंब - ताम्र, ताम्बा 9/20/13
तंबचूल - मुर्गा 14/16/4
तंबोल - पान 1/14/4
तक्कवाए - तर्कवाद 4/15/7
तक्खउगिरि - तक्षकगिरि 3/14/9
तक्खयगिरि - तक्षकपर्वत 4/13/8
तडत्त - तड़तड़ाकर 14/24/4
तडतड - तड़तड करना 6/10/2
तडयड - तड़तड करना 5/14/8
तणउ - का 5/16/5
तव - तपस्या 15/16/6
तमपसर - अन्धकार का प्रसार 19/20/11
तमाल - तमाल वृक्ष 2/10/3
तरंड - नाव, नौका 14/1/15
तरछ - भालू 4/1/2
तलप्फ - तड़पाना 12/21/8

तलवर - कोतवाल 7/3/2
तल्लोवेल्लि तड़फड़ी 6/12/8
ताम - ताम्बूल 10/6/9
तामरस - कमल का फूल 1/13/6
तार - तार नामका व्यक्ति 8/1/4
ताल - तालाब 3/1/6
ताल - संगीत की ताल 13/16/13
ताल - ताली 3/6/3
तिउर - त्रिपुर 2/17/4
तिखंड - तीनखण्ड 1/12/10
तित्थंकर - तीर्थंकर 4/9/3
तित्थयर - तीर्थंकर 3/11/13
तिणु - उसने 9/20/13
तित्ति - तृप्ति (सन्तोष) 10/20/11
तिमि - मछली 3/4/10
तिरिय - तिर्यंच 15/13/11
तिलंग - तैलंग देश 14/15/7
तिल - तिल नामक खाद्य पदार्थ 14/16/14
तिलय - तिलक वृक्ष 3/7/5
तिवलि - टिवल नामका वाद्य 6/10/2
तुंबु - नारद की वीणा 15/2/9
तुट्ट - टूटना 15/6/4
तुडि - त्रुटि, टोटका 4/8/10
तुप्प - घी 11/21/5
तुम्बरु - वीणा 15/2/9
तुरंग - घोड़ा 2/14/10
तुरिउ - त्वरित 13/16/11
तुरुक्क - तुरुष्क देश 14/5/3
तुहार - तुम्हारा 11/22/1
तूर - एक वाद्य 2/1/2
तूल - गद्दा 15/20/11
तेय - पीत नामक लेश्या 4/10/11
तेरह - तेरह 15/11/5
तेल्ल - तेल 11/13/12
तोड़ - तोड़ना 11/20/7
तोरण - तोरण 1/12/5
तोह - तो भी 15/20/6

थक्क - एकत्रित 5/6/7
थक्क - निश्चेष्ट 14/24/6
थट्ट - समूह 13/3/6
थड्ड - धक्का, जमा हुआ 15/3/12
थण्ण - स्तन 9/21/9
पत्थरखंडु - पत्थरों का टुकड़ा 7/2/2
थरहर - थरथराना 10/4/6
थाण - स्थान (बुन्देलीशब्द) 15/13/15
थुइ - स्तुति 9/3/11
थूल - स्थूल 14/9/14
थेरु - वृद्ध 10/2/6
थोव - स्तवक, सोने चाँदी के तबक 15/3/3
दइ - भाग्य 14/14/4
दंडय - दण्डक (एकप्रकार का छन्द) 9/3/11
दंत - दाँत 9/5/8
दंभोलिरएण - वज्रदंत 8/8/6
दंसणु - दर्शन 5/10/4
दंसमस - मच्छर 11/6/8
दंसुव - दर्शनीय 7/11/11
दक्ख - द्राक्षा 15/3/12
दडण - ध्वन्यात्मक शब्द 6/10/2
दडत्तु - तेज करना 10/4/8
दप्पोब्भल - दर्प से उद्धत 9/19/1
दप्पण - दर्पण 1/16/7
दप्पु - दर्प 1/13/1
दरकार - देरी करना 9/7/1
दरि - गुफा 1/15/6
दवण - दौना पुष्प 6/17/8
दसणु - दाँत 7/2/3
दससय - हजार 15/10/14
दसार - दशार्ह राजा 13/15/17
दह - दशलक्षण 5/15/5
दहखमण - दसवाँ उपवास 9/11/3
दहरह - दशरथ 4/3/7
दहवयण - रावण 1/10/10
दहि - दही 6/11/7
दहिउ - दही 15/7/10

दही - दही 11/21/9

दाढा - दाढ़ 8/12/2

दाडिम - अनार 1/13/8

दाणव - दानव, राक्षस 1/13/1

दामोयर - दामोदर (कृष्ण) 3/3/11

दारामइ - द्वारिका नगरी 1/14/1

दालि - दाल 11/21/5

दाहिणमलउ - दक्षिणमलय 4/2/9

दिक्खं - दीक्षा 15/10/14

दिज्जउ - दीजिये 11/4/7

दिण्ण - दिन 15/11/1

दिय - द्विज 9/8/1

दिय - दिशा 9/10/6

दियमण - द्युमणि (सूर्यकान्त मणि) 15/3/3

दिवत्थु - दिव्यास्त्र 13/12/10

दिवहु - दिवस 14/9/1

दिविड - द्रविड़ देश 6/3/12

दिव्वंवर - दिव्यवस्त्र 13/15/13

दिव्व - दिव्य 9/21/1

दिव्वधणु - दिव्यधनुष 9/20/8

दिव्ववाणि - दिव्यवाणी 4/7/12

दिव्वविमाण - दिव्य-विमान 7/16/5

दिव्वाउह - दिव्य-आयुध 9/12/12

दिहि - धृति, आनन्द 10/18/2

दीणार - दीनार 11/13/13

दीवय - दीपक 15/5/9

दीवायणु - द्वीपायन मुनि 15/21/17

दुअट्ठ - सोलह 7/10/4

दुंदहि - दुन्दुभि 15/11/1

दुग्गंधा - दुर्गन्धा नामकी स्त्री 9/10/13

दुग्घोट्ट - दुर्दमनीय 9/19/12

दुज्जोहण - दुर्योधन 3/9/4

दुट्ठ - दुष्ट 3/6/6

दुद्धर - भयंकर 8/9/3

दुमदल - द्रुमदल, वृक्षसमूह 13/15/12

दुमदुमिय - ध्वन्यात्मक शब्द 6/10/2

दुवई - दुवई नामका छन्द 15/1/1

दुवार - द्वार 7/3/5

दूइय - दूती 6/21/7

दूवंकुर - दूब के अंकुर 14/2/12

दूसासणु - दुःशासन नामका कौरव 10/12/9

दूसाहिं - दूष्य (वस्त्र), तम्बू 2/14/8

देवइ - देवकी (कृष्ण की माता) 1/12/9

देवण - कवि सिद्ध के पिता का नाम 1/12/9

देवदारु - देवदारु वृक्ष 3/7/5

दोलायाण - हिन्दोला 15/3/5

दोव - दूर्वा 3/3/1

धइ - धृष्ट, ढीठ 7/2/5

धणएण - कुबेर 2/11/12

धणु - धनुष 2/17/13

धमक्कु - धमक 6/9/5

धम्म - धर्मनाथ तीर्थंकर 15/6/17

धम्म - धाम नामका नगर 9/8/14

धम्मचक्क - धर्मचक्र 15/13/12

धम्मण - धामन वृक्ष 10/6/3

धम्मसुव - युधिष्ठिर 12/25/3

धरत्ति - धरती 6/13/9

धव - धव नामक वृक्ष 10/6/3

धवल - बैल; उज्ज्वल 15/6/10

धाइ - धाय 6/4/9

धार - धारण 10/16/4

धारा - धारा पुष्प 15/3/18

धाराहर - मेघधारा 13/12/12

धारिणी - धारिणी नामकी सेठानी 5/11/10

धिउ - घृत, चढ़ाया 15/7/7

धीमंत - बुद्धिमान 6/10/4

धीवरि - धीवरी कन्या 9/10/1

धुत्त - कुशल 10/8/7

धुत्ता - धुर्त 9/21/8

धुव - धोने वाला 15/7/13

धूमकेउ - धूमकेतु राक्षस 14/3/2

धूमद्धउ - धूमध्वज असुर 7/8/5

पई - आप 10/2/4

पउमप्पह - पद्मप्रभ तीर्थंकर 15/6/8

पउमिणि - पद्मिनी वृक्ष 7/1/4
पउमु - पद्म नामका चक्रवर्तीराजा 4/10/14
पंकजमुहि - पंकजमुखी 3/8/17
पंकयणाहु - पंकजनाथ अर्थात् श्रीकृष्ण 13/13/14
पंकयवण - पंकजवन, कमलवन 7/6/17
पंच - पाँच 5/10/3
पंचग्गि - पंचाग्नि तप 7/8/3
पंचमहव्वय - पाँच महाव्रत 7/5/6
पंचसयइं - पाँचसौ 14/5/11
पंचवण्णमणि - पाँच वर्ण की मणि 10/15/13
पंचाणणु - सिंह 6/13/1
पंडवह - पाण्डव 13/16/16
पंडी - पण्डी नामक देश 6/4/1
पंपाइय - कवि सिद्ध की माता का नाम 1/6/1
पक्खर - पलान 14/24/5
पक्खोववास - 15 दिन का उपवास 7/6/2
पग्गह - पगहा, जानवरों को बाँधने वाली रस्सी 11/6/3
पच्चार - फटकार 14/3/9
पच्चारि - पुकारना 12/24/5
पच्चाहि - प्रत्यूष, प्रभातकाल 5/7/6
पज्जुण्ण - प्रद्युम्न, (श्रीकृष्ण का पुत्र) 3/14/1
पट्ट - वस्त्र 1/14/4
पट्टन - पट्टन 14/23/5
पडुक्क - ढूँकना 12/21/2
पडउ - गिर पड़ा 11/12/7
पडह - पटह वाद्य 1/11/10
पडि - प्रति 13/15/6
पडिमा - प्रतिमा योग 15/10/14
पडिवाइ - प्रतिपत्ति, उपचार 6/23/4
पडिसक्कंदण - प्रतीन्द्र; प्रतिनारायण 2/14/14
पडु - वस्त्र 14/6/11
पडुल - पाटल, गुलाब, कमल 6/17/4
पडुल्ल - संसार-पटल 15/5/5
पणय - प्रणय, प्रेम 7/2/9
पण्णउ - पन्नग, सर्प 9/13/8
पण्णत्ति - प्रज्ञप्ति 9/22/10
पण्णसिय - वेश्या, 1/8/10
पण्णसिय - प्रज्ञप्ति 10/17/3
पण्णयकुल - नागवंश 2/11/5
पण्णारह - पन्द्रह 15/13/5
पत्तंग - सूर्य 6/19/4
पत्तहि - पत्ता 6/16/14
पत्तहि - पतझड़ 6/16/14
पय - दूध 1/7/11
पय - पैर 9/5/12
पयखाण - खान-पान 11/2/8
पयोनिधि - क्षीरसागर 1/11/1
पयोवणु - पयोवन 8/12/9
पयोहर - पयोधर, स्तन 5/10/7
परमच्छ - परमार्थ 8/3/7
परमेट्ठि - परमेष्ठि 4/11/5
परयारकरण - परस्त्रीगमन 7/3/4
परहुय - कोयल 6/4/7
परिउसिउ - पर्यदसित, भाग खड़ा हुआ 14/6/2
परिमंडिवि - स्थापित कर 12/8/2
परिमल - सुगन्ध 11/23/11
परिसेसि - छोड़ना 13/12/13
परिहव - पराभव 14/19/1
परीसह - परीषह 5/7/2
परुच्चमि - परिचय 12/23/4
पलमक्खण - माँसभक्षण 11/17/7
पलयसमुद्द - प्रलयसमुद्र 14/22/5
पलासु - पलाश वृक्ष 10/6/9
पल्लंक - पलंग 4/4/13
पल्लट्ट - पलटना 12/20/6
पल्हत्थ - नष्ट करना 15/7/7
पवणअसण - सर्प 8/4/6
पवणंगउ - हनुमान 11/4/15
पवणु - वायव्य दिशा 15/7/1
पवर - श्रेष्ठ 7/14/9
पवाल - प्रबाल, मूँगा 11/12/8
पविदसन - वज्रदन्त नामक व्यक्ति 7/17/1
पविमणि - हीरा 2/16/11
पविमल - उत्कृष्ट निर्मल 15/26/5

पसण्ण - प्रशान्त 15/20/6
पसु - पशु 6/1/10
पसुपालण पशुपालन 15/6/1
पस्सेउ - पसीना 9/1/13
पहर - क्षण 13/12/5
पहरण - प्रहरण 2/13/8
पहल - पहली 12/26/2
पहिय - पथिक 1/7/10
पहुँच्च - पहुँचना 11/22/5
पाए - प्याऊ 1/7/10
पाढीणु - एक जलचर जीव 1/11/7
पाडल - हंस 8/17/5
पाणिग्गहण - पाणिग्रहण, विवाह 8/20/9
पायट्ठवणु - पादस्थापनी (पादुका) 8/5/13
पायाल - पाताल 4/11/2
पायालकण्ण - पातालकर्ण 2/11/3
पारिजाय - पारिजात पुष्प 10/2/9
पालणाउ - पालना; पलना 7/12/9
पासं - पार्श्वनाथ तीर्थंकर 15/6/25
पाहुण - मेहमान 14/1/5
पिई - कोयल 4/1/10
पिंगलपहाण - पिंगलप्रधान 4/10/5
पिप्पली - पीपली वृक्ष 10/6/4
पियंग - प्रियंगु वृक्ष 3/1/5
पियरह - पितामह 12/23/4
पियवयण - प्रियवचन 5/11/7
पियवयणा - प्रियवदना रानी 5/11/7
पियारी - प्यारी 9/5/13
पिसुण - पिशुन; धूर्त 3/6/6
पिहियासव - पिहिताश्रव मुनि 8/1/5
पीण - पुष्ट 15/7/3
पुंडरिकिणी - पुण्डरीकणी नगरी 4/10/9
पुक्कार - पुकारना 14/24/7
पुक्खलावइ - पुष्कलावती देश 14/9/10
पुण्णंधि - पूर्णार्ध 15/7/7
पुण्णकलस - पुण्यकलश 13/15/8
पुण्णभद्द - पुण्यभद्र नामका व्यक्ति 5/12/2
पुण्णाय - पुन्नाग पुष्प 11/13/9
पुप्फचाउ - पुष्पधनुष 8/12/6
पुप्फदाम - पुष्पमाला 8/9/7
पुप्फधणु - पुष्पधनुष 8/15/6
पुरंद - पुरन्दर; इन्द्र 1/13/9
पुरंधी पुरन्धी 8/20/9
पुरा - पुर 3/1/4
पुरी - नगरी 1/15/8
पुलिंद - भील 10/9/9
पुल्लिहि - भील 2/2/3
पुच्छंग - [illegible] 15/[illegible]/2
पुव्वविदेह - पूर्व विदेह 14/9/9
पेक्ख - प्रेक्ष, देखना 1/8/5
पेल्ल - ठेलमठेल, पेलना 13/11/11
पेल्ल - पेलना 15/3/6
पेसण - दास 9/21/3
पोम - पद्म लेश्या 4/10/11
पोलोमी - इन्द्राणी 5/10/8
फग्गुण - फागुन मास 6/16/12
फणिंद - फणेन्द्र 1/14/8
फणिपास - नागपाश 2/20/7
फणिस - पनिस वृक्ष 3/4/7
फणीस - नागेन्द्र 15/7/1
फागुण - फागुन मास 15/5/3
फाल - फेंकना 10/9/3
फिट्ट - नष्ट होना 15/5/6
फुट्ट - फूटना 13/10/7
फुरेसइ - फरकना 7/10/8
फूइय - बुआ 2/13/12
फूफु - बुआ 2/7/13
फेडिउ - फेरना 14/6/11
फोड - छाला, फोड़ा 9/8/7
फोंफली - पोंफली वृक्ष 10/6/11
बंध - बन्ध नामका तत्व 14/9/14
बंभणवाड - बम्हणवाड नगर 1/4/8
बलहद्द - बलभद्र 1/12/7
बुद्धि - बुद्धि नामकी देवी 2/11/4

भइणि - बहिन 14/21/7
भउ - वधु 6/16/15
भंड - युद्ध 15/9/4
भट्टु - भट, योद्धा 4/14/13
भण्ड - भाण्ड, बर्तन 11/12/1
भद्दु - भद्र 9/1/5
भरह - भरत चक्रवर्ती 10/17/6
भल्ल - भाला 2/17/10
भवण - भवन 11/16/12
भाणु - सत्यभामा का पुत्र 4/8/13
भाणुकण्णु - भानुकर्ण नामका पुत्र 10/17/6
भात - भात (खाद्य पदार्थ) 11/21/4
भामरी - प्रदक्षिणा 4/11/6
भिंगार - भृंगार (मृत्तिका पात्र) 15/7/15
भिंतरु - आभ्यंतर 4/11/2
भिण्णकारी - एक विद्या 8/5/14
भित्ति - दीवाल 10/9/5
भीम - भीम नामका राजा 6/9/3
भीसम - भीष्म नामका राजा 9/11/9
भुयंग - भुजंग, सर्प 1/8/9
भुव - भुजा 8/9/11
भुवण - संसार 1/14/8
भूगोयरी - भूगोचरी 2/11/2
भूवालु - राजा 9/7/1
भेरी - भेरी नामका वाद्य 2/16/1
भोयइं - भोजक राजा 12/23/6
मइरी - माता 8/19/4
मउड - मुकुट 1/14/2
मंगल - मंगल ग्रह 11/6/7
मंगलसद्द - मंगल शब्द 2/12/12
मंच - मचान, खटिया 7/2/6
मंचोवर - मंच के ऊपर 7/2/6
मंजरि - आम्र मंजरी 6/17/1
मंडउ - मण्डप 14/4/7
मंडव - मँडना 12/28/3
मंडव - माँड, चावल का माँड़ 11/21/9
मंदरवरि - भवन के ऊपर 12/28/9
मंदिरगिरि - सुमेरु पर्वत 4/9/10
मंदिरु - मन्दराचल 7/16/6
मक्कडु - बन्दर 11/4/3
मगह - मगध देश 14/5/3
मगहामंडल - मगध मंडल 4/14/9
मग्गण - बाण 9/22/6, 15/11/9
मग्गण - मंगना, भिखारी 14/7/7
मचकुंद - मचकुन्द पुष्प 10/6/12
मच्छर - मत्सर 6/15/5
मज्झण्ण - मध्यान्ह 1/9/5
मज्झिम - मज्झिम 15/11/9
मज्जाव - मर्यादा 11/12/10
मडंब - मटम्ब 1/15/6
मणपज्जयणाणि- मन:पर्ययज्ञानी 15/13/8
मणि - रत्न 10/3/5
मणिभद्द - मणिभद्र नामका व्यक्ति 5/12/2
मणिमय - मणियुक्त 7/12/10
मणिरयण - मणिरत्न 10/10/10
मणोजव - मनोजव विद्याधर 8/13/12
मणोजवाहिं - मनोजव विद्याधर 8/13/7
मणोहरि - मनोहर 5/10/7
मत्ते - मध्ये 4/11/2
मत्ते - मृत्युलोक 4/11/2
मय - मद 1/9/1
मय - मृग 2/2/10
मयजूह - मृगयूथ 1/8/8
मयणाहि - मृगनाभि, कस्तूरी 1/10/6
मयरकेउ - मकरध्वज (प्रद्युम्न) 9/15/7
मयरु - मकर 1/11/7
मयारि - मृगारि, सिंह 8/13/1
मयारिविंद - सिंहासन 10/3/7
मरगयमणि - मरकतमणि 2/10/8
मरुभूइ - मरुभूति 4/14/14
मलि - मलना 13/12/4
मलेस - रौंदना 14/3/7
मल्लि - मल्लिनाथ तीर्थंकर 15/6/21
मल्लिय मल्लिका पुष्प 2/11/9

मसि - स्याही 15/6/1
महएवि - महादेवी 11/6/15
महाणइ - महानदी 4/10/7
महाणव - महार्णव; महासमुद्र 11/12/10
महाणील - महानील 14/4/5
महातीरि - महानदी 2/11/9
महाभारह - महाभारत 15/9/3
महारउ - महाशब्द 8/10/14
महीहर - महीधर राजा 10/5/3
महु - मधु, शहद 11/19/11
महुमहण - मधुमथन (कृष्ण) 13/6/1
महुमहणु - मधुमर्दन (कृष्ण) 1/12/8
महुराउ - मधु राजा 6/8/10
माइ - माता 9/2/8
माइउ - समाना 13/15/13
माउले - माता 8/18/2
माणथंभ - मानस्तम्भ 8/3/7
माणस - मानस; कृष्ण 13/9/5
माणुससर - मानसरोवर 7/1/4
मायंग - चाण्डाल 11/4/2
मायंदवण - आम्रवन 11/3/4
मायंदु - आम्र 8/8/92
मायरि - माता 9/3/7
मायामय - माया से युक्त 11/1/12
मालइ - मालती पुष्प 2/11/9
मालव - मालव देश 6/4/1
मालि - माली एक जाति 11/12/12
मालूर - मालूर नामक वृक्ष 5/12/5
माससउववास - मासोपवासी 7/6/2
मासद्ध - आधा मास; 15 दिन 12/15/5
माह - मास, महिना 10/11/1
माहव - माधव (कृष्ण) 13/7/12
माहवचंदु - माधवचन्द्र 1/4/2
माहिंदसूरि - महेन्द्रसूरि 5/12/6
मिइय - मृग 2/2/10
मिच्चु - मृत्यु 2/19/11
मियंक - चन्द्रमा 4/5/11
मियवासु - मृगचर्म 11/7/9
मीण - मीन, मछली, मीन राशि 1/11/7
मुछाविउ - मूर्च्छित 6/23/3
मुट्ठिपहार - मुष्ठिप्रहार 11/10/3
मुणिसुव्वय - मुनिसोव्रत तीर्थंकर 15/6/22
मुत्ताहल - मुक्ताफल, मोती 3/3/3
मुसुमूरिय - मर्दित, नष्ट 15/6/17
मेस - मेढा 10/16/7
मोक्ख - मोक्ष 14/9/14
मोग्गरय - मोगरा पुष्प 10/6/12
मोट्ट - मोटा 10/9/6
मोड - मोड़ना 15/25/17
मोत्तियदाम - मोतियों की माला 5/12/8
मोंध - इमली का रस 11/21/9
मोयय - मोदक, लड्डू 12/3/7
मोहचक्कु - मोहचक्र 15/13/12
मोहण - मोहन अस्त्र 13/12/2
यवनं - म्लेच्छ जाति 10/18/4
यास - आस देश 14/5/6
युवइ - युवती 11/6/4
रइ - रति नामकी पुत्री 8/20/5
रइ - रति 7/1/2
रइरमण - रतिरमण 14/24/12
रइवर - रतिवर 10/17/3
रइएस - रतिरस 7/1/2
रउद - रौद्र 7/3/6
रएइ - रचाई 15/8/2
रंगावली - चौक पूरना 13/15/7
रंगोली - चौक 13/15/7
रंभाथंभ - केले का स्तम्भ 3/15/12
रक्खवाल - रक्षापाल 8/6/4
रणउहे - रण-समूह 13/8/2
रत्तुप्पल - रक्तउत्पल, लालकमल 4/5/11
रमाउलु - उद्यानों से व्याप्त बगीचा 13/15/11
रयण - रात्रि 1/10/5
रयणचूल - रत्नचूल विद्याधर 14/8/7
रयणप्पह - रत्नप्रभा नरक 5/10/7

रयणविट्ठि - रत्नवृष्टि 15/11/1
रयणावलि - रत्नावलि, रत्नों की पंक्ति 6/4/5
रयणसंचिय - रत्नसंचयपुर 14/8/7
रविकंत - रविकान्ता स्त्री 14/8/9
रविमणि - सूर्यमणि 14/4/3
रविसुव - कर्ण; पाण्डव पुत्र कर्ण 10/12/10
रसकसमसंत - रसकसमसंत की ध्वनि 13/16/11
रसोइ - भोजन 13/5/7
रहंगु - रथांगचक्र 3/19/6
रहणेउर - रथनूपुर नगर 2/3/7
रहसद्द - रहसबधावा, हर्ष बधाइयाँ 13/16/11
रहु - एकान्त 11/5/8
राउ - राजा 6/14/10
राम - बलराम, बलदेव 15/1/8
राम - आराम, बगीचा 3/1/4
रामइ - रामसेनावत 1/7/3
रामवणा - रावण 9/23/2
राय - राजा 6/10/8
रायधसक्कु - रायधशक; विरुदधारी राजा भीम 6/14/2
रायमइ - राजमती, नेमिनाथ की भावी पत्नी 15/10/6
रावल - राजकुल 7/14/9
रास - गधा 10/11/4
रासि - राशि, ज्योतिष की बारह राशियाँ 1/11/8
राह - मार्ग 1/9/5
राहु - राहु ग्रह 2/10/7
रिउ - ऋतु 15/14/10
रिंछ - रीछ; भालू 8/13/3
रिट्ठ - अरिष्ट, कौआ 12/27/8
रिणरिणंत - रिण-रिण की ध्वनि 13/16/11
रिद्धंजण - ऋद्धांजन वृक्ष 3/7/4
रिद्धिवंत - ऋद्धिवंत 15/13/7
रिसह - ऋषभ 15/6/3
रिसीसर - ऋषीश्वर, गौतम गणधर 15/6/3
रीण - थका 10/18/6
रुंज - गर्जना 12/21/2
रुक्ख - वृक्ष 13/9/18
रुणरुणंत - रुण-रुण की ध्वनि 11/6/10
रुप्पिणी - रुक्मिणी 2/7/9
रुप्पिणि - रुक्मिणी 2/7/11
रुविणि - रूपिणी, रुक्मिणी 2/12/6
रूवकुमार - रूपकुमार 2/20/3
रेल्ल - भीड़, प्रवाह 12/27/1
रेवयगिरि रैवतपर्वत 15/10/9
रोहिउ - रोधित 11/12/4
लएवि - लेकर 13/22/11
लंगूल - पूँछ 6/2/10
लक्ख - लाख 4/10/17
लक्खण - लक्ष्मण; उदधिकुमारी का भाई 6/21/10
लक्खि - जानना 15/17/5
लच्छीहर - लक्ष्मीगृह 15/9/10
लच्छि - लक्ष्मी 2/11/3
लयाहर - लतागृह 3/1/7
लल्लाविय - लपलपाती 2/2/5
लवंग - लौंग 3/1/5
लवकुस - लव-कुश 6/7/10
लवण - नमक 11/21/9
लवणोदहि - लवणोदधि, लवणसागर 14/9/7
लवलि - लवलि वृक्ष 5/11/6
लाड - लाड देश 6/3/12
लाडया - लाड देश 14/5/4
लाजिय - लज्जिका नामकी दासी 12/2/3
लायणु - लावण्य 8/16/11
लास - आनन्द, रस 14/6/4
लाह - लाभ 8/5/15
लिहु - लिखना 7/7/1
लुलइ - विलुलित 10/4/10
लेप - लेप, उबटन 15/3/3
लेसा - लेश्या 15/11/4
लेह - लेख 3/9/4
लेहत्थ - लेख-पत्र 14/19/6
लोट्ट - लोटना 14/24/5
लोल चंचल 2/2/5
लोह - लोहा 11/13/13
वइणि - वदन 15/16/12

वइवसपुर - यमपुर 13/14/8
वउ - वय, उम्र 10/20/5
वउणु - वमणु; वमन 11/22/14
वउल - बकुल फूल 3/7/5
वंक - टेढ़े, सुन्दर 2/15/6
वंग - बंग देश 14/5/3
वंदइं - सिन्दूर 3/1/13
वंभ - ब्रह्म 2/17/4
वंभ - ब्रह्मचारी 10/13/3
वंभणकुल - ब्राह्मणकुल 1/14/12
वंभणोवि - ब्राह्मण 4/16/9
वंभयारि - ब्रह्मचारी 12/2/3
वंभु ब्रह्म 2/12/2
वंस - बाँस का वृक्ष 10/5/6
वंसाल - बाँसुरी 11/23/9
वक्खर - बख्तर, कवच 2/14/10
वग्ग - वर्ग, कवर्ग, च वर्ग आदि 3/9/6
वज्जंकासन - पर्यंकासन 15/26/10
वज्जाउह - वज्रायुध अर्थात इन्द्र 15/7/1
वट्ट - मार्ग 10/9/12
वट्टक - वटुक 11/16/1
वडार - वड़पुर नगर 6/18/2
वडि - वाड़ी 14/1/14
वडुय - वटुक 11/22/14
वड्ढमाण - वर्धमान तीर्थंकर 15/6/26
वणरक्खह - वनरक्षक 11/4/8
वणव्वकाए - वनस्पतिकायिक 15/17/4
वणसइं - वनस्पति 6/16/17
वणियारउ - बनजारा 10/10/3
वत्तीस - बत्तीस 10/20/9
वद्धावय - वर्धापन 3/12/9
वय - शरीर 15/27/9
वर - उत्तम, श्रेष्ठ 1/15/8
वरदत्त - वरदत्त राजा 15/10/7
वरवच्छदूसह - श्रेष्ठ दूष्य वस्त्र 8/7/6
वरहिण - मयूर 15/3/15
वराड - वरार देश, विदर्भ देश 14/5/6
वराहसेल - वराहगिरि 8/11/7
वरिसाल - वर्षाकाल 15/3/19
वरी - बहेड़ा वृक्ष 10/6/9
वरुणु - वरुण 15/7/1
वलि - बलि 15/5/6
वल्लभ - वल्लभ नामका अस्त्र 6/10/7
वल्लाल - बल्लाल राजा 1/4/9
वसंत - वसन्त ऋतु 3/4/7
वसह - बैल 10/11/16
वसु - कृष्ण 15/20/14
वसुएव - वसुदेव, कृष्ण के पिता 1/12/7
वसुणंदउ - वसुनन्दक खड्ग 8/5/8
वसुंधरि - वसुन्धरा रानी 6/3/3
वहउ - वध 9/14/9
वहियाले - अश्वशाला 10/19/2
वाउल - व्याकुल 6/23/10
वाउलउ - बावला; पागल 6/23/10
वाउवेय - वायुवेगा देवि 8/20/4
वाडवग्गि - वाडवाग्नि 12/24/11
वाडि - वाड़ी 14/1/14
वाणर - बन्दर 8/9/3
वाणि - पानी 15/3/12
वापी - वापिका 11/7/1
वामेछि - बायाँ अंग 7/10/8
वाय - बातें 9/6/8
वायस - काग, कौआ 6/21/3
वारण - छज्जा 3/14/4
वारण - हाथी 3/14/4
वारमइ - द्वारावती, द्वारिका 1/9/7
वारहभावण - बारह भावना 7/4/2
वारुणि - शराब 11/19/11
वावल्ल - एक अस्त्र 2/17/9
वावी - वापी 11/6/15
वावीस - बाईस 7/6/2
वासव - वासुपुज्ज तीर्थंकर 15/6/14
वाह - व्याधि, रोग 15/7/7
वाहह - वाहक 15/5/7

वाहिउ - हाँका 11/6/4
वाही - अश्वशाला 10/18/12
वाहेण - व्याध 2/2/6
विउयरु - वृकोदर अर्थात् भीम 13/14/5
विउलगिरि - विपुलाचल पर्वत 1/6/3
विउलवण - विपुलवन 8/14/16
विंजण - व्यञ्जन; पकवान 3/9/6
विगुत्तउ - नकटा 12/12/2
विजयसंख - विजयशंख नामका शंख 8/12/8
विज्जउ - विद्याएँ 8/5/13
विज्जउरिया - बिजुरिया नीबू 10/6/6
विज्जवेउ - विद्युत्वेग विद्याधर 14/8/6
विज्जामउ - विद्यामय 8/17/10
विट्ठु - विष्णु 2/10/10
विडप्प - राहु ग्रह 4/14/11
विणाण - विज्ञान 10/2/3
विण्णाण - विज्ञान 4/14/14
विण्णि - दो 10/20/4
विपणिय - व्यापार; वाणिज्य 11/11/12
विमल - विमलनाथ तीर्थंकर 15/6/15
विमलवाहण - विमलवाहन मुनि 7/4/3
विमाण - विमान 10/5/1
वियंगइ - प्रियंगु वृक्ष 6/17/3
वियक्खणा - विचक्षणा रानी 9/7/1
वियवासिय - विकसित 15/25/18
विल - एक वाद्य 6/10/2
विलक्ख - व्याकुल 13/8/11
विवणिय - बाजार 11/11/12
विवसग्गु - व्युत्सर्ग 5/5/5
विसल्ला - लक्ष्मण की माँ 6/21/10
विसवह - जल के वाहक अर्थात् मेघ 15/8/5
विसवहपुर - मेघकूटपुर नगर 14/8/3
विहप्फइ - वृहस्पति ग्रह 1/15/3
विहडप्फड - हड़बड़ाकर 14/24/7
विहुर - विधुर 9/19/
वीणा - एक वाद्य 8/5/13
वीयाइंदु - द्वितीया का चन्द्र 4/4/12
वुक्कर - गुर्राना 11/5/4
वेइल्ल - बेला पुष्प 3/1/12
वेणीदंडु - मफलर या कान ढँकने वाला वस्त्र 15/4/13
वेय - वेद 4/14/14
वेयड्ढ वैताढ्य पर्वत 2/3/6
वेयसत्थ - वेद-शास्त्र 4/14/12
वेयालिय - वैतालिक 13/16/8
वेयालु - वैताल, नारद 1/16/10
वेलाउल - उत्सवगृह 7/14/9
वेल्लहल्ल - सुन्दर लता 3/9/9
वेसरा - खच्चर, गधा 10/7/10
वोड - वोड देश 14/5/5
वोम - व्योम, आकाश 3/14/11
वोममंडल - आकाश-मंडल 3/14/16
वोल्ल - बोलना 9/1/18
संकु - काँटी; कील 2/15/6
संख - शंख 11/5/12
संगीय - संगीत 1/14/6
संघार - संहार 15/20/2
संचहि - मंच 6/3/10
संजई - आर्यिका 15/13/9
संजायउ - उत्पन्न हुआ 13/17/11
संजोइ - एकत्रित 6/9/8
संझाचरण - सन्ध्याचरण, सन्ध्यावन्दन 11/17/8
संति - शान्ति 2/11/4
संति - शान्तिनाथ तीर्थंकर 15/6/8
संदाणु - रथ 2/13/8
संभर - साम्भर देश 14/5/8
संभु - ईशान दिशा 15/7/2
संवर - सम्हाला 9/2/8
संवर - कालसंवर राजा 13/17/7
संवुकुमार - शम्बुकुमार 14/15/13
संहार - संहार, नाश 15/20/2
सकलंक - कलंक सहित 2/10/1
सक्क - शक्र, इन्द्र 2/14/14
सक्कर - शक्कर, चीनी 1/7/11
सग्ग - सर्ग वृक्ष 10/6/4

सग्गे - स्वर्ग 4/11/2
सच्चरिय - सच्चरित्र 14/23/1
सच्चइमुणि - सात्यकि मुनि 4/15/8
सच्चहर - सत्यभामा 11/16/2
सच्चहाम - सत्यभामा 3/4/9
सच्चहाव - सत्यभामा 1/13/6
सज्ज - सज्ज नामक वृक्ष 10/6/4
सज्झाय - स्वाध्याय 7/5/8
सट्ट - सट्टक, नाटक का एक भेद 15/3/10
सडंगु - षडंग बल, 13/14/8
सणकुमार - सनत्कुमार 2/3/8
सणिचरु - शनिश्चर ग्रह 14/21/11
सण्णाह - सन्नाह, कवच 2/15/12
सण्णिह - समान 10/9/4
सत्तरत्तु - सात रातें 4/16/16
सत्तावीसो - सत्ताइस 15/2/3
सत्ति - शक्ति 2/11/4
सत्थ - शास्त्र 4/14/4
सद्दूल - शार्दूल, सिंह 4/1/1
सप्तस्वर - सप्त स्वर, विवाह के समय वर-वधू द्वारा सात प्रतिज्ञा 14/7/5
सप्प - सर्प 2/2/4
सब्द - शब्द 9/17/2
समोढइ - अच्छी तरह ओढ़ना 15/4/15
समदिट्ठि - समदृष्टि 11/16/9
समभाव - समता भाव 7/5/4
समवसरण - समवशरण 15/11/15
समिछउ - स्वीकार किया 14/2/9
समिदी - समिति 7/5/7
समुद्ददत्त - समुद्रदत्त राजा 5/11/9
सम्मं - सम्यक् 5/14/14
सय - शची, इन्द्राणी 3/3/12
सयंपह - स्वयंप्रभा पुत्री 14/8/9
सयंवर - स्वयंवर 6/4/8
सयतिण्णिसठ - तीन सौ साठ 4/2/7
सरमा - कुतिया 5/15/15
सरय - शरभ 2/2/2
सरल - सरल 11/21/14
सरवज्जियउ - गूँगा 5/1/8
सरसि - बावड़ी 8/5/16
सराव - सराव पर्वत, शल्यकगिरि 8/11/7
सरासइ - सरस्वती 2/11/4
सरि - सटि-सटि ध्वनि 14/6/3
सरिसु - सदृश, समान 11/5/15
सरु - शब्द 11/3/7
सरोरुह - कमल का फूल 1/9/1
सरोवर - सरोवर 3/1/6
सलवलिय - सलबलाना 6/13/10
सलहंति - श्लाघा, प्रशंसा 7/12/4
सलि - शल्य 15/5/6
सलिय - सड़ना 9/8/8
सलोणु - खारा 1/11/1
सल्लयगरि - शल्लकगिरि 8/10/11
सल्लेहण - सल्लेखना 5/7/1
सवण - श्रवण 5/3/6
सवर - भील 11/8/13
सवाण - समान 7/15/11
सवार - असवार 13/2/6
सवीड - लज्जा सहित 2/15/7
सवेइ - वेग पूर्वक 11/21/6
सव्वल - सव्वल नामक अस्त्र 2/17/10
सव्वसाइ - सव्यसाची अर्थात् अर्जुन 13/14/15
ससंक - शशांक, चन्द्रमा 15/7/8
ससंलि - दीर्घ साँस 12/21/6
ससहर - शशधर अर्थात् चन्द्रमा समान 3/11/3
ससहरकंति - चन्द्रमा की कान्ति का हरण करनेवाली 6/3/5
ससिपह - शशिप्रभा 14/14/11
ससिलेहा - शशिलेखा पुत्री 14/19/9
ससिविट्ठरु - शशिविष्टर अर्थात् सिंहासन 8/5/13
ससिसेहर - शशिशेखर नामक देव 14/14/11
सहएउ - सहदेव, पाण्डव-पुत्र 12/25/4
सहसक्ख - सहस्राक्ष नामका बाण 13/12/1
सहसा - तत्काल 14/2/9
सहारस - आम 3/1/6

सांख - सांख्य मत 15/16/10
साकेयणयरि - साकेतनगरी 9/4/9
साडियवहि - साड़ी खींचने वाले 2/19/12
साणि - श्वानि, कुत्ती 9/10/12
साम - सामवेद 4/16/8
सामंत - सामन्त 6/10/4
सायंभरि - शाकम्भरी देश 6/9/3
सायरु - सागर 1/11/9
सारंग - सारंग नामका धनुष 9/12/9
सारंगधरु - कृष्ण 13/14/15
सारंगपाणि - कृष्ण 15/22/3
सारण - युधिष्ठिर 13/14/15
सारहि - सारथी 2/13/9
साल - शाल नामक वृक्ष 1/7/4
सालण - नमकीन 11/21/3
सालिग्गामु - शालिग्राम 4/14/19
सालिवण - शालिवन 3/10/6
सावण - श्रावण-मास 13/8/14
सासु - सास 4/8/8
साहण - साधन 6/9/8
साहामउ - शाखामृग, बन्दर 11/4/5
साहारलु - आम 3/4/4
साहु-साहु - साधु-साधु 15/11/1
सिंगार - श्रृंगार 1/16/5
सिंधु - सिन्धु देश 14/5/7
सिंधुरवर - श्रेष्ठ हाथी 6/21/8
सिहंमि - शिखण्डी पक्षी 3/1/11
सिंहासण - सिंहासन 1/14/7
सिक्कार - सीत्कार, शीकर 10/6/13
सिग्गिरि - सुमेरु पर्वत 14/6/8
सिणिद्ध - स्निग्ध 15/4/4
सिद्धि - सिद्धि 2/11/4
सिमिर - समर, वायु 15/17/4
सियाल - सियार 4/16/20
सियाला - शीतकाल 6/16/13
सिरचुंविवि - सिरचूमना 8/20/13
सिरिपालु - श्रीपाल राजा 10/21/9
सिरिमइ - श्रीमती रानी 2/12/3
सिरलोउ - सिर का लोंच 9/5/8
सिरि - श्री, शोभा 10/6/7
सिरिखंड - श्रीखण्ड, चन्दन 10/6/7
सिरिमय - श्रीमय, शोभामय 10/6/7
सिरिविजअ - समुद्रविजय राजा 4/9/15
सिरिसयंभु - श्रीस्वयम्भूरमण समुद्र 14/9/7
सिरीहर - श्रीधर, कृष्ण 15/1/2
सिलोच्चय - विजयार्द्ध पर्वत 7/16/4
सिवएवडु - शिवदेवी, नेमिनाथ की माता 4/9/15
सिवपुर - शिवपुर 15/6/26
सिवएवि - शिवदेवी माता 3/12/13
सिविया - शिविका, पालकी 2/14/3
सिसुत्तण - शिशुत्व 9/21/9
सिसुपाल - शिशुपाल राजा 2/7/14
सिसुससि - बालचन्द्र 14/13/8
सिहि - शिखि, अग्नि 15/17/4
सीअलरंतु - सरोवर 15/4/6
सीमंधर - सीमन्धर स्वामी 4/10/4
सीय - सीता नदी 4/10/7
सीय - सीता 6/7/10
सीराउह - बलभद्र 9/12/3
सीरायुध - बलभद्र 13/4/9
सीरि - बलभद्र 13/4/9
सीलायर - शीलाचार 14/3/13
सीसम - शीशम वृक्ष 10/6/11
सीह - सिंह, शेर 2/2/7
सीहउर सिंहपुर, विद्याधर नगरी 7/8/9
सीहदुवार - सिंह दरवाजा 11/14/12
सीहद्धय - सिंह की ध्वजा 10/16/6
सीहासण - सिंहासन 1/16/5
सुअंध - सुगन्ध 15/7/11
सुउण्ह - उष्णता सहित 15/4/16
सुंदरि - सुन्दरी 14/13/6
सुंसुमार - मगर 4/1/13
सुक - तोता 1/7/6
सुकण्ण - सुकर्ण नामक व्यक्ति 10/12/10

सुकी - शुकी 3/1/11
सुकेय - सुकेत नामक विद्याधर 1/13/6
सुकेयसुता - सुकेत सुता अर्थात् सत्यभामा 14/19/4
सुक्कउग्गाहमि - शुल्क वसूल करना 10/10/4
सुक्कझाण - शुक्लध्यान 15/11/7
सुक्कवाण - शुक्लबाण 9/20/8
सुज्ज - सूर्य 15/6/14
सुठाण - सुन्दर स्थान 10/10/2
सुणि - कुतिया 6/2
सुणेत्त - सुन्दर नेत्र 7/8/10
सुण्हए - स्नुषा, वधु 5/1/4
सुतारणाम - सुतार नामका छन्द 10/6/15
सुद्ध - साफ, सपाट 11/3/6
सुपंडु - सुन्दर पाण्डव 12/24/2
सुपसण - सुप्रसन्न 11/16/10
सुब्भयरं - शुभ्रतर 3/7/2
सुमइ - सुमति नामका मंत्री 6/12/3
सुमिट्ठल - मधुर 11/17/4
सुमेरु - सुमेरु पर्वत 1/6/7
सुरकरि - ऐरावत हाथी 4/11/14
सुरकुमारि - सुरकुमारि 2/11/3
सुरधणु - इन्द्रधनुष 15/3/19
सुरयणकवच - सुरत्न कवच 8/10/8
सुरविड - कल्पवृक्ष 11/1/4
सुरसुंदरि - सुरसुन्दरी 2/7/9
सुरलोय - सुरलोक, स्वर्ग 2/11/5
सुरदारु - देवदार वृक्ष 10/6/11
सुरेह - सुरेखा नामकी पादुका 8/9/10
सुरुंद - सुन्दर, चौडा 14/20/3
सुलोयण - सुलोचना नामकी स्त्री 6/4/4
सुवच्छहारु - सुन्दर वस्त्र-हार 8/11/6
सुवण्णमाल - स्वर्णमाला विद्याधरी 13/7/7
सुवण्णणाह - स्वर्णाभ 14/10/12
सुविणोय - विनोद सहित 1/14/6
सुसाइय - सुस्वाद, आस्वाद 15/4/6
सुसार - सार सहित 3/1/10
सुहकम्म - शुभ कर्म 11/16/8
सुहद्द - सुभद्रा, कृष्ण की बहिन 4/8/1
सुहुम - सूक्ष्म 14/9/14
सूरुग्गम - सूर्य का उद्गम 5/6/4
सूरप्पह - सूरप्रभ विद्याधर 7/8/9
सूल - एक अस्त्र 2/17/10
सूलि - शूली, फाँसी 14/23/6
सूवा - शाक, तरकारी 11/21/6
सेणिय - श्रेणिक राजा 1/6/4
सेयं - श्रेयांस तीर्थंकर 15/6/13
सेल्ल - शैल 2/17/12
सेवत्ति - सेवन्ती पुष्प 10/6/11
सेहर - शेखर नामकी विद्या 8/9/6
सोदामणी - बिजली, दामिनी 4/12/7
सोम - उर्ध्वदिशा 15/7/12
सोमसम्म - सोमशर्मा विप्र 4/14/13
सोरट्ठ - सौराष्ट्र देश 3/1/2
सोहम्म - सौधर्म स्वर्ग 5/11/3
[illegible] - सौ[illegible]ल 1/12/5
हइ - हय, घोड़ा 14/20/5
हउमि - मैं हूँ 10/10/2
हंसरयम्मि - शरदकाल 15/4/8
हक्कारा - हलकारा, सन्देशवाहक 14/3/17
हट्ट - हटना 15/9/15
हणु - मारो 11/5/1
हय - घोड़ा 1/9/4
हयवाल - अश्वपाल 10/17/9
हयारि - हतारि 7/15/4
हर - महादेव 2/17/4
हरड - हर्रा नामका फल 10/6/9
हरि - विष्णु 2/12/2
हरि - कृष्ण 15/21/7
हरि - घोड़ा 11/2/10
हरिणी - हरिणी 2/2/9
हरिमंदिर - अश्वशाला 10/8/9
हरिवंस - हरिवंश 8/4/2
हरी - हरि, विष्णु 1/15/2
हल - फल 15/24/24

हलधर - बलराम, बलदेव 13/14/14
हलपहर - हल-प्रहरण 2/17/12
हले - सखी 13/16/17
हारिणी - धारिणी रानी 5/15/4
हिम - हिम ऋतु 15/4/9
हिमगिरि - हिमालय 13/16/5
हिमपडणु - हिमपटल 7/5/10
हिरण्ण - हिरण्य नामका पुत्र 8/1/4
हिरंण्ण - स्वर्ण 10/10/2
हिलिहिलि - घोड़ों का हींसना 10/16/12
हुअ - हुआ 10/2/2
हुंत - हुए 10/19/10
हुडुक्क - एक वाद्य 13/16/12
हुयासणु - हुताशन, अग्नि 3/1/5
हुव - हुए 10/21/1
हुवास - अग्नि 15/7/1
हूण - हूण देश 6/3/12
हूहू - घू-घू की आवाज 13/16/10

❑❑❑

सन्दर्भ-ग्रन्थ एवं शोध-पत्र-पत्रिकाएँ

1. अगडदत्तचरियं — **सम्पा० डॉ० राजाराम जैन**, प्राकृत-साहित्य परिषद, आरा, 1975 ई०।
2. अपभ्रंश-दर्पण — **प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा**, पटना, 1955 ई०।
3. अपभ्रंश भाषा और साहित्य — **डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन**, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1965 ई०।
4. अपभ्रंश साहित्य — **डॉ० हरिवंश कोछड़**, भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, वि०सं० 2013।
5. अमरकोश — **अमरसिंह, सम्पा० गुरुप्रसाद शास्त्री**, बनारस, 1960 ई०।
6. अष्टाध्यायी — **श्रीशचन्द्र राय**, प्रका० मेतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1962 ई०।
7. आल्हा-खण्ड — **पं० नारायणप्रसाद मिश्र**, श्री विश्वेश्वर प्रेस, बनारस (तिथि अलिखित)।
8. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत : — **डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री**, श्री गणेशवर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1968 ई०।
9. आर्यासप्तशती — **गोवर्द्धनाचार्य**।
10. अंगुत्तरनिकाय (प्रथम भाग) — नालन्दा संस्करण।
11. उत्कीर्ण लेखमाला — **संपा० झा बन्धु**, चौखम्भा०, वाराणसी, 1962 ई०।
12. उत्तर प्रदेश की ऐतिहासिक विभूति — **डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी**, शिक्षा विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनऊ 1957 ई०।
13. उत्तरपुराण — **गुणभद्रकृत, संपा० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य**, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1968 ई०।
14. उपदेशरसायनरास — **जिनदत्त सूरि** (वि०सं० 1132, अप्रकाशित)।
15. उपमितिभवप्रपंचकथा — **सिद्धर्षिकृत, संपा० पी० पीटर्सन**, कलकत्ता, 1899 ई०।
16. ऋग्वेद संहिता — वैदिक संशोधन मण्डल, पूना 1936-1944 ई०।
17. कर्पूरमंजरी — **राजशेखरकृत, संपा० मनमोहन घोष**, कलकत्ता वि०वि०, 1948 ई०।
18. कबीर ग्रन्थावली — नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1962 ई०।
19. करकण्डचरिउ — **संपा० डॉ० हीरालाल जैन**, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी 1964 ई०।
20. कवितावली — **टीकाकार-लाला भगवानदीन और विश्वनाथ प्रसाद मिश्र**, इलाहाबाद, वि०सं० 2013।
21. कहाणयतिगं — **संपा० घाटगे एवं रणदिवे**, सतारा (महाराष्ट्र)।
22. काव्य-बिम्ब — **डॉ० नगेन्द्र**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967 ई०।
23. काव्य-मीमांसा — **राजशेखरकृत, संपा० पं० केदारनाथ शर्मा 'सारस्वत'**, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1954 ई०।
24. काव्यादर्श — **महाकवि दण्डी**, बनारस, वि०सं० 1988।

25. काव्यालंकार — **भामह**, वि०वि० प्रेस, काशी, वि०सं० 1985।

26. किरातार्जुनीयम् — **भारवि कृत**, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1954 ई०।

27. कीर्त्तिलता — **विद्यापती**, **व्याख्याकार** — **डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल**, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी 1962 ई०।

28. कुमारसम्भव — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1927 ई०।

29. कूर्मपुराण — **संपा०—नीलमणि मुखोपाध्याय**, कलकत्ता, 1890 ई०।

30. कौटिल्य अर्थशास्त्र — **संपा०—आर० राम शास्त्री**, मैसूर, 1909 ई०।

31. कौषीतिकि-ब्राह्मण — **संपा० श्री बी० लिंडनर**, 1887 ई०।

32. खारवेल शिलालेख — **संपा० काशीप्रसाद जायसवाल**, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1928 ई०।

33. गयसुकुमालरास — **देल्हणकृत**, संपा० **डॉ० हरीश**, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1961 ई०।

34. गरुड़पुराण — **अंग्रेजी अनु० एम०एन०** दत्त, कलकत्ता, 1908 ई०।

35. गीतकार विद्यापति — **राम वशिष्ठ**, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1954 ई०

36. गीत-गोविन्द — **जयदेव**।

37. चन्दायन — **दाऊद**, **संपा० डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त**, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

38. चित्ररेखा — **जायसी**, **संपा०—शिवसहाय पाठक**, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1959 ई०।

39. चौलुक्य कुमारपाल — **लक्ष्मीशंकर व्यास**, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, **द्वितीय** सं०, 1962 ई०।

40. जम्बूसामि चरिउ — **संपा० — डॉ० विमलप्रकाश जैन**, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1967 ई०।

41. जम्बूस्वामीरास — **संपा०—डॉ० हरीश**, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1961 ई०।

42. जसहरचरिउ — **संपा०—पी०एल० वैद्य एवं डॉ० हीरालाल जैन**, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, 1972 ई०।

43. जैन शिलालेख संग्रह (तृतीय भाग) :— **संग्रहकर्त्ता—पं० विजयमूर्त्ति शास्त्राचार्य**, माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई, वि०सं० 2013।

44. जैन-साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-6) :— **डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी**, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोध संस्थान, वाराणसी 1973 ई०।

45. जैन साहित्य और इतिहास — **नाथूराम प्रेमी**, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर लि०, बम्बई, 1956 ई०।

46. जोयसार — **संपा०—डॉ० ए०एन० उपाध्ये**, रायचन्द्र शास्त्रमाला, सन् 1965 ई०।

47. णायकुमार चरिउ — **पुष्पदन्त**, **संपा०—डॉ० हीरालाल जैन**, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् 1972 ई०।

48. तत्त्वार्थसूत्र — **उमास्वामि, संपा०—पं० फूलचन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री**, गणेश वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, वीर नि० सं० 2476।

49. ताण्ड्य ब्राह्मण — चौखम्भा सं० सीरीज, वाराणसी।

50. तिलोयपण्णत्ति — **संपा०—डॉ० ए०एन० उपाध्ये एण्ड डॉ० हीरालाल जैन**, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर, 1943 ई०।

51. तैत्तरीय उपनिषद् — गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० सं० 1994।

52. दशकुमारचरित — चौखम्भा०, वाराणसी, 1948 ई०।

53. दिल्ली के तोमर — **हरिहर निवास द्विवेदी**, विद्या मन्दिर प्रकाशन, ग्वालियर सन् 1973 ई०।

54. द्वयाश्रयकाव्य — **संपा०—डॉ० पी०एल० वैद्य**, पूना 1936 ई०।

55. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, 2, 3 : — **पी०वी० काणे**, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ।

56. नाट्यशास्त्र — **भरतमुनि**, बड़ौदा, 2926 ई०।

57. नायाधम्मकहाओ — आगमोदय समिति, बम्बई, 1919 ई०।

58. पउमचरियं (स्वयम्भू) — **संपा०—डॉ० हरिवल्लभ भायाणी**, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1953 ई०।

59. पद्मावत — **संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल**, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, वि०सं० 2012।

60. परमप्पयासु — **संपा०—डॉ० ए०न० उपाध्ये**, रायचन्द्र शास्त्रमाला, 1965 ई०।

61. पासणाहचरिउ (पउमकित्ति) — **संपा०—पी०के० मोदी**, प्राकृत ग्रन्थ परिषद, वाराणसी, वि०सं० 2021।

62. पाहुड़दोहा — **मुनि रामसिंह, संपा०—डॉ० हीरालाल जैन**, कारंजा, 1933 ई०।

63. पुण्णासवकहा — **रइधू** 15वीं सदी (अप्रकाशित)।

64. पृथ्वीचन्द्रचरित्र — **माणिक्यचन्द्र सूरि**, वि०सं० 1478।

65. पृथ्वीराजरासो — **चन्दबरदायी, संपा०—श्यामसुन्दर दास**, बनारस, 1904।

66. प्रबन्धचिन्तामणि — **मेरुतुंगाचार्य**, अनु० जिनविजय मुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला बम्बई, वि०सं० 2013।

67. प्रशस्तिसंग्रह (भाग-2) — **संपा०—पं० परमानन्द जैन शास्त्री**, वीर सेवा मन्दिर सोसाइटी, दिल्ली, 1963 ई०।

68. प्राकृतभाषा — **प्रबोध पण्डित**, बनारस, 1954 ई०।

69. प्राचीन भारत — **राधाकुमुद मुखर्जी**, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1963 ई०।

70. प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप— **डॉ० अवधबिहारी लाल अवस्थी**, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ 1964 ई०।

71. प्राचीन भारत का राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास — **रतिभानु सिंह नाहर**, किताबमहल इलाहाबाद, 1956 ई०।

72. बलहद्दपुराण — **रइधू**, 15वीं सदी (अप्रकाशित)।

73. बाल्मीकि-रामायण — गीता प्रेस, गोरखपुर, 1944 ई०।

74. बाहुबलिदेव चरिउ **धनपाल**, 15वीं सदी (अप्रकाशित)।

75. बीसलदेव रासो — **संपा०—सत्यजीवन वर्मा**, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वि०सं० 1982।

76. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल — **उपाध्याय भरत सिंह**, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, शक संवत् 1883।

77. ब्रह्मगुलाल चरित — **छत्रपति**, संपा०—बनवारीलाल स्याद्वादी, जैन साहित्य प्रकाशन संस्था, दिल्ली 1961 ई०।

78. भट्टारक सम्प्रदाय — **वी०पी० जोहरापुरकर**, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर 1958 ई०।

79. भरतबाहुबलिरास — **शालिभद्रसूरि**, संपा०—डॉ० हरीश, मंगल प्रकाशन, जयपुर 1961 ई०।

80. भविसयत्तकहा — **संपा०—डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री**, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, 1970 ई०।

81. भविसयत्तचरियम् — **महेश्वरसूरि** कृत, आरा, 1970 ई०। **सम्पा०—डॉ० राजाराम जैन**

82. भागवतपुराण (द्वितीय खण्ड) : — गीता प्रेस, गोरखपुर, वि०सं० 2033।

83. भारत के प्राचीन जैन तीर्थ : — **डॉ० जगदीशचन्द्र जैन**; पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान बाराणसी, 1952 ई०।

84. भारत के प्राचीन शास्त्रास्त्र और युद्ध कला — राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, 1964 ई०।

85. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी : — **डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी**, प्रथम सं०, दिल्ली, 1954 ई०।

86. भारतीय इतिहास एक दृष्टि : — **डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन**, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, 1961 ई०।

87. भारतीय वास्तुशास्त्र — **डी०एन० शुक्ला**, लखनऊ।

88. भारतीय संस्कृति — **शिवदत्त ज्ञानी**, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1944 ई०।

89. भारतीय संस्कृति का उत्थान : - **डॉ० रामजी उपाध्याय**, रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद, विक्रमाब्द, 2018।

90. मत्स्यपुराण — कलकत्ता, 1954 ई०।

91. मधुमालती — **चतुर्भुजदास**, संपा०—फतहसिंह, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1967 ई०।

92. मन्दसौर शिलालेख — (अभिलेखमालान्तर्गत) **संपा०—झा बन्धु**, चौखम्भा०, वाराणसी, 1962 ई०।

93. मनुस्मृति — **चौखम्बा प्रकाशन**, वाराणसी, 1965 ई०।

94. मयणरेहाकहा — एल०डी० इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलाजी, अहमदाबाद।

95. महापुराण — **पुष्पदन्त कृत**, माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, 1941 ई०।
96. महाभारत की नामानुक्रमणिका : — गीता प्रेस, गोरखपुर, वि०सं० 2016।
97. महाभाष्य — **महर्षि पतंजलि**, संपा०—**अभ्यंकर शास्त्री**, पूना, 1892 ई०।
98. महावीरचरियं — **नेमचन्द्रसूरि**, **संपा०—मुनि चतुर विजय**, प्रका०—आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि०सं० 1973 ई०।
99. मानसार — **पी०के० आचार्या**, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
100. मार्कण्डेयपुराण — वंगवासी एडीशन, कलकत्ता 1904 ई०।
101. मेघदूत — **कालिदास**, गोपाल नारायण कं० बम्बई, 1949 ई०।
102. यशस्तिलकचम्पू — **सोमदेव**, **संपा—पं० सुन्दरलाल शास्त्री**, महावीर जैन ग्रन्थमाला, काशी, 1960 ई०।
103. योगवाशिष्ठ — गीता प्रेस, गोरखपुर।
104. रइधू साहित्य का आलोचनात्मक : परिशीलन — **डॉ० राजाराम जैन**, प्राकृत जैन शोध संस्थान, वैशाली, (शिक्षा-विभाग, बिहार सरकार) 1974 ई०।
105. रघुवंश — **कालिदास**, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1961 ई०।
106. रयणसेहरनिवकहा — **जिनहर्षसूरि**, **संपा०—हरगोविन्ददास**, प्र० जैन विविध शास्त्रमाला, बनारस, 1918 ई०।
107. राजतरंगिणी — **कल्हण**, **अनु०—आर०एस०** पण्डित, इलाहाबाद, 1935 ई०।
108. राजनय के सिद्धान्त — **गांधीजी राय**, भारती भवन, पटना, 1978 ई०।
109. रामचन्द्रिका — **कवि केशवदास**, संपा०—**पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल**, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वि०सं० 2007।
110. रामचरितमानस — **तुलसीदास**, रामनारायण लाल, प्रयाग, 1925 ई०।
111. रामायण — **बाल्मीकि**, कल्याण प्रेस, बम्बई, 1935 ई०।
112. राहुल निबन्धावली — **राहुल सांकृत्यायन**, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली सन् 1970 ई०।
113. रिट्ठणेमिचरिउ — **महाकवि स्वयम्भू** (अप्रकाशित)।
114. रेवंतगिरि रास — **विजयसेन सूरि**, वि०सं० 1288 (अप्रकाशित)।
115. वृहत्संहिता — वाराणसी, 1959 ई०।
116. वरांगचरित — **जटासिंह नन्दी**, **संपा०—डॉ० ए०एन० उपाध्ये**, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन सीरीज़, बम्बई, 1938 ई०।
117. वसन्तविलास — **बालचन्द्र सूरि**, बड़ौदा, 1917।
118. वसुदेवहिण्डी — **संघदासगणि**, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, 1930 ई०।
119. वाजसनेयिसंहिता — **संपा०—ए० बेवर**, लन्दन, 1852 ई०।
120. वायुपुराण — आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज़, पूना, 1904 ई०।
121. विद्यापति पदावली — **संपा०—नगेन्द्रनाथ गुप्त**, इं०प्रे० इलाहाबाद।

122. विश्वकवि कालिदास : एक अध्ययन — ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी।
123. विक्रमोर्वशीयम् — **कालिदास**, संस्कृत सीरीज़ बम्बई, तृतीय सं०, 1901 ई०।
124. विष्णुपुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर, वि०सं० 2009।
125. वीरसिंहदेवचरित — ओरछा स्टेट टीकमगढ़
126. वैदिक साहित्य और संस्कृति : — **वाचस्पति गैरोला**, संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद 1969 ई०।
127. शक्ति संगम तन्त्र — गायकवाड़ ओरियेंटल सीरीज़, बड़ौदा, 1941 ई०।
128. शिशुपालवध — **माघ, संपा०—जीवाराम शर्मा**, मुरादाबाद, 1910 ई०।
129. स्कन्दपुराण — आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, 1924 ई०।
130. स्वयम्भूछन्दस् — **संपा०—एच०डी० वेलणकर**, जोधपुर, 1962 ई०।
131. समराइच्चकहा — **हरिभद्र संपा०—एम०सी० मोदी**, अहमदाबाद, 1935 ई०।
132. समरांगणसूत्रधार — **भोज**, बड़ौदा, 1925 ई०।
133. समरारास — **अम्बदेव**, वि०सं० 1371 (अप्रकाशित)।
134. सम्मइजिणचरिउ (रइधूकृत) — **संपा०—डॉ० राजाराम जैन**, जीवराज ग्रन्थमाला, सोलापुर।
135. सरस्वती कण्ठाभरण : — **भोजदेव, अं० बरुआ**, कलकत्ता, 1883 ई०।
136. सर्वार्थसिद्धि — **पूज्यपाद, संपा०—पं० जि०पा० फडकुले**, सखाराम नेमचन्द्र ग्रन्थमाला, सोलापुर, 1939 ई०।
137. साहित्य दर्पण — **श्री विश्वनाथ, संपा०—दुर्गाप्रसाद द्विवेदी**, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1915 ई०।
138. सिद्धहेम व्याकरण — **हेमचन्द्राचार्य, संपा०—डॉ० पी०एल० वैद्य**, भण्डारकर ओरि० रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना, 1936 ई०।
139. सिरिथूलिभद्दफागु — **जिनपद्मसूरि**, वि०सं० 1257 (अप्रकाशित)।
140. सुकुमाल चरिउ — **श्रीधरकृत** (अपभ्रंश, अप्रकाशित), वि०सं० 1208।
141. सुजानचरित **सूदनकृत**।
142. सुदामाचरित
143. सुदंसणचरिउ — **मुनि नयनन्दी, संपा०—डॉ० हीरालाल जैन**, प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली, 1970 ई०।
144. सूर के सौ कूट **चुन्नीलाल शेष**, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, वि०सं० 2023।
145. सौन्दरनन्द — **अश्वघोष, संपा०—सूर्यनारायण चौधरी**, प्रकाशक संस्कृत भवन, कठौतिया, पूर्णिया, वि०सं० 2016।
146. सन्देशरासक — **अब्दुल रहमान, संपा० मुनि जिनविजय, डॉ० भायाणी**, सिं० जैन शा० शिक्षापीठ, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1945 ई०।
147. हरिवंशपुराण — **जिनसेन, संपा०—पं० पन्नालाल साहित्याचार्य**, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, 1962 ई०।
148. हरिवंशपुराण — **धवलकृत** (अप्रकाशित)

149. हर्षचरित — चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1964।

150. हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन — **डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल**, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, वि०सं० 2010।

151. हिन्दी गाथा सप्तशती -- टीकाकार **डॉ० जगन्नाथ पाठक**, चौखम्भा, वाराणसी सन् 1969 ई०।

152. हिन्दी साहित्य का आदिकाल -- **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी**, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना 1952 ई०।

153. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास **डॉ० रामकुमार वर्मा**, हिन्दी परिषद, प्रयाग, 1948 ई०।

154. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (प्र०खं)—काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, वि० सं० 2014।

155. हेमप्राकृत व्याकरण — **हेमचन्द्राचार्य, संपा०—डॉ० पी०एल० वैद्य**, पूना, 1936 ई०।

156. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : — **डॉ० जयकिशन खण्डेलवाल**, विनोद पुस्तक भण्डार, आगरा, 1969 ई०।

157. Alberuni-India Tarikh-i-Hind, (English) — **Tr. by E.C. Sachau Trubners,** Oriental Series, London 1910.

158. Edicts of Ashoka : — **G.Shrinivasa Murti**, Adyar Lib., 1950.

159. Geography of Ancient India : — **N.L. Day**, London, 1927.

160. History of Indian Literature : — **M. Winternitz**, Ahmedabad, 1946.

161. Introduction of Comparative : Philology -- **P.D. Gune**, Poona, 1950.

162. Mysore Inscriptions : — (Govt. of Mysore)

163. Marriage in Encyclopaedia of Social Science, Vol. X : — **Rober H.Lowie.**

164. New History of Indian People :— Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay

165. On the Literature of the Svetambaras of Gujarat.

166. Political History of Northern India : -- **Dr. Gulab Chandra Chaudhary**, Sohanlal Jaindharma Pracharak Samiti, Amritsar, 1954.

167. Principles of Eoonomic Geography :—**Brown**, London, 1946.

168. The Travels of Fa-hian : — **Legge**, J.H., Oxford, 1886.

पत्र-पत्रिकाएँ

अनेकान्त	वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली
जैन सिद्धान्त भास्कर एवं Jaina Antiquary	आरा
राष्ट्रभाषा पत्रिका	पटना
Apigraphica India, Vol. I	Govt. of India
Journal of Bihar Research Society	Patna

❑❑❑